ऋग्

ओ३म्

यजु

वेद-प्रकाश

साम

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

अथर्व

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७६५.

आदरी सह-सम्पादक
जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

सितम्बर	१९६१
भाद्रपद	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	२

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

रामेश्वरानन्द अंक

दृढ़व्रती यती

❀ डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए०

दृढ़व्रती यतिवर महा, "राम ईश्वरानन्द"।
राष्ट्रधर्म कल्याणहित, सफल रहें सानन्द ॥
प्राणों की बाजी लगा, राष्ट्र एकता हेतु ।
जग में ऊंचा कर दिया, आर्य जाति का केतु ॥
"तारासिंह" तारा रहे, स्वामी "सूर्य" समान ।
राष्ट्र गगन में चमकते, ज्योतिष्मन्त महान् ॥

हिन्दू सिक्ख सदा रहें, अमर एकता बीच ।
हिन्दी तरु को रक्त से, रहे यतीवर सींच ॥
अमर रहेगा काम यह, अमर रहेगा नाम ।
धन्य २ स्वामिन तुम्हें, तुम कलियुग के राम ॥
ऋषि दधीचि सम दे रहे, राष्ट्र हेतु बलिदान ।
असुर पराजित हों अवसि, विजयी देव महान् ॥

—❀—

वेद प्रकाश के विशेषांक वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला पर कतिपय सम्मतियां

पूज्यपाद महात्मा आनन्द स्वामी जी लिखते हैं।

वेद प्रकाश का विशेषांक स्वामी नित्यानन्द जी की वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला प्राप्त हुई, ऐसा वैदिक साहित्य जनता के सामने रखकर आप वेद विचार के प्रसार तथा प्रचार में पूरे सहायक बन रहे हैं।

मान्यवर श्री पं. नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ लिखते हैं—

वेद प्रकाश का वैदिक सिद्धान्त माला विशेषांक सुपाठ्य वैदिक सामग्री से परिपूर्ण है। स्व० स्वनामधन्य स्वामी नित्यानन्द जी की व्याख्यान माला पढ़ते हुए विशेष आनन्द मिलता है। मानो हम साक्षात् उनके मुख से मनोहर उपदेश सुन रहे हैं।

श्री वैदिक गवेषक श्री शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला प्राप्त हुआ। छपाई सफाई आवरण पृष्ठ सुन्दर है। श्रद्धेय स्वामी नित्यानन्द जी महाराज आर्य जगत के एक प्रतिष्ठित संन्यासी थे। संस्कृत के अगाध विद्वान थे। वे एक प्रसिद्ध वाग्मी थे। उनके १२ व्याख्यानों को पढ़कर कोई भी उपदेशक बन सकता है।

"विश्व ज्योति" होशियारपुर लिखता है:—

"वेद प्रकाश" पत्र आर्य सामाजिक साहित्य की श्री वृद्धि में संलग्न है। विगत नौ वर्षों में दयानन्द ग्रन्थ संग्रह' 'बाल्मीकि रामायण' 'सृष्टि का इतिहास 'महर्षि से पूर्व का भारत' और 'गुरुदत्त लेखावलि' जैसे महत्वपूर्ण और अलभ्य ग्रन्थों के रूप में उसके विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं।

इस वर्ष स्वर्गीय ब्र० नित्यानन्द जी महाराज की १०१ वीं पावन जयन्ती के उपलक्ष में वेदप्रकाश का "वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला" प्रकाशित हुआ है। जो हर दृष्टि से सुन्दर बन पड़ा है।

उक्त विशेषांक में सर्व प्रथम श्री स्वामी जी का चित्र दिया गया है और फिर संक्षिप्त जीवन। उसके बाद 'जीवात्मा' मनुष्य जीवन की सफलता मानव ज्ञान स्रोत, ईश्वरोपासना, संसार की विचित्र गति और मनुष्य का कर्तव्य आदि विषयों पर श्री स्वामी जी के तेरह व्याख्यान दिये गये हैं। प्रवचनों की गम्भीरता उनके शीर्षकों से ही स्पष्ट है।

आर्य समाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द जी के बाद उनके सन्देश को भारत में चतुर्दिक प्रसार करने वालों में स्वामी नित्यानन्द जी का प्रमुख स्थान है। आपके प्रवचन अत्यन्त प्रभावशाली होते थे इन अलभ्य प्रवचनों का प्रकाशन सर्वथा अभिनन्दनीय है। आशा है प्रेमी पाठक इससे लाभ उठायेंगे। विशेषांक पठनीय और मननीय ही नहीं अपितु संग्रहणीय भी है।

महर्षि दयानन्द पर आक्षेप

पौराणिक पं० श्री माध्वाचार्य जी ने अपनी कुत्सित भावनाओं को व्यक्त करते हुए महर्षि-दयानन्द पर ओछे आक्षेप किये हैं, अनेक प्रकार की गालियां दी हैं और कुवाच्य कहे हैं। श्री शिवपूजनसिंह जी को भी अनेक गालियां दी हैं। श्री कुशवाहा जी ने उनकी पुस्तक का मुंह तोड़ उत्तर दिया है परन्तु अब छापने की समस्या सामने है। पुस्तक लगभग १६० पृष्ठ की होगी। छपाई का खर्च लगभग ६००) होगा। १००) का प्रबन्ध हो गया है। यदि ५०० व्यक्ति एक एक रुपया अग्रिम भेज दें तो पुस्तक प्रकाशित हो जाये। रुपया भेजने वाले सज्जनों को पुस्तक की एक प्रति भेंट की जायेगी। धन इस पते पर भेजें।

ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
८ ई०, कमला नगर दिल्ली ६।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

वेद सुधा

★ बलिदान ★

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम (अथर्व १२।१।६१)

हे भूमिमातः ! (वयं) हम लोग (तुभ्यं) तेरे लिये (बलिहृतः) बलिदान करने वाले (स्याम) हों।

वेद की यह छोटी सी सूक्ति एक दिव्य सन्देश, उपदेश ऐवं प्रेरणा दे रही है कि प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर भूमि माता के लिये अपने प्राणों की आहूति दे देनी चाहिये।

भूमि माता के रजकणों में खेलकर हम बड़े होते हैं। भूमि से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के द्रव्यों से हमारे शरीरों का पालन और पोषण होता है। जब एक कुत्ता भी अपने स्वामी की रोटी खाकर उसके लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता है तो क्या हम मानवों में अपनी भूमि (राष्ट्र) माता के लिए मर मिटने की भावना न होनी चाहिये।

वेद की इसी सूक्ति के आधार पर आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी परम हंस स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने खण्डित पंजाब के पुनर्विभाजन के विरोध में भूमिमाता को अखण्ड रखने के लिये १६ अगस्त १९६१ से 'आमरण अनशन' का व्रत धारण कर अपने प्राणों की बाजी लगा दी। यह आमरण अनशन ३० अगस्त तक चलता रहा। अन्ततः उनकी बलिदान भावना रङ्ग लाई और उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिली। मिलती भी क्यों न—

खुद चूम लेती है कदम आके मञ्जिल।
अगर चलने वाला हिम्मत न हारे॥

प्रभु हम सब के हृदयों में भी भूमि माता के प्रति बलिदान हो जाने की भावना जागृत करे।

रहे अखण्ड राष्ट्र भारत, हो शाश्वत हिन्दी भाषा

[लेखक—प्रकाश चन्द्र कविरत्न अजमेर]

मरने की धमकी देकर लुंगा पञ्जाबी सूबा।
बाँधा 'तारासिंह' ने है यह आज अजब मन्सूबा॥
हो न सकेगी पूर्ण कभी यह उनके मन की राजी।
चल न सकेगी और अधिक ग़द्दारी फ़ितना साजी॥
इस अनीति के विरुद्ध अब अड़ बैठेंगा आर्य समाजी।
'रामेश्वरानन्द जी' ने दी लगा जान की बाजी॥
धन्य, धन्य, हे ! वीर धीर हे ! धर्मधुरीण विरागी।
भारत की अखण्डता हित प्राणों की ममता त्यागी॥
आज तुम्हारे तप बल से यह सुपुप्त जनता जागी।
बढ़ा पुनः, उत्सर्ग हेतु, उत्साह, निराशा भागी॥
द्रोही दल कितने कृपाण, भाले या बम्ब चलाले।
आर्य वीर कर्त्तव्य क्षेत्र से कभी न हटते वाले॥
रहे अखण्ड राष्ट्र भारत हो शाश्वत हिन्दी भाषा।
'रामेश्वरानन्द' युग युग, जीवे हैं यह अभिलाषा॥

सम्पादकीय विचार

पंजाबी सूबे की मांग सर्वथा अनुचित

मिस्टर जिन्ना के पद चिह्नों पर चलते हुए मास्टर तारासिंह ने सिख सूबे की मांग की है। सन् १९४५ में देश के बटवारे का प्रश्न सामने आने पर कुछ सिखों ने पृथक् सिख स्टेट की मांग की थी। वही नेता जिन्होंने 'स्वतन्त्र सिख स्टेट' का स्वप्न देखा था आज भाषा के आधार पर पञ्जाबी सूबे की मांग कर रहे हैं। परन्तु क्या भाषा के आधार पर पृथक् पञ्जाबी सूबे की मांग उचित है? यह विचार आते ही निम्न प्रश्न उठ खड़े होते हैं—

(१) पञ्जाबी भाषा का अभिप्राय क्या है?

(२) पञ्जाबी भाषा किन लोगों की है? अर्थात् पञ्जाबी भाषा केवल अकालियों या सिखों की ही है अथवा अपने आप को पञ्जाबी कहने वाले सभी लोगों की है।

(३) यदि सभी पञ्जाब निवासियों की भाषा पञ्जाबी है तो पञ्जाब के सभी लोग पञ्जाबी सूबे की मांग क्यों नहीं करते?

(४) जब कि पञ्जाब के अधिकाँश निवासी पञ्जाब के पुनर्विभाजन के विरोधी हैं तब क्या पञ्जाबी सूबा बनाये जाने की मांग को जनतान्त्रिक मांग कहा जा सकता है?

अब हम इनमें से प्रत्येक बात पर विचार करेंगे।

पञ्जाबी और हिन्दीविज्ञ महानुभाव हिन्दी और पञ्जाबी को दो पृथक् एवं स्वतन्त्र भाषाएं स्वीकार नहीं करेंगे। जैसे हिन्दी के अन्तर्गत, अवधी ब्रजभाषा, भोजपुरी और राजस्थानी-आदि अनेक क्षेत्रीय भाषाओं का समावेश है उसी प्रकार पञ्जाबी भी हिन्दी के अन्तर्गत एक शाखा है। 'गुरु ग्रन्थ साहब' की भाषा भी उस प्रकार की पञ्जाबी नहीं हैं जिसके नाम पर पञ्जाबी सूबे का आन्दोलन चल रहा है। 'गुरु ग्रन्थ साहब' तो अधिकांश ब्रजभाषा में ही लिखा हुआ हैं। 'गुरु ग्रन्थ साहब' के निर्माता श्री गुरु नानक देव जी और श्री गुरु अर्जुन देव जो दोनों हिन्दी के प्राचीन कवियों में गिने जाते हैं। भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी पञ्जाबी हिन्दी के ही अन्तर्गत है।

वर्तमान हिन्दी किसी देश या प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है। लोग अपने अपने क्षेत्रों, घरों, परिवारों में अवधी और ब्रज भाषा आदि बोलते हुए अपनी भाषा हिन्दी ही समझते थे। १९४७ से पूर्व पञ्जाब के नगरों के हिन्दु, सिख, मुसलमान अपने घरों और परिवारों में पञ्जाबी के अन्तर्गत डेरावाली और दुआबी आदि बोलते थे परन्तु सम्पूर्ण पञ्जाब में शिक्षण संस्थाओं, दफतरों, अदालतों आदि में खड़ी बोली उर्दू हिन्दी का ही प्रयोग होता था।

सिख सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक गुरु हिन्दु जाति और भारतीय संस्कृति के रक्षक थे। उन के 'शिष्यों' को बोल चाल की भाषा में 'सिख' कहा जाता था। दस गुरुओं के अनुयायी केवल केशधारी लोग ही नहीं थे। हिन्दु भी उनके अनुयायी थे। आज भी पञ्जाब में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो सिख न होते हुए भी गुरुओं और गुरु ग्रन्थ साहब में धार्मिकआस्था रखते हैं। पञ्जाबी बोलते हुए भी अपनी परम्परागत सांस्कृतिक भाषा हिन्दी को ही समझते हैं।

इस प्रकार यह पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि पञ्जाबी कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है यह तो एक बोली है जो ब्रज भाषा और मागधी आदि की भांति हिन्दी के अन्तर्गत ही समाविष्ट हो जाती है।

अब हम दूसरे प्रश्न को लेते हैं। यह एक एतिहासिक तथ्य है कि सम्प्रदायों में तनिक सा भी मत भेद होने पर एक सम्प्रदाय में विश्वास रखने वाले लोग समीप होते जाते हैं और अन्य सम्प्रदाय वालों से पृथक् होने लगते हैं। इसी प्रवृत्ति के फल

स्वरूप सिख सम्प्रदाय भी हिन्दुओं से अलग होने लगा। ब्रिटिश शासन काल में मेकालफ की फूट नीति के कारण तथा राज्य द्वारा आर्थिक और राजनैतिक सहूलियतों के कारण सिखों ने पृथक् जाति और सम्प्रदाय की घोषणा कर दी तथा अपनी भाषा को भी पृथक् बना लिया और शेष हिन्दु समाज की सांस्कृतिक भाषा से अपना कोई सम्बन्ध न होने की बात करने लगे।

जिस समय उत्तर भारत में हिन्दी के विकास के लिये अवध, ब्रज, भोजपुर आदि प्रदेश के लोग साहित्य सृजन में हिन्दी को प्रधानता दे रहे थे उस समय पञ्जाब में खड़ी बोली के साथ पञ्जाबी के विकास की प्रक्रिया चल रही थी। परिणाम स्वरूप ३०-३५ वर्ष में पञ्जाबी ने पर्याप्त विकास किया है। पञ्जाब में पञ्जाबी का जो स्थान है उसे हटाने का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता परन्तु पञ्जाब की अधिकांश पञ्जाबी जनता पञ्जाबी बोलते हुए भी अपनी भाषा हिन्दी ही समझती है पञ्जाबी नहीं। पढ़ने और सुनने वालों को यह बात विचित्र लगेगी परन्तु है यह तथ्य और सोलह आने सत्य। यदि अवधी, ब्रज और राजस्थानी बोलने वालों की भाषा हिन्दी कही जा सकती है तो पञ्जाबी बोलने वाले लोगों की भाषा हिन्दी क्यों नहीं कही जा सकती।

इस प्रकार इस विवेचन से यह स्पष्ट है पञ्जाब के सभी लोगों की भाषा पञ्जाबी नहीं है। अपने सम्प्रदाय की ओर विशेष झुकाव और भाषा सम्बंधी प्रश्न को अत्यधिक महत्व प्रदान करने वाले कुछ अकाली सिख ही इसे अपनी भाषास्वीकार करते हैं।

अब हम तीसरे प्रश्न की ओर आते हैं। पञ्जाब के तथ्यों और जनमत के आधार पर जनता की दो भाषाएं हिन्दी और पञ्जाबी स्वीकार करनी होंगी। ऐसी अवस्था में भाषा के आधार पर पृथक् राज्य की मांग कहां तक न्याय एवं तर्क संगत हो सकती है। अकालियों के अनुसार सभी पञ्जाबियों की भाषा पञ्जाबी है। अतः पञ्जाबी भाषियों के लिये एक पृथक् राज्य बनाया जाये। अब प्रश्न यह है कि पञ्जाबी सूबा पञ्जाबी बोलने वालों की इच्छा से बनाया जाये अथवा अकालियों की मांग के कारण बनाया जाये। यदि पञ्जाबी बोलने वाले जिलों की स्थिति पर विचार किया जाये तो पता लगेगा कि पञ्जाबी बोलने वाले जिलों में बहुमत पञ्जाबी सूबे के समर्थन की तो बात ही क्या उसका विरोध करता है। यह एक विचित्र बात होगी कि पञ्जाबी बोलने वाले कुछ लोगों की मांग को तो महत्व दिया जाये और पञ्जाबी बोलने वाले अधिकांश लोगों के मत की उपेक्षा की जाये। यदि पञ्जाबी बोलने वालों के लिये पञ्जाबी सूबा तर्क सङ्गत है तो अवधी, बुन्देलखण्डी और ब्रज भाषा बोलने वालों का भी पृथक् सूबा अथवा राज्य होना चाहिये। पृथक् सूबे का आधार बोली नहीं होनी चाहिये अपितु उस बोली या भाषा को बोलने वालों की इच्छा मानी जानी चाहिये। इस दृष्टि से पञ्जाबी बोलने वाले बहुमत के पृथक् सूबा न चाहने पर वह उन पर क्यों लादा जाय? पञ्जाबी सूबे की मांग पञ्जाबी भाषियों की मांग नहीं है। पञ्जाबी बोलने वालों में दो तिहाई संख्या हिन्दुओं की है। पञ्जाब के हिन्दुओं में पञ्जाबी सूबे की मांग का समर्थन करने वाले कम्युनिस्ट पार्टी के ही कुछ सदस्य हो सकते हैं अन्यथा प्रति दस हजार व्यक्तियों में हिन्दुओं में एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मिलेगा जो पञ्जाबी सूबे का समर्थक हो। पञ्जाबी भाषियों में सिखों की संख्या एक तिहाई से अधिक नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि सभी सिख पञ्जाबी सूबे की मांग के पक्ष में हैं। पञ्जाबी सूबे की मांग की हलचल केवल अकाली दल और इस आन्दोलन के केन्द्र सभी जगह गुरुद्वारे हैं। इस मांग को भाषा के आधार पर मांग नहीं कहा जा सकता, हां यह सम्प्रदायिक पृथक्ता की मांग अवश्य है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो गई कि पञ्जाब के सभी निवासियों की भाषा पञ्जाबी नहीं है अन्यथा सभी पञ्जाबी पृथक् सूबे की मांग करते।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी का स्वास्थ्य चार्ट

तिथि	नब्ज़	रक्त चाप	श्वास	वजन	अवस्था
१६-८-६१	७५	१३०/८०	१८	१६०	उत्तम
१७-८-६१	७६	१३०/८०	१८	१६०	,,
१८-८-६१	७२	१२०/७०	१२	१५८	,,
१९-८-६१	७०	१२०/७०	१२	१५.	उत्तम प्रसन्नमुख
२०-८-६१	७२	१२०/७०	१४	१५४	,, ,,
२१-८-६१	७२	१२०/७०	१४	१५२	उत्तम
२२-८-६१	७२	१२०/७०	१४	१५०	सन्तोषजनक
२३-८-६१	७२	१२०/७०	१४	१५०	,, ,,
२४.८-६१	७२	१२५/७५	१४	१४९	,, ,,
२५-८-६१	७०	१३०/८०	१४	१४८	कमजोर
२६-८-६१	७२	१३०/८०	१८	१४६	,,
२७-८-६१	७२	१२५/८०	२०	१४५	,,
२८-८-६१	७२	१२०/७०	१६	१४४	सन्तोषजनक
२९-८-६१	७२	११०/७०	१६	१४४	कमजोर
३०-८-६१	७२	१२०/८०	१६	१४३	,,

(पृष्ठ ३ का शेष)

अब अंतिम प्रश्न पर विचार करना है। ६ अगस्त को मास्टर तारासिंह ने घोषणा की थी कि यदि सरकार पञ्जाबी सूबे के गठन के प्रश्न का निर्णय पञ्जाबी 'रीजन' में निष्पक्ष ढंग से लोकमत के द्वारा करने के लिये तैयार हो तो 'अकाली दल की वर्किंग कमेटी' उस पर विचार करने के लिये तैयार है। इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि पञ्जाबी सूबे की मांग पर विचार करने का अधिकार केवल अकाली दल को है जो कट्टर सिखों की संस्था है। पञ्जाबी बोलने वाली शेष जनता का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। मास्टर जी ने प्रेस सम्वाददाताओं को विश्वास दिलाया है कि इस प्रकार लोकमत संग्रह किया जाने पर उन्हें बहुमत पाने की पूर्ण आशा है क्यों कि पञ्जाबी रीजन के जिलों में ५५ प्रतिशत संख्या सिखों की है। इस वक्तव्य से उनका साम्प्रदायिक आधार स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार के पञ्जाबी सूबे की मांग और सिख सूबे की मांग में क्या अन्तर है? यद्यपि सर्व साधारण सिख जनता से शत प्रतिशत ऐसी कट्टरता की आशा नहीं की जा सकती फिर भी क्या सम्प्रदाय के आधार पर केवल ५ प्रतिशत की अधिकता के बल पर ४५ प्रतिशत की भावना को कुचल डालना जनतन्त्रवाद है?

उपर्युक्त विवेचन से यह भली भांति स्पष्ट है कि पञ्जाबी सूबे की मांग साम्प्रदायिक है अतएव सर्वथा अवांछनीय और अनुचित है तथा इस मांग को मनवाने के लिये अनशन करना महान् दुर्भाग्य पूर्ण है। इस प्रकार तो कोई भी व्यक्ति अपनी किसी भी उचित अथवा अनुचित मांग को पूर्ण कराने के लिये अनशन करने लग जायेगा। अतः मास्टर जी को इस अनशन को समाप्त कर अपने आपको आत्म हत्या के दोष से मुक्त करना चाहिये।

"विद्यार्थी"

राष्ट्र सन्त की जय

❀ श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

स्वाधीन भारत के लिए वह सब से दुर्भाग्य पूर्ण दिन था जब भाषावार प्रान्त निर्माण का भूत भारत के शासकों पर सवार हुआ। उस दिन की सुलगाई हुई अग्नि ने अब भयंकर रूप धारण कर लिया है। किसी एक क्षेत्र में नहीं लगभग सारा ही भारत इस अग्नि की लपेट में आ चुका है। देश के प्रत्येक क्षेत्र से समझदार लोगों ने इस अग्नि के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा, बहुत कुछ कहा किन्तु देश के अदूरदर्शी नेताओं ने सब असुनी कर दी और इसे जितना हो सकता था हवा दी।

इस समय तक यह अग्नि इतनी बढ़ चुकी है कि इसकी भीषण लपटें सारे देश को भस्मसात् करने के लिए तीव्रतर होती जा रही हैं। एक ओर तो प्रान्तीयता का अभिशाप देश को हड़पने को तैयार है और दूसरी ओर भाषावाद की अग्नि। अकाली नेता मास्टर तारासिंह जैसे राष्ट्र घातक तत्वों को जिनको राष्ट्र घातक करतूतों के भाण्डे फोड़ संसद तक में हो चुके इस भाषावाद की आड़ में अपनी राष्ट्र घातक तथा साम्प्रदायिक मांग को मनवाने के लिए खुल खेलने का अवसर मिला। जब उनके अन्य सभी शस्त्र बेकार हो गये तो उन्होंने मरने की धमकी दी और पन्द्रह अगस्त आमरण अनशन की तिथि घोषित कर दी। ११ जून को अमृतसर में पञ्जाब हिन्दी रक्षा समिति के खुले अधिवेशन में समिति के अध्यक्ष स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने अपने भाषण में मास्टर तारासिंह की इस राष्ट्र घातक मांग का उल्लेख करते हुये कहा था कि 'जीवन में पञ्जाबी सूबा की मांग को सफल न होते देख कर मर कर पञ्जाबी सूबा बनाने की मास्टर तारासिंह ने सोची है, किन्तु उन्हें यह ध्यान रहे कि मरना हमें भी आता है यदि हमने जीते जी उनका पञ्जाबी सूबा नहीं बनने दिया तो अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे पर मर कर भी उन्हें पञ्जाबी सूबा बनवाने में सफल नहीं होने देंगे'।

१५ अगस्त आया जो भारत का स्वाधीनता दिवस होने से राष्ट्रीय पर्व है, जिस दिन राष्ट्र के प्रत्येक घर में घृत दीप जलाये जाने चाहिये। किन्तु घृत दीप जलाये कौन? देश भक्ति के गान गाये कौन? जो राष्ट्र भक्त हो वही न। राष्ट्रद्रोहो को तो प्रत्येक स्थिति में अपनी राष्ट्रद्रोह पूर्ण मनोवृत्ति का परिचय देना ठहरा। अतः मास्टर तारासिंह ने भी उसका खुल कर प्रदर्शन किया। और पन्द्रह अगस्त को इस राष्ट्रद्रोह पूर्ण पग को उठाया। ऐसी स्थिति में यदि मास्टर तारासिंह जी का कोई उत्तर न दिया जाता तो यह निश्चय था कि हमारे प्रधान मन्त्री अपने स्वभाव के अनुसार चाहे प्रारम्भ में वह कितनी भी दृढ़ता दिखाते एक दिन झुक अवश्य जाते। परन्तु राष्ट्र सन्त पूज्यपाद स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार मास्टर जी का उत्तर अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक १६ अगस्त से केन्द्रिय राजधानी दिल्ली में अनशन व्रत को धारण कर दिया।

स्वामी जी के इस अनशन व्रत का वही मूल्यांकन कर सकता है जो सरकार की नीति तथा देश की जानकारी रखता हो। इस अवसर पर जो दृढ़ता प्रधान मन्त्री ने दिखाई है उसके मूल में स्वामी जी का तप कार्य कर रहा है। इस अवसर पर सारे भारत की आंखें स्वामी के अनशन व्रत की ओर लगी रहीं। भारत की डगमगाती नैया की पतवार को इस आपत्ति काल में सम्भाल कर स्वामी जी ने जिस तप, त्याग तथा नैतिक बल का परिचय दिया है लेखनी उसे व्यक्त करने में सर्वथा अशक्त और असमर्थ है। पञ्जाब की एकता की रक्षा भारत की एकता रक्षा की है। पञ्जाब देश

का सीमा प्रान्त है और है भारत को प्रथम नम्बर का शत्रु बताने वाले पाकिस्तान की सीमा पर। पञ्जाब की सुदृढ़ता उसकी एकता में निहित है। और उसकी सुदृढ़ता में राष्ट्रीय सीमा की सुदृढ़ता है। पञ्जाब का विभाजन राष्ट्र में अयूबी सैनिकों के लिए आमन्त्रण के समान है और इस आपत्ति काल में, इस आमन्त्रण को रोकने के लिये दीवार बने हैं स्वामी रामेश्वरानन्द।

पञ्जाब के बटवारे का एक और भी भीषण परिणाम होगा जो भारत को बिल्कुल ही ले डूबेगा। जिससे प्रत्येक राष्ट्र भक्त को चाहे वह नेता हो वा साधारण नागरिक सावधान रहना परमावश्यक है यदि पञ्जाबी सूबा बनता है तो पञ्जाब का शेष भाग रह जाता है वह जिसे हरियाणा कह कर पुकारा जाता है। हरियाणा के लोग पर्याप्त समय से इसके लिये माँग कर रहे हैं। कभी वह बृहत्तर हरियाणा के नाम से मांगते हैं तो कभी वह बृहत्तर देहली के नाम से। इस समय भी वह लोग बिल्कुल चुप नहीं हुए हैं। अब तक उनकी यह मांग पूरी भले ही नहीं हुई किन्तु यदि पञ्जाबी सूबा बनता है तो हरियाणा स्वयं ही बन जाता है और हरियाणा के नेता फिर बृहत्तर हरियाणा मांगेंगे अवश्य जिसमें जैसा कि पहले भी वह मांग कर चुके हैं राजस्थान और उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र मिलाने की उनकी योजना है।

वास्तविकता यह है कि यह हरियाणा प्रान्त नहीं अपितु एक वर्ग विशेष के लिये एक जातीय प्राँत होगा और यह मांग यहीं तक समाप्त हो जायगी सो बात भी नहीं है अपितु यह जातीयवाद की जन्म-दाता होगी। और इसके फलस्वरूप पता नहीं आगे और कौन-कौन सूबे बनाने पड़ेंगे। यह निश्चित है कि यदि पञ्जाबी सूबे की इस माग को कठोरता के साथ दबा नहीं दिया गया तो बृहत्तर हरियाणा की मांग होते ही राजस्थान और उत्तर प्रदेश के उपर्युक्त क्षेत्रों के निवासियों को भी जो वहां बहुमत में रहते हैं रोका नहीं जा सकता और तब उनके लिए पृथक् हरियाणा प्रान्त बनाना पड़ेगा।

इस मांग की सफलता के और भी भीषण परिणाम होंगे जो भारत के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे और तब भारत न रह कर अलग-अलग भाषाई तथा जातीय राज्यों में विभक्त हो जायगा जिस प्रकार विदेशियों के आक्रमणों के समय कुछ सौ वर्ष पहले था। तब की कल्पना कौन करे कि भारत को उस समय पुनः किन-किन आपत्तियों का सामना करना पडेगा। इतना तो स्पष्ट ही है कि कहीं हरियाणा होगा तो कहीं राजपूताना, कहीं विदर्भ होगा तो कहीं झारखण्ड।

'एक ही साधे सब सधे' वाली बात है अतः इस समय मास्टर तारासिंह और उनके साथियों की जिन्नाशाही मनोवृत्तियों तथा गतिविधियों का पूर्ण कठोरता से दमन होना चाहिए। और साथ ही राष्ट्र भक्तों को स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज के अनशन व्रत से चेतना एवं स्फूर्ति प्राप्त कर सावधान हो जाना चाहिए। अन्त में परम पावन प्रभु से प्रार्थना है कि वह राष्ट्र सन्त स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज को दीर्घायुष्य प्रदान करे। प्रभु करे कि उनके तप के बल से राष्ट्रात्मा झङ्कार उठे एवं राष्ट्र का कण-कण पुकार उठे राष्ट्र सन्त की जय।

॥ समाप्त ॥

दो सनातन सत्ताएं

लेखक पं० रामचन्द्र देहलवी

श्री पण्डित जी की
तर्क युक्त, अकाट्य प्रमाणों से विभूषित
जीव प्रकृति के अनादित्व पर अपूर्व
पुस्तक। मूल्य १) मात्र

प्राप्ति स्थान :

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क देहली

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी का अनशन

❀ पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्च स्कालर

आर्य समाज के इतिहास में यह दूसरा अनशन है। इसका स्वरूप और उद्देश्य पहले अनशन से अधिक निराला और प्रभाव पहले से शत-सहस्र गुणा अधिक है।

राजनीतिक उद्देश्य—कांग्रेस मतानुयायी, पर आर्य समाज के सदस्य रहने वाले अनेक लोगों ने गत ३५ वर्ष में सतत परिश्रम किया कि आर्य समाज राजनीति में भाग न ले। पर घटना चक्र इस रीति से चलता गया कि गत ४-५ वर्ष में इस घातक नीति के कारण आर्य समाज का पञ्जाब की भूमि पर निन्द्य पराजय हुआ। उस पराजय को कांग्रेसी तो पी गए। पर आर्य जनता का हृदय अन्दर ही अन्दर तीव्र अग्नि-ज्वाला से जल रहा था। यथार्थ नेता का अभाव इस ज्वाला को ऊपर उठने नहीं देता था।

फारसी में एक लोकोक्ति है—कासा लब्रेज है। आर्य हृदयों की भी ऐसी ही गति थी। बिना भारी त्याग के राजनीतिक दलों की उद्दाम-तरङ्गों को कौन रोकता।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी का हृदय अन्य आर्यों से अधिक निर्मल हो गया। उन को सत्य का दर्शन दूसरों की अपेक्षा यथार्थ रूप में हुआ। राजनीति से कब तक पीछा छुड़ाओगे। समय आ गया। वीर-संन्यासी ने आत्म हुति का संकल्प दृढ़ कर लिया। इसका उद्देश्य राजनीति के विकृत रूप का शोधन करना था।

आर्य समाज के सिद्धान्त में ऐसा अनशन अश्रुत पूर्व है। पर इस की ज्वालाएं चारों ओर फैलीं। दश हिल उठा। उद्देश्य का लाभ हुआ। राजनीति के कुचक्र कुछ समय के लिए टल गए हैं।

इस उद्देश्य-पूर्ति के सम्मुख कौन साहसी कहेगा कि यह राजनीति में प्रवेश नहीं था। हां, यह साधारण राजनीति नहीं थी। राजनीति-क्रिया का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

ईश्वर करे श्री स्वामी जी इस दिशा में अधिक अग्रसर होकर पहली पराजय की कालिमा को धोने में भी समथ हो जाएं। जो आत्म सम्मान अनेक अनेक आर्यों ने खो दिया था, उसे उज्जवल करने का श्रेय भी लें।

घरौंडा गुरुकुल सहायता—स्वामी जी की गुरुकुल की विशेष आर्थिक सहायता होनी चाहिए, ताकि वहां कोई और भी वीर-पुरुष प्रकट हो। स्थान-स्थान पर इस गुरुकुल के लिए जनता को धन मिले। और गुरुकुल आर्य राजनीति की आसन्दी स्थापित हो।

पुनः बम्ब फैंकने पर

श्री रामेश्वरानन्द जी की दहाड़

[लेखक—मास्टर 'शान्त']

भभकियों से न कभी शेर डरा करते हैं।
बम्ब की चोट से शृंगाल मरा करते हैं!!
हूं अमर ज्योति कभी मौत नहीं है मुझको!
तुच्छ दीपक से कहीं सूर्य जला करते हैं?!

अनशन समाप्ति

प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू का आश्वासन पत्र प्राप्त होने पर पूज्य स्वामी जी ने ३१-८-६१ को ८ बज कर २१ मिनट पर अपना अनशन समाप्त कर दिया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी ध्रुवानन्द जी ने उन्हें अपने कर कमलों से औषधि युक्त मौसमी का रस पान कराया तत्पश्चात् दीवान हाल में आयोजित एक विराट् सभा में स्वामी जी के इस कार्य के प्रति आभार प्रदर्शित किया गया।

—❀—

❀ पूज्यपाद श्रीस्वामी रामेश्वरानन्द जी के अनशन के बारहवें दिन ❀

[सनूता एम० ए०, एम० ओ० एल० शास्त्री]

—❀❀❀—

मानव की जीवन लहरी में
जब उथल पुथल मच जाती है
जीवन को हरषाने पनपाने
महा पुरुष तब आते हैं ॥१॥

जब झूठ से सत्य दबा रहता
जन नेत्र पर परदा छाता है
आकुल मानवता का त्राता
तब युग पुरुष कोई आता है ॥२॥

वेदों के पारंगत रावण के
कर्मों ने धरा को कुचला था
तब राम के पावन हाथों से
रावण वध का संग्राम हुआ ॥३॥

अब मां को खण्डित करने को
जब अपने ही बढ़ उमड़ चले
गुरुओं की पावन संतति को
है राह दिखाने यति आया ॥४॥

उसे राम कहूँ या ईश्वर है
तुमको मैं क्या समझाऊंगी
पूछो इस नीले अम्बर को
धरती को सुन्दर दान दिया

आनन्द से भर दिया जगती को
"रामेश्वरानन्द" है नाम किया ॥५॥

इक राम ने युग को पलटा था
ताड़का वध भी कर डाला था
युग बदला तारका सुर को तब
कृष्ण योगी ने मारा था ॥६॥

अब तारासिंह के मत विभ्रम पर
धरती रोई अम्बर रोया
मां के टुकड़ों की गाथा से
आर्यों का अन्तस्तल रोया ॥७॥

ईश्वर में करुणा उमड़ पड़ी
राम को साथ ले चले स्वयं
मन निश्चय ही यह कहता है
आनन्द की बगिया फूलेगी ॥८॥

कफन बांध ये चले मौत की
डगर लिए मन में ज्वालाएं।
आओ वीरो सतत बढ़ें
इनकी वेदि पर शीश झुकाएं ॥९॥

हम रुकें नहीं हम झुकें नहीं
प्रलय में पले हुए हम वीर
संघर्षों में बढ़ते बढ़ते
जीवन-तरणी खेते चलते ॥१०॥

सेज शूल शय्या है जिन की
गरल-पान है जिनका जीवन
हंस हंस जूझ चले परवाने
मिले जब मृत्यु का मौन निमंत्रण ॥११॥

इनकी शक्ति को शीश झुकाएं
आज करें इनका अभिनन्दन
इनका मानस-तत्व सींचता
मातृ भूमि-मरु भू का रजकण ॥१२॥

—❀—

मेरा अनशन क्यों ?

❀ स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती
प्रधान—पंजाब हिन्दी रक्षा समिति।

दो मास पूर्व मैंने अमृतसर में घोषणा की थी कि यदि मास्टर तारासिंह पंजाब का विभाजन कराने के लिये अनशन करेंगे तो मैं पंजाब की एकता की सुरक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा ! वह समय अब आ गया है। मास्टर तारासिंह ने घोषणा की है वह १५ अगस्त से अपना अनशन प्रारम्भ करेंगे। उनका यह निश्चय प्रत्येक उस व्यक्ति के लिए चिन्ता का कारण बनेगा जो इस देश की एकता में विश्वास रखता है। मास्टर तारासिंह विचार-परामर्श और बातचीत के द्वारा अपनी माँग के औचित्य को सिद्ध करने में निष्फल रहे हैं। इसीलिए अब उन्होंने एक ऐसा मार्ग अपनाया है—जिसमें यदि वह सफल हो गए तो हमारी स्वतन्त्रता और गणतन्त्र के लिए एक भारी संकट उत्पन्न हो जायेगा। उनकी सफलता का यह अर्थ होगा कि भविष्य में हमारे मतभेद और हमारी समस्याएं आपसी बातचीत और विचार परामर्श से हल नहीं होगी—परन्तु अनशन और इस प्रकार के दूसरे बलात्मक उपायों से।

पंजाब के हिन्दुओं के लिए तो विशेषकर अब यह एक चुनौती है कि मास्टर तारासिंह के आगे घुटने टेक दें, नहीं तो अपने अस्तित्व को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाएं। उन पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए ही मास्टर तारासिंह अपने ढंग का पंजाबी सूबा बनाना चाहते हैं—वास्तव में पंजाबी सूबा तो पहले ही बना हुआ है। उन्हें हिन्दुओं की भावनाओं और आशंकाओं की कोई चिन्ता नहीं। वह यह भी नहीं चाहते कि हिन्दुओं को इस गम्भीर विषय के सम्बन्ध में, जिसका उसके भविष्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, कुछ भी कहने का कोई अधिकार हो—उनका अनशन भद्दे प्रकार का बलात्मक ढंग है अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का, जिसका परिणाम इसके सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता कि हिन्दुओं और सिक्खों में तनाव पैदा हो और उनके आपसी सम्बन्ध बिगड़ जायें। मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि यदि मास्टर तारासिंह इसमें सफल हो गए तो इससे कई नई समस्याएं उठ खड़ी होंगी— इसलिए हमें उनके इस नये प्रयत्न का पूर्णतया विरोध करना है—उसका मूल्य चाहे कुछ भी देना पड़े।

मुझे यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि अभी तक पण्डित जवाहरलाल अकाली नेता की मांग को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए और इसके लिये हम उनके आभारी हैं परन्तु पिछले १४ वर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कभी अकाली कोई आन्दोलन शुरू करते हैं तो धीरे-धीरे उनका दबाव इतना बढ़ता चला जाता है कि अन्त में सरकार किसी न किसी शक्ल में उसके आगे झुक जाती है और प्रत्येक अवस्था में पंजाब के हिन्दुओं के हितों की ही बलि दी जाती है। यह सरकार की घुटने टेक नीति का ही परिणाम है कि आज मास्टर तारासिंह को पंजाबी सूबा की यह मांग प्रस्तुत करने का साहस हुआ है, और अब यह भय भी पैदा हो रहा है कि पिछली घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो जाये। ज्यों ज्यों मास्टर तारासिंह का अनशन गम्भीर स्थिति पैदा करता जायगा सरकार पर समझौता के लिए दबाव भी बढ़ता जायगा। उस समय सम्भव है सरकार फिर झुक जाये। और एक बार फिर पंजाब के हिन्दुओं को कुर्बानी का बकरा बना दिया जाये। ऐसी स्थिति को रोकने के लिये ही मैंने अनशन करने का निश्चय किया है।

मैं स्वयं राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिये अनशन रखने के पक्ष में नहीं हूँ। परन्तु मास्टर

तारासिंह ने जो स्थिति पैदा कर दी है उसका मुकाबला करने का और कोई रास्ता नहीं। एक प्रकार से मेरा अनशन देश में बढ़ती हुई उस मनोवृत्ति के विरुद्ध है जिससे प्रभावित होकर राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिये अनशन रखे जाते हैं। मास्टर तारासिंह और उनकी विचारधारा में विश्वास रखने वालों को समझ लेना चाहिये कि अनशन द्वारा वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकते। उसका तो सब से अच्छा उपाय यह ही है कि प्रत्येक समस्या को सुलझाने के लिये बातचीत के द्वारा एक दूसरे को समझने और समझाने का यत्न किया जाये। परन्तु यदि मास्टर तारासिंह किसी असाधारण उपाय का प्रयोग करना चाहते हैं तो उसका जवाब भी उन्हें उसी उपाय से दिया जायगा।

मास्टर तारासिंह ने १५ अगस्त को अपना अनशन प्रारम्भ करने की घोषणा की है—यह दिन प्रत्येक देश भक्त भारतीय के लिये एक शुभ दिन है। इस दिन हमें कोई ऐसा काम न करना चाहिये जिससे देश में अशान्ति पैदा हो और आपसी मतभेद और भी बढ़ जाये। अतः—

मैंने यह संकल्प किया है कि मैं पंजाब की एकता और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये—बुधवार १६ अगस्त प्रातः ८ बजे अनशन शुरू करूंगा। सर्वशक्तिमान् परमात्मा में अटल विश्वास के साथ और अपने देशवासियों के आशीर्वाद से मैं इस अग्नि परीक्षा में उतर रहा हूँ—ताकि मेरा पंजाब एक रहे और मेरी सरकार उस चुनौती का दृढ़ता से मुकाबला कर सके जो अकाली नेता ने उसे दी है।

मेरा यह अनशन मेरी मृत्यु के साथ समाप्त होगा। उससे पहले उसी अवस्था में समाप्त हो सकता है यदि मुझे इस बात का विश्वास हो जाय कि सरकार अकाली साम्प्रदायिकता के आगे नहीं झुकेगी और ना ही अब पंजाब के हिन्दुओं को फिर साम्प्रदायिकता की बलिवेदी पर चढ़ाया जायगा।

—**—

पंजाबी सूबे की माँग राजनीतिक

हांगकांग के पत्र की टिप्पणी

पंजाबी सूबे के लिये मास्टर तारासिंह के आमरण अनशन पर निर्दली पत्र 'साउथ चाइना मोर्निंग पोस्ट' ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि भारत आकार में इतना बड़ा है कि उसके लिये संभवतः विकेन्द्रित प्रशासन जरूरी है—लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पूर्वी यूरोप के बालकन राज्यों की तरह उसके टुकड़े कर दिये जायें।

'सिखिस्तान के लिये अनशन' शीर्षक के अपने अग्रलेख में पत्र ने लिखा है कि राजनैतिक सिद्धान्तों के लिये उपवास करना भारत में कोई असाधारण बात नहीं लेकिन सिख नेता मास्टर तारासिंह जान बूझकर आग से खेलते जान पड़ते हैं।

पत्र ने लिखा है कि लेकिन मास्टर तारासिंह के अनशन से यह स्पष्ट है कि लोगों की भावनाओं को भड़काने के लिये ही उन्होंने पृथक पंजाबी भाषी राज्य की मांग के लिये १५ अगस्त—स्वतन्त्रता दिवस का दिन उपवास के लिये चुना है। दूसरी महत्व की बात यह है कि उन्होंने अपने प्रदर्शन का गढ़ अमृतसर जैसे पवित्र स्थान को चुना है। तीर्थ स्थान की तथा अन्य बातों की अपनी पवित्रता के अलावा यह नगर सन् १९४७ में पंजाब के उस साम्प्रदायिक हत्याकांड का केन्द्र भी था जिसमें १० हजार के करीब नर-नारियों और बच्चों की जानें गयी और ८० लाख के करीब एक पंजाब से दूसरे पंजाब में शरणार्थी रूप में जाने को विवश हुए थे।

पत्र ने लिखा है कि मास्टर जी की मांग केवल भाषा के सम्बन्ध में है ऐसा नहीं कहा जा सकता है श्री नेहरू के शब्दों में मास्टर जी की मांग एक तरह से धार्मिक अल्पमत की इच्छा को बहुमत पर थोपने का यत्न ही है।

पत्र ने लिखा है कि भाषा में जहां लोगों को एक सूत्र में बांधने की ताकत है वहां उसमें लोगों को फाड़ने की भी ताकत है। दुर्भाग्य से भारत में आज भाषा लोगों को परस्पर लड़ाने में अपनी शक्ति खर्च कर रही प्रतीत होती है। ए. ए. एन. एस.

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी का वक्तव्य

जैसा कि मैं पहले घोषणा कर चुका हूँ उसी आधार पर आज मैं अपना अनशन प्रारम्भ कर रहा हूं। मेरा अनशन किसी व्यक्ति या समुदाय के विरुद्ध नहीं है, परन्तु उस मनोवृत्ति के विरुद्ध है जिससे प्रेरित होकर मा० तारासिंह ने पंजाब का विभाजन कराने के लिए अनशन आरम्भ किया है। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि मा० तारासिंह अपने उद्देश्य में सफल हो गये तो उनके बनाये पजाबी सूबा में किसी भी हिन्दू के लिए रहना असम्भव हो जायेगा और उसके पश्चात् वहां कई ऐसी उलझनें पैदा हो जायेंगी जो आगे चल कर हमारे देश के उस भाग में भारी अव्यवस्था और अशान्ति को जन्म देंगी। पंजाब हिन्दू और सिक्ख दोनों की सम्मिलित सम्पत्ति है और इस लिए दोनों का यह अधिकार है कि वहां शान्तिमय और सुखमय जीवन व्यतीत करें। साथ ही यदि पंजाब में कोई राजनैतिक समस्या खड़ी होती है तो उसका समाधान हिन्दू और सिक्ख दोनों की रजामन्दी से ही होना चाहिए। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि पिछले १४ वर्षों से सरकार पंजाब के हिन्दुओं की लगातार अवहेलना करती आ रही है और उसने यह विचार पैदा कर दिया है कि पंजाब की समस्या केवल सिक्खों की ही समस्या है। यदि वह सन्तुष्ट रहें तो फिर किसी और के विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। सरकार की इस नीति ने ही मा० तारासिंह को पंजाबी सूबा की मांग प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन दिया है उनका इस बात पर जोर देना कि सिक्ख यह सूबा मांगते हैं इसलिए वह अवश्य मिलना चाहिए और इस विषय में हिन्दुओं की भावनाओं और आशंकाओं को जानने की आवश्यकता नहीं हमारी इस धारणा की सम्पुष्टि करता है कि मा० तारासिंह के पंजाबी सूबा में हिन्दुओं के लिए कोई स्थान न होगा। यह एक ऐसी स्थिति है जिसका परिणाम अत्यन्त गम्भीर और शोचनीय हो सकता है। अकालियों की खातिर सरकार ने इस समय तक हिन्दुओं के साथ जो सौतेली मां जैसा व्यवहार किया है उसे वह आज तक तो सहन करते आये है अब आगे सहन नहीं करेंगे। पिछले १४ वर्षों के इतिहास की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए ही मैंने यह गम्भीर पग उठाने का निश्चय किया है। यदि मा० तारासिंह यह समझते हैं कि अनशन करके वह अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हो सकते हैं तो वह स्वप्नों की दुनियां में रहते हैं। अभी ऐसे बहुत व्यक्ति विद्यमान हैं जिन्होंने यह दृढ़ निश्चय कर रखा है कि पंजाब की एकता और स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए वे अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे।

मैं अपना अनशन इस आशा के साथ प्रारम्भ कर रहा हूँ कि मास्टर तारासिंह को शीघ्र ही अपने इस निश्चय की निरर्थकता का आभास हो जाए और सरकार भी दबाव में आकर हिन्दुओं की भावनाओं के विपरीत कोई अनुचित निर्णय न कर बैठे ?

मैं अपने देशवासियों विशेषतः हिन्दू और सिक्ख दोनों से प्रार्थना करूंगा कि प्रत्येक अवस्था में शान्त रहें। मेरा यह अनशन व्यर्थ नहीं जायेगा। यदि इसके फल स्वरूप मेरी मृत्यु हो गई तो वह उन लोगों की सोई हुई आत्मा को जगा देगी जो इस देश की जनता के भाग्य से खिलवाड़ कर रहे हैं। यदि मा० तारासिंह अपना अनशन शीघ्र ही समाप्त कर देते हैं तो देश एक अत्यन्त शोचनीय परिस्थिति में फंसने से बच जायेगा। मैं पुनर्जन्म लेकर अपनी मातृभूमि की सेवा करूंगा। इसलिए मेरे अनशन के विषय में किसी को भी कोई चिन्ता न होनी चाहिए।

अन्त में मैं उस सर्वशक्तिमान् प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह इस अग्नि परीक्षा में मुझे सफल करें और देश की स्वतन्त्रता और पंजाब की एकता बनाये रखने में देशवासियों को शक्ति प्रदान करें।

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज की जीवन झांकी

❀ श्री धर्मेन्द्र शास्त्री-व्याकरणाचार्य

मान्यवर पाठक वृन्द ! परम पिता परमात्मा की असीम कृपा से मुझे यह परम सौभाग्य प्राप्त है कि मैंने पूज्यपाद श्री रामेश्वरानन्द जी महाराज के चरण कमलों में कुछ दिन निवास कर आपके मुखारविन्द से जीवन शिक्षा ग्रहण की है।

मैं सन् १९३८ में वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। मेरे ग्राम में श्री स्वामी जी महाराज का प्रायः आना जाना रहता था, क्योंकि श्री स्वामी जी उन दिनों खुर्जा निवास करते थे जहां से मेरा ग्राम केवल ३ मील दूर है। पूज्य पिता जी से कई बार मेरे सम्बन्ध में आप संस्कृत शिक्षा की ओर डालने के लिये वार्ता कर चुके थे। मेरे अन्य सहपाठियों के विषय में भी की थी जिनमें एक आर्य प्रतिनिधि सभा के महोपदेशक के पुत्र भी थे। किन्तु पूज्य पिता जी ने मुझे श्री स्वामी जी महाराज को सौंप दिया। उस समय से लेकर आज तक भी मेरा निकटतम घनिष्ट सम्बन्ध श्री स्वामी जी महाराज से रहा है। अतएव कुछ मुख्य २ घटनाएं आपके जीवन की उद्धृत करता हूँ, जिससे श्री स्वामी जी महाराज का चमत्कृत जीवन जनता के समक्ष आ सके।

इस से पूर्व आपको यह जान लेना चाहिये कि पूज्य श्री स्वामी जी महाराज बाल ब्रह्मचारी, वेद, दर्शन, उपनिषद्, व्याकरण आदि के उच्चकोटि के विद्वान् हैं। आपने अनेक बार यौगिक चमत्कार दिखाये, शास्त्रार्थ किये।

१—एक बार जब आप अपने गुरु पूज्यपाद श्री स्वामी भीष्म जी महाराज के चरणों में दिल्ली निवास करते थे तो गुरु जी के साथ फर्रुखनगर जिला मेरठ जाना पड़ा। दुर्भाग्यवश यमुना-पुल पर ही तांगा टूट गया। इनके साथ लगभग ढाई मन पक्का भार पुस्तक आदि का था। जब अन्य कोई चारा न दिखाई दिया तो श्री स्वामी जी ने वर्षा काल में उस भार को सिर पर उठाया और ऊपर छतरी लगा कर गुरु जी के पीछे २ दौड़ते हुए सकुशल फर्रुखनगर पहुंच गये। इससे ज्ञात हुआ कि श्री स्वामी जी महाराज ढाई मन तक का भार स्वयं ले जा सकते हैं।

२—एक बार देहली में श्री स्वामी जी महाराज अपने गुरु जी के साथ होटल में भोजन करने गये। गुरु जी लघुशंकार्थ नाली पर बैठ गये। श्री स्वामी जी महाराज ने होटल में देखा कि एक मस्त साधु सुलफे की चिलम पी रहा है। श्री स्वामी जी ने पंडित से कहा—भाई श्री स्वामी जी महाराज (श्री भीष्म जी) धूम्रपान से बहुत चिढ़ते हैं। इस साधु का धूम्रपान बन्द करा दो। यह सुनकर साधु ने गालियां देना प्रारम्भ किया। और कहने लगा—"उठाकर ३ मील दूर फेंक दूंगा, तुझे और तेरे स्वामी को आया कहीं का स्वामी।" स्वामी जी महाराज को यह सुनकर क्रोध आया और साधु को कौली में भर कर सड़क पर दे मारा। गुरु जी के कहने पर उसे छोड़ दिया।

३—हैदराबाद सत्याग्रह में जब अपने ७२ साथियों के जत्थेदार बन कर पहुंचे तो जेल में आप अपने साथियों को नित्य उपदेश दिया करते और उनको उत्साहित करते, कि वीरो ! कहीं हकीकत और वैरागी, प्रताप और शिवा की शान को बट्टा न लगा देना अपने पूर्वजों की शान रखना। परिणाम स्वरूप सरकार के बार २ क्षमा-याचनार्थ प्रयत्न असफल रहते। अतएव श्री स्वामी जी को शारीरिक दण्ड नित्य प्रति मिलता कि सर पर रखकर पत्थर

ढोओ। और इच्छा न होते भी अपने शरीर भार से भी दुगुने तक भारी पत्थर प्रसन्न होकर ढोये। और हड्डियां भी चुन २ कर सिर पर रखकर ढोईं।

४—श्री स्वामी जी महाराज ने चंडीगढ़ में हिन्दी आन्दोलन में जो कष्ट सहन किये। उन्हें कौन हिन्दी प्रेमी भुला सकता है। एक बार श्री स्वामी जी को विधान भवन के बाहर सड़क से पुलिस ने हटाना चाहा और ५-६ इंस्पेक्टर और जवान आपको बरबस उठाकर मोटर में डालना चाहते थे। किन्तु श्री स्वामी जी के हाथ एक तार का खम्भा लग गया। उसे पकड़ लिया। सभी जवानों ने प्रयत्न किया किन्तु रस्सी की तरह खींचने पर भी स्वामी जी को खंभे से अलग न कर सके। कई बार कड़कती धूप में तपते हुये तारकोल की सड़कों पर सर के बल पैर पकड़ कर पुलिस ने घसीटा। परिणाम स्वरूप श्री स्वामी जी महाराज के आगे के दो दांत भी टूट गये।

५—हैदराबाद सत्याग्रह में श्री स्वामी जी महाराज यह व्रत करके गये थे, कि मैं केवल मुट्ठी भर चने दिन भर खाऊंगा। अन्य कुछ भोजन नहीं करूंगा। जेल अधिकारियों ने पर्याप्त प्रयत्न किया किन्तु आप न माने। अपने वचन और प्रतिज्ञा पर डट जाना तो स्वाभाविक आपका विशेष गुण है। डाक्टर ने अपने सामने रोटी खाने के लिये विवश किया। क्योंकि आप कहते थे मुझे कोई भोजन भी पच नहीं सकता। देखते २ आपने २ रोटियां ज्वार की बनी खाई ऊपर से पानी पिया। डाक्टर ने समझा कि ये बहाना बनाते हैं। श्री स्वामी जी ने अपना यौगिक चमत्कार दिखाया और वायु भक्षण करके थोड़ी ही देर पश्चात् सब भोजन और पानी बिना कष्ट मुखद्वार से ही निकाल दिया। डाक्टर लोगों ने भी विवश होकर चने की दाल देना प्रारंभ किया। श्री स्वामी जी महाराज का सदा ही यह व्रत रहा है कि जिस पर अड़ गये, कोई शक्ति नहीं जो उससे हटा सके।

६—शास्त्रार्थ—श्री स्वामी जी महाराज ने अनेक सनातन धर्मी पंडितों संन्यासियों, जैनियों एवं राधा स्वामियों से शास्त्रार्थ किये, जिनमें सर्वत्र सफलता [illegible]। स्वामी जी का आधार केवल वेद है। समस्त उपदेश भी आपके वेदमन्त्रों के प्रमाणों के साथ ही होते हैं।

—एक बार गाजियाबाद के पास बमैटा ग्राम में एक बहुत उच्चकोटि के विद्वान् महात्मा ने आर्य समाज को चैलेंज किया। आप उसे स्वीकार कर वहां पहुंचे। आपके प्रमाणों और युक्तियों से प्रभावित होकर विपक्षी को अपनी पराजय स्पष्ट स्वीकार करनी पड़ी।

—खुर्जा के जैन मन्दिर में आपने जैनियों के साथ शास्त्रार्थ किया जिसमें आपकी विजय हुई।

—कोल जिला करनाल में प्रसिद्ध सनातनी पंडित श्री माधवाचार्य जी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। आपने विजय प्राप्त की।

—जूंडला जिला करनाल, दीवानहाल के तत्वावधान में दिल्ली में, होडल जिला गुडगांव में तथा अन्य भी कई स्थानों पर आप के शास्त्रार्थ सनातन धर्मी और जैनियों के साथ हुए।

उस्मानपुर (खुर्जा) में एक बार राधास्वामियों के परम गुरु जी महाराज पहुँचे जहां आप वहां की ग्रामीण जनता को यह दृढ़ विश्वास दिलाते थे कि भगवान् के साक्षात् दर्शन हमारी संगत से कुछेक मिनटों में हो जाते हैं। और आप जानते हैं कान में अंगुली डाल, आंखें बन्द करके, काकासन से बैठने पर दर्शन होने बताते हैं और इस अवस्था में कानों के अन्दर जो स्वाभाविक ध्वनि सुनाई जाती है और आंखों में प्रकाशसा दिखाई देता है उसे ही वे भगवान् का प्रकाश और आवाज बताते हैं।

मेरे ग्राम के अनेक व्यक्तियों का वहां सम्बन्ध है। और मेरा ग्राम शतप्रतिशत कट्टर आर्य है तो मेरे ग्राम वासियों की प्रार्थना पर श्री स्वामी जी उस्मानपुर पहुँचे। और वहां जाकर उस ग्राम के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष श्री स्वामी जी महाराज का राधास्वामियों के परम गुरु जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि

ढोओ। और इच्छा न होते भी अपने शरीर भार से भी दुगुने तक भारी पत्थर प्रसन्न होकर ढोये। और हड्डियां भी चुन २ कर सिर पर रखकर ढोईं।

४—श्री स्वामी जी महाराज ने चंडीगढ़ में हिन्दी आन्दोलन में जो कष्ट सहन किये। उन्हें कौन हिन्दी प्रेमी भुला सकता है। एक बार श्री स्वामी जी को विधान भवन के बाहर सड़क से पुलिस ने हटाना चाहा और ५-६ इंस्पेक्टर और जवान आपको बरबस उठाकर मोटर में डालना चाहते थे। किन्तु श्री स्वामी जी के हाथ एक तार का खम्भा लग गया। उसे पकड़ लिया। सभी जवानों ने प्रयत्न किया किन्तु रस्सी की तरह खींचने पर भी स्वामी जी को खंभे से अलग न कर सके। कई बार कड़कती धूप में तपते हुये तारकोल की सड़कों पर सर के बल पैर पकड़ कर पुलिस ने घसीटा। परिणाम स्वरूप श्री स्वामी जी महाराज के आगे के दो दांत भी टूट गये।

५—हैदराबाद सत्याग्रह में श्री स्वामी जी महाराज यह व्रत करके गये थे, कि मैं केवल मुट्ठी भर चने दिन भर खाऊंगा। अन्य कुछ भोजन नहीं करूंगा। जेल अधिकारियों ने पर्याप्त प्रयत्न किया किन्तु आप न माने। अपने वचन और प्रतिज्ञा पर डट जाना तो स्वाभाविक आपका विशेष गुण है। डाक्टर ने अपने सामने रोटी खाने के लिये विवश किया। क्योंकि आप कहते थे मुझे कोई भोजन भी पच नहीं सकता। देखते २ आपने २ रोटियां ज्वार की बनी खाई ऊपर से पानी पिया। डाक्टर ने समझा कि ये बहाना बनाते हैं। श्री स्वामी जी ने अपना यौगिक चमत्कार दिखाया और वायु भक्षण करके थोड़ी ही देर पश्चात् सब भोजन और पानी बिना कष्ट मुखद्वार से ही निकाल दिया। डाक्टर लोगों ने भी विवश होकर चने की दाल देना प्रारंभ किया। श्री स्वामी जी महाराज का सदा ही यह व्रत रहा है कि जिस पर अड़ गये, कोई शक्ति नहीं जो उससे हटा सके।

६—शास्त्रार्थ—श्री स्वामी जी महाराज ने अनेक सनातन धर्मी पंडितों संन्यासियों, जैनियों एवं राधा स्वामियों से शास्त्रार्थ किये, जिनमें सर्वत्र सफलता प्राप्त की है। स्वामी जी का आधार केवल वेद है। समस्त उपदेश भी आपके वेदमन्त्रों के प्रमाणों के साथ ही होते हैं।

—एक बार गाजियाबाद के पास बमैटा ग्राम में एक बहुत उच्चकोटि के विद्वान् महात्मा ने आर्य समाज को चैलेंज किया। आप उसे स्वीकार कर वहां पहुंचे। आपके प्रमाणों और युक्तियों से प्रभावित होकर विपक्षी को अपनी पराजय स्पष्ट स्वीकार करनी पड़ी।

—खुर्जा के जैन मन्दिर में आपने जैनियों के साथ शास्त्रार्थ किया जिसमें आपकी विजय हुई।

—कोल जिला करनाल में प्रसिद्ध सनातनी पंडित श्री माधवाचार्य जी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। आपने विजय प्राप्त की।

—जूंडला जिला करनाल, दीवानहाल के तत्वावधान में दिल्ली में, होडल जिला गुडगांव में तथा अन्य भी कई स्थानों पर आप के शास्त्रार्थ सनातन धर्मी और जैनियों के साथ हुए।

उस्मानपुर (खुर्जा) में एक बार राधास्वामियों के परम गुरु जी महाराज पहुँचे जहां आप वहां की ग्रामीण जनता को यह दृढ़ विश्वास दिलाते थे कि भगवान् के साक्षात् दर्शन हमारी संगत से कुछेक मिनटों में हो जाते हैं। और आप जानते हैं कान में अंगुली डाल, आंखें बन्द करके, काकासन से बैठने पर दर्शन होने बताते हैं और इस अवस्था में कानों के अन्दर जो स्वाभाविक ध्वनि सुनाई जाती है और आंखों में प्रकाशसा दिखाई देता है उसे ही वे भगवान् का प्रकाश और आवाज बताते हैं।

मेरे ग्राम के अनेक व्यक्तियों का वहां सम्बन्ध है। और मेरा ग्राम शतप्रतिशत कट्टर आर्य है तो मेरे ग्राम वासियों की प्रार्थना पर श्री स्वामी जी उस्मानपुर पहुँचे। और वहां जाकर उस ग्राम के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष श्री स्वामी जी महाराज का राधास्वामियों के परम गुरु जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि

उन सभी प्रतिष्ठित जनों ने सब जनता को कहा कि यह तो सब ढोंग है। जब परम गुरुजी महाराज को ही आज तक भगवान् के दर्शन नहीं हुए तो हमें क्या दर्शन करा सकेंगे।

—इसी प्रकार कोहड़ जिला करनाल में भी राधास्वामियों के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ और वैदिक धर्म की पताका आपने लहराई।

७—आर्य समाजी कई पण्डितों और महात्माओं से भी कई विषयों पर आपका मतभेद है। मुझे अच्छी प्रकार स्मरण है जिस समय मैं श्री चरणों में खुर्जा सुनारों की बगीची पर पढ़ता था, वैदिक संस्थान का वेदभाष्य प्रकाशित हुआ। श्री स्वामी जी महाराज ने सैकड़ों स्थलों पर अर्थ की अशुद्धि देख संस्थान को लिखना प्रारम्भ किया जिस पर वर्षों दोनों ओर से पत्र-व्यवहार तथा प्रश्नोत्तर चलते रहे। अन्त में उनको श्री स्वामी जी महाराज के सामने चुप होना पड़ा। इसी प्रकार अन्य भी कई विद्वान् हैं जिनमें पूज्य पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी शास्त्रार्थ महारथी, तथा महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज विशेष उल्लेखनीय हैं। जिनके साथ बड़े लम्बे चौड़े पत्र व्यवहार चलते रहे हैं। संक्षेप में इतना कथन पर्याप्त होगा, कि श्री स्वामी जी महाराज की वेद के अतिरिक्त यदि किसी में श्रद्धा है तो वह हैं जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज जिनके एक २ अक्षर को वेदानुकूल अतएव सत्य मानते हैं। इसी आधार पर आपने अनेकों पुस्तकें लिखी हैं जिनमें "महर्षि दयानन्द और आर्य-समाजी पण्डित" विशेष उल्लेखनीय है। पाठक उसे पढ़कर देखें, पता चलेगा कि कुछ पण्डितों ने ऋषि के सिद्धान्तों का किस प्रकार खून किया है।

मुख्य सिद्धान्त

१—आप वृक्षों में जीव है, के प्रबल समर्थक हैं।

२—आप अकाल मृत्यु बड़ी अकाट्य युक्तियों से सिद्ध करते हैं।

३—मुक्ति से पुनरावृत्ति नाम की आपने पुस्तक लिखी है जिसमें नामानुसार प्रतिपादन किया है।

४—आप भाग्य नाम की कोई वस्तु नहीं मानते केवल कर्मफल को ही मानकर ज्ञानपूर्वक कर्म करने की प्रेरणा देते हैं।

५—ऋषि दयानन्द जी की भांति अपना स्वार्थ त्याग संसार के कल्याण की भावना से आप ओतप्रोत हैं।

अन्त में इतना कथन पर्याप्त होगा कि श्री-स्वामी जी महाराज, अद्वितीय विद्वान्, योगी, कर्मठ, निर्भीक समाज सुधारक, संस्कृत और हिन्दी भाषा के अत्यन्त प्रेमी, महर्षि के अनन्य भक्त, बालब्रह्मचारी प्राणदायक शक्ति फूंकने वाले ओजस्वी वक्ता आदि गुणों से ओत-प्रोत आधुनिक जगत् में परम आदरणीय एवं अनुकरणीय हैं आपका राष्ट्र, धर्म और जाति के प्रति अत्यन्त उपकार है। समस्त राष्ट्र की जनता मंगलमय भगवान् से आपकी चिरायु की प्रार्थना करती है। आपका महान् त्याग, तप और बलिदान भारत की जनता के लिए कल्याण मन्त्र होगा।

—❀❀—

प्रसिद्ध सनातन धर्मी नेता श्री भक्त रामशरणदास जी पिलखुवा वालों का वक्तव्य

मेरी प्रत्येक सनातन धर्मी मात्र से प्रार्थना है कि वह पूज्य श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज के अनशन व्रत का समर्थन करे। तथा तन, मन, धन से सहायता करें। यदि इस समय सनातन धर्मी कुम्भकर्णी निद्रा में पड़े सोते रहे और उन्होंने स्वामी जी के अनशन व्रत पर ध्यान नहीं दिया, और पूर्णतया सहयोग नहीं दिया तो यह एक बहुत बड़ी एतिहासिक भूल होगी। पूज्य स्वामी जी का अनशन अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं है, अपितु समस्त हिन्दु जाति, हिन्दु सभ्यता संस्कृति हिन्दु धर्म और हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए किया जा रहा है आज का समय घोर विपत्ति का समय है। इस समय समस्त हिन्दु मात्र को एक होकर और पारस्परिक भेद-भाव भुला कर हिन्दु सहायता संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए जुट जाना चाहिए।

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज की जय

❀ सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी.
डी. बी. कालिज गोरखपुर

वीरता का विकास नाना प्रकार से होता है। कभी तो उसका विकास लड़ने मरने में, खून बहाने में, तलवार तोप के सामने जान गंवाने में होता है, कभी प्रेम के मैदान में उसका झंडा खड़ा होता है, कभी जीवन के गूढ़ तत्व और सत्य की तलाश में बुद्ध और स्वामी दयानन्द जैसे व्यक्ति विरक्त होकर वीर हो जाते हैं। इस प्रकार कभी किसी आदर्श पर और कभी किसी आदर्श पर वीरता अपना फरहरा फहराती है। वीरता एक प्रकार का इलहाम या दैवी प्रेरणा है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक नया कमाल नजर आया, एक नया जमाल पैदा हुआ, एक नई रौनक, एक नई प्रभुता संसार में छा गई। वीरता देश काल के अनुसार संसार में जब कभी प्रकट हुई तभी एक नया स्वरूप लेकर आई जिसके दर्शन करने से ही सब लोग चकित हो गये। कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे सिर झुका दिया।

आज पंजाब में पाकिस्तान की प्रेरणा से मास्टर तारासिंह ने जो साम्प्रदायिकता को उभाड़ा है और पंजाबी भाषा के नाम पर सिख राज्य की कल्पना की है और उसके लिए अनशन तक का अनुचित मार्ग अवलंबन किया है उसका मुंह तोड़ उत्तर यदि किसी ने दिया है तो वह है आर्य समाज—और आर्य समाज के पूज्य नेता श्री रामेश्वरानन्द जी संन्यासी।

आर्य समाज एक सत्य और अहिंसा में विश्वास रखने वाली धार्मिक संस्था है। इसका प्रारम्भ से लेकर अब तक का इतिहास सच्चाई वीरता, और बलिदान का इतिहास है। देश और राष्ट्र पर धर्म और जाति पर जब जब संकट आया है, आर्य समाज में उत्साह और बलिदान की लहरें उठने लगती हैं और एक एक आर्य समाजी मरने और मिटने को, तैयार हो जाता है। इसी भावना से भरे वीर स्वामी रामेश्वरानन्द ने पंजाब की दुर्दशा की कल्पना की मास्टर तारासिंह के शर्मनाक अनशन द्वारा उत्पन्न विभाजित पंजाब द्वारा भारत की सुरक्षा को खतरे में पाया। राजनैतिक नेताओं एवं पण्डित नेहरू को कुछ ढीला ढाला देखा तो उन्होंने राष्ट्र की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। यदि मैं दूसरे शब्दों में कहूं तो प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू के इन शब्दों की सत्यता चरितार्थ करने के लिए कि राजनैतिक या भाषा सम्बन्धी प्रश्नों का इलाज अनशन नहीं—स्वामी जी ने अपने जीवन को खतरे में डाल दिया। उन्होंने बतलाया कि यदि किसी राजनैतिक प्रश्न के हल के लिए एक व्यक्ति अनशन कर सकता है तो उसका विरोधी भी तो अनशन कर ही सकता है। ऐसे समय में क्या किया जा सकता है?

मास्टर तारासिंह का इतिहास देखने से पता चलेगा कि इस व्यक्ति ने प्रारम्भ से लेकर अब तक पंजाब में साम्प्रदायिकता के विकास का प्रयत्न किया है। यह वही तारासिंह है जिसने पंजाब में पण्डित नेहरू के लिए नारे लगवाये थे 'खांडा गज्जू और नेहरू भज्जू'' यह वही तारासिंह है जिसने 'धोती कुर्ता जमुना पार' का नारा लगवाया था और इस प्रकार हिन्दुओं को पंजाब से भगाकर 'सिखिस्थान' की मांग को पूरा करने का उपाय किया था। आज भी इस अनशन के पीछे यही भावना कार्य कर रही है। तारासिंह के नेतृत्व में अकाली दल ने देश में जो घृणित, गद्दारी और

देश के प्रति विद्रोहात्मक कार्यवाही शुरू कर रखी है वह पंजाब के लिये ही नहीं राष्ट्र के लिए घातक होगी और स्वार्थों में डूबे हुए अपना उल्लू सीधा करने वाले राजनैतिक दल स्वतन्त्र पार्टी, प्रजा समाजवादी दल, देशद्रोही कम्युनिस्ट पार्टियां प्रच्छन्न और स्पष्ट रूप में इनका समर्थन कर सकती हैं। परन्तु अपने स्वार्थों की परवाह न करने वाली राष्ट्र और देश की रक्षा के लिये कटिबद्ध आर्य समाज निश्चय ही स्वामी रामेश्वरानन्द के रूप में तारा सिंह के अनशन का विरोध करेगा और राष्ट्र के लिये उनका बलिदान होने पर एक नहीं सैंकड़ों रामेश्वरानन्द तैयार होंगे।

पाठको, याद रखिए बलिदान—सच्चे कार्यों के लिये किया गया बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। गेहूं या जौ का एक बीज जब अपने को मिट्टी में मिला देता है, अपने को नष्ट कर देता है तभी उस स्थान पर लहलहाते हुए सैंकड़ों बीज उत्पन्न होते हैं। जब दीपक की बत्ती अपने को जलाकर राख कर देती है तभी अंधेरे में भटकते व्यक्तियों को मार्ग प्रदर्शन मिलता है। आज स्वामी रामेश्वरानन्द जी का यह बलिदान न केवल पंजाब की रक्षा करेगा अपितु राष्ट्र के उद्धार के लिए भी यह आगे बढ़ेगा और आर्य समाज का एक एक बच्चा राष्ट्र रक्षा के लिए उनके चरण चिह्नों पर चलने को तत्पर रहेगा।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेतत् सत्यमंगिरः।

बलिदान—सच्चे कार्यों, उद्देश्यों और लक्ष्यों के लिये बलिदान कभी व्यर्थ नहीं होता।

पंजाब के लोगों, सावधान हो जाओ, पन्थ के खतरे से अपने को बचाओ। देश की राष्ट्र भक्त जनता आज तुम्हारी ओर नजर लगाये हुए है। यदि स्वामी रामेश्वरानन्द की मृत्यु हो जाती है तो यह राष्ट्र के लिए कलंक होगा। पर मुझे तो विश्वास है कि उनकी आत्मा अमर है। यदि उन्होंने राष्ट्र के लिए अपने भौतिक तन का निर्वाण भी कर दिया तो भी उनकी आत्मा हमको प्रेरणा देगी और उस वीर के चरण चिह्नों पर चलते हुए न केवल पंजाब अपितु राष्ट्र के सच्चे नागरिक देश और जाति के लिए मर मिटने को प्रस्तुत रहेंगे।

अन्त में हम आर्यसमाज की ओर से उनके अनशन के प्रति अपनी श्रद्धा, विश्वास और सद्भावना प्रकट करते हैं। और भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें शक्ति दे, बल दे, सामर्थ्य दे जिससे वे अधिक से अधिक समय तक अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा कर सकें। साथ ही हम भगवान् से यह भी प्रार्थना करते हैं कि दूसरे राष्ट्रों से प्रेरणा प्राप्त कर राष्ट्र द्रोह का कार्य करने वाले, साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित करने वाले मास्टर तारासिंह को सद्बुद्धि करे कि वे अपने इस कृत्य से अपने को मुक्त कर राष्ट्र निर्माण के कार्य में अपने को लगायें जिससे 'हिन्दू-सिख एकता बढ़े'। (हिन्दू और सिख यह अलग जातियां नहीं परन्तु इनको अलग करने का प्रयत्न समाप्त हो।)

अन्त में हम स्वामी जी को पुनः विश्वास दिलाते हैं कि भारत की कोटि-कोटि जनता की दृष्टि आप पर है। आप अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल होंगे। तथा वह दिन अवश्य आयेगा जब भारत के नर नारी आपकी वीरता का बखान करते हुये एक स्वर से चिल्लायेंगे 'वीर स्वामी रामेश्वरानन्द की जय' और उसकी प्रतिध्वनि में हिमालय की चोटी से लेकर कन्याकुमारी तक एक आवाज आयेगी—'आर्यसमाज की जय' और भारत माता की जय'।

वेदप्रकाश के सम्बन्ध में

जिन ग्राहकों ने अपना वार्षिक मूल्य ३) अभी तक नहीं भेजा है उनसे निवेदन है कि विशेषांक की थोड़ी ही प्रतियां शेष हैं आज ही अपना वार्षिक मूल्य भिजवादें अन्यथा निराश होना पड़ेगा। तथा अगले वेदप्रकाश के अंक भेजने बन्द कर दिये जायेंगे। मनिआर्डर करते समय अपना पता तथा ग्राहक संख्या कूपन पर अवश्य लिखें। —व्यवस्थापक

पंजाब की भाषासमस्या और आर्यसमाज का दृष्टिकोण

❀ श्री प्रो० भवानीलाल जी भारतीय
एम० ए० R. E. S.

पंजाब में भाषा का प्रश्न विगत कई वर्षों से एक ज्वलन्त समस्या बना हुआ है। वस्तुतः इस प्रश्न को जान बूझ कर जटिल बनाने के प्रयास हो रहे हैं और विभाजनकारी राजनैतिक प्रवृत्तियों का इसके पीछे हाथ है। भारत की सरकार ने अपने विधान में भाषा सम्बन्धी मामलों में प्रत्येक व्यक्ति को छूट दे रक्खी है। और अब तो यह भी जोरों से कहा जा रहा है कि अल्प संख्यकों को भाषा सम्बन्धी सभी सुविधायें दी जायें।

पंजाब में हिन्दी और पंजाबी बोलने वाले लोग बसते हैं। जहां जालन्धर और अम्बाला क्षेत्र में पंजाबी बोलने और समझने वालों का अधिक्य है वहां हरियाणा प्रान्त के लोगों की मातृभाषा हिन्दी है। ऐसी स्थिति में पंजाब को जो सीमा का प्रान्त है, द्विभाषी राज्य स्वीकार किया जाना चाहिए। आर्यसमाज भी यही कहता है। भाषा के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की जबरदस्ती के हम विरोधी हैं। यदि पंजाब के हिन्दू हिन्दी को अपनी भाषा कहते हैं तो इसमें क्या अनुचित है? माना कि वे अपने घरों में पंजाबी बोलते हैं। परन्तु पंजाबी तो एक बोली है। उसे भाषा का स्थान नहीं दिया जा सकता। भाषा विज्ञान के विद्वानों से यह अविदित नहीं है कि भाषा, विभाषा और बोली इनमें प्रार्थक्य और अन्तर होता है। जहां भाषा के लिए अंग्रेजी शब्द Language है वहां बोली के लिए Dialect, हिन्दी भाषा है और अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी और पंजाबी आदि बोलियां। यह कहा जा सकता है कि पंजाबी में भी साहित्य है और वह उस दृष्टि से प्रगति कर रही है। साहित्य तो अवधी और ब्रज तथा राजस्थानी में भी हैं, परन्तु वे भाषा का स्थान नहीं प्राप्त कर सकतीं। उनके बोलने वाले करोड़ों व्यक्ति उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में रहते हैं, परन्तु वहां भाषा के नाम पर बोली को प्राथमिकता नहीं दी जाती।

पंजाब में भाषा के नाम पर एक साम्प्रदायिक राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। यदि भाषा के नाम पर वर्तमान पंजाब का विभाजन होता है और उसका हिन्दी भाषी क्षेत्र पृथक् कर दिया जाता है तो स्पष्ट है कि मास्टर तारासिंह का अभीष्ट सिख सूबा बन जाता है। उस सिख बहुल प्रान्त में अल्प संख्यक हिन्दुओं की क्या दशा होगी, उसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। गोस्वामी जी ने कहा है—'जिमि दसनन्ह बिच जीभ बिचारी' वही गति हिन्दुओं की होगी।

अकसर यह कहा जाता है कि भाषा के प्रश्न को धर्म के साथ न जोड़ा जाय। बात पर्याप्त अंशों में सत्य है। सिख पंजाबी का आग्रह तो करते हैं परन्तु अधिकांश गुरुओं ने हिन्दी को ही अपने उपदेश का माध्यम बनाया था। गुरु नानक हिन्दी के भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा में आते हैं। गुरु गोविन्दसिंह का ब्रजभाषा में काव्य रचना करना सर्व प्रसिद्ध बात है। सिखों के आदि ग्रन्थ में नामदेव, कबीर, रैदास, मीराबाई, आदि हिन्दी कवियों की ही कवितायें संग्रहीत हुई हैं। फिर धर्म की दृष्टि से पंजाबी का आग्रह क्यों? पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार के शब्दों में जो गुरुमुखी है (गुरु के मुख से निःसृत वाणी है) उसे हम गुरुमुखी ही रहने दें, चेलामुखी न बनावें। परन्तु एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का हिन्दी भाषा से गहरा सम्बध रहा है। हिन्दी ने राष्ट्र की परम्परा-

गत उच्च भावनाओं को सदा अभिव्यक्ति प्रदान की है। तभी तो जन्म से गुजराती भाषा भाषी और व्यवहार में संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने हिन्दी को आर्य भाषा का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया और उसका ज्ञान प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए ठहराया। हिन्दी ने राष्ट्रीय स्वाभिमान को जाग्रत किया देश की कोटि २ जनता की भावना और अनुभूति हिन्दी के माध्यम से ही व्यक्त हुई। उस के प्रति, जो राष्ट्र की सर्वमान्य भाषा स्वीकार कर ली गई है। पञ्जाब के सिखों की इतनी विरक्ति क्यों? समाचार पत्रों में यह पढ़ कर आश्चर्य हुआ कि पञ्जाब के नगरों में मोटरों पर हिन्दी में नाम और अंक लिखने वालों को दण्डित किया गया है। इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है कि अंग्रेजी तो हमारे लिए सह्य हो और उसे अनिश्चित काल तक के लिए रखने का आग्रह प्रधान मन्त्री तथा देश के राज्यों के मुख्य मन्त्रियों के द्वारा हो और देश की राष्ट्रभाषा के प्रति एक राज्य में ऐसा अपमानपूर्ण व्यवहार हो। हमारी यह मानसिक दासता किस सीमा तक पहुँच गई है। इसका यह सब से बड़ा उदाहरण है।

पञ्जाब के विषय में आर्यसमाज का दृष्टिकोण नितान्त स्पष्ट है। वहां के आर्यसमाजी पञ्जाब के विभाजन के विरुद्ध हैं। विरुद्ध तो नेहरू भी हैं, और उन्होंने समय २ पर अपनी इस धारणा को व्यक्त भी किया है। देश विभाजन के पश्चात् वैसे भी पञ्जाब काफी छोटा हो गया है। पुनः राज्य पुनर्गठन की संस्तुति (Recommendation) की अवहेलना कर हिमाचल प्रदेश को पञ्जाब से पृथक् कर दिया गया। अब उसके पञ्जाबी भाषी भाग का पृथक् कर उसे और निर्बल किये जाने के मनसूबे बांधे जा रहे हैं। राज्य पुनर्गठन के राजनैतिक दृष्टिकोण से आर्यसमाज का कुछ प्रयोजन नहीं, परन्तु जहां तक भाषा का प्रश्न है, आर्यसमाज किसी प्रकार के बलात्कार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। यदि वहां के हिन्दू हिन्दी को अपनी भाषा कहते हैं और अपने बालकों की शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी रखना चाहते हैं, वहां उनको ऐसा करने की आज्ञा मिलनी चाहिये। अल्प संख्यकों की भाषा के नाम पर उर्दू को अनावश्यक प्रोत्साहन देने वाले लोगों के मस्तिष्क में यह सीधी सी बात न आये तो उनकी बुद्धि पर तरस खाने के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी का अनशन सरकार पर किसी प्रकार का दबाव या अनावश्यक और अनुचित मांगों को जबरदस्ती मनवाने के लिए नहीं किया गया है। उसका एक मात्र प्रयोजन सरकार के हाथ मजबूत करना है, ताकि वह मास्टर जी की अनुचित मांगों के आगे न झुके। स्वामी जी का दृष्टिकोण नितान्त स्पष्ट है। यदि कोई पञ्जाब के विभाजन की मांग के लिए अनशन का प्रयोग कर दुराग्रह कर सकता है तो पञ्जाब की एकता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देने वालों की भी कमी नहीं है।

आज स्वामी जी के अनशन ने आर्यसमाज के सुप्त प्राणों में नवरक्त का संचार किया है। आर्यसमाज अपने आलस्य, प्रमाद और व्यामोह को छोड़ कर सावधान और सचेत हो गया है।

ईश्वर करे वह सदा इसी प्रकार सावधान रह कर देश और जाति का हितचिन्तन करता रहे।

—※—

भारतीय लोक समिति दिल्ली का निश्चय

लोक समिति का यह निश्चित मत है कि स्वामी जी महाराज को परिस्थितियों से विवश होकर इस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा है। स्वामी जी का अनश्चन पंजाब के विभाजन को रोकने हिन्दू सिख एकता को बनाए रखने तथा देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए एक बलिदानपूर्ण सुदृढ पग है।

नहले पर दहला

प्रधान मंत्री की अपील के बावजूद अकाली नेता मास्टर तारासिंह ने अपना अनशन शुरू कर दिया, इससे सभी देशहित चिन्तकों में चिन्ता और क्षोभ की लहर व्याप्त होना स्वाभाविक है। जहां निराशा में भी यह उज्जवल किरण है कि मास्टर जी ने अनशन शुरू करते हुए हिन्दुओं और सिखों में मैल न आने देने पर जोर दिया है, उनके अनशन की जवाबी कार्रवाई के रूप में आर्य समाजी नेता स्वामी रामेश्वरानन्दजी का भी अनशन शुरू कर देना जाहिर करता है कि मास्टर जी के ढंग से हिन्दू बहुत आशंकित है और प्राणों की बाजी लगाकर भी उनकी मनमानी रोकने के लिए कटिबद्ध है। यों स्वामी रामेश्वरानन्द ने भी कहा है कि उनके अनशन का उद्देश्य किसी व्यक्ति या जाति का विरोध करना नहीं है बल्कि 'उस मनोवृत्ति का विरोध करने के लिए वह किया गया है जिसने मास्टर तारासिंह को पंजाब-विभाजन के लिए अनशन करने की प्रेरणा दी है।' लेकिन, उनका यह भी कहना है, "मेरे मन में इस बारे में कोई सन्देह नहीं है कि मास्टर तारासिंह को अगर (पंजाब के टुकड़े कराने के अपने प्रयत्न में) सफलता मिल गई तो उनकी धारणा वाले पंजाबी सूबे में हिन्दुओं का रहना अमली तौर पर असम्भव हो जायेगा।' यही नहीं बल्कि, उनके अनुसार, 'बहुत सी ऐसी पेचीदगियां हो जाएंगे जिन के कारण देश के उस हिस्से में गड़बड़ी और अव्यवस्था फैल जायगी।' स्पष्टतया यह स्थिति हिन्दुओं और सिखों की एकता बनाये रखने के बजाय उनमें फूट और गैरपन की भावना ही पैदा कर सकती है।

मास्टर तारासिंह ने अनशन शुरू करने से पहले यह भी कहा बताते है कि पंथ (यानी सिख धर्म) हिन्दू धर्म को मुग़लों के अत्याचारों से बचाने के लिए कायम हुआ था, जिसका अर्थ स्पष्ट है कि सिख हिन्दुओं के विरोधी नहीं बल्कि सहायक हैं। हिन्दुओं ने सिखों को कभी अपने से अलग माना हो, ऐसा याद नहीं आता। स्वामी रामेश्वरानन्द ने भी अनशन करते हुए सिखों के खिलाफ कुछ नहीं कहा है, बल्कि हिन्दू-सिख एकता की जोरदार अपील करते हुए दोनों जाति वालों से हर हालात में शान्त और प्रेम पूर्ण रहने को कहा है। उनका कहना तो सिर्फ यह है कि (१) पंजाब हिन्दुओं और सिखों दोनों की संयुक्त विरासत है, जिसके बारे में कोई राजनीतिक निर्णय लेना हो तो वह दोनों जातियों की रज़ामन्दी से लिया जाना चाहिये; और (२) मास्टर तारासिंह अगर पंजाब का विभाजन कराने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार है, तो दूसरे भी ऐसे लोग हैं जो पंजाब को स्वतन्त्र और संयुक्त बनाये रखने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने के निर्णय में उनसे कम सच्चे और दृढ़ निश्चय नहीं है। इस तरह नहले पर दहले की चाल चली जा रही है, जिसमें एक पक्ष पंजाब का विभाजन चाहता है और दूसरा पहले ही विभाजित इस प्रदेश के और टुकड़े नहीं होने देना।

देश के किसी प्रदेश की हदबन्दी कायम रखना या उसमें समयानुकूल फेर बदल करना दोनों ही ऐसी बातें हैं जिनके लिए जाति या धर्म का सहारा लेने की बजाय प्रशासनिक कठिनाई-सुविधा या आर्थिक-भौगोलिक दृष्टियों का विचार किया जाना चाहिये। जाति या धर्म के नाम पर उठाई प्रदेश विभाजन की मांग वर्तमान स्थितियों में यों ही अच्छी बात मालूम नहीं पड़ती, फिर सम्बन्धित जाति या धर्म के साथ भेदभाव के व्यवहार की शिकायतें यदि सप्रमाण न हों तो यह और भी गलत बात है। पंजाब के एक प्रमुख कांग्रेसी विधायक श्री वीरेन्द्र ने प्रधान मन्त्री से मुलाकात करके उन्हें

बताया बताते हैं कि राज्य में सिखों के साथ भेद-भाव का बर्ताव किया जाने सम्बन्धी अकालियों की शिकायत असत्य है। बल्कि, उनका कहना है, शिकायत उलटे हिन्दुओं को होनी चाहिए, क्योंकि भेद-भाव अगर किया जाता है तो बहुसंख्या में होते हुए भी उसका शिकार हिन्दुओं को ही होना पड़ता है। दोनों जातियों की शिकायतों की जांच के लिए स्वतन्त्र जांच-कमीशन की नियुक्ति का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा है, ऐसा हो तो निस्सदेह निष्पक्ष जांच से यही पता चलेगा कि हिन्दुओं को घाटे में रखकर भी हर तरह सिखों को ही फायदा पहुंचाया गया है।

श्री वीरेन्द्र का प्रतिपादन हिन्दु दृष्टिकोण कहा जा सकता है, लेकिन उनकी बातों में तथ्याश हो तो उसे दरगुजर नहीं किया जा सकता। सरकारी पदों पर सिखों की उपेक्षा के बजाय, उनका कहना है, उन्हें तरजीह दी जा रही है। इस सिलसिले में उन्होंने बताया है कि पंजाब के ७ सदस्यी मंत्रिमंडल में मुख्यमंत्री सहित ४ सिख हैं। राज्य की विधान सभा और विधान-परिषद दोनों के अध्यक्ष सिख हैं। यही नहीं, राज्य के सार्वजनिक सेवा आयोग के अध्यक्ष और पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी (इंसपेक्टर जनरल व डिपुटी इंसपेक्टर जनरल) भी सिख है। जहां तक केन्द्रीय सरकार का संबंध है, एक पूर्ण अधिकार संपन्न मंत्री, एक उपमंत्री तथा लोक सभा के उपाध्यक्ष इस तरह सिखों के तीन प्रतिनिधि वहां हैं। यह सचमुच कम रोचक नहीं है कि पंजाब में हिन्दुओं की बहुसंख्या (श्री वीरेन्द्र के अनुसार ७० प्रतिशत के लगभग) होते हुए भी अंतरिम सरकार से लेकर अब तक नेहरू मंत्रिमंडल में पंजाब का प्रतिनिधित्व सिखों को ही मिला हैं और कांग्रेस कार्य समिति में भी पिछले १४ वर्षों से पंजाब का प्रतिनिधित्व सिखों ने ही किया है। खुद पंजाब प्रादेशिक कांग्रेस की अध्यक्षता भी सिख ही कर रहे हैं। जाति या धर्म के हिसाब से पदों के बटवारे को देखना कोई अच्छा दृष्टिकोण नहीं है, लेकिन जो स्थिति प्रस्तुत की गई है उससे क्या यही नहीं लगता कि सिखों को हर तरह खुश रखने की ही भावना शायद इसके पीछे है? इतने पर भी सिखों की ओर से ही शिकायत होना बिल्कुल अजीब बात है।

जब अनशन और जवाबी अनशन हो रहे हैं तब किसी के खिलाफ कोई बात कहकर भावनाओं को चोट पहुंचाना हम ठीक नहीं समझते। लेकिन यह जरूर कहेंगे कि दबाव डालने से गलत बात ठीक नहीं हो सकती और गलत बात के लिये प्राणों की बाजी लगाना अच्छी बात नहीं है। प्राण सभी के अमूल्य हैं, मास्टर तारासिंह और स्वामी रामेश्वरानन्द तो फिर तपे हुए आदमी तथा आदरणीय लोक सेवक हैं। किसी एक की बात मानकर दोनों के प्राण नहीं बचाये जा सकते, ऐसी हालत में कोई बीच का रास्ता ही निकालना इष्ट है। हिन्दू-सिख का समान उद्देश्य है, तो इसी आधार पर दोनों के प्राण बचाने का कोई प्रयत्न क्यों न हो? मास्टर जी ने ऐसा संकेत भी दिया है कि कांग्रेस के बजाय हिन्दुओं से समझौता करना ज्यादा अच्छा है, साथ ही ठीक वक्त पर ऐसी बातचीत की आशा भी व्यक्त की है, तो ऐसा ही क्यों न किया जाय? समय का पहिया अपनी गति नहीं छोड़ता, अतः जवाबी कार्रवाइयों के बजाय शीघ्रतिशीघ्र इस दिशा में प्रयत्न शुरू होने चाहिए। (हिन्दुस्तान टाइम्स से साभार)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्नातक संघ के अध्यक्ष का श्री स्वामी जी को पत्र

हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्नातक संघ के अध्यक्ष श्रीरामेश्वराचार्य शास्त्री ने पूज्य स्वामी जी को पत्र लिखते हुए कहा, सम्पूर्ण राष्ट्र के तथा हिन्दी भाषा की सुरक्षा एवम् शुद्ध राष्ट्रीय भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा के लिए आपने पुनीत तथा मूल्यवान प्राणों की बाजी लगा कर अपने राष्ट्र के समक्ष एक बार फिर महर्षि दधीचि एवम् जीमूतवाहन का महान् आदर्श साकार बना दिया है। राष्ट्र के प्रत्येक एकता प्रेमी शुभ कामना आपके साथ है। विश्वास रखिये स्नातक संघ के सभी कार्यकर्ता आपके आदेश की प्रतीक्षा में है।

महापुरुष के बलिदान का अद्भुत काल और महाफल

❀ श्री स्वामी मेधानन्द जी सरस्वती

पूज्यपाद महा पुरुष महा तपस्वी बाल ब्रह्मचारी श्री स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती जी ने अनुकूल काल में अपने प्राणों की बलि देने का महा निश्चय करके बुधवार १६-८-६१ को अर्थात् भारत के प्रधान मंत्री के १५-८-६१ को हुए भाषण से जो लाल किले पर हुआ ठीक २४ घण्टे पश्चात् अपना अद्भुत अनशन आरम्भ करके श्री जवाहरलाल जी नेहरू को उनके भाषण का महासार एकता की (उन्नति के लिये) परमावश्यकता है यह अपने क्रियात्मक उत्तम प्रकार से दर्शा दिया है। श्री नेहरू की निर्बल नीति और अदूरदर्शिता ने मास्टर तारासिंह के पंजाबी सूबा नामधारी जो वस्तुतः उनकी अपनी कल्पना का अकाली सिख सूबा आन्दोलन को पनपने का दुस्साहस दिया। जब चिरकाल से आर्य समाज के अल्प पठित अल्पविद्य, अल्पप्रज्ञ तथा कथित नेताओं ने राजधर्म और राजनीति को केवल व्यक्तिगत समझ कर महती मूर्खता और तुच्छ स्वार्थपरता से यह अनार्ष, अवैदिक, अनार्य पक्ष ग्रहण किया कि व्यक्तिगत रूप में कोई भी आर्य समाजी किसी भी राजनैतिक पार्टी में कार्य करे किन्तु सामूहिक रूप से आर्य समाज राजनीति में भाग न ले तब राजनीति राक्षस नीति बन गई और मास्टर तारासिंह को सिख पन्थ के नाम पर अपने घोर तुच्छ स्वार्थ और अहंकार की पूर्ति के लिये खुल कर खेलने का अवसर मिल गया और सिखों के लिये भी महान् अनिष्टकर और दुःखदायी आन्दोलन का अवसर मिल गया। अयोग्य नेतृत्व के कारण गो रक्षा और हिन्दी रक्षा आन्दोलन तो विफल हुए ही। अभी नवम आर्य महासम्मेलन और स्वर्ण-जयन्ती का तुच्छ स्वार्थ पूर्ण नाटक भी समाप्त हो गया है। श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी के अनशन का सर्व प्रथम महाफल यह होना चाहिये कि सामान्य रूपेण आर्य हिन्दू जाति में से आपस की फूटरूपी राजरोग महारोग भयंकर राक्षस का श्रद्धा और मेधा के समन्वयपूर्वक विनाश किया जाना चाहिये। इस फूट का जो ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक अर्थात् प्रायः आर्य समाज में फैली हुई है मुख्य कारण गुण की अपेक्षा संख्या को प्रमुखता प्रधानता देना। भगवान् मनु और ऋषि दयानन्द एवं भगवान् राम और देवर्षि नारद तो गुण को प्रधानता देते हैं।

आर्य समाज में दो महारोग—

प्रायः सम्पूर्ण आर्य समाज में दो महारोग आ० स० को क्षीण कर रहे हैं प्रथम तो अधिकारों और पदों की घोर लिप्सा-आकांक्षा से येन केन प्रकारेण अपने चौधरीपन को बनाये रखना और द्वितीय विविध प्रकार की रूढी-प्रियता। चिरकाल से आ० स० में नेतृत्व के अयोग्य होने से महती-विनष्टि-हानि हुई और हो रही है। इस अद्भुत अनशन से सामान्य रूपेण आर्य हिन्दू जाति के और विशेष रूपेण आर्य समाज के नेताओं की आंखें खुल जानी चाहियें। परम पिता परमात्मा इस महापुरुष को चिरकाल तक भावी महान् कार्य के लिये चिरजीवी और हमारा नेतृत्व करने के लिये अनशन को सफल करें।

॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ क्रान्ति, क्रान्ति, क्रान्ति ॥

★

जलते पञ्जाब की जलती समस्यायें

❀ श्री पं० बालदिवाकर हंस

पंजाब की विषम परिस्थिति से कौन परिचित नहीं है ? सभी जानते हैं कि स्वतन्त्रता के साथ-साथ हमें पंजाब का विभाजन भी स्वीकार करना पड़ा—हमने देखा उन हृदय द्रावक दृश्यों को जिन्हें अब प्रत्यक्ष तो क्या स्वप्न में भी हम देखना नहीं चाहते। हम ही नहीं हमारी पीढ़ियां दर पीढ़ियां जब उन काले कारनामों पर हमारी हीनावस्था का अध्ययन करेंगी तो बरबस कह उठेंगी धर्म और भाषा के नाम पर धरती का बंटवारा नहीं होना चाहिए। फिर यदि पंजाब के पुनः बंटवारे की सम्भावनाओं से पूर्ण कोई भी अयुक्त योजना भुक्त-भोगियों के सामने आये और वह उसे लाल झण्डी दिखाना चाहें तो आश्चर्य क्यों ?

इस ध्रुव सत्य से कौन विमुख होगा कि पंजाब के सभी सिख विशाल हिन्दुओं (आर्य) के ही अङ्ग हैं हिन्दुओं की सन्तान। गुरुओं के ग्रन्थ उनकी भाव-भरी वाणियां इस तथ्य की घोषणा करते नहीं अघाते कि उन्होंने जो अपूर्व बलिदान किये व हिन्दू गौ ब्राह्मण तथा वेद के ही लिये हुये थे।

फिर आज मास्टर तारासिंह जी के अन्दर उन महान् गुरुओं की वसीयत के प्रति विद्रोह करने का साहस क्यों व कैसे हुआ। यह जलता प्रश्न आज हर आर्य (हिन्दू) के मस्तिष्क को चैन नहीं लेने देता। बात साफ है इस दिशा में मास्टर जी मिस्टर जिन्हा के पथानुगामी हैं। पाकिस्तान जिन्हा ने नहीं अंग्रेजों ने बनाया था। जिन्हा का तो नाम ही समझिये। अंग्रेज ने यह कह कर कि जिन्हा को मानना ही पड़ेगा हमें धोखा दिया था। इधर सिख सूबे की मांग जब हमारे सामने आई तो पंजाब के शासन ने दाढ़ी पर हाथ फेर कर कह दिया कि तारासिंह को मानना ही पड़ेगा हिन्दुओं ने हो हल्ला मचाया चिल्लाये रोये और कहा मास्टर तारासिंह सिखों का प्रतिनिधित्व नहीं करते—वह तो पञ्च-गामी मिस्टर मैकालिफ के His master voiee हैं। जिन्होंने अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' नीति से 'राज करेगा खालसा बाकी रहे न कोय' के नारे को क्रियान्वित करने का क्षुद्र साहस किया, चाहे हिन्दू सिख भाड़ में जायं। तारासिंह के इस दुराग्रह का पञ्जाब के कैरों शासन ने सदा बहुमत की उपेक्षा करके उत्साह बढ़ाया और उनकी बेतुकी मांगों को राजनीति की आड़ में पनपने देकर केन्द्रीय सत्ता को इरादे से धोखे में रक्खा। इसे जनता भली प्रकार जानती है। जिसका ज्वलन्त परिणाम है सच्चर फार्मूला और रीजनल फार्मूला। बस ! यही वह भूल हुई जिसने तिल को पहाड़ बना कर पंजाबी सूबे का मायावी रूप ले लिया। पञ्जाब में पिछला इतिहास इस बात का साक्षी है सरकार द्वारा कोई आयोग नियुक्त किया गया उनकी रिपोर्टें मुंह बोल रही हैं कि हिन्दु को भाषा नौकरी प्रशासन सभी दिशाओं में भेदजन्य नीति के आधार पर जानबूझ कर घाटे में रखा गया। नीचे लिखे आंकड़े सर्व साधारण को मेरी इस सत्योक्ति का समर्थन कराने में सहायक सिद्ध होंगे।

प्रशासन में सिखों का प्रतिनिधित्व

मुख्य मन्त्री (सिख), विधान सभा का अध्यक्ष (सिख), पञ्जाब विधान प्ररिषद् का अध्यक्ष (सिख) अध्यक्ष लोक सेवा आयोग (सिख), केन्द्रीय सरकार में पञ्जाबी मन्त्री (सिख), पञ्जाबी उपमन्त्री (सिख), उपाध्यक्ष लोकसभा (सिख)। स्वतन्त्रता के पश्चात् केन्द्रीय सरकार के किसी उच्चपद पर कोई पञ्जाबी हिन्दू नहीं लिया गया।

नौकरियों में प्रतिनिधित्व

तीन वित्तीय आयुक्तों में २ सिख, १ ईसाई, मुख्य सचिव (सिख), आई० जी० पुलिस (सिख), डी० आई० जी०, सी० आई० डी० (सिख), पञ्जाब सरकार के १७ सचिवों में से ९ सिख, ६ हिन्दू, दो ईसाई। पुलिस के सुपरिंटैंडैंटों में से ११ सिख, ७ हिन्दू। १८ जिला मजिस्ट्रेटों में से ८ सिख १० हिन्दू। ७ विभागीय इञ्चार्जों में ३ सिख, ३ हिन्दू, १ ईसाई।

कांग्रेस में सिख प्रतिनिधित्व

अध्यक्ष प्रदेश कांग्रेस (सिख), सेक्रेटरी प्रदेश कांग्रेस (सिख), पञ्जाब कांग्रेस कार्य समिति में ५० प्रतिशत से अधिक सिख, स्वाधीनता के पश्चात् आज तक कांग्रेस कार्य समिति में कोई पञ्जाबी हिन्दू नहीं लिया गया न कोई पञ्जाबी हिन्दू पञ्जाब कांग्रेस का अध्यक्ष बना।

पञ्जाब की जनसंख्या हिन्दू ७० प्रतिशत, सिख ३० प्रतिशत। विधान सभा की कुल १५४ सीटों में से हिन्दू ८९ अर्थात् ६० प्रतिशत और सिख ६५ अर्थात् ४० प्रतिशत। पञ्जाबी क्षेत्र में कुल सीटें ८९, सिखों की जनसंख्या ५५ प्रतिशत परन्तु सिख सीटें ६५ अर्थात् ७० प्रतिशत। पञ्जाबी क्षेत्र में हिन्दुओं की जनसंख्या ४५ प्रतिशत परन्तु सीटें २४ अर्थात् ३० प्रतिशत।

ऐसे विकट समय में सारे पञ्जाब पर साम्प्रदायिकता के बादल लहरा रहे थे और हिन्दू की नाव बिना मल्लाह के अज्ञात दिशा को बही जा रही थी कि पूज्य स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने अनेक लहरों से थपेड़े लेते हुए नाव को जा सम्भाला और डूबता हिन्दू जीवन के दृश्य देखने लगा।

स्वामी जी महाराज ने घोषणा की यदि मास्टर तारासिंह जी को मनाने के लिये इस बार हिन्दू हितों का बलिदान किया गया और मास्टर तारासिंह ने अपनी जिद्द न छोड़कर १५ अगस्त के पावन दिन पञ्जाबी सूबे की मांग के लिये आमरण अनशन आरम्भ किया तो मैं इस पवित्र दिन को छोड़ कर अगले दिन पञ्जाबी सूबे की मांग के विरुद्ध आमरण अनशन आरम्भ कर दूंगा और अन्ततः वह दिन भी आ गया कि जब वह आर्य समाज का अलबेला सिपाही मानव मात्र के हितों का सच्चा पहरेदार बनकर अग्नि परीक्षा में कूद पड़ा उसने उसी बलिदानी मार्ग का पथ चुना जिस पर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पैर बढ़ाये थे। स्वामी जी ने अनशन करते समय कहा था रोते क्यों हो मौत से डरना क्या मैं तो अभी महिनों उसको पास बैठाकर बातें करूँगा और यदि देश हित में उसके साथ जाना ही पड़ा तो यह मेरा सौभाग्य होगा। घबराओ नहीं वह दिन अधिक दूर न होगा जब पुनः लौटकर पवित्र वैदिक धर्म के द्वारा आपकी सेवा कर सकूंगा। मेरे लिये हिन्दू सिख एक हैं यदि उनके हित साधन जुटाने में मेरा शरीर काम आया तो यह आपके लिये भी गर्व का विषय होना चाहिए तब सहसा सभी की मुख से निकला—

"शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशा होगा।"

यही कारण है कि आज पञ्जाब नहीं नहीं महान् भारत के सूदूर कौने में बैठा हर हिन्दू स्वामी जी की रक्षा अपनी आयु देकर भी करने की प्रभु से प्रार्थना कर रहा है।

राजनीति विशेषांक

बड़े हर्ष का विषय है कि देहली में आर्यों की एक विशाल बैठक में अखिल भारतीय लोक समिति का निर्माण हो गया। इस सम्बन्ध में १० सितम्बर को भारतीय लोक समिति का एक सम्मेलन हो रहा है। भारतीय लोक समिति को अधिक लोक प्रिय बनाने उसके स्वरूप, कार्य और महत्व पर प्रकाश डालने के लिए 'वेदप्रकाश' का आगामी अंक 'राजनीति विशेषांक' होगा। अभी से अपनी प्रतियां सुरक्षित करालें। २५ प्रतियां ५) रुपया, ५० प्रतियां १०), और १०० प्रतियां १८)। अपना आर्डर शीघ्र मनीआर्डर के साथ भेजिये।

साहित्य-परिचय

क्रियात्मक योगः—लेखक तथा प्रकाशक पं० बलदेव प्रसाद आर्य, बड़ा बाजार देवास, म० प्र० पृष्ठ संख्या ११४। मूल्य २ रुपया।

आर्य जगत् की तो बात ही क्या श्री बलदेव प्रसाद आर्य समस्त भारत में प्रसिद्ध हैं। आप ने अपना समस्त जीवन योग के प्रचार व प्रसार में लगाया है। लोहे की कड़ियों को तोड़ देना और थालियों को चीर देना आप के लिये साधारण सी बात है। देश के अबाल वृद्ध हृष्ट पुष्ट एवं बलिष्ठ बनें इस दृष्टि से आपने यह पुस्तक लिखी है। पुस्तक में २५ आसन हैं। सूर्य नमस्कार का पूर्ण वर्णन है और प्राणायाम का उत्तम विवेचन है। योग के जिज्ञासुओं को पुस्तक लाभदायक और उपादेय सिद्ध होगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह पुस्तक विश्व विद्यालयों के पाठ्य क्रम में निर्धारित है। आर्य समाजों को भी इसे अपनाना चाहिये। प्रत्येक पुस्तकालय में इस की एक प्रति होनी चाहिये।

विष्णु दयाल रचनावलीः—प्रथम भाग मूल्य २) रुपया पृष्ठ संख्या १०२ प्रकाशक का नाम पुस्तक पर अंकित नहीं हैं।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही विदित है पुस्तक में श्री विष्णु दयाल जी एम० ए० मारीशस निवासी के कुछ लेखों का संग्रह है। लेखों के शीर्षक हैं—आध्यात्मिक भारत, पश्चिम को भारत की देन, मुझे पीछे ले चल, वैदिक शिक्षाओं की आवश्यकता केवल श्रद्धादेयम्। अन्त में बरनार्द दे सेंप्येर द्वारा लिखित भारतीय झोंपड़ी का अनुवाद दिया गया है। समालोचना के लिये जो पुस्तकें मेरे पास आई हैं उन में यह लेख अधूरा ही है।

जैसा कि पुस्तक के शीर्षकों से पता लगता है सारे ही लेख उत्तम एवं महत्व पूर्ण हैं परन्तु पश्चिम को भारत की देन और वैदिक शिक्षाओं की आवश्यकता ये दो लेख तो बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। पुस्तक में पाठकों को अनेक नवीन बातें मिलेंगी। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है। छपाई उत्तम है।

And this is Dayananda the great. (अंग्रेजी) लेखक तथा प्रकाशक श्री पं० वेद मित्र ठाकुर (फकीरे दयानन्द) भोलाव (Bholav) भड़ौच। पृष्ठ संख्या २४ मूल्य २५ नये पैसे।

श्री पण्डित वेद मित्र जी एक सफल व्याख्याता और मंजे हुए लेखक हैं। आप ने गुजराती भाषा में कई पुस्तक लिखी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने अत्यन्त थोड़े परन्तु बहुत ही सार गर्भित एवं ओजस्वी शब्दों में महर्षि दयानन्द के जीवन का चित्रण किया है। विद्वान् दयानन्द, उपदेशक दयानन्द, दार्शनिक दयानन्द और देश निर्माता दयानन्द महर्षि के इन गुणों पर पुस्तक में उत्तम सामग्री है। छपाई शुद्ध है सारी पुस्तक में एक भी अशुद्धि नहीं है। गेट अप सुन्दर। हम इस पुस्तक का प्रचार चाहते हैं।

साप्ताहिक आर्य गजट जालन्धर का भजनावली संस्करणः—(उर्दू) पण्डित दुर्गादास जी शर्मा। मिलने का पता साप्ताहिक आर्य गजट जालन्धर। पृष्ठ संख्या ८० मूल्य ५० नये पैसे। भजनों की संख्या १६६ है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है पुस्तक में भजनों का संग्रह है। अधिकांश भजन ईश्वर भक्ति परक है। परन्तु बीच बीच में महर्षि दयानन्द महिमा, देश भक्ति, ध्वज गान तथा आर्य कुमार और महिला उपयोगी भजन भी दिये हुए हैं। उर्दू भाषियों के लिये पुस्तक उत्तम है।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश	२)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	२॥)
संस्कारविधि	१।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)	
बाल शिक्षक	।=)
गृहस्थाश्रम	॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन	२) ५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभु भक्ति	१) ५०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान	१)
उपनिषदों का सन्देश	१) २५
आनन्द गायत्री कथा	) ७०
एक ही रास्ता	) ८०
शंकर दयानद	) ५०
सत्य नारायण कथा	) ६१
महामन्त्र	१)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य	६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र बाल्मीकिय रामायण	१२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमोव्याख्या	) ५०

श्री सद्यानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि	२)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत	२)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें	१) २
मित्रों की बातें	१) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा संकलित

ऋग्वेद शतकम्	१)
यजुर्वेद शतकम्	१)
सामवेद शतकम्	१)
अथर्ववेद शतकम्	१)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण	१) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य	) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य	) ३७
आर्य समाज क्या है	) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं	१)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
आर्ष योग प्रदीपिका	३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन	२) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास	२)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	
,, ,, पूर्वार्द्ध	२) ५०
,, ,, उत्तरार्द्ध	२) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय	१)
प्रार्थना प्रदीप	) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे	१)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय	) ३७

पं० धर्म देव विद्या मार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य	
गो हत्या महापाप	) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान	) २५
दयानन्द और वेद	) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका	) ५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)	
नास्तिकवाद	) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथामहाकाव्य	४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग	३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति	) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप	१) २५
गीत श्रद्धांजली	१)
सत्य हरिश्चन्द्र	१)
वीरवल की हाजिर जवावी	१)
ओंकार व्याख्या	) १२
नमस्ते की व्याख्या	) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द	) ७५
आत्म कथा	) ४०
गुरुधाम एकांकी	) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द	) ३७
महात्मा हंसराज	) ३७
गुरु विरजानन्द	) ५०
स्वागी वेदानन्द	) २५
भगवान् कृष्ण	) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द	) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३०	१।)
महर्षि दयानन्द सादा ,,	१)
गुरु विरजानन्द ,,	१)
पं० लेखराम ,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	१)
महात्मा हंसराज ,,	१)
पं० गुरुदत्त ,,	१)
स्वामी दर्शनानन्द ,,	१)
महर्षि जीवन घटना १५×२०	
मोटोज साइज ११×१४	) ५०
ओ३म् नमस्ते स्वागतम् गायत्री मन्त्र प्रत्येक	) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से प्रकाशित किया।

प्रचार योग्य सस्ते ट्रैक्ट प्रत्येक का मूल्य -)

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७. ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यो
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

सितम्बर १९६१ वेदप्रकाश रजि० नं० डी० ४२६.

अपनी फर्म का समाज या संस्था का कैलेन्डर ऋषि दयानन्द के चित्र पर छपाइये आफसेट कागज पर ६ रङ्गी छपाई पत्रव्यवहार करें।

—※—

१९६२ का महर्षि दयानन्द का ६ रंगा चित्र बीच में गायत्री मन्त्र दोनों ओर आर्य समाज के दस नियम नीचे हिन्दी में १९६२ की तारीखें, एक का मूल्य ॥)

दर्जन ४)

डाकखर्च पृथक।

आर्यन कैलेन्डर कार्पोरेशन
४४०८ [illegible]क दिल्ली।

ओ३म्

ऋग् यजुः साम अथर्व

वेद-प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७६४

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

अक्तूबर	१९६१
अश्विनी	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	३

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

मनुष्य का उद्देश्य

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ (ऋ० १।६।३)

"हे (मर्याः) मनुष्यो ! (अ-केतवे) अज्ञानी के लिए (केतुं) ज्ञान (कृण्वन्) देता हुआ और (अ-पेशदे) अरूप के लिए (पेशः) रूप देता हुआ तू (उषद्भिः) उषाकालों के साथ (अजायथाः) उत्पन्न हुआ है।"

मनुष्य का जन्म इसलिए हुआ है कि वह अज्ञानी को ज्ञान देवे और विरूप को सुन्दर हृष्टपुष्ट करे। जिस प्रकार सूर्य उषः काल के पश्चात् आकर सब को प्रकाश और सुन्दर रूप देता है, उसी प्रकार करने के लिए मनुष्य जन्मा है।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानद) ५०
सत्य नारायण कथा) ६१
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमोव्याख्या) ५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा संकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्या मार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २
दयानन्द और वेद) २
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५
वैदिक गृहस्थाश्रम ५
ऋषि गाथामहाकाव्य
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ६
आर्य सिद्धान्त दीप १) २
गीत श्रद्धांजली १
सत्य हरिश्चन्द्र १
वीरबल की हाजिर जवाबी १
ओंकार व्याख्या) १
नमस्ते की व्याख्या) १

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७
आत्म कथा) ४
गुरुधाम एकांकी) ५
स्वामी श्रद्धानन्द) ३
महात्मा हंसराज) ३
गुरु विरजानन्द) ५
स्वामी वेदानन्द) २
भगवान् कृष्ण) ३
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६

चित्र चित्र चि

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १
महर्षि दयानन्द सादा " १
गुरु विरजानन्द " १
पं० लेखराम " १
स्वामी श्रद्धानन्द " १
महात्मा हंसराज " १
पं० गुरुदत्त " १
स्वामी दर्शनानन्द " १
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५
ओ३म् नमस्ते स्वागतम् गायत्री मन्
प्रत्येक) २

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

सम्पादकीय टिप्पणियां

वही ढाक के तीन पात:—'वेदप्रकाश' के जुलाई अङ्क में हम ने वेद प्रकाश के सदस्यों से प्रार्थना की थी कि प्रत्येक व्यक्ति पांच पांच ग्राहक बनाये। मेरी प्रार्थना पर श्री कन्हैयालाल जी गोरखपुर ने ५ श्री रामनिवास जी अग्रवाल झरिया ने ६ श्री अम्बालाल भंवरलाल जी आर्य भावी ने ६ श्री विश्वनाथ जी नानपारा ने ५, श्री वाजुलाल जी आर्य टिमरनी ने ५, श्री खीमसिंह जी रावतकलकत्ता ने ५, मन्त्री आर्यसमाज विचकुन्दा ए० पी० ने ५, श्री रामसिंह भदौरिया कानपुर ने ८ U. Sambiah Hyderabad ने ५ श्री राम लौटनप्रसाद जी आर्य बीकानेर ने १८, श्री सोमदत्त जी शर्मा अलवर ने १५ श्री हीरालाल जी आर्य पिपलिया ने ५ श्री कृष्णकुमार खन्ना इन्दौर ने ७, श्री भानुलाल जी आर्य कहिजरी ५, श्री आदित्यपाल सिंह जी होशगांवाद ने ५, श्री स्वामी मेधानन्द सरस्वती ने ५, श्री सोहनलाल जी पालीमारवाड़ ने ४

इसके अतिरिक्त अन्य कई महानुभावों ने ३-३ कइयों ने २-२ ग्राहक बढ़ाये हैं "वेदप्रकाश" उनका आभार मानता है।

कुछ व्यक्तियों ने उत्साह का परिचय दिया परन्तु अनेक व्यक्तियों ने दूसरों को ग्राहक बनाना तो दूर रहा अपना शुल्क भी नहीं भेजा है। क्या यह शौचनीय स्थिति नहीं है? मैंने वेदप्रकाश के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है और इसे अधिकाधिक उपयोगी बनाने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु पाठकों का सहयोग नहीं मिल रहा। परिणाम यह है कि वेद प्रकाश की संख्या बढ़ने की बजाये घट गई है। ढाक में तीन पात तो रहते हैं यहां तो अनुपात की दृष्टि से दो ही पात रह गये हैं। यदि आप चाहते हैं कि वेदप्रकाश आप को उत्तमोत्तम सामग्री देता रहे तो शीघ्र अपने कर्तव्य का पालन कीजिये और जिन सज्जनों ने अभी तक अपना शुल्क नहीं भेजा है वे पत्र पढ़ते ही शुल्क भेजने की कृपा करें।

ग्राहकदेवोपासना:—ब्रह्म की उपासना तो होती ही है परन्तु पत्र के संचालक और सम्पादकों को ग्रहकों की उपासना कर उन्हें प्रसन्न रखना पड़ता है। कार्यालय से बहुत सावधानी के पश्चात् दो दो बार चैक करके अंक भेजा जाता है फिर भी पोस्ट आफिस की गड़बड़ से कभी कभी पाठकों को अंक नहीं पहुँच पाता। पाठकगण कभी पोस्ट आफिस को नहीं लिखते कि हमारा अंक क्यों नहीं मिला! हां हमें बड़े तीखे और कटु पत्र लिखते हैं। हमारे आर्यत्व के ऊपर भी आक्षेप करते हैं ऐसा उचित नहीं। यदि १० तारीख तक पत्र न मिले तो हमें दोबारा लिखने पर दूसरी प्रति भेज दी जाती है। जहां आप हमें पत्र लिखते हैं उनके साथ यदि आप पोस्ट आफिस के अधिकारियों को पत्र लिख कर उन्हें तंग कर दें तो फिर भविष्य में आपको वेद प्रकाश नियमित मिलता रहेगा। इतना आप विश्वास रखें कि वेदप्रकाश की व्यवस्था ठीक है और यहां से प्रत्येक व्यक्ति को नियमित रूप से पत्र भेजा जाता है। विशेषांक तो Under postal Certificate भेजे गये थे।

अद्भुत मोटर:—जून मास में जब ऊपर से सूर्य अग्नि बरसाता था और नीचे से भूमि तपती थी, जब देहली में मौनसून आने में २५ दिन शेष थे। आकाश में न बादल थे और न वृष्टि का कोई चिह्न था—ऐसे वातावरण में आर्य जगत् के सुप्रद्धि वैदिक विद्वान् पं० वीरसेन जी वेदश्रमी ने देहली से १० मील दूर नागलोई में एक वृष्टि यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ ४ जून से १५ जून तक चला। पहले तीन दिन आकाश में सोम भरा गया फिर बादल बनाने की प्रक्रिया हुई। यज्ञ के दिनों कई दिन बून्दाबान्दी हुई। १८ और २१ जून को तो ५०-५० मील तक पर्याप्त वर्षा हुई। यह स्मरण रहे कि देहली में इस वर्ष मौनसून २९ जून के पश्चात् आई थी। यज्ञ का यह वैज्ञानिक परीक्षण बहुत

सीमा तक सफल रहा। मैं स्वयम् १२ दिन तक इस आयोजन में सम्मलित रहा था। इसी प्रकार पण्डित जी ने वृष्टि रोकने के भी तीन चार सफल परीक्षण किये हैं। परन्तु इन सब से बढ़ कर एक और चीज भी पं० जी के पास है। वह है ऐसी मोटर या हवाई जहाज जिसे चलाने के लिये हवा पानी, लकड़ी, कोयला, तेल और पारे आदि किसी भी पदार्थ की आवश्यकता नहीं होगी। यह मोटर छान्दस् शक्ति के आधार पर चलेगी। इसका मौडल बनाने में कम से कम एक वर्ष का समय लगेगा और २५ सहस्र रुपये व्यय होंगे। इस परीक्षण के लिये यह राशि कोई बहुत अधिक नहीं हैं। आज लोग हमारे ऊपर आक्षेप करते हैं कि जब कोई अविष्कार हो जाता है तो आर्य समाजी यह कहते हैं कि यह तो वेद में भी है। यह अविष्कार ऐसा अद्भुत है कि अभी तक विज्ञान की उन्नति में बहुत आगे बढ़े देश भी इस प्रकार का यन्त्र नहीं बना पाये हैं। सार्वदेशिक सभा अथवा प्रतिनिधि सभाओं को यह कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिये। जब यह अविष्कार जनता के समक्ष आयेगा तो वेद का गौरव किस प्रकार बढ़ जायेगा इस की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

क्या आयु निश्चित है ?—मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि मैं इस प्रकरण को लिखूं परन्तु विवश होकर ही मुझे यह लिखना पड़ रहा है। यह तो पाठकों को विदित ही होगा कि आर्य जगत् के वीत-राग सन्यासी स्वामी अभेदानन्द जी महाराज का निधन १६/७/६१ को मौरिशस में हुआ था। इसी सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में आर्य समाज दीवान हाल में एक विराट् शोक सभा का आयोजन किया गया। इन पंक्तियों का लेखक भी वहां उपस्थित था। सभा में अनेक व्यक्तियों ने स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित की। श्री पं० आचार्य विश्वश्रवा जी भी उनमें से एक थे। अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कुछ लोगों ने ऐसी भावना व्यक्त की थी कि स्वामी जी का स्वा-स्थ्य उन्हें जाने की अनुमति नहीं देता था परन्तु लोगों के आग्रह पर वे विदेश चले गये। यदि स्वामी जी वहां न जाते तो शायद उनकी मृत्यु न होती। आचार्य जी ने कहा, "स्वामी जी चाहे यहां रहते चाहे वहां उनकी मृत्यु तो उसी क्षण, उसी पल पर होनी निश्चित थी वह समय इधर उधर नहीं हो सकता था।" इस बात का आधार उन्होंने यह बताया कि परोपकारिणी सभा में एक पत्र पर स्वामी जी के हाथ से लिखी हुई तीन चार पंक्तियां सुरक्षित हैं जिसमें इस आशय का लेख है। सभा की समाप्ति पर इस विषय में परस्पर टीका टिप्पणियाँ हुई। दूसरे दिन आचार्य जी मुझे आर्य समाज नया बांस में मिले। मैंने चरण छूकर नमस्ते की और फिर अपनी शंका उपस्थित की कि कल आपने जो आयु निश्चित होने की बात कही थी वह स्वामी जी के ग्रन्थों से मेल नहीं खाती। पाठकों के अवलो-कनार्थ कुछ प्रमाण दिए जाते हैं—

हे मनुष्यो ! जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ। (यजुर्वेद २८।२५ का भावार्थ)

यदि आयु निश्चित है तो संस्कार विधि में बालक को यह आशीर्वाद क्यों दिया जाता है—

त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः

(निष्क्रमरण संस्करण)

हे बालक ! तू बढ़ता हुआ सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित रह।

सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् ४०० वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ।

(सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास)

इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। मैंने पण्डित जी से पूछा एक ओर तो स्वामी जी लिखते हैं आयु को बढ़ाओ दूसरी ओर आप कहते हैं कि आयु निश्चित है इन दोनों का समन्वय कैसे हो ? आचार्य जी ने कहा—"जाओ, दे देना वेदप्रकाश में।" उन्हीं के आदेशानुसार

ये पंक्तियां लिखी हैं। क्या आचार्य जी इस समस्या को सुलझायेंगे ?

महर्षि दयानन्द पर आक्षेपः—गत अंक में इसी शीर्षक से मैंने कुछ पंक्तियां लिखी थी। इस अंक में पुनः कुछ कहने के लिए विवश होना पड़ा है। पौराणिक श्री माध्वाचार्य ने 'दूध का दूध पानी का पानी' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की है। पुस्तक में अनेक असत्य एवं अनर्गल बातें दी गई हैं। महर्षि दयानन्द पर ओछे आक्षेप किए गए हैं। महर्षि या महर्शी शीर्षक देकर पृष्ठ ५ पर आप लिखते हैं—

"वे मन्त्र दृष्टा तो थे नहीं यह तो निर्विवाद बाते है, हां यह प्रसिद्ध है कि उनको अर्श रोग बहुत रहता था.....अतः वे महर्शी अवश्य कहे जा सकते सकते हैं।" पृष्ठ १५ पर आप लिखते हैं ईसाई मुसलमानों से सनातन धर्म को उतना खतरा नहीं है जितना कि दयानन्दियों से है।"

पृष्ठ १७ पर आर्य समाजियों को विधर्मियों का ऐजेण्ट बताया है। पृष्ठ १८ पर पूज्य पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी के लिये "स्वर्णकार रामचन्द्र देहलवी" शब्द लिखे हैं पृष्ठ २० पर "दयानन्द जी निश्चित ही कापड़ी थे" ऐसा लिखा है। इस प्रकार की और भी अनेक ऊतपटांग बातें लिखी हैं।

इस पुस्तक का उत्तर सार्वदेशिक सभा अथवा प्रतिनिधि सभाओं को देना चाहिए था परन्तु वे तो कुम्भकर्णी निन्द्रा में सो रही हैं। सभा के अधिकारियों को तो शायद पुस्तक के छपने का ज्ञान भी न हो। मित्रवर श्री शिवपूजन जी ने इस पुस्तक का मुंहतोड़ उत्तर लगभग २४० पृष्ठ में लिखा है। इसी सम्बन्ध में उन्होंने एक लेख भी लिखकर भिन्न पत्रों को भेजा था परन्तु अभी तक उस लेख को किसी भी पत्र ने नहीं छापा है। आर्य पत्रों में अमेरिका के लोकतन्त्रादि व्यर्थ के लेख तो छप सकते हैं परन्तु एक आवश्यक और महत्वपूर्ण लेख की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अस्तु।

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ मैंने तथा श्री शिवपूजन जी ने ५०-५० रुपये देकर आर्य जनता से केवल एक-एक रुपये के हिसाब से ५००) की अपील थी... परन्तु लिखते हुए दुःख हो रहा है अभी तक कुल २३) रु. प्राप्त हुये हैं। आर्यो! यदि आपके हृदय में महर्षि की भक्ति है? यदि आपकी नशों का खून ठण्डा नहीं हो गया है! यदि आप चाहते हैं कि इस घातक पुस्तक का उत्तर दिया जाये तो तुरन्त एक-एक रुपया भेजिये। आप अधिक भेजना चाहें तो अधिक भी भेज सकते हैं उतनी ही पुस्तकें आपकी सेवा में भेज दी जायेंगी। आपकी ऋषि भक्ति की परीक्षा है? देखें आप कैसा परिचय देते हैं? आपका एक-एक पैसा सुरक्षित रहेगा आप विश्वास रखें। धन निम्न पते पर भेजें:—

ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी, ८ ई, कमलानगर
दिल्ली–६

जिन व्यक्तियों ने वेदप्रकाश का चन्दा भेजना है वे ४) रुपये वेदप्रकाश कार्यालय के पते पर ही भेज दें। मुझे वह धन यहां से मिल जायेगा।

आगामी विशेषाङ्कः—ब्रह्मकुमारी पाखण्ड अंक जिस की आप चिर प्रतीक्षा में थे बड़ी सजधज के साथ नवम्बर में आपको पहुंच जायेगा। भारी संख्या में आर्डर भेजिये। २५ प्रतिका मूल्य ५) रुपया ५० का १०) तथा १०० का १८)। मूल्य मनीआर्डर से भेजें इसमें आपका लाभ रहेगा।

राजनीति अङ्क भारतीय लोक समिति के अखिल भारतीय अधिवेशन के अवसर पर दिसम्बर में निकलेगा। 'विद्यार्थी'

अपमान के चैलेंज का जवाब क्यों नहीं ?

जाति पांति उन्मूलन और सङ्गठन का एक यही उपाय है कि:—

❀ रंगोलाल आर्य बी० ए० साहित्यरत्न,

५ जनवरी १९६१ के प्रताप में हिन्दुओं के अपमान को चेलैंज शीर्षक से महाशय कृष्ण ने अपने नाम मौलाना हसामुद्दीन का एक पत्र प्रकाशित किया है। उस पत्र में मौलाना हसामुद्दीन ने मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के आन्दोलन व तौर तरीकों एव रफ्तार पर गर्व करते हुए महाशय कृष्ण को चेलैंज किया है कि हिन्दुओं के गम में दिन रात अंगारों पर लेटने वाले महाशय जी मुसलमानों के छोटा नागपुर अर्थात् जामामस्जिद दिल्ली में किसी भी दिन और विशेषतः शुक्रवार के दिन आकर देख सकते हैं कि किस प्रकार और कितने हिन्दुओं के सिर प्रतिदिन वहां मूंडे जाते हैं। इस पर महाशय कृष्ण ने हिन्दुओं की इस दुर्दशा पर आंसू बहाते हुए हिन्दुओं से प्रार्थना की है कि उन्हें अपने इस जात्यापमान के चेलैंज का उत्तर देने के लिये संगठित होना चाहिये और अपनी पाचन शक्ति बढ़ा कर जातिपांति से ऊपर उठकर इस प्रकार के घातक व विनाशक आक्रमणों का सामना करने के लिए मैदान में उतरना चाहिए।

किन्तु हिन्दु जाति के इस जीवन मरण के महान् संकट व अपमान के चेलैंज की प्रतिक्रिया में किसी भी तथाकथित हिन्दुत्व रक्षक संगठन अथवा संस्था की ओर से किसी चिन्ता निश्चय एवं क्रियाशीलता का भाव प्रकट नहीं किया गया। इतना बड़ा अपमान, इतना भयानक संकट और इतना भीषण पतन सम्मुख होने पर भी हिन्दु की आत्मा सर्वथा प्रसुप्त है। आखिर क्यों? इसका कारण जाने बिना ही महाशय जी व दूसरे हिन्दु हितैषी नेतागण बार बार हिन्दुओं से अपमानों के चेलैंज के जवाब की अपील करते रहते हैं। किन्तु वे भूलते हैं कि पौराणिकता के पाप, पत्थरों की पूजा, अवतारों की प्रतीक्षा, अन्धविश्वासों व पाखण्डों एवं रूढ़िवादी रिवाजों की गन्दी व गहरी दलदल में फंसे हिन्दु समाज को इस बात की कोई चिन्ता न कभी पहले हुई थी और न अब है कि उसके धर्म जाति राष्ट्र व संस्कृति एवं समाज का निरन्तर ह्रास, विनाश, पतन व अपमान हो रहा है। रही इन पौराणिक हिन्दुओं की पाचन शक्ति की बात सो जन्म से ही सहस्रों जातियों उपजातियों व वर्गों एवं सम्प्रदायों में विभक्त परस्पर विरोधी विचारों मन्तव्यों व रूढ़ियों से पराभूत सामाजिक कुरीतियों असमानताओं अन्याय अत्याचारों एवं पाखण्डों पर आधारित हिन्दु समाज कभी दूसरों को पचाने योग्य हो सकेगा इस बात की कल्पना भी कोरी आत्म प्रवञ्चना ही है। केवल वेदोक्त आर्य समाज ही इस प्रकार के चेलैंजों का उत्तर दे सकता है। आर्य समाज के लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं हैं किन्तु उसे इसके लिए अपने में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा। आर्य समाज के महान् नेताओं ने आरम्भ से ही इस बात को जान लिया था कि हिन्दु जाति के पतन का मौलिक कारण उसका जाति पांति सम्प्रदायों एवं वर्गों में विभाजन है किन्तु सैद्धान्तिक रूप में जातिपांति का विरोध करते हुए भी आर्य समाज स्वयं आज तक पौराणिक हिन्दुओं के जातिपांति वर्ग व साम्प्रदायों के जाल में पूरी तरह फंसा हुआ है। आर्य समाज को इस दिशा में कोई व्यवहारिक मार्ग नहीं सूझ पड़ रहा है। मैं इस विषय में एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता हुआ आर्य समाज के कर्णधारों एवं समस्त आर्य तथा अन्य बन्धुओं से निवेदन करता हूँ कि इस समाधान पर विचार कर इसे व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील हों।

इस दिशा में सफल क्रियात्मक मार्ग यह है कि सभी आर्य पुरुष जो अपने को जाति वर्ग व साम्प्रदाय आदि का घटक न मान कर एक मात्र आर्य जाति का अंग मानते हैं, अपने नाम के साथ गुप्ता वर्मा, शर्मा, बाली, बंसल आदि वर्ग व साम्प्रदाय सूचक नामों व चिह्नों का सर्वथा परित्याग कर अपने नाम के साथ आवश्यक व अनिवार्य रूप से "आर्य" शब्द लिखा करें इस प्रकार जन्म से ही प्रत्येक बालक व बालिका के नाम के साथ आर्य शब्द लगाया जावे। पाठशाला में प्रवेश के समय सावधानता पूर्वक प्रत्येक बालक व बालिका के नाम के साथ आर्य शब्द आवश्यक रूप से लिखवाया जाना चाहिए। किसी भी संस्कार, समय, अवस्था व अवसर पर आर्य परिवारों का अंग बनने वाले व्यक्तियों के नामों के साथ आर्य शब्द आवश्यक रूप से जोड़ा जाना चाहिए इस प्रकार आर्य जाति उसकी संस्था आर्य समाज का संगठन प्रयत्न मात्र पर निर्भर न होकर जन्मजात, पारिवारिक व स्वभाविक होगा। जन्म से ही अपने नाम के साथ मृदु व श्रेष्ठ आर्य शब्द और उससे स्वतः ही प्राप्त समस्त वैदिक संस्कारों से सुसंस्कृत बालक स्वभाव से ही आर्य व आर्य समाज का अंग होगा। इस प्रकार आर्यसमाज केवल एक संस्था मात्र न रह कर एक सुसंगठित बौद्धिक, राजनैतिक, सुसंस्कृत एवं प्रगतिशील विशाल जाति के रूप में स्वतन्त्र भारत का नेतृत्व करने में सफल होगी। सब प्रकार की मूर्खताओं पाखण्डों अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों को दासता से मुक्त जिसके प्रत्येक बालक का जन्म जात लक्ष्य ही **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** होगा। किन्तु यह तभी सम्भव है जब कि आर्य समाज आर्यों को पाप पंक में पतित हिन्दुओं की मूर्खता रुढिवादिता– एवं अन्याय पूर्ण सामाजिक बन्धन से निकाल सके और इसका एक मात्र प्रारम्भिक सफल मार्ग केवल यही है कि प्रत्येक आर्य परिवार के प्रत्येक सदस्य के नाम के साथ जन्म से ही आवश्यक रूप से आर्य शब्द जोड़ दिया जावे। इस प्रकार एक जन्मजात व स्वाभाविक आर्य जाति का संगठन होने से आर्य जाति का अंग बनने के इच्छुक अन्य मतावलम्बी लोगों के सामने यह समस्या न रह जाएगी कि वे हिन्दु बनकर किस वर्ग, सम्प्रदाय या जाति का अंग बनें। जन्म से ही जाति पांति के विचार से मुक्त आर्य जाति में इन लोगों का सम्मिलन दूध व पानी की भांति स्वतः ही हो जाएगा और इन नवागत आर्य बन्धुओं के सामाजिक सम्बन्ध गुण कर्म के अनुसार सरलता पूर्वक आर्य परिवारों में होने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।

आज तक आर्य समाज पौराणिक हिन्दुओं की जाति पाँति के बन्धनों में ग्रस्त होने के कारण तथाकथित हिन्दु समाज का अंग बनकर रह गया है। यदि यही गति रही तो आर्य समाज इस हिन्दु रूपी गन्दे नाले में मिलने वाली स्वच्छ जल की एक मोरी मात्र बन कर रह जाएगा। यदि आर्य समाज अपने प्रारम्भ से ही इस प्रकार का कार्य क्रम अपना चुका होता तो अब तक भारत से विनाशक जाति पांति का उन्मूलन होकर आर्य जाति का संगठन सुदृढ़ हो चुका होता और आज तक प्रस्तुत अनेक समस्याएं बहुत पहले से सुलझ चुकी होतीं। यदि आर्य समाज अब भी इस योजना को राष्ट्र जीवन का देश व्यापी आन्दोलन बनाकर जन-जन को स्व नाम के साथ पवित्रतम आर्य शब्द प्रयुक्त करने के लिए प्रेरित करें तो अति शीघ्र अत्यन्त उत्साहप्रद व क्रान्तिकारी परिणाम प्रस्तुत होंगे। आर्य जाति को जाति पांति से मुक्त व संगठित देखने के इच्छुक सभी भारतीय अपने नाम के साथ आर्य शब्द लिखने से गौरव का अनुभव करेंगे। और इस प्रकार एक पीढ़ी पूर्व तक भारत से वर्ग जाति व सम्प्रदाय सूचक शब्दों का सर्वथा लोप होकर आर्य जाति का विशाल संगठन खड़ा हो सकेगा।

कदाचित कुछ बन्धुओं का विचार यह हो कि नाम के साथ जाति वर्ग एवं सम्प्रदाय सूचक शब्द तो न लिखे जावे किन्तु वह नाम के साथ आर्य शब्द की अनिवार्यता के महत्व को स्वीकार न करें। इस दिशा में यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि

आर्य शब्द की अनिवार्यता के बिना यह समस्या हल न होगी। आज भारत के विशाल हिन्दु समाज में एक प्रतिशत व्यक्ति ही अपने नाम के साथ जाति सूचक या अन्य शब्द लगाते होंगे। सर्व साधारण कोई ऐसा शब्द प्रयोग नहीं करते तो भी जाति पांति वर्ग और सम्प्रदाय व्यक्ति के हृदय एवं मस्तिष्क को जकड़े हुए हैं। वास्तविकता यह है कि किसी भी अशुद्ध व असंगत वस्तु को हटाने के लिए उसके स्थान पर कोई अन्य उत्तम तत्व स्थापित करना आवश्यक है। जब तक रिक्त स्थान की पूर्ति न की जावेगी तब तक उस बुराई का उन्मूलन नहीं हो सकता जाति पांति वर्ग एवं सम्प्रदाय को सर्वथा विस्मृत एवं विनष्ट करने के लिए इसके स्थान पर कोई दूसरा श्रेष्ठ प्रतिकार देना ही होगा। और वह प्रतिकार केवल आर्य शब्द है। पुनश्चय प्रत्येक नाम व शब्द के पीछे एक ऐतिहासिक भावना व विशेष संस्कार होता है जो उस नाम व शब्द के साथ स्वतः व्यक्त होता है। आर्य समाज के आन्दोलन के आरम्भिक काल में भारत भर के अधिकांश श्रेष्ठ, सच्चरित्र, मेधावी और धनीमानी लोग आर्य समाज में सम्मिलित हुए किन्तु उनकी दूसरी पीढी का आर्य समाज से कुछ भी सम्पर्क नहीं रहा क्योंकि उनके नाम के साथ जन्म से कोई ऐसा आकर्षण व चिह्न नहीं था जो उन्हें पग पग पर उनके आर्यत्व का आभास कराता रहता और उन्हें आर्य समाज का अंग बने रहने के लिये विवश करता। परिणाम यह हुआ कि ऐसे सब लोग हिन्दुओं की जाति पांति का अंग मात्र बन कर रह गये। और अब उन महान् आर्य पुरुषों की अगली पीढ़ी पुनः धीरे २ पौराणिकता के पाप पंक में फंसती चली जा रही है। इस समस्त दुरवस्था से निकलने का एक मात्र प्रारम्भिक उपाय नाम के साथ आर्य शब्द की अनिवार्यता ही है।

जहां तक हिन्दु शब्द की महत्ता का प्रश्न है। वह किसी भी प्रकार आर्य शब्द का पर्यायवाची नहीं है क्योंकि हिन्दु शब्द किसी धर्म नस्ल व संस्कृति का सूचक न होकर भारत की राष्ट्रीयता और नागरिकता का द्योतक है। हिन्दु शब्द भारतीय शब्द का पर्यायवाची है और हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि पितृभूमि एवं पुण्यभूमि मानने के कारण प्रत्येक आर्य प्राकृतिक रूप में स्वतः ही हिन्दु अथवा भारतीय है। मैं समस्त आर्य पुरुषों प्रतिनिधि सभाओं प्रचारकों एवं हिन्दु जाति के शुभ चिन्तकों से प्रार्थना करता हैं कि वे जाति पांति उन्मूलन एवं राष्ट्रीय संगठन तथा शुद्धि की सफलता के लिए उपर्युक्त विचारों के प्रकाश में नामाग्र आर्य शब्द की महत्ता को हृदयगंम कर इस कार्यक्रम को राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का रूप देकर भारतीय राष्ट्र को संगठन सूत्र में आबद्ध करें। फिर मौलाना हसामुद्दीन जैसे समस्त मौलाना और पादरियों के चेलेंज का जबाव देने की सामर्थ्य इस हिन्दु जाति में स्वतः स्फूर्णा लेती हुई प्रतीत होगी और किसी भी आक्रमण व कठिनाई का सामना करने में समर्थ आर्य जाति का विशाल संगठन विश्व में चक्रवर्ती आर्य राज्य का ऋषियों का स्वप्न साकार करने में सफल होंगे। आओ बढ़ें।

दो सनातन सत्ताएं

लेखक पं० रामचन्द्र देहलवी

श्री पण्डित जी की

तर्क युक्त, अकाट्य प्रमाणों से विभूषित

जीव प्रकृति के अनादित्व पर अपूर्व

पुस्तक। मूल्य १) मात्र

प्राप्ति स्थान :

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८, नई सड़क, देहली

साहित्य-परिचय

दो सनातन सत्ताएं—लेखक श्री पं० रामचन्द्र देहलवी, प्रकाशक—गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली। पृष्ठ संख्या १०२। सजिल्द पुस्तक मूल्य १)

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, उद्भट तार्किक एवं शास्त्रार्थ महार्थी पं० रामचन्द्र जी देहलवी से कौन व्यक्ति परिचित नहीं होगा? आपने अपने जीवन में सैंकड़ों शास्त्रार्थ किये और सहस्रों व्याख्यान दिये। जनता के निरन्तर आग्रह पर पं० जी ने अपने कुछ विचारों को इस पुस्तक में लेख बद्ध किया है। प्रस्तुत पुस्तक में कुरान और बाइबल से पण्डित जी ने जीव और प्रकृति का अनादित्व अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त कुरान और बाइबल के कुछ महत्वपूर्ण प्रमाण भी एकत्रित कर दिए हैं। ईसाई और मुसलमानों से पूछने योग्य कुछ प्रश्न भी दिये हुये हैं। अन्त में फारसी और अरबी के कठिन शब्दों के आर्य भाषा में अर्थ तथा शास्त्रार्थ निश्चित करने के नियम देकर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी गई है।

बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई आकर्षक मुखपृष्ठ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया है। हम इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार चाहते हैं। प्रत्येक आर्य समाज और आर्य परिवार में इसकी एक प्रति होनी ही चाहिये।

यज्ञचिकित्सा—लेखक डा० श्री फुन्दनलाल जी वर्तमान राष्ट्रीय संन्यासी एम० डी०। पृष्ठ संख्या ३२८ मूल्य अजिल्द ४) ५० न. पै. सजिल्द ५)

श्री डा० फुन्दन लाल जी ने १९०४ में क्षय रोग की सफल चिकित्सा खोजने की प्रतिज्ञा की और ४५ वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् उन्होंने यज्ञ के द्वारा क्षय रोग उन्मूलन की सफल चिकित्सा खोज निकाली। अपने ४५ वर्ष के अनुभवों को डा० महोदय ने विस्तार पूर्वक इस पुस्तक में लिखा है। पुस्तक में क्षय रोग के इतिहास से लेकर उसके लक्षण निदान और सफल चिकित्सा सभी कुछ लिखा हुआ है। रोगी की दिनचर्या, हवन के मन्त्र और सामग्री आहार और विहार सभी बातों पर अत्युत्तम रीति से प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में सारी बातें अपनी खोज और अनुभव के आधार पर ही लिखी गई है। इस पुस्तक के आधार पर कोई भी व्यक्ति अपनी चिकित्सा स्वयं कर सकता है। पुस्तक न केवल रोगियों के लिए ही उपयोगी है अपितु स्वस्थ व्यक्ति भी इस पुस्तक में वर्णित प्राकृतिक नियमों पर चल कर अपने आपको रोगों से बचा कर दीर्घायु प्राप्त कर सकते हैं।

इस सुन्दर प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई और अभिनन्दन के पात्र हैं।

गंगोत्री दर्शन—लेखक श्री महावीर जी गहलोत एम० ए० शास्त्री। प्रकाशक—राजस्थान पुस्तक मन्दिर मेड़ती द्वार अन्दर जोधपुर। पृष्ठ संख्या २०८ मूल्य ४)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने अपनी गङ्गोत्री यात्रा का वर्णन किया है। वर्णन बड़ा ही सजीव रोचक और हृदयहारी है। भाषा में प्रवाह और ओज है एक बार पुस्तक हाथ में लेकर छोड़ने को दिल नहीं चाहता। यदि मैं यह कह दूं कि पुस्तक उपन्यास से भी अधिक रोचक है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। पुस्तक में लेखक ने अपनी दिनचर्या तथा खाने पीने और सोने बैठने का वर्णन

न करके वस्तुतः गङ्गोत्री यात्रा और उसके दर्शनीय स्थानों का वर्णन किया है। इस पुस्तक में ब्रह्मचारी सुन्दरानन्द जी की 'उत्तरी हिमयात्रा' भी जोड़ दी गई है। जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

पुस्तक में अनेक चित्र और मान चित्र भी दिये हैं। गंगोत्री की यात्रा करने वालों के लिए 'यात्रा संकेत' का भी एक परिशिष्ट भी जोड़ा गया है। मुखपृष्ठ और बाह्य आकर्षण भी बड़ा ही सुन्दर है। उत्तम कागज और सुन्दर छपाई तथा मूल्य भी उचित ही है।

हमारी दृष्टि में अब तक ऐसी अन्य कोई पुस्तक नहीं आई। इस उत्तम पुस्तक को लिखने पर हम लेखक और प्रकाशक को हार्दिक बधाई देते हैं।

वैदिक भारत में यज्ञ और उसका अध्यात्मिक स्वरूप—लेखक श्री मुनि देवराज विद्यावाचस्पति

। प्रकाशक—हरियाणा साहित्य संस्थान, पो० गुरुकुल झझर, जि० रोहतक। पृष्ठ संख्या २०८ मूल्य २)

भारत यज्ञ प्रधान देश रहा है। परन्तु बीच में एक ऐसा युग आया कि लोग यज्ञ के वास्तविक अर्थ को भूल गये और यज्ञ में पशु हिंसा आदि होने लगी।

प्रस्तुत पुस्तक में यज्ञों के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। यज्ञ का अर्थ क्या है? यज्ञ का उद्देश्य क्या है? ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का स्वरूप क्या है? इत्यादि अनेक बातों पर पुस्तक में बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला गया है। इन बातों पर विचार करते हुये भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ, यज्ञ और संस्कारों का सम्बन्ध, वेद काल, यज्ञ मुक्ति का साधन है आदि बातों पर भी प्रभूत प्रकाश डाला है। पृष्ठ १३१ पर अग्निष्वात्ता आदि के जो अर्थ दिये हैं वे वस्तुतः पढ़ने योग्य हैं। पुस्तक के तीसरे अध्याय में महाभारत और पुराण आदि से अनेक उद्धरण देकर यह सिद्ध किया गया है कि यज्ञों में पशु हिंसा नहीं होती थी। पुस्तक पठनीय और मनन करने योग्य है। छपाई और कागज साधारण है।

नेहरू : उत्थान और पतन—

लेखक—आचार्य विदेह। प्रकाशक—देव प्रकाशन बाबू मोहल्ला, अजमेर। पृष्ठ संख्या २४५ मूल्य तीन रुपया।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रतीत होता है पुस्तक में प्रधान मन्त्री पं० नेहरू के उत्थान और पतन की कहानी है। अपने व्यक्तित्व पोषण के लिये नेहरू जी ने किस प्रकार देश के साथ खिलवाड़ की है, उन्होंने देश के साथ द्रोह किया है काश्मीर की समस्या को किस प्रकार उलझाया है, अनैतिकता भ्रष्टाचार आदि को किस प्रकार प्रोत्साहन दिया है—इस प्रकार की अनेक बातों का रोमांचकारी वर्णन है। कागज साधारण परन्तु छपाई उत्तम है। पुस्तक तथ्य पूर्ण एवं रोचक है तथा पठनीय है।

'विद्यार्थी'

धार्मिक परीक्षायें

सरकार से रजिस्टर्ड आर्य साहित्य मण्डल लि. अजमेर द्वारा संचालित भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद् की विद्या विनोद, विद्यारत्न, विद्याविशारद, विद्यावाचस्पति परीक्षायें आगामी जनवरी में समस्त भारत में होंगी। कोई किसी भी परीक्षा में बैठ सकता है। प्रत्येक परीक्षा में सुन्दर सुनहरा उपाधि पत्र प्रदान किया जाता है। धर्म के अतिरिक्त साहित्य इतिहास, भूगोल, समाज विज्ञान आदि का कोर्स भी इनमें सम्मिलित है। निम्न पते से पाठ-विधि व आवेदन पत्र मुफ्त मंगाकर केन्द्र स्थापित करें।

डा० सूर्यदेव शर्मा एम. ए. डी. लिट्

परीक्षा मन्त्री आर्य विद्या परिषद् अजमेर।

नव ग्रह पूजा समीक्षा

[लेखक—वैद्य रामगोपाल शास्त्री दिल्ली]

पौराणिक विचारों के हिन्दू मुंडन, यज्ञोपवीत विवाह तथा गृहप्रवेश आदि संस्कारों में पहले नवग्रहों की पूजा करते हैं। उनका विश्वास है कि ये ग्रह मनुष्य के भाग्य के बनाने वाले हैं। यदि इनकी पूजा की जावे तो सब कार्य निर्विघ्न हो जाते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि इन ग्रहों का अधिष्ठात्री देव चेतन है, जो पूजा किये जाने के कारण हर प्रकार की शान्ति, सुख तथा कल्याण का देने वाला है।

यह नवग्रह पूजन वेदादि शास्त्रों में कहीं नहीं आया। आश्चर्य इस बात का है कि जिस जिस ग्रह के साथ पूजा के लिये जो जो मन्त्र जोड़ा गया है, उस का सम्बन्ध महीधर और उवट जो यजुर्वेद भाष्यकार हैं और पौराणिक मतावलम्बियों के प्रामाणिक भाष्यकार हैं, उन्होंने भी मन्त्रों को ग्रहों के सम्बन्ध में नहीं लिखा। प्रतीत होता है कि यह ग्रह पूजा प्राचीन काल की नहीं।

वे नव ग्रह ये हैं १. सूर्य, २. चन्द्रमा ३. मंगल (भौम) ४. बुध, ५. बृहस्पति, ६. शुक्र, ७. शनि, ८. राहु, ९. केतु।

इन जड़ ग्रहों की पूजा वेद मन्त्रों के साथ करते हैं और साथ ही इन ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करते हैं। हर एक ग्रह के साथ एक एक श्लोक आवाहन प्रार्थना का भी पढ़ते हैं। इस लेख में प्रत्येक मन्त्र, जिस को वे ग्रहों की पूजा में पढ़ते हैं, उस का अर्थ किया जावेगा और सिद्ध किया जायेगा कि इन मन्त्रों का उन ग्रहों की पूजा के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों में जहां जहां मन्त्रों का विनियोग आता है, वहां पर कहीं भी इन मन्त्रों का इन नौ ग्रहों के साथ विनियोग नहीं आया। इस से प्रतीत होता है कि यह नवग्रह पूजा नवीन है, प्राचीन नहीं। सूर्य चन्द्र मंगल आदि ग्रह तो सब जड़ हैं। इन ग्रहों (तारों) से सुख की प्रार्थना करना बुद्धि को तिलांजलि देना है। कल्याण की प्रार्थना तो सर्वव्यापक परमात्मा से करनी चाहिये जो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। उस परमात्मा को छोड़ कर शुक्र, शनि आदि तारों से प्रार्थना करना वेद विरुद्ध है तथा लोगों को भ्रम जाल में फंसाना है।

सूर्य पूजन

प्रथम ग्रह सूर्य है। इस की पूजा से पहले एक श्लोक पढ़ा जाता है जिस से सूर्य का आवाहन (बुलावा) किया जाता है। वह श्लोक यह है।

दिवाकरं सहस्राक्षं ब्रह्माद्यैरमरैः स्तुतम् ।
लोकनाथं जगच्चक्षुं सूर्यमावाहयाम्यहम् ॥

अर्थः—मैं सूर्य को (आवाहन) बुलाता हूँ जो दिन का बनाने वाला, सहस्र नेत्रों वाला, लोक का स्वामी जगत् का चक्षु, ब्रह्मादि देवताओं से भी स्तुति किया गया है। इस श्लोक से सूर्य का आवाहन करके सूर्य ग्रह सम्बन्धी मन्त्र पढ़ा जाता है। इस मन्त्र के पढ़ने के अनन्तर, सूर्य को नमस्कार करके जल आदि पदार्थों से पूजन करके, फिर प्रार्थना की जाती है कि वह सूर्य मुझ पर कृपा करे। वह प्रार्थना का श्लोक यह है।

पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः पद्मद्युतिः पद्मतुरगवाहः ।
दिवाकरो लोकगुरुः किरीटीमयि प्रसादं विदधातु सूर्यः ॥

अर्थः—कमलासन अर्थात् कमल पर बैठा हुआ

कमल के तुल्य ज्योति वाला, जिसका घोड़ा भी कमल है जो लोगों का गुरु, जिसकी दो भुजाएं हैं और जिस के सिर पर मुकुट है ऐसा सूर्य ग्रह मुझ पर कृपा करे।

सूर्य ग्रह का वेदमन्त्र

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंच।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।
यजु० अध्याय ३३ मन्त्र ४३॥

अर्थः—(आकृष्णेन) आकर्षण करने वाले (रजसा) लोक से (वर्तमानः) युक्त (सविता) सूर्य संसार में (अमृतं मर्त्यंच) अमृत और मृत्यु को (निवेशयन) स्थापित करता हुआ (हिरण्यमयेन रथेन) सुनहरी रथ से (भुवनानि पश्यन्) लोकों को दिखाता प्रकाशित करता हुआ (देवः) दिव्य गुण युक्त सूर्य (आयाति) आता है।

भावार्थः—इस मन्त्र में सूर्य अन्य ग्रहों को आकर्षण करता है। यह वैज्ञानिक भाव प्रकट किया गया है।

(२) सूर्य असंख्य प्राणियों को अपनी रश्मि द्वारा जीवन देने से अमृत का दाता है और असंख्य रोगोत्पादक कृमियों को अपनी रश्मियों द्वारा नष्ट करने से मृत्यु का भी दाता है।

समीक्षा

इस मन्त्र को पढ़कर पौराणिक लोग सूर्य ग्रह की पूजा करते हैं। इस मन्त्र में सूर्य की पूजा का कहीं भी वर्णन नहीं, किन्तु उस के गुणों का वर्णन है। सनातन धर्म के मान्य यजुर्वेद भाष्यकार उवट और महीधर ने भी इस मन्त्र को सूर्य ग्रहपूजा में में नहीं लगाया। प्रतीत होता है कि यह ग्रहपूजा उवट और महीधर के पश्चात् चली है पहले नहीं थी।

२ चन्द्र ग्रह

दूसरा ग्रह जिस की पूजा की जाती है चन्द्र है, उसका आवाहन इस श्लोक से करते हैं।

हिमरश्मिं निशानाथं तारापत्यमृतोद्भवम्।
ओषधीनां राजानं सोममावाहयाम्यहम्॥

अर्थः—ठंडी किरणों वाले रात्रि के स्वामी, तारों के अधिपति, अमृत से उत्पन्न हुए हुए, ओषधियों के राजा, सोम (चन्द्र) का मैं आवाहन करता हूं।

आवाहन करने के अनन्तर चन्द्र ग्रह का मन्त्र पढ़ा जाता है और उसको नमस्कार करके उस की पूजा की जाती है। पूजा के पश्चात् चन्द्रमा से प्रार्थना की जाती है कि वह मेरा कल्याण करे।

प्रार्थना

श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च श्वेतद्युतिदण्डकरो द्विबाहुः। चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी श्रेयांसि मह्यं विदधातु देवः॥

अर्थः—श्वेत वस्त्रों वाला, श्वेत भूषण वाला, श्वेत प्रकाश वाला, दण्ड को धारण करने वाला, दो भुजाओं वाला, वरों का दाता, मुकुट धारी चन्द्र मेरे लिये कल्याण धारण करे। इस प्रार्थना में भी चांद को मनुष्य की भांति दो भुजाओं वाला तथा वर देने वाला लिखा है।

चन्द्र पूजा का मन्त्र

ओ३म् इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥
य० वेद ९। ४०॥

शब्दार्थः—(देवा) हे विद्वानों! (महते क्षत्राय) महान् क्षात्र धर्म रूप राज्य स्थापन के लिये (महते ज्यैष्ठाय) महान् ज्येष्ठ-उच्च गुणों के उत्पन्न करने के लिये (महते जानराज्याय) महान् जानराज्य अर्थात् प्रजातन्त्र राज्य के लिये (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति के (इन्द्रियाय) वीर्य बल बढ़ाने के लिये तुम (इमं) इस नाम के (अयुष पुत्रं) अमुक नाम वाले पिता के पुत्र (अमुष्यै पुत्रं) अमुक नाम वाली माता के पुत्र को (अस्यैविशे) अमुक नाम वाली प्रजा के लिये (इमं) इस (असपत्न) शत्रु रहित व्यक्ति को (सुवध्वम्) निर्वाचित करो (राष्ट्र गद्दी पर बैठने के लिये (एषः वः) यह चुना हुआ

व्यक्ति, तुम्हारा (राजा सोमः) सौम्यगुण युक्त राजा हो (अस्माकं) हम (ब्राह्मणानां) विद्वानों का भी राजा वही होगा।

भावार्थः—(१) इस मन्त्र में जानराज्य (प्रजा-तन्त्र राज्य) का वर्णन है।

(२) जानराज्य क्षात्रबल युक्त तथा महान् ज्येष्ठ हो यह दूसरा भाव है।

(३) यह राज्य इन्द्र अर्थात् निर्वाचित राष्ट्रपति के बल को बढ़ाने वाला हो यह तीसरा भाव है।

(४) राष्ट्रपति चुनने के समय वह व्यक्ति सोम अर्थात् सौम्यगुण युक्त हो तथा असपत्न शत्रु रहित (विरोध रहित हो)। यह चौथा भाव है।

(५) प्रजा की भलाई के लिये इस प्रकार जो राजा राष्ट्रपति के रूप में चुना जावेगा उस देश के ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् भी उसी को राजा स्वीकार करें यह भाव है।

समीक्षा

उवट और महीधर ने भी यजमान के सम्बन्ध में इस मन्त्र के अर्थ लगाये हैं। उस का अर्थ यह है कि हे देवो! इस यजमान को शत्रु रहित करके प्रेरणा करो इसके लिए कि इसमें महान् क्षात्र, महती ज्येष्ठता और महान् जनों का आधिपत्य और आत्म-ज्ञान सामर्थ्य उत्पन्न करो। हे कुरु और पंचाल देश के लोगो। तुम्हारा खदिरवर्मा राजा हो। हम ब्राह्मणों का सोम (चन्द्र अथवा सोमवल्ली ओषधि) राजा हो। इन दोनों भाष्यकारों ने यहां चन्द्र ग्रह का वर्णन ही नहीं किया। महीधर ने तो चन्द्र के साथ सोम पद से सोम ओषधि का भी ग्रहण किया है। सर्वानुक्रमणी में भी इस मन्त्र को यजमान प्रकरण में लगाया है।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि चन्द्रग्रह की पूजा सनातन धर्म्मियों में भी प्राचीन काल में नहीं थी।

३. मंगल ग्रह

तीसरा ग्रह मंगल है जिस की इस श्लोक से आवाहना की जाती है।

(आवाहन)

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्तेजः समप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च भौममावहयाम्यहम्॥

अर्थ—पृथिवी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बिजली के तुल्य तेजस्वी कुमार, भौम (मंगल ग्रह) जिसके हाथ में शक्ति शस्त्र है उसका मैं आवाहन करता हूँ आवाहन के अनन्तर, मंगल ग्रह का मन्त्र पढ़ा जाता है। उस की पूजा की जाती है तत्पश्चात् नमस्कार करके नीचे लिखे श्लोक से प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना

रक्तांबरो रक्तवपुः किरीटी
चतुर्भुजो मेषगतो गदाभृत्।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली
सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः॥

अर्थ—लाल वस्त्रों वाला, लाल शरीर वाला मुकुट धारी, चार भुजाओं वाला, मेष राशि में पहुंचा हुआ, गदा,—शक्ति तथा शूल जिसके हाथ में है, ऐसा शान्त स्वरूप भूमि का पुत्र **मंगल** मेरे लिए वरदाता हो। आवाहन और प्रार्थना के श्लोकों में मंगल ग्रह को भूमि का पुत्र लिखा है। इसकी भुजाएं चार और अनेक शस्त्रधारी लिखा है।

पूजा का मन्त्र

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपा ᳬ रेताᳬसि जिन्वति॥ यजु० ३। १२॥

अर्थ—यह अग्नि (दिवः) द्युलोक का (मूर्धा) शिरस्थानी है और (ककुत्) महान् है। (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का पति है (अपां) जलों के मध्य में जो (रेतांसि) वीर्यरूप उत्पादक शक्ति है उसे यह अग्नि (जिन्वति) पोषण करता है।

समीक्षा

इस मन्त्र को सर्वानुक्रमणी, उवट, महीधर तथा अन्य भाष्यकारों ने अग्नि अर्थ में लगाया है। यहां पर मंगल, (भौम) ग्रह का नाम मात्र भी नहीं। न जाने पौराणिकों ने इस अग्नि की स्तुति

करने वाले मन्त्र को मंगल ग्रह की पूजा में कैसे लगा लिया।

आवाहन और प्रार्थना के श्लोकों में इसे भूमि से से उत्पन्न हुआ २ लिखा है; परन्तु इस वेद मन्त्र में अग्नि को पृथिवी का पति लिखा है पुत्र नहीं वेद में कोई पद ऐसा नहीं जो मंगल ग्रह से सम्बन्ध रखता हो।

४. बुधग्रह

चौथा ग्रह बुध है जिस की पूजा की जाती है उसका आवाहन इस श्लोक से किया जाता है।

आवाहन

बुधं बुद्धिप्रदातारं सोमवंशविवर्धनम् ।
यजमानहितार्थाय बुधमावाहयाम्यहम् ॥

अर्थ—बुद्धि दाता, सोमवंश की वृद्धि करने वाले बुध ग्रह को यजमान के हित के लिए बुलाता हूं इस आवाहन के अनन्तर मन्त्र की पूजा और नमस्कार किया जाता है। इसके पश्चात् इस श्लोक से प्रार्थना की जाती है।

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो दंडधरश्च हारी।
चर्मासिधृक् सोमसुतः प्रशान्तः
सिंहाधिरूढो वरदो बुधश्च ॥

अर्थ—पीले वस्त्रों वाला, पीले शरीर वाला, मुकुटधारी, चार भुजाओं वाला, दंडा और चमड़े की तलवार जिसके हाथ में हैं ऐसा शान्त स्वभाव वाला सोम का पुत्र सिंह पर बैठा हुआ बुध मेरे लिए वरदाता हो।

मन्त्र

उद्बुद्ध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि
त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्वि
श्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० १५ । ५४ ॥

अर्थ—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (उद्बुध्यस्व) तू हमारे हृदयों में प्रकाशित हो (प्रतिजागृहि) और हमें जागरूक अर्थात् शुभ कर्मों के लिए सावधान कीजिए। हे भगवन् ! इस उपासक को इष्ट और पूर्त्त के साथ संयुक्त करो। (अस्मिन् सधस्थे) इस लोक में (अध्युत्तरस्मिन) परलोक में सब विद्वान् और यह यजमान (सीदत) सुख से सदा स्थिर रहे।

समीक्षा

इस मन्त्र को उवट और महीधर ने यज्ञ अग्नि में लगाया है और प्रार्थना की है कि यह यजमान अन्य देवों के साथ उत्कृष्ट लोक में निवास करे। इस मन्त्र में बुध ग्रह का नाम भी नहीं। आरम्भ में 'उद्बुध्यस्व' बुध धातु का लोट लकार की क्रिया का रूप है। उस क्रिया से बुध नाम संज्ञा अर्थात् Noun बना कर संसार को अन्धकार में डाला गया है। जब इसमें बुध पद ही नहीं तो इस मन्त्र से बुध ग्रह की पूजा कैसे सिद्ध हो सकती है। आवाहन के श्लोक में बुध को बुद्धि प्रदाता लिखा है। क्या जड़ ग्रह में चेतनता और बुद्धि है, जो हमें बुद्धि प्रदान करेगा। इस युग में जब वैज्ञानिक चन्द्रादि ग्रहों को राकेट भेज रहे हैं और सिद्ध करते हैं कि ये चन्द्र बुधादि तारे भी हमारी भूमि की तरह जड़ ग्रह हैं। उनसे बुद्धि मांगना अपनी बुद्धि को तिलांजलि देना है।

५. बृहस्पति

पांचवाँ ग्रह बृहस्पति है। उसके आवाहन के लिए यह श्लोक पढ़ा जाता है।

आवाहन

बुद्धिश्रेष्ठांगिरः पुत्रं देवानाँ च पुरोहितम् ।
शक्रस्य मन्त्रिणं नित्यं गुरुमावाहयाम्यहम् ॥

अर्थ—बुद्धि में जो श्रेष्ठ, अंगिर के पुत्र, देवों के पुरोहित, इन्द्र के मन्त्री गुरु (बृहस्पति) का मैं आवाहन करता हूँ। इस श्लोक से आवाहन करके वेद मन्त्र द्वारा बृहस्पति की पूजा की जाती और उसे नमस्कार किया जाता है। अन्त में प्रार्थना के लिए श्लोक पढ़ा जाता है।

(शेष पृष्ठ १६ पर)

सातों लोकों की सैर

❀ धर्मेन्द्र शास्त्री व्याकरणाचार्य

प्रायः यह चर्चा प्राचीन काल से सुनी जाती रही है, कि संसार में सातों लोकों का ज्ञान ही मानव का वास्तविक ज्ञान है। हमारे पूर्वज ऋषि तथा मुनि भी सातों लोकों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये बड़ी कठोर तपस्या करते थे। तथा यह निश्चित भी है, कि आधुनिक वैज्ञानिक अरबों रुपये व्यय करके बड़े कठोर परिश्रम करने पर चाहे चन्द्र लोक की भी यात्रा न कर सकते हों, किन्तु हमारे ऋषि समाधि लगाकर ही विश्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया करते थे, और सातों लोकों की सैर करके अनुपम आनन्द का अनुभव किया करते थे।

आप इसमें आश्चर्य न करें, यह कोई अतिशयोक्ति अथवा जादू भी नहीं, अपितु सर्वांगीण सत्य है। जगद्गुरु महर्षि दयानन्द जी सरस्वती महाराज का किन शब्दों में, किस प्रकार कितना धन्यवाद एवं आभार अर्दशित किया जाए, जिन्होंने इस गुत्थी को ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) के पांचवें प्राणायाम मन्त्र में सुलझा दिया है:—

"ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः, ओ३म् तपः, ओ३म् सत्यम्" इस मंत्र का जप करते हुए कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ बार प्राणायाम करना चाहिये। योगदर्शन में लिखा है:—"तज्जपस्तदर्थभावनम्।"

अर्थात् भगवान् का जप उनके नामों के अर्थ पर विचार कर उन गुणों को धारण करने की धारण ही होता है। ठीक इसी आधार पर उपर्युक्त प्राणायाम मन्त्र का जप (अर्थ विचार) करने पर हमें सातों लोकों का दर्शन प्राप्त हो जायेगा।

१—यह तो सभी जानते हैं, कि हमारा शरीर मुख्यतया पृथ्वी का अंश होने से 'पार्थिव शरीर' कहलाता है। और यह भी स्पष्ट है कि जो मनुष्य अपने इस शरीर को सुन्दर स्वस्थ तथा नीरोग बनाता है, वह सांसारिक सुख भोगने योग्य होता है। शरीर से दुर्बल मनुष्य को ये सुख प्राप्त नहीं। तो जिस समय मनुष्य प्राणायाम द्वारा अपने शरीर को ठीक बना लेता है तो यह समझना चाहिये कि "भूः" प्रथम भूलोक या 'मनुष्य लोक' की सैर करता है।

२—जब मनुष्य प्रथम लोक की यात्रा का अर्थात् शरीर सम्बन्धी सुख प्राप्त कर लेता है। तो एक बड़ी भारी न्यूनता उन्नति में बाधक होती है। क्योंकि ऐसे मनुष्य को न तो किसी मानव का भय होता और ज्ञान भी नहीं, तो वह इन्द्रियों के जाल में फंस जाता है। इस प्रकार जो सुख उसे जितेन्द्रिय होकर प्राप्त हो सकता था वह नहीं मिलता। शरीर से स्वस्थ मनुष्य यदि अपनी इन्द्रियों को भी वश में कर ले, तो उस स्थिति में जो उसे सुख का अनुभव प्राप्त होगा वह प्रथम से उच्चकोटि का होगा। उसे "भुवः" नाम से दूसरा अर्थात् "**पितृलोक**" कहते हैं।

३—शरीर से स्वस्थ और जितेन्द्रिय मनुष्य को भी अनेक बार एक विशेष शक्ति दुखी बना देती है वह है मानसिक शक्ति (मन)। इस तीसरे लोक में पहुँचना अर्थात् मन को भी वश में करके अनुपम आनन्द की प्राप्ति करना कोई सरल कार्य नहीं। कहा है:–'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।' जिस मनुष्य ने प्राणायाम द्वारा इस तीसरे लोक पर भी विजय प्राप्त कर ली जिसका नाम "स्वः" **गांधर्व लोक** है। तो समझिये कि उसने इतना आनन्द प्राप्त कर लिया, जैसे मानों तीनों लोकों का राज्य प्राप्त कर लिया हो। और इस प्रकार के मनुष्य के चरणों में सांसारिक विभूतियां स्वयं ही आ पड़ती हैं।

४—चौथे लोक को "महः" शब्द से लिया गया

है जिसका लौकिक अर्थ "बन्धने मः वारणेहः" "बन्धनात् वारयति महः" । अर्थात् बन्धन से जो दूर हटावे। अथवा जिस लोक में जाने से मनुष्य बन्धनों से मुक्त हो जाये। इसे 'इन्द्रलोक' कहा गया है। जिस प्रकार संसार में सबसे अधिक उपकार तथा तपस्या करने वाले को इन्द्र कहा गया है। उसी प्रकार जब मानव प्रथम तीनों प्रकारों से कठोर तपस्या करके चौथे लोक में (स्थिति में) वेदोक्त शुभ कार्य करने लगे। उस समय जैसा उस मानव को आनन्द प्राप्त होगा वह प्रथम से चौगुना होगा। हम देखते हैं सारे दिन पाप करने वाला भी यदि एकाध पुण्य का कार्य कर लेता है, तो उस दिन वह भी अपने को सुखी अनुभव करता है, फिर जब शरीर से स्वस्थ, इन्द्रियों और मन को वश में किये हुए मानव शुभ कार्य करेगा, तो क्या ही अनुपम सुख लाभ होगा ? पाठक स्वयं विचार करें।

५—पांचवें लोक को "जनः" अर्थात् 'चन्द्रलोक' कहा जा सकता है। जिस प्रकार सभी प्राणियों में जन अर्थात् मानव ज्ञान के विषय में नेता है। इसी प्रकार जब मानवों में भी अतिमानव बनकर मनुष्य अन्तःकारण को स्वाधीन बना कर वेद-ज्ञान प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में अनुपम ज्ञानी बन जाता है। उस अवस्था में प्रथम चारों अवस्थाओं से भी विशेष सुख होता है। वास्तव में "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" के आधार पर संसार के उत्कृष्ट सुख का मूलाधार ज्ञान ही होता हैं। ज्ञान के विना किया हुआ शुभ से शुभ कार्य भी कई वार दुःख का कारण बन जाता है। अतः जो मानव अन्तःकरण को स्वाधीन बनाकर अर्थात् अन्तरात्मा की भय, शंका, लज्जा अथवा साहस की उत्पादक आवाज को सुन कर ज्ञानपूर्वक कार्य करते हैं, उन्हें जो सुख होता है, वह अवर्णनीय सुख होगा है। जैसे सभी प्रकाशों में आनन्ददायक प्रकाश चन्द्रमा का होता है जिसे सोमरस भी कहा जाता है उसी प्रकार का आनन्ददायक यह 'चन्द्रलोक' का सुख होता है।

६—छठे लोक को 'तपः' शब्द से 'सूर्यलोक' कहा जाता हैं। क्योंकि "तकारश्चौर तस्मात् पातितपः" जो चोरों से रक्षा करे, उसे तप कहते हैं। चोर होते हैं शरीर की वासनायें। जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार की पांचों सीढ़ियों द्वारा वेद का विद्वान् बन कर शरीर की सब वासनाओं से भिन्न-निर्दोष होकर कार्य करता है उसका तेज सूर्य की भांति संसार में फैलता है। इस प्रकार निर्दोष एवं वासना रहित ज्ञान पूर्वक कार्य करने की अवस्था को सूर्य लोक की सैर समझना चाहिए। इस प्रकार का मानव सूर्य की भांति अज्ञानान्धकार को नष्ट करके आलोकित होता है। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक तथा महर्षि दयानन्द जी महाराज भी इसी सूर्यलोक का नित्य भ्रमण करने वाले हुए हैं, जिनके कारण संसार आज भी ज्ञान का प्रकाश ले रहा है।

७—सातवें और अन्तिम लोक को 'सत्यम्' शब्द से कहा है जिसे 'ब्रह्मलोक' कहते हैं। "सः ईश्वरः यः गतिः—अर्थात् ईश्वरः गतिर्यस्य तत्सत्यम्" ईश्वर ही जिसकी गति है वह सत्यलोक होता है। जो मनुष्य अपने सतत प्रयत्नों से अपने अन्तिम लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। उसे इस प्रकार का सर्वोत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है जिसका वर्णन करना शक्ति से परे है। अर्थात् ३६ हजार बार जब सृष्टि की उत्पत्ति और प्रयल हो जायगी तब तक वह जीवात्मा उस परमानन्द को प्राप्त होता है या ब्रह्मानन्द में लीन हो संसार में अव्याहतगति अर्थात् स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करता है। इसका अनुमान सांख्यदर्शन के आधार पर इस प्रकार लगाया जा सकता हैः—

"समाधि सुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता" मोक्ष और समाधि के सुख का अनुमान मनुष्य अपनी सुषुप्ति अवस्था से जिसे गाढ़ निद्रा (गहरी नींद) कहते हैं और जो कि मनुष्य को कभी-कभी ही प्राप्त होती है, लगा सकता है। यह अवस्था स्वप्न की अवस्था से भी बहुत आगे की होती है। और इस प्रकार

(शेष पृष्ठ १५ पर)

आर्य कौन है ?

❀ सत्य भूषण "वेदालंकार" एम० ए०

इस छोटे से शब्द में कितना रहस्य है। असीम शक्ति का भंडार, अदम्य संकल्पों का स्रोत, सर्वोच्च ध्येय का प्रतीक, अनुपम आदर्शों का मूल आर्य है।

हमारी प्राचीन आर्य संस्कृति जातीय गौरव विशुद्ध परम्परा का उत्तराधिकारी कौन है ! किसने सर्वप्रथम नूतन सृष्टि की अरुणिम आभा में, सत्यता के स्वर्णिम विहान में, मदमाती ऊषा की प्रथम मुस्कान में नव-जागरण के, मंगल के उत्थान के वसुधैव कुटुम्बकम् के मधुर गीत गाये।

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः" ।

"स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" का जय घोष किसने किया ? धरती माता को वसुन्धरा किसने बनाया ? मानव को मानव किसने बनाया ? असभ्य, बर्बर हिंसक मानव जाति को सभ्यता के सर्वोच्च आसन पर किसने प्रतिष्ठित किया ? पशुत्व पर देवत्व की विजय पताका किसने फहराई ? "इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना वनपक्षि मनुष्याणां निग्रहानुग्रहेऽपि" की वीरता भरी घोषणा किसने की। अधर्म, पाप, अत्याचार, अनाचार का दलन करने में किसने अपने प्राणों की बाजी लगा दी ? "निशिचर हीन करौं मही भुज उठाय प्रण कीन्ह" की प्रतिज्ञा किसने की ?

आर्य का अर्थ है पूर्ण मानव। वह मानव, जिसमें शारीरिक, आत्मिक, बौद्धिक किसी प्रकार की न्यूनता न हो। महाभारत के उद्योग पर्व में कहा है, "न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, नदर्पमारोहतिचास्तयेति। न दुर्गतोऽस्मीति करोति कार्यं, तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥ वैर त्याग, अहंकार त्याग, प्रगतिशीलता, कष्ट में भी कर्तव्य परायणता आदि आर्य के लक्षण हैं। प्रसिद्ध आर्य कवि सिद्धगोपाल जी ने आर्य के लिये क्या ही सुन्दर शब्द लिखे हैं:—

आर्य वह जग में कहाता,
जो सदा कर्मण्यता का पाठ कण कण को पढ़ाता।
जो कभी रोना न जाने, किन्तु रोतों को हंसादे,
हंस रहे हों, दूसरों को देखकर उनको रूलादे ॥
देख दुखियों को दुःखी जो हों, उन्हें नेता बनादे।
कर विषमता दूर जग में सीख समता की सिखादे ॥
जो अनेकों संकटों में भी रहे हंसता हंसाता ॥

आर्य का यह लक्षण पढ़कर सहसा मेरे मन में प्रश्न होता है ?

"क्या हम आर्य हैं ?"

(१४ पृष्ठ का शेष)

का निरन्तर सुख जीवात्मा को ब्रह्मलोक में मिलता हैं। संक्षेपः—

१—मनुष्यलोक—शरीर को नीरोग एवं स्वस्थ बना कर।
२—पितृलोक—इन्द्रियों को वश में करके।
३—गन्धर्वलोक—मन को वश में करके।
४—इन्द्रलोक—उपकार एवं तप के कार्य करके।
५—चन्द्रलोक—वेद के विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त करके।
६—सूर्यलोक—माया और वासना रहित विश्व बन्धुत्व द्वारा।
७—ब्रह्मलोक—ईश्वर प्राप्ति द्वारा।

यदि हम नित्यप्रति प्रातः सायं शुद्ध पवित्र होकर सन्ध्या के समय इस प्राणायाम मन्त्र का जप करते समय इस प्रकार के इन अनुपम सुखों की भावना बनाएं, और अनुमान से भी उसके सुख का अनुभव करें, तो हम नित्य **"सातों लोकों की सैर"** कर सकते हैं।

मंगलमय भगवान् हमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे हम निरन्तर श्रद्धा और प्रेम के साथ भगवान् की उपासना ब्रह्मयज्ञ द्वारा करते हुए सातों लोक यात्रा से अर्श्व अनुपम सुख प्राप्ति के लिए दिन दूनी रात चौगुनी गति से अग्रसर होते रहें।

❀ मातुराम आर्य, रोहतक

प्राण अपान ?

ऋग्वेद मं० १० सूक्त १३७ का दूसरा मन्त्र

द्वाविमौवातौ आसिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु परान्यो वातु यद्रप ॥

हमारे सामने है इस का साधारण अर्थ इस प्रकार है कि (इमौ) ये (द्वौ) दो (वातौ) प्रबल वायु (वातः) हैं। एक तो (आसिन्धोः) समुद्र से (आ परावतः) दूर से (अन्यः) दूसरा (दक्षम् आवातु) जीवन प्राप्त करता है। (अन्यः) दूसरा (यत्रपः) जो मल (रोग) है उसको (परावातु) दूर उड़ा ले जाता है।

वे दो वायु कौन सी हैं ? एक है श्वास (oxygen) जो बाहर से भीतर नासिका द्वारा शरीर में आता है। दूसरा है प्रश्वास जो भीतर से बाहर ले जाई जाती है इसी को अपान (conbonic) कहते हैं। प्रश्नोपनिषत् प्रश्न तीन के पांचवें पाठ में स्पष्ट मिलता है कि—

"पायुस्थेऽपानम् चक्षुः श्रोत्रे मुख नासिकाभ्यां प्राणः"

नाभि के निचले भाग गुदा व मूत्रेन्द्रियों में जो वायु स्थित है वह अपान मलयुक्त—न सेवन करने योग्य वह अपान है। और आंखों, कानों, मुख और नासिका में चलने वाली प्राण वायु है। इसी को सूश्रुत निदान अ० १ सूत्र० १३ में—

"वायुर्यो वक्त संचारो सः प्राणो नाम देह धृक् ।
यो अन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चोप्यवलम्बते ॥"

यूं बताया गया है कि प्राण वह वायु है जो मुंह में चलता (बहता) है देह धारक है जो भोजन को भीतर दाखिल करता है और जीवनाधार है। इसी प्रकार—

"पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्यधः ।
समीरणः शकृन्मूत्रं गर्भं शुक्रार्त्तवान्वः" ॥
(सुश्रुत निदान अ० १। १९)

में आता है कि पचे पदार्थ नाभि के नीचे अपान वह वायु है जो नीचे की ओर मल मूत्र को खेंचती है और वीर्य को भी। अब महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज की अमर कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम से लेकर १६ वें संस्करणों (वैदिक यन्त्रालय अजमेरस्थ) में तीसरे समुल्लास में प्राण अपान की व्याख्या—प्राण=बाहर से वायु को भीतर लेना और अपान =भीतर से वायु को निकालना। इसके विरुद्ध वीसवें संस्करण से आगे आज तक के प्रकाशनों में है जो वायु बाहर से भीतर आती है वह अपान और जो भीतर से बाहर निकलती है वह प्राण ऐसा बराबर चला आ रहा है। इस असंगति के लिये विचार स्थल है। शास्त्रार्थ के अवसर पर प्रतिवादियों के पूछने पर महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज की कौन सी व्याख्या माननीय है और आर्योपदेशक शास्त्रार्थी की क्या गति होगी ? आर्य विद्वानों को अवश्य निर्णय करना उचित है।

———

(१२ पृष्ठ का शेष)

प्रार्थना

पीतांबरः पीतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तः ।
बिभ्रत्सुदंडं च कमंडलुं च
तथाक्षसूत्रं वरदोऽस्तु मह्यम् ॥

अर्थ—पीले वस्त्र वाला, पीले शरीर वाला, मुकुट धारी, चार भुजाओं वाला, देवताओं का गुरु शान्त स्वरूप, जिसने हाथ में सुन्दर डंडा कमंडलु पकड़ा हुआ है, जिसने अक्ष सूत्र धारण किया हुआ है, वह वरदाता बृहस्पति मेरे लिये कल्याणकारी हो।

मन्त्र

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हा द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋत प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ यजु० २६। ३ ॥ (सशेष)

अथर्ववेदीय अन्त्येष्टि-सूक्तालोचन

❀ आचार्य शिवपूजनसिंह जी 'पथिक' बी० ए०

पौराणिक वर्ग मृतकश्राद्ध मानता है पर वैदिक धर्मावलम्बी जीवितश्राद्ध मानते हैं। पौराणिकवर्ग मृतक-श्राद्ध की पुष्टि में अथर्ववेद का एक मन्त्र प्रस्तुत करता है। वह मन्त्र यह है:—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्ने आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

[अथर्ववेद काण्ड १८, सूक्त २, मन्त्र ३४]

सायणभाष्यम्:—ये पितरः भूमौ निखाताः निखननसंस्कारेण संस्कृता। खनु अवदारणे। कर्मणि निष्ठा। "जनसनखनां सञ्झलोः" इति आत्वम्। ये च पितरः परोप्ताः परावपनं दूरदेशे काष्ठवत्परित्यागः। तेन संस्कृताः। ये च दग्धाः अग्निना संस्कृताः। ये च उद्धिता संस्कारोत्तरकालम् ऊर्ध्वदेशे पितृलोके स्थिताः। एवं बहुविधावस्थितान् तान् सर्वान् पितॄन् हविषे अत्तवे अस्माभिर्दत्तं हविर्भक्षयितुं हे अग्ने आवह आनय।

"क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् हविःशब्दाच्चतुर्थी। अद भक्षणे इत्यस्मात् "तुमर्थेसेसेन०" इति तवेनप्रत्ययः।

ऋ० कु० प० रामचन्द्र शर्मा कृत सायणभाष्यानुवादः—"जो पितर भूमि में गाड़ने के संस्कार से संस्कृत हुए हैं और जो अग्नि से संस्कृत हुए हैं और जो संस्कार के अनन्तर ऊपर के लोक पितृलोक में स्थित हैं, ऐसे अनेक प्रकार के पितरों को हे अग्निदेव! आप हवि का भक्षण करने के लिए लाइए।"[1]

पं० कालूराम शास्त्री:—"जो गाड़े और जो वन में पड़े रह गये तथा जो फूँके एवं जो जीवित ही स्वर्ग चले गये, हे अग्निदेव! तुम इन सब पितरों को हवि खाने को बुला लाओ।"[2]

पं० अखिलानन्द शर्मा 'कविरत्न':—"हे अग्ने! हमारे जो पितर जमीन में गड़े हुए हैं, जो जल में बहाए गए हैं, जो अग्नि में जलाये गये हैं, जो ऊपर फैंके गये हैं—उन सबको हवि खाने के लिए आप बुलावें।"[3]

पं० माधवाचार्य शास्त्री:—"[ये] जिन (अजातदन्त और संन्यासाश्रमियों मृतकों के शरीरभूमि में [निखाताः] समाधिस्थ किये गये, [ये] और जिनके शरीर जलादि में [परोप्ताः] बहा दिये गये इत्यादि (अथर्ववेद काण्ड १८, सूक्त २, मन्त्र ३४) मन्त्रों में मृतकों का हीं पितर होना लिखा है।"[4]

पुनः—"वेद में मृतक शरीर को ठिकाने लगाने के चार विधान लिखे हैं—गाड़ना, जलादि में बहा देना, जलाना और जंगल में रख छोड़ना। धर्मशास्त्र में उक्त चारों विधियों की विभिन्न दशाओं में व्यवस्था बाँधी है, जैसे अजातदन्त और कुष्ठी आदि को भूमि में गाड़ना, शीतला आदि संक्रामक बीमारी से मरे को जल में बहा देना, सर्वसाधारण को जला देना और परमहंस आदि देहाध्यास रहित ज्ञानियों को वन में विसर्जित कर देना। 'ये निखाताः' आदि मन्त्र में उपर्युक्त चारों विधियों से संस्कार-पितृगणों का हविष्य खाने के निमित्त आवाहन किया

---

१. अथर्ववेद "संहिता मूल मन्त्र सायणभाष्य तथा सायणभाष्य के अनुकूल भाषानुवाद" द्वादश त्रयोदश-चतुर्दश पंचदश-षोड्श-सप्तदश और अष्टादश काण्ड, पृष्ठ ५६८-५६९. [सम्वत् १९८७ वि. में सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद में मुद्रित व प्रकाशित प्रथम संस्करण]

२. "आर्यसमाज की मौत" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २८७.

३. "वैदिक सत्यार्थप्रकाश" त्रयोदश समुल्लास, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २९०.

४. "लिखबद्ध शास्त्रार्थ डीडवाना (राजस्थान), पृष्ठ ४६ [धर्म प्रेस, कमलानगर, दिल्ली में मुद्रित]

गया है। दयानन्दी सात जन्म में इसका उत्तर नहीं दे सकते।"५

पं०श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी:—आपने अपने मासिक पत्र "वैदिक धर्म" वर्ष ३२, श्रावणं सं० २००८, अगस्त सन् १९५२ ई०, संख्या ८, पृष्ठ २२९ से २३२ तक "ब्रह्मपारायणयज्ञ की शास्त्रीयता" शीर्षक लेख प्रकाशित किया था यही लेख साप्ताहिक पत्र 'आर्य' अम्बाला छावनी, वर्ष ३३, अगस्त ५, सन् १९५२ ई० अंक १४ के "वेदाङ्क" पृष्ठ १८ से २० तक प्रकाशित हुआ था।

आपने "ये निखाता;....." मन्त्र का अर्थ किया है:—जो गाड़े गए हैं, जो मुर्दे जलाए हैं और जो (पक्षियों के खाने के लिए) ऊपर रक्खे हैं, हैं अग्ने उन सबको हवि के भक्षण करने के लिये यहाँ ले आ।"

पुनः आपने तथा पं० तड़िकान्त वेदालङ्कार ने अर्थ किया है:—(अग्ने) हे अग्ने! (ये निखाताः) जो पितर जमीन में गाड़े गये हैं और (ये परोप्ताः) जो पितर दूर वहा दिये गए हैं तथा (ये दग्धाः) जो जला दिए गए हैं (च) और (ये उद्धिताः) जो पितर जमीन के ऊपर हवा में रखे गए हैं, (तान् सर्वान्) उन सब पितरों को तू (हविषे अत्तवे) हवि भक्षणार्थ (आ वह) ले आ।

यहां पर चार प्रकार के श्मशान कर्म दर्शाए गये हैं। (१) गाड़ना, (२) वहाना, (३) जलाना और (४) हवा में जमीन पर खुला छोड़ना।

(१) गाड़ना—कुछ प्रेत जमीन में गाड़े जाते हैं जिनका कि अन्त्येष्टि-संस्कार अग्नि द्वारा नहीं किया जाता। ये कौन हैं, इस पर हमने थोड़ा सा विचार करना है। जो मनुष्य संन्यासी होकर अपना देह त्याग करते हैं उनके देह को न जलाने के लिए स्मृतियों में कहा गया है, क्योंकि संन्यासाश्रम में प्रवेश करते हुए पुरुष को सर्वमेध याग करना पड़ता है। इस याग में वह अग्नि सम्बन्धी सर्व कार्यों से मुक्त हो जाता है। अतएव उसे मरने पर अग्नि द्वारा नहीं जलाया जाता। संन्यासी के शरीर को जलाना चाहिए या नहीं, इस विषय में अभी तक हमें श्रुति का निश्चय ज्ञान नहीं है, पर स्मृति इनकार करती है। अतः 'निखात' से संन्यासी का ग्रहण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में खास करके मुसलमान व ईसाई लोग मुर्दों को न जलाते हुए गाड़ते हैं। अतः उनके प्रेतों का भी निखात से ग्रहण किया जा सकता है। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, मुर्दे की चार अवस्थायें हो सकती हैं। उनमें से एक निखात है।

(२) जलाना या (३) जल में वहाना—ये दो अवस्थायें खास कर हिन्दुओं में पाई जाती हैं।

(४) जमीन पर वायु में रखना—यह चौथी अवस्था पारसियों में पाई जाती है।

इस प्रकार ये चारों अवस्थायें वर्तमान समय में हमें मिलती हैं। वेद में मृतों के दो विभाग मिलते हैं (१) अग्निदग्ध अर्थात् जो अग्नि में जलाए जाते हैं तथा (२) अनग्निदग्ध अर्थात् जो अग्नि में नहीं जलाये जाते। अनग्निदग्ध में जलाने की अवस्था को छोड़कर शेष अवस्थायें आ सकती हैं।"...

उपर्युक्त अर्थ उनकी लिखी हुई 'यम और पितर' पुस्तक प्रथम संस्करण के पृष्ठ १६९-१७० से लिया गया।

इस भयंकर पुस्तक के सम्बन्ध में पौराणिक श्री माधवाचार्य शास्त्री लिखते हैं:—"यह पुस्तक अब भी हमारे पास सुरक्षित है जो इस प्रकार के दुराग्रही लोगों की आंखें खोल देने के लिये काफी है।"६

चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ:—

"(ये निखाताः) जो पृथ्वी में गाड़ दिए हैं, (ये पराउप्ता) जो दूर युद्ध क्षेत्र आदि देशों में कट

---

५. वही, पादटिप्पणी, पृष्ठ ४६,

[तुलना करो, विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत "दयानन्द तिमिर भास्कर तृतीय संस्करण, पृष्ठ १३४]

६. वही, पृष्ठ ५.

गये हैं, (ये च उद्-हिताः) और जो ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो गए हैं, (तान् सर्वान् अग्ने ! आवह हविषे अत्तवे) हे अग्ने परमेश्वर ! उन सब को हवि अर्थात् कर्मफल के भोग के लिए लोकान्तर को प्राप्त करा ।'७

समीक्षा

सात विद्वानों की सम्मति है कि अथर्ववेद १८।२।२४ में शव को गाड़ने जल-प्रवाह आदि का वर्णन है। यदि इनके अर्थ को माना जाय तो मृतकश्राद्ध को मानना पड़ेगा जो अनार्ष है। वास्तव में शव को जलाना ही सर्वोत्तम और आर्ष पद्धति है।

वेद में आया है:—"भस्मान्तं शरीरम्" (यजु० ४०।१५)

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती:—"इस शरीर का संस्कार (भस्मान्तम्) अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है।'८

श्री उव्वटाचार्य:—"...अथेदं स्थूलशरीरं कीदृशं तदा भवति भस्मान्तं भस्मैव भवति।"९

श्री महीधराचार्य:—"...अथेदं स्थूलशरीरमग्नौ हुतं सत् भस्मान्तं भस्मरूपं भूयात्।"१०

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र:—"और (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (भस्मान्तम्) भस्मरूप हो, अर्थात् स्थूल शरीर अग्नि में हुत होने से भस्म-रूप हो, यही इसका प्रयोजन है।" ११

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के अर्थ की पुष्टि तीन पौराणिक पण्डितों के अर्थ से होती है।

वेदों में परस्पर विरुद्ध बातें नहीं हैं, तब अथर्व-वेद में शव को गाड़ने व यजुर्वेद में जलाने का वर्णन हो यह परस्पर विरुद्ध बातें कैसे होंगी ? पाश्चात्य विद्वान् भी शव को जलाने की वैदिक प्रथा को मानने लगे हैं।

"माडर्न क्रीमेशन-इट्स हिस्ट्री एण्ड प्रैक्टिस" नामी प्रसिद्ध पुस्तक के रचयिता सर टाम्पसन महोदय ने दर्शाया है कि इटली आदि देशों में प्राचीन काल में यही प्रथा थी। इसकी दिन दिन यूरोप में अब वृद्धि हो रही है और सबसे उत्तम एकमात्र यही जलाने की क्रिया हो सकती है। इंगलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् जिनको पश्चिमी लोग आजकल वहां के तत्त्ववेत्ताओं का मुकुट मानते हैं, वे हर्बर्ट स्पेन्सर थे। जब इनका स्वर्गवास हुआ तो इनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार इनका मृतक शरीर जलाया गया जिसका भारी प्रभाव पड़ा। अब लण्डन में सरकारी श्मशान बन गये हैं और पदार्थ-विज्ञान (साइन्स) से प्रेम रखने वालों के सैंकड़ों मुर्दे प्रत्येक वर्ष जलाये जाते हैं। पारसियों के एक विज्ञानी दल ने मुर्दे जलाने आरम्भ कर दिये हैं।

मृतक शरीर जलाने के दो मुख्य लाभ हैं। उनको यूरोप की पण्डित-मण्डली मुक्त कण्ठ से स्वीकार कर चुकी है। वे लाभ ये हैं:—

(१) मृतक शरीर के जलाये जाने से किसी भी संचारक अथवा भयंकर रोग के रहने वा फैलने का भय नहीं रहता क्योंकि आग से बढ़कर कोई भी रोगनाशक पदार्थ नहीं है।

(२) थोड़े से स्थान में एक वर्ष में हजारों मुर्दे जलाये जा सकते हैं। कबरों के निमित्त सदैव के लिए व्यर्थ भूमि रुक जाने से कृषिकर्म तथा नगरों की आबादी को हानि पहुँचती है।" १२

महर्षि दयानन्द जी की स्पष्ट सम्मति

शव को जलाने के पक्ष में महर्षि जी की स्पष्ट सम्मति उनके शब्दों में दी जाती है—

सत्यार्थप्रकाश त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत की आलोचना करते हुए:—

---

७. "अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य" चतुर्थ खण्ड, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ४९.

८. "संस्कारविधि" अन्त्येष्टि प्रकरण.

९. "शुक्ल यजुर्वेद संहिता" चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १७९१-१७९२ [सन १९१५ चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी]

१०. वही पृष्ठ १७९२.

११. शुक्ल यजुर्वेद संहिता, मिश्रभाष्य, उत्तरार्द्ध, पृष्ठ १४०४. [संवत् १९५९ वि० बम्बई संस्करण]

१ . "संस्कारचन्द्रिका" तृतीयावृत्ति, पृष्ठ ७२४.

"मुर्दों को गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है, क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

(प्रश्न) देखो ! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है इसलिए गाड़ना अच्छा है।

(उत्तर) जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते ? और गाड़ते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया। अब दुर्गन्धमय मिट्टी से क्या प्रीति ? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो, क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझको भूमि में गाड़ देवें तो तो वह सुनकर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना छाती पर पत्थर रखना कौन सी प्रीति का काम है ? और सन्दूक में डाल के गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल वायु को बिगाड़ कर दारुण रीगोत्पत्ति करता है, दूसरा एक मुर्दे के लिए कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिए इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा करोड़ों मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है। न वह खेत, न बगीचा और न बसने के काम की रहती है। इसलिए सबसे बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना, क्योंकि उसको जल-जन्तु उसी समय चीर फाड़ के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़ कर जगत् को दुःखदायक होगा, उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूंच खायेंगे तथापि जो उसके हाड़ की मज्जा और मल सड़कर दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा। और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है, क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।"

इस उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट प्रकट हो गया कि शवों को जलाना चाहिये। संन्यासी और शिशु को गाड़ने व जल में प्रवाह करने की चर्चा स्मृतियों व गृह्य सूत्रों में है।‡

पं० सातवलेकर जी कहते हैं कि संन्यासी के शरीर को जलाने के विषय में श्रुति का प्रमाण नहीं मिला। इस विषय में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की स्पष्ट आज्ञा है कि:—

(मनुस्मृति अ० ६ श्लोक ४३ का अर्थ करते हुए पाद-टिप्पणी में):—"इस पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते। यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। यहां आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है। स्पर्श वा दाह कर्म छोड़ना नहीं है।"१३

यहां मनुस्मृति के आधार पर ही महर्षि दयानन्द जी महाराज ने संन्यासियों के दाह कर्म का विधान कर दिया।

संन्यासियों के दाहकर्म में वेद की साक्षी

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः
सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा
मृधो अभिमातीर्जयेम ॥
अथर्व० १८।२।५९॥

अर्थः—(हस्ताद् दण्डम् आददानः) जिसने हाथ

‡ देखो डा० राजबली पाण्डेय एम. ए. डी० लिट् कृत "हिन्दू संस्कार" पुस्तक प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३०७, ३४०, गृह्य सूत्रों के अनुसार केवल दो वर्ष से कम आयु के शिशुओं का ही दाह नहीं किया जाता, द्रष्टव्य, पारस्कर गृह्य सूत्र ३।१०।२॥ अनुपनीत बालकों और अविवाहित कन्याओं के लिए पितृमेध नहीं करना चाहिए—बौधायन पितृमेध सूत्र ३।६।१॥ "जिसके दांत न निकले हों, ऐसे शिशु के शव का प्रणव का उच्चारण करते हुए निखात कर देना चाहिए" —बौधायन पितृमेध सूत्र ३।६।३, "दो वर्ष से कम आयु के बालक का बिना दाह ही निखात कर देना चाहिए"— पारस्कर गृह्य सूत्र ३।१०।४,५। राजर्षि मनुजी "दो वर्ष से न्यून आयु के शिशु की मृत्यु पर न तो उसका अग्निसंस्कार ही मानते हैं और न उदक-दान ही"—मनुस्मृति ५।६७-७०। बौधायन तो बान्धवों की इच्छा होने पर दांत निकले हुए शिशुओं के दाह का भी अनुमोदन करते हैं—बौधायन पितृमेध सूत्र ३।६।४.

१३. "संस्कारविधि, संन्यास प्रकरण.

से दण्ड का परित्याग कर दिया है। अर्थात् जिसने हिंसावृत्ति का त्याग कर संन्यासाश्रम में प्रवेश कर लिया है, (श्रोत्रेण वर्चसा बलेन सह) और जो वेदाध्ययन रूपी प्रखर शक्ति से युक्त है, यदि ऐसा संन्यासाश्रम प्राप्त पुरुष (गतासोः) मर जावे तो उसके शव को (अत्रैव) पूर्वोक्त जलाने के लिए निर्मित वेदी में ही जलावें और शेष सब प्रकार के स्त्री-पुरुष (इह) इस लोक में (त्वम् वयम्) तुम और हम (सुवीराः) पुत्रादि सपरिवार (विश्वाः मृधः) समस्त दुःख, मोहादिकों (अभिमातीः) सम्यक् प्रकार से ज्ञानपूर्वक मापते हुए (जयेम) जीतें।"

इस मन्त्र पर भाष्य करते हुए, श्री सायणाचार्य जी 'संन्यासी' अर्थ न करते हुए 'ब्राह्मण'। अर्थ करते हैं। वे लिखते हैं:—"दण्डधारणं ब्राह्मणस्य विदितम्" दण्ड का धारण करना केवल ब्राह्मण का ही अधिकार है, यह ठीक नहीं क्योंकि दण्ड का धारण प्रत्येक द्विज के लिए ब्रह्मचर्य और संन्यासाश्रम में विधान किया गया है।

पूर्व मन्त्र में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम का प्रतिपादन है, ब्रह्मचर्याश्रम का नहीं है।

अथर्ववेद १८।२।५८ में सर्वसाधारण को अग्नि में शव को जलाने का आदेश है और स्वयं पं० सातवलेकर जी ने "यम और पितर" पृष्ठ १७५ में शव को जलाना अर्थ किया है।

पं० सातवलेकर जी 'ये निखाता".....वाले मन्त्र से चार प्रकार के पितरों को हविभक्षणार्थ बुलाते हैं जो जो केवल जीवित पितरों पर ही घट सकता है। मृत पितरों को हवि खाने के लिये बुलाना तो नितान्त पोपलीला है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने ग्रन्थों में स्थान स्थान पर प्रमाणों और युक्ति द्वारा मृत पितरों के श्राद्ध और उनके बुलाने का खण्डन किया है।

शिशु' को जलाने सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का कहीं लेख नहीं है पर जब वे मनुष्य मात्र को जलाने का विधान वेद (यजु० ४०।१५) से बतलाते हैं तो यह स्वयं सिद्ध है कि वे शिशुओं को भी जलाने के पक्ष में हैं।

इस सम्बन्ध में मैंने आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, धर्मार्यसभा के भूतपूर्व मन्त्री विद्वद्वर पं० धर्मदेव जी 'विद्यामार्तण्ड' सिद्धान्तालङ्कार, विद्यावाचस्पति को एक पत्र लिखकर पूछा था, तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि—

"...आपने जो शिशु की अन्त्येष्टि के विषय में आर्यसमाज का सिद्धान्त पूछा है। यद्यपि कई स्मृतियों में ऐसे मृत शिशु के जल-प्रवाह विधान पाया जाता है पर ऋषि दयानन्द (भस्मान्तं शरीरम्) इस वैदिक आदेश के अनुसार सभी के अग्निसंस्कार के ही प्रतिपादक हैं, अतः वही उचित है।"१४

चतुर्वेदभाष्यकर पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ का भ्रमः—आप वैदिक सिद्धान्त के अच्छे विद्वान माने जाते हैं। आपने चारों वेदों का सरल आर्य (हिन्दी) भाषा में अर्थ किया है पता नहीं आपने "अथर्ववेद" का भाष्य करते समय महर्षि दयानन्द जी के सिद्धान्तों को क्यों ओझल कर दिया।

आपने १८।२।३४ में एक अर्थ तो ठीक किया है पर दूसरा अर्थ अत्यन्त आपत्तिजनक है जहाँ आपने शव को पृथ्वी में गाड़ना लिखा है।❀ मैंने इस अर्थ का स्पष्टीकरण करने के लिए उनके पास, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (जयपुर) को पत्र लिखा तो

---

१४. लेखक के नाम दिनाङ्क ३०।१।६० को 'गुरुकुल काङ्गड़ी' से भेजा कार्ड।

❀ आपने आचार्य रामदेव जी बी. ए. के साथ "पुराणमतपर्यालोचन" नामक ग्रन्थ लिखा था। आप उसके प्रथम संस्करण के पृष्ठ ४४८ पर इस मन्त्र के सम्बन्ध में लिखते हैं:—"इस मन्त्र में भी मृतकश्राद्ध को कोई आश्रय नहीं, प्रत्युत मुर्दों को गाड़ना या ऊपर टांगना आदि नहीं प्रत्युत हवि या चरु द्वारा सबको अग्नि में भस्म कर देना, यही वैदिक विधान है, इसी के लिए यहां प्रार्थना है।"

क्या उस समय आचार्य रामदेव जी बी. ए. के दबाव के कारण आपने शव को अग्नि में भस्म करना लिखा था?—लेखक

उन्होंने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया:—"आपका पत्र मिला आशय जाना। जिस अर्थ में आपको आपत्ति नहीं, उसका तो प्रश्न नहीं। अथवा करके दूसरे अर्थ में आपको आपत्ति है। 'निखाताः' पद के अर्थ में तो मैं या कोई कुछ नहीं कर सकता। रहा लाक्षणिक अर्थ इस पर प्रकाश डाला जा सकता है। वह यह कि क्या किसी दशा में भी शरीरों को गाड़ा जाना सम्भव है कि नहीं, यदि है, तो समाधान इस अपवाद में मिल जावेगा।

'निखाताः' पद की तुलना आप ऋ १०।१५।२ के इस वाक्य से करें—'ये पार्थिवे रजसि आनषत्ताः। यदि यह वाक्य 'निखाताः' की व्याख्या है तो आप का उचित-समाधान मिलना चाहिए। इसकी ही स्पष्ट व्यख्या मेरे प्रथम अर्थ में आपको मिलेगी। आप भी कोई समाधान ढूंढें। मुझे भी लिखें। ..."१५

यह है पण्डित जी का स्पष्टीकरण जो और भी संशय में डाल देता है। इससे कितनी भ्रान्ति फैल सकती है, विज्ञ पाठकवृन्द विचारें। आपके अर्थ और अन्य पौराणिकों के अर्थ में क्या अन्तर रहा ?

अतः आपके वेदभाष्य में अनेक त्रुटियाँ व वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध बातें हैं।

पण्डित जी के 'अथर्ववेद भाष्य' का एक ही नमूना पर्याप्त होगा जो वैदिक सिद्धान्त पर कुठाराघात करता है:—

आप अथर्ववेद काण्ड एकादश, सूक्त ७,मन्त्र २४ (ऋचः सामनि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह...) का अर्थ करते हैं:—

(ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्र (सामानि) सामवेद और उसके सहस्त्रों सामगान के भेद, (छन्दांसि) गायत्री आदि छन्द अथवा अथर्ववेद के मन्त्र (यजुषा सह पुराणं) यजुर्वेद, कर्मप्रवर्त्तक मन्त्रों के साथ साथ सृष्टि उत्पत्ति, प्रलय आदि के वर्णन करने हारे मन्त्र और ब्राह्मण भाग और (सर्वे देवा दिविश्रतः) आकाशस्थसूर्यादि समस्त दिव्यलोक (उच्छिष्टात् जज्ञिरे) 'उच्छिष्ट' उस सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं।"१६

आप ने "ब्राह्मण भाग" को भी परमेश्वर से उत्पन्न लिख दिया जबकि वैदिक सिद्धान्त है कि ब्राह्मण भाग, वेदों के व्याख्या भाग ऋषियों की कृति हैं।

अथर्ववेद १८।२।३४ का वास्तविक अर्थ

श्री सायणाचार्य, श्री रामचन्द्र शर्मा, श्री कालूराम, श्री अखिलानन्द, श्री माधवाचार्य, श्री सातवलेकर, श्री जयदेव शर्मा प्रभृति विद्वानों का अर्थ ठीक नहीं है। श्री सायण के अर्थ की ही प्रायः प्रतिलिपि श्री कालूराम, श्री अखिलानन्द, श्री माधवाचार्य व श्री सातवलेकर जी ने की है।

पं० सातवलेकर जी की पुस्तक "यम और पितर,, का विद्वत्तापूर्ण उत्तर आर्यजगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० प्रियरत्न जी आर्ष [अब पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज] ने "यमपितृपरिचय" नामक ४३६ पृष्ठ के ग्रन्थ में दिया है। अतः श्री माधवाचार्य ने जो "यम और पितर' की अत्यन्त प्रशंसा की है और यह व्यर्थ की डींग मारी है कि "दयानन्दी सात जन्म में इसका उत्तर नहीं दे सकते।" यदि श्री माधवाचार्य ने जो 'यम और में विद्वत्ता है तो इसी जन्म में 'यमपितृपरिचय" का खण्डन कर डालें अन्यथा मैं भी डंके की चोट कह सकता हूँ कि पौराणिक सात जन्म में भी उत्तर नहीं दे सकते।

अतः माननीय पं० प्रियरत्न जी आर्ष ने जो अर्थ किया है वह आर्यसमाज को मान्य है। पता नहीं पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार' 'मीमांसार्थ' को सार्वदेशिक सभा का अर्थ क्यों नहीं मान्य है ?

पं० प्रियरत्न जी आर्षकृत अर्थः—"(ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धितास्तान् सर्वान् पितृन् हविषेऽत्तवेऽग्न आवह) पूर्व मन्त्र में सूर्य किरणों की प्रधानता दिखलाई गई है इस मन्त्र में उनके

१५. लेखक के नाम दिनांक २५।२।६० को वनस्थली विद्यापीठ से प्रेषित कार्ड।

१६. "अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य" तृतीय खण्ड द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २५५.

उपयोगी भेदों का वर्णन है, कि निखात= जो सूर्य की किरणें पृथिवी में स्थिर की गई हैं, जिन किरणों के द्वारा यह पृथिवि नियन्त्रित हुई आकाश में वर्तमान है तथा पृथिवी में घुसकर सुवर्णादि धातुओं और औषधियों के बीजों का सम्पादन करती हैं। परोप्त =जो सूर्य की किरणें जल में फैली हुई हैं, जिनके द्वारा जल फैलने का स्वभाव रखता है। दग्ध= और जो सूर्य किरणें अग्नि में दीप्त हैं, जिनके द्वारा अग्नि दीप्त-धर्म रखती। उद्धित =और जो सूर्य किरणें वायु में गमन करती है, जिनके द्वारा वायु गति करती है। ऐसी उन सब किरणों को अग्नि मृतकदेहरूप हवि के ग्रहण करने के लिए आकर्षण करती है। अग्नि-दहन क्रिया से मृत देह में जो पृथिवी, जल, अग्नि और वायु के अंश हैं उनको वहाँ-वहाँ नियुक्त हुई सूर्य किरणें ले जाकर यथास्थान कर देती हैं। यह एक वैज्ञानिक मिलाप है।

शिक्षा—अन्त्येष्टि क्रिया से मृतदेह में जो पृथिवी, जला अग्नि और वायु के अंश होते हैं उन सबको सूर्य-किरणें यथा स्थान पहुँचा देती।"१७

पुनः—"इस मन्त्र से कोई विद्वान् प्रेत को गाड़ने, बहाने, जलाने और हवा में जमीन पर खुला छोड़ने के भेद से चार प्रकार का श्मशानकर्म बतलाते हैं।"१७

.....आश्चर्य की बात है कि वादी ने गाड़ने आदि की चार प्रकार की अन्त्येष्टि इस वेदोक्त मन्त्र से बतलाई है। वैदिक विधि का आचरण करना उचित और पुण्यप्रद है। उसमें किसी ननुच की आवश्यकता नहीं होती जबकि यह बात है तब—

"मैनमग्ने विदहो माभिशोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्। यदा श्रृतं कृण्वो जातवेदो-ऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः।" ऋ १०।१६।१

इस मन्त्र की व्याख्या में "अग्नि और पितर" के शीर्षक में पुनः यह लिखना किस प्रकार संगत हो सकता है—"इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध से ऐसा पता चलता है कि जब तक देह सम्पूर्णतया जल नहीं जाती तब तक आत्मा देह के पास ही मण्डलाती रहती है। इस परिणामानुसार तो आत्मा को शीघ्र मुक्त करने के लिए उसे उनके निर्धारित स्थान पर भेजने के लिये शरीर का दहन करना उचित प्रतीत होता है।" पाठक विचार करें कि पूर्व गाड़ना आदि "चार प्रकार की अन्त्येष्टि" वैदिक विधि दर्शाई और इस मन्त्र में जलाने की विधि उचित सिद्ध की। एवं वेद के अन्दर एक ही विषय में उचित और अनुचित विधि का दर्शाना कितना दोष है। वास्तव में वैदिक विधि केवल जलाने के लिये ही है। स्थान-स्थान पर जलाने के लिये ही मन्त्र मिलते हैं और अन्त्येष्टि मन्त्रों का विनियोग भी जलाते समय ही किया जाता है। जलाने के द्वारा ही अन्त्येष्टिकर्म के लिये जिस प्रकार **"मैनमग्ने विदहो माभिशोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्"** (ऋ० १०।१६।१) इस मन्त्र में अग्नि संबन्धी दोषों के दूरीकरणार्थ ध्यान दिलाया है। एवं गाड़ने आदि अन्त्येष्टिकर्म के लिए **"मैनं भूमे निखन मा दूषय मास्य त्वचं विक्षिपो मा विगात्रम्।"** इत्यादि मन्त्र भूमि आदि दोषों के निवारणार्थ वेद में होने चाहिये किन्तु ऐसा नहीं है। इसलिये गाड़-नादि की विधियां, वेद से सिद्ध करना असम्भव और अनुचित है अतः "ये निखाता" मन्त्र का सत्यार्थ कोई और ही है। इस मन्त्र से पूर्व **अपागूहन्न-मृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्ते। उताश्वि-नावभरद् यत्तदासीदजहादुद्धा मिथुना सरण्यूः ॥३३॥** यह मन्त्र है जिसमें सूर्य किरणें प्रभात उषा को हटाती हैं। पुनः दिन रूपी प्रभा का प्राणीमात्र के लिए प्रकाश करती हैं। एवं दिनके प्रतिकूल रात्रि बनती है। जिससे रात दिन का मिथुन क्रमशः काम करता रहता है। यहां स्पष्टरूप में सूर्यरश्मियों का वैज्ञानिक प्रकरण है। अतः इसके साथ 'ये निखाताः' में किन्हीं विशिष्ट सूर्यरश्मियों का विधान है। १८

❀ सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दयानन्दभवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली १ से प्रकाशित.

१७. "यमपितृपरिचय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १३४-१३५.

१८, वही, पृष्ठ ३०९।

अन्य आर्य विद्वानों के अर्थ

शास्त्रार्थ महारथी पं० मनसाराम जी "**वैदिक तोप**":—"यजमान पुरोहित से कहता है कि हे विद्वन् ! जो पदार्थ जमीन में गाड़े हुए होते हैं (आलू मूली, गाजर आदि) और जो पदार्थ बोये जाते हैं (गेहूँ, चावल आदि) जो पदार्थ भून कर खाये जाते हैं (चने, मक्की, धान आदि) और जो पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं (सिंघाड़े, कमलगट्टे आदि) इन सब पदार्थों को निमन्त्रण में साधु, महात्मा आदि पितरों को खाना खिलाने के लिये ला कर दे।

इस मन्त्र में जो परोप्ता शब्द पड़ा हुआ है इसके अर्थ बीजे जाने वाले पदार्थों के हैं। और बीजे जाना अनाजों, सब्जियों का ही संभव है। अतः यह मन्त्र मृतकश्राद्ध को सिद्ध नहीं करता अपितु जीवितों की सेवा को ही सिद्ध करता है।" १९

पं० भक्तराम जी:—"(ये निखाताः) जो खनन विषयक विज्ञान में अच्छी प्रकार निपुण हैं। खन धातु से क्तप्रत्यय करके बहुव्रीहि समास करने से यह अर्थ सिद्ध होता है (ये परोप्ताः) जो चीजों की विद्या अथवा कृषिविद्या में निपुण हैं। टुवप बीजसन्ताने छेदने च इस धातु से सिद्ध है (ये दग्धाः) दहनविषयक ज्ञान में निपुण (च) और (उद्धिताः) उत्कृष्ट धारणविषयक ज्ञान में निपुण जिनको अंग्रेजी के शब्दों में इस प्रकार कहते हैं Mineralogist, Botanist, Chemist और Mechanist इन चार प्रकार की विद्याओं में जो निपुण हैं (तान्) उन सर्वान्) सब पितरों को अर्थात् विद्वानों को (अग्ने) परमात्मन् (हविषे अत्तवे आवह) हम अन्न-वस्त्रादि से पालन करें, जिससे वे सब विद्वान् अनेक प्रकार की विद्याओं का देश और जाति में संचार कर धन और ऐश्वर्य को बढ़ावें।"२०

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थः—निखात; परोप्त दग्ध, उद्धित आदि जो पितर हैं, उन सब को हविष्यान्न भोजन के लिए हे अग्निदूत ! बुलाओ जिसने शुभ कर्म करने में अपने को गाड़दिया है वह निखात जिसने अच्छे प्रकार विद्यारूप बीज को बोया है वह 'परोप्त', जिसने तपश्चरण में शरीर जला दिया है वह दग्ध, जिसने गिरते हुए को उठाया है वह उद्धित अथवा इसको यों भी लगा सकते हैं कि जो पुरुष ऋषियों के द्वारा परोपकार रूप क्षेत्र में गाड़ा गया है वह निखात जो अच्छे प्रकार छींटा गया हैं वह परोप्त, जो वेदाध्ययनरूप अग्नि में दग्ध किया गया है वह दग्ध और जो सब के हित में लगाया गया है वह उद्धित, क्योंकि मन्वादिकों के प्रमाणों से सिद्ध है कि पितृगण ऋषियों के पुत्र हैं अर्थात् ऋषियों के बनाए हुए हैं एक बात यह भी ध्यान में रखने को है कि जब वेदों के अन्यान्य मन्त्रों से मृतकश्राद्ध सिद्ध नहीं है तब केवल इस मन्त्र को मृतकपरक कैसे लगा सकते हैं ?"२१

पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदीः—"(संस्कृत)—(ये) विद्वांसः (निखाताः) खनु अवदारणे—क्तः ब्रह्मचर्यादिसदाचरि दृढ़तया स्थिरताः (ये) (परोप्ताः) परा +टुवप बाजसन्ताने क्तः उत्तमतया बीजवत् स्थापिताः (य) (दग्धाः) दह दाप्तौ भस्मीकरणे क्तः ब्रह्मचर्यादिना तप्ताः प्रदाप्यमानाः (ये) (च) (उद्धिताः) उत्+ दधातेः क्तः ऊर्ध्वं धृताः (सर्वान्) (तान्) (अग्ने) हे विद्वन् ! (आवह) आनय (पितृन्) पित्रादरक्षकान् विद्वन्पुरुषान् (हविषे) द्वितीयार्थे चतुर्थी, हविः, ग्राह्य पदार्थम् (अत्तवे) अद भक्षणे—तवेन् प्रत्ययः, अत्तुं भक्षितुम्।

(आर्यभाषार्थ)—(ये) जो पुरुष [ब्रह्मचर्य आदि सदाचार में] (निखाताः) दृढ़ गड़े हुये (ये) जो (परोप्ताः) उत्तमता से बीज बोये गये (ये)

---

१९. "पौराणिक पोल प्रकाश" द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७५७.

२०. मासिक पत्र "वेदोदय" प्रयाग, सितम्बर सन् १९३३ ई०, पूर्णसंख्या ४२, पृष्ठ २१८-२१९.

[तुलना करो मासिक पत्र "आर्य सिद्धान्त" प्रयाग, भाग ३, दिनांक १५ फरवरी १८९० फाल्गुन संवत् १९४६ वि. अंक ६, पृष्ठ ८१ में पं० भीमसेन शर्मा का अर्थ जो पण्डित मनसाराम जी के अर्थ से मिलता जुलता है लेखक]

२१. "श्राद्ध-निर्णय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १०५.

जो (दग्धाः) तपाये गये [व चमकते हुए] (च) और (ये) जो (उद्धिताः) ऊंचे उठाये गये हैं (अग्ने) हे विद्वन् ! (तान् सर्वान्) उन सब (पितृन्) पितरो [पिता आदि ज्ञानियों] को (हविषे) ग्रहण करने योग्य भोजन (अत्तवे) खाने के लिये (आवह) तू ले आ।

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि जो पुरुष दृढ़ स्वभाव, ब्रह्मचर्यसेवी, सुशिक्षित, परिश्रमी, महाविद्वान् हों उनका भोजन आदि से सदा सत्कार करे।"२२

आर्यजगत् के उपर्युक्त पांच विद्वान् इस मन्त्र में शव को गाड़ना अर्थ नहीं करते हैं।

आधुनिक इतिहास-वेत्ताओं के विचार

प्रो० बी० ए० लूणिया, एम० ए० एल० टी०, होल्कर कालेज, इन्दौर की सम्मति है कि वैदिक काल में मुर्दे जलाये जाते थे। २३

प्रो० शिवदत्तजी ज्ञानी एम० ए० लिखते हैं:—"अन्त्येष्टि—मनुष्य के शरीर का यह अन्तिम संस्कार था जो मरने के पश्चात् शव को जलाकर किया जाता था।" २४

अतएव उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित है कि 'अथर्ववेदीय अन्त्येष्टि सूक्त' में शव को पृथिवी में गाड़ने, जल-प्रवाह करने व वायु में रखने तथा मृतक श्राद्ध का विधान नहीं है। जो लोग अथर्ववेद से मृतक को गाड़ने व मृतक श्राद्ध को सिद्ध करने का कुप्रयास करते हैं, वे भारी भ्रम में हैं॥ इति॥

२२. "अथर्ववेदभाष्यम्", अष्टादश काण्डम्, प्रथमावृत्ति. [सन् १९१९ ई० में ओंकार यन्त्रालय, प्रयाग में मुद्रित]
२३. "Evolution of Indian Culture" pp. 66 First edition 1951 Agra.
२४. "भारतीयसंस्कृति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ९७.

वेद शतकों पर भारतीय नेताओं की सम्मतियां

The extracts from the Vedas are select ones, appropriate and useful to the present generation, to give them an insight into our ancient love. I hope thatt he books will become popular and useful.

श्री अनन्त शयनम् आयंगर
स्पीकर लोक सभा

Thank you for your letter and the Sataks from the Vedas. They are valuable and I hope they will be read widely.

डा० सर राधाकृष्णन् उपराष्ट्रपति

वेदों के चार उपयोगी सङ्कलन प्राप्त हुए। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप ने जनसाधारण में वेदों के प्रचार के लिये हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इस से वैदिक प्रचार शृंखला में नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिये शुभ कामना चाहता हूँ।

के० एम० मुन्शी

वस्तुतः यह प्रकाशन अनुपम तथा उपयोगी है। न केवल इससे साहित्य की अभिवृद्धि हुई है परन्तु वैदिक साहित्य प्रचार और प्रसार में ऐसी पुस्तकों का बहुत बड़ा योग दान होगा...मेरी समझ में भारत के घर घर में ऐसी पुस्तकों का समावेश होना चाहिये। मैं आपके इस कार्य को महत्वपूर्ण और स्तुत्य समझता हूँ।

श्री आचार्य प्रभाकर मिश्र

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

रजि० नं० डी० ४२६

वेदप्रकाश अक्तूबर १९६१

महर्षि दयानन्द का सुललित, सुमधुर, भाव-पूर्ण, श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

अनेकों चित्रों से सुसज्जित, बढ़िया कागज पर मोटे अक्षरों में, बड़े साइज के ६०० पृष्ठों में मुद्रित।

कथा करने तथा शुभ अवसरों पर भेंट देने योग्य अद्वितीय ग्रन्थ। मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को डाक खर्च माफ। १२ अगाऊ आना आवश्यक है।

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क दिल्ली

महर्षि दयानन्द-प्रकाश

ऋग् ओ३म् यजुः

वेद-प्रकाश

साम वेदोऽखिलो धर्म-मूलम् अथर्व

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

नवम्बर	१९६१
कार्तिक	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	४

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

शस्त्रधारी ब्राह्मण

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा । अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥

॥ अथर्व० ५।१८।९ ॥

"(तीक्ष्ण-इषवः) जिनके वाण तीखे हैं, और जो (हेति-मंतः) हथियार धारण करते हैं, ऐसे (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणं (यां शरव्यां) जिन शस्त्रों को (अस्यन्ति) फेंकते हैं, (सा न मृषा) वे शस्त्र व्यर्थ नहीं जाते। वे (मन्युना) तेजस्वी बल के साथ (तपसा) तपके अर्थात् कष्ट सहन करके (अनु-हाय) शत्रुका पीछा करके (उत) निश्चय से (एनं) इस शत्रु को (दूरात् अव भिन्दन्ति) दूर से ही भेदन करते हैं।"

क्षत्रिय लोग उन्मत्त होने की अवस्था में ब्राह्मण लोग शस्त्र धारण करके राष्ट्र का संरक्षण करें। ब्राह्मण के पास ज्ञान की विशेषता होने से उनके शस्त्र अधिक कार्य करने में समर्थ होंगे, इसमें कोई शंका नहीं है।

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला के

स्थायी ग्राहक बनिये।

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरम्भ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

(४) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २॥) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

राधा स्वामी मत दर्पण

लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यदि आप राधास्वामी मत का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। बड़े परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है। प्रचारार्थ पुस्तक का मूल्य लागत मात्र चार आने ही रक्खा गया है। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

प्रस्तुत अंक पुस्तकाकार में बढ़िया कागज पर छपा है। प्रचारार्थ मूल्य केवल चार आने। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

★ ब्रह्माकुमारी मत दर्पण ★

[लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी प्रभाकर, साहित्य रत्न]

धर्म की परिभाषा करते हुए महर्षि कणाद ने कहा है—

यतो अभ्युदयः निः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः ॥

(वैशेषिक दर्शन १।१।२)

जिन कार्यों के अनुष्ठान से मनुष्य को इहलौकिक सुख और पारलौकिक आनन्द अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति हो वही धर्म है।

परन्तु काल कुठार के कुचक्र से लोग धर्म के वास्तविक अर्थ को भूल गये। परिणामस्वरूप धर्म के नाम पर लोगों को फांसी पर चढ़ाया गया, तोपों से उड़ाया गया और विष के प्याले पिलाये गये। इस धर्म के नाम पर छल, कपट और पाखण्ड हुए। धर्म के नाम पर चोरी हुई, जुआ खेला गया और व्यभिचार तक भी किया गया। धर्म की दुहाई देकर नये नये मतों और पन्थों का निर्माण हुआ और इनके संस्थापकों ने अनेक भले घर की बहु और बेटियों के चरित्र तथा सतित्व का सत्यनाश किया।

धर्म की आड़ में कलकत्ते के गोविन्द भवन के व्यभिचार शिरोमणि ४२० हीरालाल गोयनका ने जो कुकर्म किये थे हम इस प्रसंग में उस काण्ड के वर्णन का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

"[आरम्भ में] हीरालाल ने [गोविन्द भवन में] गीता की कथा बांचनी आरम्भ की और धीरे-धीरे मारवाड़ी अखबारों में गीता विषयक कुछ उपदेश लिखने शुरू किये। साथ ही साथ उसने यह आंदोलन भी उठाया कि मारवाड़ी स्त्रियां मुसलमानों के पास अपने बच्चे आदि फुंकवाने न जायें, बल्कि मन्दिर में श्रीकृष्ण की अराधना करें। भगवान् सब कुछ करेंगे। मारवाड़ियों की श्रद्धा उस पर बढ़ी और खूब बढ़ी। झुण्ड के झुण्ड लोग कथा सुनने आते। सम्भव है, हीरालाल का खास लक्ष्य प्रथम पाप करने का न रहा हो, पर जब उसने देखा कि स्त्रियां विशेष भाव से कथा सुनने आती हैं और चाहे जिस समय भी आ सकती हैं, तो उसने कथा का विस्तार बढ़ाया और दिन में कई बार कथा होने लगी और फिर रास लीला भी आरम्भ कर दी गई। रास-लीला में हीरालाल स्वयं ही कृष्ण बनता था। बड़े-बड़े सेठ अपनी स्त्रियों को हीरालाल की सेवा में भेजने लगे। अच्छी से अच्छी स्त्री जब उसकी सेवा में हर समय तत्पर रहने लगीं तो हीरालाल बच न सका। उसकी छिपी हुई पाप वासना जागी और उसने छिपी रास लीला शुरू की। इसमें खास-खास स्त्रियां ही उसके साथ होती थी। और फिर तो बहुत सुभीते से पाप लीला चली। सास अपनी विधवा बहुओं को श्रीकृष्ण का प्रसाद पाने के लिये वहां लाती और प्रसाद मिल चुकने पर साथ ले जातीं। हीरालाल के एक मित्र कहते थे कि उसे इतनी बार स्त्रियों के संग करना पड़ा कि आखिर वह घृणित रोगी हुआ, और बहुत रुपया खर्च करके उसने कुश्ते आदि खाकर अपने शरीर को उस लीला के योग्य बनाये रक्खा।"

('चान्द' का मारवाड़ी अङ्क नवम्बर १९२९)

ओम् मण्डली की स्थापना

हीरा लाल की भांति खूबचन्द कृपलानी नामक एक अवकाश प्राप्त व्यक्ति ने अपनी काम वासनाओं को शान्त करने के लिए ओम् मंडली नाम से एक

संस्था की स्थापना की। यही खूबचन्द अब दादा लेखराज के नाम से प्रसिद्ध है। सब से पूर्व दादा लेखराज ने कलकत्ता की एक विधवा माया देवी का अपहरण किया। कलयुगी कृष्ण ने उसे खूब सैर सपाटे कराये, खाने को उत्तम पदार्थ दिये पहनने के लिये सुन्दर वस्त्र। इस प्रकार माया देवी का मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अब माया देवी इन का प्रचार करने लगी। ये हमारे भगवान् हैं हम इन की गोपियां हैं। परन्तु असत्य कहां तक छिप सकता है? इलाहाबाद के एक साप्ताहिक ने इनकी पोल खोल कर इसे नंगा कर दिया। १९३७ में लाहौर में श्री रफी खां पी० सी० एस० की कोर्ट में इन पर मुकदमा चला। मायादेवी को भी कोर्ट में आना पड़ा। बयान देने से पूर्व जब माया देवी को धर्म की कसम खिलाई गई तो वह कांप गई और उसने सारा भण्डा फोड़ दिया। उसने कहा—

'हमारे गुरु जी हमें स्वयं कहते हैं कि तुम जनता में जाकर कहो कि मैं गोपी हूं और ये भगवान् कृष्ण हैं। न्यायाधीश महोदय मैं बड़ी पापिन हूं। मैंने कितनी ही कुंवारी लड़कियों को गुमराह करने का प्रयत्न किया, कितनी माताओं से उनके नन्हें पुत्रों को तिलांजलि दिलाने का प्रयास किया। कितनी बहनों को पति सेवा से रोका—मैं बड़ी अपराधनी हूं।"

(आर्य जगत् जालन्धर २३ जुलाई १९६१)

कलयुगी कृष्ण ने अदालत से क्षमा याचना की और भाग गये।

१३ अगस्त १९४० को इन्होंने बिहार प्रान्त के एक छोटे से ग्राम में डेरे डाल दिये। चेले आने लगे। चेलियां भी क्यों पीछे रहती। अन्त में एक दिन कलयुगी कृष्ण एक बूढ़े हरिजन की युवा पत्नी धनियां को लेकर भाग खड़े हुए। फिर मुकदमा चला। धनिया के बयान लिये गये। उसने कहा—"इस गुरु महाराज ने हमें कहा था कि आप का पति मैं हूं, मुझे ब्रह्मा ने आपके लिये भेजा है।"

इसी प्रकार नाना विधि अनैतिक कुकर्म और व्यभिचार करते हुए दादा लेखराज हैदराबाद (सिन्ध) में जम गये। यहां भी ओम् मण्डलो के काले कारनामों और दादा लेखराज के स्वयं कृष्ण बन कर और मण्डल की देवियों को गोपिकाएं बना कर रास लीला को क्रीड़ाएं और उसकी ओट में होने वाले व्यभिचार को देखकर प्रसिद्ध लोक सेवक साधु टी० एल० वास्वानी मैदान में कूदे। उन्होंने ओम् मण्डली के कार्यालय पर धरना दिया और इस कार्य में उन्हें जेल भी जाना पड़ा।

साधु टी० एल० वास्वानी के कार्य क्षेत्र में कूदने से एक तहलका मच गया। ओम् मण्डली की अनैतिक कार्यवाहियों से धार्मिक जनता में खलबली मच गई। यहां भी इन पर मुकदमा चला। इस सम्बन्ध में हिन्दी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती का निम्न उद्धरण जो पटना के 'योगी' पत्र से उद्धरित किया गया था पढ़ने योग्य है—

"ओम् मण्डली पर पिकेटिंग शुरू कर दी है। नतीजा यह हुआ है कि सी० पी० सी० की १०७ वीं धारा के अनुसार सिटी मजिस्ट्रेट की अदालत में पिकेटिंग करने वालों के अलावा ओम् मण्डली के संस्थापक और चार अन्य सदस्यों पर मुकदमा चल रहा है।"

(सरस्वती भाग ३९ संख्या ६ खण्ड १ मई १९३८)

पुरानी शराब नई बोतलों में

कांग्रेसी नेताओं की अदूरदर्शिता और भारत के दुर्भाग्य से १९४७ में भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। विभाजन के पश्चात् भी इस बूढ़े कृष्ण के द्वार पर लगभग एक सहस्र गोपियां विद्यमान थी। ये सब कराची से जहाज में बैठकर बम्बई पहुंची। अब अवस्था बदल चुकी थी। बहुत सी देवियों को तो समाज ने स्वीकार कर लिया और उनका विवाह हो गया। बहुत सी भाग गई और अन्यत्र जाकर घर बसा लिया परन्तु २५०-३०० अब भी बच रही जिनका डेरा भूतपूर्व कलयुगी कृष्ण और वर्तमान ब्रह्मा के द्वार पर ही था।

अब ब्रह्मा जी को इन गोपियों के बसाने को

चिन्ता हुई अतः दादा लेखराज ने आबू पर्वत पर पोकरान हाऊस में अपने डेरे डाल दिये और ओम् मण्डली के नाम के स्थान पर इसका नाम 'ब्रह्मा कुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय" रक्खा गया।

दस वर्ष तक यह संस्था चुपचाप अपना कार्य करती रही। इस समय इस संस्था की लगभग ४० शाखाएं भिन्न भिन्न नगरों में कार्य कर रही हैं। इस संस्था की एक विशेषता यह है कि सब कार्य स्त्रियों के ही हाथों में होता है। प्रत्येक शाखा की मुख्य अध्यक्षा और प्रचारिका भी स्त्री ही होती है।

अब इस संस्था का नाम ब्रह्माकुमारी प्रसिद्ध है। संस्था के सदस्यों को संस्था के संस्थापक त्रिमूर्ति ब्रह्मा के प्रति आत्म समर्पण करना पड़ता है अतः समस्त साधक एवं साधिकाएं प्रचारक एवं प्रचारिकाएं ब्रह्माकुमार एवं ब्रह्माकुमारी कहलाती हैं। प्रचारिकाएं यथा सम्भव कुमारी होती हैं। हां छिप कर चाहे कुछ भी करती रहें। विवाहित स्त्रियां अपने पतियों को छोड़ कर अथवा उन से छोड़ी जा कर इस सम्प्रदाय में साधिकाएं बन सकती हैं तथा ये भी ब्रह्माकुमारी कहलाती हैं। पुरुष चाहे विवाहित हों अथवा अविवाहित वे ब्रह्माकुमार ही कहलाते हैं।

प्रवर्तक

जैसा पूर्व कहा जा चुका है इस संस्था के प्रवर्तक दादा लेखराज हैं। दादा लेखराज टूटी फूटी हिन्दी और साधारण अंग्रेजी या सिन्धी के अतिरिक्त संस्कृत तथा अन्य विद्याओं से सर्वथा शून्य हैं। इतिहास और भूगोल तो इन्होंने देखा तक नहीं पढ़ने की बात तो दूर रही। इसका एक मोटा सा उदाहरण प्रस्तुत है—

भारतीय ज्योतिष विद्या के अनुसार चतुर्युगी की आयु ४३ लाख २० हजार वर्ष है। सतयुग की आयु १७ लाख २८ हजार वर्ष, त्रेता की १२ लाख ९६ हजार वर्ष, द्वापर की ८ लाख ६४ हजार वर्ष और कलियुग की ४ लाख ३२ हजार वर्ष। परन्तु दादा लेखराज ने कल्प की आयु केवल ५००० वर्ष मानी है। इसमें सतयुग, त्रेता द्वापर और कलियुग प्रत्येक १२५० वर्ष का है। कैसा सीधा साधा हिसाब है प्रत्येक युग १२५० वर्ष का। न हिसाब रखने का कष्ट, न गिनने का कष्ट, न लेता भूले न देता भूले। इसीलिये इस ज्ञान को सहज ज्ञान कहा जाता है।

दादा लेखराज आबू पर्वत से विज्ञप्तियों द्वारा समय समय पर अपने विचारों का प्रचार करते रहते हैं। इन विज्ञप्तियों को मुरली कहते हैं। इन विज्ञप्तियों को मुरली क्यों कहते हैं? इसका भी एक रहस्य है। आज दादा लेखराज ब्रह्मा बना हुआ है परन्तु विभाजन से पूर्व वह कृष्ण बना हुआ था और कृष्ण बन कर गोपियों के साथ खूब रास रचाये थे। पुराणों में श्री कृष्ण को मुरली धर कहां गया गया है। अतः दादा जी के पास भी मुरली होनी ही चाहिए।

दादा जी को दौरे पड़ते हैं। दादा के चेले समझते हैं कि वे समाधि में हैं। दौरे की अवस्था में दादा जी जो कुछ बड़बड़ाते हैं इसे अक्षरशः लिख लिया जाता है और इसे छाप कर समस्त केन्द्रों पर भेजा जाता है। वहां भी इसी बकवास के आधार पर भाषण दिये जाते हैं। यह मेरी कपोल कल्पना नहीं है। अपनी इस बात के लिये मैं दादा लेखराज जी के एक भक्त के उद्गार उद्धृत करता हूँ।

"सुबह सवेरे अमृत बेले जो भाषण पिता श्री करते वह लफ़्ज बलफ़्ज़❀ लिखकर उसकी नकलें उतार सब ईश्वरी सेवा संस्थाओं पर रोजाना बज-रिया डाक भेज दिया जाता था ताकि दूर दराज पर बैठे हुए ब्रह्माकुमार व कुमारियों को वह ईश्वररीय ज्ञान अमृत धारा पहुँच सके। जिसे वे खुद धारण कर औरों को सुनाते रहें।"

(मेरा अनुभव उर्दू ले० जे० आर० आनन्द पृष्ठ ९)

पाठकों की जानकारी के लिये इतना और लिख दूं कि जे० आर० आनन्द 'ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय वैस्टर्न एक्टेन्शन एरिया करौल बाग के सर्वेसर्वा हैं। अस्तु।

इन विज्ञप्तियों—मुरलिया की भाषा अति निम्न

❀ शब्दशः

कोटि की अशुद्धि हिन्दी होती है। इस भाषा से भी यह सहज ही पता लग जाता है कि दादा लेखराज का ज्ञान अति साधारण है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, भूगोल, खगोल, ज्योतिष विज्ञान, गणित आदि की तो बात ही क्या जिस गीता के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि इसका ज्ञान कृष्ण ने नहीं मैंने दिया था उस का भी इन्हें लेश मात्र भी ज्ञान नहीं है। अपने इस अज्ञान के कारण ही आपने अपने सम्प्रदाय को आर्य, धर्म और संस्कृति से पृथक् रक्खा है। राधा स्वामी और हंसदेव आदि मतों की भांति आपने आर्ष पथ को छोड़कर अनार्य मार्ग को ग्रहण किया है।

संगठन

इस बात के प्रवर्तक दादा लेखराज अपने आप को त्रिमूर्ति ब्रह्मा कहते हैं तथा अपने आप को पर--मात्मा का अवतार घोषित करते हैं। वेद दर्शन उपनिषद् और गीता आदि ग्रन्थों में ईश्वर का निज नाम ओ३म् बताया गया है। उस ओ३म् की उपासना का वर्णन किया गया है। उसके ध्यान और जप का विधान बतलाया गया है। परन्तु दादा लेखराज ओ३म् जैसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ नाम को तिलांजलि देकर परमात्मा को शिव नाम से पुकारते हैं। निस्संदेह शिव ईश्वर का वाचक हो सकता है परन्तु शिव कहते ही वे अर्थ ध्यान में नहीं आते जो ओ३म् के उच्चारण से ध्यान में आते हैं।

यदि इस संस्था के संगठन पर ध्यान दिया जाये तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि यह सारा संगठन ईसाइयों का अन्धानुकरण मात्र है। ईसाइयों की Trinity त्रैत्वाद में पवित्र पिता, पवित्र पुत्र और पवित्रात्मा—इन तीन का समावेश है। ब्रह्माकुमारी संस्था में भी दादा लेखराज को परम पिता कहा जाता है। प्रत्येक शाखा का प्रमुख पिता और प्रचारिका श्रद्धामाता अथवा देवता बहन कहलाती है। यह भी ईसाइयों के रेवरेण्ड फादर, रेवरेण्ड मदर और होली सिस्टर का अनुकरण है।

ब्रह्माकुमार एवं ब्रह्माकुमारियां परस्पर भाई बहन कहलाती हैं जैसे ईसाई संगठन में प्रचारक और प्रचारिकाएं ब्रदर्स एवं सिस्टर्स के नाम से पुकारी जाती हैं। पति और पत्नी भी ब्रह्माकुमारी चक्र में बहन और भाई शब्द का प्रयोग करते हैं। वैदिक मर्यादा के अनुसार पति को भाई और पत्नी को बहन कहना सर्वथा अनुचित है। इन का यह व्यवहार वाम मार्ग के भैरवी चक्र के समान अत्यन्त दूषित है।

इस पन्थ का बाबा आदम बड़ा ही निराला है। दादा जी ब्रह्माकुमारियां के साथ आलिंगन करते, उनके मुख चूमते और उनका अधरामृतपान करते हैं। दादा लेखराज और इस संस्था के सभी सदस्य इस कार्य को पवित्र एवं पाप शून्य मानते हैं। ब्रह्माकुमारियां समझती हैं कि ये तो हमारे परम पिता हैं और अपनी पुत्रियों के साथ पितृतुल्य प्रेममात्र करते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न उद्धरण पढ़ने योग्य है—

"श्री पिता श्री के तन से बाबा ब्रह्मा और दादा ज्योतिर्लिंगम शिव दोनों से रूहानी× मुलाकात* हुई। उनकी आंखों में एक अजीब काशिश थी। देखते ही देखते प्रेम के सागर परम पिता ने ऐसी खेंच डाली कि मेरी आंखों में प्रेम के आंसू आ गये। मैं रुक न सका और लपक कर इस रूहानी बाप की गोद में चला गया। मैं इस वक्त अपने आप को एक नन्हा सा बच्चा समझ रहा था। बाबा ने बहुत प्यार किया।" (मेरा अनुभव पृष्ठ ८)

पुरुषों की भान्ति स्त्रियां भी गोद में बैठती हैं।

इस सम्बन्ध में श्री जे० आर० आनन्द जी से सुनिये—

"इस संस्था में आने वाले प्रत्येक ब्रह्माकुमार व ब्रह्माकुमारियां अपने आपको दादा जी की गोद का बच्चा समझते हैं। अपनी मर्जी से ब्रह्मकुमारियां दादा जी की गोद में नहीं जाती, वरन् उनके तेज से प्रभावित होकर उनकी ओर चली जाती हैं। (हिन्दी टाइम्स साप्ताहिक १५ जुलाई १९६१ पृष्ठ १४)।

× आध्यात्मिक * भेंट

इतना ही नहीं ब्रह्माकुमार भी ब्रह्माकुमारियों का आलिंगन करते हैं। ब्रह्माकुमारियों को ही क्यों वे तो मातेश्वरी तक को नहीं छोड़ते। लीजिये प्रमाण प्रस्तुत है—

"जब मैंने मातेश्वरी का आलिंगन किया तो मुझे किसी तरह का रोमाञ्च नहीं हुआ।"

(हिन्दी टाइम्स १५ जुलाई १९६१ पृष्ठ १४)

परपुरुषों एवं स्त्रियों का परस्पर चुम्बन एवं आलिंगन वैदिक मर्यादा के अनुसार सर्वथा घृणित दूषित लज्जाजनक एवं निन्दनीय है। पर नारी का स्पर्श पाप है और चुम्बन तो निश्चितरूप से व्यभिचार ही है। यह कामुकता का द्योतक है और आयुर्वेदिक की दृष्टि से आयु को क्षीण करने वाला है।

इसाईयों की भान्ति इस सम्प्रदाय में प्रसाद भी वितरण किया जाता है। इसके सत्संगों में श्रद्धा माता अथवा देवता बहन आदि कुमारियां अपने हाथ से लड्डू पेड़ा आदि वितरण करती हैं और इन के हाथ से प्रसाद पाकर भक्त लोग अपने को कृत-कृत्य समझते हैं।

साधना

भारतवर्ष आध्यात्म प्रधान देश है। यहां की जनता को योग की बड़ी भूख है। साधारण जनता योगविधि को ठीक रूप से नहीं जानती अतः जहाँ योग की बात सुनी वहां पहुँच जाती है और फ़िर जाल में फंस जाती है। लोगों की इसी दुर्बलता का लाभ उठा कर इस सम्प्रदाय ने भी योग के चक्र में लोगों को फंसाया है।

प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में और रात्रि में इनका योग का पाखण्ड चलता है। जिस समय ये लोग योग में बैठते हैं उस समय ग्रामोफोन पर अत्यन्त अशलील और निम्नकोटि के रिकार्ड बजाये जाते हैं। कमरे में लाल प्रकाश होता है–ब्रह्माकुमार और ब्रह्माकुमारियां मुख्य प्रचारिका की आंखों से आंख लड़ाते हैं। प्रचारिका एक विशेष प्रकार का सुर्मा आंखों में लगाती है जो इसकी सम्मोहन क्रिया में सहायक होता है। सात दिन की साधना में ही ये साधकों को ब्रह्म साक्षात्कार करा देती हैं। ऐसी इनकी मान्यता है। परन्तु इन की यह घोषणा सर्वथा मिथ्या है, केवल पाखण्ड और ढोंग है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि ब्रह्माकुमार और ब्रह्माकुमारियों की तो बात ही क्या अभी स्वयं दादा लेख राज को भी ब्रह्मदर्शन नहीं हुए। यदि उन्हें ईश्वर दर्शन हो जाते तो जो पाखण्ड अनाचार, मिथ्याचार, ढोंग और पोपलीला वे चला रहे हैं इसे कभी न चलाते। वे तो स्वयं ही ब्रह्म बन बैठे हैं फिर दर्शन किस का ?

ध्यानं निर्विषयं मनः। (सांख्य० ६। २५)

हमारे शास्त्रकारों ने ध्यान का लक्षण इस प्रकार किया है—

वृत्तरहित विषयरहित मन की अवस्था का नाम ध्यान है। जब तक नेत्र अपने व्यापार में लगे रहेंगे और अपने रूप विषय में उलझे रहेंगे तब तक सात दिन की तो बात ही क्या सात जन्म में भी योग की सिद्धि असम्भव है। योग साधन के सम्बन्ध में किसी सन्त ने ठीक ही कहा है—

आंख कान मुख मून्द के नाम निरंजन लेय।
अंदर के पट तब खुलें जब बाहर के पट देय॥

मन को विषयों से हटाकर आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का सम्यक् दीर्घकाल तक और निरन्तर अभ्यास करने पर ही ध्यान योग की सिद्धि हो सकती है। न यमों का पालन, न नियमों का सेवन न आसन, न प्राणायाम, न प्रत्याहार, न धारणा न ध्यान बस आंख लड़ाने से ही समाधि सिद्ध। यह योग नहीं योग का उपहास है। हां भोले भाले लोगों को यौन आकर्षण दिखा कर, सुन्दर स्त्रियों के जाल में फंसा कर अपने पन्थ में मिलाने का जाल यह निश्चित रूप से है।

मान्यताएं और सिद्धान्त

ब्रह्माकुमारी संस्था की प्रारम्भिक जानकारी देकर अब हम इनकी मान्यताओं और सिद्धान्तों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि इनकी मान्यताएं और सिद्धान्त कहां तक बुद्धि पर खरे उतरते हैं।

वेद आदि का सफाया

दादा लेखराज अपने आपको साक्षात् परमात्मा ही बतलाते हैं। अपने आपको परमात्मा सिद्ध करने के लिए आपने वेदादि शास्त्र और सभी प्राचीन सन्त महात्माओं का खण्डन कर दिया है। देखिये—

"अतः यदि मेरे परमात्मिक ज्ञान को स्पष्ट रीति समझना चाहते हो तथा मेरे साथ अव्यभिचारी एवं अनन्य योग रखना चाहते हो तो पहली बात यह धारण करो कि इन सभी वेदों, शास्त्रों, गुरुओं, महात्माओं आदि में भी आसक्ति या उनकी स्मृति का भी संन्यास करके, बुद्धि को एक मुझ सर्वज्ञ परमात्मा की ओर लगाओ स्वयं मुझ ही से शुद्ध पवित्र ज्ञानामृत लो।"

(सच्ची गीता पृष्ठ २३-२४)

समीक्षा—आपने न वेद पढ़े और न शास्त्र और न आपकी वेद शास्त्र आदि में गति है। जब तक लोग वेद और शास्त्रों की बातों को पढ़ते रहेंगे और अन्य सन्तों, ऋषि, मुनियों और आचार्यों के बताए सत्य मार्ग पर चलते रहेंगे तब तक इनके जाल में कोई क्यों फंसेगा अतः इन्होंने वेद आदि सब का ही सफाया कर दिया। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। बलिहारी है इस बुद्धि की। रही ज्ञानामृत लेने की बात जो स्वयं ही मूर्ख और अज्ञानी हो वह दूसरों को क्या ज्ञान दे सकता है। हां पर स्त्रियों के साथ आलिंगन एवं चुम्बन की शिक्षा वहां से अवश्य ही मिल सकती है। लीजिये इनके ही ग्रन्थ में पढ़िये—

बिठा कर गोद में हम को बनाते वत्स सेते हैं
जरा सी बात है।

(भगवान् आया है पृष्ठ ५०)

और लीजिये—

बनाने को हमें सच्चा समर्पण मांग लेते हैं।
हमें स्वीकार कर वे वस्तुतः सम्मान देते हैं॥

(वही पृष्ठ ५१)

ज्ञानामृत का एक और नमूना देखिये—

लौक लाज कुल मर्यादा का,
डूबा चलें हम कूल किनारा।
हमको क्या फिर और चाहिये,
अगर पा सकें प्यार तुम्हारा॥

(वही पृष्ठ ६९)

इस पुस्तक से इस प्रकार के अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं परन्तु हम केवल एक उद्धरण और देकर इस प्रसंग को समाप्त करते हैं—

जितने भी निष्पाप—

सजनियां शिव ही उनका एक पिया है
जिस को हम ने हाथ दिया है॥
हम ने शिव को हाथ दिया है।
हमने तुम को हाथ दिया है॥

क्या इसी का नाम ज्ञानामृत है? यदि यही ज्ञानामृत है तो विषामृत क्या होता है? यह दादा जी ने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया है।

तर्क का भी सफाया

जिस प्रकार ईसाई और मुसलमानों के यहां मजहब में अकल का दखल नहीं है ठीक इसी प्रकार ब्रह्माकुमारी संस्था में भी तर्क एवं बुद्धि को ताला लगाने की शिक्षा दी जाती है—

ग्रन्थ प्रमाण न हम को भाते
नहीं तर्क की बात सुहाती
बीते युग की चीज हुई जो
वह तो कोई काम न आती

(भगवान् आया है पृष्ठ ६४)

एक अन्य स्थान पर लिखा है—

शास्त्र वाद यह सारा मिथ्या जाल
अनुभव की है बात हमारी नहीं तर्क का जाल

(पृष्ठ १५-१७)

समीक्षा—किसी भी निर्णय पर पहुंचने के लिए तर्क एक सुदृढ़ आधार है। महर्षि यास्क ने तो जीवित जागृत ऋषियों के अभाव में तर्क को ही ऋषि माना है। दादा लेखराज तर्क को ऋषि मानने लग जायें तो उनकी तो सारी पोल ही खुल जाये और दो दिन में सारी दुनियादारी ही चौपट हो जाये। अतः उन्होंने अपने सम्प्रदायवादियों को तर्क

से दूर रहने का आदेश दिया है। स्वार्थी मनुष्य अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये क्या कुछ नहीं करता ?

नवीन मत

एक ओर तो दादा लेखराज जी का यह दावा है कि कलियुग के अन्त में और सतयुग से पूर्व संगम युग में वह स्वयं ही ज्ञान देता है और संसार का सर्व प्राचीन धर्म आदि सनातन देवी देवता मत ही है परन्तु स्वयं ही अन्य स्थानों पर अपनी बात का खण्डन भी कर रहे हैं—

"स्पष्ट है कि जो ज्ञान मैं देता हूँ, वह ज्ञान अवश्य ही मनुष्य आत्माओं द्वारा दिये हुए ज्ञान से अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान से न्यारा है, वह ज्ञान अन्य कोई नहीं दे सकता।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १४२)

इसी सम्बन्ध में एक अन्यप्रमाण भी देखिये—

अपना सब कुछ नयां निराला खानपान सम्मान
नई प्रीति की रीति निराली, नया ध्यान, नवज्ञान

(भगवान् आया है पृष्ठ २९)

समीक्षा—यह तो आपने अपने मुख से और वचनों से ही स्वीकार कर लिया कि आपका मत प्राचीन नहीं अपितु नवीन है और इसे चले हुए २५-३० वर्ष से भी अधिक भी नहीं हुए। साथ ही आप शास्त्रों को भी नहीं मानते। रही आपके ज्ञान देने की बात यह मुझे भी स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐसा भ्रष्ट, निकृष्ट एवं असत्यज्ञान कोई सदाचारी और भला मनुष्य दे ही कैसे सकता है ? लीजिए अपने उत्कृष्ट ज्ञान का एक उदाहरण देखिये—

सभी सजनियों का वह साजन
जब आ मिलता भोला भाला।
यह संगम का संग निराला॥

(भगवान् आया है पृष्ठ ३५)

यह है अद्भुत ज्ञान अमृत ! ऐसा ज्ञान कोई लम्पट, धूर्त और कामी ही दे सकता है ऋषि मुनियों के बनाए शास्त्रों में ऐसा ज्ञान कैसे हो सकता है ?

अब हम इस संस्था के कुछ अति महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का वर्णन इनके ग्रन्थों के आधार पर करेंगे।

कल्प की आयु

"हर एक युग का समय १२५० वर्ष है और इस प्रकार कल्प की आयु कुल ५००० वर्ष है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १३८)

आगे आप पुनः लिखते हैं—

"वत्सो, जो लोग मनुष्य सृष्टि के कल्प की आयु करोड़ों वर्ष मानते हैं उन्हें चुनौति दो कि वह सृष्टि-चक्र अथवा कल्प वृक्ष जैसा कि मैंने आपको दिखाये और समझाये हैं बना कर दिखायें। केवल कहने से क्या ? उनके पास करोड़ों वर्ष का इतिहास आदि भी तो होना चाहिए और इतनी लम्बी आयु मानने के कारण तथा हिसाब किताब का ज्ञान भी तो होना ही चाहिए।" (सच्ची गीता पृष्ठ १३९)

अन्य मत जैसे मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि जो मनुष्यात्मा का ८४ लाख योनियों में पुनर्जन्म नहीं मानते वे कल्प की आयु भी करोड़ों वर्ष नहीं मानते। (सच्ची गीता पृष्ठ १३८)

समीक्षा—दादा लेखराज का यह कहना कि कल्प की आयु ५००० वर्ष है एक कपोलकल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि सृष्टि की आयु ५००० वर्ष ही है तो महाभारत युद्ध को हुए ५०६१ वर्ष हो गये अतः इस कल्प का अन्त होकर नया कल्प आरम्भ हो जाना चाहिए था। परन्तु सृष्टि की समाप्ति नहीं हुई। हम दादा जी से पूछना चाहते हैं यह कल्प लम्बा क्यों हो गया ? यदि किसी भी ब्रह्माकुमार या कुमारी में दमखम है तो उत्तर दे। वैदिक ज्योतिष के अनुसार अभी इस सृष्टि की आयु २ अरब वर्ष से भी अधिक शेष है।

आप की चुनौति हमें स्वीकार है। सृष्टि चक्र और कल्प वृक्ष का कपोल कल्पित चित्र तो कोई भी ड्राइंग मास्टर बना सकता है। जैसे आपने श्री गुलाब सिंह जी को आबू पर्वत पर बुलाकर उन से बनवाये थे मैं भी बनवा सकता हूँ यह कोई बड़ी

बात नहीं है परन्तु ऐसा कपोल कल्पित वृक्ष या चक्र बनवा कर मैं लोगों को धोखा नहीं देना चाहता।

रही इतिहास की बात। करोड़ों वर्षों का इतिहास विद्यमान है। इतनी लम्बी आयु मानने के कारण भी हैं और वैज्ञानिकों के पास उसका हिसाब किताब भी है। जिन ईसाइयों ने निष्पक्ष होकर खोज की है उन्होंने कल्प की आयु करोड़ों नहीं अरबों वर्ष बताई है। आप की जानकारी के लिये कुछ प्रमाण दे रहा हूँ—

प्रो० एस० न्यूको का कहना है जब पृथिवी सर्द होकर वनस्पति उगने के योग्य बनी उस समय से अब तक दो करोड़ वर्ष व्यतीत हुए हैं।

प्रो० हिलमार का कथन है कि जब पृथिवी ठंडी होकर वनस्पति उगने के योग्य बनी उस समय को अब तक दो करोड़ वर्ष व्यतीत हुए हैं।

प्रो० कराल कहते हैं कि पृथिवी को ठण्डा होने से वर्तमान अवस्था में आने तक सात करोड़ साल का समय चाहिये।

सर विलियम टाम्स के विचार में यह अवधि दस करोड़ वर्ष होनी चाहिये।

प्रो० सहाफ कहते हैं कि पृथिवी को दो सहस्र डिगरी के तापमान से दूसरे दर्जे के तापमान तक पहुंचने में ३५ करोड़ वर्ष से कम का समय कदापि न लगा होगा।

प्रो० रेड ने अपने एक भाषण में कहा था कि जब पहले पहल यूरोप में वनस्पति उगी थी उसे अब तक ५० करोड़ वर्ष हुए होंगे।

प्रो० हक्सले ने अन्वेषण के पश्चात् यह सिद्ध कर दिया है कि जब से संसार में वनस्पति उगनी शुरू हुई उस समय से लेकर आज तक एक अरब वर्ष व्यतीत हुए हैं।

(मस्ताना जोगी उर्दू अगस्त १९४२ के आधार पर)

सर रिचर्ड लिविंगस्टोन ने अपने एक निबन्ध में लिखा है—

"New knowledge in geology proved that it (earth) was not created some 5,000 years ago but has existed for millions of centuries."

अर्थात् भूगर्भ शास्त्र के नये विज्ञान से यह ज्ञात हो गया है कि सृष्टि की उत्पति ५००० वर्ष पूर्व नहीं हुई अपितु यह करोड़ों वर्षों से विद्यमान है।

ये सारे उद्धरण ईसाई अन्वेषकों के हैं। इन उद्धरण से स्पष्ट है कि कल्प को आयु ५००० वर्ष से बहुत अधिक है। ये वैज्ञानिक तो अभी खोज में लगे हुए हैं खोज करते करते ये निश्चित रूप से इस वैदिक सत्य पर अवश्यमेव पहुँच जायेंगे कि कल्प की आयु ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है।

कहने मात्र से किसी बात की सिद्धि नहीं होती यदि आपके पास वैज्ञानिकों की भांति कुछ ठोस प्रमाण हों तो दीजिये अन्यथा कल्प की आयु ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष स्वीकार कीजिये।

अब इनका एक अन्य सिद्धान्त देखिये—

मैं परमात्मा कहता हूँ कि—

"मेरा नाम 'शिव' रूप ज्योतिर्लिगम् और धाम परलोक है। मैं सृष्टि में व्यापक नहीं हूँ। हां मुझे इस सृष्टि का त्रैकालिक ज्ञान अवश्य है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १५५)

समीक्षा—शिव परमात्मा का नाम अवश्य है परन्तु किसी भी सत्शास्त्र में शिव का ध्यान और स्मरण करने का कोई विधान और आदेश नहीं है। वेदादि शास्त्र में प्रभु का निजनाम ओ३म् बताया गया है। उसी का ध्यान और जप करने का आदेश दिया गया है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण देखिये—

ओ३म् प्रतिष्ठ। (यजु० ३। १३)

ओ३म् में प्रतिष्ठित होओ।

ओ३म् क्रतो स्मर॥ (यजु० ४०। १५)

हे कर्मशील जीव! तू ओम् का स्मरण कर।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठ २। १५)

सब वेद जिसका बखान करते हैं, सब तप जिस की ओर संकेत करते हैं, जिस को चाहते हुए लोग ब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं वह पद 'ओ३म्' है।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥
तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥ २८ ॥
(योग दर्शन समाधिपाद)

उस ईश्वर का नाम ओ३म् है। उस ओ३म् का जप उसके अर्थ की भावना करनी चाहिये।

दादा जी की एक विचित्र मान्यता यह भी है कि गीता का ज्ञान योगेश्वर श्री कृष्ण ने नहीं दिया अपितु स्वयं दादा जी ने ही दिया था। अतः हम गीता में भी ओ३म् का महात्म्य दिखाना चाहते हैं-

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥
(गीता ८ । १३)

जो मनुष्य 'ओ३म्' ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को स्मरण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप सर्वव्यापक परमात्मा का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

कहिये दादा जी ! यह तो अपना थप्पड़ अपने ही गाल पर लगा। यदि गीता का ज्ञान आपने ही दिया था तो यह परस्पर विरोध क्यों ? इससे एक बात तो स्पष्ट हो गई कि अपने पन्थ को चलाने के लिये आप असत्य तथा छल कपट का भी सहारा ले रहे हैं। गीता का नाम लेकर भोली भाली जनता को अपने चुंगल में फंसाना चाहते हैं परन्तु अब आप का यह पाखण्ड अधिक नहीं चलेगा।

परमात्मा का रूप 'ज्योतिर्लिगम्' है यह भी आप की कपोल कल्पना ही है। कह देने से किसी बात की सिद्धि नहीं होती यदि कुछ विद्या है तो शास्त्रों के प्रमाण उपस्थित कीजिये। जिस प्रकार वायु की कोई शकल नहीं, आकाश का कोई रंग और रूप नहीं, सर्दी और गर्मी का कोई स्वरूप नहीं ठीक इसी प्रकार परमात्मा भी निराकार है।

आप का यह कहना भी सर्वथामिथ्या है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है। परमात्मा निश्चित रूप से सर्वव्यापक है। जो सर्वव्यापक नहीं वह नित्य कभी नहीं हो सकता। यदि परमात्मा सर्वव्यापक न हो तो इस सृष्टि की रचना भी नहीं कर सकता। सर्वव्यापक न हो तो न मनुष्यों के पाप और पुण्य को जान सकता है और न उन्हें उनके कर्मों का फल दे सकता है। आपने अपनी बात को सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण पेश नहीं किया। लीजिये मैं आप को प्रमाण भी देता हूँ।

मनु जी महाराज ने कहा है—

धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
(मनु० २ । १३)

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है। अतः मैं वेद का ही प्रमाण देता हूँ—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँशुद्ध-
मपापविद्धम्। (यजु० ४० । ८)

वह ईश्वर सर्वत्र व्यापक, सर्वोत्पादक, शरीर रहित, फोड़ा, फुंसी, नस नाड़ी के बन्धन से रहित शुद्ध और पाप रहित है।

लीजिये दादा जी ! वैदिक तोप की एक ही गोली से आपका हवाई किला गिर पड़ा।

आपका यह कहना भी गलत है कि मुझे इस सृष्टि का त्रैकालिक ज्ञान है। क्या आप को यह पता था कि मैं आपके पाखण्ड का खण्डन करूंगा। यदि आप को त्रैकालिक ज्ञान है तो कुछ निश्चित तिथियों की निश्चित बातें बताइये। आप के त्रैकालिक ज्ञान का भण्डा तो उसी समय फूट गया जब ५००० वर्ष होकर भी कल्प की समाप्ति नहीं हुई। यदि आपको त्रैकालिक ज्ञान है तो बताइये ३ फरवरी ६२ को क्या होने वाला है। कहां कहां भूकम्प आयेंगे, कितने मनुष्यों का विनाश होगा ? कितने राष्ट्रों पर संकट उपस्थित होगा ? क्या रूस और अमेरीका में युद्ध होगा ? यदि होगा तो कब होगा निश्चित तिथि बताइये। काश्मीर का क्या बनेगा ? भारत अपने प्राचीन गौरव को कब प्राप्त करेगा ? पाखण्डियों का पाखण्ड कब समाप्त होगा ? मेरा दावा है आप इन और इस प्रकार के अन्य प्रश्नों

का उत्तर कदापि नहीं दे सकते अतः आप को त्रैकालिक ज्ञान भी नहीं है।

अब इन की एक और मान्यता देखिये—

"इस धर्म का वास्तविक नाम 'आदि सनातन देवी देवता धर्म' है। श्री सीता श्री राम, श्री राधे-श्री कृष्ण भी इसी धर्म के थे। इस धर्म की स्थापना मैंने स्वयं ही कल्प (५००० वर्ष) पहले ब्रह्मा द्वार कराई थी।

(सच्ची गीता पृष्ठ १५५)

समीक्षा—इस से बढ़कर सफेद झूठ और क्या हो सकती है? सृष्टि के आरम्भ से महाभारत पर्यन्त समस्त संसार में एक ही धर्म था और वह था वैदिक धर्म। महाभारत के युद्ध से भारत को बहुत बड़ा धक्का लगा। भारतीय प्रचारकों का दूसरे देशों में जाना बन्द हो गया और आज से लगभग ४५०० वर्ष पूर्व पारसी मत प्रचलित हुआ। उसके पश्चात् बौद्ध और जैन मत फिर ईसाई और तत्पश्चात् इस्लाम का आरम्भ हुआ। संसार के जितने भी इतिहास लेखक हैं उन में से किसी ने भी 'आदि सनातन देवी देवता धर्म' का उल्लेख किसी भी इतिहास में नहीं किया है अतः यह सर्वथा मिथ्या प्रलाप है।

माता सीता मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम का इस दूषित एवं भ्रष्ट मत से दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। श्री राम वैदिक धर्मी थे। वेद और वेदांङ्ग के तत्त्वज्ञ थे और आप का तथाकथित मत वेदों की निन्दा करता है देखिये—

"अतः वेदों के इस मत पर विश्वास करना कि परमात्मा सर्वव्यापी है, भूल है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ८१)

भगवान् राम तो ईश्वर को सर्वव्यापी ही मानते थे। श्री राम आर्य थे। महर्षि वाल्मीकि ने उनके गुणों का वर्णन करते हुए लिखा—

आर्य सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।

(वा० रा० १।१।१६)

राम आर्य थे और देखने में प्रियदर्शन थे।

श्री कृष्ण का भी आप के मत से कोई सम्बन्ध नहीं था। श्री कृष्ण भी वेदों को मानने वाले थे। उन्होंने कहा—

वेदानां सामवेदोऽस्मि (गीता १०।२२)

वेदों में मैं सामवेद हूँ।

राधा और कृष्ण का परस्पर सम्बन्ध बताना भगवान् कृष्ण के पावन चरित्र को कलंकित करना है। कृष्ण जी की धर्मपत्नी राधा नहीं रुकमणि थी। राधा तो श्री कृष्ण की मामी थी। इस विषय में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में स्पष्ट उल्लेख है। परन्तु आप तो विद्या के शत्रु हैं। ग्रन्थों को पढ़ा नहीं जो मन में आया कह डाला किसी कवि की यह उक्ति आप पर ठीक चरितार्थ होती है—मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी।" हमारा मुख हम तो अपने मुंह से हरड को दस हाथ लम्बी बताएंगे।

इस धर्म की स्थापना आपने ५००० वर्ष पूर्व की थी यह भी ठीक नहीं। अपनी इसी पुस्तक में आपने आरम्भ में ही लिखा है—

"२५ वर्षों से ब्रह्मा के साधारण एवं वृद्ध मनुष्य तन में अवतरित (प्रवेश) होकर जो महावाक्य उच्चारण कर जाते हैं, उन्हीं के आधार पर यह गीता लिखी गई है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ 'ख')

बस २५ वर्ष से ही आप का मत चला। इसे ५००० वर्ष पुराना कहना लोगों की आंखों में धूल झोंक कर अपना उल्लू सीधा करना है।

अब एक और विचित्र सिद्धान्त अवलोकन कीजिये—

"गीता ज्ञान, मैं (भगवान् शिव) ने ही, ब्रह्मा की काया में प्रवेश करके, सतयुगी सृष्टि की स्थापना करने के लिये, संगम युग में दिया। श्री कृष्ण सतयुग में हुए थे। उनके १०८ पटरानियां नहीं थी। उन्होंने महाभारत का युद्ध भी नहीं कराया था।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १५५)

समीक्षा—गीता के सभी भाष्यकार यह मानते

हैं कि गीता का उपदेश युद्ध के अवसर पर योगेश्वर कृष्ण ने ही दिया था परन्तु दादा लेखराज इस से सर्वथा उल्टी बात कर रहे हैं। वे उस गीता को अपनी बता रहे हैं "किमाश्चर्यमतः परम्" इस से बढ़कर और आश्चर्य क्या हो सकता है। यदि किसी वर्तमान लेखक की पुस्तक पर दादा जी अपना नाम डाल देते तो जेलखाने के सींखचे ही गिनते रहते।

दादा जी के विश्वास, मान्यता और सिद्धान्त के अनुसार कल्प की आयु ५००० वर्ष है। ५००० वर्ष के पश्चात् घड़ी की सुई की भांति सारा इतिहास पुनरावृत्त होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि 'शिव'—दादा लेखराज ब्रह्मा द्वारा पुनः लोगों को गीता सुना रहे हैं। आज से ५ हजार वर्ष पूर्व भी दादा लेखराज ब्रह्मा बने थे और ब्रह्माकुमारी संस्था की स्थापना की थी। अब पुनः उसी ज्ञान को लोगों तक पहुँचा रहे हैं और ५००० वर्ष पश्चात् फिर इसी प्रकार ब्रह्मा अर्थात् दादा लेखराज का जन्म होगा। यदि यह बात ठीक है (इनके सिद्धान्तानुसार तो ठीक है ही) तो हम दादा लेखराज और उनके समस्त ब्रह्माकुमार और कुमारियों को चैलेञ्ज देते हैं कि वे हमारे निम्न प्रश्नों का उत्तर दें—

(१) भगवद्गीता संस्कृत भाषा में है परन्तु वर्तमान सच्ची गीता निम्न कोटि की हिन्दी में है कहीं कहीं अंग्रेजी के शब्द भी हैं। क्या ५००० वर्ष पूर्व भी दादा जी ने यही भाषा प्रयुक्त की थी?

(२) भगवद्गीता श्लोकों में है और सारी गीता का पाठ लगभग २ घण्टे में बड़े आराम से किया जा सकता है परन्तु वर्तमान गीता हिन्दी में है और इस के पाठ में १० घण्टे से न्यून तो कदापि न लगेंगे। यह भीषण अन्तर क्यों?

(३) भगवद्गीता का ज्ञान तो कृष्ण ने दिया था और उसे लिखा व्यास जी महाराज ने था परन्तु इस वर्तमान गीता को जे० पी० 'संजय' ने सम्पादित किया है। कल्प में इतिहास की पुनरावृत्ति हूबहू होती है ऐसा आप का विश्वास है तो क्या यह बात आप की इस गीता से ही खण्डित नहीं हो गई?

(४) आज कल तीन गीताएं मिलती हैं एक में ७४५ श्लोक हैं, एक में पूरे ७०० और बाली द्वीप में जो गीता मिली है उसमें केवल ७० ही श्लोक हैं। यदि गीता का ज्ञान आपने ही दिया था तो बताइये उन में से कौन सी ठीक है? दादा जी! एक बात और, अपने हृदय पर हाथ रख कर कहना कि क्या आपने अपने जीवन में देखने की बात तो दूर रही ७४५ श्लोक की गीता के सम्बन्ध में सुना भी है?

(५) क्या पांच सहस्र वर्ष पूर्व वही भाषा थी जैसी इस काल्पनिक गीता में लिखी गई है। यदि 'हाँ' तो अंग्रेजी भाषा तो भारतवर्ष में लगभग दो शताब्दी से आई है। क्या उस समय भी यह अंग्रेजी दो शताब्दी पूर्व ही आई थी?

(६) इतिहास लेखक इस बात से सहमत हैं कि महाराज भोज के समय में शुद्ध संस्कृत बोली जाती थी। आपका इस सम्बन्ध में क्या विचार है?

(७) क्या आप की टूटी फूटी हिन्दी और अंग्रेजी वाली गीता का अनुवाद उसी युग में संस्कृत में हुआ था?

(८) यदि आपकी पुस्तक का अनुवाद उसी समय में हुआ तब तो उस युग में हिन्दी और संस्कृत भी बोली जाती होगी? क्यों ठीक है न दादा जी?

(९) यदि यह बात ठीक है तो क्या आप उस समय के किसी अंग्रेजी के विद्वान् का नाम बता सकते हैं? यदि नहीं तो फिर यह बतलाइये कि उस गीता का अनुवाद संस्कृत में कब हुआ?

दादा जी ! आप तो उभय पाश रज्जू में फंस गये। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में—

भई गत साँप छछून्दर केरी।

यह उक्ति आप पर १६ आने ठीक बैठती है। यदि कुछ हिम्मत है तो उत्तर दीजिये।

सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगों का नाम तो अनेक बार सुना और पढ़ा परन्तु यह संगम युग क्या बला है ? यह कौन सी पुस्तक में है ? सत्युग आदि तो १२५०-१२५० वर्ष के हो गये यह सङ्गम युग कितने वर्ष का होता है यह आपने कहीं नहीं बताया। तब न सही यदि कुछ दम खम है तो अब बता दीजिये। मेरा चैलेंज है कि आप इस का उत्तर सात जन्म में भी न दे सकेंगे। सङ्गम युग का समय बताते ही आपके कल्प की आयु बढ़ जायेगी। यहां भी आप बुरी तरह फंसे हैं।

श्री कृष्ण सत्युग में हुए थे। यह आपकी अद्भुत खोज है। पता नहीं संसार के इतिहास वेत्ता कहां सो रहे हैं। उन सब को सरकार से प्रार्थना करके आपको इस अद्भुत खोज के लिये आपको पी० एच० डी० (Ph. D.) की डिगरी दिलानी चाहिये थी। अब तो सारे ब्रह्माकुमार और कुमारियों को प्रयत्न करके दादा जी की इस थिसिस पर उन्हें डाक्टरेट की उपाधि दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये।

श्रीकृष्ण के १०८ पटरानियां नहीं थी। यह बात अखण्डनीय है। हमें प्रसन्नता है कि इतनी बड़ी पोथी में आपने एक बात तो ठीक कही। इसके लिए मैं आपको साधुवाद देता हूँ। परन्तु आगे आपने पुनः बेतुकी बात लिख दी कि श्रीकृष्ण ने महाभारत का युद्ध भी नहीं कराया था। महाभारत का युद्ध यदि श्री कृष्ण ने नहीं कराया तो क्या दादा लेखराज ने कराया था ?

अब एक और विचित्र मान्यता देखिये—

"निर्वाणधाम में निवास ही मुक्ति है। मुक्ति कल्प के अन्त में होती है। अभी तक कोई भी मनुष्य मुक्त नहीं हुआ। मनुष्य मनुष्य को मुक्त या जीवनमुक्ति नहीं दे सकता।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १५५)

समीक्षा—मुक्ति का अर्थ है छूटना। जब आप ने एक मनुष्य को एक लोक से हटा कर दूसरे में बन्दी बना दिया तो मुक्ति कहां हुई ? और फिर यह निर्वाण धाम कहां है ? किस शास्त्र में इसका वर्णन है ? यह कितनी दूर है ? कहां स्थित है ? आपका इतिहास भूगोल गणित आदि सभी विचित्र है। कृपया बताइये कौन से इतिहास या भूगोल में इसका वर्णन है जिससे हम भी पढ़ सकें ?

मुक्ति कल्प के अन्त में होती है यह आपको किसने बता दिया। आपके ही अनुसार श्री सीता श्री राम, श्री राधे श्री कृष्ण ये सब पुण्यात्मा और धर्मात्मा थे। आपके ही 'आदि सनातन देवी देवता धर्म' के थे। २५०० हजार वर्ष तक जो व्यक्ति उत्पन्न हुए वे सभी सतोगुणी थे। उस समय में पाप होता ही नहीं था। ये सारी बाते आप ने ही अपनी गीता में लिखी हैं। ऐसे शुद्ध पवित्र किसी व्यक्ति की मुक्ति क्यों नहीं हुई ?

यदि मुक्ति कल्प के अन्त में होगी तो आपकी मान्यता के अनुसार जिन व्यक्तियों को मरे हुए अब चार चार और पांच पांच हजार वर्ष हो गये है वे इस समय कहां पड़े हुए हैं। क्या मुसलमानों की भांति वे 'दौरा सुपुर्द' हैं। यदि कल्प के अन्त में मुक्ति होगी तो इस समय तो आपके अनुसार सारे ही व्यक्ति दुराचारी और पापी होते हैं, वे सभी तमोगुणी हैं क्या कल्प के अन्त में सभी की मुक्ति हो जायेगी ? यदि सचमुच ऐसा ही है तब तो ऐसा शिव जो दादा लेखराज के तन में अवतरित हो रहा है बड़ा ही पक्षपाती, पापी और अन्यायी है जो श्रेष्ठों को मुक्ति न देकर दुष्टों को मुक्त करता है।

जब आप स्वयं ही स्वीकार करते हो कि मनुष्य मनुष्य को मुक्ति नहीं दे सकता तो फिर तुम भोले-भाले लोगों को क्यों जाल में फंसा रहे हो। कुछ तो ईश्वर से डरो और अब तो अपने पापों का प्रायश्चित कर लो।

पाठकगण ! यहां तक हमने ब्रह्माकुमारी संस्था का परिचय देकर इनके प्रमुख सिद्धान्तों और मान्यताओं की समालोचना की है। अब हम इनकी पुस्तकों के उद्धरण दे देकर उन सदर्भों की समालोचना करेंगे जिससे पाठकों को ज्ञान हो जाये कि इनकी पुस्तकों में कैसी अनर्गल और बिना सिर पैर की बातें भरी हुई हैं।

प्रमाणः—"यह तो सिद्ध हैं कि इसलाम धर्म इब्राहिम ने, मुसलमान धर्म मुहम्मद ने, ईसाई धर्म ईसा ने, बुद्ध धर्म बुद्ध ने और इस प्रकार अन्य धर्म अन्य अन्य मनुष्यों ने स्थापित किये।"

(सच्ची गीता पृष्ठ २)

समीक्षा—ईसाई धर्म ईसा ने और बौद्ध धर्म बुद्ध ने स्थापित किया यह तो ठीक है परन्तु इसलाम धर्म और मुसलमान धर्म इब्राहिम और मोहम्मद ने स्थापित किया यह आप की नई खोज है। दादा जी ! इसलाम धर्म और मुसलमान धर्म में क्या अन्तर है यह आपने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया। इससे यह तो पता लग गया कि आपको इतिहास का तनिक भी ज्ञान नहीं है। ये तो मत हैं इन्हें धर्म कहना भी भूल है। एक बात और यह प्रकरण अधूरा रह गया। इसमें यदि आप इतना और लिख देते कि ब्रह्माकुमारी मत दादा लेखराज ने स्थापित किया तो प्रकरण पूरा हो जाता। खैर कोई बात नहीं। मनुष्य से भूल हो ही जाती है। अगले संस्करण में सुधार देना।

प्रमाण—"परन्तु मैं तो अशरीरी हूँ। मैं मनुष्यताओं की तरह जन्म मरण के चक्कर में नहीं आता।"

समीक्षा—दादा जी ! अपनी धुन में मस्त लिखे चले जा रहे हो। आप को आगे पीछे का भी कुछ ज्ञान है ? यहां आप अपने को अजन्मा बता रहे हो परन्तु अन्य स्थानों पर आप ने अवतार लेने की बात कही है, जो अजन्मा है उसका अवतार कैसा ? जो अशरीरी है उसका शरीर कैसा ? कोई बुद्धिमान् तो आप की इन परस्पर विरोधी बातों को मान नहीं सकता।

प्रमाण—'प्रिय वत्सो ! शिव का अर्थ है मुक्ति दाता अथवा सद्गति दाता।" (पृष्ठ ७)

समीक्षा—यह है दादा जी का संस्कृत का ज्ञान ! शिव शब्द संस्कृत की शिवुकल्याणे धातु से बनता है। इसका अर्थ मंगलदाता और कल्याणकर्ता है मुक्ति दाता नहीं। कमाल तो यह है कि आगे चलकर स्वयं दादा जी ने इसका अर्थ निस्वार्थ कल्याणकारी माना है।

प्रमाण—"अब क्योंकि मैं ही (१) ज्ञान का सागर (२) सर्वशक्तिमान् (३) सभी गुणों तथा सुखों का अखुट भण्डार और (४) निष्पक्ष तथा सम्पूर्ण अनासक्त तथा (५) सभी मनुष्य आत्माओं रूपी सन्तान के कल्याण की प्रेरणा से युक्त (६) स्वयं त्रिलोकी का नाथ, स्वाधीन हूँ अतः एक मैं ही सभी का कल्याणकारी हूँ।"

आगे पुनः कहते हैं—

"मुझे ही विश्वेश्वर नाथ, चक्रवर्तीश्वर और पार्थेश्वर भी कहते हैं क्योंकि मैं ही सृष्टि का मालिक हूं और पालन करने वाला, चक्रवर्ती राजाओं का भी ईश्वर अर्थात् राज्य भाग्य देने वाला हूँ।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ७)

समीक्षा—इसे प्रमत्त प्रलाप के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। यह तो अपने मुंह मिया मिट्ठू बनना है। आप अपने को कुछ भी समझते रहें परन्तु आप कितने पानी में हैं, आप का ज्ञान और शक्ति कितनी है यह तो इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर सब पर प्रकट हो जायेगा। आप विश्वेश्वर और चक्रवर्तीश्वर तो नहीं परन्तु ढोंगेश्वर और पाखण्डेश्वर अवश्य ही कहे जा सकते हैं।

प्रमाण—"जिस वस्तु का नाम है, उसका रूप भी अवश्य होगा। किसी वस्तु का रूप स्थूल आँखों से दिखाई न देता हो यह तो हो सकता है, परन्तु किसी का अस्तित्व हो पर रूप हो ही न—यह बात असम्भव है।" (सच्ची गीता पृष्ठ ९)

समीक्षा—यह है दादा लेखराज का पदार्थ विज्ञान। इसी ज्ञान के आधार पर अपने को ज्ञान

का सागर कहते हैं। दादा जी! संसार में ऐसे अनेक पदार्थ है जिन का नाम तो है परन्तु रूप कोई नहीं। आप की जानकारी के लिये कुछ गिना देता हूँ। हवा का नाम तो आप ने सुना होगा क्या उसकी कोई शक्ल है? इसी प्रकार आकाश, भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी, दर्द, दुःख, सुख, दया, उदारता आदि सैंकड़ों नाम गिनाये जा सकते हैं। जिन पदार्थों का अस्तित्व होता है उनका रूप भी होता है तो कृपया इनका रूप बताइये नहीं तो आपका दावा झूठा है।

प्रमाणः—सत्युग का वर्णन करते हुए आप कहते हैं—

"उस युग में कोई बच्चा जन्म लेने पर रोता नहीं था।" (पृष्ठ ३१)

समीक्षा—यह बात सृष्टि नियम के विरुद्ध है। कभी भी कोई समय ऐसा नहीं था और न आगे होगा जब बच्चा जन्म ले और रोये नहीं। हां एक बात सम्भव हो सकती है यदि मरा हुआ बच्चा उत्पन्न हो तो वह नहीं रोता। तो क्या सतयुग में सब मरे हुए बच्चे पैदा हुआ करते थे?

प्रमाण—"उस युग में वर और वधू का गृहस्थ जीवन भी सर्वथा पवित्र था। वे दोनों इन्द्रिय जीत होते थे। कामवासना तो उस काल में संकल्प मात्र भी नहीं थी। सन्तानोत्पत्ति भी आत्मबल द्वारा आवाहन से, अर्थात् योगबल द्वारा होती थी। (पृष्ठ ३२)

समीक्षा—इसे चण्डू खाने की गप्प के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? दादा जी! आप बिना प्रमाण के बात करते हैं। किसी इतिहास से कोई प्रमाण दीजिये, अन्यथा आज के वैज्ञानिक युग में आप के अन्धश्रद्धालु चेलों को छोड़कर कोई विश्वास नहीं करेगा।

प्रमाणः—"कलियुग के अन्त में, अन्तिम जन्म में, सभी मनुष्यात्माएं तमो प्रधान दुःखी, अशान्त, अपवित्र, आसुरी, धर्म भ्रष्ट, कर्म भ्रष्ट, योगभ्रष्ट और हिंसक होती हैं। वर्त्तमान समय सभी मनुष्यों की यही स्थिति है।"

समीक्षा—आप की मान्यता के अनुसार कलियुग में यदि सारे ही लोग धर्म भ्रष्ट और अपवित्र होते हैं तो जिस वृद्ध तन में आपने प्रवेश किया वह भी भ्रष्ट ही होगा और इस प्रकार आप में उपर्युक्त सारे दूषण आ गये। आप औरों के लिये गड्ढ़ा खोद रहे थे परन्तु स्वयं कुएं में गिर पड़े।

प्रमाणः—"मन, बुद्धि, चित्त इत्यादि आत्मा से अलग नहीं है।" (सच्ची गीता पृष्ठ ३८)

समीक्षाः—दादा जी यहां भी आप गलती खा गये। सच्ची बात तो यही है कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आत्मा से अलग है। आगे चलकर आपका यह मानना कि "मन प्राकृतिक नहीं है" भी अशुद्ध है। मन प्राकृतिक है, भौतिक है आत्मा अभौतिक हैं। जिस गीता के सम्बन्ध में आप यह घोषणा करते हैं कि इसका ज्ञान मैंने ही दिया था श्रीकृष्ण ने नहीं वह भी आप की बात का समर्थन नहीं करती वहां तो स्पष्ट उल्लेख है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
(गीता० ३। ४२)

अर्थात् शरीर से परे इन्द्रियां हैं, इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है तथा जो बुद्धि से भी अत्यन्त परे है वह आत्मा है।

कहिये! अब कौन सी बात को ठीक मानें।

प्रमाणः—"परन्तु गंगा का वास्तविक परिचय न होने के कारण आज भारतवासी हरिद्वार नामक नगर के पास से, ब्रह्मा कुण्ड के निकट से बहती हुई जो नदी जाती है, उसे ही शिव से निकली हुई गंगा समझते हैं।" (सच्ची गीता पृष्ठ ४७)

समीक्षाः—आप को किसी बात का पता हो या न हो आप अपनी टांग अवश्य अड़ाते हैं। यदि आप को इतिहास और भूगोल का ज्ञान होता तो यह बात कदापि नहीं कहते। हिमालय का एक नाम हर भी है। हरद्वार से हिमालय का मार्ग आरम्भ होता है इस लिये इसे हरद्वार कहते हैं। हरिद्वार की कल्पना बहुत पीछे हुई। हर शिव जी का ही

नाम है। अतः गंगा शिव से ही निकली है। इसमें सन्देह ही क्यों ?

प्रमाणः—अर्जुन भी रूपकीय शब्द है जो कि वास्तव में ब्रह्मा का पर्यायवाची है।"

आगे फिर लिखा है—

वत्सो ! अर्जुन वास्तव में लाक्षणिक नाम है। अर्जुन का अर्थ है शुद्ध व पवित्र रहने के लक्ष्य वाला रूहानी योद्धा। अतः श्वेत वस्त्र धारी ज्ञानबाणों द्वारा माया से युद्ध करने में कुशल, ब्रह्मा ही को अर्जुन भी कहना यथार्थ हैं।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ५४)

समीक्षाः—दादा जी ! यह विचित्र अर्थ आप की खोपड़ी से निकला है या आप की देह में 'मैकाले' बोल रहा है ? यदि किसी इतिहास या कोष में इसका वर्णन हो तो उस का उल्लेख कीजिये। वैसे आपकी इस नई सूझ की दाद अवश्य देनी पड़ेगी।

प्रमाणः—'वत्सो ! यदि आप से कोई पूछे कि —"आप का गुरु कहां है, हमको उसके दर्शन कराओ' तो उस को कहो कि—"हमारा गुरु तो सूर्य चांद और तारागण से भी पार निर्वाणधाम में रहता है, वहां से ही वह ब्रह्मा तन में आता है। उसे इन स्थूल और विकारी आंखों से नहीं देखा जा सकता।" (सच्ची गीता पृष्ठ ५८)

समीक्षाः—गुरु निर्वाण धाम में रहता है यह तो एक व्यर्थ की कल्पना है। जिस प्रकार मुसलमानों ने जन्नत और ईसाइयों ने हैवन की कल्पना की इस प्रकार से दादा लेखराज ने भी निर्वाणधाम की कल्पना कर ली। वस्तुतः दादा लेखराज कभी आबू पर्वत पर रहते हैं और कभी देहली के राजौरी गार्डन में। दादा लेखराज साकार है अतः कोई भी व्यक्ति उक्त स्थान पर जाकर उसे देख सकता है।

प्रमाणः—"भारत ही एक ऐसा निराला देश है जिसको मातृभूमि (Mother Land) के नाम से भी याद किया जाता है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ७२)

समीक्षा—आपकी यह धारणा बिल्कुल गलत है। इंगलैण्ड, फ्रांस, अमेरीका, चीन, जापान तथा रूस सभी देशों के लोग अपने भूखण्ड को मातृभूमि कहते हैं।

प्रमाणः—तभी तो गीता में मेरे महा वाक्य हैं कि जब जब धर्म ग्लानि होती है तब तब मैं भारत में अवतरित होता हूँ।

समीक्षाः—गीता में भारत शब्द सम्बोधन है और अर्जुन के लिए प्रयुक्त हुआ है। परन्तु संस्कृत शून्य दादा जी ने इस का अर्थ भारतवर्ष कर दिया है। आप की पोप लीला भारत जैसे देश में ही चल सकती हैं। यदि कहीं पाश्चात्य देशों में आपका जन्म होता तो जल में डाल दिये जाते।

प्रमाणः—मुक्ति के लिये पुरुषार्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" (सच्ची गीता पृष्ठ ९२)

समीक्षाः—मानव जीवन का लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति है परन्तु दादा जी कहते हैं मुक्ति के लिये पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं है ? कैसा उत्तम ज्ञान है ? ओ लेखराज के चुंगल में फंसने वाले लोगो ! जिस मुक्ति के लिए आप लेखराज के पास जाते हैं वह तो उसे व्यर्थ समझता है अतः सावधान इसके जाल में मत फंसो।

प्रमाणः—"विश्व के तीनों कालों का इतिहास और भूगोल (Geography) का संक्षेप में ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है, क्योंकि इस ज्ञान द्वारा मनुष्य यथार्थ पुरुषार्थ कर सकता है अन्य जो लौकिक विद्याएं हैं जैसे कि डाक्टरी, इञ्जनियरिंग, राजकारोदबार की विद्या आदि उन्हें 'सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता।" (सच्ची गीता पृष्ठ ९६)

समीक्षाः—सर्वोत्तम विद्या तो आध्यात्मिक विद्या है जिससे इह लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। आपने इतिहास और भूगोल को सर्वोत्तम माना है परन्तु इन का भी आपको ज्ञान नहीं। विश्व के तीनों कालों के इतिहास और भूगोल का ज्ञान हो भी कैसे सकता है। इतिहास तो होता ही भूत काल का है। इतिहास का अर्थ है इति+ह+आस=

ऐसा था। क्या आप ने भविष्य का कोई इतिहास लिखा है। इतिहास और भूगोल से डाक्टरी और इञ्जनियरिंग आदि को निकृष्ट बताना भी अपने अज्ञान का परिचय देना है।

प्रमाणः—"बड़ों में भी सब से बड़ा कौन है जो सर्वोत्तम ज्ञान का सागर और त्रिकाल दर्शी कहा जाता है। मेरे ही गुण भी सर्वोत्तम माने जाते हैं। इसलिये मुझे ही पुरुषोत्तम भी कहते हैं।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ९६)

समीक्षाः—सर्वोत्तम ज्ञान के हमने अनेक उदाहरण पिछले पृष्ठों में दिये हैं। पाठकों पर इस सर्वोत्तम ज्ञान के दाता और ज्ञान के सागर की पोल अच्छे प्रकार खुल गई होगी। अब पाठकों को पुरुषोत्तम का अर्थ और बता दूं। पुरुषोत्तम की दो निरुक्तियां होती हैं। एक है "पुरुषेषु उत्तम इति पुरुषोत्तमः" यह उक्ति तो लेख राज जैसे व्यक्ति पर जो पर स्त्रियों के साथ रमण करता है, उन्हें अपनी गोद में बिठाता है उन्हें प्रसाद खिलाता है और उनके अधरामृत का पान करता है घट नहीं सकती। अतः हमें विवश होकर दूसरी निरुक्ति देखनी पड़ेगी। दूसरी निरुक्ति के अनुसार "पुरुषेषु ऊतस्तेषु उत्तम इति पुरुषोत्तमः" इस निरुक्ति के अनुसार कम से कम मुझे उन्हें पुरुषोत्तम मानने में तनिक भी संकोच नहीं है। और मुझे ही क्यों दादा लेखराज को भी तनिक भी संकोच न होगा।

प्रमाणः—'मेरे ही ज्ञान द्वारा मनुष्य सर्वोत्तम पद को भी प्राप्त कर सकता है और व्यवहार तथा परमार्थ सिद्ध कर सकता है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ९६)

समीक्षाः—सर्वोत्तम पद तो क्या प्राप्त होगा हां नरक में गोते अवश्य खाने पड़ेंगे तथा संसार में बदनामी होगी वह अलग।

प्रमाणः—'प्रभु प्राप्ति' के एक मात्र मार्ग का पूर्ण परिचयात्मक नाम हुआ—'सहज ज्ञान योग-कर्म योग-संन्यास योग-राज योग।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ९८)

समीक्षाः—इस लम्बे चौड़े नाम को देखकर हमें एक टूटा फूटा श्लोक स्मरण हो आया जो कदाचित किसी ऐसे ही नायक के सम्बन्ध में लिखा गया है—

बड़ा धोता बड़ा पोथा पण्डिता पगड़ बड़ा।
अक्षरं नैव जानाति लपोड़ शंखाय नमो नमः॥

प्रमाणः—'वत्सो! यज्ञ का अर्थ है देना' अथवा आहुति देना'। (सच्ची गीता पृष्ठ १०७)

समीक्षाः—पाठकगण अब तो आपको पूर्णरूप से निश्चय हो गया होगा कि दादा जी संस्कृत के ज्ञान से बिल्कुल कोरे हैं। यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है। यज् धातु के तीन प्रमुख अर्थ हैं देवपूजा संगति करण और। दान अतः यज्ञ के भी ये ही अर्थ हुए। केवल देना अर्थ करना अपनी अज्ञानता ही प्रकट करना है।

प्रमाणः—मैं परलोक से अवतरित होता हूँ और एक साधारण एवं वृद्ध मनुष्य के तन में प्रवेश करता हूँ.....इस प्रकार प्रवेश करने पर, ब्रह्मा के तन में दो आत्माएं होती हैं। एक तो स्वयं ब्रह्मा की आत्मा होती है और दूसरा मैं परमात्मा होता हूँ।

समीक्षा.—एक शरीर में एक ही आत्मा का निवास हो सकता है दो आत्माओं का निवास कदापि नहीं हो सकता। यह केवल अपना पाखण्ड फैलाने का साधन है। इसे तथ्य नहीं कहा जा सकता। संसार के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण ढूंढ़ने पर ही नहो मिलेगा कि किसी मनुष्य में कभी दो आत्मायें एक साथ रही हों।

प्रमाणः—"श्री मद्भगवद्गीता में बताया गया है कि गीता के भगवान् का जन्म रात्रि के घोर अन्धकारमय समय, जब कि सभी सो रहे थे, तब हुआ।" (सच्ची गीता पृष्ठ १,२)

समीक्षाः—भगवत्गीता में यह बात बिल्कुल नहीं लिखी। मैं दादा लेख राज तथा सभी ब्रह्माकुमार और कुमारियों को चैलैञ्ज देता हूँ यदि किसी में दम खम है तो यह बात गीता से निकाल कर दिखाये।

प्रमाणः—"प्रिय वत्सो! जैसे मैं परमात्मा सभी मनुष्यात्माओं का पारलौकिक पिता हूँ वैसे

ही मेरे वाक्यों द्वारा रचित शास्त्र 'श्रीमद्भागवत् गीता' सभी शास्त्रों की माता पिता है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ११५)

समीक्षा—आप को पिता मानता कौन है ? क्या आप जबरदस्ती संसार के पिता बनना चाहते हैं ? कोई मूर्ख ही आप को अपना पिता स्वीकार कर सकता है, बुद्धिमान् व्यक्ति तो आप से बात करना भी पसन्द नहीं करेंगे। रही आप की 'गीता', मेरे विचारों में यह रद्दी की टोकरी में फेंकने योग्य है। सृष्टि क्रम विरुद्ध, इतिहास और विज्ञान के प्रतिकूल अनेक बातें इसमें भरी हुई हैं। आप अपने मुंह से कुछ भी कहते रहिये बुद्धिमान् तो आप की चिल्ल पौं को मान नहीं सकते।

प्रमाण:—गीता सर्व प्राचीन धर्म ग्रन्थ है और उस की रचना भी अन्य मतों के प्रकट होने से पूर्व हुई। (सच्ची गीता पृष्ठ ११८)

समीक्षा:—आपकी यह बात भी मिथ्या है। सारे संसार के इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि ऋग्वेद ही संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। आप की इन झूंठी बातों को पढ़ पढ़कर आप के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है और आप अपने को परमात्मा घोषित करते नहीं अघाते। क्या परमात्मा के पास झूंठ बोलने, लोगों को धोखा देने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है। प्रभो! ऐसे पाखण्डी परमात्माओं से संसार की रक्षा करो।

गांधी जी और दादा लेखराज

दादा जी ने गान्धी जी के सम्बन्ध में कई स्थानों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। ये विचार बहुत ही महत्वपूर्ण और उपादेय हैं। कांग्रेसियों को इनसे शिक्षा लेनी चाहिये। लीजिये सुनिये—

"यद्यपि महात्मा गान्धी ने शास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भगवद्गीता से प्रेरणा पाई और कुछ आध्यात्मिक बल भी प्राप्त किया तो भी वे राम राज्य की स्थापना न कर सके। वह साक्षात् मुझ सर्वशक्तिमान् परमपिता से ज्ञान, पवित्रता और योग की शक्ति न पा सके, क्यों कि वे अभी सत्य की खोजना ही कर रहे थे। अर्थात् उन्होंने अभी मुझ गीता के निराकार भगवान् को जाना ही नहीं था। इसलिये उन्होंने जो सिविल ना फरमानी, असहयोग, आमरण व्रत आदि आदि के रूप में हठयोग के जो तरीके अपनाए वे सभी मेरे ईश्वरीय ज्ञान और योग के विपरीत थे। इसलिये उनके जीवन काल में राम राज्य की इच्छा पूरी न हो सकी।" (सच्ची गीता पृष्ठ ११९)

आगे आप फिर लिखते हैं—

"महात्मा गान्धी जनता को विकारी से निर्विकारी अथवा रावण समान से राम समान नहीं बना सके, क्योंकि उन्हें सच्चे ज्ञान और योग का परिचय ही नहीं था।" (पृष्ठ ११९)

यहीं पर बस नहीं है और देखिये—

"महात्मा गान्धी तो स्वयं ही सम्पूर्णतया पवित्र न थे। जिस ज्ञान और योग द्वारा मैं मनुष्यों को मनो विकारों पर विजय प्राप्त करने योग्य बनाता हूँ, गांधी जी उस से तो परिचित ही न थे। इस कारण वे भारत वासियों के मन, वचन, कर्म अथवा व्यवहार तथा आचरणात्मक पवित्रता न ला सके।" (सच्ची गीता पृष्ठ १२०)

समीक्षा:—ये हैं दादा लेखराज के गांधी जी के सम्बन्ध में विचार! आज कांग्रेसियों की जो हार हो रही है उसका कारण भी यही प्रतीत होता है कि श्री नेहरू आदि ने दादा जी से ज्ञान नहीं लिया। गान्धी के चेलो! इन विचारों को पढ़ो और सोचो। क्या गांधी सचमुच ऐसे ही थे ?

गांधी आदि की जयन्ति मनाना भी दादा लेख राज को अखरता है। वे लिखते हैं—

"भारतवासियों के धर्म विमुख और ईश्वर विमुख होने का एक प्रमाण यह है कि वे अन्य धर्म स्थापन करने वाले मनुष्यों के जन्म दिन को मनाने के लिये तो करोड़ों रुपये खर्च कर देते हैं, परन्तु जिस निराकार परमात्मा (शिव) ने इस सृष्टि को तमोप्रधान से बदल सतोप्रधान अथवा दैवी स्थिति में लाया और जो हर कल्प (५०००

वर्ष के बाद) सम्पूर्ण पवित्र, सुख तथा शान्ति का वरसा देकर भारत को मोहताज से सरताज और सच्चा स्वराज्य बनाता है उस (शिव) की सच्ची बरसी (शिव जयन्ति) नहीं मनाते।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १२०)

समीक्षा:—दादा जी के शब्दों में एक कसक, टीस, वेदना और पीड़ा है कि मेरी बरसी क्यों नहीं मनाई जाती। मुझे दादा जी से सहानुभूति है परन्तु क्या करूं मैं भी इस विषय में कुछ कर सकने में असमर्थ हूँ। जयन्तियां उनकी मनाई जाती हैं जो इस धरा धाम पर उच्च और श्रेष्ठ कर्म करते हैं, जो लोगों को सन्मार्ग दिखाते हैं। संसार राम की पूजा करता है रावण को कोई नहीं पूजता। एक ओर आप लोगों के गृहस्थों को चौपट कर, पति और पत्नी में फूट डालें, परस्त्रियों के साथ रमण करें और दूसरी ओर ये चाहें कि आप की जयन्ति मनाई जाये? आप की यह आशा दुराशा मात्र है। फिर आपके मतानुसार तो इस सृष्टि का ड्रामा घड़ी की सुई के अनुसार चलता है तब यह रोना धोना क्यों?

प्रमाण:—"ऐसी परिस्थिति में मेरे प्रिय बच्चे कांग्रेस पति गान्धी जी जो कार्य अधूरा छोड़ गये थे।" (सच्ची गीता पृष्ठ १२५)

समीक्षा:—दादा जी की अवस्था गान्धी जी से कम है परन्तु आपका गान्धी जी को प्रिय बच्चा कह कर सम्बोधित करना अशिष्टता नहीं तो और क्या है? दादा जी आप के मतानुसार 'कलियुगी विकारी मनुष्य के नाम के साथ श्री लगाना तो एक दम अनुचित और उपहास योग्य है' परन्तु अपने से भी बड़े व्यक्तियों को प्रिय बच्चा कहना उचित और शिष्टता है। शिक्षा का कितना ऊंचा आदर्श है?

प्रमाण:—मनुष्यात्माएं पशु योनि में जन्म नहीं ले सकतीं। इसी प्रकार पशु भी मनुष्य योनि में जन्म नहीं ले सकते क्योंकि ऐसा नियम ही नहीं है।

(सच्ची गीता पृष्ठ १२६)

समीक्षा:—यह नियम आप के घर का है या किसी शास्त्र का? यदि किसी शास्त्र का है तो बतलाइये कौन से शास्त्र में लिखा है? मनुष्य आत्माएं अपने कर्मों के अनुसार पशु योनि की तो बात ही क्या कीट पतंग और वृक्ष योनि में भी जाती हैं। यदि यह माना जाये कि मनुष्य आत्मा पशु योनि में नहीं जाती तो हम पूछना चाहते हैं कि कुछ आत्माओं को पशु योनि और कुछ को मनुष्य योनि क्यों मिलो। यदि बिना कारण ही कुछ आत्माओं को मनुष्य योनि मिल गई और कुछ को पशु योनि तो फिर ऐसा परमात्मा अन्यायी और पक्षपाती होगा। क्या ब्रह्माकुमारियों का परमात्मा ऐसा ही है?

आप की यह मान्यता कि मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियां धारण नहीं करती' (पृष्ठ १२९) भी सर्वथा मिथ्या है। यह तो आवश्यक नहीं कि मनुष्यात्मा क्रमशः ८४ लाख योनियों में अवश्य ही जायेगी परन्तु इतना तो निश्चित है कि कर्मानुसार वह किसी भी योनि में जा सकती है। मनुष्य कर्म तो खोटे करता रहे, झूंठ भी बोले, कम भी तोले, कामी, क्रोधी और व्यसनी भी हो और वह मनुष्य जन्म ही पाता रहे यह बात अशुद्ध है।

प्रमाण:—आप ही नहीं बल्कि आज कल इस धर्म के सभी लोग अपना परिचय देते समय स्वयं को हिन्दू कहते हैं। परन्तु स्पष्ट है कि 'हिन्दु' शब्द तो सिन्धु नदी अथवा हिन्दुस्तान देश के नाम के आधार पर पड़ा है। (सच्ची गीता पृष्ठ १३०)

समीक्षा:—आपको इतिहास का ठीक ज्ञान तो है नहीं और आप बार बार इतिहास की बात कहते हैं और अशुद्ध कहते हैं। यदि हिन्दू नाम सिन्धु नदी के आधार पर पड़ा है तो सिन्धु नदी को हिन्दु क्यों नहीं कहते? क्या आप के पास कोई उत्तर है? यह नाम हिन्दुस्तान देश के आधार पर भी नहीं पड़ा। वास्तविकता तो यह है कि हिन्दु नाम मुसलमानों का दिया हुआ है। उर्दू कोष में हिन्दु का अर्थ चोर, डाकू और काला आदमी है। इस घृणा सूचक नाम को अब लोगों ने अपना लिया यह सचमुच दुःख की बात है। हां आप की

बात ठीक है कि—"हिन्दु शब्द से प्राचीनता और दैवी मर्यादा की खुशबू नहीं आती।" यह भी सत्य है कि 'हिन्दु शब्द कोई हृदय को आकर्षण करने वाला, प्राचीन परम्परा की याद दिलाने वाला और .....प्रोत्साहित करने वाला नहीं है।" "अच्छी बात बालक से भी ले लेनी चाहिये' इस उक्ति के अनुसार हमें इस हिन्दू नाम को तिलांजिल देकर अपने प्राचीन आर्य नाम को अपनाना चाहिये।

प्रमाणः—"अब यदि मनुष्य शीतल स्वभाव से तथा निष्पक्ष भाव से विचार करें तो इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे कि भारत का इतिहास ५००० वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। आज तक किसी भी इतिहासकार (Historian) ने, ईसा से ३००० वर्ष से अधिक पूर्व के समय का प्रमाणित इतिहास नहीं लिखा। इतिहासकार उस समय को 'प्राक् इतिहास काल' (Pre-historic-era) कह कर छोड़ देते हैं। (सच्ची गीता पृष्ठ १३५)

समीक्षाः—यह है दादा लेखराज की हिन्दी का नमूना ! प्रथम वाक्य में उन्हें एक वचन और बहु-वचन का ही ध्यान नहीं है। हांके जा रहे हैं। प्रामाणिक के स्थान पर आपने 'प्रमाणित' लिखा है और प्रागैतिहास को 'प्राक् इतिहास' लिखा है। दादा जी आप कुमारियों के साथ रंग रलियों में ही रहते हैं या कभी कुछ पढ़ते लिखते भी हैं। यदि आप ने कुछ भी स्वाध्याय किया होता तो इस प्रकार की अर्नगल बातें न करते। इस समय श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर इतिहास के माने हुए विद्वान् हैं इन्होंने लगभग दस हजार वर्ष पूर्व तक का इतिहास लिखा है। उनके इतिहास को मंगाकर पढ़िये तो आप का भ्रम दूर हो जायेगा। प्रागैतिहासिक काल की कल्पना भी अशुद्ध है। आर्य सिद्धान्त प्रागैतिहासिक मानता ही नहीं।

प्रमाणः—मिथ्या ज्ञान अथवा अज्ञानता के कारण ही वे कह देते है कि श्री राम को लाखों वर्ष हो गये हैं। परन्तु वास्तव में त्रेतायुगी श्री राम को हुए तो केवल ३७५० वर्ष बीते हैं।

(सच्ची गीता पृष्ठ १३५)

समीक्षाः—आपकी यह धारणा भी सर्वथा मिथ्या है। श्री राम का समय ३७५० वर्ष बताना ही अज्ञानता है परन्तु आप अपनी अज्ञानता को दूसरों पर थोप रहे हैं। यह तो वही बात हुई कि उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। श्री राम के जन्म को लाखों नहीं इस से भी अधिक समय हो गया है। श्री राम को हुए एक करोड़ ८१ लाख ४८ हजार और ६१ वर्ष हुए हैं। इस समय का पूर्ण विवरण हम अपने रामायण के ग्रन्थ में देंगे।

प्रमाणः—"मैं तो सहज ज्ञान द्वारा, तथा दिव्य दृष्टि के वरदान द्वारा, अव्यक्त धामों की यात्रा कराता हूँ और बार बार साधना, हठ, तप, यज्ञ, कर्मकाण्ड जड़मूर्तियों की पूजा आदि से बचा देता हूं।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १४१)

समीक्षाः—जड़मूर्तियों की पूजा से छुड़ाना तो अच्छा है परन्तु तुम अपनी अनुचित पूजा कराते हो क्या यह उचित है ? यह तो ऐसा है जिसे एक गढ़े में से निकाल कर किसी को कुएं में धकेल देना। आपने एक बुराई तो हटाई परन्तु उसके साथ आप ने राधा स्वामियों की भांति यज्ञ तप और कर्म-काण्ड का भी सफाया कर दिया क्या यही सहज ज्ञान है ? दिव्य दृष्टि तो आपके पास ही नहीं है दूसरों को क्या दोगे ?

समर्पण

प्रमाणः—जो मनुष्य तन, मन और धन सहित मेरे अर्पण होता है और उन्हें मेरे ही आदेश (Direction) के अनुसार जनता की ईश्वरीय सेवा में लगाता है, उसी को मैं पापों से मुक्त करता हूँ। (सच्ची गीता पृष्ठ १४३)

समीक्षाः—मुक्ति का लालच देकर यह धन ऐठने और व्यभिचार फैलाने का पाखण्ड है। दादा जी स्वयं मुक्त नहीं हो सकते, दूसरों को मुक्ति तो क्या देंगे।

प्रमाण—मैं ही पतित पावन हूँ। गणिकाओं, अजामिलों, पूतनाओं को तारने वाला मैं ही हूँ और साधुओं सन्यासियों आदि का भी उद्धार मैं ही करता हूँ। (सच्ची गीता पृष्ठ १४५)

समीक्षाः—इससे बढ़ कर आत्म प्रवञ्चना और

क्या हो सकती है ? यह झूंठी डींग है सत्य का इसमें लेश भी नहीं। तुम पतित पावन नहीं अपितु पवित्रों को पतित करने वाले हो। तुम ने कितने ही घरों को उजाड़ दिया। पति और पत्नी को अलग कर दिया, कितनी ही देवियों से बलात्कार किया, कितनों के साथ छल कपट और धोखा किया फिर भी अपने को पतित पावन कहते हो तुमने गणिका तो एक भी नहीं तारी हां इसमें सन्देह नहीं कि तुमने अनेक कुल बालाओं को गणिका बना दिया। आप साधु और सन्यासियों का उद्धार तो क्या करोगे परन्तु यदि कुछ दिन किसी साधु की संगत में रह जाओ तो तुम्हारा उद्धार अवश्य हो जाएगा ?

अन्य मतावलम्बियों को गालियां

दादा जी अपने आपको परमात्मा (शिव) बताते हैं परन्तु उनमें सहनशीलता का लेश भी नहीं है। उन्होंने अन्य मतालम्बियों को अनेकों स्थान पर गालियां प्रदान की हैं और कटुवचनों का प्रयोग किया है। नमूने के तौर पर कुछ यहां लिखी जाती हैं—

"ये चित्र अन्धों को आरसी का काम देंगे।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ३)

"मूर्ख लोगों ने यह उल्टा मत फैला कर कि सतयुग में भी दुःख और दैत्य होते हैं.....सब गड़बड़ घोटाला कर दिया है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ ९९)

"अन्धे मनुष्य अन्धार में ठोकरें ही खा रहे हैं।"

(पृष्ठ १५४)

समीक्षा:—पाठक गण ! आपने देखा दादा जी की वाणी से कैसे फूल झड़ रहे हैं ? हो सकता है पाठकों को कहीं मेरी भाषा भी कठोर लगे परन्तु मैंने दादा जी की तरह गाली नहीं दी हैं। हां दादा जी के कारनामों के लिये कुछ विशेषण अवश्य लिखने पड़े हैं वे भी विवशता में और केवल सत्य को प्रकट करने के लिये।

योग की परिभाषा

प्रमाण:—"यदि किसी योग में शारीरिक क्रिया की आवश्यकता होती है, कोई प्राणायाम, विशेष आसन, शब्दोच्चारण इत्यादि करने पड़ते हैं तो उसे योग कहना भी भूल है।"

(सच्ची गीता पृष्ठ १६०)

समीक्षा:—दादा जी ! इस परिभाषा ने तो आपके योग पर भी पानी फेर दिया। आपके यहां भी तो आंखें लड़ानी पड़ती हैं और आंखें लड़ाने के लिये विशेष आसन में बैठना पड़ता है। यह तो वही बात हुई "गये थे रोजा छुड़ाने उलटी नमाज गले पड़ी।"

रामायण एक नाविल

प्रमाण:—"ऐसे समय न रावण जैसे दैत थे, ना बन्दर सेना थी, ना श्री रामचन्द्र भगवान् की स्त्री सीता चुराई गई थी और ना श्री रामचन्द्र भगवान् ने रावण दैत से युद्ध की थी। वास्तव में रामायण तो एक नाविल है, जिसमें १०१% मनोमय गप्शप डाल दी है।

(घोर कलह युग विनाश पृष्ठ १५)

समीक्षा:—स्वार्थी मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये क्या कुछ नहीं कह सकता। यदि रामायण को गप्प और नाविल न बताओ तो तुम्हारे जाल में कौन फंसे। वस्तुतः आपने रामायण पढ़ी ही नहीं यदि पढ़ी होती तो ऐसी बात न कहते। आपके पास क्या प्रमाण हैं कि रामायण सच्ची घटना नहीं नाविल है। ऐसा लगता है लेखराज के शरीर में मेकाले की रूह घुस कर बोल रही है, लेखराज में इतनी अक्ल कहां ?

पाठकगण ! कहां तक समालोचना की जाये इनके ग्रन्थों में इस प्रकार की अनेक अवैदिक, सार रहित, तथ्य हीन, बेबुनियाद, इतिहास विरुद्ध अनर्गल बातें भरी हुई हैं। यदि सारी पुस्तक की पूर्णरूपेण समालोचना की जाये तो सैकड़ों पृष्ठ लग जायें। बुद्धिमान् इतने से ही समझ लेंगे कि यह संस्था कैसा है।

आपबीती और जगबीती

अब हम इस संस्था के सम्बन्ध में कुछ आपबीती और जगबीती घटनाओं का वर्णन और करना चाहते हैं जिससे पाठकों को इनके ढोल की पोल का पूर्णरूपेण ज्ञान हो जाये। पहले मैं आपबीती घटना आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

बात जून १९५९ की है। मैं एक विवाह संस्कार कराने बुलन्द शहर गया था। प्रातः आर्य समाज में व्याख्यान दिया। बहुत से बराती भी व्याख्यान सुनने के लिए आये थे। शाम को उन्हीं श्रोताओं में से एक ने ब्रह्माकुमारियों के सम्बन्ध में मेरे विचार पूछे। मैंने अपने विचार रक्खे तो वहां उपस्थित ब्रह्माकुमारियों के एक भक्त ने कहा--ये बातें गलत हैं। ब्रह्माकुमारियों का जीवन बड़ा ही शुद्ध और पवित्र है कभी वहां जाकर देखिये। मैंने कहा अच्छी बात है जाकर भी देख लूंगा।

मैं ३ अथवा ५ अगस्त को अपने एक मित्र दर्शनलाल जी के साथ इनके कमला नगर स्थित कार्यालय में गया। जब हम ऊपर पहुँचे तो एक बोर्ड लगा हुआ था जिस पर उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी में लिखा था "बिना आज्ञा अन्दर जाना मना है।" हम इस बोर्ड की परवा किये बिना अन्दर प्रविष्ट हो गये। जब अन्दर कमरे में झांका तो क्या देखते हैं कि एक ब्रह्माकुमार और ब्रह्माकुमारी एक दूसरे के अति निकट शायद एक दूसरे के आलिंगन और चुम्बन के लिये तैयारी कर रहे थे। हमारी पदचाप सुनते ही ब्रह्माकुमारी वहां से निकल कर भागी और ब्रह्माकुमार जी ने हम दोनों पर बरसना शुरू किया, "तुम क्यों आये हो?" मैंने बड़ी नम्रता से कहा "योग सीखने।" उन्होंने फिर कहा, "आप अन्दर क्यों आये।" मैंने पुनः कह दिया "योग सीखने।" अब तो ब्रह्माकुमार और अकड़े कहने लगे बाहर "No admission" का बोर्ड लग रहा है, घण्टी भी लग रही है आप बिना पूछे क्यों घुसे? आप लोगों को एटिकेट की छोटी छोटी बातें नहीं आती। हम दोनों मित्र गये तो जानबूझ कर ही थे परन्तु मैंने कहा "गलती हो गई क्षमा कीजिये, भविष्य में ध्यान रक्खेंगे।" क्षमा मांगने पर भी उनका पारा कम नहीं हुआ और १०-१५ मिनट तक हमें उपदेश देते रहे। दूसरों को काम, क्रोध, और लोभ, मोह छोड़ने का उपदेश देने वाले ब्रह्माकुमार की इस अवस्था पर मैं और मेरा मित्र मन ही मन खूब हंसे। बाहर निकल कर भी हंसे।

लम्बा चौड़ा उपदेश देने के पश्चात् उन्होंने अपनी कापी में हमें नाम पता आदि लिखने के लिये कहा मैंने अपना नाम पता आदि लिख दिया परन्तु मेरे मित्र ने नहीं लिखा। मित्र तो फिर गये भी नहीं मैं पांच दिन तक जाता रहा।

जो ब्रह्माकुमारियां पढ़ाती हैं उनके वस्त्र प्रायः तड़कीले भड़कीले श्वेत रेशम के होते हैं। आंखो में काजल अथवा सुर्मा लगाती हैं। सुर्मा भी बहुत अधिक मात्रा में। योगाभ्यासियों के जीवन में जो सादगी होनी चाहिए वह इस संस्था में मुझे नाम को भी दिखाई न दी। अस्तु। पाठ प्रारम्भ हुआ। एक दिन विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म की व्याख्या हुई जो कुछ उन्होंने बताया उससे कहीं सुन्दर और श्रेष्ठ व्याख्या तो मैं स्वयं जानता था परन्तु सुनता रहा। दूसरे दिन चक्र से और तीसरे दिन वृक्ष से यह पढ़ाया कि सृष्टि कल्प की आयु ५००० वर्ष है।

जब ब्रह्माकुमारी चक्र को समझा रही थी तो उसने बताया कि २५०० वर्ष तक तो आदि सनातन देवी देवता मत था उसके पश्चात् इब्राहिम ने इस्लाम मत की स्थापना को फिर ईसाई और मुसलिम मत की स्थापना हुई। मैंने कहा, 'महाभारत के समय तक तो कोई मत था ही नहीं अब से ४५०० वर्ष पूर्व पारसी मत की स्थापना हुई थी उसका वर्णन आप के चक्र में नहीं है। ब्रह्माकुमारी को क्या पता कि पारसी भी कोई मत है। इसका भी कोई संस्थापक है और इनका भी कोई ग्रन्थ है। उन्हें तो दादा जी ने जो पढ़ा दिया बस वही उगल दिया। अतः प्रश्न सुन कर इधर उधर देखने लगी और कहने लगी। मुझे तो इस मत का पता नहीं परन्तु मैं जो पढ़ाती हूँ यह ज्ञान साक्षात् परमात्मा

ने हमें दिया है और साथ ही मेरा २०-२२ वर्ष का अपना अनुभव है। ब्रह्माकुमारी की आयु के सम्बन्ध में मुझे सन्देह हुआ मैंने पूछा, आपकी आयु कितनी है ?" कहने लगी, "२८ वर्ष।" मैंने कहा, "तो क्या ६-७ वर्ष की आयु में ही साक्षात्कार हो गया था ?"

एक दिन प्रसङ्ग वश गीता का श्लोक—"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।" आ गया। तो आपने भी दादा जी की भान्ति इसका अर्थ "जब जब भारत में धर्म की हानि होती है" किया। करतो भी क्यों न दादा लेखराज को चेली जो हुई !

तीसरे दिन पढ़ाने के पश्चात् कहने लगी यह तो हमारा वाणी योग है आप योगाभ्यास भी किया करो अब हमारा नैन योग शुरू होगा। जिस संस्था में ३ दिन में ही पर पुरुषों से नैन लड़ने लग जाये वहां कुछ समय के पश्चात्...योग होने लगे तो इस में आश्चर्य ही क्या ? पांच दिन जाकर मैं फिर नहीं गया। और नैन लड़ाने वाला योग तो मैं ने एक दिन भी नहीं किया। कारण जिस परिवार में जिस समाज में जिस धर्म में मेरा पालन पोषण हुआ वहां ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती।

अब आप जगबीती घटनाएं सुनिये।

मेरे एक मित्र श्री नरेन्द्रकुमार जी पर्याप्त समय तक ब्रह्माकुमारियों के यहां जाते रहे। एक दिन जब उनसे वार्तालाप हुआ तो कहन लगे—वहां भोजन बहुत बढ़िया मिलता है कभी खाया या नहीं ? मैंने कहा—मैंने तो कभी नहीं खाया परन्तु ऐसा क्या भोजन मिलता है। वे कहने लगे—पहले मेरे सामने दूध लाया गया। दूध क्या था रबड़ी थी। बादाम पिस्ते और इलायचियां पड़ी हुई थी। सुगन्ध की लपटे उठ रही थी। मैंने अपने जीवन में ऐसा दूध पहले कभी नहीं पिया।" मैंने पूछा, "और कोई विशेषता ?" तो उन्होंने बताया "कि जो पराँठे मेरे समक्ष लाकर रक्खे गये उन में घी भी खूब था। एक परांठे में आधी छटांक से कम घी तो नहीं होगा।" मैंने आगे पूछा, "इनके सम्बन्ध में आप की सम्मति क्या है तो वे कहने लगे "ऐसा उत्तम पोष्टिक भोजन करने वाले स्त्री पुरुष पाप के गढ़े में गिरने से बच नहीं सकते।"

यह बात बिल्कुल ठीक है। भर्तृहरि जी ने इस सम्बन्ध में बड़ा सुन्दर कहा है—

विश्वामित्र पराशरः प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपि स्त्रीमुख पंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्तिः ये मानवाः।
तेषामिन्द्रय निग्रहो भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥
(शृंगार शतक ६६)

विश्वामित्र पराशर आदि महर्षि जो पत्ते, जल, और वायु का सेवन करके रहते थे, वे भी स्त्रियों के कमल मुख की ओर देखकर मोह को प्राप्त हुए, फिर अन्न घी दूध और दही आदि व्यंजनों को खाने वाले मनुष्यों का इन्द्रियों को वश में करना ऐसा ही कठिन है जैसे विन्ध्याचल पर्वत का सागर में तैरना।

ब्रह्माकुमारियों तथा कुमारों के भोजन के सम्बन्ध में यही बात हमारे मित्र श्री दर्शनलाल जी ने बताई थी। अस्तु।

श्री प्रेम एच० कमल बुलन्दशहर—

आप आजकल बुलन्दशहर में हैं और वहीं आप से मेरा वार्तालाप भी हुआ। १९५९ में आप कानपुर में ट्रेनिंग ले रहे थे और सितम्बर या अक्टूबर १९५९ में आप ब्रह्माकुमारियों के कानपुर सेण्टर में गये। आप १५ दिन तक इस संस्था में जाते रहे। वहां प्रति बृहस्पतिवार को रास लीला होती थी जिसमें ब्रह्माकुमारियां युवकों को अपनी गोदी में उठाती थी ऐसा उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। १५ वें दिन एक ब्रह्माकुमारी ने आपको दिन में ढाई बजे बिल्कुल एकान्त में मिलने के लिये बुलाया। जब ये वहां पहुँचे तो वह ब्रह्माकुमारी इन्हें अन्दर एक विशेष कमरे में ले गई और एक कौच पर बैठा दिया। और इनके बिल्कुल साथ ही वह भी बैठ गई। कमरे का ठाट बाट बड़ा ही रईसी था। अभी यह बैठे ही थे कि किसी ने कमरा

खट खटाया। कमरा खोला तो बाहर एक स्त्री खड़ी हुई थी जिस की गोद में एक बच्चा भी था। उसने ब्रह्माकुमारी से कहा कि मैं आपसे कुछ बातें करना चाहती हूं। वह स्त्री कहने लगी कि आप ने मेरे पति को मुझ से तो छीना ही परन्तु इस बच्चे को भी अनाथ कर दिया। वे इस से भी प्रेम नहीं करते। उस देवी ने अपनी करुणाजनक कहानी कुछ इस प्रकार बताई कि श्री प्रेम जी की आंखों में भी आंसू आ गये और उस दिन के पश्चात् वे फिर कभी उनके यहां नहीं गये।

श्री मास्टर गुलाब सिंह जी, बिड़ला हायर सैकण्डरी स्कूल, देहली

आप को कुछ चित्र बनवाने के लिये आबू पर्वत पर बुलाया गया था। जब आप वहां पहुंचे तो जैसे दादा लेखराज और स्त्री पुरुषों से आंखें लड़ाकर उन्हें सम्मोहित करते हैं इसी प्रकार दादा जी ने इन से आंखें लड़ानी शुरू की। मास्टर जी आंखें लड़ाते रहे। यह क्रिया पर्याप्त समय तक चलती रही और अन्त में दादा लेखराज ने हारकर आंखें नीची कर ली और एक चीक्ष की फांक उठाकर उन के मुख में दी। इस घटना के पश्चात् मास्टर जी वहां चर्चा का विषय बन गये। लोग कहने लगे जितने देर इन्हें दृष्टिदान दिया गया इतनी देर तक दृष्टिदान और किसी को नहीं दिया गया। कुछ लोगों ने कहा, "मास्टर जी? दादा जी आप को इतनी देर दृष्टिदान देते रहे आप को तो उनकी गोद में पड़ जाना चाहिये था। मास्टर जी ने कहा, किसी दिन गोद में भी पड़ जाऊंगा।

सत्संग भवन के अतिरिक्त आबू पर्वत पर एक ओर ब्रह्माकुमार और कुमारियों को रहने के लिये कमरे बने हुए हैं एक ओर दादा लेखराज के रहने के लिये भवन बना हुआ है। जहां दादा लेखराज रहते हैं एक डाक्टर भी रहते हैं तथा कुंवारी युवतियों के अतिरिक्त और कोई वहां नहीं जा सकता। मास्टर जी को वहां का हाल जानने की इच्छा हुई। एक दिन एक चित्र बना और बिना

किसी के पूछे उसे दिखलाने के लिये दादा जी के प्राइवेट वार्ड की ओर चल दिये। वहां पहुँचकर उन्होंने कमरे की चिक उठाई तो प्रस्तुत चित्र में चित्रित दृश्य दिखाई दिया—

[चित्र में दादा जी की गोद में एक १८-२० वर्ष की युवती पड़ी हुई है और दादा जी उसे आलिंगन किए हुए हैं। सीधे हाथ की ओर खड़े बच्चे के कुछ नीचे उस युवती का जूड़ा और आंख का गढ़ा तनिक ध्यान से देखते ही दृष्टिगोचर हो जाता है।]

मास्टर जी को वहां देखकर एक स्त्री उठकर उधर आई और मास्टर जी से कहने लगी। तुम यहां किससे पूछ कर आये? दादा जी तो इसकी काम-

वासनाओं को शान्त कर रहे थे। वे इसका कायाकल्प कर रहे थे। इस प्रकार तो इसकी मृत्यु हो सकती थी। इतनी ही देर में दादा जी भी सम्भल कर खड़े हो गये और उन्होंने भी वही बात दोहराई। हां इतना विशेष कहा कि हमें आप से कोई चित्र आदि नहीं बनवाना आप यहां से शीघ्र अति शीघ्र चले जाओ। यह है पाखण्ड की पराकाष्ठा !

कमला नगर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति **श्री-बलराम पाण्डेय।**

"ब्रह्माकुमारियों के ईश्वरीय ज्ञान विश्व विद्यालय में जाने वाले अधिकांश पूंजीपति हैं। किसी गरीब को इस संस्था में जाते हुए मैंने नहीं देखा और दरअसल यह गरीबों के लिए है भी नहीं। ब्रह्माकुमारियों का उपदेश देना और ब्रह्माकुमारों का ब्रह्माकुमारियों के लिये कामना कुछ अजीब सा लगता है।"

दिल्ली क्लाथ मिल्स से एक कर्मचारी—**श्री-सुरेशचन्द्र गुप्ता।**

"ब्रह्माकुमारियों की यह संस्था जनता को भगवान् के साक्षात्कार का झूठा आश्वासन देकर उन्हें ठगती है। भगवान् के अवतरण की घोषणा निराधार मात्र है। इस संस्था से समाज का कल्याण असम्भव है।"

करौल बाग आर्य समाज के उपमन्त्री—**श्री-दयाल चन्द्र गुप्ता।**

"एक बार मुझे इनके एक केन्द्र पर जाने का मौका मिला। मातेश्वरी सरस्वती पधारी हुई थीं। योग की क्लास चल रही थी। एक नवयुवती योग में बैठी हुई थी। फिल्म रिकार्ड—"**जादूगर सैंया छोड़ मेरी बहियां**" (नागिन) बज रहा था। नवयुवती उठी और उठते ही उसने नृत्य आरम्भ कर दिया। रिकार्ड बजता रहा वह नृत्य करती रही। फिर थक कर गिर गई। बत्तियां जल उठी। रिकार्ड बन्द हो गया।

"योग के साथ फिल्मी गीत और नृत्य का क्या सम्बन्ध है यह मैं नहीं समझ पाया। नवयुवक एवं नवयुवतियों की उपस्थिति काफी थी। योग का तो एक बहाना था। वास्तव में वे फिल्मी गीत एवं नृत्य की ओर आकर्षित थे।"

"नवयुवक और नवयुवतियों का एक साथ योग में बैठना जब कि कमरे में हल्की सी लाल रोशनी हो एवं फिल्मी गीत बज रहा हो—कुछ हास्यस्पद लगता है। लोगों का जीवन यहां बनता नहीं बिगड़ता है।" (हिन्दी टाइम्स १५-७-१९६१)

कुन्तेश कुमारी शर्मा हापुड़ लिखती हैं—

"कई समाचार पत्रों में कुछ ब्रह्माकुमारी समर्थकों ने हापुड़ के ब्रह्माकुमारी आन्दोलन को अनुचित बताते हुये संस्था की धार्मिकता, पवित्रता व सादा जीवन उच्च विचारधारा के गीत गाये हैं। मैं भी कुछ दिन तक इस ब्रह्माकुमारी संस्था के तथाकथित सत्संगों में भाग लेकर उसके चिर कौमार्य का ज्ञान प्राप्त कर चुकी हूं। प्राप्त अनुभव के आधार पर मेरे विचार में इस संस्था से अधिक विलासिता प्रेमी, व्यभिचारी और पाखण्डी संस्था और कोई हो नहीं सकती।

जब इनसे हापुड़ में मकान खाली कराया गया तो तीन प्रचारिकाओं के सामान से पांच बैल ठेले भरे गये। उसमें विलासिता की सभी सामग्री विद्यमान थी। इनके सत्सङ्गों में फिल्मी रिकार्डों के अश्लील गीतों पर कुमारी और कुमारों के सम्मलित नृत्यों का (बाल डांस) होना, रंगीन विद्युत्प्रदीपों के मन्द प्रकाश में गुदगुदे गलीचों, कीमती दरियों शुभ्र चांदनियों पर शृंगार प्रधान लीलाओं का आयोजन, अश्लीलता और व्यभिचार की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है ? मैं दावे के साथ कहती हूँ कि ऐसी व्यभिचारी संस्था को किसी भी राज्य या नगर में प्रश्रय नहीं दिया जाना चाहिये।"

(दैनिक वीर अर्जुन नई दिल्ली २४ जून १९६१)

अंग्रेजी पत्र Flame की ब्रह्माकुमारी संस्था के सम्बन्ध में सम्मति—

"आध्यात्मिकता और ईश्वर भक्ति की ओट में आबू पर्वत पर स्थित एक धार्मिक संस्था जिसके

पीछे सैक्स की भावना कर्म कर रही है, की गतिविधियों द्वारा सैकड़ों घरों को नष्ट किया जा रहा है।

ब्रह्माकुमारी के नाम से सर्वत्र फैली हुई यह संस्था विभाजन से पूर्व 'ओम् मण्डली' के नाम से शिकारपुर में कार्य कर रही थी। विभाजन के पश्चात् ये आबू पर्वत पर आ गई।

विभाजन इनके लिये एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि अनेक पीड़ित नागरिकों की शिकायत पर शिकारपुर की कोर्ट संस्था के लोगों के विरुद्ध छान-बीन कर रही थी। ये लोग न्याय के फंदे से बच कर भारत आ गये।

वे ही लोग अब ब्रह्माकुमारी संस्था के नाम से रविवार को देहली तथा अन्य स्थानों पर सत्संगों का आयोजन करते हैं।

इस संस्था के सदस्य, जिन का गुरु आबू पर्वत पर रहता है, बड़ी चालाकी से नवयुवतियों को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें अपने पतियों को छोड़ने के लिये राजी कर लेते हैं और उन्हें अपनी संस्था में सम्मलित कर लेते हैं जहां वे कामवासना की दास बन जाती हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व देहली के एक धार्मिक सज्जन की जवान स्त्री घर छोड़ कर भाग गई और इस संस्था में सम्मलित हो गई। संस्था वालों ने उसे ईश्वर दर्शन का विश्वास दिलाया है।

ऐसा कहा जाता है कि—

१३ से १९ वर्ष की अवस्था की लडकियां, सद्योविवाहित स्त्रियां, विधवाओं और अधिक वय की कुवांरी लड़कियों को आध्यात्मिकता के नाम पर इस संस्था में आकर्षित किया जाता है।

साथ ही भारत की राजधानी दिल्ली का सब्जी मण्डी स्थित ब्रह्माकुमारी कार्यालय का लाल बत्ती वाला कमरा आश्चर्य का द्योतक है। कहा जाता है जिस कमरे में 'सन्त' स्त्रियों को ईश्वरीय ज्ञान देता है तो कमरे के बाहर एक लाल बत्ती जली होती है। जिस समय यह कार्य होता है उस समय अन्य किसी को अन्दर जाने की आज्ञा नहीं होती। केवल 'सन्त गुरु' और ईश्वर दर्शन की इच्छुक लडकी घण्टों उस में इकट्ठे रहते हैं यह भी कहा जाता है।

एक और बात जिसने अनेक व्यक्तियों को व्यग्र बना दिया है वह यह है कि देहली के आफिस में पर्याप्त रात गये तार आते हैं जिन में स्थानीय कार्यालय के लिये यह आदेश होता है कि देश के अन्य भागों में भी सत्संग के लिये लड़कियां भेजिये।

एक विश्वस्त सूत्र से पता लगा कि "युवतियों में गुरु जी को, जो आबू पर्वत पर रहते हैं, प्रथम शिष्या बनने के लिये सदा ही एक भीषण प्रतियोगिता चलती रहती है।" प्रति ६ मास के पश्चात् इस विशेष पदवी के लिये एक नई लड़की चुनी जाती है यह भी कहा जाता है।

('Flame', २४ सितम्बर १९६०)

उपसंहार

संसार के लोगो ! आपने ब्रह्माकुमारी संस्था का परिचय प्राप्त कर लिया। उसके सिद्धान्त और मान्यताएं भी देख ली। विभिन्न व्यक्तियों और पत्रों की सम्मतियां भी आपने पढ़ ली। इस सब का सार यही निकला कि दादा लेखराज न किसी को मुक्ति दिला सकता है न किसी का कल्याण कर सकता है हां आपके हरे भरे, सुख शान्ति सम्पन्न घरों को उजाड़ अवश्य सकता है। यदि आप सुख और शान्ति चाहते हैं, यदि कल्याण की कामना है, और मोक्ष की अभिलाषा है तो अन्धकार से निकल कर प्रकाश की ओर आये। सच्चा सुख शान्ति और आनन्द वेद मार्ग पर चलने से ही प्राप्त हो सकेगा। दादा लेखराज तो न आप को सद्गति दे सकते हैं न मुक्ति। उन्होंने अपनी विवशता स्वयं स्वीकार कर ली है—

"कोई भी मनुष्यात्मा, चाहे वह कोई मत स्थापक हो, साधु हो, महात्मा हो या साधारण आत्मा, वह मुक्ति दाता या खिवय्या नहीं हो सकता। वह इस संसार सागर से किसी को भी पार नहीं लगा सकता।" (सच्ची गीता पृष्ठ २.)

इससे स्पष्ट और क्या प्रमाण चाहिये ! अतः अब चेतो इन के माया जाल से बचकर वेद पथ पर चलो इसी में कल्याण है।

॥ ओ३म् शम् ॥

महात्मा आनन्द स्वामी जी
की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

पृष्ठ संख्या २०४ मूल्य १) २५

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन	२)५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्दगायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
भगवान् शंकर और दयानन्द	)५०
सत्यनारायण व्रतकथा	)६२

बड़े साइज
के चित्र

प्रत्येक का
साइज २०×३०

महर्षि
दयानन्द का
रंगीन चित्र
मूल्य १।)

—*—

महर्षि दयानन्द सादा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
पं० गुरुदत्त विद्यार्थी	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

महर्षि दयानन्द घटना चित्र
साइज १५×२० ।।)

मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक ।)

ओ३म्, स्वागतम
नमस्ते गायत्रीमन्त्र

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानद) ५०
सत्य नारायण कथा) ६१
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य १६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमोव्याख्या) ५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा संकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्या मार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
पं० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म् नमस्ते स्वागतम् गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

प्रचार योग्य सस्ते ट्रैक्ट प्रत्येक का मूल्य –)

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७. ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बर्दालया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

अपनी फर्म का समाज या संस्था का कैलेन्डर ऋषि दयानन्द के चित्र पर छपाइये आफसेट कागज पर ६ रङ्गी छपाई पत्रव्यवहार करें।

—*—

१९६२ का महर्षि दयानन्द का ६ रंगा चित्र बीच में गायत्री मन्त्र दोनों ओर आर्य समाज के दस नियम नीचे हिन्दी में १९६२ की तारीखें, एक का मूल्य ॥) दर्जन ४) डाकखर्च पृथक।

आर्यन कैलेन्डर कार्पोरेशन
४४०८ नई सड़क दिल्ली।

चारों वेदों से चुने हुए मन्त्रों का संकलन

ऋग्वेद शतक	१)	सामवेद शतक	१)
यजुर्वेद शतक	१)	अथर्ववेद शतक	१)

संकलन कर्ता श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

बढ़िया मजबूत कागज पर कलात्मक ढंग से प्रकाशित, उपहारादि देने योग्य आकर्षक पुस्तक

विद्वानों व नेताओं की सम्मतियां

श्री के० एम० मुन्शी:—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जन साधारण में वेदों के प्रचार के लिए हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार शृंखला में नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिए शुभ कामना चाहता हूँ।

डा० सर राधाकृष्णन:—They are valuable and I hope they will be read wridely.

श्री अनन्तशयनम् आयंगर:—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the Present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will be become popular and useful.

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता है:—प्रत्येक वेद से अलग अलग चुने हुए सौ सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय है।

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ:—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुए हैं। वस्तुत सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

पं० वासुदेव शरण अग्रवाल—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय:—मन्त्र बहुत अच्छे है। इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी। मेरा आशीर्वाद है।

दो सनातन सत्तायें

लेखक—श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीवन और प्रकृति अनादि काल से हैं" को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया जिन का उत्तर इस्लाम के पास भी नहीं है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) रुपया।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

रजि० नं० डी० ४२६
वेदप्रकाश नवम्बर १९६१

❀ ओ३म् ❀

महर्षि दयानन्द क
सुललित, सुमधुर, भाव-
पूर्ण, श्रद्धामयी भाषा में
लिखा हुआ एक मात्र
सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

अनेकों चित्रों से सुस-
ज्जित, बढ़िया कागज पर
मोटे अक्षरों में, बड़ेसाइज
के ६०० पृष्ठों में मुद्रित।

कथा करने तथा शुभ
अवसरों पर भेंट देने योग्य
अद्वितीय ग्रन्थ।

१२) वेदप्रकाश के ग्राहक
को डाक खर्च माफ। १२)
अगाऊ आना आवश्यक
है।

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क दिल्ली

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

ऋग्

ओ३म्

यजुः

वेद-प्रकाश

साम

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

अथर्व

★ राजनीति--अङ्क ★

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

दिसम्बर	१९६१
मार्गशीर्ष	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	५

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

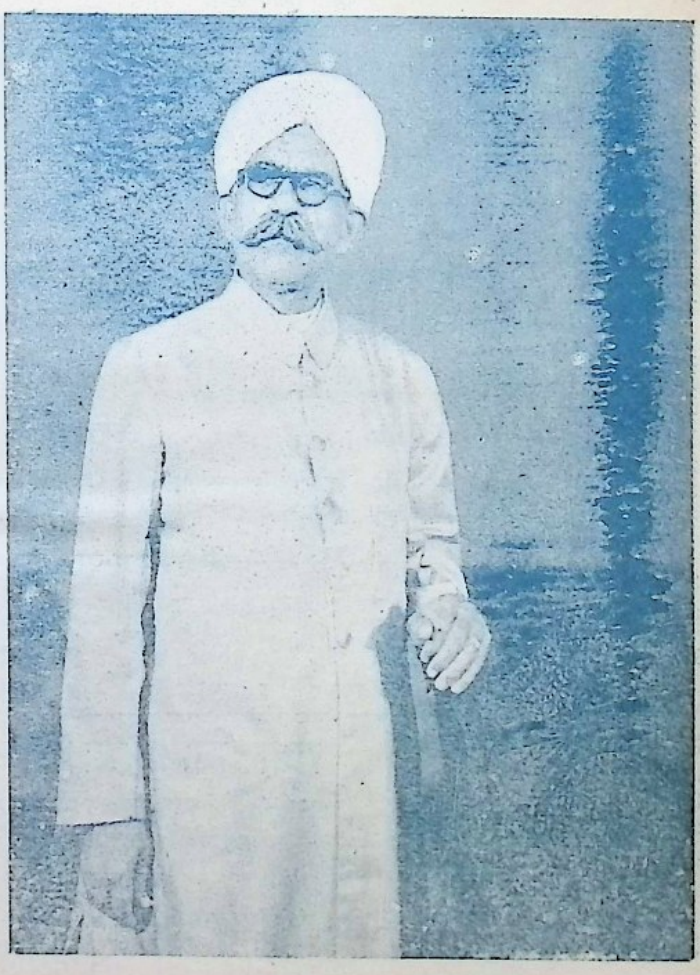

भारतीय लोकसमिति के प्रथम अखिल भारतीय दिल्ली सम्मेलन के प्रधान

श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी

गोविन्दराम हासानन्द स्मृतिग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बनिये।

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरम्भ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

( ) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होंगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २॥) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

राधा स्वामी मत दर्पण

लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यदि आप राधास्वामी मत का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। बड़े परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है। प्रचारार्थ पुस्तक का मूल्य लागत मात्र चार आने ही रक्खा गया है। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

प्रस्तुत अंक पुस्तकाकार में बढ़िया कागज पर छपा है। प्रचारार्थ मूल्य केवल चार आने। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादकीय

स्वराज्य

आ यद्वामीयचक्षसा मित्रं वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥

(ऋ० ५ । ६६ । ६)

(मित्रा) हे मित्रो ! (इय-चक्षसा) हे दूरदर्शी विद्वान् लोगो ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धु हैं वे और (वयं च) हम (सूरयः) समस्त विद्वान् जन मिल कर (व्यचिष्ठे) अतिविस्तृत (बाहुपाय्ये) बहुतों से रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के लिये (आ यतेमहि) सब प्रकार से प्रयत्न करें।

मन्त्र के शब्द अत्यन्त स्पष्ट हैं। विद्वानों को परस्पर मिल कर अतिविस्तृत स्वराज्य के लिए सब प्रकार के उपायों से प्रयत्न करना चाहिये।

पाठकगण यहां प्रश्न कर सकते हैं कि स्वराज्य प्राप्त हुये तो १५ वर्ष हो गये फिर यह बिन अवसर की बात कैसी ? इस पर मेरा कथन यह है कि जिसे स्वराज्य समझा जा रहा है वह वास्तव में स्वराज्य नहीं है। हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है वह लंगड़ी स्वतन्त्रता है। यह ठीक है अंग्रेज चले गये परन्तु अंग्रेजियत अब भी बाकी है। स्वराज्य को मिले हुये १५ वर्ष हो गये परन्तु इन १५ वर्षों में वाममार्ग मद्य, मांस, अण्डा मछली का सेवन बढ़ा ही है घटा नहीं है। व्यभिचार भी दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। टैक्स पर टैक्स लगा कर जनता की कमर तोड़ी जा रही है। आर्यों पर हिन्दु कोडबिल ठौंसा जा रहा है। अंग्रेजी ठौंसू लोग अब भी अंग्रेजी को बलात् भारतीयों पर लाद रहे हैं। गो वध जोरों पर है। स्कूलों में क्लर्क तैयार करने वाली वही लार्ड मैकाले की शिक्षापद्धति चल रही है। धर्म, कर्म का सफाया किया जा रहा है। मुसलमानों की तुष्टि के लिये हिन्दुओं का गला घोंटा जा रहा है। संक्षेप में भारतीय संस्कृति और सभ्यता को मिटाने के लिये हर सम्भव उपाय अपनाया जा रहा है। क्या इसीका नाम स्वराज्य है ?

कुछ लोग, कुछ लोग ही नहीं बहुत से आर्य उपदेशक और कांग्रेस सम्प्रदाय के हितचिन्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम लेकर यह कहा करते हैं कि स्वामी जी ने लिखा है कि अपना बुरे से बुरा राज्य भी विदेशियों के राज्य से अच्छा है। अतः चाहे कुछ भी होता रहे है तो अपना राज्य। परन्तु यह धारणा बड़ी ही भ्रामक और सर्वथा मिथ्या है। महर्षि ने ऐसा कहीं नहीं लिखा। न उनके शब्दों से ऐसी ध्वनि ही निकलती है। महर्षि के शब्द हैं—

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

(सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास)

यहां बुरे से बुरा कहां लिखा है ? अच्छे और बुरे की तुलना क्या ? यहां तो यह लिखा है कि उत्तम से उत्तम विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं हैं।

अंग्रेज चले गये परन्तु यह शासन उन लोगों के हाथ में है जो हृदय और मस्तिष्क से उनके चेले हैं और अंग्रेजों के पदचिह्नों पर चलने वाले हैं। जब तक यह शासन सूत्र ऐसे लोगों के हाथ में रहेगा देश उन्नति नहीं कर सकता देश को इस अवस्था

से ऊंचा उठाने के लिये, वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये, भारतीय संस्कृति और भारतीय परम्पराओं की रक्षा के लिये आर्य जनों को सामूहिक रूप से राजनीति में भाग लेना चाहिये।

राजनीति धर्म का ही एक अंग है। वेद में सूक्त के सूक्त राजनीति से भरे परे हैं। यह वैदिक राजनीति क्रियात्मक रूप में तभी प्रयुक्त हो सकती है जब आर्य सामूहिक रूप से राजनीति में भाग लें केवल कहने से कुछ बनेगा नहीं।

आर्य युवको! आज देश के सामने भीषण समस्याएं हैं एक ओर भारत मां की बिन्दी (काश्मीर) को पूंछने का प्रयत्न किया जा रहा तो दूसरी ओर चीन भारत की सीमाओं पर बढ़ा आ रहा है। इतना ही नहीं देश के आगे नाना प्रकार की समस्याएं मुंह फाड़े खड़े हुई हैं और कांग्रेस साम्प्रदाय से तथा पं० जवाहर लाल जी से ये समस्याएं सुलझ नहीं सकती। इन १५ वर्षों में पं० जी ने समस्याएं सुलझाई नहीं हां पैदा अवश्य की हैं।

आर्य सन्तानो! आज जागृति की आवश्यकता है। एक कवि के शब्दों में सुनिये देश के सामने कैसी कैसी समस्याएं हैं—

कांग्रेस चरखा अहिंसा शान्ति और पञ्चशील।
किस कदर लाहक़१ हैं अपने देश को बीमारियां॥
वे हिमालय पर खड़े ललकारते हैं हिन्द को।
हो रही हैं इस तरफ डिफेंस की तैयारियां॥
ऐटमी युग में करेंगे क्या हिफाजत२ देश की।
वे कि चरखे ने बना डाला है जिनको नारियां॥
वक्त नाजुक३ है वतन के नौजवानों होशियार।
ख्वाब४ से जागो कि अब दरकार५ हैं बेदारियां६॥

देश की समस्याओं के समाधान के लिये, प्राचीन भारत के गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये, वैदिक संस्कृति के उत्थान के लिये, शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन के लिये तथा इस स्वराज्य को वास्तविक स्वराज्य और सुराज्य बनाने के लिये आर्यों को राजनीति में भाग लेना ही चाहिये।

अब तक आर्य समाज ने राजनीति में भाग न लेकर भयंकर भूल की है परन्तु अब भी कुछ अधिक नहीं बिगड़ा है। यदि अब भी उद्योग किया जाये तो कुछ समय में ही देश का भविष्य उज्ज्वल होगा।

प्रभु हम आर्यों को सुमति और शक्ति दे कि हम भारत में ही नहीं समस्त संसार में वैदिक राजनीति का सञ्चालन कर सकें।

"विद्यार्थी"

(१) लगी हुई हैं (२) रक्षा (३) गम्भीर (४) निद्रा (५) आवश्यक (६) जागृति

दो सनातन सत्तायें

लेखक—श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीव और प्रकृति अनादि हैं" इस विषय को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिन का उत्तर इस्लाम पास भी नहीं है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) रुपया।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

भारतीय लोक समिति के अखिल भारतीय दिल्ली सम्मेलन के प्रधान

श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी का जीवन परिचय

❀ श्री विमलार्य

आर्य समाज के कार्यों से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। सभी लोग चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान आर्य समाज की गतिविधियों से सुपरिचित है। एक बार मौलाना हजरत मोहानी ने आर्य समाज के बारे में यों लिखा कि "मैं देखता हूँ कि कोई भी जब आर्य समाज में आता है तो उसमें एक विशेषता आ जाती है। उसके अन्दर उत्साह, देशभक्ति, कार्य-शीलता और एक तरह की अजीब स्प्रिट काम करने लगती है।"

आर्य समाज ने सोते भारत में जान डाल दी इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। और स्वाधीनता का सन्देश घर घर पहुंचाने में आर्य समाज के लोगों ने जी तोड़ कर परिश्रम किया। वे अपना खाना-पीना सब कुछ भूल गये। ऐसे अनेकों महापुरुष हैं। ऐसे ही कार्यकर्ताओं में पं० रामचन्द्र जी देहलवी का नाम लिया जाता है। आर्य जगत् तो उन से भली भांति परिचित हैं ही। ईसाई और मुस्लिम समाज उनके सामने नतमस्तक रहता है।

पंडित जी के दादा दिल्ली के ही निवासी थे। वे ग़दर के जमाने में दिल्ली से मालवा चले गये थे। और वहां की एक छावनी नीमच में बस गये थे। पंडित जी के जन्म से पूर्व उनकी माता जी ने कई अनुष्ठान किए थे। उसके पश्चात् सन् १८८१ में आपका जन्म हुआ।

आपके पिता जी उर्दू व फारसी के बड़े विद्वान् थे। वे सेना के अंग्रेज अधिकारियों को उर्दू व फारसी पढ़ाने जाया करते थे। अपने पिता जी के साथ पण्डित जी भी अंग्रेज अधिकारियों के यहां आते जाते थे।

आप जब ६ वर्ष के थे तब नीमच के एक स्कूल में अध्ययनार्थ जाने लगे थे।

प्रारम्भ से ही आप प्रतिभाशाली थे। इसलिए आप अपनी कक्षाओं में अधिकतर प्रथम रहते थे। आपने मिडिल की परीक्षा सन् १८९८ में अजमेर डी० ए० वी० स्कूल से उत्तीर्ण की। पढ़ाई में निर्धनता के कारण बड़े कष्ट उठाने पड़े।

मिडिल तक अध्ययन समाप्त होने पर आपके पिता जी ने आगे पढ़ाने से इन्कार कर दिया किन्तु आप को पढ़ने में अत्यधिक रुचि थी इसलिए आप नीमच से घर छोड़कर अपने भाई के पास चले गए और वहां अपनी पढ़ाई का प्रबन्ध करने लगे। पिता जी ने आपको अपने पास बुला लिया और किसी प्रकार आपकी पढ़ाई का प्रबन्ध किया। किन्तु धनाभाव के कारण अत्यन्त कठिनाई से आपने एन्ट्रेंस इन्दौर से पास किया।

आपकी माता जी का देहान्त आपकी छोटी अवस्था में ही हो गया था। घर की देखभाल करने वाला कोई न था। इसलिए आपका विवाह शीघ्र कर दिया गया।

आपके ऊपर आर्य सिद्धान्तों की छाप डी० ए० वी० में पड़ी। आपके पिता जी आर्य समाज और मन्दिर दोनों में ही जाया करते थे। किन्तु पंडित जी प्रारम्भिक काल से ही दृढ़ आर्य समाजी विचार धारा के थे। हालांकि आप स्वयं इस तथ्य को अल्पायु के कारण जानते न थे।

विवाहोपरान्त आप शीघ्र ही दिल्ली आ गये और "रैली ब्रदर्स" के यहां नोकर हो गए। यहां भी आपकी धाक जम गई। आपके लेख से साहब अत्यन्त प्रभावित हुए। इसीलिए आपको रविवार को भी अपनी कोठी पर बुलाते थे। एक बार आप न आ सके। साहब ने आप पर अपनी साहबी दिखाई "बोले आप क्यों नहीं आए" आप शेर की तरह निर्भीक थे। आपने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया कि "सातवें दिन तो ईश्वर भी काम नहीं करता

वह भी आराम करता है। मैं तो आदमी हूं। मुझे कोई आवश्यक कार्य था इसलिए मैं नहीं आया।" साहब का दम्भ चूर हो गया। रस्सी तो जल गई किन्तु ऐंठ बाकी रह गई। साहब पर इसका उत्तर कुछ न बन पड़ा किन्तु वे धमक दिखाने लगे। पंडित जी ने तुरन्त त्यागपत्र दे दिया और इस प्रकार एक करारा चपत न मारकर भी मार दिया।

आपने दिल्ली में अरबी का अध्ययन एक पंगु हाफ़िज़ जी की देखरेख में किया। हाफिज़ जी आप की तीव्र बुद्धि से अत्यन्त प्रभावित हुए। और उस समय तो वे अंगुली ही काटते रह गये जब उन्होंने पण्डित जी को एक शास्त्रार्थ में कुर्आन की आयतें बड़ी रवानी से पढ़ने सुना।

आपके कुर्आन के उच्चारण व पढ़ने के ढंग से बड़े २ मौलवी अत्यन्त प्रभावित हैं। एक बार फीरोजपुर में एक पठान नवयुवती ने आपके मुंह से कुर्आन सुनी। वह इतनी प्रभावित हुई कि उसने आपके लिये १०) नकद पुरस्कार भिजवाया। अरबी के साथ २ आप संस्कृत, हिन्दी अंग्रेजी व फारसी भाषा के भी सुविज्ञ हैं।

दिल्ली का ऐतिहासिक फ़व्वारा जिसने बड़े बड़ों के उत्थान पतन देखे हैं और जो आज मूक बना खड़ा है उसने एक दिन आप के दिल में एक आग लगा दी। जो आग आज तक वे अपने कलेजे में छिपाए बैठे हैं। और जिसके फलस्वरूप आपने अपना जीवन ही समाज की सेवा में लगा दिया। घटना यों हुई—

आप चांदनी चौक से गुजर रहे थे। फ़व्वारे पर एक अन्य मतावलम्बी भाषण कर रहा था। आप भी सुनने खड़े हो गये। वह हिन्दू धर्म पर व्यंग कस रहा था। तीखे प्रहार कर रहा था। हिन्दू धर्म की खिल्ली उड़ा रहा था। आपने उसे सुना। दिल में टीस उठी। जिसने रात भर नहीं सोने दिया। उसी दिन यह निश्चय आपने कर लिया कि मैं भी कल से इसी फ़व्वारे पर हिन्दू धर्म के बारे में लोगों की भ्रांतियां दूर करूंगा।

इस निश्चय ने हिन्दू समाज में जान फूंक दी। अगले ही दिन से पंडित जी ने अपने व्याख्यानों की घोषणा कर दी। सप्ताह में दो दिन आप अन्य मतावलम्बियों के हिन्दू धर्म पर आक्षेपों का उत्तर भी देते थे और अपने धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन व स्पष्टीकरण भी करते थे। सप्ताह के शेष चार दिनों में आप विरोधियों के आक्षेपों को लिखते थे।

दिन व दिन लोगों की भीड़ आपके व्याख्यानों को सुनने के लिये बढ़ती गई, और आप के अकाट्य तर्कों से प्रभावित होकर दांतों तले अंगुली काटने लगी।

आपका निश्चय पहाड़ की तरह अटल रहा। गर्मी ने उसमें न कुछ पसीजन पैदा की और न ठंड ने कुछ ठिठरन। लगातार (सन् १९१० से १९२५ तक) १५ वर्ष तक आपने फव्वारे पर प्रचार किया। कमाल की बात यह है कि पत्नी और प्राण प्रिय पुत्र की मृत्युएं, जो व्याख्यानों के दिनों में ही हुई इस क्रम में व्यतिक्रम न कर सकीं।

इन व्याख्यानों से आप का मार्ग प्रशस्त हो गया। जीवन में सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। मुल्ला मौलवी और ईसाई पादरी आपके वार्तालाप से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने अपने सिद्धान्तों में (पुरानी बातों को निकाल कर व नईयों को जोड़कर) परिवर्तन किए।❀

आपका कार्य क्षेत्र उत्तर भारत तो था ही दक्षिण भारत में भी आपने तहलका मचा दिया।

हैदराबाद दक्षिण में निजाम के काले कारनामे किसी से छिपे नहीं हैं। जो कुछ उसने किया या जो वह करता आ रहा था उसका चरमोत्कर्ष पुलिस एक्शन द्वारा ही समाप्त किया गया था।

[शेष पृष्ठ १२ पर]

❀ टेपरिकार्ड किया गया एक व्याख्यान 'इस्लाम पर वेद का प्रभाव' शीघ्र ही पुस्तकाकार छपेगा जिससे इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी मिल सकेगी।

भारतीय लोक समिति किस राजनीति को अपनाए

[लेखक—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर]

—❀❀—

१. (क) कम्यूनिस्ट सम्प्रदाय मार्क्स, एङ्गिल्स और लैनिन आदि के राजधर्मों को अपना रहा है।

(ख) भारतीय कांग्रेस के कर्णधार एक नया सम्प्रदाय उत्पन्न करना चाहते हैं। वे इसे संकरता =दोगली संस्कृति composite culture का नाम देते हैं। उन के शासन के आधार में इसके लिए पं० जवाहर लाल जी की पद्धति का निर्माण हो रहा है।

(ग) प्रजा समाजवादी सम्प्रदाय समाज का विशिष्ट कलेवर बनाना चाहता है, पर उस का समाज के कलेवर का चित्र, बहुत अपूर्ण और अस्पष्ट है।

(घ) जन संघ वाले भारतीय संस्कृति का नाम तो लेते हैं, पर उन्होंने इसका पूर्ण स्वरूप कभी प्रस्तुत नहीं किया।

प्रश्न होता है कि भारतीय लोक समिति इन सब से श्रेष्ठतम क्या आधार लेकर चल सकती है।

उत्तर है—

२. भारतीय लोक समिति वेद के आधार पर फल-फूल सकती है। वेद किसी सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। वेद सृष्टि में उस समय प्रकट हुए, जब सम्प्रदायों का अभाव था। अतः वेद सब का सांझा ज्ञान है। वेद से रूस और अमरीका दोनों का कल्याण है। वेद का यथार्थ स्वरूप नष्ट करने में धारा १ में वर्णित पहले ३ सम्प्रदायों ने घोर प्रयत्न किया है। इस कुत्सित कर्म में ईसाई संस्कार उनके सहायक रहे हैं। चतुर्थ सम्प्रदाय ने वेद की रक्षा का कोई कार्य-विवरण कभी नहीं दिया। अतः भारतीय लोक-समिति का काम दो दिशाओं में होना चाहिए। ये दिशाएं हैं—वेद की राजनीति की विशद व्याख्या, तथाच वेद पर हुए प्रहारों को रोकना।

३. वेद की राजनीति की विशद व्याख्या अत्यन्त आवश्यक है। श्री स्वामी जी महाराज ने अपने वेद भाष्य में शतशः संकेत किये हैं। उन की सहायता से राजविधान के आर्ष शास्त्रों की व्याख्या अभीष्ट है। इस के लिए गम्भीर स्वाध्याय की बड़ी आवश्यकता है।

४. भारत के लगभग चालीस विश्व विद्यालय इस समय वेद के परम कलुषित प्रकार के अध्यापन में रत हो रहे हैं। वे वेद-व्याख्या की पाश्चात्य हीन पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं उन्हें उस मार्ग से हटाना होगा। आज वे शास्त्रार्थ से कतराते हैं। उन्हें शास्त्रार्थों के लिए, परस्पर बात-चीत के लिए तय्यार करना होगा।

५. प्रश्न—अनेक कम्यूनिस्ट आदि लोग प्रश्न करते हैं कि आर्य राजनीति तथा आर्य संस्कृति जब काल के चक्र से बच नहीं सकी और वृद्ध हो कर मर गई है, तो अब यह पुनर्जिवित न हो सकेगी और न ही इसे कोई बचा सकता है।

६. उत्तर–इस का उत्तर अति सरल है। विचार, सत्य, वैज्ञानिक तथ्य, तथा संस्कृति आदि वृद्ध हो कर मरती नहीं हैं। इस के विपरीत जातियों में मनुष्य ही रोगी और वृहद् होते हैं और मर जाते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि स्थिर सत्य वृद्ध नहीं हुए और न मरेंगे। वे कल्प पर्यन्त समान रूप के रहेंगे। जो कहते हैं कि सूर्य की गर्मी न्यून हो रही है, वे सूर्य की गर्मी का कारण ही नहीं जानते। अस्तु।

७. उत्तर—क्या प्रश्नकर्ता जन्म से लेकर कभी रोगी नहीं हुआ। यदि रोगी हुआ था, तो उसने अपनी चिकित्सा क्यों की। यदि तुम्हें रोग ठीक करने का अधिकार है, तो हमें भी अपनी मानव जाति में जो अज्ञान का रोग आ गया था, उसके दूर करने का अधिकार है। यह काम राजनीति के द्वारा ही हो सकता है।

८. मनु कहता है कि त्रैविद्यवृद्ध विद्वानों वा

ब्राह्मणों का सत्सङ्ग राजा सदा करे —

(क) त्रैविद्यवृद्धान् विदुष पर्युपासीत ७। ३७॥ सत्यार्थ प्रकाश

(ख) वेदविदः शुचीन् सेवेत ७। ३८॥

(ग) त्रैविद्येभ्यस्त्रीयीं विद्या दण्डनीतिं च शाश्वतीम्। ७। ४३॥

(घ) ब्राह्म-निध नृपों की अक्षय निधिः। ७। ८२॥

त्रैविध विद्वानों से वेद और शाश्वत दण्डनीति को राजा सीखे। ये सब बातें किसी एक सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं हैं। ये सारे संसार के लिए हैं। अतः आर्य राजनीति की महती आवश्यकता है।

वेद विद्या विहीन ब्राह्मण धर्माधिकारी के बिना न्याय विधान पूरा नहीं चल सकता।

ऋषि दयानन्द सरस्वती की घोषणा—इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।

एकादश समु० आरम्भ

९. आर्य राजनीति में वर्णाश्रम धर्म की प्रमुखता है। वर्ण-संकरता संसार के दुःख का मूल कारण है। यह वर्णाश्रम धर्म बिना राज्य के कभी पूरा ठीक नहीं हो सकता। मनु स्पष्ट कहता है कि वर्णाश्रमों का रक्षक राजा ही है—

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता॥
॥ ७। ३५॥

अर्थात्—अपने अपने धर्म में स्थिर सब वर्णों और आश्रमों का रक्षक राजा ही है।

१०. यदि ब्राह्मण पर कर लगता है, उसे शासन भार लिए बिना हम नहीं हटा सकते। वेदज्ञ श्रोत्रिय अकर है। यदि नौकर को स्वामी भोजन नहीं देता, तो वह नौकर पर अत्याचार करता है। इसी लिए वर्तमान अनेक पाचक खाने के पदार्थों की चोरी करते हैं। महाभारत का विधान है कि भृत्य को अपने समान भोजन दो।

११. आर्य राज विधान के लिए संस्कृत भाषा अनिवार्य है। भारतीय लोक समिति को राजनीति और आचार की तीन परीक्षाएं स्थिर करनी चाहिएं। इन का माध्यम संस्कृत भाषा हो। इन में ५०% अंक लेने वाला ही किसी निर्वाचन के लिए खड़ा हो सके। इस विनीति के बिना स्वच्छ, शुद्ध आर्य राज नियम चला सकने वाले उत्पन्न न होंगे।

१२. भारतीय लोक समिति को भारत की भाषा संस्कृत घोषित करनी चाहिए। सम्पूर्ण प्रांतीय बोलियां व्यवहार की भाषा रहें। पर न्याय, शासन और शिक्षा में माध्यम संस्कृत ही होना चाहिए। अन्यथा देश में ऐक्य स्थापन न होगा। श्री स्वामी जी का आदेश है कि देश में भिन्न २ भाषाएं नहीं होनी चाहिएं।

अंग्रेजी के सर्वथा बहिष्कार की घोषणा करनी चाहिए। और वर्तमान विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान संस्कृत में कर लेना चाहिए।

१३. इस संस्कृत और शास्त्र ज्ञान के साथ-साथ प्रत्येक आर्य पुरुष को वर्तमान संसार के सब प्रधान राजनीतिक धाराओं का यथार्थ ज्ञान होना चाहिये। यह भी पूर्व-वर्णित परीक्षाओं का एक अङ्ग होना चाहिए।

१४. सम्पूर्ण देश में शनैः २ गुरुकुल पद्धति का प्रसार करना चाहिए। ट्रेनिंग लेने का जो गन्दा मार्ग वर्तमान में प्रचलित है, उसे हटा केवल उन लोगों को शिक्षा क्षेत्र में रहने देना चाहिए, जो सदाचार और ज्ञान में उत्कृष्ट होने का परिचय गुरुकुल वास में अपने श्रेष्ठ ब्राह्मण आचार्यों को दे चुके हैं।

१५. भारतीय लोक समिति चुनाव जीतने के लिए कोई घृणित उपाय न बर्ते। वहीं से आज सारा पाप आगे बढ़ता है। इस भारतीय लोक समिति के सदस्य आचार का ऊंचा स्तर स्थापित करें।

१६. भारतीय लोक समिति सब देशवासियों के लिए सुलभ भोजन के साधन निकाले। आजकल के समान जो स्त्रियों में भी नौकरी की दौड़ लग रही है, उसे सीमित करना चाहिये।

१७. गुण्डों, चोरों और डाकूओं के उन्मूलन का प्रोग्राम उपस्थित करना चाहिए, आज निरीह प्रजा इन से सताई जा कर अति दुःख भोग रही है। डाकू अनेक लोगों को गोली से उड़ा रहे हैं, और सरकार असहाय है।

१८. राजनीतिक सप्ताह—लोक समिति को समय २ पर आर्य समाजों को राजनीतिक सप्ताह मनाने की प्रेरणा करनी चाहिए। उस सप्ताह में भारत के सारे समाजों में सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास का पाठ और व्याख्या होनी चाहिए। आर्य समाजें चुनाव के पचड़े में न पड़, पर यह प्रोग्राम तो अवश्य मना सकते हैं।

संस्कृति और राज्य

❀ श्री पं० वैद्यभूषण रामगोपाल जी शास्त्री

संसार में बेबेलोनिया, मिश्र, यूनान और भारत ये चार संस्कृतियां इतिहास में प्राचीनतम समझी जाती हैं। भारतीय संस्कृति के बिना शेष तीनों संस्कृतियां इतिहास और खण्डहरों में विद्यमान हैं। शेष सर्वथा लुप्त हो चुकी है। भारतीय संस्कृति केवल इसलिये बची कि सदा ही राज्यशक्ति बलिदान करके भी इसे बचाती रही है। कोई भी संस्कृति बिना राज्य शक्ति के पनप नहीं सकती।

प्राचीन आर्य संस्कृति को प्रथम आघात बुद्ध और जैन धर्म के प्रचार से लगा। बुद्ध की विचारधारा भी इसलिये फैली कि वे स्वयं राजपुत्र थे। उनके प्रभाव से अञ्जन वणयगन के राजा का पुत्र, मिथला का राजा मखदेव, कन्धार का राजा बोधिसत्व जब उनके शिष्य बन गये तो बुद्ध की विचारधारा भारत में इतने वेग से फैली कि ये तीनों राजपुत्र स्वयं भिक्षु बन करके बुद्ध धर्म का प्रचार करने लगे। जब राजा लोग भिक्षु बने तो बड़े बड़े वीर क्षत्रिय कुल भी उनके प्रचार के साधन बन गये। अलकप्पा के बुली क्षत्रिय रामगाम के कोलियस क्षत्रिय, पिप्पलीवान के मौर्य क्षत्रिय और केशपुत्त का लासस क्षत्रिय गण जिनके हाथ में अपने अपने प्रदेश का राज्य था वे सब बौद्ध बने। इन राजघरानों और क्षत्रियगणों के अधिपतियों के बल से थोड़े ही समय में भारत में करोड़ों आर्य अपनी संस्कृति को भूल कर बुद्ध विचारधारा के अनुगामी बने। इसके अनन्तर जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी को विचारधारा भी राज्यशक्ति के बल से प्रसारित हुई। (१) वीरांग (२) वीरयश (३) संजय (४) अणेयत (५) सेव (६) शिव (७) उदयन (८) शंख—ये सब राजा जब उनके शिष्य बने तो सहस्रों की संख्या में नर नारियों ने राज्य शक्ति से प्रभावित होकर जैन धर्म को स्वीकार किया। यदि इन दो महापुरुषों के साथ राज्यशक्ति का बल न होता तो ये दोनों सम्प्रदाय इतने प्रचलित न होते। शंकराचार्य जिसने बुद्ध और जैन विचारधारा को भारत से नष्ट कर वैदिक विचारधारा का झण्डा उठाया था वह भी पहले अपने प्रचार में सफल नहीं हुये। पीछे जब सुधनवा राजा उनका शिष्य बना तो उस राज्य शक्ति के आधार से शंकर को प्रचार में बल मिला और वह फिर से प्राचीन संस्कृति को खड़ा कर सके।

तीसरा दृष्टान्त सिख सम्प्रदाय का है। गुरुनानक देव से लेकर गुरुअंगद, गुरु अमर दास, गुरु रामदास तथा गुरु अर्जुनदेव—ये पांचों अपने जीवन में धर्म प्रचार करते रहे और इनके प्रचार में सदा ही मुसलमान विघ्न बाधा डालते रहे अन्त में छटे गुरु हर गोबिन्द ने मीरी और पीरी अर्थात् धार्मिक और राजनीतिक शक्ति लेकर जब प्रचार क्षेत्र में काम करना आरम्भ किया तो इस सम्प्रदाय को बहुत बल मिला। अन्त में दसवें गुरु गोबिन्दसिंह जी ने खुले रूप में राजनीति में भाग लिया और मुसलमानों से संघर्ष किया। तभी से लेकर सिख सम्प्रदाय को बल मिला। इस से यह सिद्ध है कि बिना राज्य शक्ति के धार्मिक विचार और संस्कृतियां नहीं पनप सकतीं। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार में सब से अधिक समय राजस्थान में प्रचार किया। उनको यह विश्वास था कि यदि राजा लोग आर्य धर्म को स्वीकार कर लेंगे तो फिर से वैदिक धर्म फैलेगा। स्वामी दयानन्द ने आर्याभिविनय के मन्त्र भाष्य में बार २ यही प्रार्थना की है कि हे प्रभु आर्यों का चक्रवर्ती राज्य हो। सत्यार्थ प्रकाश में जो छटे समुल्लास में राजनीति लिखी गई है उसी का वह सदा राजस्थान के राजा महाराजाओं को उपदेश देते थे ऐसा ऋषि दयानन्द के छपे हुए पत्रों से सिद्ध होता है।

[शेष पृष्ठ ९ पर]

आर्य समाज राजनीति में क्यों आये

❀ स्वामी रामेश्वरानन्द आचार्य गुरुकुल घरोण्डा करनाल

जो आर्यसमाजी कांग्रेस, जनसंघ, आदि राजनैतिक संस्थाओं के सदस्य बने हैं वे आर्यसमाज को राजनीति में नहीं आने देना चाहते। यदि सामूहिक रूप से आर्यसमाज राजनीति में आ जाये तो इन सज्जनों को या तो आर्य समाज से त्यागपत्र देना होगा अथवा भिन्न संस्थाओं से क्योंकि राजनीतिक पृथक् संस्था बन जाने पर आर्य समाजी का किसी भिन्न राजनीतिक संस्था में रहना आर्यसमाज में विघटन का कार्य बनेगा। क्योंकि भिन्न २ राजनैतिक विचारों के मनुष्य जब इकट्ठे होंगे तो उन का एक मत होना असम्भव हो जायेगा। और चुनाव के समय प्रत्येक राजनीतिक विचारों के लोग अपना २ प्रभुत्व जमाना चाहेगें। जिससे कि इनका अपनी २ राजनीतिक संस्थाओं में भी प्रभुत्व बना रहे और यदि आर्यसमाज में पृथक् राजनीतिक संस्था बन जाती है तो आर्यसमाज का संगठन सुदृढ़ हो जायेगा। क्योंकि सबके धार्मिक एवं राजनीतिक विचार एक ही होंगे, अतः झगड़े का कोई प्रश्न ही न होगा। उदाहरण के लिये आप पंजाब को ही ले लीजिए–पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में कुछ आर्यसमाजी, कांग्रेसी, जनसंघी एवं कम्यूनिस्टादि हैं। यद्यपि "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" यह आर्यसमाज का प्रसिद्ध सिद्धान्त है। किन्तु राजनीतिक मत-भेदों के कारण श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती एवं प्रोफेसर शेरसिंह आदि जो कि आर्य प्रतिनिधि-सभा पंजाब के सर्वेसर्वा बने हुए हैं। वे आज भी पृथक् हरियाणे के जन्मदाता हैं। तथा सभा पर अनुचित रूप से अपना आधिपत्य जमाये हुए हैं, इनके विपरीत राजनीतिक विचारों के अनेक आर्य समाजी नेता भी पंजाब में हैं। इसलिये पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा स्वतन्त्रता के बाद राजनीति का अखाड़ा बन गई है परन्तु सिद्धान्ती दल के विपरीत जो आर्य समाजी नेता हैं वे सदा यह चाहते रहे हैं कि आर्यसमाज मिलकर चलता रहे। मैंने स्वयं १९५९ में भापड़ौदा के आर्य प्रतिनिधि सभा के चुनाव में सब प्रतिनिधियों से यह भिक्षा मांगी थी कि सभा का चुनाव सर्वसम्मत हो। और सर्वाधिकार सभा के प्रधान आचार्य रामदेव जी को ही दे दिये जाएं जिससे दोनों प्रतिनिधियों को लेकर सभा संगठन को दृढ़ बना सकें। मेरे इस प्रस्ताव का सब प्रतिनिधियों ने स्वागत किया और विरोधी दल के नेता लाला रामगोपाल जी ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। मैंने आचार्य रामदेव जी से पुनः प्रार्थना की कि आप दोनों दल के प्रतिनिधियों को सभा में लेकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को सुदृढ़ बनायें। किन्तु आचार्य जी ने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न देकर विरोधी दल का एक भी व्यक्ति अन्तरङ्ग में भी न लिया और श्री सिद्धान्ती जी को मन्त्री तथा भगवान देव जी को उप प्रधान और अन्य साथियों को साथ लेकर सभा में विष का बीज बो दिया। इसके पश्चात् सभा पर मुकदमे चले, उसके कार्यालय पर ताला लगा, किन्तु मुझ से यह पुनः न देखा गया और मैंने दिल्ली में सार्वदेशिक भवन के सामने अति शीतकाल होते हुए भी अपना अनशन आरम्भ किया जब एक दिन बीत गया तब श्री रामनाथ जी भल्ला, और प्रोफेसर रतनसिंह जी गाजियाबाद ने आकर कहा कि यदि आप आर्य समाज की एकता व भलाई चाहते हैं तो आप सार्वदेशिक भवन में चलें और समाचार पत्रों में कोई वक्तव्य भी न दें इससे आर्य समाज की अप्रतिष्ठा एवं गड़बड़ ही सम्भव है मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार कर सार्वदेशिक चला गया तो फिर दूसरे दिन प्रोफेसर रामसिंह जी ने मुझे सार्वदेशिक से अपमानित करके निकाल दिया। और मैं फिर वहीं सार्वदेशिक के सामने बैठ गया इसके बाद श्री देशराज जी मन्त्री आर्य समाज सीताराम बाजार मुझे अपनी समाज में ले आये। इस वृतान्त से

आर्य जनता में बड़ी बेचैनी हुई तब दोनों पक्ष के नेता श्री सिद्धान्ती व वीरेन्द्र जी आदि मेरे प्राण रक्षार्थ आपस में अपने गले लगकर मिले। और मुझे लिखकर दे दिया कि अब कोई भी झगड़ा हम आपस में नहीं करेंगे। और यदि कोई विवाद होगा तो वह आपके सामने रख देंगे। तथा ३४००) जो कि वेदानन्द जी की जेब से श्री सिद्धान्ती जी को मिले बताए जाते हैं उनका निर्णय भी मेरे ही हाथों में सौंप दिया। किन्तु थोड़े ही दिनों में झगड़े फिर ज्यों के त्यों जीवित हो गये। राजनीतिक मत भेदों कारण पंजाब का आर्य समाज जो सुदृढ़ था वह आज शिथिल हो गया और उपदेशक भजनीकों को भी अपनी २ इच्छा के अनुकूल सभा अधिकारी अपने २ चुनाव क्षेत्र के लिये प्रयोग में बर्त्तने लगे। अतः यदि आर्यसमाज को एक रखना है तो उसे राजनीति से दूर कैसे रहा जा सकता है। और यदि राजनीति से दूर रहना है तो आर्यों को राज्य से पृथक् किसी स्थान में बसना होगा। जहां केवल धर्म ही हो। अब आर्य समाज को संध्या-हवन एवं समाजों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता और जो यह कहते हैं कि आर्यसमाज धार्मिक संस्था है अतः इसको राजनीति में भाग न लेना चाहिये उनसे यह पूछना चाहिये कि यदि धार्मिक लोग राजनीति में न आयेंगे तो क्या पापी ही आयेंगे। और वे आपके धर्म का प्रचार एवं प्रसार कर सकेंगे? जब कि व्यक्तिगत रूप से न आएं तो इससे क्या लाभ है? तथा सत्यार्थ प्रकाश छटा समुल्लास जिसमें कि राजनीति का विस्तीर्ण वर्णन है वह श्री पूज्य स्वामी जी महाराज ने किसके लिये लिखा है? क्या राज्यार्य सभा को स्थापना कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट आदि करेंगे? और वेदों में राजनीति के अंगों का विशद वर्णन तथा महाभारत, रामायण, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में जो राजनीति का वर्णन है वह किसके लिये है? और यह भी कहां लिखा है कि आर्य समाज राजनीति में न आये। अतः मैं आर्य भाईयों से प्रार्थना करता हूँ कि वे राजनीति में विशेष रूप से भाग लें। अन्यथा आर्य समाज केवल नाम मात्र से एक सम्प्रदाय के रूप में शेष रह जायेगा। जैन, बौद्ध, ईसाइ, मुसलमान, आदि धर्मों का प्रचार अपने २ राजाओं के कारण ही हुआ है।

[शेष पृष्ठ ७ का]

इस समय भारत वर्ष में वर्ण संकर संस्कृति (Composite Culture) तथा प्राचीन आर्य संस्कृति में टक्कर है। वर्ण संस्कृति मानने वाले भारतीय संस्कृति में इसलाम और ईसाईयत की संस्कृति को स्वीकार करते हैं परन्तु हम जिस संस्कृति का प्रचार करना चाहते हैं उस का स्वरूप यह है—

ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त सब ऋषि मुनियों तथा राम कृष्ण आदि महापुरुषों के आचार विचार के आधार से बनी जो आर्य जाति की विचारधारा है उसे प्राचीन भारतीय संस्कृति मानते हैं।

हमारा विश्वास है कि प्राचीन संस्कृति से ही विश्व का कल्याण है, वर्ण संकर संस्कृति से नहीं। अब इस टक्कर में जिनके हाथ में राज्य की बागडोर है वे वर्ण संकर संस्कृति को मानते हैं और नाच राग रंग को ही संस्कृति का भी स्वरूप बताते हैं। इसे दूर करने का एक ही उपाय है कि आर्य लोग राजनीति के क्षेत्र में उतरें और चुनावों में अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए उनको मत दें जो इसका संरक्षण करे। यदि आर्य लोग राजनीति से तटस्थ रहे तो क्षय रोग की तरह यह वर्ण संस्कृति वाले प्राचीन भारतीय संस्कृति को रसातल पर पहुँचा देंगे।

—❀❀❀—

वैदिक राष्ट्र की रूप रेखा

❀ श्री पं. सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालिज, गोरखपुर

साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि शब्द वैदिक साहित्य में प्रचलित शब्द हैं। परन्तु वेद का एक शब्द 'राष्ट्र' अत्यन्त पवित्र और उपयोगी शब्द है। इस शब्द में वैदिक धर्म की बहुत बड़ी भावना, बड़ी मार्मिकता और प्रोज्ज्वल अनुभूति निबद्ध है। यह एक शब्द राजा, प्रजा, जाति और संस्कृति सब के भावों को लेकर बना है। वैदिक राष्ट्र की रूप रेखा क्या हो? यह समझने के लिये इन विषयों को समझना चाहिये? (क) राष्ट्र का स्वरूप (ख) राष्ट्र को आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से रक्षा (ग) राष्ट्र की व्यवस्थापिका, कार्य पालिका न्याय पालिका संस्थाओं का संगठन। इन विषयों पर विचार करना होगा। ऋग्वेद मं० ३ सूक्त ३८ मन्त्र ६ में आया है:—

त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि परि विश्वानि भूषथ सदांसि ॥

अर्थात् राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर सुख प्राप्ति और विज्ञान वृद्धि कारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समाज प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

इस मन्त्र से राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप अंग और उद्देश्य स्पष्ट बतलाये गये हैं। राष्ट्र वह वस्तु है जिसके लिये मनुष्य अपना सर्वस्व देने के लिए तैयार रहता था और राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बलि को करते हुये नहीं हिचकता है। वेद का विचार है :—

"आ राष्ट्रे राजन्यः शूरइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्" यजु० २२। २२ ॥

राष्ट्र में राष्ट्र की रक्षा के लिये वीर क्षत्रिय, धनुर्धारी लक्ष्यवेधी और महारथी हों। ऋग्वेद (१०। १७३। ५) में प्रार्थना की गई है कि जल शक्ति के अधिष्ठाता वरुण, ज्ञान के अधिष्ठाता बृहस्पति और सम्पूर्ण सेना के अधिष्ठाता इन्द्र अविचल भाव से राष्ट्र की शत्रुओं से रक्षा करें।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥

राष्ट्र की रक्षा आलसी, प्रमादी और दुर्गुणों में फंसे हुये व्यक्ति नहीं कर सकते। राष्ट्र की रक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति को संनद्ध रहना पड़ेगा, उसे अपने आपको राष्ट्र का नेता समझना होगा और उस अवस्था में हमें जागृत और सावधान रहना होगा। इंगलैंड के बच्चों को माता के दूध के साथ, विद्यालय के क्रीड़ा क्षेत्रों में यही शिक्षा दी जाती थी। तभी छोटे से इंगलैंड ने विश्व पर शासन किया। इतने बड़े साम्राज्य का निर्माण किया कि उस साम्राज्य में सूर्य नहीं छिप सकता था। जापान के बच्चों की माताएं राष्ट्र के लिये बलिदान होने एवं मातृभूमि के लिये अपने प्राणों की आहूति करने की शिक्षा दूध की घुट्टी के साथ पिलाती हैं, उसी का फल है कि इस सदी के प्रारम्भ में एशिया के इस छोटे से देश ने यूरोप के एक महादेश रूस को परास्त किया? यह हुई मातृभूमि या राष्ट्र के प्रति बलिदान की भावना। इस रक्षा के लिये राष्ट्र का प्रमुख अंग है राजा।

राजा कौन हो सकता था? वह राष्ट्र की रक्षा कैसे करता था? क्या राजा वंश परम्परा से नियुक्त होता था? अथवा राजा चुना जाता था? यह विषय भी विचारणीय हैं। अथर्ववेद (११।५।१७) में आया है "ब्रह्मचर्य रूप तप के ही बल से राजा राष्ट्र की रक्षा कर सकता है" **ब्रह्मचर्येण तपसा**

राजा राष्ट्रं विरक्षति। इतना ही नहीं राजा कौन हो सकता था यह बात प्रजायें राज्याभिषेक के समय राजा से जो बातें कहती थीं उनसे ज्ञात होता है। आर्य प्रजा राजा से कहती है:—

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥
ऋग्वेद १० । १७४ । २ ॥

जो हमारे शत्रु हैं, जो हमारी हिंसा करना चाहते हैं, जो सेना लेकर हमारे राष्ट्र में युद्ध करने को आते हैं और जो हम से द्वेष करते हैं, राजन् उन्हें अभिभूत करो।

अभिषेक के बाद प्रजायें कहती थीं—

आत्वा हार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वा राष्ट्र मधिभृशत् ॥
ऋग्वेद १० । १७३ । १ ॥

राजन्, तुम इस देश के राष्ट्रपति हो। तुम अटल अविचल, दृढ़ और स्थिर रहो। प्रजा तुम्हें चाहती रहे। तुम्हारा राष्ट्र कभी नष्ट न हो। आगे लिखा है:—

इहैवेधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
इन्द्रा इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारयं ।
ऋ० १० । १७३ । २ ॥

तुम यहां पर्वत के समान अटल, दृढ़ और अविचल रहो। प्रजाओं की रक्षा के अपने कार्य को करो और राजच्युत न हो ओ। इन्द्र के सदृश बनकर राष्ट्र की रक्षा करो। राजा प्रजा को इसका उत्तर देता है! वह आजकल के शासकों की तरह वीर्यहीन नहीं प्रतीत होता। शक्तिहीन को रोग और शत्रु सताया करते हैं। अतः राजा कहता है :—

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभिषाडस्मि विश्वाषाडाशमाशां विषा सहिः ॥
अथ० १२ । १ । ५४ ॥

अर्थात् मैं अपनी मातृ भूमि के अन्दर अधिक शक्तिशाली बनकर श्रेष्ठ बन कर शत्रु का परम्भव करूंगा सब दिशाओं में शत्रुओं का पूर्ण पराभव करके उनको दूर कर दूंगा और मेरे ऊपर जो कष्ट आयें, जिस ओर से आवें। जिस समय आवें, मुझे चिन्ता नहीं। वह कहता है:—

यद् वदामि मधुमत् तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा
त्विषिमानस्मि द्युतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥
अथर्व० १२ । १ । ५८ ॥

अर्थात्—मैं मातृभूमि के लिये जो कुछ कहता हूँ उसे अवश्य पूर्ण करूंगा। मैं ज्योतिपूर्ण वर्चस्वशाली और बुद्धि युक्त होकर मातृ भूमि को दोहन करने वाले (आन्तरिक एवं बाह्य) शत्रुओं का पूर्ण विनाश करूंगा।

इस प्रकार यह राजा राष्ट्र की रक्षा के लिए नियुक्त होता था। उसका चुनाव होता था। वेद के अनेक प्रमाणों से ऐतिहासिक साक्षियों के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि राजा का चुनाव होता था। इसका चुनाव 'विशः' या जनता करती थी। यदि कोई राजा का पुत्र भी राजा होता था तो उसका चुनाव भी 'विशः' ही करती थी और स्वीकृति देती थी। राजा के कर्तव्य तीन प्रकार के थे (१) सैनिक (२) शासन सम्बन्धी और (३) न्याय सम्बन्धी। इसकी दो सभायें होती थीं जो इनकी सहायता करती थीं। ये सभायें थीं क. समिति और ख. सभा। समिति समस्त विशः या प्रजा की संस्था थी, जिसमें सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों पर विचार होता था। इसका सभापति 'ईशान' होता था। दूसरी सभा का नाम 'सभा' था। इसकी सहायता से राजा न्याय का कार्य किया करता था। अथर्ववेद १५।९।२। के अनुसार '**तं सभा च समितिश्च सेना च**' आया है जिसका भाव है कि राजधर्म का यह सब पालन करें। राजधर्म क्या था? इस पर जब हम विचार करते हैं तो वैदिक राजनीति का लक्ष्य राष्ट्र के निवासियों की सेवा थी। और यही कारण था उस समय एम० एल० ए० शिप आदि के लिये संघर्ष न होता था। संघर्ष स्वार्थ के लिये होता है, दया, करुणा, सेवा, सहानुभूति में स्वार्थ क्या? इन सभाओं में कौन व्यक्ति आ सकते थे:—

त्रै विद्यो हैतुकस्तर्की नैसक्तो धर्मपाठकः ।

इस सभा में चारों वेद, न्याय शास्त्र, निरुक्त, धर्म शास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हो सकते थे। इतना ही नहीं मनु जी ने लिखा है:—

एकोऽपि वेद विद्धर्मं यं व्यवस्येद द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितो ऽ युतैः ॥

यदि एक अकेला सब वेदों का ज्ञाता द्विजों में उत्तम व्यक्ति जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है किन्तु सहस्त्रों अज्ञानियों की बात मान्य नहीं, आगे इसे और भी स्पष्ट किया है कि जातीयता प्रान्तीयता, भाषावाद या इस तरह के अन्य नारों से जो परिषद् के सदस्य होते हैं उनका साथ होना उचित नहीं। लिखा है:—

अव्रतानामसन्त्राणां जाति मात्रोपजीविनाम् ।
सहस्त्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ।

अव्रती, सत्य भाषणादि से रहित और जाति मात्र पर जीवित रहने वालों का परिषत्व नहीं होता।

वैदिक राष्ट्र में एक शक्तिशाली 'सेना' भी रहती थी। 'विदथ' नाम की एक चौथी संस्था थी जो यज्ञ याग आदि विषयक शुद्ध धार्मिक संस्था थी। धर्म का कार्य इसका लक्ष्य था।

अन्त में कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक राजनीति का लक्ष्य जनता की सेवा और राष्ट्र का अभ्युत्थान था। राजा प्रजा का सेवक होता था शासक नहीं। शासन भी सेवा के लिए ही था। अभिषेक संस्कार से इन बातों पर प्रकाश पड़ता है। अभिषेक क्रियो में राजा कहता था।

"यदि मैं प्रजा का द्रोह करूं तो अपने जीवन, अपने पुण्य फल, अपनी सन्तान आदि सब से वंचित किया जाऊं" और पुनः बाघाम्बर बिछे तख्त पर बैठे राजा को जल से अभिषिक्त कर पुरोहित राज्य कार्य के लिये उसे नियुक्त करता था और कहता था यह राज्य तुम्हें कृषि, रक्षा (क्षेम) समृद्धि, और पुष्टि के लिये दिया जा रहा है। तुम इसके संचालक (यन्ता) नियामक और ध्रुव धारण-कर्त्ता हो। इस क्रिया के पश्चात् राजा की पीठ पर दण्ड से हलकी चोट की जाती थी और इस प्रकार राजा को बतलाया जाता था कि यदि कार्य ठीक से नहीं करोगे तो यह दण्ड तुम्हारी पीठ पर पड़ेगा।

इस प्रकार वैदिक राष्ट्र की रूप रेखा राजनीति का लक्ष्य प्रजा पालन था और शासन व्यवस्था द्वारा अपने राज्य को शत्रुओं से अरिक्षत कर उसे समृद्ध करते थे। शासन की व्यवस्थापिका, न्याय-पालिका एवं कार्य पालिका शक्ति द्वारा वे राष्ट्र को अभ्युदय की ओर ले जाते थे। इस प्रकार वैदिक राष्ट्र यदि आज हम भारत को बना सकें तो देश की स्वतन्त्रता, भावनात्मक ऐक्य एवं देश की अभिवृद्धि हो सकेगी।

[शेष पृष्ठ ४ का]

तो उस जमाने में उस स्टेट में अपने धर्म को रक्षा करना सोये नाग को जगाना था। और इस्लाम धर्म के बारे में एक शब्द भी कहना मौत को निमन्त्रण देना था उसी जमाने में आपने वहां अपने धर्म का डंका जाया। निज़ाम के अमीर-उमरा बैठे सुनते रहते थे। कहते थे कि बड़ा होशियार आदमी है सब कुछ कह देता है और कुछ भी नहीं कहता। लाख कोशिश करने पर भी वे उनका कुछ न कर सके और आपकी लोक प्रियता वहां बढ़ती ही गई। राज्य की सरकारी घोषणा के अनुसार आपने अकेले हैदराबाद में पौने दो सौ व्याख्यान दिए।

पिछले दिनों जो हिन्दी सत्याग्रह हुआ था उस में भी आप एक बड़ा जत्था लेकर जेल गये थे।

इस प्रकार आपने वैदिक धर्म की सेवा निर्भीक होकर की। आज आपकी ८० वर्ष की आयु है फिर भी आप प्रचार कार्य में संलग्न हैं।

—❀❀—

आर्य समाज और राजनीति

❀ श्री पं० भीमसेन शास्त्री आर्ष कन्या गुरुकुल नरेला

वर्तमान भारतीय स्वातन्त्र्य सर्वविध उन्नति के प्रथम सबल उपदेशक, सच्ची भारतीयता के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने राज्यार्य सभा का विधान करते हुए राजनीति को आर्य जीवन का अनिवार्य अंग स्थिर किया है। वस्तुतः कोई जीवित मनुष्य राज्य व्यवस्था से असंबद्ध नहीं हो सकता। बलाद् आरोपित नेत्र निमीलन आत्महत्या से न्यून अपराध नहीं। आर्य पुरुष कांग्रेस की सजीवता से युगों पूर्व (कांग्रेस में प्राण प्रतिष्ठा महात्मा गान्धी ने की थी। ततः पूर्व वह एक निर्जीव ढकोसला मात्र थी) सक्रिय देशभक्त व क्रांतिकारी रहे हैं। महर्षि का सच्चे प्रिय शिष्य पण्डिततल्लज श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा क्रान्ति मार्ग के प्रवर्तक थे। लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द का राजनीति में योगदान सर्वविदित है। स्वदेशी वस्तु सेवन महर्षि दयानन्द ने आरम्भ से स्वभक्तों को सिखाया था। आर्य समाज से इतर देश भक्तों में तो उसका प्रारम्भ बङ्ग भङ्ग से हुआ था। महात्मा गांधी के उपदेशानुसार सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने वालों में ६० प्रतिशत से अधिक आर्य समाजी थे।

यह सब कुछ होते हुए भी आर्य समाज की वेदी से राजनीति का बहिष्कार किया जाता रहा है और आज भी किसी सीमा तक किया जा रहा है। आर्य समाज का वर्तमान संगठन राजनीति से अविष्ट रहे यह ठीक भी है। पर यह बात इस समस्या के केवल एक पार्श्व है। दूसरा पार्श्व यह है कि भारतीय आर्य पुरुषों को राजनीतिक कार्यों के लिये एक अन्य मञ्च निर्माण करके उसमें पूर्ण शक्ति से भाग लेना चाहिये। इस आवश्यक कार्य की पूर्ण उपेक्षा करने से बड़े ही दुष्परिणाम हुए हैं। देशभक्त आर्य समाजियों का राजनीति में सक्रिय होना अनिवार्य था। इनमें से कुछ लोगों ने हिन्दू सभा बनाई। अनेक लोग कांग्रेस के झण्डे तले बलिदान करते रहे। क्रान्तिकारियों में श्याम जी कृष्ण वर्मा से आरम्भ करके सरदार भगतसिंह तक प्रमुख पुरुष प्रायः आर्य समाजी ही थे। देश का कोई ऐसा महत्वपूर्ण स्थान नहीं जहां आर्य समाजी इन कार्यों में प्रमुख न थे। पर आर्य समाज का कोई राजनीतिक मञ्च न होने से इसका महान् त्याग व बलिदान श्रेय आर्य समाज को न मिला और आज आर्य समाज के राजनीतिक कार्यकर्ता अनेक दलों में विभक्त होकर परस्पर विरोधी बन गये हैं। वे सब दूसरों के आज्ञापालक है और उनके आज्ञापालक हैं जो आर्य समाज को अपना महान् शत्रु समझते हैं।

मुझे एक उदाहरण स्मरण आ रहा है। राजस्थान के चुरू नगर को आर्य समाज के उद्भट विद्वान्, अपने युग में सूर्य सम प्रकाशमान पण्डित गणपति शर्मा की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहां अनेक लोगों ने आर्य समाज का कार्य किया। पर एक महती भूल कर बैठे। पौराणिकों का प्रबल विरोध होने से, उन त्यागी तपस्वी सेवकों ने संस्था का नाम 'आर्य समाज' न रख कर 'सर्व हितकारिणी सभा' रखा। उस समय तो बात सब को ठीक जंचती थी कि आर्य समाज का कार्य होना चाहिये, नाम से क्या। पर उसका दुष्फल स्पष्ट है। आर्य समाज के सेवकों ने महान् कार्य किया, सभा स्थापित की। भवन, पुस्तकालय आदि बनाये। पर आज उस सभा, संस्था का आर्य समाज से, आर्य जगत् से नाम मात्र का भी सम्बन्ध नहीं है और आर्य जगत् से नाम मात्र का भी संबंध नहीं है और आर्य जगत् उससे नाम को भी परिचित नहीं। चुरू में आर्य समाज का नाम भी शेष नहीं।

इस युग में सर्वत्र धूर्तता का बोलबाला है। महर्षि के जीवन काल में सारे संसार में उन की खूब चर्चा होती थी। बाद में महर्षि सिद्धान्तों से

भयभीत प्रपञ्चियों ने विद्या क्षेत्र में महर्षि प्रतिपादित वेद सम्बन्धी सिद्धान्तों की चर्चा भी करनी छोड़ दी। संसार के सौ महापुरुषों में भी महर्षि की गणना नहीं की जाती। कांग्रेस के प्लेटफार्म से बुद्ध, ईसा, मुहम्मद नानक ह्यूम (अत्याचारी अंग्रेज) आदि के गुण गाये जाते हैं पर स्वातन्त्र्य चेतना के प्रवर्तक महर्षि का नाम मात्र संकीर्तन करने वाले को तुरन्त बहिष्कृत कर दिया जाता है। आर्य समाज का कैसा अनुपम देश प्रेम, अनुपम त्याग व बलिदान रहा है पर आज सारा अंग्रेजी ढंग का विद्वत् समूह, कांग्रेस आदि आर्य समाज के पूर्ण शत्रु हैं। महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का नाम लेना घोर पाप सदृश जघन्य कर्म समझा जाता है। तथा आर्य समाज के राजनीतिक कार्यकर्ता परस्पर विरोधी दलों में विभक्त होकर परस्पर विरुद्ध हो गये हैं। यह सब हमारी एक आर्यनीतिक प्लेटफार्म न बनाने के दुष्फल हैं।

भारत के कल्याण के लिये आर्य समाज का राजनीति में सक्रिय भाग लेना अनिवार्य आवश्यक है। भारत में कभी त्रिविष्टप (तिब्बत) मध्य एशिया अफगानिस्तान, ब्रह्मा, लंका आदि सभी सम्मिलित थे। अब जितना भारत अंग्रेजों के समय में था उतना भी न रहा। अधिकांश मुसलमान, ईसाई (यहां विद्रोहियों से अभिप्राय है। इनमें अल्प संख्या देश भक्तों की भी है। उन पर आक्षेप नहीं है) देश के सतत अंग-भङ्ग को प्रयत्नशील है। देश के आर्थिक कल्याण, स्वास्थ्य के लिये गो रक्षा अनिवार्य आवश्यक है। एक राष्ट्रीय लिपि और राष्ट्रीय भाषा बिना एक देश की कल्पना कोरा स्वप्न है। अंग्रेजी की सर्वविनाशिनी प्रभुता का निवारण हमारी मानसिक स्वाधीनता के लिये अनिवार्य अपेक्षित है। मुसलमान तथा ईसाई देशद्रोहियों से देश की रक्षा न की गई तो सृष्टि काल से जगद्गुरु भारत का पूर्ण विनाश निश्चित है। प्रान्तीयता तथा भाषावाद के विष का शमन अवश्य कर्तव्य है। ये ज्वलन्त समस्यायें हैं। निश्चय ही इनका समाधान आर्य जगत् ही कर सकता है। अन्य कोई नहीं। अतः आर्य समाज का राजनीति में सक्रिय होना अनिवार्य आवश्यक है।

राजनीति के उपदेश मात्र से आर्य समाज ने गत ८६ वर्षों में कुछ न बनाया। और एक वर्ष मात्र में, एक मात्र आर्य वीर—माननीय प्रकाशवीर शास्त्री ने कितना चमत्कार दिखाया है। अतः आर्य समाज का राजनीति में सक्रिय भाग लेना परमावश्यक है।

हर्ष की बात है कि जो कार्य आज से ५०-६० वर्ष पूर्व हो जाना चाहिये था, वह आज हुआ है और ३० जुलाई को देहली में भारतीय लोक समिति का निर्माण हो गया है। आशा है हमारे अनुभवी नेता व सारी आर्य जनता इसमें पूर्ण शक्ति से भाग लेंगे। कार्य क्षेत्र सबके पृथक् पृथक् होते हैं।

आर्य पुरुषों में से किसी की रुचि राजनीतिक सुधार की ओर अधिक झुकी हुई होगी, किसी का धर्म प्रचार की ओर और किसी का विद्या प्रचार की ओर। किसी की विशेष अभिरुचि आर्थिक संगठन की ओर भी हो सकती है। अपनी अपनी अभिरुचि के अनुसार व्यक्ति विशेष अपना विशेष कार्य क्षेत्र चुनेंगे। एक ही पुरुष सारे कार्यक्षेत्रों में सफलता से कार्य नहीं कर सकता। हां साधारण रुचि, सर्व विज्ञों की सर्वत्र रहेगी। किन्हीं महानुभावों को एक से अधिक कार्य क्षेत्रों में भी अभिरुचि होती है। इसमें कोई हानि भी नहीं। पर मेरी तुच्छ मति में प्रधानता एक ही कार्य को देनी चाहिये उसमें स्वतन्त्र भी बाधा न होते दूसरे क्षेत्र में जितना कार्य कर सके अच्छा है।

हां एक बात की ओर ध्यान रखना सफलता में सहायक होगा। राजनीतिक कार्यकर्ताओं को आर्य समाज की दल बन्दियों से पूर्ण निर्लिप्त रहना चाहिये। यदि सारे दल पूर्ण सहमति से किसी राजनीतिक कार्यकर्ता को किसी समाज अथवा सभा का प्रधान बनाते हैं तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। पर अल्प भी मत भेद हो तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार जब कमल

[शेष पृष्ठ १६ पर]

आर्य समाज और राजनीति

❀ डा० सूर्यदेव शर्मा एम. ए. एल. टी. डी लिट्

अनेक सज्जन यह प्रश्न करते है कि स्वामी दयानन्द ने "सत्यार्थ प्रकाश" अपना महत्वपूर्ण ग्रन्थ विशेषतः पाखण्ड खण्डन तथा मिथ्या मतमतान्तरों के भ्रमनिवारणार्थ एवं मानव जीवन के चार आश्रमों के कर्तव्य निर्देशनार्थ लिखा था, उसमें एक छठा समुल्लास राजनीति का क्यों घुसेड़ दिया गया ? उस ग्रन्थ के अन्य समुल्लासों से इस छठे समुल्लास को कुछ भी संगति नहीं बैठती ? जब पांचवे समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के कर्तव्यों का निर्देशन एवं वर्णन कर चुके तो फिर उसके पश्चात् राजनीति की क्या संगति ? इसी प्रकार आगे सप्तम समुल्लास में ईश्वर और वेद का वर्णन है, संन्यास और ईश्वर के वर्णनों के मध्य में यह राजनीति का अध्याय क्यों डाला गया ? संन्यास के पश्चात् ईश्वर का वर्णन सुसंगत रहता।

यह प्रश्न ऐसे महानुभावों द्वारा पूछा जाता है जिन्होंने सम्भवतया "सत्यार्थ प्रकाश" प्रणयन के उद्देश्यों पर गम्भीरता से विचार नहीं किया प्रतीत होता।

वास्तव में "सत्यार्थ प्रकाश" लिखने में स्वामी दयानन्द का उद्देश्य केवल मतमतान्तरों का खंडन करना अथवा चार आश्रमों की व्याख्या करना मात्र नहीं था। उनका उद्देश्य तो सत्य अर्थ का प्रकाश करना था। उस सत्य अर्थ में कोई भी विषय और कोई भी प्रकरण आ सकता है। जो विषय भी मानव जीवन को परिपूर्ण बनाने में उपयोगी एवं उपादेय हो सकते हैं; वे चाहे वर्णाश्रम से सम्बन्धित हों, चाहे राजनीति से, उन सबका समावेश सत्यार्थ प्रकाश में किया गया है। स्वामी जी का उद्देश्य तो सत्य अर्थ का खोज करना था।

तब भला संसार में ऐसा कौन मनुष्य होगा जो यह मानता हो कि मानव जीवन की परिपूर्णता आंकने में राजनीति को अलगथलग रखा जा सकता है ? प्रत्येक मनुष्य किसी देश में, किसी समाज में, किसी राज्य में रहता है, तब वह राजनीति से पृथक् कैसे रह सकता है ? आर्य समाजों के सदस्यगण भी मनुष्य होने के नाते राजनीति से अपने को अलग नहीं रख सकते, यदि व ऐसा करेंगे तो उनका जीवन अधूरा ही रहेगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में छठे समुल्लास की रचना की तथा "आर्याभिविनय" में अनेक स्थानों पर परम प्रभु से पूर्ण स्वराज्य एवं स्वतन्त्रता की याचना की है। अतः स्वामी दयानन्द मानवमात्र के सुख और कल्याण की कामना से ही सब कार्य करते रहे और इसी उद्देश्य से उन्होंने राजनीति पर बल दिया है।

अब प्रश्न यह रहता है कि आर्य समाज जिसकी स्थापना ऋषि दयानन्द के करकमलों से उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई थी, राजनीति में भाग ले अथवा नहीं ? इसका उत्तर तो अब कुछ भी नकारात्मक हो ही नहीं सकता। जब ऋषि दयानन्द ने सउकी सार्थकता पर एक समुल्लास लिखा है और राजनीति में कदम रखा है तब आर्य समाज राजनीति से पृथक् क्यों रहे ? फिर कुछ लोग कहते हैं कि भारत की व्यवहार राजनीति में आर्य समाज क्यों पड़े ? उसका उद्देश्य तो सार्वभौम और सार्वदेशिक है, उसका एक देश की राजनोति से क्या सम्बन्ध ? यह कुछ अंश तक विचारणीय है। आर्य समाज सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रचारक है। उसके लिए मानव मात्र समान है। वह किसी देश विशेष के राजनैतिक दलों के दलदलों में अपने को क्यों उलझाने लगे। अतः आर्य समाज के वरिष्ट नेताओं का यह निश्चय अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण ही माना जायगा। कि (१) आर्य समाज सिद्धान्तरूप न तो

सब देशों और समस्त राष्ट्रों की राजनीति में पथ-प्रदर्शन कर सकता है-वैदिक राजनीति की रूपरेखा सब को बता और प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन वह विश्व की अथवा किसी देश की (भारत भी एक देश है) व्यवहारिक राजनीति में सामूहिक रूप से भाग नहीं ले सकता और न उसे ऐसा करना चाहिए,❀ (२) इस प्रकार से आर्य समाज सामूहिक रूप में भारत वा अन्य किसी राष्ट्र की राजनीति में भाग न ले, परन्तु आर्य समाज के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप में यह स्वतन्त्रता है कि किसी भी राजनैतिक दल का समर्थन करें अथवा उसमें सम्मलित होकर उसका उन्नयन करें, शर्त यह होगी कि वह दल किसी रूप में भी वैदिक सिद्धान्तों और संस्कृति के विरुद्ध सिद्धान्तों को मान्यता न देता हो, न उन पर आचरण करता हो।

इन्हीं दोनों बातों को ध्यान में रख कर आर्य समाज के कुछ नेताओं ने पहले "आर्य स्वराज्य सभा" की स्थापना की थी और अब "भारतीय लोक समिति" की स्थापना की है जिसमें आर्य समाज के विचारों के सज्जन व्यक्तिगत रूप से अपना राजनैतिक संगठन बना सकें। यह प्रयत्न अभिनन्दनीय है। सराहनीय है।

राजनीति में "आर्य" हैं, पर नहि "आर्यसमाज"।
सार्वभौम रहते हुए, करे देश का काज॥

टिप्पणी

❀ हम लेखक महोदय तथा आर्य जगत् के कर्णाधारों की इस मान्यता से सहमत नहीं हैं। यह निश्चय अदूर्दर्शितापूर्ण और भ्रमपूर्ण है। इतना ही नहीं इसके पीछे कुछ लोगों के तुच्छ स्वार्थ भी सन्निहित हैं।

यह सत्य है कि आर्य जगत् एक सार्वभौम एवं सार्वदेशिक संस्था है परन्तु आर्य समाज ने जो भी कार्य आरम्भ किये वे एक देश से ही आरम्भ किये। इसी प्रकार आर्य समाज भारत को एक इकाई मान कर सामूहिक रूप से राजनीति में भाग ले सकता है इससे न केवल आर्य समाज का गौरव ही बढ़ेगा अपितु देश और संसार का भी उपकार होगा। —विद्यार्थी

[शेष पृष्ठ १४ का]

वत् निर्लिप्त पुरुष के लिये लोक सभा आदि के चुनाव के समय सारे आर्य समाज का पूर्ण हार्दिक समर्थन क्रियाशील होगा। यह उसकी सर्वाधिक सफलता के लिये सदा अन्यत्र कमनीय है। यदि घर में विरोध है तो उतने ही अंश में सफलता व अभिनन्दन बाधित रहेगा।

राजनीतिक क्षेत्र में सफलता के लिये भी, आर्य वीर दलों का देश व्यापी सफल संगठन परमावश्यक है। इसके बिना न हमें आर्य समाज के प्रचार में सफलता मिलेगी और न राजनीति में। और व्याख्यान से तात्कालिक सभा मात्र में सफलता का आभास मिल सकता है। वास्तविक सफलता इससे अत्यन्त भिन्न वस्तु है।

आर्य वीर दल तथा ऐसी सभाओं के लिये उपासना गीत आदि सर्व मान्य सिद्धान्तों पर आश्रित होने चाहिये। सारे ही आस्तिक परमात्मा को निराकार मानते हैं अतः निराकार उपासना के गीत होने चाहिये। पर उनमें साकारोपासना पर छींटाकशी सर्वथा अभिवाञ्छित है। हम हिन्दी भाषा के महत्व के गीत गावें पर उनमें प्रान्तीय भाषाओं, उर्दू तथा विदेशी भाषाओं का खण्डन न हो।

मेरे विचार में हमारी इन सभाओं में सभी भक्तों को स्थान हो पर वे निश्चित रूप से हमारी संस्कृति के भी भक्त हों, हमारे इतिहास को अपना इतिहास, हमारे पर्वों को अपना पर्व समझते हों। श्रावणी में किसी की रुचि न हो तो सह्य है पर नव वर्ष, विजया दशमी दीपावली, आदि में वे सानन्द भाग लें। हां इन सभाओं का नेतृत्व पूर्णतया विज्ञ आर्य पुरुषों के ही हाथ में होना चाहिये। अन्यथा वे सभाएं शीघ्र लक्ष्यभ्रष्ट हो सकती हैं।

राजनीति में प्रवेश के विना धर्म प्रचार असम्भव

❀ श्री लाला रामगोपाल जी शालवाले,
प्रधान आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली

आजकल आर्यसामाजिक क्षेत्रों में राजनीति में सामूहिक प्रवेश की चर्चाएं सर्वत्र चल रही हैं। पक्ष और विपक्ष में अनेक प्रकार के विचार जनता के सामने आ रहे हैं। ऐसी अवस्था में गम्भीरता से प्रत्येक आर्य बन्धु को विचार करना होगा कि राजनीति से अलग रह कर वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर होने वाले आक्रमणों का निराकरण किस प्रकार किया जावे। संसार के धार्मिक इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाय, तो पता चलता है कि इस्लाम, ईसाइयत और बौद्ध धर्म के साथ यदि राजनैतिक शक्ति न होती, तो वे संसार के व्यापक धर्म बनने में सर्वथा असमर्थ रहते।

स्वतन्त्र होने के पश्चात् भारतवर्ष में जहां ईसाइयत की बाढ़ बड़ी प्रबलता के साथ आ रही है, वहां मुसल्मान भी अपने कार्यों में पूर्णरूप से सक्रिय हैं। हमारी सरकार सरकारी खर्चे पर पुनः भारत में बौद्ध धर्म को फैलाने का प्रयत्न कर रही है। कम्यूनिस्ट चीन और रूस अपने वाद का प्रचार करने के लिए करोड़ों रुपये का साहित्य सस्ते मूल्य पर भारत में भेज रहे हैं। सैक्यूलर होने के कारण भारत सरकार इन समस्त विपत्तियों का निराकरण करने में सर्वथा असमर्थ है, वैसे भी अपनी सरकार अपने देश में आर्य हिन्दू मर्यादाओं के विपरीत अनेक कार्य कर रही है। गोवंश का ह्रास देश को एक भारी पतन की ओर ले जा रहा है और अपनी सरकार इस पर कोई विचार करने के लिए तैयार नहीं। ऐसी स्थिति में मेरा उन आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि वे उत्तर देने का कष्ट करें कि उपर्युक्त आपत्तियों का निराकरण किस प्रकार किया जावे।

देश में आर्य हिन्दू धर्मावलम्बी बहुमत में हैं, किन्तु उनके वोट का लोभ कांग्रेस, कम्यूनिस्ट, प्रजा समाज वादी आदि इसी प्रकार को भारतीय संस्कृति में विश्वास न रखने वाली संस्थाएं उठातीं हैं। पाकिस्तानी एजेन्टों का जाल आज देश में पूरी शक्ति के साथ बिछाया जा रहा है। और भारतीय मुसलमान इस कार्य में उनके पूर्ण सहायक हैं। ईसाई पादरी करोड़ों रुपये के व्यय से देश में ईसा स्थान बनाये जाने को तैयारियां कर रहे हैं।

विभाजन के पश्चात् मुसलिम लीग पुनः सिर उठा रही है और भारत में पुनः नये पाकिस्तान बनाये जाने के स्वप्न देखे जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में यदि महर्षि दयानन्द की विचारधारा का व्यापक प्रचार और विरोधियों के विचारों का निराकरण करने की क्षमता उत्पन्न करनी है, तो राजनीति में प्रवेश करने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। मैं नहीं कहता कि आर्यसमाज सामूहिक रूप से राजनीति में आये, और धर्म प्रचार छोड़ दे।

आर्य समाज अपनी परम्परा के अनुसार सार्वभौम धार्मिक संघ के रूप में धर्मप्रचार का पुनीत आर्य करता रहे, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं किन्तु उनकी वेदमूलक पुनीत धारणाओं को रक्षा के लिए एक सबल राजनीति कक्ष के निर्माण करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि भारतीय लोक समिति ऐसे ही आपत्तिकालीन समय में जनता का पथ प्रदर्शन करने के लिए जन्म ले रही है। जिस प्रकार आर्य पुरुषों ने कांग्रेस, जनसंघ, हिन्दू महासभा आदि अनक संस्थाओं में कार्य किया, उसी प्रकार आर्य विचार धारा के महानुभाव संगठितरूप से भारतीय लोक समिति में प्रवेश कर एक सबल राजनीतिक संगठन का निर्माण कर देश का पथप्रदर्शन करें।

आर्यसमाज अपने धार्मिक रूप में उसी प्रकार कार्य करता रहे, उसमें कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

वैदिक आर्य राजधर्म और राजनीति का कुछ स्वरूप

❀ स्वा० मेधानन्द सरस्वती

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने वेद मन्त्रों के आधार पर वैदिक आर्य राजधर्म और राजनीति का जो स्वरूप अपने वेद भाष्य में दर्शाया है उसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन हम अपने इस लघु लेख में करेंगे। देखिये:—

(१) जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिए हितकारी होता है, और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उनके उपकार के लिए धर्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है, वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्तें। जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है, वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है, तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है, इस प्रकार यह तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते है ॥ यजु० ७। २१ भावार्थ ॥

विदित हो कि ईश्वर, वेद, धर्म और योगविद्या का वैदिक आर्य राजधर्म और राजनीति में महान् स्थान है। देखिये:—

(२) ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ यजु० ७।३९ ॥

और देखिये:—

(३) योग विद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्णविद्यावान् नहीं हो सकता, और न पूर्ण विद्या के बिना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है, और न इनके बिना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है, इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ यजु० ७।२८॥

और देखिये:—

(४) जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं, वे हमारी निरन्तर रक्षा करें, नहीं तो न लें, हम भी उनको कर न देवें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिए ही कर देना चाहिये, अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं, यह निश्चित है ॥ यजु० ९।१७ भावार्थ और देखिये:—

(५) जैसे इस संसार में सूर्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं, वैसे राजा प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण कर्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों, क्योंकि ऐसा है कि मनुष्य शरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का संग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है। इससे सब मनुष्यों को चाहिए कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें ॥ यजु० ८।४० भावार्थ ॥

विदित हो कि ऋषि दयानन्द ने स्ववेदभाष्य में सैंकड़ों मन्त्रों का राजधर्म, राजनीतिपरक अर्थ किया है। राजधर्म, राजनीति व्यक्तिगत वस्तु नहीं है। इसके बिना सच्ची उन्नति, लोक और परलोक की सुख-सिद्धि असम्भव है ॥ ओ३म् शान्तिः २ ॥

॥ ओ३म् क्रान्तिः ३ ॥

—❀❀—

आर्य समाज और राजनीति

❀ पं० प्रकाशवीर शास्त्री, लोकसभा सदस्य

आर्य समाज का सक्रिय राजनीति में किस प्रकार हाथ होना चाहिये ? यह चर्चा साधिकार भाषा में तो नहीं कह सकता कब से विचार का विषय बन रही है। क्योंकि आर्य समाज के मंच से मेरा सम्बन्ध केवल १६ वर्ष का है। इससे पूर्व मैं ज्वालापुर गुरुकुल में पढ़ता था और एक विद्यार्थी के रूप में आर्य समाज की गतिविधियों को दूर से देखता रहता था। अखिल भारतीय आर्य महा सम्मेलन में भी शोलापुर से हैदराबाद तक तब ही से मैं सम्मिलित हूं। शोलापुर और देहली के आर्य महा सम्मेलन तो विशेष रूप से हैदराबाद सत्याग्रह और सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर प्रतिबन्ध को लेकर हुए थे। देहली महा सम्मेलन के समय भारत विभाजन की चर्चा देश में जोरों पर चल पड़ी थी उस पर भी विचार किया गया था। उसके बाद कलकत्ता, मेरठ और हैदराबाद में आर्य महा सम्मेलन हुए। इन सब ही सम्मेलनों में यह चर्चा बड़े उग्र रूप में रही कि सक्रिय राजनीति को प्रभावित करने सम्बन्धी अपनी नीति का हम स्पष्ट निर्णय करे। मेरठ में तो दो दिन तक निरन्तर इस पर विवाद चला।

उस समय कुछ प्रमुख आर्य नेता इस पक्ष में थे कि इस दलदल में न फंसा जाए। नई पीढ़ी के कुछ लोग जिनमें मैं स्वयं भी एक था इस पक्ष में थे कि राजनीति से दूर रह कर हम अपने संगठन के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं और ऋषि के मन्तव्यों से भी दूर जा रहे हैं। परन्तु मेरा और अन्य जो इस पक्ष में थे कि राजनीति में आया जाए उन सबका ही उस समय भी और आज भी यह विचार दृढ़ है कि आर्य समाज के सांस्कृतिक और सामाजिक ढांचे को तो ज्यों का त्यों सुरक्षित रहने दिया जाए, आर्य समाजियों को जो इधर रुचि रखते हैं उन्हें संगठित रूप दिया जाए।

मेरा अपना विचार है कि यदि मेरठ महा सम्मेलन में कोई निर्णयात्मक पग उठा लिया गया होता तो आज आर्य समाज की युवा शक्ति बिखरती नहीं। परन्तु आज भी अगर एक दृढ़ निर्णय हम ले लें तो अभी बहुत कुछ नहीं बिगड़ा है।

आर्य समाज के नेता पंजाब का भाषा सत्याग्रह और मथुरा की दयानन्द दीक्षा शताब्दी देखकर भी आर्य समाज की शक्ति का अनुमान नहीं लगा पाते तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है। मेरठ में राजनीति वाले प्रस्ताव पर एक उप समिति बना दी गई थी। मथुरा में भी आर्य समाज के प्रमुख व्यक्तियों ने फिर इस विषय को राजार्य सम्मेलन में उठाया। मेरठ से मथुरा तक इतना तो अन्तर हुआ है कि श्री महाशय कृष्ण जी और माननीय घनश्याम सिंह जी गुप्त तो इन विचारों के हो गये हैं कि राजनीति में आया जाए।

आर्य समाज में ऐसा भी कुछ तत्व है जो आज भी राजनीति को वारांगना (वेश्या) या कीचड़ में हाथ डालना आदि कह कर दूर ही रहने का परामर्श देता है परन्तु इसमें तीन प्रकार के व्यक्ति हैं, एक तो वह जिनका मस्तिष्क ही इस दिशा में कभी काम नहीं करता केवल सिद्धान्तवाद अथवा शास्त्र चर्चा को ही आर्य समझे बैठे हैं। इस बात को वह भूल जाते हैं—"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्वते" अपना राज्य और अपना धर्म इन दोनों का भी अभिन्न सम्बन्ध है। दूसरे फिर आर्य समाज स्वयं तो एक संगठन ही है कोई धर्म तो है ही नहीं। धर्म के जिस शुद्ध और परिष्कृत रूप को आर्य समाज के प्रवर्त्तक ने हमें बताया है उसमें राजनीति को भी धर्म से अलग नहीं रखा गया है। सत्यार्थ-प्रकाश के छठे समुल्लास में महर्षि जी ने जहां इसकी चर्चा आरम्भ की है वहां "राजधर्मान् व्या-

ख्यास्याम:" ऐसा लिखा है। दूसरे व्यक्ति वह हैं जो सरकारी नौकरी में हैं अथवा सरकारी अधिकारियों के कृपापात्र बने रहने में ही जिनका हित है। तीसरे और भी एक इस विचार के विरोधी हैं। यह वह लोग हैं जिनका इस तरह के कुछ राजनैतिक संगठनों से लगाव है जो उनके प्रति अपनी वफादारी बनाये रखने के लिये ही यह परामर्श देते हैं कि राजनीति से दूर रहा जाए। दुःख की बात है कि इस समय कांग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट तक हमारे संगठन में हैं। कुछ प्रत्यक्ष हैं और कुछ अप्रत्यक्ष हैं। अच्छा हो हम इन अप्रत्यक्ष काम करने वाले मित्रों से भी सावधान रहें।

कुछ ऐसे भी आर्यजन हैं जो सचमुच ही बिना किसी अन्य कारण के पवित्र भाव से यह अनुभव करते हैं कि कहीं उधर जाने से हम अपने प्रमुख लक्ष्य से भटक तो नहीं जाएंगे? सम्भव है किसी सीमा तक वह ठीक भी सोच रहे हों? परन्तु बड़ी नम्रता से ऐसे महानुभावों से मेरा निवेदन है कुछ ऐसे भी समय आते हैं जब बड़े-बड़े महात्माओं को भी परिस्थियों ने मार्ग बदलने पर विवश किया है। समर्थ गुरु रामदास को परिस्थितियों ने ही पुकारा था कि किसी तरह शिवाजी की पीठ पर हाथ रख कर उसे तैयार करें। बन्दा बैरागी को माला छोड़ कर स्वयं करूखसियर के आगे तलवार पकड़नी पड़ी थी और इसी तरह के यह सब कारण थे जो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भारत के प्रथम क्रान्तिकारी श्याम जी कृष्ण वर्मा को लन्दन में छात्रवृति देकर भारतीय स्वाधीनता का शंख फूंकने भेजा था। एक समय ऐसा था जब धर्म के शुद्ध स्वरूप की रक्षा के लिये आर्य समाज ने शास्त्रार्थ किया। ऐसा भी समय आया जब लाठी-गोली और छुरों के भी सामने आर्य नेताओं ने किये। कभी सत्याग्रह युद्ध में भी हम कूदे। समय के अनुसार अपनी रीति-रिवाज में हम हेर फेर करते रहे हैं। परन्तु आज की परिस्थिति हमें पुकार-पुकार कर कह रही है कि हम राजनीति की उपेक्षा न करें। संस्कृति सभ्यता और धर्म को अंग्रेजी के समय उतना खतरा नहीं था जितना आज है। धर्म निरपेक्षता के नाम पर जो वातावरण आज चल रहा है उससे साम्यवाद के लिए रास्ता तैयार होता जा रहा है। कभी चोटी और जनेऊ के लिए हमारे पूर्वज लड़े थे आज बहाव में आकर वह स्वयं उतरती जा रही है। धर्म का मजाक उड़ाया जाता है उसे पिछले युग की बात कहकर अजायबघर की वस्तु बतलाया जाता है, स्कूलों, कालेजों में कहीं नाम मात्र को भी थोड़ा धार्मिक क्रम था तो उसे कानून से छुड़वाया जा रहा है। उधर इस धर्म-निरपेक्षता का लाभ उठा कर भारत की अराष्ट्रीय प्रवृत्तियां फिर पनप रही हैं। पाकिस्तान की तरह विदेशी ईसाई पादरी अरबों रुपया बहा कर फिर से देश को एक नये संकट के द्वार पर ले जा रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय सरकार धर्मनिरपेक्षता के नाम पर यह सब देख ही रही है। यों भी आज की कांग्रेस जिसकी केन्द्र में और प्रान्तों में सरकार है वह गांधी तिलक और मालवीय जी की कांग्रस नहीं रही। उसमें बहुत से कम्युनिस्ट घुस गये हैं। आज के कम्युनिस्टों और कांग्रेस में इतना ही अन्तर है कि वह विदेशी कम्युनिज्म को मानते हैं और इनका स्वदेशी कम्युनिज्म है। कांग्रेस के उच्चतम नेता यदि यह सोचते भी हैं कि कभी शासन हमारे हाथ से अगर जाये तो फिर यह भी संभालें। भले ही परिस्थितिवश वह इस बात को न कहते हों परन्तु उनके मन में यह चोर छिपा हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में कर्तव्य तो हर भारतीय संस्कृति के उपासक का है कि वह संगठित हों और देश के लिये दलीय भावनाओं से ऊपर उठ कर विचार करें पर आर्य समाज का दायित्व तो विशेष है। स्वस्थ संगठनों का यह चिन्ह भी है कि वह अपने लक्ष्य को न भूलते हुए समय के साथ अपनी रीति-नीति में परिवर्तन करते रहते हैं। गंभीरता से इस विषय पर भी आज हम एक बार फिर से सोचें। यह बात दूसरी है कि उसका रूप क्या है? सिद्धांततः यदि यह बात सब मान लेते हैं तो रूप अवश्य सोच लिया जायगा। अमर शहीद स्वा० श्रद्धानन्द जी ने आज से ३० वर्ष पूर्व यह भविष्यवाणी लिखित रूप में की थी कि एक ऐसा भी समय आयेगा जब आर्य समाज को राजनैतिक शुद्धि भी करनी पड़ेगी? मेरी सम्मत्ति में आज वह समय आ गया है जब स्वामी जी की उस भविष्यवाणी को सार्थक करने के लिए हम कमर कसें। हमारे अधिक से अधिक साथी संसदों और विधान सभाओं में पहूँचे।

आर्य समाज और राजनीति

❀ श्री स्वामी वेद मुनि जी परिव्राजक

समय समय पर यह प्रश्न सामने आता रहता है कि आर्य समाज राजनीति में भाग ले या नहीं। यदि हम आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाषणों तथा ग्रन्थों का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन और मनन करें, तो इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना चतुर्मुखी उद्देश्य को लेकर की थी। अर्थात् उनके मस्तिष्क में प्रत्येक क्षेत्र में मानव के उत्थान के लिये, मानव के सर्वांगीण उत्थान के लिये राजनीति की अनिवार्यता उग्ररूप में विद्यमान थी। उनके लेखों के अतिरिक्त लार्ड रिपन के दरबार के समय का उनका भारत के प्रमुख धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक नेताओं का सम्मेलन तथा अन्य अनेक कार्य जिनका पता उनके जीवन चरित्र से लगता है। राजनीतिक उद्देश्य के लिये ही थे।

जब तक भारत में विदेशी शासन रहा तब तक तो हमारे सामने एक ही प्रश्न था कि जैसे भी हो हम स्वतन्त्र हो जायें, अतः हम इस प्रश्न पर कम विचार करते थे, किन्तु अंग्रेजों के जाने के बाद यह प्रश्न बार-बार सामने आने लगा है इस समय हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि अंग्रेजों के समय आर्य समाज के राजनीति में आने से क्या हानि या लाभ था? किन्तु हम भाग न ले सके। जहां उसके और कारण हो सकते हैं वहां एक प्रमुख कारण था सरकारी कर्मचारियों और राय साहबों व राय बहादुरों की समस्या। जब भी इस विषय पर विचार उठा तब ही इन वर्गों के द्वारा उसे दबा दिया गया और साथ ही अन्य लोगों ने भी अधिक प्रयास नहीं किया, यह सोचकर कि कांग्रेस के नाम से मोर्चा लगा ही है हम उसी में सम्मिलित रहकर कार्य करें।

अंग्रेजों के चले जाने के पश्चात् देश के सामने यह प्रश्न आया कि देश का शासन सूत्र किस प्रकार चलाया जाय और उसका संविधान किस प्रकार का हो। इस विषय पर प्रत्येक दल और प्रत्येक संस्था का एक अपना अलग दृष्टिकोण हो सकता है अतः स्वाभाविक था कि हमारा दृष्टिकोण भी हमें सोचने को बाध्य करे और उसने हमें बाध्य किया भी, हमने सोचा भी, किन्तु फिर भी हम राजनीति से अलग रहे। सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन मेरठ में इस विषय पर दो दिन तक विचार होता रहा और अन्ततोगत्वा वही ढाक के तीन पात। जनता चाहती थी नेता नहीं चाहते थे, कारण केवल यह था कि नेता अपने दोनों पैरों को एक साथ नहीं रख सके। एक पैर कांग्रेस में था दूसरा आर्यसमाज में और बात आई गई हो गई।

कांग्रेस से हमारा शासन पद्धति में मतभेद था। हमारा ही नहीं समाजवादियों का भी। वह निकले और उन्होंने अपने दलों को पृथक्-पृथक् रूप से सङ्गठित किया, किन्तु हम वहीं रहे और हमारे देखते ही देखते देश का संविधान बना तथा देश को धर्म-निरपेक्ष घोषित कर सर्वथा अवांछनीय पथ पर डाल दिया गया। उस समय की भूल हमें तब दृष्टिगोचर होती है जब कोई समस्या आकर विकरालरूप में हमारे सामने खड़ी हो जाती है, तब मन मसोस तथा होंठ चबाकर रह जाते हैं। इन समस्याओं की जो पदे-पदे हमारे सामने आती हैं उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि यह हमारे जीवन से वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रत्येक क्षेत्र में सम्बन्धित होती हैं और हमें प्रभावित करती हैं।

हमारा दुर्भाग्य यह है कि आर्य समाज में सदा एक दल ऐसा रहा जो इस विषय का विरोधी रहा। कभी वेतन-भोगी, तथा राय साहब व रायबहादुर तो कभी कांग्रेसी आर्य समाजी। अब एक दल हम में से प्रादुर्भूत हुआ है यह दल है जनसंघी आर्य समाजियों का यह भी अब उसी स्वर में बोलने लगे हैं जिसमें कुछ दिन पहले कांग्रेस आर्य समाजी बोला करते थे।

मेरा इन भाइयों से निवेदन है कि यह कांग्रेसी आर्यसमाजियों की भांति पवत जैसी भयङ्कर भूल मत करो अन्यथा बाद में पछताना पड़ेगा। उनका कहना है कि हमारे घर में हो फूट है राजनीति में क्या करेंगे ? मैं कहता हूँ यह फूट इसी कारण से है कि पृथक्-पृथक् राजनीतिक दलों म जाने से हमारे मान बिन्दु पृथक्-पृथक् हो गये हैं। वह कहते हैं जैसे अकाली दल के राजनीति नें जाने से गुरुद्वारे छुरेबाजी का अखाड़ा बन गये हैं, इसी प्रकार आर्य-समाज के राजनीति में भाग लेने से आर्य समाज मन्दिर लाठी बाजी का अखाड़ा बन जायेंगे। मेरा कहना है कि जिस प्रकार जनसंघ बन जाने से राष्ट्रीय-स्वयं सेवक संघ की शाखाओं में इकट्ठे होने वाले स्वयं-सेवक आपस में नहीं लड़ते इसी प्रकार आर्य समाज का राजनीति दल बन जाने पर आर्य समाज भवनों में आर्य समाजी भी आपस में नहीं लड़ेंगे। वह कहते हैं राजनीति गन्दी है वहां आर्य समाज का काम नहीं जब तक राजनीति शुद्ध न हो जाय।

आर्य समाज व्यक्तियों का समूह है दीवारों का नाम नहीं। जब व्यक्तिगत रूपेण सब राजनीति में चले जायें तो आर्य समाज किधर को बचता है ? हां यह बात अवश्य है कि सामूहिक रूपेण जाते तो सङ्गठन बना रहता तो स्यात् अच्छा नहीं था इसलिए शक्ति का विकेन्द्रीय करण करके जाओ जिससे कोई कौड़ी न उठे। यह क्या गोरख धन्दा है ? यदि राजनीति इतनी ही बुरी है तो एक भी आर्य समाजी को राजनीति में नहीं जाना चाहिये। जब राजनीति शुद्ध हो जायेगी तब वहां आर्य समाज की क्या आवश्यकता रहेगी ? रोगी ठीक हो जयगा तब चिकित्सक जी पधारेंगे, क्यों क्या माल उड़ाने ? बीमारी में गये तो बीमार हो जाएंगे, विचित्र तक है।

सन् १९५७ के पंजाब हिन्दी सत्याग्रह की असफलता का मूल कारण व्यक्तिगत रूपेण राजनीति में जाने की नीति ही है। यदि उक्त सत्याग्रह के विषय में हम गम्भीरता से विचार करें तो स्पष्ट है कि यदि हमारे उस समय के सर्वाधिकारी महोदय कांग्रेसी न होते तो हमारा इतना बड़ा बलिदानमय पुरुषार्थ जिसमें अठारह जीवनों की आहुतियां लगीं, अनेकों माताओं की गोदियां खाली हुईं और अनेकों बहिनों की मांग के सिन्दूर पुंछे कभी निष्फल न जाता। यदि हमारी राजनीति सङ्गठित होती तो इतने बड़े सत्याग्रह के पश्चात् जिसने एक बार सारे भारत को झकझोर कर जगा दिया चार वर्ष की अल्पावधि में ही स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज को अनशन करने की आवश्यकता न पड़ती।

पञ्जाब में देश द्रोही अकालियों की गतिविधियां तथा भारत के अधिकतर क्षेत्रों में पञ्चमांगी यवनों व ईसाइयों के कारनामे तथा रूस और चीन के दीवाने कम्युनिस्टों की करतूतें इस बात को आवश्यकता को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं कि आर्य समाज राजनीति में भाग ले। साथ ही इन परिस्थितियों में भारतीय संसद के एक मात्र सदस्य श्री प्रकाशवीर शास्त्री के स्तुत्य प्रयत्नों ने तो यह पूर्णतया सिद्ध कर दिखाया है कि राजनीति में भाग लेकर आर्य समाज राष्ट्र का अत्यधिक हित सिद्ध कर सकता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि स्वामी रामेश्वरानन्द जी का अनशन पञ्जाब के बटवारे को रोकने में पूर्णतया सफल रहा; किन्तु इससे भी नकार नहीं किया जा सकता कि वीर सेनानी श्री पंडित प्रकाशवीर जी शास्त्री ने स्वामी जी के अनशन और हमारे मिशन को जिस योग्यता से भारत के सर्वोच्च नेताओं के सम्मुख तथा भारतीय संसद में प्रस्तुत किया है वह अनशन की सफलता में महत्वपूर्ण योग है। यद्यपि इस समय भारतीय संसद में चौरासी सदस्य आर्य समाजी हैं किन्तु क्योंकि वह किसी न किसी दल के अनुशासन में हैं अतः उनके द्वारा उस प्रकार के कार्यों के सम्पादन होने की आशा कदापि नहीं की जा सकती जिस प्रकार के कार्य श्री शास्त्री जी के द्वारा सम्पादित हुए। यह सब तो अकेले व्यक्ति के प्रयत्न हैं यदि हमारा राजनीतिक दल होता और उसके द्वारा एक सूत्र में पिरोये हुये अनेक सदस्य संसद में होते तो कितना राष्ट्र हित होता।

सौभाग्य से देहली के आर्य भाइयों ने भारतीय लोक समिति नाम से एक राजनीति दलक का निर्माण कर लिया है अतः देश के प्रत्येक क्षेत्र में रहने वाले आर्यों का कर्त्तव्य है कि वह इस नवजात दल को शक्तिशाली बनायें। हमारे पास नेताओं एवं विचारकों को कमी नहीं है। यदि एक बार सङ्गठित होकर हमने हुँकार की तो भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा। हम भारतीय लोक समिति द्वारा सत्ता हथियाना नहीं चाहते अपितु राष्ट्र का मार्ग दर्शन करना चाहते हैं।

आर्य समाज और राजनीति

❀ प्रो० भावानीलाल भारतीय एम० ए० R. E. S.
प्रवक्ता—श्री महाराज कुमार कालेज, जोधपुर

महर्षि दयानन्द ने धर्म से राजनीति को कभी पृथक् नहीं समझा। मनुस्मृति, शुक्रनीति, कामन्दकीय नीति सार, चाणक्य कृत अर्थशास्त्र आदि राजनीति के आर्ष ग्रन्थों के अध्येता ऋषि दयानन्द के लिए यह कैसे सम्भव हो सकता था कि राजनीति के विषय में उनका कोई दृष्टिकोण न हो। फलतः सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में वेद और मनुस्मृति के आधार पर राजनैतिक सिद्धान्तों का निरूपण किया। विद्या धर्म और शासन की सुव्यवस्था के लिये विद्यार्य, धर्मार्य और राजार्य सभाओं की आवश्यकता पर बल दिया। राजा और प्रजा के अधिकार और कर्तव्य का निरूपण करते हुये प्रजातन्त्र का सच्चा स्वरूप उपस्थित किया।

केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से राजनीति के तत्वों का प्रतिपादन करना ही ऋषि का ध्येय नहीं था। देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दुर्दशा और अधोगति को देख कर उनका भावुक और संवेदनशील हृदय अत्यन्त पीड़ित हो उठता था। सत्यार्थप्रकाश तथा अन्य ग्रन्थों में स्वाधीनता के प्रति ऋषि का अकृत्रिम प्यार सर्वत्र झलकता है। कहीं वे पिता के तुल्य कृपालु विदेशी राज्य की तुलना में स्वराज्य को श्रेयकर बताते हैं तो कहीं पारस्परिक फूट के कारण हुई आर्यावर्त की दुर्दशा पर दुःखी होते हैं। कहीं स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने का आदेश देते हैं तो कहीं आर्याभिविनय के मन्त्रों की व्याख्या में परमात्मा से आर्यों के अखण्ड चक्रवर्ती सार्वभौम साम्राज्य की याचना करते हैं।

ऋषि दयानन्द मूलतः धर्माचार्य और समाज सुधारक थे। उन्होंने प्रचलित राजनीति में कभी भाग नहीं लिया। उनकी यह धारणा थी कि यदि देशवासियों की एक उपासना प्रणाली, एक धर्म, एक भाषा और एक संगठन हो तो उन्हें स्वाधीन होते अधिक देर नहीं लगेगी। यद्यपि सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, तथा उनके शिष्य श्री पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार आदि विद्वानों की यह धारणा है कि स्वामी जी ने १८५७ के राज्य-विद्रोह में सक्रिय रूप से भाग लेकर विद्रोहियों का नेतृत्व किया था, परन्तु अभी यह साध्यकोटि❀ में ही है। ऋषि दयानन्द जैसे व्यक्ति का प्रच्छान्न रूप से कोई राजनैतिक कार्य करना समझ के बाहर की बात है। अस्तु।

कुछ भी हो, स्वामी दयानन्द की शिक्षा और उपदेशों में ही कुछ ऐसे तत्व भरे थे, जिनसे प्रेरणा पाकर आर्य समाजी देश के स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। महात्मा गांधी अफ्रीका से लौट कर जब भारत आये तो उन्होंने कहा कि मैं जहां २ जाता हूँ वहां २ आर्य समाजों में राष्ट्रीय आंदोलन के लिये वातावरण बना बनाया पाता हूँ। श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द स्वामी श्रद्धानन्द, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल आदि के त्याग और बलिदान के पीछे आर्यसमाज की राष्ट्रीय भावना ही कार्य कर रही थी।

एक युग वह भी आया जब कि आर्यसमाज की इन्हीं राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को राजनीतिक समझा गया और आर्य समाज को षड्यन्त्रकारी संगठन बता कर उसे समाप्त कर देने की चेष्टा अंग्रेजी सरकार द्वारा हुई। पटियाला में आर्य पुरुषों पर अभियोग चलाये गये। सत्यार्थप्रकाश और आर्याभिविनय के निर्दोष वाक्यों में षड्यन्त्र और भड़काने की भावनायें ढूंढी गई। गुरुकुल कांगड़ी जैसी शैक्षाणिक संस्था को विद्रोही उत्पन्न करने का अड्डा समझा गया। स्वामी श्रद्धानन्द आदि तत्कालीन नेताओं ने उस समय अत्यन्त दूर दर्शिता से काम लिया। उन्होंने अदालतों में यह सिद्ध कर दिया कि आर्यसमाज मूलतः

❀ हम लेखक महोदय की इस मान्यता से सहमत नहीं हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। इस सम्बन्ध में अनेक मिले हैं।

एक धार्मिक संस्था हैं और उसका प्रचलित राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि यह नहीं होता तो आर्यसमाज को अंग्रेज सरकार ने कुचल दिया होता। गेहूँ के साथ घुन भी पिस गये होते। सरकारी कर्मचारी जो राजनैतिक प्रवृत्तियों से सर्वथा विलग रहे थे, वे भी अपने धर्म का पालन नहीं कर सकते।

देश को स्वाधीन बनाने में आर्यसमाज ने जो प्रत्यक्ष या परोक्ष कार्य किया है वह किसी से अप्रकट नहीं है। परन्तु आज की परिवर्तित परिस्थितियों में हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम गम्भीरता पूर्वक यह सोचें कि आर्यसमाज का वर्तमान प्रचलित राजनीति से क्या सम्बन्ध हो सकता है।

आर्यसमाज मूलतः वैदिक धर्म, सभ्यता और संस्कृति का विश्वभर में प्रचार करने वाला एक चर्च है। अवश्य ही उसके कुछ राजनैतिक सिद्धान्त भी हैं, परन्तु किसी देश विशेष की राजनीतिक अवस्था से सम्बन्ध रखना और उसमें हस्तक्षेप करना आर्यसमाज के लिए उचित नहीं। संसार मात्र का उपकार करना उसका ध्येय है, किसी देश विशेष का नहीं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि किसी देश का रहने वाला आर्यसमाजी अपने देश की शोचनीय परिस्थितियों के प्रति सर्वथा उदासीन रह सकता है। इसके विपरीत वह अपने देश की दशा को सुधारने के लिये सर्वाधिक प्रयत्नशील रहता है।

आज कई क्षेत्रों से यह आवाज उठाई जा रही है कि आर्यसमाज सामूहिक रूप से राजनीति में जो अनाचार, भ्रष्टाचार, पक्षपात और दुराचार का बोलबाला है उसे समाप्त कर दे। यह कहने वाले भी यह स्वीकार करते हैं कि आर्यसमाज आर्यसमाज के रूप में प्रचलित राजनीति में भाग नहीं ले सकता। उसके सार्वदेशिक संगठन में केवल भारत के आर्य ही सम्मिलित नहीं हैं, अपितु अफ्रीका, मारिशस, गायना, फिजी आदि दूर देशवासी भी सम्मिलित हैं। ऐसी स्थिति में व्यवहारिक दृष्टिकोण यही हो हो सकता है कि राजनैतिक प्रवृत्तियों में भाग लेने के इच्छुक व्यक्ति अपना एक पृथक् संगठन बनायें और लोकसभा में चुनाव लड़ कर प्रवेश करें और देश का राजनीतिक शुद्धीकरण करें।

यहां एक बड़ी भारी कठिनाई यह आती है कि अब तक आर्य समाज ने व्यक्तिशः अपने सदस्यों को किसी भी राजनैतिक संगठन में भाग लेने की छूट दे रक्खी है। इसी का यह परिणाम हुआ कि लाखों आर्यसमाजी कांग्रेस, जनसंघ, हिन्दू महासभा आदि राजनीतिक दलों में सम्मिलित होकर अपना सार्वजनिक जीवन बना सके हैं। सम्पूर्ण जीवन भर की साधना का परित्याग कर एक ऐसे नये दल का निर्माण करना जिसमें केवल आर्य विचारधारा के लोग ही प्रवेश पा सकें, उनके लिये कठिन अनुभव हो रहा है। जिन लोगों ने कांग्रेस में वर्षों पूर्व प्रवेश कर अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया, आज वे अचानक ही एक नवीन दल में सम्मिलित होकर अपनी स्थिति को दुर्बल क्यों बनाने लगे।

इधर पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह के पश्चात् कुछ राजनैतिक चेतना सम्पन्न आर्य पुरुषों की महत्वाकांक्षायें जाग्रत हुई हैं और वे अनुभव करने लगे हैं कि अब समय आ गया है जब कि आर्यसमाज को समग्रः राजनीति में कूद पड़ना चाहिए। निश्चय ही पं० प्रकाशवीर शास्त्री, श्री ओमप्रकाश त्यागी व लाला रामगोपाल शाल वाले जैसे व्यक्ति लोकसभा में जाकर आर्य समाज के दृष्टिकोण को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से उपस्थित कर सकते हैं।

आर्य राजनीति के कतिपय तत्त्व

लेखक

-श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर

आर्य राजनीति के सम्बन्ध में अभूतपूर्व पुस्तक सुन्दर छपाई उत्तम कागज आकर्षक गैट अप ५२ पृष्ठ का पुस्तक का मूल्य प्रचारार्थ केवल ३० नये पैसे।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)

(२० पुस्तकों का संग्रह)

बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानद) ५०
सत्य नारायण कथा) ६१
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमोव्याख्या) ५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्या मार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिग्रर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नेमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
पं० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म् नमस्ते स्वागतम् गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

महर्षि दयानन्द का सुललित, सुमधुर, भावपूर्ण, श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

अनेकों चित्रों से सुसज्जित, बढ़िया कागज पर मोटे अक्षरों में, बड़ेसाइज के ६०० पृष्ठों में मुद्रित।

कथा करने तथा शुभ अवसरों पर भेंट देने योग्य अद्वितीय ग्रन्थ। मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को डाक खर्च माफ। १२) अगाऊ आना आवश्यक है।

महात्मा आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

पृष्ठ संख्या २०४ मूल्य १) २५

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन	२)५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्दगायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
भगवान् शंकर और दयानन्द	)५०
सत्यनारायण व्रतकथा	)६२

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

जनवरी	१९६२
पौष	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	६

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

वेदसुधा

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः । आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ ऋ० १० । १८ । २

(मृत्योः पदं योपयन्त) अपने ऊपर आये हुए मृत्यु के पांव को पुरुषार्थ से परे ढकेलते हुए, (द्राघीयः आयुः) अपनो दीर्घ आयु को (प्रतरं) अधिक दीर्घ बनाकर (दधानाः) धारण करके (यदा एत) जब तुम सब चलोगे, तब (प्रजया धनेन) प्रजा और धन के साथ (अप्यायमानाः) अभ्युदय को प्राप्त होते हुए (शुद्धाः) बाहर से शुद्ध, (पूताः) अन्दर से पवित्र और (यज्ञियासः) पूजनीय (भवत) बनोगे।

हर एक प्राणी पर तथा हर एक पदार्थ पर मृत्यु का पांव रखा रहता है। मनुष्य ही उसको परे ढकेल देता है, अन्य प्राणियों में से कोई भी ऐसा नहीं है, कि जो इस प्रकार का पुरुषार्थ कर सकता है। सदाचार से अपनी आयु बढ़ जाती तथा दुराचार से घट जाती है, यह नियम ध्यान में रख कर हर एक मनुष्य को अपनी आयु बढ़ाने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

गोविन्दराम हासानन्द स्मृतिग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बनिये।

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरम्भ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

( ) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होंगी। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २॥) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

१९६२ का महर्षि दयानन्द का
६ रंगा चित्र
बीच में गायत्री मन्त्र दोनों ओर
आर्य समाज के दस नियम
नीचे हिन्दी में १९६२
की तारीखें, एक
का मूल्य ॥)
दर्जन ४)
डाकखर्च पृथक।

आर्यन कैलेन्डर कार्पोरेशन
नईसड़क दिल्ली।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादकीय टिप्पणियां

—***—

गोरखपुर और गौतमपुरा

२५ से २८ नवम्बर तक आर्य समाज गोरखपुर का ६३ वां वार्षिकोत्सव था। मुझे भी आमन्त्रित किया गया था। मैं २५ को लगभग ४ बजे गोरखपुर पहुँचा। पाठकों की जानकारी के लिये वहां की कुछ झलकियां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गीता प्रेस में अत्याचार:—गीता प्रेस बहुत बड़ी धार्मिक संस्था मानी जाती है। गीता प्रेस में लगभग २८ सिलण्डर मशीनें हैं। ८-१० ट्रेडल हैं। दो कटिंग और एक फोल्डिंग मशीन है। ब्लाक छापने की मशीनें पृथक् हैं। लगभग ८५० कर्मचारी कार्य करते हैं। जिस दिन मैं पहुँचा तो कर्मचारियों का एक जलूस निकल रहा था जिस में—"धर्म के नाम पर होने वाला यह पाखण्ड और अत्याचार बन्द करो," गीता और रामायण के नाम पर लूटना बन्द करो" इस प्रकार के नारे लग रहे थे। खोज करने पर पता लगा कि सारे ही कर्मचारी बड़े असन्तुष्ट हैं। आज इस मंहगाई के जमाने में ३०, ३० रुपये पर लोगों को नौकर रखा हुआ है। जब कि उसी पद पर मारवाड़ी व्यक्ति को ७० तथा ८० रुपया दिया जाता है। एक ओर प्रतिवर्ष प्रेस में घाटा दिखाया जाता है दूसरी ओर नई नई कोठियां बनती हैं। इन कोठियों का पैसा कहां से आता है। आज गीता प्रेस का साहित्य बहुत सस्ता समझा जाता है जितना वह सस्ता है उतना ही निरर्थक भी। इनके साहित्य की अपेक्षा तो देव समाजियों का साहित्य बहुत सस्ता है। गीता और रामायण अवश्य सस्ते हैं और उसी की आड़ में ये लोग जनता को लूट रहे हैं। बहुत हो चुका अब धर्म के नाम पर लूटना बन्द करो।

श्री पं० जानकी नाथ जी शर्मा से एक भेंट—देहली से प्रस्थान करते समय श्री पं० भगवद्दत्त जी ने भारतवर्ष का इतिहास शर्मा जी को पहुंचानने के लिये दे दिया था। अतः गीता उद्यान में जाकर मैं शर्मा जी से मिला। एक डेढ़ घण्टे तक वार्तालाप होता रहा। शर्मा जी यद्यपि सनातन धर्मी हैं परन्तु आर्य समाज की गतिविधियों और व्यक्तियों से भली भांति परिचित हैं। आर्य जगत की पत्र पत्रिकाओं का भी अवलोकन करते हैं। व्यक्तियों में श्री पं० भगवद्दत्त जी और युधिष्ठर जी मीमांसक पर आप की विशेष श्रद्धा है और पत्रों में आप वेदवाणी तथा वेद प्रकाश को सर्व श्रेष्ठ समझते हैं।

डी० बी० कालिज में प्रदर्शन:—श्री पं० सुरेश चन्द्र जी वेदालंकार एम० ए० गोरखपुर में ही निवास करते हैं और डी० बी० कालिज में प्राध्यापक कराते हैं। आपने अपने कालिज में मेरा योगासनों का प्रदर्शन रखाया। प्रदर्शन केवल एक घण्टे तक चला। विद्यार्थियों ने बहुत ही पसन्द किया। बहुत से युवक तो काफी दूर तक रिक्षा के साथ चलते हुए शंका समाधान करते रहे। अध्यापक और छात्र वर्ग दोनों की इच्छा थी कि मैं दूसरे दिन भी कालिज में जाऊं परन्तु कार्यक्रम बन न सका।

एक युवक की शंका समाधान:—श्री हनुमान प्रसाद गुप्त एक ऐसे युवक हैं जिन्होंने निरन्तर

स्वाध्याय से आर्य विचार धारा को ग्रहण किया है। पहले आप हनुमान चालीसा का पाठ करते रहे फिर दुर्गा सप्तशती का। इनके पश्चात आप को सत्यार्थ प्रकाश मिल गया और आप की विचार धारा बिल्कुल ही परिवर्तित हो गई। आप को यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में कुछ शंकाएं थी। आप ने अनेक व्यक्तियों से पूछताछ भी की परन्तु आप का समाधान नहीं हुआ। एक दिन आप लगभग दो ढाई घण्टे बैठकर वार्तालाप करते रहे अन्त में आप ने कहा कि मेरी शंका का समाधान हो गया। और किसी को कोई लाभ हुआ हो या नहीं कम से कम एक व्यक्ति की शंका का समाधान तो हुआ अतः मैं तो वहां जाना सार्थक समझता हूँ।

आर्य समाज और श्रद्धाः—कुछ लोगों का विचार है कि आर्य समाज में श्रद्धा नहीं परन्तु मैं इस विचार को भ्रामक मानता हूँ। मैं तो गोरखपुर और गौतमपुरा दोनों स्थानों पर और इस के अतिरिक्त भी जहां जहाँ गया हूँ और जाता हूँ श्रद्धा उमड़ती देखता हूँ। डाक्टर इञ्जीनियर और धनिक लोग भोजन कराने ले जाते हैं बड़ी श्रद्धापूर्वक भोजन खिलाते हैं आर्य समाज के लिये सहस्रों का दान भी देते हैं अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि आर्यों में श्रद्धा नहीं है?

गौतम पुराः—कुख्यात महाब्राह्मण माधवाचार्य शास्त्री पिछले वर्ष गीता जयन्ती पर गौतमपुरा गये थे और अपने दूषित स्वभावानुसार आर्य समाज और महर्षि दयानन्द के प्रति खूब विष वमन किया। इस वर्ष आप के दोनों लड़के वहां गये थे। अपने बाप की भांति उन्होंने भी वैसा ही किया। आर्य समाज के अधिकारियों ने भी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर प्रचार का आयोजन किया। मैं भी उसमें सम्मलित हुआ। यद्यपि आर्य समाज छोटी है परन्तु अधिकारियों का उत्साह और श्रद्धा वस्तुतः सराहने योग्य है।

सभा स्थल पर सारे ही व्याख्यान मण्डनात्मक निर्माणात्मक एवं आध्यात्मिक ही हुए परन्तु अंतिम दिन स्टेशन पर जब मन्त्री श्री इन्दौरी लाल जी ने मुझे माधवाचार्य का पिछले वर्ष का नोट किया हुआ व्याख्यान दिया तो फिर मैंने भी वहां उपस्थित २५-३० व्यक्तियों के समुदाय में पुराण और स्मृतियों के आधार पर श्राद्ध और मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद आदि की धज्जियां उड़ा दी।

श्री भगवती प्रसाद मिश्र जी से साक्षात्कारः—रतलाम से गौतमपुरा के लिये गाड़ी बदलनी पड़ती है। गाड़ी छुटने में ५ घण्टे की देर थी। अतः समय व्यतीत करने के लिये मैं श्री भगवती प्रसाद जी से मिलने चला गया। आप रतलाम में सब पुलिस इन्सपैक्टर है। बहुत ही मिलनसार और श्रद्धालु आर्य सज्जन हैं। रात्रि को भोजन आप के ही घर पर किया। गाड़ी का समय होने पर आप स्वयं मुझे छोड़ने गाड़ी तक आये और जब तक गाड़ी के चलने का समय नहीं हुआ आप वहीं बैठे वार्तालाप करते रहे। पुलिस विभाग जो बहुत ही रूखा समझा जाता है उस विभाग में श्री मिश्र जी स्निग्धता और प्रेम की मूर्ति ही लगते हैं। ऐसे व्यक्तियों के जीवनों, इनके प्रेम और श्रद्धा को देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि आर्य समाज में श्रद्धा नहीं है।

महर्षि दयानन्द पर आक्षेपः—पाठक इस विषय में जानने को बहुत उत्सुक होंगे परन्तु अब बहुत अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। पुस्तक छपनी प्रारम्भ हो चुकी है। जब तक वेद प्रकाश आप के हाथ में पहुँचेगा तब तक आधी छप जायेगी। १५ जनवरी तक सम्पूर्ण पुस्तक छप जायेगी और जनवरी मास के अन्त तक सब को पुस्तकें भेज दी जायेंगी। जिन व्यक्तियों ने एक एक पुस्तक के पैसे भेजे हैं उन्हें पुस्तक ८ पैसे का टिकट लगा कर बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। इस प्रकार पुस्तक बैरंग हो जायेगी और खोयेगी नहीं। पुस्तक हमारी आशा से काफी बढ़ गई है लगभग २५० पृष्ठ की होगी परन्तु जिन महानुभावों का मूल्य अग्रिम आ चुका है उन्हें हम एक रुपये में ही देंगे। छपने पर पुस्तक का मूल्य २) होगा।

आगामी विशेषांक:—वेद प्रकाश का फरवरी मास का विशेषाँक 'ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासनांक' होगा। इसके लेख आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्री पं० सुरेशचन्द जी वेदालंकार एम० ए० होंगे। विषय तो नाम से ही स्पष्ट है। मित्रवर सुरेश जी ने बड़ी सरल, सुबोध और हृदयग्राही व्याख्या की है। पाठकों को इस अंक से विशेष लाभ होगा।

ग्राहक संख्या:—वेद प्रकाश परिवार के जितने भी सदस्य हैं उन सब को एक-एक ग्राहक संख्या दी हुई है। आपके परिवार का कार्य सुचारू रूप से चल सके इसके लिये आप पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें। इस से हमें सुविधा होगी और आप को उत्तर भी शीघ्र मिलेगा। आशा है कृपालु महानुभाव इस ओर विशेष ध्यान देकर अनुगृहीत करेंगे।

महाभारत प्रकाशन का आयोजन

महाभारत का महत्व तो सर्व विदित है ही। प्रत्येक आर्य की कामना होती है कि मैं भी इस पवित्र ग्रन्थ का पाठ करूं। परन्तु बाजार में संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित जो महाभारत मिलती है उस का मूल्य ६०) है। प्रत्येक व्यक्ति इतना धन खर्च नहीं कर सकता और यदि किसी प्रकार ग्रंथ खरीद भी लिया जाय तो फिर वह अलमारी की शोभा बढ़ाता है ६००० पृष्ठ के ग्रंथ को पढ़ने का समय प्रत्येक व्यक्ति के पास नहीं है। यदि पाठ भी किया जाये तो बहुत सी बातें ऐसी परस्पर विरुद्ध आती हैं कि शंकाओं का एक बवण्डर खड़ा हो जाता है। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए हमारा विचार एक संक्षिप्त महाभारत निकालने का है। इस में लगभग १० हजार श्लोक और एक सहस्र पृष्ठ होंगे। यह प्रकाशन तीन वर्ष में होगा। एक भाग का मूल्य ५) होगा। बढ़िया कागज और उत्तम छपाई इस की विशेषता होगी। इसका संकलन, सम्पादन और अनुवाद इन पंक्तियों का लेखक स्वयं करेगा। वेद प्रकाश परिवार के सदस्य और जिन व्यक्तियों ने 'वेद शतकों' को पढ़ा है वे जानते हैं मैं कैसा सेवक हूँ। महाभारत हम 'वेदप्रकाश' के विशेषांक के रूप में निकालना चाहते हैं। प्रतिवर्ष वर्तमान 'वे.प्रकाश' साइज के बढ़िया कागज पर ३३२ पृष्ठ निकालने का विचार है। वेद प्रकाश के ग्राहकों को विशेषांक सहित वर्ष भर का मूल्य ६) देना होगा। इसमें ८ आठ आने रजिस्ट्री के भी सम्मलित हैं। पाठक गण! यदि आपको यह योजना पसन्द हो तो आज ही एक कार्ड लिखकर सूचित कीजिये। यदि ७००-८०० ग्राहकों की सहमति भी आ गई तो हम सन् ६२ में महाभारत का प्रथम खण्ड आप को भेंट कर सकेंगे। आप के उत्तर की प्रतीक्षा है।

आर्य युवक सम्मेलन:—मित्रवर श्री भवानीलाल जी भारतीय एम० ए० अजमेर के ऋषि मेले के पश्चात् श्री पं० आनन्द प्रिय जी बड़ौदा वालों से मिले थे। उनकी इच्छा है शिवरात्रि के बोध पर्व पर एक अखिल भारतवर्षीय आर्य युवक सम्मेलन आयोजन किया जाये। दल, गुट और पार्टी बाजी से रहित, ऋषि दयानन्द में अनन्य भक्ति रखने वाले आर्य सिद्धान्तों की रक्षा के लिये मर मिटने वाले वैदिक धर्म प्रचार और प्रसार की कामना वाले स्वावलम्बी कुछ युवक एक स्थान पर इकट्ठे होकर भविष्य के लिए कोई महत्वपूर्ण योजना बनाएं और इस युवक सम्मेलन का भी ऐसा ही उद्देश्य हो तो मैं इसका हृदय से स्वागत करता हूँ।

मुझे वृद्ध महानुभावों से न कोई चिड़ है न द्वेष परन्तु युवक सम्मेलन में तो युवक ही हों। इस दृष्टि से मैं समझता हूँ श्री भवानी लाल जी भारतीय, श्री शिव पूजन सिंह जी, श्री सुरेश चन्द्र जी वेदालंकार, श्री पुरुषोत्तम लाल जी, श्री वेद श्रवा जी श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु, श्री ईश्वरी प्रसाद जी प्रेम आदि महानुभावों को अवश्य आमन्त्रित किया जाये। इन युवकों के मार्ग दर्शन के लिए श्री पं० भगवद्दत्त जी का सहयोग प्राप्त किया जा सके तो बहुत ही उत्तम रहेगा।

यज्ञ चिकित्सा

* डा० सोमराज के० आर्य

जुलाई १९६१ वेद प्रकाश के अंक में रोग उत्पति के तीन कारण वर्णन किये गये थे। जिस में से पहले कारण का वर्णन हो चुका है।

रोग उत्पति का कारण क्रिमि (Germs) तथा जीवाणु होते हैं। यह कीटाणु वायु मण्डल में हर समय हर जगह मौजूद रहते हैं और सूक्ष्म होने के कारण वे दृष्टिगोचर नहीं होते। यह कीटाणु हमारे शरीर में श्वास लेने, भोजन करने, पानी पीने तथा त्वचा के छिद्रों द्वारा प्रवेश करते हैं। और शरीर में कई रोगों का कारण बन जाते हैं। यह एक प्राकृतिक नियम है कि शरीर में जब भी कोई अन्य जीवाणु प्रवश करते हैं तो हमारे अंदर जो रोग नाशक शक्ति है, उन जीवाणुओं को हर प्रकार से नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। अगर भीतरी जीवाणु या अन्य वस्तुएं ठीक प्रकार से बाहर नहीं आ लेती तो कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये हमें उन जीवाणुओं से बचने के लिये शुद्ध वायु, भोजन तथा पानी का ठीक प्रकार प्रयोग करना चाहिए और हवन यज्ञ द्वारा वायु मण्डल में मौजूद कीटाणुओं को नष्ट करना चाहिये। ब्रह्मचर्य द्वारा अपनी रोग नाशक शक्ति को दृढ़ बनाते हुए किसी भी अप्राकृतिक वस्तु को शरीर में प्रविष्ट न होने देना चाहिये।

वेद जो कि सब विद्याओं का एक मात्र भण्डार हैं उन में क्रिमि नष्ट करने के लिए उदय होते हुये सूर्य, अग्नि, जल, विद्युत और औषधियों को लाभ कारी माना गया है। इसलिये मनुष्य को ब्रह्माहूर्त में उठकर शौचादि से निवृत होकर उदय होते हुए सूर्य के सन्मुख बैठकर हवन आदि करना चाहिये। जिस से उसके शरीर के सब कीटाणु नष्ट हो जाएं। वायु मण्डल को शुद्ध रखने के लिए और शरीर में प्रविष्ट हुए कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए जो सामग्री, वेद प्रकाश जुलाई १९६१ में दी गई है उसमें कुष्ट और कपूर दो-दो भाग मिलाकर आहुति देनी चाहिए।

दो सनातन सत्तायें

लेखक—श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीव और प्रकृति अनादि हैं" इस विषय को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिन का उत्तर इस्लाम के पास भी नहीं है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) रुपया।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

[अक्तूबर मास के अंक का शेषांश]

नव ग्रह पूजा समीक्षा

❀ श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री दिल्ली

अथ—हे (बृहस्पते) वेदों के पति (ऋतप्रजात) सत्य से प्रकट होने वाले परमात्मन् ! (अस्मासु) हम में (तत चित्रम् द्रविणम्) वह नाना प्रकार का धन (धेहि) धारण करो। (यत्) जो (अर्यः) सब का स्वामी ईश्वर (अति अर्हात्) अतिशय करके जिस धन को पूजनीय समझा है अर्थात् ईश्वर की दृष्टि में जो धन पूजनीय है (यत्) जो धन (जनेषु) मनुष्यों में (द्युमत्) कान्तयुक्त होकर (विभाति) प्रकाशित होता है। (क्रतुमत्) जिस धन में यज्ञ विद्यमान हैं। जो धन (शवसः) बल से अर्थात् परिश्रम से (दीदयत्) प्राप्त होता है।

समीक्षा

आवाहन और प्रार्थना के श्लोकों में बृहस्पति नाम ग्रह को जो जड़ है उसे बुद्धि श्रेष्ठ, देवताओं का पुरोहित, चार भुजाओं वाला, हाथ में कमंडुल लिये हुये लिखा है जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है।

मन्त्र में बृहस्पति पद के आने से, इसे ग्रह के साथ जोड़ दिया है। सब भाष्यकारों ने बृहस्पति का अर्थ वेदों का पति लिखा है। उवट और महीधर ने भी यही अर्थ माना है। क्या यह ग्रह वेदों का पति हैं ? क्या इस ग्रह से धन मांगना बुद्धिपूर्वक है ? ईश्वर परक मन्त्र को जड़ ग्रह के साथ जोड़ना वेद के साथ उपहास करना है।

६—शुक्र ग्रह

छटा ग्रह शुक्र है जिसका आवाहन इस श्लोक किया जाता है।

आवाहन

प्रविष्टं जठरे शंभोर्निष्क्रान्तं पुनरक्षतम् ।
पुरोहितं च दैत्यानां शुक्रमावाहयाम्यहम् ॥

अर्थ—जो शुक्र शंभु के पेट में प्रविष्ट होकर, बिना किसी क्षत (चोट) के बाहर निकल आया, जो दैत्यों का पुरोति है, उस शुक्र का मैं आवाहन करता हूँ।

आवाहन के अनन्तर वेद मन्त्र द्वारा ग्रह की पूजा की जाती है और उसे नमस्कार करके प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना

श्वेतांबरः श्वेतवपुः किरीटी
चतुर्भुजो दैत्यगुरुः प्रशान्तः ।
तथाक्षसूत्रं च कमंडलुं च
दंडं च बिभ्रद्वरदोऽस्तु मह्यम् ॥

अर्थ—श्वेत वस्त्र धारी, श्वेत शरीर वाला, मुकुटधारी, शान्त स्वभाव वाला, दैत्यों का गुरु जिसने हाथ में दडं और कमंडलु पकड़ा हुआ है, वह अक्षसूत्र धारी मेरे लिये वरदाता हो।

मन्त्र

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्राह्मणा
व्यपिबत्क्षत्र पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियम् विपानꣳ
शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयाऽमृतं मधु ॥
॥ यजु० १९।७५ ॥

अर्थ—(अन्नात्परिस्रुतः) सोमवल्ली रूप अन्न से निचोड़ा हुआ (सोमं रसं) सोम रस को (प्रजापतिः) प्रजाओं का रक्षक वीर सेनापति (ब्रह्मणा) ज्ञानपूर्वक (व्यपिबत्) पीता है (क्षत्रं पयः) क्षात्र रूप बल पराक्रम देने वाले, दुग्धवत् शुक्ल सोम रस को पीता है। (ऋतेन सत्यं) ऋत अर्थात् प्राकृत नियम से (सत्यं) यह सत्य है कि (अंधसः) सोमवल्ली रूप अन्न से उत्पन्न (शुक्रं) शुद्ध रस का (विपानं) विशेष करके पान करना (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य उत्पादक योद्धा को (इन्द्रियं) वीर्यप्रद है। (इदं) यह सोम रस (पयः) शुक्ल (अमृतं) अमृत के तुल्य (मधु) मीठा और लाभकारी है।

समीक्षा

इस मन्त्र में शुक्र सोमवल्ली औषधि का विशेषण है जिस का अर्थ शुद्ध है। महीधर उवट ने भी इसका अर्थ शुद्ध किया है और सोमरस का विशेषण माना है। शुक्र पद यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ७२, ७३, ७४ तथा ७५ में चार बार आया है।

इन मन्त्रों में कहीं भी ग्रह का वर्णन नहीं। न

जाने ग्रह पूजकों ने खेंचतान के साथ इस मन्त्र में आये हुये शुक्र का ग्रह के साथ कैसे सम्बन्ध जोड़ दिया है। आवाहन के श्लोक में महादेव का पेट में जा कर फिर बिना किसी चोट के बाहर आये हुये माना है, शुक्र ग्रह को दंड कमंडलु धारी लिख कर दैत्यों का पुरोहित माना है जो बुद्धि ग्राह्य नहीं।

७. शनि ग्रह

ग्रहों में सातवां शनि ग्रह माना हैं। उसके आवाहन के लिये यह श्लोक है।

आवाहन

प्रदीप्तं वह्निवर्णाभं भिन्नांजनसमप्रभम्।
छायामार्तंडसम्भूतं शनिमावाहयाम्यहम्॥

अर्थ—प्रदीप्त अग्नि के तुल्य जिसकी आभा है, तोड़े हुये अंजन के तुल्य जिसकी प्रभा है, जो सूर्य की छाया से उत्पन्न हुआ है ऐसे शनिका मैं आवाहन करता हूं। इस आवाहन के अनन्तर शनैश्चर ग्रह की मन्त्र से पूजा की जाती है और इसके पश्चात् नमस्कार करके प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना

नीलद्युतिः शूलधरः किरीटी
गृध्रस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान्।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तः
सदास्तु मह्यं स वरप्रदो हि॥

अर्थ—नीली शोभा वाला, त्रिशूलधारी, मुकुट पहने हुये, गृध्र पक्षी पर बैठा हुआ, भयंकर, धनुषधारी, चार भुजाओं वाला, शान्त स्वरूप वाला, सूर्य का पुत्र शनि ग्रह मेरे लिये सदा वरदान वाला हो॥

मन्त्र

शनि पूजा के लिये यह मन्त्र पढ़ा जाता है—

शंन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तुनः॥ यजु० ३६।१२॥

अर्थ १—(देवीः आपः) दिव्यगुण युक्त सर्वव्यापक ईश्वर (अभीष्टये) इष्टानन्द के लिये तथा (पीतये) पूर्णानन्द की तृप्ति के लिये (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हो (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु नः) हम पर वृष्टि करे।

२—(देवीः) दिव्यगुणयुक्त (आपः) जल (शं नः) हमारे लिये कल्याणकारी (भवन्तु) होवें। (अभीष्टये) इष्ट सुख सिद्धि के लिये तथा (पीतये) पीने के लिये (शंयोः) सुख की (नः) हम पर (अभिस्रवन्तु) वृष्टि करे।

३—उवट और महीधर का अर्थ—(देवीः आपः) दिव्यगुणयुक्त जल हमारी (अभीष्टये) स्नान के लिये तथा (पीतये) पीने के लिये (शं भवन्तु) सुख रूप हों। यह जल (शं) रोगों की शान्ति के लिये तथा (योः) भयों को पृथक् करने के लिये (नः अभिस्रवन्तु) हम पर वृष्टि करे।

समीक्षा

यजुर्वेद के इस मन्त्र के हम ने तीन अर्थ दिये हैं। दो अर्थ जिन में एक अध्यात्मिक तथा दूसरा अधिदैविक ये दोनों स्वामी दयानन्द सरस्वती के अर्थ हैं। तीसरा अर्थ महीधर और उवट का है। यह मन्त्र जल परक है। पता नहीं कि शनैश्चर ग्रह के साथ पौराणिकों ने इस मन्त्र को क्यों जोड़ दिया है। प्रतीत होता है कि वेद में आये "शं नो" पद से शनि ग्रह का भ्रम हुआ है। वेद में शं नः दो पृथक् पद हैं जिस का अर्थ कल्याण हो हमारे लिये। शनि एक पद है जिस का इस के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। प्रार्थना में शूलधारी, चतुर्भुज, हाथ में धनुष पकड़े हुए, गिद्ध की सवारी वाले शनिग्रह से वर मांगना बालकपन है।

८. राहुग्रह

आठवां ग्रह राहु है जिसका आवाहन इस श्लोक से किया जाता है।

आवाहन

चक्रेणछिन्नमूर्धानं विष्णुनाभीनिरीक्षितम्।
सैंहिकेयं महाकायं राहुमावाहयाम्यहम्॥

अर्थ—चक्र से जिस का सिर कटा हुआ है, विष्णु की नाभि से जो निरीक्षित है। सिंह के आधार पर जो रहने वाला है, ऐसे महाकाय राहु का मैं आवाहन करता हूं। इस श्लोक से आवाहन करके वेद मन्त्र द्वारा राहु की पूजा की जाती है और उसे नमस्कार किया जाता है। इसके पश्चात् इस श्लोक से प्रार्थना की जाती।

प्रार्थना

नीलांबरो नीलवपुः किरीटी
करालवक्त्रः करवाल शूली।
चतुर्भुजश्चर्मधरश्च राहुः
सिंहासनस्थः स वरप्रदः स्यात् ॥

अर्थ—नीले वस्त्र वाला, नीले शरीर वाला, मुकुटधारी, भयंकर मुंहवाला, जिस के हाथ में शूल तथा चमड़े की ढाल है। वह सिंह की सवारी वाला चतुर्भुज राहु वर दाता हो।

मन्त्र

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठयाऽवृता ॥ यजु० २७।३९ ॥

अर्थ—(चित्रः) पूजनीय इन्द्र—परमेश्वर (कया) किस (ऊत्या) रक्षण वा दर्पण से (नः) हमारा (सखा) सहायक (सदा वृधः) सदा वृद्धि करने वाला और (कया) किस (शचिष्ठया) अतिशय शुभ कर्म से (आभुवत) हो।

भावार्थ—किस तर्पण और शुभ कर्मों से हम युक्त हों जिससे वह भगवान् सदा हमारी वृद्धि और सहायता करने वाला हो।

समीक्षा

इस मन्त्र में राहु पद ही नहीं। न जाने राहु ग्रह के साथ इसे क्यों जोड़ दिया है। इस मन्त्र का देवता इन्द्र है और उसी की इसमें महिमा है। यह ऊटपटांग सम्बन्ध हमारी समझ में नहीं आता। प्रार्थना और आवाहन में जो इसका वर्णन किया गया है वह भी बुद्धि ग्राह्य नहीं।

९. केतु

ग्रहों में नवम अन्तिम ग्रह केतु है। उस का आवाहन इस श्लोक से किया जाता है।

आवाहन

ब्राह्मणः कुलसंभूतं दृष्टं लोक भयावहम्।
शिभिनंतु महात्मान केतुमावाहयाम्यहम् ॥

अर्थ—प्रसिद्ध कुलोत्पन्न लोक के भय को दूर करने वाले महात्मा केतु का मैं आवाहन करता हूं। आवाहन के अनन्तर केतु की पूजा की जाती है। इस के पश्चात् उस से प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना

धूम्रो द्विबाहुर्वरदो गदाभृत्,
गृध्रासनस्थो विकृतासनश्च।
किरीट केयूरविभूषितांबरः
सदास्तु मे केतुगणः प्रशान्तः ॥

अर्थ—धूम्र वर्ण, गदाधारी, गीद्ध की सवारी वाले, मुकुट तथा भुज बंध भूषणों से विभूषित है वस्त्र जिस का ऐसे दो भुजाओं वाला शान्तस्वरूप केतु मेरे लिये वर दाता हो।

इस प्रार्थना के पूर्व इस मन्त्र से पूजा की जाती है।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथा ॥ यजुः० २९। ३६ ॥

अर्थ—हे ईश्वर ! (उषद्भिः) यज्ञ करने वाले यजमानों के प्रति तुम (समजायथ) प्रकट होते हो (अकेतवेमर्या) अज्ञानी मनुष्य के लिये (केतुं) ज्ञान को और (अपेशसे) निर्धन के लिये (पेशः) धन आप ही देने वाले हैं।

समीक्षा

यह मन्त्र अग्नि देवता परक है। अग्नि के अर्थ ईश्वर और भौतिक अग्नि हैं। महीधर और उवट ने यहां पर अग्नि से भौतिक अग्नि की प्रार्थना लिखी है। आचार्य दयानन्द अग्नि से प्रकाश स्वरूप परमेश्वर का ग्रहण करते हैं। केतु का अर्थ सब भाष्यकारों ने ज्ञान किया है। यास्क कृत निघन्टु ३।९ में केतु को प्रज्ञान के नामों में लिखा है। जिस केतु का अर्थ ज्ञान हो उस को यहां केतु ग्रह के साथ जोड़ना वेद और ऋषियों के सर्वथा विरुद्ध है। यदि यहां केतु पद से केतु ग्रह माना जावे तो वेद में 'अकेतवे' अर्थात् जो केतु नहीं उस का क्या अर्थ होगा ? यदि पौराणिक अर्थ माना जावे तो केतु के साथ अकेतु एक दसवां ग्रह और मानना चाहिए। केतु का ज्ञानार्थ मानने से स्पष्ट है कि परमात्मा अकेतु अर्थात् अज्ञानी को ज्ञान देते हैं। इस लिये केतु पद के आने से इस मन्त्र को केतु ग्रह पूजा में लगाना सर्वथा असंगत है।

इस छोटे से लेख द्वारा पाठकों को विदित हो गया होगा कि यह नवग्रह पूजा कल्पित और वेद विरुद्ध है। सब शुभ कामों के अवसर पर शान्ति पाठ तथा स्वस्ति पाठ करना चाहिये और इस वेद विरुद्ध नव ग्रह पूजा को बन्द करना चाहिये।

॥ इति ॥

विज्ञान का स्रोत वेद

❀ वि० भारतेन्दु "विमल" व्याकरणोपाध्याय आर्ष
गुरुकुल एटा उ० प्र०

हमारा यह कथन है कि आज के युग में जितना भी हम विज्ञान का चमत्कारिक दृश्य देखते हैं वह सभी कुछ वैदिक मतावलम्बी सच्छास्त्रों में सुचारु रूपेण वर्णित है। भौतिक विज्ञान का सम्पूर्ण स्वरूप परम पिता परमात्मा की अमृतमयी अमर कविता वेदवाणी में निहित है। इस बात को सुन कर कभी २ स्वयं हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि विज्ञान की वह झलक क्यों नहीं हमारे समक्ष उपस्थित होती। कुछ व्यक्ति भी हम से बड़े ताने मारते हुए यही बात कहते हुए सुने जाते हैं कि यदि यह विज्ञान वेदों में निहित है तो क्यों न वैदिक आधार लेते हुए कोई प्रयोग सफलीभूत होवे। किन्तु वस्तुतः उन्होंने इस विषय को अच्छी प्रकार समझने का प्रयत्न नहीं किया। जहां तक मैंने विचार किया है वहां तक तो यही समझ में आ सका है कि इस विषय में इतरेतराश्रय दोष है। क्योंकि वेद की सब से महान् विशेषता यही स्वीकार की जाती है कि वेद में प्रत्येक ऋचा के द्वारा किसी एक विषय का ही प्रतिपादन न करके उस ऋचा के द्वारा अनन्त ज्ञान प्रदान किया है। प्रत्येक मन्त्र का एक अर्थ न होकर अनेक अर्थ होते हैं। प्रत्येक शब्द के गुणानुसार अनेक अर्थ होते हैं। वेद के अन्दर रूढ़ि शब्द न होकर यौगिक शब्दों का उल्लेख है। किसी भी शब्द का कोई भी अर्थ धातु प्रत्यय और प्रकरण को पूर्णतया दृष्टि में रखते हुए कर सकते हैं। अतएव वेद मन्त्र का विज्ञान परक अर्थ भी हो सकता है। किन्तु कारण यही है कि इसमें इतरेतराश्रय दोष आ जाता है। क्यों कि किसी बात को हम जानते होंगे तब तो उसका यह अर्थ कर सकते हैं किन्तु यदि हम उस बात से अनभिज्ञ हैं, अतः वेद मन्त्रों के द्वारा प्रयोग सफल करने की विधि को नहीं बतला सकते। हां! हमारा यह निश्चय है कि कोई भी वैज्ञानिक विद्वान् जो स्वयं कोई प्रयोग सफल कर सकता है वह वेद मन्त्रों की संगति उस विधान के साथ लगा सकता है। यह एक अत्यन्त विचारणीय विषय है। पाठक वृन्द! वेदों की ऋचाओं में बीज तो हमें दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक विषय का व्याख्यान मिलता है। अतएव मैं आपको अपनी सामर्थ्यानुसार वेद की ऋचाओं में वर्णित विज्ञान के स्वरूप का दिग्दर्शन कराऊंगा। सर्व प्रथम इस बार आपके समक्ष उन दो चार ऋचाओं को प्रस्तुत करूंगा जिन में कि यानों के विषय का थोड़ा सा वर्णन मिलता है। सारे विषय का प्रतिपादन इसलिये नहीं हो सकता क्योंकि वेद ज्ञान अनन्त है। अतः मैं आपके समक्ष क्रमशः एक २ विषय का दिग्दर्शन कराऊंगा जिस से आप को इन ऋचाओं पर विचार करने का अवसर भी प्राप्त होता चले। अब आप इन मन्त्रों पर विचार करेंगे ऐसी आशा है। इस बार भी इस विषय के कुछ ही मन्त्र प्रस्तुत कर सकूंगा।

एक मन्त्र है:—

न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।
परि द्यामन्यदीयते ॥ ऋ. १ सू. ३० । १९ ॥

शब्दार्थः—(अघ्न्यस्य) विनाश न होने योग्य (रथस्य) रथ के (मूर्धनि) ऊपर (अन्यद्) एक और (चक्रं) चक्र को (नि+येमथुः) लगाओ [जिससे वह] (द्याम्परि) आकाश में (ईयते) चला जावे। यहां पर व्यत्ययोबहुलम्" इस पाणिनीय नियम के अनुसार लिङ् के स्थान में लट् लकार विहित है।

इस मन्त्र पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि हैलीकोप्टर वायुयान का वर्णन वेद में मिलता है। इस मन्त्र में वेद स्पष्ट आदेश दे रहा है कि "चक्र को लगाओ"।

इसी प्रकार यह मन्त्र है:—

त्रयः पवयो मधु वाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।

त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथ स्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ ऋ० १ । ३४ । २ ॥

अर्थः—(मधुवाहने रथे) वेग को धारण करने वाले सुख प्रद रथ में (त्रयः पवयः) तीन पङ्खे या तीन यन्त्र हों और उसमें (विश्व इत्) सभी ही (सोमस्य) बल वायु की (वेनाम्) शक्ति को (विदुः) विद्वान् बतलाते हैं। (उसमें) (प्रारभे) आधार के लिये (त्रयः) तीन (स्कम्भासः) खम्भे या दण्ड (स्कभितासः) लगाये हों। (उससे) (अश्विनौ) दोनों विद्वान् स्त्री पुरुष (त्रिर्दिवा) तीन बार दिन में (त्रिनंक्तम्) तीन बार रात्रि में (याथः) जाते हैं।

इस मन्त्र में भी यान में तीन पङ्खे उनके आधार के लिये तीन दण्ड लगाने का व यान के यन्त्रों में जो शक्ति है वह जलवायु की ही है इत्यादि बातों का स्पष्ट उपदेश किया है। इसी प्रकार यह मन्त्र है:—

क्रीडं वः शर्धो मारुतमनर्वाणम् रथेशुभम् ।

कण्वा अभि प्रगायत ॥ ऋ० १ । ३७ । १ ॥

अर्थः—(कण्वाः !) तेजस्वी वीर पुरुषो ! (वः) आप का (मारुतम्) वायु से उत्पन्न हुआ (शर्धः) बल (जिसमें) (अनर्वाणम्) अश्व नहीं लगता (और जो) (रथेशुभम्) रथ में शोभा देता है (उसका) (अभिप्रगायत) उपदेश करो।

इस मन्त्र में भी स्पष्ट वर्णन है कि रथ की इस प्रकार की भी कोई शक्ति है जिसके द्वारा बिना अश्वों के भी रथों को चलाया जाता है। इस मन्त्र से वायुयान की पुष्टि के साथ २ अन्य मोटर रेल आदि यानों की सिद्धि होती है।

इसी प्रकार:—

तक्षन्रथं सुवृतम्० ॥ ऋ० १ सू० १११ मन्त्र १ ॥

में भी:—

अर्थः—(विप्रनापसः) वैज्ञानिक (सुवृतंरथम्) सुख से जाने वाले रथ को (तक्षन्) बनावें (वेही) (वृषण्वसू) पुर्जों को धारण करने वाले (इन्द्रवाहा) बिजली को धारण करने वाले (हरी) वेगवान् दो यन्त्रों को (तक्षन्) बनावें।

इस मन्त्र से भी जहां यह स्पष्ट होता है कि अन्य पुर्जों के लगाने के लिये उपदेश है वहां यह भी स्पष्ट है कि यान में जो दो विशेष यन्त्र हैं वे ऐसे पुर्जों को भी धारण किये हैं जो कि उन यन्त्रों के लिये विद्युत प्रदान करता है। जिस से कि यान में गति है। इसी प्रकार से ऋ० १ सू० ११८ प्र० १७ मं० १ में वर्णन आता है कि (श्येनपत्वा-वातंरहाः मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो रथः अर्वाङ्-आयातु) अर्थात् बाज के समान गति वाला, वायु के समान तेज चलने वाला एवं मन की गति से भी तेज चलने वाला यान हमारे प्रति आवे और जावे।

पाठक वृन्द ! आपके समक्ष (यान वर्णन) विषयक २-४ मन्त्र प्रस्तुत किये हैं। इन पर विचार कीजिये। यदि हमने इस कथन को कि वेद ही विज्ञान की खान है पूरा करना है या विश्व के समक्ष उसको कार्यान्वित करके दिखलाना है तो हमें अपन सैकड़ों जीवन लगाने पड़ेंगे। विस्तार भय के कारण से मैं आप के समक्ष अधिक विषय प्रस्तुत नहीं कर सका हूँ यदि प्रभु कृपा हुई तो अग्रिम लेखों में एतद्विषयक विचार प्रस्तुत करने में उद्यत रहूँगा। तत्काल में आप इन्हीं ऋचाओं पर विचार करेंगे, ऐसी आशा है।

यज्ञ चिकित्सा

हवन द्वारा रोगों से छुटकारा

❀ श्री प्रो० ताराचन्द गाजरा एम० ए०

हवन की प्रथा अनेक जातियों तथा स्थानों में प्रचलित है। हिन्दुओं में शुभ कार्य करने के पूर्व हवन करने की प्रथा है। पारसियों को देखो वे तो हैं ही अग्नि पूजक (आतिश परस्त) इनके उपासना स्थानों पर निरन्तर अग्नि जलती रहती है तथा गन्धित पदार्थ उसमें सदा जलते रहते हैं। अनेक मुसलमान फकीर भी अपने डेरों में लोवान इत्यादि जलाते रहते हैं। ईसाईओं के गिरजाघरों में भी सुगन्धित धूप तथा बत्तिओं उपस्थित रहती हैं।

ऋषि दयानन्द ने इस युग में प्राचीन वैदिक सभ्यता तथा धर्म को नये सिरे से जगाते हुए हवन यज्ञ करने पर बहुत जोर दिया है। ऋषि दयानन्द ने हवन के बारे में यह लिखा है "सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्ध वाली हवा और पानी से रोग और रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्ध वाली हवा और पानी से स्वास्थ मिलने और रोग दूर होने से सुख प्राप्त हो है ..। पदार्थ विद्या के जानकारों की राय है कि कोई भी वस्तु नाश नहीं होती केवल रूप में परिवर्तन होता है। जिस स्थान पर होम होता है उससे दूर बैठे हुए मनुष्य की नासिका तक सुगन्ध आती है। यह शक्ति केवल अग्नि में ही है जो प्रत्येक पदार्थ के अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणु कर सकती है और वायु में से दुर्गन्ध वाले पदार्थ को भिन्न भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल शुद्ध वायु को अन्दर लाती है। जो हवन सायं काल किया जाता है उसमें होम किये हुये पदार्थ दूसरे दिन प्रातः तक वायु को शुद्ध रखने के कारण सुखदायक होता है। जो होम अग्नि में प्रातः काल किया जायेगा वह होम की हुई पदार्थ सायंकाल तक वायु मण्डल को शुद्ध रखने के कारण बल, बुद्धि तथा आरोग्य देने वाला होता है।" (सत्यार्थप्रकाश)।

गीता में उल्लेख है कि हवन-यज्ञ द्वारा वर्षा भी होती है।

हवन-यज्ञ प्रथा को भारतीय व्यवहार का एक अङ्ग समझा जाता है। होम करने से स्वास्थ लाभ होता है तथा रोग नाश होते हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिये प्रमाण की आवश्यकता है।

डा० किङ्ग जो कभी मद्रास सरकार के स्वास्थ्य विभाग के इञ्चार्ज थे उन्होंने लिखा है कि "प्लेग" के समय हवन करना अत्यन्त लाभदायक होता है।

एक बार जब मैं बम्बई में था तो मुझे अपने घर शिकारपुर से पत्र आया कि घर के सब प्राणी ज्वर से पीड़ित हैं। मैं उस समय सिन्ध प्रतिनिधि सभा के धन संग्रह के कार्य में जुटा हुआ था इस कारण एकाएक घर लौटना सम्भव न था अतः मैंने बम्बई आर्य समाज के पुरोहित श्री पण्डित-द्विजेन्द्र नाथ की राय से एक हवन सामग्री तैयार की तथा शिकारपुर भेज दी। घर में हवन करना आरम्भ किया तो ज्वर भी धीरे धीरे हटता गया।

श्री प्रभु आश्रित महात्मा टेकचन्द ने अपनी एक छोटी सी पुस्तक में एक हवन सामग्री लिखी है उनके लिखने के अनुसार चेचक के समय काम में लाने से बहुत लाभ होता है।

परन्तु ये बातें इतनी ठोस नहीं है, इस समय जो मानने योग्य बात है तो वह है बरेली के डा०-फुन्दन लाल जी की। जो वर्षों से तपेदिक के रोग का इलाज हवन द्वारा कर रहे हैं। इस समय उन्हें उत्तर प्रदेश की सरकार की ओर से पुरस्कार भी मिला है।

[शेष पृष्ठ १३ पर]

आधुनिक युग एवं अध्यात्मवाद

❀ श्री सूरज प्रकाश जी एम० ए०

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इस में भौतिकवाद को प्रधानता है। प्रत्येक मानव भौतिक एवं सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्न कर रहा है। अपनी समग्र बुद्धि को विज्ञान के प्रसार में लगाकर एवं नवीन वस्तुओं के आविष्कार इत्यादि करके ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देते हुए असाध्य कार्य को भी साध्य करने में व्यस्त है। संसार का बड़े से बड़ा देश एवं राष्ट्र अपनी सम्पूर्ण शक्ति इस कार्य के लिए लगा रहा है कि वह नये नये उपकरणों का आविष्कार करे और अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं सर्वोपरिता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करे। इन्हीं विचारों की झलक हम लोगों को मनुष्य के प्रारम्भिक जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त जिन जिन अवस्थाओं में होकर गुजरता है उन उन अवस्थाओं में दिखाई पड़ती है। प्रारम्भ से ही माता पिता बच्चों के ऐसे संस्कार वा विचार उत्पन्न कर देते हैं कि वह भौतिकवादी विचारों में बहने लगते हैं और उसके आगे यह प्रबल भावना होती है कि वह अभियन्ता बने, डाक्टर, बने वैज्ञानिक-राजनीतिक एवं साहित्यकार बने ताकि वह आर्थिक स्थिति को अच्छा करके संसार के समस्त ऐश्वर्य एवं नैसर्गिक प्रसाधनों का उपभोग करते हुए सुन्दर जीवन व्यतीत करें।

जहां तक कि इस प्रकार की भावना एवं उत्कृष्ट अभिलाषा का सम्बन्ध है कोई भी इससे असहमत नहीं हो सकता किन्तु जहां तक ईश्वरीय सत्ता की चुनौती का प्रश्न है और मनुष्य का अपना सम्पूर्ण जीवन का समय इस भौतिकवादी तत्वों तक ही लगाने का प्रश्न है, वहां पर विरोधाभास अवश्यम्भावी है। ईश्वरीय सत्ता एवं ईश्वरीय चिन्तन प्रारम्भ से ही अपना विशिष्ट स्थान रखता आया है। और सृष्टि के अनादि काल से ही जिन चार महर्षि अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा द्वारा चारों वेद प्रस्फुटित हुए तभी से ईश्वरीय सत्ता सर्वोपरि एव सर्वमान्य है। आज से करीब १,९६०८५३०६१ से भी अधिक वर्ष हो गये। तब से इन महर्षियों द्वारा प्रस्फुटित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में ईश्वर को सर्वशक्तिमान, सर्वोपरि निर्विकार, व सर्वव्यापक अनादि एवं अनुपम इत्यादि माना है। चूंकि परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म व स्वभाव हैं अतः उसका भिन्न नामों से ही वर्णन किया है। किन्तु चारों वेदों में अनादि से ही 'ओम्' शब्द भगवान के लिये श्रेष्ठतम मानकर प्रयुक्त किया गया है जो कि उत्तम एवं श्रेष्ठ नाम बताया गया है। हरि ओम इत्यादि शब्द जो भी वैदिक लोग वेद के आरम्भ में बोलने लगे हैं वह सब पौराणिक एवं तांतरिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। अतः यह स्पष्ट है कि जो ईश्वरीय सत्ता एवं चिन्तन अनादि काल से चला आ रहा है और जिस की महत्ता सर्वविदित है एवं सर्व स्थान व वस्तु में निहित है, उसका एक दम निराकरण करके अपने आपको पूर्णतया भौतिक पदार्थों की प्राप्ति में लगाना कहां तक उचित प्रतीत होगा।

प्रायः ऐसा कहते सुना गया है कि अध्यात्मवाद के अन्तर्गत ईश्वरीय सत्ता वा चिन्तन की बातें तो सब लोग करते हैं किन्तु चूंकि संसार में रहने के लिए ऐश्वर्य धन, वा वैभव वा शक्ति इत्यादि की आवश्यकता है और जो भौतिकवाद होने से सुलभ्य में ही मिल जाती है। तो फिर एक ऐसी चीज के लिये जो अदृश्य है निराकार है उसमें अपने को केवल आस्था के आधार पर लगाने से क्या फायदा? ये बात आधुनिक युग में उन व्यक्तियों के लिये सत्य हो सकती होगी जो केवल खाना पीना, एवं संसार के समस्त पदार्थों का उपयोग करना ही अपना

मुख्य उद्देश्य समझते हैं। अगर वे लोग उपनिषद्, वेद शास्त्र इत्यादि को उनके सही अर्थों सहित पढ़ने का कष्ट करें तो उन्हें पता चलेगा कि संसार की समस्त वस्तुओं का त्याग भाव से उपयोग करना चाहिये। और जिस सार्वभौम सर्व-शक्तिमान प्रभु की यह रचना है उसकी व्यापकता का अनुसन्धान करते हुए किसी भी संसार के मायाजाल में लिप्त नहीं होना चाहिये। ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र 'ईशावास्यमिदंꣳ सर्वं यत्किंचं जगत्यां' जगत तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्" से इस उक्ति की पुष्टि होती है।

आधुनिक युग एवं आध्यात्मवाद = ईश्वरीय पक्ष के दोनों पक्षों पर यदि हम सिंहावलोकन करें तो हम को पता चलेगा कि जहां पर हमको भौतिक पदार्थों की प्राप्ति करके नई नई मंजिलें तय करनी हैं वहां पर ईश्वरीय सत्ता को भी अपनाना होगा। और बच्चों में प्रारम्भिक जीवन से इस प्रकार की भावना उत्पन्न करनी होगी ताकि ईश्वरीय सत्ता व महत्ता का चिन्तन करते हुए सांसारिक ऐश्वर्य, बल व शक्ति इत्यादि प्राप्त करने के लिये हम लोग सफल सिद्ध हों। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण करते हुए सन्ध्या करना इनके लिये अति हितकर होगा क्योंकि इन मन्त्रों द्वारा स्तुति प्रार्थना एवं उपासना ही मनुष्य को सही रास्ते पर लाने में एवं भौतिक तत्वों का त्याग भाव से उपयोग करने में प्रेरणा प्राप्त करने में हितकर सिद्ध हो सकेगी। केवल भौतिकवादी होने से मनुष्य की गर्त्त में गिरने की अधिक सम्भावना है किन्तु आध्यात्मिकता का सामञ्जस्य किया जावे तो मनुष्य जीवन को सार्थक करता हुआ अपने कर्मफल के अनुसार जाति, आयु एवं भोग को प्राप्त होगा।

अन्त में प्रभु से यह प्रार्थना करते हुए कि (वयं जयेम त्वयायुजा) हे ईश्वर हम सब आपके सहयोग से विजय प्राप्त करें। एवं इस युग के समस्त मनुष्यों से भी यही निवेदन है कि सच्चे वैदिक मार्ग के अनुयायी होते हुए अपनी आने वाली सन्तान के एवं स्वयं अग्रिम जीवन के लिये यह दृढ़ विश्वास कर लें कि संसार के अन्दर जितने भी भौतिक पदार्थ हैं उनको त्यक्त भाव से भोगते हुए हम को ईश्वरीय सत्ता को ही जीवन आधार मानना है और नित्य प्रति स्तुति सन्ध्या व साधना इत्यादि को घर घर में प्रारम्भ करके अपने इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सफल बनाना है।

ओं सहनाववतु। सहनौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु। -मा विद्विषावहै॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

[शेष पृष्ठ ११ का]

इतना लिखने के बाद मुझे अत्यन्त हर्ष है कि हमारे "सिन्ध" का एक नवयुवक डाक्टर भी इस ओर काफी बढ़ रहा है, यह हैं "कण्डयारे" आर्य समाज का भूतपूर्व मन्त्री डा० सोभराज के आर्य जो इस समय ३५५।१५, प्रेम गली, सुभाष मार्ग गांधी नगर, देहली ३१ में रहते हैं।

इन्होंने हाल ही में उल्हास नगर (बम्बई) में दो कैम्प लगाये। एक "सुन्दर सेवक सभा" कैम्प नं० ५ और दूसरा कैम्प नं० १ जुकाम, नजला, खांसी, धड़कन और दमे वालों का लगाया। उनको मिले हुए प्रमाण-पत्रों से परिणाम उच्च कोटि का जान पड़ता है। तीसरी बार जो कैम्प पूज्य पञ्चायती हाल कैम्प नं० ३ में लगाया गया था। उसमें मैं बराबर आता जाता रहता था कैम्प के अन्तिम दिवस मैंने भर्ती हुये रोगियों में से केवल एक दर्जन रोगियों से पूछताछ की। प्रत्येक रोगी जितने भी कैम्प में भर्ती हुये थे उन्होंने बताया कि लाभ हुआ है। किसी ने तो ८० प्रतिशत लाभ बताया। कम-से कम लाभ पाने वाले रोगियों ने भी यह बात स्वीकार की कि हमको १५ प्रतिशत लाभ तो अवश्य हुआ है।

डा० सोभराज का कहना है कि इसके पास सभी बीमारियों का पूरा इलाज है। इस समय केवल जुकाम, नजला, तथा खांसी व दमा का इलाज करते हैं ताकि इनके परिणामों का जनता पर प्रभाव पड़े।

वेद महिमा

❀ श्री पं० प्रकाश चन्द्र जी कविरत्न, अजमेर

सब को सुपथ दरसाते हिय हरषाते
शान्ति सरसाते औ मिटाते भ्रान्ति, खेद हैं
धारण न कर पाते वेद रूप सुधा को वे
उर-पात्र में जिन्हों के मोह रूप छेद हों
जैसे रवि देव सब पर प्रकाश बिखरातें
राव हो या रङ्क करते न कुछ भेद हैं
तैसे आर्य अथवा अनार्य ईसाई, यवन
सबको सदैव सौख्य शान्ति दाता वेद है [१]

होते जो न परम पुनीत वन्दनीय वेद
सृष्टि के विलक्षण रहस्य प्रकटाता कौन
जीवन अमूल्य पशु तुल्य ही विताते व्यर्थ
कोटि कोटि मानवों को शिष्टता सिखलाता कौन
ज्ञान, कर्म, भक्ति का बहाके स्रोत जगती में
प्राप्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की कराता कौन
शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उत्थान हेतु
चारों वर्ण, आश्रम महत्व बतलाता कौन [२]

वेद की पुनीत रीतिनीति पै प्रतीति, प्रीति
वेद का आदेश ही सहर्ष शिरोधार्य हो
विविध समाजों, संस्थाओं में, शिक्षणालयों में
वन्द्य, वरणीय वेद शिक्षा अनिवार्य हो
वेद अनुकूल आचरण हो 'प्रकाश' शुद्ध
वेद के विरुद्ध न कदापि कोई कार्य हो
पावन परम प्रिय वेद पथ का पथिक
मानस, वचन, कर्म से प्रत्येक आर्य हो। [३]

कर्म फल का शास्त्रोक्त एवं यौक्तिक सत्य सिद्धान्त

❀ श्री पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक

वैदिक कर्म फल का सिद्धान्त न्याय सङ्गत तथा पुरुषार्थ वर्द्धक है। परन्तु पौराणिक युग में सब कुछ दैवाधीन मान कर पुरुषार्थ को पीछे डाल दिया गया। महर्षि दयानन्द ने पुरुषार्थ को ही महत्व दिया परन्तु आर्य विद्वानों ने कुछ ऐसी वृथा व्याख्या कर दी कि पुनः दैव को महत्व मिल गया। कुछ और भी भ्रान्तियां फैलाई गईं। मुझे खेद पूर्वक कहना पड़ता है कि शास्त्रोक्त आयु शब्द का भी यथार्थ भाव किसी को अवगत न हुआ। विद्वानों के प्रति अयथार्थ सम्मान के भाव से उनकी अशुद्धियों पर विचार करना पाप समझा जाता हैं। 'वेदप्रकाश' का साहस देखकर कुछ लिखने का मुझे भी साहस हुआ है।

सब वेद शास्त्र का निचोड़ महर्षि पतञ्जलि ने कर्म फल का दो सूत्रों में प्रतिपादन किया है। सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। मूल (यथाकर्म यथा श्रुतम्। कठ०) कर्म और श्रुत (संस्कार) के रहते हुये उनका फल है जाति आयु और भोग। जाति में मानव तथा पशु पक्षी के शरीर के अन्तर के साथ बलिष्ठ निर्बल स्वस्थ अस्वस्थ शरीर का भी भेद जानना चाहिये। पशु केवल भोग योनि होने से उन का शरीर केवल भोगायतन परन्तु मानव का शरीर उभय योनि (कर्म-भोग) होने से भोगायतन होने के साथ कर्मक्षम भी होता है।

भोग का अर्थ है दुःख सुख भोग की सामग्री। कुछ विद्वान् केवल दुःख सुख ही भोग का अर्थ करते हैं परन्तु सामग्री रूप कारण के बिना दुःख सुख की प्राप्ति असम्भव होने से यही अर्थ ठीक है। इसका अर्थ हुआ धनी निर्धन आदि माता पिता की सन्तान तथा विशेष देश में जन्म। यह भोग पुरुषार्थ का भी सहायक होता है। तीसरा फल आयु कहा। इसमें आर्य विद्वानों का बड़ा मतभेद है। कुछ आयु का घटना बढ़ना मानते हैं। दूसरे आयु नियत मानते हैं परन्तु साथ यह भी मानते हैं कि समय घट बढ़ सकता है श्वासों की गणित नियत रहती है। शोक है कि दोनों प्रकार के विद्वान् आयु का सत्यार्थ नहीं जान सके। वस्तुतः आयु का अर्थ भोग का परिमाण है। लोक में एक अपराधी को एक मास का कारागार और दूसरे को दो मास के कारागार का दण्ड दिया गया। इसका यही अर्थ है कि दूसरे का अपराध द्विगुणित है अतः उसे दुगणा ही दण्ड दिया गया। इस अवस्था में आयु समय के अनुसार नियत ही होनी चाहिये। श्वासों पर आयु नियत का कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं। और परिमाण का आधार समय हो सकता है श्वास नहीं। यदि श्वासों पर आयु हो तो मानव पशु चलते फिरते श्वास पूरे हो जाने पर मर जाया करें। परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता रोग अथवा आघात आदि से जब शरीर की कला बिगड़ती है तब मृत्यु होती हैं।

प्रश्न होगा कि यदि आयु का अर्थ भोग का परिमाण है अतः यह समय पर नियत हैं बढ़ घट नहीं सकता तो आयु वृद्धि की प्रार्थना और एतदर्थ पुरुषार्थ भी निष्फल होगा और विष आदि द्वारा आत्म हत्या अथवा अन्य द्वारा आघात से भी मृत्यु न होनी चाहिये।

इसका उत्तर कर्म फल में ईश्वरीय व्यवस्था है। लौकिक न्यायाधीशों की भान्ति ईश्वरीय व्यवस्था में विशेष निर्मित कारागारों में भेज करकर्म फल के भोग का प्रबन्ध नहीं। दूसरे जीवों के स्वतन्त्र कर्मों के परिणाम रूप में ही कर्म फल की व्यवस्था की गई है। माता पिता अपनी स्वतन्त्रता से ही गर्भाधान करते हैं और उसके शरीर के अनुरूप ही

बालक का सुन्दर कुरूप बलिष्ठ निर्बल स्वस्थ अस्वस्थ शरीर बनता हैं। माता पिता के पुरुषार्थ अथवा आलस्य आदि दोषों से वे धनी अथवा निर्धन बनते हैं। तदनुकूल ही ईश्वरीय व्यवस्था से किसी जीव को जन्म प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मृत्यु भी परतन्त्र ही है किसी मानव के स्वास्थ्य के नियमों पर चलने न चलने से यह न्यूनाधिक हो सकती है। महामारी के फैलने का प्रभाव होता है। कोई आत्मघात से स्वयं इसे समाप्त कर देता है दूसरों के आघात से भी हो जाती है। इस प्रकार आयु का परिमाण भी जीवों के स्वतन्त्र कर्मों के अधीन हुआ करता है।

इस प्रकार जाति भोग और आयु तीनों जीवों के स्वतन्त्र कर्मों का ही परिणाम होता है। तदनुरूप जिस जीव के कर्म फल का इन से समन्वय होता है ईश्वरीय प्रेरणा से वह इस शरीर में चला जाता है। अतः इस दिशा में समयानुसार आयु के नियम मानने पर कोई आक्षेप नहीं हो सकता। आर्य विद्वानों ने इस बात पर कुछ विचार नहीं किया।

यह भी स्मरण रहे कि जीवों के स्वतन्त्र कर्मों के परिणामानुसार किसी के कर्म फल का समन्वय तभी सम्भव हो सकता है जब कि ईश्वर को सब जीवों के भविष्य में होने वाले कर्मों और उन के परिणामों का अनादि ज्ञान हो। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस बात को सर्वथा स्पष्ट कर दिया है परन्तु आर्य-विद्वान् ऐसा नहीं मानते, इस कारण भी वे कर्म फल के सिद्धान्त को स्पष्ट नहीं कर सके।

महर्षि पतञ्जलि जी ने दूसरे सूत्र में इस बात को भी स्पष्ट किया है कि हमारे दुःख सुख समृद्धि अस्मृद्धि का कारण केवल पूर्वजन्म कृत कर्म ही नहीं होते इस जन्म का पुरुषार्थ भी सम्मलित होता है "क्लेश मूलाः कर्माशयादृष्टःदृष्ट जन्म वेदनीया।:"

वस्तुतः पूर्वजन्म कर्म फल रूप शरीर और भोग सहायक मात्र होता है शेष सब कुछ इस जन्म के पुरुषार्थ का फल होता है। एक अच्छे घर के विद्यार्थी ने अच्छे अङ्कों में एम० ए० पास किया। पुनः किसी उच्च पद की परीक्षा में भी प्रथम आया और बड़े वेतन के साथ उस पद का अधिकारी बना। अब यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस सुख समृद्धि का मुख्य कारण तो उसके पढ़ने का पुरुषार्थ है। परन्तु पिछले जन्म के कर्म का फल उच्च मस्तिष्क का शरीर और माता पिता की ओर से उसके व्यय का उठाना रूप भोग केवल उसके सहायक रहे अतएव महाभारत में भी कहा गया है—

सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते।
सिध्यन्त्यर्था महाबाहो दैवं चात्र प्रदक्षिणम्॥

अच्छी प्रकार विमर्श वीरता पूर्वक पुरुषार्थ, सावधानी से विधिपूर्वक कर्म से अर्थों की सिद्धि होती है। दैव अर्थात् पूर्वजन्म का कर्मफल तो प्रदक्षिणा करता रहता है अर्थात् सहायक मात्र होता है।

यह है संक्षेप में शास्त्रोक्त तथा युक्ति युक्त पुरुषार्थवर्धक कर्म फल का सिद्धान्त जिसे बड़े २ विद्वान् भी नहीं समझ पाये 'वेदप्रकाश' के पाठक इस पर विचार करें। यदि किसी को संशय हो तो लिख दें मैं उसका समाधान कर दूंगा।*

---

* अन्य महानुभाव अपने विचार भेज सकते हैं। हम सहर्ष प्रकाशित करेंगे। —विद्यार्थी

"भौतिक साम्यवाद—वैदिक सभ्यता"

❀ श्री प्रेम कुमार जी, देहली

"भारतीय लोक समिति" के प्रथम प्रतिनिधि सम्मेलन पर आयोजित सभा में आदरणीय ओम्प्रकाश जी त्यागी द्वारा व्यक्त विचारों के आधार पर।

आज के युग में साम्यवाद का बड़ा नाम लिया जाता है, बड़ा प्रचार किया जाता है। जरा विचारें तो सही कि आखिर यह साम्यवाद है क्या ? आज कल के तथाकथित साम्यवादियों—Communists का कहना है कि 'साम्य' शब्द समान के अर्थ में आता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की, उसके धनी-निर्धन होने की स्थिति का ध्यान न रख कर, रोटी कपड़ा और मकान की आवश्यकताएं समान स्तर पर पूरी होनी चाहिएं। धनी तो अपने धन के बल से अपने परिवार का लालन-पालन कर सकते हैं। गरीब, मजदूर ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं अतः उनका हित अन्यों का अहित करके भी करने में कोई बुराई नहीं है। इतना ही नहीं, वे तो आगे जाकर यह भी कहते हैं कि राज्य गरीबों, मजदूरों का ही होकर, उनका ही हितचिन्तक होवे, चाहे इसकी प्राप्ति में हिंसा का ही अवलम्बन करना पड़े। वे तो इस मान्यता के हैं कि साम्यवादी सरकार में केवल राज्य का ही ध्यान रखा जावे, व्यक्ति की कोई हितचिन्ता न होवे। उनका दृष्टि-कोण इस उदाहरण से निश्चिय ही, पूर्णतया, स्पष्ट हो जाता है—एक मशीन है जिसके कल-पूर्जे बड़े चमकीले हैं और हैं कार्य-योग्य। मशीन उत्पादन में वृद्धि की परिचायक तो है ही, उत्पादन क्षेत्र में उन्नति की कर्तृरी भी है। साम्यवादी समझता है कि बस यह ही साम्यवाद का उत्कृष्ट नमूना है। साम्यवाद—Communism इस ही दृष्टि बिन्दु का है। इस दृष्टि बिन्दु को संसार के सम्मुख आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है परन्तु आइये जरा इसका विश्लेषण तो करें—कल-पूर्जे चमकदार, फुर्तीले हैं अवश्य परन्तु उन बेचारों से पूछो तो सही कि उनका क्या हाल है ? वे कहते हैं, "हम तो शृङ्खला बद्ध हैं, हम तो स्विच मास्टर—Switch Master के पूर्णतया आधीन हैं, वह जब चाहे हमें कार्य पर लगा दे और जब चाहे कार्य से विरत कर दे, हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं है। ठीक यही अवस्था साम्यवाद—Communism की भी है। इस तथाकथित साम्यवाद में व्यक्ति की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है उनका मस्तिष्क स्वतन्त्र नहीं है वे तो एक राज्याधिकारी—Dictator के, पूर्णतया, वश में हैं वह चाहे जैसी विचार-परम्परा अपनावे और अपनी शासित प्रजा को अपनवावे। यह दशा ठीक उस भेड़—चाल की है जो एक भेड़ के पीछे बाकी की भेड़ें चलतीं हैं चाहे आगे खाई ही हो। इस अन्धकार-युक्त 'वाद' में मस्तिष्क की उन्नति पर ताला लगा हुआ है। व्यक्तिगत उन्नति पूर्णतया निरुद्ध है। आइये अब आपको वैदिक-दृष्टि-कोण, जो साम्यावस्था का है, दिखलावें—

वैदिक साम्यावस्था को पूर्ण रूपेण समझने के लिये इस उदाहरण का पर्यवेक्षण कीजिये—एक वाटिका में विभिन्न प्रकृति के फ़लों-फूलों के वृक्ष, पौधे लगे हुए हैं। वाटिका का रखवाला—माली उन्हें पंक्तिबद्ध करता है। आम का वृक्ष है तो साथ में नींबू, सन्तरा, मालटा और विभिन्न प्रकार के वृक्ष तथा फूलों के पौधे हैं। माली वाटिका को जल सिञ्चित कर उनकी उन्नति की हर भान्ति देखरेख करता है। अकस्मात, माली बीमार हो जाता है।

माली को अपने घर वापिस जाना पड़ता है। जब स्वस्थ होकर लौटता है तो देखता है वृक्षों को फलों से पल्लवित। वृक्ष भिन्न भिन्न प्रकार के थे, फल भी भिन्नता को लिए हुए हैं और विभिन्न रङ्गों से रञ्जित हैं। माली वृक्षों को पूछ बैठता है—'ऐ वृक्षो! मैं तो तुम्हें पंक्तिबद्ध, जल सिञ्चन कर हरा भरा ही तो कर गया था परन्तु तुम तो फल-फूलों से झुक-झुक जाते हो, यह परिवर्तन कैसा! वृक्ष प्रत्युत्तर में कहते हैं—हे माली! तुम ने हमें शृङ्खला रहित, स्वतन्त्र, पूर्ण स्वतन्त्र रख छोड़ा था, हम पर किसी प्रकार का भी बन्धन न लगाया था अतः हम उन्नति को प्राप्त हुए।

देखा आपने—उस तथाकथित साम्यवाद में मशीन के कल-पुर्जे पूर्णरूपेण परतन्त्र थे, स्विच मास्टर की मर्जी पर आश्रित थे, स्वयं कुछ न कर सकते थे परन्तु इस वैदिक साम्यावस्था की दशा में वृक्ष पूर्णतया स्वतन्त्र हैं, स्वाश्रित हैं अतः उन्नतिशील हैं। यह ही और यह ही साम्यवाद है अपने सच्चे रूप में। इस ही साम्यावस्था में पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु उच्छृंखलता नहीं। इस ही दृष्टिकोण को लेकर अर्थात् संसार में वैदिक साम्यावस्था स्थापित होवे 'भारतीय लोक समिति' की स्थापना हुई है और जो ऋषि दयानन्द जी महाराज के चिर-कल्पित दृष्टिकोण की पूर्ति ही है। स्वामी जी महाराज ने आर्य जीवन मे जिन तीन सभाओं का विद्यामान होना, जीवन-यापन के सुभीते के लिए, बतलाया है यह सभा उसी राजनीतिक दृष्टि विन्दु के लिये ही है। अतः सब आर्यजन-गण का, इसका विचार न करते हुए कि उनका सम्बन्ध वतमान कालीन विभिन्न राजनीतिक दलों से है यथा कांग्रेसी जनसङ्घ, सोशलिस्ट आदि सभायें, इस 'समिति' का विरोध नहीं करना चाहिए। 'आर्य समाज' की संस्था में किसी भी दल-विशेष के सदस्य को कुछ भी रुकावट नहीं हैं। 'आर्य समाज' का मंच सभी दलों के सदस्यों के लिए खुला है। 'आर्य समाज' के सदस्य होने के नाते वे भाई भाई हैं। यदि आप चाहते हैं कि 'आर्य समाज' की पवित्र धार्मिक वेदी केवल धार्मिक चर्चा के लिए ही सीमित होवे तो आप **'भारतीय लोक समिति'** का पूर्ण समर्थन कीजियेगा ताकि राजनीतिक चर्चा के लिये आर्य-सभासदों के लिये एक पृथक् वेदी खड़ी हो सके। जो व्यक्ति किसी भी वर्तमान कालिक अन्य राजनीतिक संस्था से बिल्कुल भी सम्बन्धित नहीं है और जो पहले आर्य समाजी हैं (तन-मन से आर्य समाजी हैं पूर्ण) उसका 'भारतीय लोक समिति' अन्तर्हृदय से स्वागत करती है।

ऐ, ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित, वीर सेना के वीर सैनिको !!! अपने समस्त स्वार्थ तज कर ऋषि आज्ञा को पूर्ति में सहायक इस 'समिति' की हृदय से सहायतार्थ कटिबद्ध हो जाओ।

प्रिय बन्धुओ! इस स्वर्णिम अवसर को खोकर हमें फिर हाथ मलने पड़ेंगे। मेरे आर्य मित्रो! हम उस मानव हितैषि द्वारा दर्शाये मार्ग पर चलने का दम भरते हैं जिसने—

'तजकर घर और बार को
माता पिता के प्यार को
करने पर-उपकार को
भस्म रमा कर चल दिये'

तो आईये, आज इस पवित्र यज्ञ में अपनी आहुति डालें और ऋषि दयानन्द जी महाराज (जिन्होंने 'ब्रह्मा' से लेकर 'जैमिनी मुनि' पर्यन्त विचार-परम्परा को ही दर्शाया, सनातन वैदिक विचार-धारा को पुनः प्रशस्त कह हमारा मार्ग समतुल्य किया) के मिशन को आगे कढ़ायें।

भूमि माता—पुत्रोऽहं पृथिव्याः

—❀❀❀—

सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास—

शिक्षा

❀ श्री पं० सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए०
डी० बी० कालेज गोरखपुर

'शिक्षा' शब्द पर विचार करते हुये सब से पहले हमें यह देखना है कि शिक्षा किसे कहते हैं और उसका उद्देश्य क्या है? शिक्षा स्वयं साध्य नहीं है। यह एक साधन है जिसके द्वारा मानव जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है अर्थात् स्वयं कोई लक्ष्य नहीं परन्तु मानव जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में मनुष्य को सहायता पहुंचाने वाली वस्तु है अतः शिक्षा का उद्देश्य क्या है यह बात मानव जीवन के उद्देश्य पर आधारित है। मानव जीवन का उद्देश्य आनन्द, सुख या परमार्थ की प्राप्ति है। और आनन्द की प्राप्ति के लिये हमें जीवन और मरण के बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर मुक्तावस्था प्राप्त करनी होगी। यह मुक्तावस्था ही मानव जीवन का लक्ष्य और लक्ष्य के अनुरूप मानव का निर्माण करना शिक्षा का उद्देश्य हो जायगा। स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री पैस्टेलोजी ने इसी बात को ध्यान में रख कर कहा कि मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के प्रगतिशील और सर्वाङ्ग विकास का नाम शिक्षा है। इस प्रगतिशील और सर्वाङ्ग विकास को प्राप्त करना ही शिक्षा का कार्य है। और यह तभी हो सकता है कि जब बालक में चरित्र का विकास किया जाय। चरित्र शब्द का अर्थ हमें व्यापक रूप में लेना होगा। चरित्र के अन्तर्गत बालक में पुरुषार्थ या उद्योग की प्रवृत्ति जागृत करना भी आयेगा और चरित्र शब्द आचरण का द्योतक होगा। अर्थात् चरित्र का मतलब यह होगा कि बालक परिश्रमी और सदाचारी बन सके।

वास्तव में जन्मजन्मान्तरों के मैल आत्मा पर चढ़े होते हैं। शिक्षा का उद्देश्य शुभ संस्कारों द्वारा आत्मा के मैल को धोना है, उसे निखारते जाना है। पिछला मैल कैसे धोया जाय और नया रंग कैसे जमाया जाय यही शिक्षा के सोचने की बात है। शरीर में बन्धकर ही आत्मा का मैल धुल सकता है और उस पर नया रंग चढ़ सकता है। अतः जिस समय या जिस क्षण आत्मा शरीर के सम्बन्ध में आती है उसी क्षण से उस पर उत्तम संस्कार डालना और जब तक वह शरीर को छोड़ कर फिर तिरोहित नहीं हो जाता तब तक संस्कार डालते चले जाना यही शिक्षा है और यही क्षिशा का उद्देश्य है। इसे ही हम सर्वाङ्गपूर्ण और प्रगतिशील विकास कह सकते हैं।

अब हम देख चुके कि शिक्षा आत्मा का निर्माण करती है। निर्माण का मतलब है उसे शुद्ध और परिष्कृत बनाती है। अब आत्मा के संस्कारों का परिवर्तन किया जाता है परन्तु इन्हें जिनके द्वारा बदलना है वे माता, पिता और गुरु के संस्कार या प्रभाव होते हैं। इनके संस्कार भी कर्मों के एक लम्बे चक्र में पड़ कर बने होते हैं। उन्होंने अनेक कर्म किये, अच्छे किये, बुरे किये, उन सबसे उनके संस्कार बने, उनकी रुचि बनी, उनकी प्रवृत्ति बनी, जीवन की दिशा बनी। अतः शिक्षा देने के लिये या बालक के चरित्र निर्माण के लिये माता, पिता अथवा गुरु से आशा की जाती है कि वे अपने संस्कार उत्तम बनायें प्रबल और सशक्त बनायें जिससे वे अपनी सन्तति के संस्कारों को प्रभावित कर सकें। इसीलिए स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश में शिक्षा का उत्तरदायित्व माता, पिता और आचार्य पर रखा है। बालक तो अबोध होता है,

[शेष पृष्ठ २२ पर]

आध्यात्मिक विचार सरणी

❀ मस्तिष्क शास्त्रज्ञा श्री चंचल बहिन
मणिकलाल पाठक प्रधाना आर्य समाज टंकारा सौराष्ट्र

सिद्धान्त महासम्मेलन की आवश्यकता का सूचन श्री पं० फूलचन्द शर्मा 'निडर' सिद्धान्त शास्त्री ने सार्वदेशिक साप्ताहिक ९ अप्रेल १९६१ के अंक में की है, यह अत्यन्त आवश्यक और उपकार दायक है। इनकी चर्चा विचारण प्रामाणिक या बुद्धि गम्य होवे तो आध्यात्मिक विषय के जिज्ञासु जन के लिए तो बड़ी उपकारक होगी। पं० फूलजन्द शर्मा जी के विचार के साथ मेरी सम्पूर्ण सहमति स्वाभाविक बन जाती है और उन के कितने ही प्रश्नों का समाधान भी यथा शक्ति देने का मैं साहस करूंगी और साथ में अपना विचार भी पेश करूंगी।

धार्मिक वृति वाले बुद्धिमान् जिज्ञासु मनुष्य के अन्तर में आध्यात्मिक विषय सम्बन्ध में अनेक विचार लहर उठती हैं और मन में उपस्थित प्रश्न का समाधान चाहते हैं, किन्तु अब तक आध्यात्मिक गहराई में उतर कर इनकी सुलझावट देने को कोई तैयार नहीं। बुद्धियुक्त निर्णय पर आने वाला सत्यनिष्ठ भाग्य ही से कोई निकलेगा। सभी ही गतानुगत विचार को ही शास्त्र तथा सिद्धान्त समझते हैं इनके ऊपर स्वयं कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं मानते। कोई बुद्धिमान मनोमंथन करके अपना विचार दर्शाते तो उनकी अनधिकार चेष्टा मानी जाती है, ऐसी हमारे विद्वान् पंडितों की मनोदशा है।

अनेक समस्याएं ऐसी हैं जो बुद्धियुक्त विचारणा मांगते हैं।

पूज्य महर्षि ने थोड़े समय में बहुत ही कार्य किया है। मनुष्य समाज की अनेक विध अज्ञानता दूर करने में, कितने ही बिगाड़ों को सुधारने में, वेदों का पुनरुद्धार करने में अपना जीवन का विशेष समय व्यतीत होने के कारण बहुत ही विषय विचारने का उनका योग्य निर्णय देने का समय नहीं मिला जिससे उनके शिष्य समुदाय सब मिलकर महर्षि के अधूरे कार्य को पूरा करना अपना धर्म समझें।

जो विषय विचारने का और इनके ऊपर योग्य निर्णय देने का स्वामी जी से न बन सका हो अथवा दिया हुआ निर्णय यथा घटित न हो तो वर्तमान विद्वान्, पंडित इन में सुधार करने का कर्तव्य समझें।

हमारे पहिले के विद्वान्, आचार्य जो कह गये हैं वह सत्य और आचरणीय है, इनके ऊपर चर्चा विचारण हो सके ही नहीं ऐसा आग्रह रखेंगे तो दूसरे मतावलम्बी में अधश्रद्धा है, अज्ञानता है ऐसा हम कैसे कह सकेंगे! बावा वाक्य प्रणाणं मानने का अब जमाना नहीं है।

हमारे आचार्य महर्षि दयानन्द ने तो उदार भाव से हमको समझाया, आदेश दिया है कि जो बुद्धि से होता है उस विषय को ही प्रमाणभूत-आचरने के योग्य मानना। स्वामी जी के आदेश से उत्तेजीत बन कर आत्मज्ञान सम्बन्ध में विशेष समझने के लिए प्रयत्नशील बनेंगे।

ऊर्ध्वगामी बनने की इच्छा वाले तो किसी भी मर्यादित क्षत्र के बन्धन में बंधे हुये रहते भी नहीं इनकी जिज्ञासु आत्मा तो विचारती रहती हैं, समझने का प्रयत्न करती रहती हैं। वह समझते हैं कि ज्ञान अनन्त है, इन मे से जितना ज्ञान हो सके इतना अवश्य करना चाहिए।

किसी का बताया हुआ ज्ञान वास्तविक है या नहीं वही विचारना चाहिये।

कोई मनुष्य विद्वान् की गिनती में नहीं आता किन्तु यह विचारशील, मननशील अवश्य है, ऐसे मनुष्य, विद्वान् के विचार वास्तविक नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता। इनकी अनधिकार चेष्टा है ऐसा कहना उचित नहीं। ज्ञान प्राप्ति के लिए योग्य विचारणा करना, स्वाभाविक वास्तविक को ही मानना यही समझदार और विद्वान् सब मनुष्यों का धर्म बन जाता है।

पं० फूलचन्द शर्मा के प्रश्नों का समाधान

(प्रश्न १) अकाल मृत्यु या काल मृत्यु ?

उत्तर—अचानक मृत्यु होवे तथा सौ वर्ष पहले मृत्यु हो इनको हम अकाल मृत्यु कहते हैं। सौ वर्ष के बाद शरीर का छूट जाना इनको मृत्यु कहा जाता है। वास्तव में मनुष्य की आयु सौ वर्ष के ऊपर करीब चार सौ वर्ष तक होना सम्भव है। किन्तु शरीर के साथ हमारे अनुचित व्यवहार के कारण वह जल्दी से मृत्यु की भेंट होते हैं।

प्र० २—वृक्षों में जीव है या नहीं ? यदि है तो हमें फल आदि खाने में पाप क्यों नहीं लगता ?

उ०—वृक्षों में जीव हैं तथा हवा पानी में भी जीव है, परन्तु जो हमारी खुराक है, वह खाने बिन चले भी नहीं वह खाने से हम को पाप कैसे लगे ? जो पाप का विचार करें तो खायेंगे क्या ?

प्रश्न—ईश्वर त्रिकालदर्शी है या नहीं ? है तो कैसे ?

उत्तर—ईश्वर त्रिकालदर्शी है। क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। सारा ब्रह्मांण्ड–लोक-लोकान्तर के रचयिता और संचालक तीनों काल का ज्ञाता न होवे तो अनन्त लोक लोकान्तर की योग्य व्यवस्था हो सके ही नहीं।

निश्चयात्मक परिणाम को अनुलक्षी रचना, योजना और निर्णय करते हैं, जीवात्मा के कर्म फल देने में उन्नति की योजना रखते हैं वह सब करने में भूत, वर्तमान भविष्य तीनों काल का सम्बन्ध जोड़ते हैं, ऐसा समन्वय ईश्वर तीनों काल का ज्ञाता होने से हो सकता है। इस ईश्वर से त्रिकालदर्शी है।

प्र० ४—वर्ण और गोत्र परिवर्तनशील है अथवा अपरिवर्तनशील ?

उ०—वर्ण जन्म से नहीं परन्तु गुण, कर्म स्वभाव से मानना उचित होने से परिवर्तनशील बन जाता है।

प्र० ५—वर्तमान जन्म के कर्मों का फल यहाँ भी मिलता है या आगे ही मिलता है ?

उ०—वर्तमान जन्म के कर्मों का फल यहाँ मिलता है और आगे भी मिलता है जैसे कि नहाना धोना, सन्ध्या हवन करना, खाना, पीना, पैसा प्राप्ति के लिये कमाना, प्रजा पैदा करना, वायु सवेनार्थे घूमने को जाना, मित्रों को मिलना आदि सब प्रवृत्तियों का फल यहां तुरन्त ही मिलता है। स्नान से शरीर शुद्धि, सन्ध्या उपासना से मन शुद्धि खान पान से क्षुधा पिपासा की तृप्ति, प्रजोत्पति से वंश वृद्धि, मित्रों को मिलने से स्नेह सन्तुष्टी, धन्धा रोजगार से धन की प्राप्ति, धन प्राप्ति से सुख सजधज की अनुकूलता यह सब दैनिक कर्म जो हम हमेशा मरण पर्यन्त करते हैं वह करने से कर्मानुसार स्थूल भौतिक फल हमको यहीं ही मिलना है और वे कर्म जैसे, जिस प्रकार के करते हैं वैसा संस्कार हमारे आत्मा में पड़ता है। पैसे ही खुराक प्रमाणानुसार ख ता है या कम अधिक ! प्रजा उत्पन्न करने में नीति नियम, संयम रखते हैं या विषय को अधीन बनाते हैं। धन्धा रोजगार धर्म से करता है या असत्य अनीति से ? मित्रों के साथ स्नेह का सम्बन्ध है या स्वार्थ का ? सन्ध्योपासना, दान, पुण्य सच्ची धर्म भावना से करते हैं या कीर्ति के कारण ? ऐसे सब वर्तमान कर्मों को जैसी भावना से करते हैं वैसा संस्कार अपने आत्मा में स्थापित होता है वह संस्कार संचितानुसार हमको पुनः देह मिलता है। उस दूसरे जन्म में हम हमारे संचित संस्कारानुसार अच्छे या बुरे कर्म करते हैं। फिर कर्मानुसार फल जीवन में पाते हैं और संस्कार रूप संचित की गठरी बांधते हैं इसी अनुसार हमारे जीवन की घटमाल चलती ही रहती हैं। तात्पर्य यह है कि वतमान जन्म के कर्म का फल यहाँ भी मिलता है और आगे भी मिलता है।

कर्म का संस्कार कौन साधन द्वारा किसी रीति से आत्मा में स्थापित होता है वह मनुष्य को जानना चाहिए। वह मनोविज्ञान अथवा मस्तिष्क शास्त्र बहुत ही सुन्दर रीति से समझाते हैं। मनोविज्ञान पर मैंने मस्तिष्क विद्या नाम से तीन सौ पृष्ठ की पुस्तक प्रकाशित की है, जिस में समझाने के लिए ढाई सौ चित्र दिये हैं ऐसी मस्तिष्क विद्या अथवा मानस शास्त्र नाम की पुस्तक मैंने प्रकाशित की है, वह पढ़ने से अपनी उन्नति कैसे हो सकती है अपनी आत्मा में कितना और किस प्रकार का सामर्थ्य है ये सब बातें समझ में आ जाती है। कर्मफल, पुनर्जन्म आदि का भी स्पष्ट सुझाव मिल जाता है।

प्र० ६—मुक्ति से जीव लौटकर सृष्टि के आदि में आता है या मध्य में या दोनों में ?

प्र० ७—मुक्ति से लौटने वाला जीव मनुष्य योनि में ही आता है या अन्य पशु आदि में भी ?

प्र० ८—मुक्ति होने पर जीव के एक जन्म के कर्म शेष रह जाते हैं अथवा सब समाप्त हो जाते हैं यदि समाप्त हो जाते हैं तो मुक्ति से लौट कर आने वाला जन्म किन कर्मों का फल है ?

उ०—प्रथम मुक्ति अवस्था की सत्यता वास्तविकता सिद्ध करनी पड़ेगी। इसलिए मैं 'मुक्ति मिमांसा' शीर्षक से लेख रूप में अपना विचार प्रदर्शित करूंगी। सत्य की खोज करने वाले जिज्ञासु जन को तो मेरा मुक्ति मीमांसा लेख पढ़ने से बड़ा आनन्द आयेगा और विद्वान वर्ग मेरे विचार के साथ सहमत होंगे अथवा बुद्धि युक्त प्रामाणिक समाधान देने की कृपा करेंगे।*

सिद्धान्त सम्मेलन के प्रेरक श्री पं० फूलचन्द शर्मा के मुक्ति सम्बन्ध के सब प्रश्नों का समाधान मेरा "मोक्ष मीमांसा" के लेख पूरा पढ़ने के बाद हो जायेगा।

शर्मा जी के दूसरे कितनेक प्रश्न मुझे सामान्य लगने से इनका समाधान देने का मैंने छोड़ दिया है।

श्री फूलचन्द शर्मा जी अपना निवास स्थान का पूरा पता देवें तो पत्र द्वारा विचार विनिमय के लिए सुविधा रहेगी।

[शेष पृष्ठ १९ का]

बड़ा होने पर अज्ञानी होता है उसके उत्तरदायित्व का वहन माता, पिता और आचार्य कर सकते हैं। अतः स्वामी जी ने कहा, "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। मातृमान् का अर्थ होता है "प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य सः मातृमान्" "प्रशस्तः धार्मिकः पिता विद्यते यस्य सः पितृमान्" और "प्रशस्तः धार्मिकः आचार्यः विद्यते यस्य सः आचार्यवान्"। यह तीन शिक्षा के अंग हैं। इसलिये हमें तीनों को आधार मान कर बालकों को शिक्षा देने का प्रयत्न करना चाहिये। और यदि यह तीनों श्रेष्ठ होंगे तो बालक सुशील बन सकेगा। सर्वाङ्ग पूर्ण विकास प्राप्त कर सकेगा। वह जीवन के अन्तिम उद्देश्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को प्राप्त कर सकेगा। स्वामी जी के विचारों के आधार पर शिक्षा का उद्देश्य बालक में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह की भावना को उत्पन्न करना, कठिनाइयों का मुकाबिला करने की भावना को जागृत करना, गुरुकुल में ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु की आज्ञा पालन करते हुए तपस्या का जीवन व्यतीत करना जिससे चरित्र ऊंचा हो सके ऐसा प्रयत्न करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। अगर बालक में सत्य के प्रेम, अच्छाई को पाने की लगन, ईमानदारी, न्याय प्रियता आदि गुण आ जाते हैं तभी शिक्षा का उद्देश्य पूरा होगा—यही स्वामी जी का शिक्षा विषयक मन्तव्य है।

---

* हम लेखिका के सभी प्रश्नोत्तर से सहमत नहीं हैं।

साहित्य समीक्षा

वेदप्रवेश विशेषांक :—लेखक स्व० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द तीर्थ) जी महाराज।

प्रकाशक—हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झझर (रोहतक) तीन खण्ड पृष्ठ संख्या २८७ मूल्य २.२५ नये पैसे।

पूज्य स्वामी वेदानन्द जी ने लाहौर में वेद के जिज्ञासुओं के लिए 'वेद प्रदेश' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी थी परन्तु बाजार में मिलती नहीं थी। सुधारक के विशेषाङ्क के रूप में अब इसे पुनः प्रकाशित करारा गया है।

वस्तुतः वेद में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। व्याकरण के सरल नियम और अनेक उदाहरण देकर अत्यन्त रोचक शैली से विषय को समझाया गया है। लगभग २५० वेद मन्त्र देकर उनका अर्थ प्रदर्शित किया गया है। छपाई आदि उत्तम है। इस अत्युपयोगी प्रकाशन के लिये प्रकाशक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

अभ्यास और वैराग्य:—लेखक तथा प्रकाशक श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, प्राप्तिस्थान—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन, रामलीला मैदान नई दिल्ली-१। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य १. ६५ नये पैसे।

पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि जो आर्य जगत् के धुरन्धर विद्वानों में से हैं। आपने अपने परमोपयोगी ग्रन्थों से वैदिक साहित्य में पर्याप्त श्रीवृद्धि की है। जहां स्वामी जी वेद, दर्शन और उपनिषदों के परम विद्वान् हैं वहां आप एक सच्चे क्रियाशील योगाभ्यासी भी हैं।

ईश्वर प्राप्ति के लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों साधनों को नितान्त आवश्यकता है। परन्तु वह अभ्यास और वैराग्य क्या है और उसका अनुष्ठान कैसे किया जाये यह एक भीषण प्रश्न है। पूज्य स्वामी जी ने प्रस्तुत पुस्तक में वेद, दर्शन, उपनिषद् और स्वानुभव के आधार पर अभ्यास और वैराग्य का क्रियात्मिक उपाय बतलाया है। आध्यात्मिक पथ के पथिकों और जो लोग यह कहते हैं कि आर्य समाज में आध्यात्मिकता नहीं उन्हें इस पुस्तक का अवश्यमेव स्वाध्याय करना चाहिये। छपाई आदि उत्तम है कागज भी बढ़िया है इस सुन्दर पुस्तक प्रणयन के लिए स्वामी जी का हार्दिक अभिवादन।

विवाह रीति निर्णयः—लेखक श्री पं० फूलचन्द शर्मा 'निडर' सिद्धांत शास्त्री धर्मालङ्कार। प्रकाशक आर्य समाज भिवानी। पृष्ठ संख्या २४-११२ मूल्य १-५० नये पैसे।

श्री पं० फूल चन्द जी शर्मा सिद्धान्त निष्ठ व्यक्ति माने जाते हैं परन्तु इस पुस्तक को पढ़ कर मुझे तो कुछ और ही अनुभव हुआ। आप ने पुस्तक में अनेक भ्रान्तिपूर्ण बातों का समावेश कर दिया है। पृष्ठ २८ पर आप लिखते हैं "न कोई विधि छोड़नी चाहिये न अधिक करनी चाहिये।" इसके विरुद्ध पृष्ठ 'चार' पर आप लिखते हैं "इस पुस्तक में संक्षिप्त पद्धदि (पद्धति) का निर्माण किया है। यह विधि एक घण्टा मात्र की है।" ऐसी परस्पर विरुद्ध बात वस्तुतः कोई 'निडर' ही कह सकता है। डण्डे पीरी, आतिशबाजी आदि लाने को भी आप बुरा नहीं समझते (पृष्ठ ३९) आगे आप लिखते हैं 'जिन्होंने पहले संस्कार न पढ़ा हो, न मन्त्रादि

बोलने का अभ्यास किया हो और न मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कर सकते हों उनसे मन्त्र बुलवाना व्यर्थ है।" (पृष्ठ ९९) फिर पौराणिक और वैदिक रीति में क्या अन्तर रहा। यह तो फिर पण्डितों का विवाह हो गया। वर की बजाय यदि स्वयं पण्डित ही 'पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव' पढ़ने लग जाय यह कहां तक न्यायोचित है? इसी प्रकार की और भी अनेक भ्रामक बातें हैं जिन सब को देने का यहां स्थान नहीं। पुस्तक का मूल्य भी १॥) अधिक है।

हमारी अपनी सम्मति में यदि पण्डित जी इस पुस्तक को त लिखते तो अधिक अच्छा था।

विचार मंदाकिनी—लेखक श्री कृष्ण दत्त जो साहित्य रत्न। प्रकाशक—स्टूडेण्ट्स स्टोर्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली-६। पृष्ठ संख्या १२८ मूल्य १-२५ न. पै.।

श्री कृष्ण दत्त जी गम्भीर विचारक और स्वाध्यायशील युवक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपके १५ लेखों का संग्रह है जो भिन्न भिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। यूं तो सभी लेख उत्तम हैं परन्तु 'विकासवाद धर्म और ईश्वर,' 'विवाह, प्रेम एवं गृहस्थ परक महत्वपूर्ण सूक्तियां 'वैदिक ज्ञान की म त्ता और अन्य मतों पर उस का प्रभाव' ये तीन लेख तो बहुत ही उत्तम बन पड़े हैं। अन्य लेख जो इस पुस्तक में संग्रहीत हुए हैं वे हैं मित्रता, मांस भक्षण एक वृत्ति आर्य समाज किधर, पारिवक योगेश्वर कृष्ण, शिक्षा का उद्देश्य, होली दीपावली महर्षि दयानन्द आदि।

आरम्भ से अन्त तक पुस्तक में एक बात खटकती है और वह है भाषा की क्लिष्टता। कहीं कहीं तो उस क्लिष्टता में विचार ही खो गये हैं। निबन्ध को पढ़ने के पश्चात् ऐसा लगता है कि हम जहां से चले थे वहीं हैं। यदि पुस्तक की भाषा सरल होती तो इसकी उपयोगिता में चार चांद लग जाते।

पुस्तक का कागज छपाई और आवरण पृष्ठ आदि सुन्दर हैं।

वेदोपनिषद्:—लेखक श्री स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक, आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरद्वार) प्रकाशक—श्री मद्दर्शनानन्द ग्रन्थागार, २०, कृष्ण गंगा, मथुरा पृष्ठ संख्या ६२ मूल्य ३७ नये पैसे।

प्रस्तुत पुस्तक में ऋक् यजु और अथर्ववेद से चुने हुए ५६ मन्त्र लेकर उन्हें एक विशेष क्रम से रखा गया है। मन्त्र सुन्दर हैं। अर्थ और संक्षिप्त व्याख्या हृदय ग्राही है। मन्त्रों की महत्ता का निर्देश करने के लिये अनेक मन्त्रों के नीचे टिप्पणी भी दी गई हैं जो वस्तुतः महत्वपूर्ण हैं।

मन्त्रों के नीचे अतुकान्त कविता खटकती है। ईशावास्य मन्त्र के नीचे की पंक्तियां देखिये—

इस सब में है उस से मिले हुए
ईश्वर व्यापक को भोगो
जो कुछ है मत करो लालच
गतिशील सृष्टि में धन है किस का

मन्त्र का शब्दार्थ ऊपर आ ही चुका है अतः मेरी अपनी सम्मति में मन्त्र के इस बेढंगे अनुवाद की आवश्यकता नहीं है।

'विद्यार्थी'

राधा स्वामी मत दर्पण

लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यदि आप राधास्वामी मत का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। बड़े परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है। प्रचारार्थ पुस्तक का मूल्य लागत मात्र चार आने ही रक्खा गया है। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

ब्रह्माकुमारियों के ढोल की पोल। बढ़िया कागज सुन्दर छपाई। मूल्य २७ नये पैसे। प्रचारार्थ मंगाने पर २५) सैकड़ा।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४।।)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानद) ५०
सत्य नारायण कथा) ६१
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र बाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमोव्याख्या) ५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्या मार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ८५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३०
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
बीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३०
महात्मा हंसराज) ३०
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
पं० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म् नमस्ते स्वागतम् गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

महर्षि दयानन्द का सुललित, सुमधुर, भावपूर्ण, श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

अनेकों चित्रों से सुसज्जित, बढ़िया कागज पर मोटे अक्षरों में, बड़ेसाइज के ६०० पृष्ठों में मुद्रित।

कथा करने तथा शुभ अवसरों पर भेंट देने योग्य अद्वितीय ग्रन्थ। मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को डाक खर्च माफ। १२) अगाऊ आना आवश्यक है।

महात्मा आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

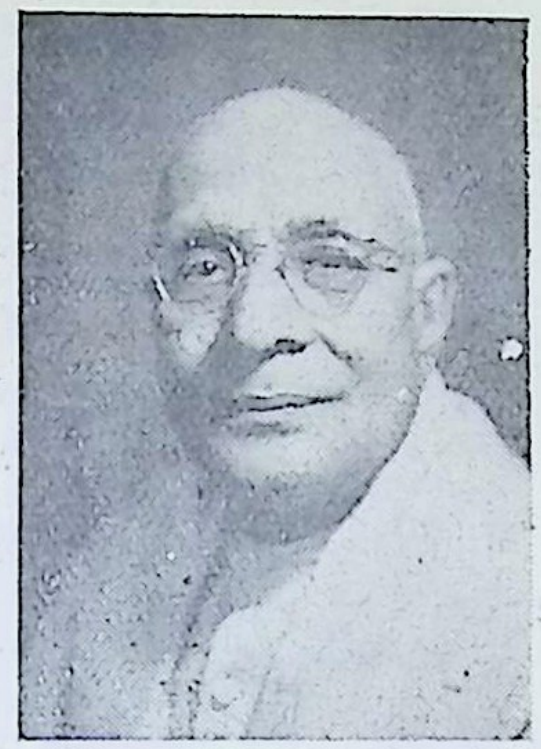

उपनिषदों का सन्देश

पृष्ठ संख्या २०४ मूल्य १) २५

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन	२)५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्दगायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
भगवान् शंकर और दयानन्द	)५०
सत्यनारायण व्रतकथा	)६२

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

फरवरी	१९६२
माघ	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	७

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

दयानन्द--अङ्क

बोधरात्रि (शिवरात्रि) के उलपक्ष्य में मार्च का अंक वेदप्रकाश के विशेषांकों की परम्परा में अद्भुत अंक होगा । प्रचारार्थ मंगाइये । २५ प्रति के ५) ५०-९) १००-१८) भेजें

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना--अङ्क

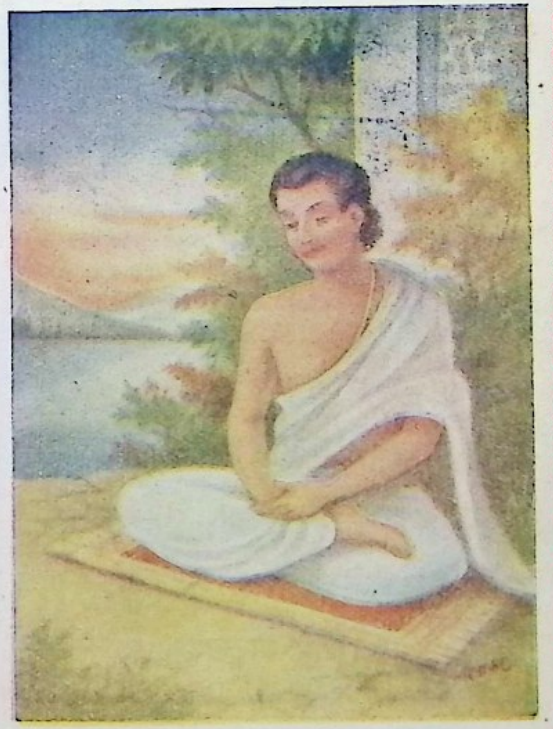

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थ माला

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरभ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनको स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

(४) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक को महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २॥) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदा के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी का देहावसन २५ फरवरी १९६० को शिवरात्रि के दिन हुआ था। इस वर्ष शिवरात्रि ४ मार्च की है उनकी द्वितीय पुण्य तिथी के अवसर पर हम अपने सभी प्रकाशनों पर विशेष रियायत दे रहे हैं। इसी अंक के अन्त में पुस्तकों की सूची देखें।

—व्यवस्थापक

* ओ३म् *

वेदप्रकाश

ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना अंक

[१]

यद्भद्रं तन्न आसुव

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

(देव) हे दिव्य गुण विशिष्ट भगवन् ! (सवितः) सर्वोत्पादक अथवा सबके प्रेरक (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) पापों को (परासुव) दूर करो। (यत्) जो (भद्रं) भला है (तत्) वह (नः) हमें (आसुव) प्राप्त कराओ।

इस मन्त्र में देव और सवितः शब्द विशेष अभिप्राय से रखे गये हैं। देव शब्द की बात सुनिये। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में देव शब्द के ऐसे ऐसे रहस्य प्रदर्शित किये हैं कि उनके जानने के बाद कुछ जानने को शेष नहीं रहता। इन सब अर्थों का वर्णन करना सम्भव नहीं। एक अर्थ का वर्णन करता हूँ। 'देव' शब्द यह दर्शाता है कि भगवान् के पास देने को सब कुछ है और वह मनुष्यों को सुख का दान करता भी है अतः वह देव है। जल प्यास बुझाता है, मैले कपड़ों को साफ करता है, खेतों को लहलहाता है, शीतलता प्रदान करता है अतः जल देव है। सूर्य प्रकाश देता है, चन्द्रमा में रस, अग्नि में तेज और जल में शीतलता भगवान् ने दी है। इसलिये इस दानदाता से मानव प्रार्थना करता, भक्त भगवान् के सामने जाकर, याचक बनकर प्रार्थना करता है कि सुख और आनन्द के दाता आप दिव्य गुणों से युक्त हैं हमें भी आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए अपने दिव्यगुण प्रदान कीजिये।

भगवन् ! वैभव वाले देव,
तुम हो पूर्ण दिव्यतम सुन्दर !
महादेव 'भग' अनुकम्पा हो,
भीख मांगने बाल रूप धर !
हम आये हैं पास तुम्हारे,
छिपी हुई निज दिखलाओ निधि
खुले हाथ दो दान हमें प्रिय !
हैं पुकारते तुम्हें सभी विधि !

अरे भक्त यदि तू भगवान् से दान मांगता है, तू उसके सामने सुख की गुणों की याचना हाथ पसार कर कर रहा है तो तेरा भी कुछ कर्तव्य है। तुझे प्रभु ने जो कुछ दिया है उससे अधिक की याचना कर परन्तु जितना तेरे पास है उसे दूसरों को दे, सांप बनकर धन को समेट कर उस पर अपने आप न बैठा रह। यदि तेरे पास शक्ति है तो दूसरों की रक्षा करने में पीछे न हट। यदि ज्ञान है तो दूसरों को मार्ग बतलाने में कृपणता न कर। दीन को आश्रय, दुःखी को सान्त्वना रोगी को औषधि तुम भी दो। दो, दो और उस सुख के खजाने से सुख की याचना कर यही देव शब्द का भाव है।

प्रतिदिन अपने आप से पूछः—

कभी इमदाद दी तुमने, किसी बेकस बेचारे को।
सखी बनकर दिया कुछ तूने, मुफलिस के गुजारे को।
तसल्ली दी कभी तूने किसी आफत के मारे को।
कभी तूने सहारा भी दिया है बे सहारे को।

देव शब्द के रहस्यों को देखकर बुद्धि चकित हो जाती है। एक एक व्याख्या पर एक २ ग्रन्थ लिखा जा सकता है पर यहां हमने देव शब्द का अर्थ किया जो सब कुछ दान करने वाला है। जल देव है, सूर्य देव है, वायु देव है, पृथ्वी देव है यह आकाश देव है परन्तु वह परमेश्वर तो इन देवों का भी देव महादेव है। उसने ही तो सूर्य को ताप और प्रकाश, जल को शीतलता, वायु में गति और जीवन, अग्नि में उष्णता पृथ्वी में क्षमा प्रदान की है। रात के समय आकाश की ओर यदि हम दृष्टि

डालते हैं तो उसमें अनन्त गोले दिखाई देते हैं। आकाश के आंगन की वह बेल बूटे की पंक्ति आकाश गंगा वे छोटे २ सुन्दर फूल, वे लुक लुक करने वाले लाखों तारे यह सब परमेश्वर के खजाने के रत्न हैं। ये जो छोटे से तारे दीखते हैं वे महान् प्रचण्ड हैं। इतने कि उनके अन्दर हमारे अनन्त सूर्यों का समावेश हो जायगा। वे रसमय हैं हमें रस का दान करते हैं, वे ज्वलन्त धातुओं के पिण्ड हैं हमें ताप और प्रकाश देते हैं। इनका कितना ऐश्वर्य है—कौन हिसाब लगावे पर मेरे भाइयों, यह अपना ऐश्वर्य अपने पास नहीं रखते दूसरों को देते हैं, इन का अपना तो कुछ नहीं दूसरों के कार्य में सहायता पहुँचाते हैं। अरे यह चमक इनकी नहीं, यह ताप और प्रकाश जिसका हमें ये दान कर रहे हैं इनके नहीं, ये शीतलता और मन्द शीतल सुगन्ध इनकी नहीं ये तो उस महादेव भगवान् ने इन्हें साधन बनाकर अपने ऐश्वर्यों का वितरण करने के लिये आदेश दिया है। तभी तो:—

रवि जग में शोभा सरसाता सोम सुधा बरसाता,
सिन्धु विहंग तरंग पंख को फड़का कर प्रति क्षण में,
है निमग्न नित भूमि खण्ड के सेवन में रक्षण में।
कोमल मलय पवन घर घर सुरभि है, बांट जाता
सस्य सींचने घन जीवन धारण कर है नित जाता॥

और ये मानवों को उपदेश दे रहे हैं कि जिस तरह हम अपने ऐश्वर्यों को प्रभु से प्राप्त कर दूसरों को दे देते हैं वैसे ही हे मानव तू भी यदि परमात्मा के देव स्वरूप की स्तुति करना चाहता है उसका भक्त होना चाहता है तो अपना सर्वस्व त्याग करने को उद्यत हो जा अपने लिये चिन्ता न कर दूसरों की सोच। यदि तेरे पास धन है तो इस पर सांप बनकर न बैठ। भूखे, प्यासे, वस्त्रहीनों को दे। याद रख यह तेरा नहीं तुझे तो त्याग भाव से भोग करना है, लालच मत कर। यदि तेरे पास शक्ति है तो दूसरों की रक्षा करने से पीछे न हट। ज्ञान है तो दूसरों को मार्ग बतला। इस मन्त्र के जाप की ठीक विधि यही है कि ईश्वर को देव मान कर अनुभव करो कि वह सब देता है और फिर स्वयं भी दो। दीन को आश्रय, दुःखी को सांत्वना रोगी को औषधि तुम भी दो। देखते नहीं परमेश्वर के भक्तों ने—सच्चे भक्तों ने क्या किया:—

क्षुधार्थ रन्ति देव ने दिया करस्थ थाल भी।
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी॥
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर चर्म भी दिया,
अनित्य जीव के लिये अनादि जीव क्या करे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

इसके बाद दूसरा शब्द जो परमात्मा के गुण के आधार पर उसका सम्बोधन करने के लिए आया है वह है 'सवितः'। 'सवितः' शब्द का अर्थ है सर्वोत्पादक। वैसे तो सविता के अनेक अर्थ हैं उत्पन्न करने वाला, जगाने वाला, गर्भ में लाने वाला, गर्भ से मुक्ति दिलाने वाला, प्रकट करने वाला, प्रकट हुए का विनाश करने वाला, प्रेरणा करने वाला यह सब सविता शब्द के अर्थ हैं। जिस समय भक्त दानी प्रभु से भद्रता की याचना करता है तो वह समझ नहीं पाता कि क्या कह कर उससे भद्रता की याचना करे। यदि वह अपने को तपस्वी और धार्मिक कहता है तो उसे डर लगता है कि प्रभु सर्वज्ञ है मैं अन्य दानियों के समान उसे धोखा न दे सकूंगा, वह सोचता है अपने को विद्वान् कह कर याचना करूं तो उसे ध्यान आता है कि प्रभु को मेरी विद्वत्ता का पता है। इस प्रकार सोचते सोचते भक्त को एक सुन्दर उपाय सूझता है वह सोचता है कि विश्व का उत्पादक प्रभु मेरा पिता है, मेरा जनयिता है, वह मेरा बन्धु है, माता है सब कुछ है। मैं कितना भी अयोग्य क्यों न होऊं पर हूँ तो उसका पुत्र ही और पुत्र को पिता से मांगने में क्या संकोच इस अभिप्राय से सवितः उत्पत्तिकर्ता शब्द इस मन्त्र में रखा गया है।

यह प्रभु केवल पिता ही नहीं, जनयिता ही नहीं वह हमारा प्रेरक भी है, मार्ग दर्शक भी है। सविता परमात्मा की वह शक्ति है जो सृष्टि को बनाने के लिए सृष्टि से पहले जागती है। यह परमात्मा की वह शक्ति है जो सोई हुई प्रकृति को प्रेरणा करके

कहती है कि—"जाग मुझे सृष्टि की रचना करनी है"। सविता वह सबसे बड़ी शक्ति है, सृष्टि की वह आदि शक्ति है, भगवान् की वह महामाया है जिससे वह सब कुछ बन रहा है जिससे यह सब कुछ बनता है। वह प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर विराजमान लगातार प्रेरणा करता है, बच्चों को भी, बूढ़ों को भी, जो अच्छा काम करते हैं उनको भी। वह सदा अंदर से पुकारता है। यह भगवान् की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह मनुष्य से बातें करता है।

(आनन्द गायत्री कथा)

परमेश्वर का मनुष्य से बातें करना विचित्र तो है पर उसकी प्रेरणायें भी विचित्र होती हैं जो हमारी रक्षा करती हैं। यही कारण है कि भयंकर विपत्तियों में भी उसके भक्त भलाई का अनुभव करते हैं। भगवान् की बातें करने के ढंग का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में स्वामी जी महाराज ने किया है "और जब आत्मा मन, और और मन इन्द्रियों को किसी काम में लगाता है तो चोरी आदि बुराइयों या उपकार आदि अच्छी बातों के करने को जिस समय आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा और ज्ञान आदि इसी चाहे हुए काम की तरफ झुक जाते हैं उस समय आत्मा के अन्दर बुरे काम करने में भय, शंका लज्जा तथा अच्छे काम करने में निर्भयता, विश्वास और आनन्द व उत्साह का उत्थान होता है वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

मनुष्य के मन रूपी कमरे में परमात्मा की ध्वनि उसी प्रकार सुनाई देती रहती है जिस प्रकार कि किसी कमरे में बैठे हुये व्यक्ति को अपने कमरे के अन्दर टंगी घड़ी की आवाज सुनाई देती है परन्तु यदि बाहर किसी कारण शोर होने लगे तो भाई, कमरे की घड़ी की आवाज उस शोर में नहीं सुनाई देगी। वैसे ही जिस समय विषयों की बाहरी आवाज प्रबल होती हैं तब मनुष्य को परमात्मा का अन्तर्नाद नहीं सुनाई देता। महात्मा गांधी जब किसी भारी कार्य को आरम्भ करते थे तो उससे पहले वे इस आवाज को अवश्य सुन लिया करते थे। यह आवाज बिना किसी भेदभाव के सब का मार्ग प्रदर्शन करती है। (आनन्द गायत्री कथा)

प्रभु की प्रेरणा जहां बुरे कामों से बचाने के लिये होती है वहां वह बहुत बार मनुष्य की रक्षा भी करती है। मनुष्य के शरीर में जब विकार उत्पन्न हो जाते हैं प्रभु की प्रेरणा से मनुष्य को जुकाम होता है और उसके विकार नष्ट हो जाते हैं। श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ने गायत्री मन्त्र की व्याख्या करते हुये परमेश्वर की कल्याणमयी प्रेरणा के विषय में एक सुन्दर उदाहरण दिया है। १९५२—५३ ई० में श्री देशबन्धु जी गुप्ता वायुयान में सवार होकर दिल्ली से कलकत्ता गये। अखिल भारतीय पत्रकार समिति के वह प्रधान थे। समिति की स्टैंडिंग कमेटी का अधिवेशन हो रहा था। महात्मा गांधी के पुत्र श्री देवदास भी इसके सदस्य थे और वे भी जाना चाहते थे पर उनको सीट नहीं मिली। बड़ी दौड़ धूप की उन्होंने कई यात्रियों को जाकर कहा। किन्तु किसी ने उनकी बात न मानी देवदास जी ने सीट न देने वालों को विचित्र रूप से सहानुभूति शून्य माना। किन्तु दूसरे दिन प्रातः ही जहाज जब कुछ धुन्ध में पहुँचा। उसे नीचे उतरने का मार्ग न मिला। समुद्र के किनारे नारियल के वृक्षों का जंगल था। उन वृक्षों से टकरा कर वह जहाज चूर २ हो गया। देवदास जी को जब इस घटना का पता लगा तो उन्होंने सिर झुका कर कहा "धन्यवाद है तेरा भगवान्! कि मैं उस वायुयान में नहीं था" हां मेरे पिता! भगवन् बहुत दूर तक देखता है तू। हमारी क्या शक्ति कि इतनी दूर तक देख सकें, और यदि देख नहीं सकते तो फिर इस बात की चिन्ता क्यों करें कि प्रभु क्या करता है और कब करता है। पर इतना तो निश्चय है कि वह हमारा भला करेगा।

पर सविता की उपासना का अन्त यहीं तक नहीं कि बस हम प्रभु से अपनी भलाई की चाहना कर चुप हो गये। यदि प्रभु की प्रेरणा हमारा कल्याण करती है तो हमें स्वयं भी दूसरों के कल्याण

की बात सोचनी चाहिये। यदि हमें किसी ज्ञान का पता है तो उसे दूसरों को देना चाहिये। यदि आप के पास कोई ऐसी औषधि है तो उसे छिपा कर मत रखिये लोगों को बताइये जिस से कि उनका कल्याण हो।

इस प्रकार भक्त सविता देव से कहता है कि हे सविता देव इस विशाल विश्व का निर्माण करते-करते यदि तू थका नहीं, यदि तू ने केवल अपनी ईक्षण शक्ति से विश्व का निर्माण कर दिया, सोई हुई अपार प्रकृति को जन्म दिया तो हे प्रभु ! मेरे लिए क्यों सो गया कब मुझे मेरे मार्ग का अनुगामी करेगा ? कब प्रेरणा करेगा कि मैं अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर, बुराइयों से भलाई की ओर जा सकूंगा।

उस प्रेरक सच्चे उत्पादक
श्रेष्ठ देव के वरने लायक।
शुद्ध तेज का मन से चिन्तन।
करें भरें फिर नस २ निजतन॥
दिव्य तेज यह विमल करे जल
कार्य शक्ति मेधा को उज्जवल।
सत्पथ पर प्रेरित हम होवें,
बुद्धि मलिनता सारी धोवें॥
सखे ! प्रेम मय तेजः शाली,
फैले जीवन में उजियाली॥

अब हमने देखा कि परमेश्वर देने वाला है, वह आनन्द का देने वाला, सुख देने वाला और प्रत्येक वस्तु देने वाला है जिसको कोई इच्छा करता है। उसका कोष अनन्त है, उसका भण्डार कभी रिक्त नहीं होता। कई अरब कई खरब वर्ष बीत गये परन्तु वह देता जाता है और उस के खजाने में कमी नहीं है। उसके देने का आदि नहीं है, उसके देने का अन्त नहीं है, 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' वह तो सब कुछ दे कर भी स्वयं पूर्ण बना रहता है, बड़ा विचित्र दाता है। पर लेने वाले को अपने को योग्य बनाना पड़ता है। यदि लेने वाले के बर्तन में छेद है तो वह सब वस्तु जो उसने हमें दी होगी गिर जाएगी। हमें पात्र की आवश्यकता रहती है। और यह पात्रता भी उसी प्रभु की कृपा से जिसने हमें उत्पन्न किया है, जो विश्व का उत्पादक है, सविता है, से प्राप्त हो सकती है। किसी कवि ने ठीक कहा है:—

आओ गाएं उस का गान।
१—जिसकी महिमा देख चकित-सा,
विश्व खड़ा है कुछ विस्मित सा,
सांस रोक कर चित्रलिखित सा,
अर्ध चेतना अर्ध ज्ञान में,
शिशु सा बन कर अनजान।
२—जो दाता केवल देता है,
और न कुछ भी जो लेता है,
सब की नाव सदा खेता है।
जिस के शीतल प्रेम स्पर्श से,
दोषों का होता अवसान।
३—जो सब का है पाप जलाता,
और अभीष्ट सुधा बरसाता,
वाणी में प्रकृष्टता लाता,
महामहिम उस वृषभ शक्ति पर,
हो जावें हम सब बलिदान।

इस लिए उस दानी प्रभु के ऊपर यदि हम अपने को बलिदान करेंगे तो हमें पात्रता प्राप्त होगी और प्रभु के ऐश्वर्यों का आनन्द भोगेंगे। पात्रता प्राप्त करने के लिए 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव' इस मन्त्र में कहा गया है कि हे दाता, सर्वोत्पादक या प्रेरक भगवान् हमारे सम्पूर्ण पापों को दूर करो।

वास्तव में पापों को दूर करना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है। मनुष्य के सांसारिक एवं आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य भद्रता प्राप्त करना भी है। एक बर्तन में यदि आप स्वच्छ निर्मल और ताजा जल रखना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि आप उसमें जो गन्दा जल है उसे पहले बाहर फेंक दीजिए। यदि आप उस पानी को लोटे में रहने देंगे और उसे निर्मल जल से भरना चाहेंगे तो यह सम्भव नहीं। यदि किसी वस्त्र पर आप रंग चढ़ाना चाहते हैं तो प्रथम उसे साबुन से धोना उचित है,

और बाद में उसमें रंग देना। यदि आप पहले उसे रंग लें और फिर साबुन से धोवें तो यह मूर्खता पूर्ण कार्य होगा। इसी प्रकार यदि किसी कमरे में दुर्गन्ध भरी हो और आप उसे सुगन्धित करना चाहते हों तो पहले दुर्गन्ध को निकालिये और फिर उसमें सुगन्ध की स्थापना कीजिये। इसी लिये कहा गया है प्रभु हमारे पापों को दूर कीजिये।

प्रभु की पूजा का प्रारम्भ पाप के अवसान से होता है। पाप प्रबल है। पापसैन्य पर विजय पाना आसान नहीं। प्रलोभनों को ठुकरा सकना सतत अभ्यास और साधना चाहता है। पूर्णता के लिये प्रयत्न शील पुरुष भी पद पद पर पापसैन्य से परास्त होता है। जिस समय, काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि शत्रु अपनी सेना सजा कर आक्रमण करते हैं उस समय मैदान में उठ कर लोहा लेना किसी वीर और धीर का काम है। अर्जुन ने गीता में कहा है :—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरित पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

"न जाने कौन सी शक्ति है जिस से कि मनुष्य न चाहते हुए भी जबरन पाप में प्रवृत्त किया जाता है" इस पाप के आक्रमण को रोकने के लिए योग दर्शन में उपाय बतलाया। उसमें लिखा है:—

'वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम्'

वितर्क जब आक्रमण करे तब प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिये। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मन की कुछ मूल प्रवृत्तियां हैं और उन मूल प्रवृतियों के बहाव में बह जाना पाप है और उनकी दिशा परिवर्तित कर देना पुण्य है। इसी प्रकार प्रतिपक्ष भावना का यह मतलब है कि यम नियम के विरोधी अर्थात् सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के स्थान पर मनुष्य में झूठ, हिंसा, चोरी, विषयासक्ति और परिग्रह की भावना का आक्रमण हो तो हमें उनके प्रतिपक्ष की भावना का हृदय में स्थापन करना चाहिये। जिस समय हृदय में काम वासना की आंधी उठे तो उस समय हमें चिन्तन करना चाहिये कि काम का परिणाम शक्ति और बल का विनाश, स्वास्थ्य और सौन्दर्य का ह्रास तथा पश्चाताप और आत्मग्लानि है। दूसरी ओर काम पर विजय अथवा ब्रह्मचर्य का परिणाम है विजय का उल्लास। अजीबोगरीब मस्ती तथा अनिर्वचनीय आत्मप्रसाद है।

पाप पर विजय पाने का दूसरा उपाय अविद्या या अज्ञान की जड़ पर कुठाराघात है। यह अज्ञान का ही परिणाम है कि सर्वत्र व्यापक परमात्मा को हम सीमित समझते हैं, उस सर्वज्ञ प्रभु से बचने का उपाय न होते हुए भी हम अपने मन में पाप और विषय वासनाओं को ला धरते हैं। मन से, वाणी से, समाज से छिप कर पाप करने में प्रभु की सर्व व्यापक सत्ता और सर्वज्ञता का ज्ञान न होना ही कारण है। यदि हम प्रभु की सत्ता को सर्वत्र देखें, पहाड़ों की गुफाओं, घनी अन्धेरी रात में, एकान्त से एकांत स्थान में, हृदय, में तो हमें पाप करने का साहस ही नहीं होगा। हम दूसरे की वस्तु चुराते हैं झूठ बोलते हैं, हिंसा करते हैं, क्यों? क्योंकि हम अपने को दूसरों से पृथक् समझ लेते हैं। 'मैं' और 'पराये' की भावना हमारे हृदय में आ जाती है। 'मैं' धन जमा करना शुरू करता हूँ, उसके लिए झूठ बोलता हूँ, गरीबों को सताता हूँ, व्यभिचार करता हूँ। यदि यह 'अहं' और 'पर' की भावना दूर हो जाए। मैं अपने को तथा दूसरों को परमेश्वर का पुत्र समझूं। एक पिता के पुत्रों का पारस्परिक जो स्नेह, सहिष्णुता, सहयोग का सम्बन्ध होता है वह धारणा करूं तो पाप मुझ से दूर हो जावेगा। वास्तव में यह अज्ञान और अविद्या ही पाप का कारण है। यह अविद्या ही कभी २ हमारे मन में अभिमान की भावना लाती है। इसी भावना के वश में हो कर पण्डित चमूपति जी के शब्दों में "कोई तो अपने आप को परमात्मा का बड़ा भाई कहता है और अन्य प्राणियों पर अत्याचार करना उस ज्येष्ठ भ्रातृत्व का स्वाभाविक फल जानता है और इसी अविद्या के वश में हो कर दूसरा व्यक्ति अपने को बहुत तुच्छ समझता है। यह दूसरों को अत्याचार करने का अवसर देता है। यदि कोई अत्याचार को सहने वाला न हो तो अत्याचारी कहां रह सकता है।

स्वामी जी ने लिखा है "अत्याचार करने की अपेक्षा अत्याचार सहने वाला अधिक पापी है।" यह अविद्या का दूसरा फल है। यह दोनों पाप की स्थितियां तभी दूर हो सकती हैं जब हमें प्रभु के विराट् रूप का दर्शन हो जाय।

जब अभिमान करने वाला मनुष्य प्रभु की सत्ता और विशालता का दर्शन करेगा तो उसका अभिमान नष्ट हो जायगा। अत्याचार समाप्त हो जायेंगे। इस लिए परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान होने पर ही हमारे पाप दूर हो सकते हैं। ऐ अभिमानी मनुष्य जरा प्रभु की शक्ति तो देख इस विराट विश्व को देख जिसके एक तुच्छ पत्र की महिमा और रचना को तू नहीं समझ सकता उसकी रचना करने वाले के ज्ञान पर नजर डाल, सम्पूर्ण विषयों के भण्डार वेद जिस के निःश्वास मात्र हैं, अनन्त काल से संसार में प्रकाश का प्रसार करने वाले सूर्य और चांद जिस की लीला के निमेषमात्र हैं, ऊंची लहरों में उमड़ता समुद्र जिस की आज्ञा से सीमा न छोड़ने को विवश है और जिसके हुक्म को बजाने के लिये हजारों आत्माएं हर वक्त हाथ जोड़ कर खड़ी हैं।

दूसरी ओर जब प्रभु विनाश के लिये अपना ताण्डव नृत्य प्रारम्भ करते हैं धरती काँप उठती है, आसमान में चमकने वाले चांद और सितारे, सूर्य और नक्षत्र टूट पड़ते हैं ऊंचे खड़े पहाड़ों का कण-कण चकनाचूर हो जाता है। विशाल जल के भंडार समुद्र सूख कर रेगिस्तान हो जाते हैं—सचमुच जो प्रभु "अणोरणीयान् महतोमहीयान्" है उस प्रभु का ध्यान आ जाता है। हम सोचने लगते हैं कि जब वह इतना महान् है, कण कण में उसको सत्ता है तो हम उसे छिप कर पाप कैसे कर सकते हैं। रास्ते में जाते हुए किसी की वस्तु को लेने की इच्छा हुई तो और कोई जाने या न जाने वह तो जान ही जायगा। रास्ते चलते हुये किसी सुन्दरी पर नजर पड़ी, मन में विषय का अनुभव हुआ, हमने कुचेष्टाएं भी प्रारम्भ की पर मेरे भाई, सब से बचने पर उस प्रभु से तो न बच सकोगे। यह भावना हृदय में लाइए—उसकी विशालता और व्यापकता का अनुभव कीजिये पाप दूर होंगे।

और यह परमेश्वर का विशाल रूप जहां अभिमान को दूर करने में सहायता देगा वहां वह अपने को हीन समझने वालों को भी आत्मिक बल और विश्वास पैदा करायेगा। अपनी गिरावट से रींगते और गिड़गिड़ाते मनुष्य! विश्व के निर्माण करने वाले विराट् प्रभु की दैवी घोषणा को क्या तू ने नहीं सुना?

सब धर्म के झगड़ों को छोड़ कर एक मेरी शरण पकड़, शोक मत कर मैं तुझे पापों से मुक्त करूंगा।" आप कह सकते हैं कि यह परमात्मा की घोषणा नहीं यह तो गीता में कृष्ण जी का वचन है। भगवान् कृष्ण तो मनुष्य थे। हाँ, भाई! वे मनुष्य थे। परन्तु आपको यह मालूम नहीं कि आग ही मनुष्य को जला सकती है, वस्तु को भस्म कर सकती है। लोहे का गोला इन्हें भस्म नहीं कर सकता। पर जरा उस अग्नि में लोहे के गोले को डाल दीजिये। गोला गर्म होगा, लाल होगा, अग्नि का रूप धारण करेगा और अग्नि की भांति वह भी कहेगा कि मैं विश्व को जला सकता हूं। ठीक यही बात आत्मा की है। आत्मा जब परमात्मा की अग्नि में अपने को जला लेता है, तद्रूप हो जाता है (लोहे की भांति) तब वह भी किसी अंश तक पाप दूर करने की शक्ति अपने अन्दर धारण कर लेता है। यही कारण है कि पाप और विषय वासनाओं से बचने के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गई। सचमुच पाप भावना, विषय भावना से जब मनुष्य की आत्मा का युद्ध होता है तब मनुष्य को परमात्मा के सिवाय और कोई शरण नहीं मिलती। वह निराश होकर परमात्मा को सर्वशक्तिमान्, व्यापक, विशाल, सर्वोत्पादक और दाता समझ कर कहता है कि "हे प्रभो तू मेरे पापों को दूर कर"—किसी ने कहा है:—

विषय का विषधर जब डसै, ओ३म् जड़ी को खा।
है नाग दमन। यह औषधि ढूंडन दूर न जा॥

अरे प्रभु के नाम का जप करने से तो यह लाभ होता है कि पाप पास फटकने ही नहीं पाता। दूर से दूर भागता चला जाता है। कहीं फूस आग की

चिनगारी के पास रह सकता है। कहा है—

जब ही नाम हृदय धरियो,
भयो पाप को नाश।
जैसे चिनगारी आग की,
परी पुराने घास॥

यह पापों को दूर करने की प्रार्थना क्यों की गई? हमने बतलाया कि जब तक अन्तःकरण शुद्ध न होगा तब तक अमृत या भद्र उस में डाला नहीं जा सकता।

एक महात्मा थे। किसी घर में भिक्षा मांगने गये। स्त्री भिक्षा देने आई और कहा महात्मन् भिक्षा लीजिये और कोई उपदेश दीजिये। उन्होंने कहा "आज नहीं कल उपदेश दूंगा"। देवी ने कहा "तो कल भी भिक्षा यहीं से लीजिये"। साधु गया। अगले दिन आया, कमण्डल में गोबर, कूड़ा करकट भर लिया। आवाज लगाई। देवी खीर का कटोरा लाई। कटोरे में से उसे कमण्डल में डालना चाहा पर देखा तो वहां कूड़ा करकट था। देवी ने कहा "महाराज! यह कमण्डल गन्दा है, लाइये इसे साफ कर लाऊं। साधु ने पूछा क्यों? देवी ने कहा खीर खराब हो जायेगी। महाराज ने कमण्डल दिया, उसमें खीर डाली गई। साधु ने उसे उपदेश दिया "मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा करकट और पापों का गोबर भरा है तब तक अमृत के उपदेश का लाभ नहीं होगा। उपदेशामृत को प्राप्त करना है तो पूर्व मन को शुद्ध करना चाहिए, बुरे संस्कारों को समाप्त करना चाहिये तभी भद्रता की प्राप्ति हो सकती है, सुख और आनन्द की ज्योति जाग उठती हैं।" इसी लिये भक्त मरुत नाम वाले परमात्मा से कहता है—

हृदय गुहा के अन्धकार को,
हे मरुतो! विलीन कर जाओ
इन सब भक्षक शक्ति गणों को
दूर भगाओ द्युति से आओ।

इस प्रकार इस मन्त्र में हमने देखा कि देव शब्द का तात्पर्य क्या है? परमेश्वर को देव इसलिये कहते हैं कि वह दानी है और हमें अपने में दान की भावना लानी चाहिये। उपनिषदों में एक कहानी आती है कि एक बार देव, दानव और मानव तीनों प्रजापति के पास उपदेश के लिये पहुँचे। प्रजापति ने सबको एक ही अक्षर 'द' का उपदेश दिया। देवों ने कहा हम देवता लोग कामी न बने, हमें विषय भोगों का चस्का न लग सके अतः हमें ब्रह्मा ने 'द' अक्षर द्वारा 'दमन' करने की सीख दी है। दानवों ने कहा हम दानव बड़े क्रोधी और दयाहीन हो गये हैं अतः हमें ब्रह्मा ने 'द' अक्षर के द्वारा 'दया' करने की सीख दी है। मानवों ने कहा 'हम मानव बड़े लोभी और धन संचय के पीछे पागल हो गये हैं, हमें प्रजापति ने दान करने का उपदेश दिया है। इस प्रकार देव शब्द से जब हम भगवान् को पुकारते हैं और उससे अपने लिये कुछ दान चाहते हैं तो हमको भी दूसरों को देना चाहिए। दान देना मानव का कर्तव्य है फिर चाहे वह दान श्रद्धा, अश्रद्धा, प्रेम और भय, कर्तव्य और लज्जा किसी भी भावना से दे। हम जिस समय परमेश्वर को 'देव' शब्द से पुकारते है तो हमें अपने में 'देवत्व' की स्थापना करनी चाहिए। जब दुःखियों की पुकार सुनाई दे, विधवाओं की आहें हमारे कानों में पड़ें, जब अनाथों के अश्रुपात हों, जब देश पर, धर्म पर, जाति पर आपत्ति आ जाए तब हे मानव, हे देव के उपासक मनुष्य तू भी देव बन जा और तन, मन, धन सब का दान करदे। क्या देव के उपासक भामाशाह का तुझे स्मरण नहीं?

इसके बाद हमने सर्वोत्पादक और प्रेरक भगवान् को याद किया और कहा कि हमारे सब पापों को दूर कीजिये। जब बर्तन खाली होगा तभी उसमें शुद्ध जल आ सकता है। मंगलमय भगवान् मनुष्य के हृदय में सदा कल्याण कारिणी प्रेरणायें देते हैं। देवासुर संग्राम की बातें हमने बहुत सुनी हैं। पर क्या कभी सोचा है कि यह देवासुर संग्राम क्या है? यह तो मनुष्य के हृदय में सदा होता रहता है। एक ओर सांसारिक विषय रूपी असुर हमारे मन पर आक्रमण करता है और दूसरी ओर

प्रेरक प्रभु की दिव्य भावनाएं उसका मुकाबला करती हैं। दिव्य भावनाओं की पराजय मानव का पतन है और उनकी विजय मानव का उत्थान है। हम जब बुरे रास्ते पर जा रहे होते हैं तो हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक सब प्रकार की बुराइयों को जानने वाला, घट घट व्यापी वह प्रभु हमें मना करता है, रोकता है आप कहेंगे अरे भाई जब वह निराकार है तब कैसे रोक सकता है? पर सोचने की बात तो यह है कि यदि वह साकार होता तब तो हम उससे छिप कर पाप कर सकते थे पर अब तो वह संसार के प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है अतः उससे कैसे बचा जाय? इसीलिये तो वह सदा जागरूक पहरेदार की तरह काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, और दूसरी बुराइयों से हमारी रक्षा करता है इन चोरों से हमारे चरित्र रूपी धन की रक्षा करता है वह तो हम से बात करता है।

इस प्रकार प्रभु से सम्पूर्ण बुराइयों को दूर करने के बाद कहा है "यद्भद्रं तन्न आसुव" अर्थात् जो भलाई है वह तुम हमें प्राप्त कराओ।

जब भगवान् से हमने हृदय से पापों के निकालने की प्रार्थना की तो पापों के निकलने के बाद यह स्थान रिक्त हो गया। यदि वह रिक्त रहा तो जिस प्रकार खाली स्थान में वायु के गोले और तूफान आते हैं ठीक उसी प्रकार मन के इस खाली स्थान की पूर्ति उच्च भावनाओं, विचारों या भद्रता ने न की तो इसका परिणाम यह होगा कि 'खाली मन शैतान का घर होता है' इस नियम के अनुसार अभद्र विचारों का प्रवेश हो जायगा। इस लिये पापों के दूर करने के साथ ही साथ भद्र विचारों के लाने की प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है। भद्र विचार क्या है? भद्र विचार का मतलब यह है कि हमें उच्च जीवन की पूर्णता तो मुक्ति को प्राप्त करने पर ही होगी। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हम ब्रह्म को प्राप्त करें। इस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये मनुष्य को निम्नलिखित बातों को अपने अन्दर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। १—सात्विक भोजन २—प्रसन्न चित्त रहना ३—केवल आलोचक न बनना ४—स्वाध्याय शील होना ५—सच्चा सेवक बनना और ६—मन तथा बुद्धि से प्रभु को भक्ति करने वाला होना। यदि इन गुणों को हम अपने में धारण करेंगे तो हम ब्रह्म को प्राप्त कर सकेंगे। उस समय हमारी स्थिति यह हो जायगी कि हम अपने आपको सब प्राणियों में और सबको अपने में अनुभव करने लगेंगे और उसका परिणाम यह होगा कि राग और द्वेष की अभद्र भावनायें हमारे मन से निकल जायेंगी। ईशोपनिषद् में इसी स्थिति के सम्बन्ध में कहा गया है:—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततोन विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैव भूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनु पश्यतः॥

अर्थात् जो व्यक्ति अपने समान सब प्राणियों को देखता है और सब में अपने को देखता है वह किसी से घृणा नहीं करता वह किसी से निन्दित नहीं होता। जब मनुष्य को सब प्राणी अपने में प्रतीत होने लगते हैं तब न तो उसे मोह होता है और न शोक ही बचता है। यह पूर्ण ब्रह्मज्ञान की स्थिति है। जब यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तब ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी नहीं रहती और उपासक अपने उपास्य के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। इस अवस्था का उल्लेख वह दूसरे से नहीं कर सकता क्योंकि ज्यों ही 'दूसरे' शब्द का उच्चारण किया त्यों ही अवस्था बिगड़ी। मैं भी तो कहने की स्थिति में वह नहीं रहता। क्योंकि मैं रहते ही औरों से भिन्न होने की भावना मन में आ जाती है। और जब राग द्वेष नहीं, मोह शोक नहीं तो तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार यह आनन्दमय अवस्था कहलाती है। बृहदारण्यक उपनिषद् ने यह समझ कर कि उस समय आनन्द का अनुभव करने वाला भी कहां रहता है इस अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है। 'ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति' अथवा 'ब्रह्म भविति य एवं वेद' जिसने ब्रह्म को जान लिया वह ब्रह्म ही हो गया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जीव की अलग सत्ता ही नहीं है। सत्ता

तो है पर वह उस समय लुप्त सी हो जाती है।

इस प्रकार पापों को दूर करने के बाद मनुष्य को 'शक्ति शून्यता' के सिद्धान्त की भांति प्रभु-भक्ति से अपने हृदय को भरना पड़ता है।

इसलिये हमें अपने सामने पापों का स्थान रिक्त करके उच्च लक्ष्य रखना होगा। प्रभु भक्ति या संध्या में हमारा मन नहीं लगता। क्यों? क्या सोचा है आपने? मैं बताता हूँ आपको। आप जरा अपने सामने उच्च उद्देश्य रख कर चलिये। तो आपको आध्यात्मिक भोजन रुचेगा, न रुचने का कारण भूख का न होना है। यह भूख क्यों नहीं? कारण जीवन जिस कठोर साधना का परिणाम है यह समझा ही नहीं, इसलिये खा-पी कर और मौज मना करके अपने जीवन के अमूल्य दिनों को खो रहे हैं। यदि हमारे सामने जीवन का कोई उच्च उद्देश्य हो तो उस महान् उद्देश्य को प्राप्त कर पाने के लिये असाधारण शक्ति की आवश्यकता अनुभव होगी। मनुष्य की शक्तियां सीमित और साधारण हैं। सर्व साधारण को असाधारण शक्ति की आवश्यकता प्रतीत न होने से अपनी शक्तियों की तुच्छता का अनुभव नहीं होता। यदि संकल्प की प्रदीप्त अग्नि प्रज्वलित हो और सम्पूर्ण जीवन किसी महान उद्देश्य के लिये अर्पण किया हुआ हो तो व्यक्ति को अपनी शक्ति की परिमितता को समाप्त करने के लिये वह सात्विक भोगी बनता है, प्रभु भक्त बनता है और मानव की सेवा को अपना लक्ष्य बनाता है। इस प्रकार की हृदय की पापों से हुई रिक्तता प्रभु भक्ति एवं प्राप्ति के उद्देश्य द्वारा पूर्ण होती है। सचमुचः—

प्रेम स्वयमेव पगे दूसरे के मन में।
जैसे मिले ज्ञानी से विमल ज्ञान सज्जन को,
शील उपजावें सन्त सुजन सदन में।
वैसे ही प्रदीप्त होगी जब ज्ञान-वह्नि तभी,
होंगे प्रतिबुद्ध प्रभु मानस भवन में।
होंगे मेरे मन में विराजमान दीनबन्धु,
देखूंगा उन्हें मैं जब दीन दुखी जन में।

—***—

[२]

कस्मै देवाय हविषा विधेम

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

(हिरण्यगर्भः) सूर्यादि समस्त ब्रह्मांड जिसके भीतर हैं वह प्रभु (अग्रे) सृष्ट्युत्पत्ति के पूर्व (सम् अवर्तत) विद्यमान था (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार का (जातः) उत्पन्न करने वाला (एकः) अकेला (पतिः) स्वामी (आसीत्) है। (सः) उसने (पृथिवीम्) पृथ्वी को (उत) और (इमाम्) इस (द्याम) सूर्य को (दाधार) धारण किया है, (कस्मै) सुख के भण्डार (देवाय) परमात्मा के लिए (हविषा) प्रेम से (विधेम) भक्ति करें अथवा (हविषा) आत्मार्पण द्वारा इस प्रभु की पूजा करें।

इस मन्त्र में भक्त के हृदय में आई अभिमान की भावना का परिहार करने के लिये परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन किया गया है कि भक्त अपने हृदय से अभिमान को निकाल दे। जब तक व्यक्ति अपने से बड़े को नहीं देखता तब तक वह अभिमान में रहता है। ऊंट जब पहाड़ के समीप जाता है तब अपना बड़प्पन भूल जाता हैं। अतः हे भक्त तू परमात्मा के विराट् रूप को देख। उसके सामने तू पर्वत के आगे राई के बराबर भी नहीं है। सारा ब्रह्माण्ड उसके अन्दर है तो एक मनुष्य की क्या सत्ता है। आइये अब हम प्रत्येक पद की व्याख्या करें।

वह प्रभु हिरण्यगर्भः है। हिरण्यगर्भः शब्द का अर्थ है चमकीले पदार्थों को अपने गर्भ में रखने वाला। सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व आकाश में चमकने वाले नक्षत्र, सूर्य और दूसरे सितारे नहीं थे यह सब उस समय तक परमेश्वर के गर्भ में थे। परमेश्वर के गर्भ में होने का तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिकों के मत के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व केवल आकाश था। इस आकाश का कुछ अंश कालान्तर में वाष्परूप में परिणित हुआ। आकाश के बीच में दूर २ तक जलते हुने वाष्पों के समूह बन गये। ये समूह (Nebula) (नभस्-तेज तत्व के बादल) हैं। ये नभस् नाना आकारों के होते हैं। एक नभस् के कण आकर्षण के कारण परस्पर अधिकाधिक समीप होते चले जाते हैं। समय पाकर नभस् में कहीं कहीं बड़े २ पुंज बन जाते हैं और कहीं २ छोटे छोटे। बड़े पुंज समयान्तर में तारे या सूर्य बन जाते हैं और छोटे पुंज ग्रह बन जाते हैं। तारा या सूर्य एक ही वस्तु हैं। आकाश में उज्ज्वल और स्थिर रूप से प्रकाश देने वाले चमकीले पदार्थ जिनके चारों ओर छोटे चमकीले पदार्थ चक्कर काटते हैं सूर्य कहलाते हैं। जैसे यह आकाश में दिखाई देने वाला सूर्य है। इस सूर्य के चारों ओर नवग्रह घूम रहे हैं। मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, पृथ्वी, राहु, केतु और अवान्तर ग्रह ये नौ ग्रह हैं। इन ग्रहों के चारों ओर चक्कर काटने वाले उपग्रह कहलाते हैं जैसे पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटने वाला चन्द्रमा उपग्रह है। ग्रह और उपग्रह यह सब सूर्य के परिवार के हैं अतः सूर्य सहित इनको हम सौरमण्डल कहते हैं। सूर्य अत्यन्त दीप्त वाष्पों का पुंज है और उसी के साथ उसी के सदृश कई छोटे २ पिण्ड होते हैं। जब ये वाष्प कुछ और एकत्रित हो जाते हैं तो तारा और घना होता है। क्रमशः यह ठोस और ठण्डा होने लगता है। ताप और प्रकाश कम हो जाता है। और अन्त में तो बुझती आग के समान कभी जलता और कभी बुझता है और अन्त में यह मृत सूर्य के रूप में आ जाता है। उस समय भी इसका अस्तित्व बना रहता है। उस समय कभी तो यह किसी अन्य नभस् या छोटे २ उल्का सदृश पिण्डों से उलझ कर अपना अन्त कर लेता है अथवा जल उठता है। यह एक सूर्य का जीवन वृत्तान्त है। सृष्टि की उत्पत्ति से पहले यह विशाल दीखने वाला सूर्य उसी प्रभु के गर्भ में था। अरे मनुष्य, तू अभिमान करता है अपनी सत्ता का, अपने बल का, ज्ञान का और रूप का। क्या तुझे पता नहीं कि इस विशाल विश्व को धारण करने वाला प्रभु तेरी अपेक्षा कितना महान् है। देख, देख आंख खोल कर देख यह सृष्टि कितनी विशाल है। मेरी बहनो और भाइयो इसका कभी ध्यान करके देखो, हिमालय की एक कन्दरा में कितनी जड़ी, बूटियां और बनस्पतियां हैं। इस की कभी कोई गिनती नहीं कर सका, फिर सारे हिमालय पर क्या कुछ है? इसकी गिनती कौन करेगा? परन्तु यह हिमालय तो उस संसार का एक छोटा सा भाग है। इतने बड़े समुद्र हैं पृथ्वी पर जिनमें कई कई हिमालय डूब सकते हैं। इतनी नदियां हैं। पृथ्वी को बने पौने दो अरब वर्ष बीत जाने पर भी आज भी कितने ही प्रदेश ऐसे हैं जहाँ मनुष्य पहुंच नहीं पाया, कम से कम आज का मनुष्य तो पहुंच नहीं पाया किन्तु यह विशाल पृथ्वी सूर्य की तुलना में एक तुच्छ सा गोला है, तेरह लाख गुना बड़ा यह तपने वाला सूर्य। हमारी पृथ्वी के समान तेरह लाख पृथ्वियां इसमें समा सकती हैं। बहुत बड़ा हुआ न सूर्य। परन्तु सूर्य से भी बड़ा है अगस्त्य तारा इस विशाल सूर्य से चमकते हुए हुए सूर्य से जिसमें चमकती हुई तेरह लाख पृथ्वी समा सकती हैं अगस्त्य तारा एक करोड़ गुणा बड़ा है और अगस्त्य से भी बड़ा है एक और तारा जिसे ज्येष्ठा कहते हैं इससे भी बड़ा कोई परम ज्येष्ठ है या नहीं इसका क्या पता। इतनी विशाल है यह सृष्टि। है कोई अन्त इस विशालता का? है कोई सीमा इस सृष्टि की? जानते हो भाई यह सब पहले कहां था? यह सब कुछ परमात्मा के गर्भ में था और उस परमात्मा ने अपनी सविता शक्ति द्वारा इसे प्रकट किया है। तब हे मनुष्य तू क्यों उससे मांगते हुए अभिमान करता है?

इस प्रकार इस मन्त्र में परमेश्वर के विशाल रूप द्वारा यह बतलाया गया है कि यदि मनुष्य के मन में अभिमान का उदय हुआ हो तो हे मनुष्य तू परमेश्वर से अपनी तुलना कर और देख कि अभिमान तेरा कहां तक टिका है। विचार कर तो तुझे पता लगेगा कि सब पापों की जड़ अविद्या व अज्ञान है। यह अज्ञान ही वह दीवार है जिसने आत्मा को सीमित दृष्टि और स्वार्थबद्ध बना रखा है। यही वह आवरण है जिसने परिच्छिन्न आत्मा को अनन्त आत्मा के दर्शन से वंचित कर रखा है। यही वह मुलम्मा है जिसने हमारे विशुद्ध स्वरूप को हम से ओझल किया हुआ है।

इस प्रकार यहां हमने बतलाया कि इस संसार में मनुष्य आता है बचने पर भी पाप उसके ऊपर आक्रमण करते हैं। यदि बचा नहीं जा सकता तो क्या उसके लिए प्रयत्न बेकार है? क्या उसका कोई उपाय नहीं। उपाय है और वह उपाय प्रार्थना के इस दूसरे मन्त्र में बतलाया गया है। पाप का कारण मनुष्य का अज्ञान और अभिमान है। इनको दूर करने के लिये आवश्यक बात यह है कि हमें प्रभु के विशाल रूप का दर्शन करना चाहिये। यदि हम उसकी विशालता और अपनी कल्पना का अनुभव करें उसके नाम को हृदय में स्थान दें तो पाप समाप्त हो जायेंगे।

सूर्य चन्द्र नभ पवन अग्नि जल,
विद्युत, किरण, शक्ति तारे।
उसी नियन्ता के नियमों में,
बन्धे चल रहे हैं सारे।
अटल नियम हैं इन देवों के,
इन्हें तोड़ना है न सरल।
स्वयं मिटे जो इन्हें मिटाता,
हो वह कितना क्यों न सबल।
नियम और बन्धन में प्रभु के,
निहित हुआ है जग कल्याण।
इनका करके अति क्रमण नर,
पा सकता न कहीं भी त्राण।
हो कितना ही क्षमता शाली,
वह शतवीर्य और बल धाम।
ऐसे समय न साथी संगी,
आ सकते उसके कुछ काम।

मन्त्र के आगे के पद हैं:—

'भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' उत्पन्न हुए संसार का उत्पन्न करने वाला वह प्रभु अकेला स्वामी है और "स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्" उसने पृथ्वी को और द्युलोक को भी धारण किया है।

जब हम इस विशाल विश्व पर अपनी दृष्टि डालते हैं तब हमें आश्चर्य होता है। हम देखते हैं आकाश में चमकने वाले ये अनन्त तारे, नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह कितने नियम से घूम रहे हैं, सुना नहीं कि कभी कोई ग्रह किसी से टकराया हो, किसी ने अपनी पटरी बदल दी हो, किसी दूसरे के क्षेत्र पर अधिकार करने को चढ़ाई की हो, तब हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता और बरबस हमारे मुख से निकल पड़ता है:—

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोममरुत चंचल पवमान।
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान॥

और हमें ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व की ये महा शक्तियां किसी अपने प्रियतम की खोज में घूम रही है।

महानील इस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते से संधान॥

इस महान् सृष्टि को देखकर उसके रचियता का भान होता है। बड़े से बड़े नास्तिक भी जब विश्व में एक क्रम देखते हैं तो उनके मुख से निकल पड़ता है:—

हे विराट्! हे विश्वदेव! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान।
मन्दगंभीर धीर स्वर-संयुत
यही कर रहा सागर गान॥

तो इस संसार का रचयिता, इस पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पाताल लोक का निर्माता यह प्रभु है।

इस प्रभु की रचना इस विराट् विश्व पर जब हम अपनी दृष्टि डालते हैं तो हमें उसकी महानता और अपनी अल्पज्ञता का बोध होता है। हम अपने को जो बहुत महान् विद्वान् समझ कर घमण्ड में चूर रहते हैं उस घमण्ड का अन्त होता है। धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों का विश्वास है कि मनुष्य के पाप में प्रवृत्त होने के दो कारण हैं। एक तो मनुष्य अपने को संसार में सबसे गया बीता समझे अर्थात् उसमें अपने को हीन समझने की भावना हो और दूसरा कारण यह है कि वह अपने को गीता के शब्दों में—

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवानसुखी। मैं स्वामी हूँ, मैं भोक्ता हूं, मैं पूर्ण हूँ, मैं सुखी हूँ तथा—

'आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशोमया' मैं धनवान हूँ, मैं बड़े खानदान का हूँ, मेरे समान दुनिया में कौन है। इनको क्रमशः मनोविज्ञान की भाषा में अज्ञान के दो रूप अवमान 'इनफीरियारिटी कम्पलेक्स' और अभिमान 'सुपीरियारिटी कम्पलेक्स' कह सकते हैं। अवमान में पड़ा हुआ मनुष्य अपना इतना भी अस्तित्व नहीं जानता जितना जड़ प्रकृति का। वह रींगता है और गिड़गिड़ाता है। आत्म-विश्वास उसमें नहीं। काम करने का उत्साह उससे दूर है। इसी को लोक में भय कहते हैं। भयभीत मनुष्य पाप को बढ़ाने में सहायता देते हैं। वे यह करते हैं अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध नहीं करते और परिणाम यह होता है कि अत्याचार करने वालों को उत्साह मिलता है। यही कारण है कि स्वामी जी महाराज ने लिखा है अत्याचार सहने वाला अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अधिक पापी है। और अभिमान में पड़ा हुआ अपने आपको परमात्मा का बड़ा भाई कहता है और अन्य प्राणियों पर अत्याचार करना उस ज्येष्ठ भ्रातृत्व का स्वाभाविक फल जानता है। वह अपनी वास्तविक स्थिति से ऊंचा उड़ा। यह उक्त अज्ञान का एक रूप अभिमान है।

इन दोनों अभिमान और अवमान को दूर करने के लिए प्रार्थना के इन मन्त्रों में परमेश्वर के विशाल और महान् रूप का वर्णन करके बताया गया है कि हे अवमान से सताए हुए मनुष्य तू क्यों भयभीत है, तू किस से डर रहा है संसार के ये अत्याचारी तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते तू उस प्रभु में विश्वास कर जो इस विश्व का निर्माता है। अरे देखता नहीं वह शक्ति जड़ परमाणुओं से सुन्दर संसार खड़ा करती है, वह शक्ति नीचे पड़े हुओं को उठाती है, डूबतों को बचाती है। पतित से पतित का उद्धार करती है। उसकी एक वर्षा से सूखे और मुरझाये हुए घास, पत्तों और पेड़ फिर से लह लहा उठते हैं। जो प्रलय के बाद उस विशाल विश्व की रचना कर सकता है जिसने द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और इस पृथ्वी लोक का निर्माण किया है उसके लिए तेरी रक्षा करना कौन बड़ा कठिन काम है।

अरे दुःखों से दुःखी मानव सुन, तू उस सृष्टि कर्ता की रचना को देख ? उसकी लीला अपरम्पार है, जब तू नजर उठायेगा उसकी महान् रचना को देखेगा तो चमकते सूर्य, चन्द्र, टिमटिमाते सितारे उमड़ते समुद्र, द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक तुझे प्रतीत होंगे कि उसी की महिमा गा रहे हैं, उसको ही अपना स्वामी समझ रहे हैं। वह विद्यमान इन लोगों का ही स्वामी नहीं वह तो पहले भी इनका स्वामी था वह तो सदा रहता है।

और अभिमानी मनुष्य तू किस का अभिमान कर रहा है। इस विश्व की रचना में उस विराट् प्रभु का क्या हाथ दिखाई नहीं देता, उस प्रभु के नियम अटूट हैं, न्याय अक्षुण्य है, सम्पूर्ण विषयों के भण्डार वेद जिसके निश्वास मात्र हैं, अन्तकाल से संसार में प्रकाश का प्रसार करने वाले सूर्य और चांद जिसके नेत्र हैं। अरे अभिमानी मनुष्य क्या तू गर्व करता है यदि वह प्रभु अपना तांडव नृत्य प्रारम्भ करे तो धरती कांपने लगती है, आसमान में चमकने वाले सूर्य, चांद सितारे टूट पड़ते हैं। ऊंचे खड़े पहाड़ों का कण कण चकनाचूर हो जाता है। विशाल समुद्र की बूंद २ सूखकर आसमान में विलीन हो जाती है। परमेश्वर ने इन रूपों

का दर्शन इस मन्त्र में कराया गया है। जहां सूर्य का अनन्त प्रकाश है वहां टिमटिमाता दीपक क्या ? जहां असीम समुद्र है वहां बूंद की क्या हस्ती ? मनुष्य को अपनी अल्पज्ञता का अनुभव होता है, अभिमान छूटता है, हृदय नम्र होता है, और मस्तक श्रद्धा से उसके पैरों में झुक जाता है और भक्त कहने लगता है "भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां"। और भक्ति से भरा भक्त बोल उठता है:—

यह चमकीले चन्द्र सूर्य हैं।
जिसके नित्य नवीन नयन।
सृष्टि काल में जब कि सदा ही।
करता वह इनका प्रणयन।
एक वाहिनी अग्नि बनी है।
जिस विराट् का मुख छविमान।
उस महान् जगदीश्वर को है।
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम।

इस प्रकार हमने देखा कि मन में जो पापों का उद्रेक होता है, जागृति होती है उसके दो कारण हैं एक तो अपने को सबसे गया बीता समझना जिसे दूसरे शब्दों में अवमान की भावना कह सकते हैं अथवा मनुष्य पाप में अभिमान के कारण प्रवृत्त होता है और यह दोनों भावनाएं तब नष्ट हो जाती हैं जब प्रभु की रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक शक्तियों का बोध होता है। परन्तु जब वह यह समझने लगता है कि मैं परमेश्वर का बड़ा भाई हूँ तब वह अभिमान में आता है और अभिमान उसे ले डूबता है। शिवाजी के विषय में एक कहानी आती है कि एक बार उनके मन में अपनी सेनाओं को परेड करते हुए देखकर यह अभिमान की भावना आई कि इन लोगों को भोजन देने वाला मैं ही हूँ। यदि मैं चाहूँ तो इनको भूखा रख सकता हूँ। साधारणतया दुनियां के बादशाह शासक और अधिकारी अपने अधीन काम करने वालों के प्रति यही भावना रखते हैं। शिवाजी ने अपने इन विचारों को समर्थ गुरु रामदास के सामने भी किसी रूप में प्रकट किया। गुरु ने उनकी हार्दिक भावना जान कर यह सोचा कि यदि इन्हें अभिमान ने घेर लिया तो भारत का यह सूर्य शिवाजी मुगलों के अन्याय रूपी अन्धकार को दूर करने में समर्थ न हो सकेगा, वे शिवाजी को लेकर एक चट्टान के पास पहुँचे। उन्होंने शिवाजी से कहा कि कुछ मजदूर बुलाकर इस चट्टान को उखड़वाओ, चट्टान उखाड़ी गई और देखा गया कि दो पत्थरों के बीच में एक पीला सा जीवित मेंढक विद्यमान है। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी से पूछा 'बेटा' यह तो बताओ यह मेंढक किसका दिया खाता होगा'? बुद्धिमान् शिवाजी गुरु जी के पैरों पर गिर पड़े और अपने अभिमान के लिये उन्होंने क्षमा याचना की।

इस प्रकार कहते हैं कि मनुष्य को जब अवमान अर्थात् अपने मन में निराशा एवं तुच्छता की भावना आए अथवा जब मन में अभिमान की भावना आये तो दोनों दशाओं में वह प्रभु की महानता का, उसकी विशालता का स्मरण करे तो उसमें सद्-विवेक जागृत होगा पापों का नाश होगा। और पापों का नाश हो जाने के बाद हृदय में भद्रता, जीवन में सुख, मन में आनन्द और आत्मा में पवित्रता लाने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) दिव्य गुण विशिष्ट परमात्मा के लिये (हविषा) आत्मार्पण द्वारा (विधेम) अर्पित करे।

मनुष्य को दुःख क्यों होता है, कभी सोचा है आपने इस विषय में ? संसार के समस्त दुःखों का मूल ममता है। दुःख प्रायः किसी न किसी वस्तु के पृथक् होने से हुआ करते हैं परन्तु इन्हीं वस्तुओं को मनुष्य स्वयं छोड़ देता है तब दुःख नहीं अपितु सुख हुआ करता है। एक अध्यापक को विद्यालय में अनेक वस्तुएं पुस्तकें चित्र, कुर्सी, मेज आदि प्रयोग के लिये मिली हुई हैं। वह उनका कालेज के घण्टों में उपयोग करता है। वह उस समय उन वस्तुओं की सुरक्षा करता है परन्तु जब जाता है तब यदि उसे कोई कहे कि इन वस्तुओं को लेते जाइए तो वह उन्हें भार रूप समझता है। अध्यापक ने जिस प्रकार इन वस्तुओं में अपना केवल प्रयोगाधिकार समझा तब उसे इन वस्तुओं के

छोड़ने में किसी प्रकार का दुःख नहीं हुआ परन्तु यदि वह इन वस्तुओं में ममता जोड़ देता है कि ये वस्तुयें मेरी हैं, तब उन्हें इन वस्तुओं के छोड़ने में कष्ट अनुभव करना पड़ता है। इसी प्रकार प्राणियों में जब तक ममता का प्राबल्य रहता है तब तक वह किसी वस्तु को छोड़ना नहीं चाहता। परन्तु जब वह वस्तुओं को, देह को, धन को प्रभु का समझ कर वैराग्य भाव से भोगना प्रारम्भ कर देता है तब उस परमेश्वर के गुणों के प्रकाश के लिये यह देह, धन, सब कुछ साधन रूप हो जाता है और तब क्योंकि हम इसके प्रयोक्ता मात्र होते हैं हमें संसार में किसी वस्तु में आसक्ति नहीं होती। और आसक्ति के समाप्त होते ही हम सम्राट् हो जायेंगे। सारा सामर्थ्य हमारे हाथ में आ जायगा, उस समय हम सुख स्वरूप भगवान् की गोद में बैठ जायेंगे और जब उस सुख स्वरूप की गोद में बैठ जायेंगे तब संसार में किस की चिन्ता, कैसा दुःख।

जिन्होंने अपने को प्रभु के लिए अर्पित कर दिया संसार की कोई विपत्ति उन्हें भयभीत नहीं कर सकी। इंगलैण्ड का हुतात्मा-बलिवीर क्रेन्मर का उदाहरण हमारे सामने है। खूनी मेरी के अत्याचारों ने जब सारे इंगलैंड को कंपा दिया, प्रोटेस्टैंटों को आग और फांसी पर लटका दिया और इस वीर क्रेन्मर की बारी आई तो उसने कहा "मुझे जलाते हो। अच्छा जला डालो, लो पहले यह दाहिना हाथ जलाओ और फिर हंसते २ वह जल गया। किडले और लैटिमर ने मरते मरते कहा था "हमें जलाना चाहते हो? हमें कौन जला सकता है? हम तो धर्म की ऐसी ज्योति जला रहे हैं कि उसे कोई नहीं बुझा सकता। शरीर रूपी इस मोमबत्ती को, इस चरबी को, जलाकर सत्तत्वों की ज्योति जगमगाना तो हमारा काम ही है। देह जल जायेगा। मिट जायेगा, यह तो एक दिन जाने वाला है।

राम प्रसाद बिस्मिल को फांसी की सजा दे दी गई। गोरखपुर के कलक्टर ने उसे सरकार की ओर से सूचना दी कि यदि तुम भविष्य में ब्रिटिश शासन को भारत से निकालने के लिये प्रयत्न न करने का आश्वासन दो तो तुम्हें फांसी से मुक्त कर दिया जायेगा। दयानन्द का भक्त यह बिस्मिल बड़ी जोर से हंसा और कहा—मुझे संसार की कोई शक्ति नहीं मार सकती। मूर्ख क्या तुम समझते हो कि तुम मुझे मार डालोगे—पर यह सम्भव नहीं। और अन्त में प्रभु की गोदी में बैठ कर संध्या करते हुए बड़ी प्रसन्नता के साथ राम प्रसाद बिस्मिल फांसी के तख्ते पर झूल गया। गोरखपुर की जेल की दीवारों से आज भी "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम" की ध्वनि सुनाई दे रही है। सुनने वालो, सुनो, कान खोल कर सुनो। संसार में जिन्होंने आत्म समर्पण कर दिया, अपने को प्रभु के लिये अर्पित कर दिया—उन्हें संसार में कोई कष्ट कोई दुःख, कोई विपत्ति नहीं डरा सकती इसलिए:—

रे मन ! उसका कर चिन्तन,
ऊंचे ऊंचे व्योम विचुम्बित।
शैल शृंग उत्तुंग हिमावृत,
अविचल पर्वत हैं महिमान्वित।
करते जिसका आराधन।
विरहिन व्याकुल सी सरिताएं,
बढ़ा बढ़ा कर दीर्घ भुजाएं।
गा-गाकर जिसकी महिलायें,
करती अविरत आवाहन।
युग युग के वियोग से विह्वल,
सागर जिसे पुकारे प्रतिपल।
सभी दिशायें फैला आंचल,
करतीं जिसका अभिनन्दन,
रे मन ! उसका कर चिन्तन।

—❀❀❀—

[३]

जीवात्मा क्या है ?

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते, प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यछायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

(यः) जो (आत्मदा) आत्म शक्ति या आत्म ज्ञान का देने वाला है (बलदा) शारीरिक और मानसिक बल का देने वाला है (यस्य) जिस की (विश्व) सब (उपासते) उपासना करते हैं (यस्य) जिसके (प्रशिषं) शासन, शिक्षा को (देवाः) विद्वान् मानते हैं। (यस्य) जिसका (छाया) अक्षय (अमृतम्) मोक्ष है (यस्य) जिसका (आश्रय न लेना) (मृत्युः) मृत्यु है। (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) प्रभु के लिये (हविषा) आत्मार्पण द्वारा (विधेम) हम भक्ति किया करें।

इस मन्त्र में परमेश्वर से आत्मशक्ति की याचना करते हुये उसे आत्मदा शब्द से पुकारा गया है। जिसके पास जो वस्तु होगी या देने की शक्ति होगी उससे ही तो उस वस्तु की याचना की जा सकती है। आत्मशक्ति बिना प्रभु के और कोई नहीं दे सकता अतः सब से पहले प्रभु को आत्मिक शक्ति का दाता कह कर पुकारा गया। पर यह आत्मा है क्या जिसकी शक्ति हमें प्राप्त करनी है। इस आत्मा के विषय में लक्षण करते हुए न्याय दर्शनकार ने लिखा है:—इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति।

अर्थात् इच्छा, द्वेष, पुरुषार्थबल, आनन्द, विलाप, अप्रसन्नता, ज्ञान, आत्मा के चिह्न या लक्षण माने गये हैं। वैशेषिक दर्शनकार ने इनके अतिरिक्त भी कुछ चिह्न बतलाये हैं। उसका सूत्र है:—

प्राणापान निमेषोन्मेष मनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः सुख दुःखेच्छाद्वेषो प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥

(प्राण) प्राण वायु को बाहर निकालना, (अपान) प्राण को बाहर से भीतर की ओर लेना (निमेष) आँख को मीचना (उन्मेष) आंख का खोलना (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों का चलाना (अन्तरविकाराः) भिन्न २ क्षुधा तृषा, हर्ष, शोकादियुक्त होना ये जीवात्मा के गुण हैं। ऋग्वेद में इस प्रकार लिखा है:—

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ऋ० १। १६४। ३० ॥

(अनत्) श्वास लेता हुआ (एजद्) गतिमान (तुरगातु) शीघ्रगामी (जीवम्) चेतना युक्त (आपस्त्यानाम्) शरीरों के (मध्ये) बीच में (ध्रुवं) स्थिरता से (शये) निवास करता है (मृतस्य) मृत प्राणी का (अमर्त्यो जीवो) वह अमर जीव (मर्त्येना-स्वधाभि) अनित्य प्रकृति भावों (कर्म-वासना) के साथ (स योनिः) अन्य योनियों (शरीरों) के साथ विचरता है।

यह तो जीवात्मा के विषय में एक प्रकार का विचार हुआ। जीव के सम्बन्ध में मुख्यतया दो प्रकार के मत और भी पाये जाते हैं। एक तो मायावादियों का है जो कहते हैं कि जीव की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं किन्तु अविद्या के कारण ब्रह्म ही जीव हो जाता है। इस पक्ष को चेतना द्वैतवाद भी कहते हैं। इस वाद के समर्थकों में मुख्य श्री शङ्कराचार्य हैं। दूसरे पक्ष का कहना है कि जीव शरीर के मेल का परिणाम है। इस पक्ष को जड़ा द्वैतवाद या प्रकृतिवाद भी कह सकते हैं।

मायावाद के समर्थकों का कहना है कि ईश्वर निर्गुण और अव्यक्त है, मनुष्य मोह या अज्ञान से उसे सगुण अथवा व्यक्त मानता है। (२) प्रकृति अथवा यह सम्पूर्ण विश्व तथा ब्रह्मांड ईश्वर की

माया है। (३) और जीवात्मा परमेश्वर रूपी परमेश्वर के समान ही निर्गुण और अकर्ता है अज्ञान से उसे कर्ता मानते हैं। यह मायावादी एक तत्व जिसे निर्गुण और अव्यक्त ब्रह्म कहते हैं उसे मानते हैं और कहते हैं कि दृश्य जगत् और जीव उसी एक तत्व निर्गुण ब्रह्म से प्रादुर्भूत हुये हैं। पर यहां पर एक शंका उत्पन्न होती है कि यदि ब्रह्म निराकार और निर्गुण है तो उस ब्रह्म से साकार और सगुण-विश्व कैसे बना ? नियम तो यह है कि कारणादय पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः के अनुसार उपादान कारण के गुण कार्य में आने चाहिए इसलिये इस प्रश्न का उत्तर मायावादियों ने दिया है। उनका कहना है कि वास्तव में एक ब्रह्म है। वह ब्रह्म ही नाम रूप भेद से अनेक रूपों में दिखाई देता है। नाम रूप की भिन्नता के लिये वेदान्ती मिट्टी और घड़ा, सोना और अलंकार तथा समुद्र और लहर के उदाहरण देते हैं। मान लीजिये आपने सोना लिया और उसे लेकर एक गोलाकार रूप दे दिया और उसे आपने कंगन कहना शुरू किया तो वह भिन्न पदार्थ हो गया और वही सोना हंसुली या गिलास की शकल में कर देने पर सोना होते हुये भी रूप या आकार की भिन्नता से हंसुली या गिलास बन गया। जरा सोचिये तो सही कि दोनों की दशाओं में मूल वस्तु क्या है ? यह तो सोना ही है न ? इसी प्रकार लहर का उदाहरण दिया जा सकता हैं। लहर क्या है, विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि लहर पानी के सिवाय कुछ नहीं पानी ने अपना रूप बदला आपने उसका नाम लहर रख दिया इसी प्रकार उनका कहना है कि वास्तव में ब्रह्म के सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं, जीवात्मा आदि कुछ नहीं—वह सब केवल ब्रह्म है। परन्तु अब विचारणीय यह रहता है कि ब्रह्म तो तौल से रहित और ब्रह्म जब संसार के पदार्थों के रूप में आता है तो उसमें तौल कहां से आ जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक कांट ने दृश्य जगत के दो रूप बतलाये हैं। एक का नाम उसने एरशायनुंग बतलाया है। यह एरशायनुंग वस्तु का बाहरी आकार हैं। इसके भीतरी भाग तोल आदि को वह डिंग आनस्विच अर्थात् वास्तविक कहता है। मायावाद की परिभाषा में वह नित्यतत्व जो प्रत्येक वस्तु में रहता है 'सत्ता सामान्य' कहलाता है। मायावादी नाम रूपात्मक द्रव्य जगत् को मिथ्या और वस्तु तत्व को सत्य मानते हैं। अतः अब प्रश्न उपस्थित होता है कि वस्तुतत्व में जो भार था वह कहां से आया ? क्यों कि ब्रह्म तो भार रहित है। यही सब से बड़ी कठिनाई इस मायावाद में आती है कि किस प्रकार निर्गुण और अव्यक्त ब्रह्म से सगुण और व्यक्त जगत् उत्पन्न हो गया।

मायावादी इसे भ्रम कह कर समाधान करना चाहते हैं परन्तु यदि कोई सौ दो सौ मन का पत्थर किसी पहाड़ से किसी पुरुष पर गिर पड़े तो वह दब कर कुचला तो न जावेगा ? यदि वे कहते हैं कि कुचला जायगा, तो क्यों ? क्या भ्रम भी बोझीला होता है ?

भ्रम के सिद्धान्त को पुष्टि के लिए वेदान्तियों ने जगत् स्वप्नवत, रज्जू में सर्प, सीप में चांदी, मृग तृष्णिका में जल, गन्धर्वनगर इन्द्र जालवत् यह संसार झूठा माना है। स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में इनका खण्डन करते हुए कहा है कि "तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मान कर इस भ्रम जाल में पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो कि रज्जू में नहीं तो देशान्तर में और उसका संस्कार मात्र हृदय में है। फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणु में पुरुष आदि की बात समझनी चाहिए"।

स्वामी जी महाराज ने आगे भी इस सिद्धान्त का विस्तार से खण्डन किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वर से, ब्रह्म से भिन्न जीवात्मा नामक वस्तु है। इस ब्रह्म और जीवात्मा में भेद हमें यह दिखाई देता है कि ब्रह्म आनन्द स्वरूप है तो जीव को दुःख भी होता है। ब्रह्म सर्वज्ञ है तो जीव अल्पज्ञ प्रतीत होता है और ब्रह्म सर्व व्यापक है तो जीव एक देशीय। इस प्रकार जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न है। अतः ब्रह्म से उस जीवात्मा की शक्ति को बढ़ाने की याचना करने के लिये भक्त ने भगवान् को आत्मदा

कहा। उसने कहा कि प्रभु तुम आत्मशक्ति को देने वाले हो मुझे भी आत्म शक्ति दो। परन्तु परमेश्वर से जब हम जीवात्मा को भिन्न मान भी लेते हैं तो भी कुछ लोग कहते हैं कि नहीं—परमेश्वर से यह जीवात्मा भले ही भिन्न हो परन्तु वास्तव में इसकी पृथक् कोई सत्ता नहीं। यह तो प्रकृति के अणुओं के विशेष रूप में मिलने से उत्पन्न एक शक्ति है जिस की स्थिति ताप और प्रकाश की भांति है। इसे ही चेतना कहा जा सकता है या आत्मा कह सकते हैं पर यह एक प्राकृतिक शक्ति है।

अब देखना है कि भौतिकवादी वैज्ञानिक आत्मा की अलग कोई सत्ता नहीं मानते। प्रकृतिवादी विचारकों की दृष्टि में प्रकृति ही एक मात्र अन्तिम और आधारभूत सत्ता है और संसार की अन्य सब चीजें जिनमें जीवात्मा भी है इस प्रकृति का ही परिणाम या आविष्कार मात्र हैं। वे कहते हैं कि विचारधारा या चेतनता का आत्मा रूपी कोई स्वतन्त्र आधार या अधिष्ठान नहीं अपितु यह भी प्रकृति अर्थात् शरीर का ही परिणाम है। ताप, विद्युत, प्रकाश, रासायनिक स्नेह आदि प्रकृति की अनेक शक्तियां और क्रियायें हैं, चेतना भी इन्हीं में से एक है। यदि कहा जाय कि चेतना और ताप, विद्युत आदि प्रकृति शक्तियों में बहुत भेद हैं इसलिए चेतना को प्रकृति की शक्ति नहीं माना जा सकता तो प्रकृतिवादी उत्तर देता है कि ताप, विद्युत, रासायनिक स्नेह, आकर्षण, गति आदि प्राकृतिक शक्तियां एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न होती हुई भी एक ही आधारभूत सत्ता प्रकृति के परिणाम हैं। इसी प्रकार चेतना भी ताप, विद्युत आदि से भिन्न होने के बावजूद प्रकृति की ही एक शक्ति है।

इस विचारधारा का जन्म पश्चिमी सभ्यता के जन्म से पहले हो चुका था और इस कल्पना की जन्मभूमि भी भारतवर्ष ही है। चार्वाक ने इस कल्पना का प्रचार किया कि "जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर उसी के साथ नष्ट हो जाता है।" योरुप में इस सिद्धान्त का प्रारम्भ यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक 'डिमोक्रेटस' ने किया। डिमोक्रेटस ने इस विषय में अनेक नियम बनाये। उसके अनुसार संसार में स्थिर पदार्थ केवल परमाणु और आकाश (अवकाश) हैं। अन्य वस्तुओं की सत्ता का प्रकटीकरण सम्मति मात्र है। यह परमाणु संख्या और रूप भिन्नता में असीम हैं। उनके परस्पर संघर्षण से गति और भ्रमण उत्पन्न होकर जगत की उत्पत्ति का कारण होते हैं। यहां डिमोक्रेटस ने यह नहीं बताया कि वह गति जिससे परमाणुओं में संघर्ष होने लगता है 'कहां से आती है'। यदि डिमोक्रेटस इस पर विचार करता तो उसे जगत् कर्ता की सत्ता स्वीकार करनी पड़ती। अस्तु। डिमोटक्रेस कहता है कि जीवात्मा सूक्ष्म, चिकने और गोल परमाणुओं से बनते हैं, वे अग्नि के परमाणुओं जैसे होते हैं। और समस्त शरीर में व्यापक होते हैं, इन्हीं की गति से जीवन का कार्य प्रकट होता है।

इस प्रकार इस विषय पर जब हम विचार करते हैं तो हमें इस सिद्धान्त में कुछ मूलभूत भ्रान्तियां दिखाई देती हैं। दर्शन का सिद्धान्त है "कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः" अर्थात् कारण के गुण कार्य में आते हैं। तो यदि परमाणु जड़ है तो इन जड़ परमाणुओं से चेतन जीवात्मा की उत्पत्ति कैसे हो सकती है। यदि भौतिक तत्वों के आधार पर एक विशेष अनुपात में मिलने से जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिलने से जल की उत्पत्ति होती है यह सिद्धान्त मान कर जीवात्मा की उत्पत्ति, उसमें चेतना आदि मान लें तो भी एक दोष आता है और वह यह कि विशेष अनुपात मिलने पर दिमाग में चेतना की उत्पत्ति होती है तो वह चेतना जड़ होगी और वह जड़ वस्तु जिस प्रकार ताप को जिस कार्य में लगा दिया जाय लगा रहेगा अर्थात् वह ताप किसी को जलाते हुये यह कभी नहीं सोचेगा कि यह तो धर्मात्मा व्यक्ति है इसे न जलाऊं, यह बच्चा है यह तो मुझे जान कर नहीं छू रहा इसी प्रकार ताप के अतिरिक्त अन्य भौतिक शक्तियों के विषय में भी यही नियम काम करता है तो चेतनता में भी, यदि वह भौतिक अणुओं के मेल से उत्पन्न होता है, यही गुण होना चाहिये। पर मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं में

हमें ऐसा नहीं दिखाई देता। उदाहरण के लिये कई बार देखा जाता है कि कई दुस्साध्य रोग विश्वास मात्र के प्रभाव से अच्छे हो जाते हैं। रोगी विश्वास पूर्वक किसी मन्दिर के पास जाता है और अच्छा हो जाता है। बिच्छू और सांप आदि का जो विष उतारा जाता है वह मन्त्र तन्त्र से थोड़े ठीक होता है वहां भी विश्वास ही कारण होता है। इसी प्रकार मनुष्य में न्याय का भाव भी शरीर से भिन्न किसी ऊंची सत्ता की ओर निर्देश करता है। कहते हैं कि भक्त कबीर के घर एक बार रात को अतिथि आ गये। घर में खाने को कुछ नहीं था। कबीर ने अपनी स्त्री से कहा कि कहीं से खाने की कोई चीज उधार ले आओ। वह एक बनिये के पास गई। वह उसे पाप की दृष्टि से देखता था। उसने उसे रात्रि को अपने यहां आने की शर्त पर भोजन दिया। कबीर से स्त्री ने जाकर यह बात कही। उस दिन वर्षा हो रही थी कबीर उसी समय अपनी स्त्री को कंधे पर बैठाकर ले गये। बनिया यह देखकर अवाक् हो गया और उसने उसे माता कह कर पुकारा। इस प्रतिज्ञा पालन का भाव क्या दिमाग के अणुओं से उत्पन्न हो सकता है। और जो ठेस बनिए को लगी क्या उसकी व्याख्या शरीर द्वारा किसी प्रकार की जा सकती है।

इसी प्रकार सूरदास की सुन्दर आंखों को देखकर जब एक स्त्री ने उनसे आसक्त होकर विवाह की इच्छा प्रकट की तो सूरदास ने अपनी आंखों को निकाल कर यह कहते हुए कि बहन यही न आंखें हैं जो तुम्हें वासना के लिये प्रेरित कर रही थी, उसे दे दीं और जन्म भर अन्धे रहे? क्या अणुओं से उत्पन्न ताप की भांति चेतना शक्ति यह कार्य कर सकती है।

इसी प्रकार उदारता और सहनशीलता आदि गुणों की व्याख्या भी अणुओं वाली चेतना से नहीं हो सकती। ऐसे ही जब किसी व्यक्ति को हिप्नोटिजम या सम्मोहन विद्या द्वारा मूर्छा में लाया जाता है और सम्मोहन क्रिया से गरमी, सरदी, पीड़ा आदि नैसर्गिक अनुभव भी आदेशानुसार स्थगित कर दिया जाता है तो हमें ज्ञात होता है कि चेतनता शरीर पर शासन करती है। तथा चेतना जब दिमाग पर आश्रित नहीं तो इसका कोई और स्थिर आधार होना चाहिए क्योंकि प्रतिक्षण परिवर्तित होने के कारण चेतना स्वयं स्थिर सत्ता नहीं और वह स्थिर स्मृतियों का आश्रय नहीं बन सकती। कर्तव्य, न्याय, आत्म त्याग आदि के भाव शरीर से अतिरिक्त किसी अप्राकृतिक सत्ता की ओर निर्देश करते हैं।

ये सब युक्तियां मिला कर एक चेतन सत्ता की ओर संकेत करती हैं, जो प्रकृतिजन्य शरीर से स्वतन्त्र हैं, चेतनता का अपरिवर्तनशील आधार है, शरीर पर शासन करती है 'आदर्शप्रिय और कर्तव्य करुणा आदि के भाव रखने वाली है ऐसी सत्ता आत्मा से अतिरिक्त और क्या हो सकती है। इस सत्ता में बहुत सी अद्भुत शक्तियां हैं जिनसे इसका अप्राकृतिक और आध्यात्मिक होना पुष्ट हो सकता है। उन्हीं शक्तियों को मनुष्य परमात्मा की कृपा से प्राप्त कर सकता है। वही आत्मा है?

आत्मिक शक्तियों का स्रोत प्रभु है। प्रभु के शासन की विशेषता यह है कि वह सब आनन्द की वस्तुओं का खजाना है और सम्पूर्ण शक्तियों का निधान। परन्तु इन शक्तियों को वह प्रवाहित अवश्य करता है पर जिस प्रकार नदी का स्रोत जलधारा को प्रवाहित करता है पर उस जल को प्राप्ति के लिए अभिलाषी व्यक्ति को जलधारा के पास जा कर जल ग्रहण करना पड़ता है उसी प्रकार आत्मदा प्रभु आत्मिक शक्ति का प्रवाह प्रवाहित करता है और अभिलाषी व्यक्ति उस स्रोत से अपनी आत्मा की शक्ति का अभ्युत्थान करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'स्वतन्त्रःकर्ता' के नियम के अनुसार आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिये जीव को प्रयत्न करना पड़ता है। इसके लिये साधना करनी पड़ती है। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इस आत्मिक शक्ति को प्राप्त करने के लिये जो उपाय बताए हैं उन में प्रथम है आत्मा और अनात्मा का ज्ञान अर्थात् विवेक। विवेक का तात्पर्य यह है कि

हमें यह ज्ञान हो कि यह शरीर जड़ है, इस शरीर में जो गति का अधिष्ठाता है वह जीवात्मा है। शरीर का नाश होने पर भी जीवात्मा का नाश नहीं होता तो अन्याय असत्य, अत्याचार और हिंसा का मुकाबला क्यों न किया जाय ? सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी महाराज ने योगसूत्र का उदाहरण देते हुये लिखा है:—

अनित्याशुचि दुःखानत्मसु नित्य शुचि सुखात्म ख्यातिरविधा।

अर्थात् अनित्य संसार और देहादि में नित्य की बुद्धि करना, अशुचि अर्थात् मिथ्याभाषणादि अपवित्र कार्यों में पवित्र बुद्धि। दुःख सुख की बुद्धि और अनात्मा में आत्मा की बुद्धि करना अविवेक या अविद्या है। इस अविवेक को दूर करना आत्मिक शक्ति प्राप्त करने वाले के लिये पहला और आवश्यक कदम है। मनुष्य जब अनित्य में नित्य की बुद्धि करता है तभी वह असत्य की ओर प्रवृत्त होता है, वह सोचता है कि यह देह सदा रहने वाली वस्तु है अतः मृत्यु भय से भयभीत हो वह इसकी रक्षा के उपायों में लगा रहता है, वह संसार के अनित्य पदार्थों को नित्य समझ कर बखेरना शुरू कर देता है और इस प्रकार संसार के अन्दर फंस कर अपनी आत्मा को खो बैठता है। वास्तव में तो यह शरीर अनित्य है पर हम इसे ऐसा मानते नहीं और न ही मानने का तो फल है कि हम इसी में लगे रहते हैं, संसार की विषय वासनाएं इसी से हमें आकर्षित करती रहती हैं। संसार में यदि हमें यह ज्ञान हो जाए कि हमें एक दिन मरना है—अर्थात् मृत्यु का स्मरण रहे तो कोई शक्ति या कोई विषय हमें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। उस समय हम 'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्' के नियम के अनुसार धर्मचरित्र में लीन हो जायेंगे। कहते हैं कि नारद जी एक बार जनक जी के पास पहुंचे और उन से जरा चिढ़ कर बोले कि जनक तुम्हें लोग कर्मयोगी कहते हैं और बड़ा महात्मा मानते हैं परन्तु मैं तो देखता हूँ कि तुम राज्य करते हो, तुम्हारे यहां नृत्य गान और स्त्रियों की बहुतायत है, भोग विलास के सब साधन विद्यमान हैं और उनसे तुम्हारा सामीप्य भी है फिर क्यों तुम योगी माने जाते हो। जनक जी ने कहा कि अरे भाई, इस प्रश्न का उत्तर दूंगा पर अभी कौन सी बड़ी जल्दी है। आओ बैठो, आराम करो, शाम होने पर जनक जी नारद को घूमाने ले गये। एक बड़ा उद्यान था। वहां पहुँचे। उद्यान के द्वार पर एक जल्लाद हाथ में तलवार लिये खड़ा था। नारद जी जब बगीचे में घुसने लगे तो जल्लाद ने कहा महाराज रुक जाइए। इस बगीचे में जाने का नियम यह है कि जो व्यक्ति यहाँ पहुंच जाता है उसे बगीचे में जाना अवश्य ही पड़ता है और जाते हुए यह पानी की थाली हाथ में लेकर घूमना पड़ता है। यदि एक भी बून्द पानी की गिरेगी तो लौटने पर यह मेरी तलवार उस व्यक्ति की गर्दन पर होगी और यदि कोई बिना देखे लौटने का हठ करेगा तो उसकी भी यही दशा होगी। अतः आप नियमों का पालन करते हुए बगीचे का दर्शन कीजिए। नारद जी ने पीछे मुड़कर जनक को देखा। वे वहाँ से पहले ही गायब हो चुके थे। मरता क्या न करता। नारद जी थाली लेकर जैसे तैसे घूम कर लौटे तो सामने हंसते हुए जनक जी को देखा। जनक जी ने कहा, नारद जी बगीचा घूम आये कितना सुन्दर है यह बगीचा। वह कोने का गुलाब का फूल, लोनी लोनी लताएं और उन पर चहल कदमी करती चिड़ियायें कितनी सुन्दर हैं। नारद जी जरा क्रोध में बोले—कहां देखा मैंने गुलाब, कमल, गेंदा। अरे तुम ने तो मुझे मौत के फन्दे में डाल दिया। मुझे तो जल्लाद की तलवार ही दिखाई दे रही थी अतः थाली में पड़ी बून्द न गिरे यही चिन्ता थी। जनक जी ने नारद को कहा कि इसी प्रकार हम भी विषय भोगों के बीच में रहते हुये भी सदा देह की नश्वरता का ध्यान रखते हैं और यही कारण है कि जिस प्रकार तुम्हें गेंदा गुलाब रहते हुए भी नहीं दिखाई दिया वैसे संसार के विषय रहते हुये भी हमें नहीं आकर्षित करते। इसी लिए कहा है कि अनित्य देह की उतनी चिन्ता न करो जितनी नित्य आत्मा की।

यह देह साधन है आत्मा की प्राप्ति का और साधन है। जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करने का। गीता में कहा है—

"यह आत्मा कटता नहीं, जलता नहीं, सूखता नहीं डूबता नहीं" नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। नैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

स्वामी राम तीर्थ ने कहा है—

खंजर की क्या मजाल है कि इक जख्म कर सके।
तेरा ही है ख्याल कि घायल हुआ है तू ॥

इस आत्मा की अमरता को जानने वाले हकीकत ने कहा—

काट सकते हो तो बाहर का हकीकत काटो।
काटती असल हकीकत को यह तलवार नहीं ॥

इसी आत्मा की अमरता को समझा था गोरखपुर की जेल में फांसी के तख्ते पर चढ़ने वाले राम प्रसाद बिस्मिल ने और अंतिम समय भी गायत्री मन्त्र तथा विश्वानि देव के मन्त्रों का पाठ करते हुए उस ने अपने को राष्ट्र के लिये अर्पित कर दिया। यह है विवेक, यह है यथार्थ ज्ञान। जिसे आत्मशक्ति प्राप्त करने वाले को, आत्मा, प्रभु से आत्मा चाहने वाले को समझना चाहिये।

इसके बाद दूसरा अविवेक है अशुचि में शुचि अर्थात् पवित्रता की भावना। हमारा यह शरीर चमड़ी से ढका है। जरा चमड़ी उतार कर देखिये पेट चीर कर देखिये आपको पता लगेगा कि हम मलमूत्र, रक्त मज्जा जिन से मनुष्य घृणा करता है उस के ही समूह हैं और उसके सिवाय कुछ नहीं। इस तथ्य को समझने वाले बुद्ध भगवान् के पास अपने समय की मिस इंडिया मागन्धी ने पहुंच कर जब प्रेम की याचना की तो बुद्ध ने कहा अरे यह शरीर का सौंदर्य क्षणभर है। हम और तुम मिट्टी के पुतले हैं—फिर क्यों इस पर इतना गर्व ? जाओ इस शरीर से बढ़कर जो आत्मा है उसको जानो। सुना होगा। आपने उस राजकुमार का हाल जिस ने एक राजकुमारी से प्रेम कर अपनी सुध बुध खो दी थी और राजकुमारी ने शरीर का वास्तविक रूप दिखला कर उसका मार्ग प्रदर्शन किया था। जब राजकुमार निश्चित दिन उस से मिलने गया उस से दो दिन पूर्व से ही रोचक औषधियां लेकर और उस से होने वाले शौच को सुन्दर कपड़ों से ढक कर उसने सजाकर रख दिया। और कहा यही मैं हूं जिस से तुम्हें प्रेम है। इसे छोड़कर यदि पवित्र वस्तु आत्मा से प्रेम करो तो तुम्हारा शोक चिन्ता और भय दूर होंगे। इसलिये अशुचि में अशुचि और शुचि में शुचि की भावना करना यह है द्वितीय यथाथ ज्ञान।

इसी प्रकार दुःख में सुख की भावना कर लेते हैं और अन्त में दुःख दुःख ही होता है अतः हमें कष्टों का सामना करना पड़ता है। संसार के जितने भोग विलास हैं यदि इनका अनुभव कीजिए और विश्लेषण कीजिये तो आप को पता लगेगा कि कि "आपात रम्या विषयाः" अर्थात् विषय जब तक किये जा रहे हैं तब तक अच्छे लगते हैं। "पर्यन्त परितापिनः" अन्त में तो मन में ग्लानि और घृणा उत्पन्न करते हैं। है न यही हमारा अनुभव फिर क्यों इन दुःखदायक विषयों का सेवन किया जाय ?

और अन्त में अनात्मा अर्थात् इस शरीर को आत्मा समझना यह भी भूल है। हम इसे आत्मा मान जब चलेंगे तो इसी की सजावट में रह जायेंगे। इस लिये आत्मा और अनात्मा का हमें भेद करना चाहिये और इस प्रकार यथार्थ ज्ञान की ओर बढ़ना चाहिये।

इस मन्त्र में प्रभु से आत्मिक बल की याचना की गई और फिर शारीरिक बल की प्रार्थना भी परमेश्वर से की गई और उसे बलों का दाता बतलाया गया। इस संसार में शक्तिहीन मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। एक बलवान् मनुष्य आता है और वह सैंकड़ों लोगों को झुका देता है। बल न हुआ तो न हम उठ सकेंगे न बैठ सकेंगे। यदि बल न हुआ तो घूम फिर भी न सकेंगे और बिना भ्रमण के ज्ञान की प्राप्ति न हो सकेगी। न बड़ों से मेल मिलाप हो सकेगा न गुरु की सेवा ही हो सकेगी। बल नहीं तो कुछ नहीं। इसलिये प्रभु को बल दाता

मान कर उससे बल की याचना की गई। याद रखिये "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" यह आत्मा बलहीन मनुष्यों से प्राप्य नहीं अतः 'शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्' शरीर सब धर्मों का मुख्य साधन है। पर शरीर का बल केवल परमात्मा से मांगने से मिल सकेगा इसके लिये हमें ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा, हितकारी, नियमित समय और नियमित मात्रा में भोजन करना होगा और ईमानदारी की कमाई का भोजन करना पड़ेगा। शारीरिक व्यायाम, खेल कूद शारीरिक परिश्रम के कार्य करने होंगे।

गीताञ्जलि में रविन्द्रनाथ ने कहा है "हे ईश्वर! यह शरीर तेरा मन्दिर है अतः इसे मैं हमेशा पवित्र रखूंगा। आपने मुझे यह हृदय दिया है, मैं इसे आपके प्रेम से भी भर दूंगा। आपने मुझे यह बुद्धि दी है, इस बुद्धि रूपी दीपक को मैं हमेशा निर्मल और तेजस्वी रखूंगा।"

इक प्रकार शरीर का बल, ज्ञान का बल, प्रेम का बल हमें प्राप्त करना चाहिए। परन्तु यह सब बल बेकार होंगे यदि हमने प्रभु को भूला दिया। उसके शासन से अपने को पृथक् कर लिया, उसकी उपासना छोड़ दी। उसकी प्रार्थना का मतलब ही यही है कि हम अपने आपको और जिस तरह का भी बल प्राप्त करें वह प्रभु को अर्पण कर दें। अपना जीवन भी प्रभु को अर्पण करें। जो कुछ कार्य करें प्रभु का समझ कर करें। यदि ईश्वर की प्रार्थना में थोड़ा समय लगाना लाभ कर है तो सोचिये सारा समय प्रभु के हेतु लगाना कितना लाभ कर होगा?

यदि आप प्रभु की सेवा में कुछ पत्र पुष्प चढ़ाना आवश्यक समझते हैं तो अपनी सारी सम्पत्ति उनके चरणों में क्यों नहीं रख देते। यदि पवित्रता, ईमानदारी और बुद्धिमानी की किसी क्षण भी जरूरत है तो इनसे हर समय काम लेना आवश्यक है।

जीवन का इससे क्या अच्छा उपयोग हो सकता है कि प्रतिक्षण प्रभु की सेवा में लगें। प्रत्येक कार्य, विचार और हमारा प्रत्येक शब्द उनकी सेवा के लिए हो। यह आप आज से शुरू कर सकते हैं।

जब आप परमेश्वर के शासन में विश्वास करेंगे और उसके आधार पर अपना जीवन बितायेंगे तब आपको जीवन में निर्भीकता, आनन्द, शान्ति, मधुरता, प्रेम और विश्वास प्राप्त होगा।

आपका जीवन महान् हो, आपका जीवन उच्च हो इसके लिए साहस की आवश्यकता है और यह साहस बिना प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण किये आ नहीं सकता है। प्रभु के प्रति आत्म समर्पण करने पर ही आप में विश्वास का—आत्म विश्वास का उदय होगा और जब आत्म विश्वास का उदय होगा, आप को यह पता लगेगा कि प्रभु के सामर्थ्य से आप में भी अनन्त सामर्थ्य है तब अपनी विशालता के कारण संसार के सभी कार्य आपको तुच्छ से जान पड़ेंगे। तुच्छ से हमारा मतलब यह नहीं कि कार्यों में हीनता की भावना आ जायगी। यह स्मरण रखने की बात है कि संसार में कोई कार्य न तो छोटा है और न बड़ा है। जिस व्यक्ति का जो कार्य है वही उसके लिए महान् है। प्रभु सेवा का तात्पर्य भी यही है कि जिसके लिए जो कार्य सौंपा है वह व्यक्ति अपने कार्य को सच्चाई और ईमानदारी से करे। रविन्द्र नाथ टैगोर की एक कविता में मनुष्य की प्रभु सेवा क्या है इसका बड़े सुन्दर शब्दों में उल्लेख है वे लिखते हैं "भगवान्, फूल से उसे दी हुई सुगन्ध की, रंग की मांग करता है। कोकिल से वह केवल उसे दी हुई कुहूँ-कुहूँ की अपेक्षा रखता है। वृक्ष से वह केवल उसके फल ही की आशा रखता है, लेकिन मनुष्यों के सम्बन्ध में भगवान् का नियम निराला है। उसने मनुष्य को दुःख दिया है उसकी इच्छा है कि मनुष्य उससे सुख प्राप्त करे। उसने मनुष्य को अन्धकार दिया है वह कहता है कि 'इस अन्धकार में से प्रकाश उत्पन्न करो'। उसने मनुष्य को मर्त्य बनाया है वह कहता है कि 'इस मर्त्य में अमृतत्व प्राप्त करो'। उसने आस पास चारों ओर फैली हुई गन्दगी को असत् को सत् में परिवर्तित करने की आशा मानव से ही

की है। वह कहता है इस असत् में से सत प्राप्त करो, इस विष में से सुधा का सृजन करो, इस अमङ्गल में मङ्गल का निर्माण करो"। यही प्रभु का शासन है, यही प्रभु का आदेश है, यही प्रभु की वाणी है। जो इस वाणी का पालन करते है वे प्रभु के और अमरत्व को प्राप्त करते हैं।

प्रभु के शासन का मतलब है कि संसार में आपको जो कार्य मिला है उसे पूरी तरह कीजिये। ध्यान रखिये कार्य न छोटा होता है, न बड़ा। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य का, अपनी ड्यूटी का पालन नहीं करते हैं वे प्रभु के शासन को स्वीकार नहीं करते प्रभु की छाया उन पर नहीं होती और इस प्रकार वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार समाज सेवा के जो जो कार्य हैं उन्हें करने वाले सभी प्रभु के भक्त हैं। कर्म कोई छोटा नहीं। किसी का सिर इस भावना से नीचा नहीं होना चाहिए कि मैं नीच वर्ण का हूँ। सब समान हैं। सब की ऊंचाई एक है, सब की कीमत एक है।

इस संसार में जो शक्ति है जो सामर्थ्य है वह सब प्रभु का दिया है। इस लिए हमें कभी गर्व नहीं करना चाहिए। एक बड़ी सुन्दर कहानी प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है:—

एक बार इन्द्र, वायु, अग्नि आदि देवी में बड़ा वाद विवाद हुआ। प्रत्येक कहता मैं श्रेष्ठ हूँ। इन्द्र ने कहा, "मैं वर्षा करता हूँ। यदि वर्षा न हो तो पृथ्वी सूख जाय और जीवन असम्भव बन जाय। वायु ने कहा, "हवा बिना मनुष्य थोड़ी देर जीवित नहीं रह सकता।" अग्नि ने कहा, "अग्नि के बिना उष्णता के बिना सब मिथ्या है।" जब यह वाद-विवाद चल रहा था एक तेजस्वी देवी आई। देवता बड़े चक्कर में पड़े कि यह देवी कौन है, कहां की है? अग्नि ने कहा—मैं उस देवी के पास जाकर सारी जानकारी प्राप्त कर आता हूं। अग्नि उस देवी के पास गया और पूछने लगा—"आप कौन हैं?"

उस देवी ने उल्टे अग्नि से ही प्रश्न किया 'आप कौन'?

अग्नि ने कहा "मैं अग्नि हूँ। सारा ब्रह्माण्ड एक क्षण में जला कर राख कर सकता हूँ।"

देवी ने कहा "होगा तुम्हारा पराक्रम, मुझे तो मालूम नहीं। लेकिन यह तिनका तो जला कर दिखाओ। अग्नि ने सारी शक्ति लगाई पर वह नहीं जला। वह लज्जित हो गई। यही हाल वायु इन्द्र और दूसरे देवताओं का भी हुआ। तब आध्यात्म देवी उमा कहने लगी "अरे पगलो, मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ ऐसा कह कर क्यों लड़ते हो? न कोई श्रेष्ठ है न कनिष्ठ। इस विश्व शक्ति ने इन्द्र को पानी बरसाने की शक्ति दी हैं, अग्नि को जलाने की, वायु को बहने की अतः यह अपना कार्य करते हैं। वह विश्व शक्ति यदि अपनी शक्ति वापस ले ले तो फिर तुम शून्य हो, मुर्दे हो। उस शक्ति पर घमण्ड मत करो, 'मैं' पन को दूर करो। यही कार्य करने का मूल मन्त्र है। यही प्रभु के प्रति आत्म समर्पण की भावना है। यही प्रभु के शासन को स्वीकार करना है। जब हम उसका शासन स्वीकार कर लेंगे तब संसार में हमारी मृत्यु नहीं हो सकती। जब हम उसकी शक्ति से कार्य कर रहे हैं तो घमण्ड कैसा? अभिमान कैसा? इसलिए आइये अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस प्रभु के महान् उद्देश्य को पूरा करने में लगा दें। यही उसकी उपासना होगी। यही हमारी सच्ची प्रार्थना होगी।

मूर्त विजय! पावन वैभवमय।
विश्व तुलाधार! रमा सारमय।
दुर्बल, निर्धन, सबल, अमीर।
राजा हो या रंक, अधीर—
सभी सिर झुका तेरे द्वार,
खड़े हुये हैं हाथ पसार।
अपने उस अनन्त वैभव की।
एक दिखाओ हम को झांकी।

इस मन्त्र में प्रभु से हम प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु आप आत्मिक शक्ति के दाता हैं हमें भी आत्मिक शक्ति दीजिये। आत्मिक शक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य इस संसार के सभी कष्टों से मुक्त

हो जाता है। भयंकर विपत्तियां कष्ट उसके सामने कष्ट नहीं रहते, विपत्तियां विपत्तियां नहीं बचती। वह तो बड़े गर्व से कहता है:—

लो निकाल कर फेंक दिया है मैंने गीतों को दरवाजे,
इन पाषाणों पर मणियों के मैंने कितने सहे तकाजे।

शत्रुओं ने यूनान के एक नगर पर आक्रमण किया। नागरिकों ने बड़ी वीरता से सामना किया। पर वे असफल रहे। आक्रमणकारियों ने वीरता से प्रसन्न हो उन्हें कहा कि वे अपने साथ, जो कुछ जितना उनसे ले जाया जा सके ले जाएं। परिवार के प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चे अपने सिर और पीठ पर सामान लादे जा रहे थे। बोझ से कमर झुकी जा रही थी, कण्ठ सूख रहे थे, वे हाँफ रहे थे। परन्तु एक ऐसा भी पुरुष था जिसके पास ले जाने को कोई सामान न था। वह खाली हाथ, सर ऊपर, छाती सीधे ताने शान्ति से चला जा रहा था। वह दार्शनिक था, आत्मज्ञानी था—बापस।

"क्या तुम्हारे पास ले चलने को कोई सामान नहीं है? क्या तुम अपने साथ कुछ भी नहीं ले चल रहे हो?" बोझ से दबते हुये उसके साथियों ने पूछा।

एक स्त्री ने करुणार्थ हो कहा "ओह! बेचारा कितना गरीब है, उसके पास ले चलने को कुछ है ही नहीं।"

दार्शनिक हंसा और मुस्कराते हुये उस आत्मज्ञानी ने कहा "अपने साथ मैं अपनी सारी पूंजी ले चल रहा हूं।"

सुन कर लोगों को आश्चर्य हुआ। वह खाली हाथ था। लेकिन नहीं, उसकी पूंजी आत्म कथन से निकले हुए विचार थे। आत्मा की शक्ति थी जिन्हें वह अपने साथ लिये जा रहा था। उसका न उसके दिल पर न शरीर पर ही कुछ बोझ था। आत्मिक शक्ति प्रभु की कृपा से प्राप्त होती है इसलिये प्रभु को 'आत्मदा' कहा गया है।

'आत्मदा' के बाद 'बलदा' कहकर प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु! आप आत्मिक शक्ति के अतिरिक्त शारीरिक बल और स्वास्थ्य भी प्रदान करने वाले हैं। शारीरिक स्वास्थ्य के बिना आत्मिक बल भी तो नहीं प्राप्त हो सकता। इसीलिये कहा भी है "नायमात्मा बल हीने न लभ्यः" यह आत्मा बलहीन से नहीं प्राप्त की जा सकती है। तो क्या प्रभु से बल और स्वास्थ्य मांगने से हमें बल और स्वास्थ्य मिल जायेगा? नहीं, उसके लिए हमें प्रयत्न करना होगा। याद रखिये, एक दिन भी पूर्णरूप से स्वस्थ रह कर जीने वाले के सामने सैंकड़ों राजाओं की तड़क भड़क और शान नहीं के बराबर है।" स्वस्थ रहने का नुस्खा क्या है? एक महात्मा ने लिखा है "घमण्ड को उतार फेंकना, अपने जीवन को लोगों के लिए लाभदायक और प्यार से परिपूर्ण बनाना स्वास्थ्य प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है। हम शांत रहें हर काम बहती धारा की तरह चुप चाप होते रहें, स्वास्थ्य बहता हुआ आकर आपके चरणों को धोवेगा। एक और व्यक्ति ने कहा कि यदि आप चाहते हैं कि आप स्वस्थ रहें तो हर तरह की ठोकर और अति से बचें। न बहुत गरम भोजन करें न बहुत गरम कोई पेय पीएं, न बेमतलब की भाग दौड़ में लगें, न बहस में तीव्रता से पड़ें। याद रखिये:—

अति का भला न बोलना
अति की भली न चुप।
अति का भला न बरसना,
अति की भली न धुप्प।

इसलिए बल प्राप्त करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करने वाले को अपना शरीर स्वस्थ रखने का प्रयत्न करना चाहिये। शरीर ठीक न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता शारीरिक बल प्राप्त करने का मतलब यह है कि शरीर में हर प्रकार की दशा को सहन करने की शक्ति हो और इस शक्ति को उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें शरीर को ठीक रखने की विधि का ज्ञान हो। शरीर को ठीक रखने की विधि क्या है? उसको एक रोचक कहानी द्वारा बताता हूँ। कहते हैं कि महर्षि चरक ने जब

अपने शिष्यों को आयुर्वेद का ज्ञान प्रदान कर दिया और वे शिष्य जाकर अपना कार्य करने लगे तो एक दिन चरक ने मन में उन शिष्यों की परीक्षा लेने की बात आई। प्राचीन काल के गुरु जब अपने शिष्य को शिष्य रूप में स्वीकार कर लेते थे तो आजकल के गुरुओं के समान उनका केवल अध्यापन काल तक ही सम्बन्ध न रहता था। वे जीवन भर उनके मार्ग प्रदर्शन का कार्य करते थे। इसीलिए चरक भी अपने शिष्यों की परीक्षा लेने निकल पड़े। एक पक्षी का रूप धारण कर वे उड़े और वहां गये जहां वैद्यों का बाजार था। एक वृक्ष पर बैठ कर पक्षी ने ऊंची आवाज में कहा 'कोऽरुकं' अर्थात् रोगी कौन नहीं ? एक वैद्य ने पक्षी की आवाज को समझा और कहा जो लवण भास्कर का सेवन करता है वह रोगी नहीं। दूसरे ने प्रभावटी को स्वास्थ्य का चिह्न बतलाया, तीसरे ने च्यवनप्राश और एक ने द्राक्षासव। चरक ने अपना माथा ठोका और कहा कि क्या मेरी विद्या मेरे शास्त्र का यही मतलब था कि मैं लोगों के पेट की दवाई का स्टोर रूम बना दूं। निराश होकर वे वहां से उड़े। एक जंगल की ओर गये और उन्होंने देखा कि उनके प्रसिद्ध शिष्य वाग्भट्ट आ रहे हैं। एक पेड़ पर बैठ कर चरक ने कहा 'कोऽरुस्क्' रोगी कौन नहीं ? आंख उठाकर वाग्भट्ट ने पक्षी की ओर देखा, बोले हितभुक्, मितभुक् ऋतुभुक् चरक ने वाग्भट्ट की पीठ ठोकी और कहा कि ठीक तुमने स्वास्थ्य के मूल मंत्र को समझा है।

हितभुक् का अर्थ है ऐसी वस्तुयें खाओ जो आपके शरीर के लिये अच्छी हैं। केवल खाने के लिए मत जीओ, जीने के लिये खाओ। जिह्वा के स्वाद में फंस कर पेट में कूड़ा करकट मत भरते जाओ। हितकारी भोजन करो यही हितभुक का अर्थ है। स्वास्थ्य को उत्तम बनाने की इच्छा रखने वाले आत्मिक शक्ति की कामना करने वाले को यह नियम सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिये।

उसके बाद दूसरी वस्तु है जिस का हमें ध्यान रखना है, मितभुक्। हितकारी भोजन करो पर मात्रा में। मलाई खाओ तो कितनी ? यदि आप दो सेर मलाई ही खा जायें पौन सेर रबड़ी पेट में डाल लें या डेढ़ सेर मक्खन ही चट कर जायें तो इससे शरीर को लाभ के स्थान पर हानि होगी। इसलिये वाग्भट्ट ने दूसरी बात मितभुक् कहा। अच्छी वस्तु खाओ। उचित मात्रा में खाओ और नियमित समय पर खाओ।

परन्तु हितभुक् और मितभुक् से ही काम नहीं चलता। परमेश्वर की प्राप्ति के लिये तीसरा मंत्र बताया 'ऋत् भुक्' 'ऋत' शब्द का अर्थ है सत्य अर्थात् सत्य की कमाई का भोग करो। पाप का अन्न खाने से मनुष्य की आत्मा का पतन होता है। और आत्मा का पतन होने से शारीरिक बल नहीं मिल सकता। और बिना शारीरिक बल के परात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये ऊपर के मंत्र में प्रभु से शारीरिक बल प्राप्त करने के लिए उसे बलदा कह बल की प्रार्थना की गई है।

शरीर, समाज और आत्मा इन तीनों प्रकार के बलों का दाता परमेश्वर है। मनुष्य एवं प्राणियों का स्वभाव है कि वे दुःख से दूर भागते हैं और सुख या आनन्द प्राप्त करने क लिए आगे बढ़ते हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि और नित्य रहने वाली वस्तुएं हैं। इन में प्रकृति जड़ है। जड़ वस्तु को आनन्द या दुःख की अनुमति नहीं होती अतः उस के आनन्द प्राप्त करने का सवाल ही नहीं उठता। परमेश्वर तो सच्चिदानन्द स्वरूप है ही, उसे कभी दुःख का अनुभव नहीं हो सकता। अब रह जाता है जीव, जीव को सुख भी होता है, दुःख भी होता है। परन्तु उसका स्वभाव है कि वह सुख की ओर जाना चाहता है। अब यह जीवात्मा सुख प्राप्त करने के लिए भटकता है। उस के सामने दो खजाने हैं और उन खजानों की ओर जा कर वह सुख प्राप्त करना चाहता है। एक है प्रकृति का और दूसरा है परमेश्वर का ! इस आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य का आत्मा

प्रयत्न शील होता है। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए वह सम्मान, शक्ति, धन, शासन, सन्तान, मोटर, हाथी, घोड़े गाड़ियां सब एकत्र करता है। वह प्राकृतिक वस्तुओं में रम कर उन में आनन्द खोजता है परन्तु उसे मिलता नहीं। आनन्द उससे दूर ही दूर भागता चला जाता है। उसे प्राकृतिक ऐश्वर्य मिल नहीं पाते। स्वामी रामतीर्थ ने एक बड़े सुन्दर उदाहरण द्वारा समझाया है कि मनुष्य जब आनन्द प्राप्ति के लिए भौतिक ऐश्वर्यों के पीछे दौड़ता है तब उसे वे ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होते। उन्होंने परछाई का उदाहरण देते हुये कहा कि अपने सामने पड़ी हुई परछाई को यदि मनुष्य दौड़कर पकड़ना चाहे तो वह उस से दूर और दूर ही भागती चली जाती है। वैसे ही संसार के प्राकृतिक, भौतिक विषय भोग ऐश्वर्य भी उस मनुष्य से दूर भागते जाते हैं और उसे शांति नहीं मिलती। मृग-मरीचिका की सी उस की दशा होती है। जैसे कस्तूरी मृग कस्तूरी को प्राप्त करने के लिये भागते २ नष्ट हो जाता है वैसे ही प्राकृतिक विषयों के पीछे दौड़ते हुये मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है। प्राकृतिक वस्तुओं को अपने पीछे दौड़ाना चाहने वाले को चाहिये कि जिस प्रकार मनुष्य यदि परछाईं से मुख मोड़ कर उसी ओर चल पड़े तो आप देखेंगे कि वह परछाईं मनुष्य के पीछे भागने लगती है वैसे ही इन प्राकृतिक वस्तुओं से मुख मोड़ लीजिये और परमेश्वर की ओर कदम बढ़ाइये तब आप देखेंगे कि यह सांसारिक वस्तुएं आप के पीछे पड़ जायेंगी। क्योंकि वास्तव में आनन्द का खजाना प्रभु है। जब हम प्रभु के नजदीक पहुंचते हैं तो जैसे आग लोहे के गोले को गर्म करके अपना ही स्वरूप प्रदान कर देती है, आग के गुण लोहे में आ जाते हैं वह आग के समान वस्तुओं को जलाने लगता है ठीक उसी प्रकार आत्मा की भी स्थिति है। आत्मा जब परमात्मा के समीप पहुंचता है परमात्मा अपने आनन्द से उसे भी भरपूर कर देता है और तब उस में एक अपूर्व शक्ति का संचार हो जाता है! संसार के कष्ट उसे कष्ट नहीं प्रतीत होते। वह तो जब तक परमात्मा द्वारा प्रदत्त आत्मिक शक्ति अपने में नहीं लाता तब तक ही कष्ट अनुभव करता है। इस मंत्र में आत्मदा शब्द का यही अर्थ है कि वह प्रभु मनुष्य को आत्मज्ञान का दान करता है। आत्मज्ञानी आनन्द की प्राप्ति करना चाहता है और उसे भगवान् के पास जाना पड़ता है क्योंकि आनन्द तो वही है।

एक कुत्ता कई दिनों का भूखा था, चलते २ वह एक नदी के पास पहुंचा, तट पर एक वृक्ष था, वृक्ष पर पत्ते नहीं थे। केवल शाखायें थीं। उन में से एक शाखा पर एक रोटी लटक रही थी। वृक्ष और रोटी का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था। कुत्ते ने पानी में रोटी समझी। भूखा था, उस में छलांग लगा दी। पानी हिला, रोटी दूर जाने लगी। वह आगे बढ़ा, रोटी और आगे खिसक गई। इस प्रकार वह बार २ आगे बढ़ता और रोटी भी आगे बढ़ती। अन्त में वह मझधार में पहुँचा, डूबा, समाप्त हो गया। इसी प्रकार मनुष्य आनन्द पाने के लिये प्राकृतिक वस्तुओं के पास जाता है, वह रोटी, धन, स्त्री आदि में आनन्द समझता है परन्तु उसे आनन्द नहीं मिलता। आनन्द को प्राप्त करने के लिए उसे आनन्द के निधान प्रभु के पास जाना चाहिये। यदि कुत्ते को रोटी चाहिये थी तो उसे पानी में नहीं वृक्ष पर जाना चाहिये था। वैसे ही आत्मिक शक्ति को बढ़ाने के लिए हमें प्रभु के पास पहुंचना चाहिये और वहां पहुंचने पर हमें वह आत्मदा प्रभु-आत्मिक शक्ति प्रदान करेगा। जिस व्यक्ति में आत्मिक शक्ति का समावेश हो जाता है वह कभी दुःख, कष्ट या अन्य कठिनाइयों का अनुभव नहीं करता। संसार में वही सच्चा वीर कहलाता है।

आत्मिक शक्ति की महत्ता को यदि तुम देखना चाहते हो तो इतिहास के पृष्ठों को खोलो और देखो। वह देखो महाराज रणजीतसिंह ने फौज से कहा अटक के पार जाओ। अटक चढ़ी हुई थी और भयंकर लहरें उठी हुई थीं। जब फौज ने कुछ उत्साह प्रकट न किया तब आत्मिक शक्ति प्राप्त

वीर को जोश आया। महाराज ने अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक सूख गई।

गोलियों की भयंकर वर्षा के बीच तमाम फौजें स्तब्ध हो गईं। आत्मिक वीर ने कहा आलप्स को पार कर जाओ। सैनिकों ने कहा 'असम्भव' है। वीर नैपोलियन हंसा, जड़ पहाड़ चेतन आत्मा को नहीं रोक सकता। आओ, मेरे पीछे बढ़ो। कहते हैं आलप्स हट गया और सेनाएं पार हो गईं।

यूनान के दार्शनिक सुकरात को सत्य का प्रचार करने के लिए विषपान द्वारा हत्या का आदेश दिया जा चुका है। देश के ज्ञानसूर्य के दर्शन के लिये भक्तों की भीड़ लगी है। सब की आंखों में आंसू हैं और भक्त सिसकते हुए कहते हैं। महाराज हम कैसे रहेंगे। सुकरात की भौंहे चढ़ गई और अपने भक्तों की नादानी पर उसे दुःख हुआ पर उसने बड़े शांत भाव से कहा अरे लोगो क्या मेरी शिक्षाओं का यही सार है कि मरने पर रोओ शरीर मर सकता है, आत्मा नहीं। फिर सत्य के प्रकट करने में डर क्या और उसने हसते हुए सामने पड़ा विष का प्याला पी लिया। धन्य है आत्मा की शक्ति।

और यह देखो, गोरों की संगीनों के सामने छाती खोले आत्मिक वीर स्वामी श्रद्धानन्द खड़ा कह रहा है यदि हिम्मत हो तो गोली से इस छाती में छेद करो! बन्दूकें झुक गईं, सैनिक परास्त हो गये।

अन्याय को दूर करने के लिए, अज्ञान को विश्व से मिटाने के लिये यह निर्भीक सन्यासी मंच पर खड़ा भाषण दे रहा है। विरोधियों ने उसकी हत्या के लिए उन पर सांप फेंका उस महर्षि ने उसे पुष्पमाला माना, पत्थरों की वर्षा हुई उसने फूलों की ि समझी और उसका अंत करने को विरोधियों ने भयंकर विष प्रदान किया। स्वामी ने उसे भी पान किया। विष तो विष है—विष ने अपना प्रभाव दिखाया। शरीर के अंग क्षत विक्षत हो गये। ऐसी पीड़ा, इतना भयंकर उत्पात परन्तु अजमेर नगरी दांतों तले अंगुली दबाकर देखती रह गई कि ऋषि के चेहरे पर प्रभु के नाम के सिवाय दुःखों की एक शिकन भी नहीं, कष्टों की चर्चा भी नहीं। डाक्टरों ने उसकी वीरता देख आश्चर्य किया, नास्तिक उसकी प्रभु भक्ति देख आस्तिक बने, हत्यारा अपने पाप से पीड़ित हो ऋषि के पास पहुँचा। ऋषि ने उसे प्यार से बुलाया और कहा कि भोले मानव, घबराने की बात नहीं। मेरा तूने कुछ नहीं बिगाड़ा! मैं तुझे गिरफ्तार नहीं करवाऊंगा क्योंकि मैं तो विश्व को बन्धन से छुड़ाने के लिए आया हूँ—ये ले रुपयों की थैली और भाग जा नैपाल राज्य को—हत्यारे को यह वरदान, घातक को यह उपहार संसार का इतिहास साक्षी है ऐसी दृढ़ता, ऐसा आत्मिक बल कहीं नहीं देखा, कहीं नहीं सुना, हत्यारा आश्चर्य चकित हो हया। स्तब्ध हुआ और होश आने पर उसके मुख से स्वयं निकल पड़ा—"महर्षि दयानन्द की जय और पास खड़े आर्यों ने उसका अनुकरण कर कहा—"महर्षि दयानन्द की जय—अजमेर नगरी चिल्लाई—महर्षि दयानन्द की जय और हिमालय की चोटी से, समुद्र की तरंगों से, नदियों की धाराओं से प्रतिध्वनित होकर महर्षि दयानन्द का जय जयकार गूंजने लगा आर उसके साथ आज इस युग में भी हम बोल उठते हैं आत्मिक शक्ति प्राप्त महर्षि दयानन्द की जय।

ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः

—※※※—

[४]

विश्व सम्राट्

यः प्राणता निमिषता महित्वैक इद्राजा जगतोवभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) राजा (बभूव) हुआ है। (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर का (ईशे) संचालक है, स्वामी है हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्यों के देने वाले परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके (विधेम) भक्ति विशेष करें।

यूरोप के मध्य युग में नास्तिकता की एक विशेष धारा प्रवाहित हुई थी और उस समय के दार्शनिकों ने इस धारा में अपने को वहा दिया था। उस समय जर्मनी के एक दार्शनिक ने बड़े अभिमान से कहा कि इस समय यूरोप का कोई व्यक्ति तर्क द्वारा मुझे यह सिद्ध नहीं कर सकता कि परमात्मा नाम की कोई वस्तु इस विश्व में है। परन्तु जब मैं रात को खुली छत के नीचे सोता हूँ और आकाश में जगमगाते तारों को, नक्षत्रों को, ग्रहों को उपग्रहों को निरन्तर और नियमानुसार गति करते हुए देखता हूँ तो मेरे तर्क धरे रह जाते हैं, मन में विश्वास नहीं होता कि इस संसार का रचियता कोई चेतन वस्तु नहीं। इस विश्व की गति, विशालता और नियमों को देखकर मुझे भान होता है कि कोई न कोई इनका चेतन अधिष्ठाता है और शायद वह चेतन अधिष्ठाता ही ईश्वर है।" सचमुच हम और अन्य जब इस विशाल ब्रह्मांड पर अपनी दृष्टि डालते हैं तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। क्या कभी सोचा है आपने कितना विशाल है यह ब्रह्मांड? जरा ऊपर दृष्टि तो उठाइये देखिये आकाश में चमकते हुये इन हजारों और लाखों नक्षत्रों को। कर सकता है कोई इनकी गणना। जानते हैं किसने बनाया है इनको? वह कौन है जिस नेता ने, सोई प्रकृति को जगा दिया? वह प्रभु है जिसने चर अचर सब को पैदा किया है। ब्रह्मांड की सूक्ष्म अवस्था के पूर्व ब्रह्मांड अव्याकृत अवस्था में था अर्थात् प्रकृति अपनी कारणावस्था में थी। कारणावस्था का तात्पर्य यह है कि उस समय सत्व, रज और तम यह तीनों चीजें समान अवस्था में विद्यमान थी इस अव्याकृत अवस्था का नियामक होने के कारण ही हम परम प्रभु को ईश्वर नाम से कहते हैं। परमात्मा अपना दर्शन (ईश्+वर) अर्थात् नियमन का कार्य मुख्य रूप से इस अव्याकृत अवस्था द्वारा करता है। जगत् के मूलकारण में लगी हुई परमात्मा की ईशन शक्ति ही मूल-करण को परिणत अवस्थाओं में भी ईशन का काम दे रही है। जिस प्रकार मशीन के मुख्य पुर्जे में गति देने से समग्र मशीन गति में हो जाती है इसी प्रकार मूल-कारण में प्रेरणा देने वाली ईशन शक्ति ही सूक्ष्म तथा स्थूल जगत् में भी ईशन का कार्य कर रही है। इस प्रकार ईशन शक्ति का मुख्य सम्बन्ध चूंकि मूलकारण के साथ हुआ करता है तथा कार्यों में ईशन शक्ति का प्रभाव मूलकारण के द्वारा आया करता है इसलिये जगत् के मूलकारण का नियामक होने के कारण परम प्रभु को ईश्वर भी कहते हैं। और यह ईश्वर इस संसार का रचयिता है। इसका अधिष्ठाता है। इसी ने सोई हुई प्रकृति को जगा दिया, एक रूपा को अनेक रूपा बना दिया, और उसी प्रकृति को विकृत करके अनेक सूर्य, नक्षत्र, अनेक पृथ्वियां, अनेक समुद्र और अनेक मण्डल तथा लोक बना दिये। रूस ने और अमेरिका ने दो लोक

बना कर उड़ाये हमने उनकी बुद्धि की प्रशंसा की। उनको विश्व में सब से शक्तिशाली माना परन्तु वह वैज्ञानिक कितना बड़ा होगा, कितना महान् होगा, कितना शक्तिशाली होगा जिसने अनेक सूर्य, चान्द, ग्रह और उपग्रह बनाये और जो निरन्तर दो अरब वर्ष से गति कर रहे हैं अभी न जाने कब तक घूमते रहेंगे। आश्चर्य है कि ये ग्रह उसके शासन में रूप रूप से घूमते हैं, अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं। कितने हैं यह ब्रह्मांड सोचा है आपने? श्री आनन्द स्वामी सत्य नारायण कथा में लिखते हैं कि वैज्ञानिक अपने अल्प साधनों से अभी तक केवल यह पता लगा सके हैं कि इस आकाश गङ्गा में १॥ अरब सितारे चमक रहे हैं। इस समय तक दो अरब सौर मंडल लों का पता लग चुका है हमारे सौरमंडल की भांति प्रत्येक मंडल सूर्य, पृथ्वी, चांद और अन्य उपग्रह हैं। आकाश गङ्गा (Milkyway) का व्यास कितना विस्तृत है। १७६३ के आगे १६ बिन्दु लगाने से उसका व्यास नापा जा सकता है। कितनी बड़ी है यह पृथ्वी हम से। हम इस पृथ्वी पर एक बूंद के भी तो बराबर नहीं परन्तु यह विशाल पृथ्वी सूर्य की तुलना में एक तुच्छ सा गोला है, तेरह लाख गुना बड़ा है यह तपने वाला सूर्य, परन्तु इस से भी बड़ा है यह अगस्त्य तारा। इस अगस्त्य तारे में एक करोड़ सूर्य समा सकते हैं पर यह अगस्त्य तारा भी एक छोटा सा गोला है। एक और तारा है ज्येष्ठा जिसमें करोड़ों अगस्त्य समा सकते हैं। फिर अभी परम ज्येष्ठा आदि का तो वैज्ञानिकों को पता भी नहीं चला है। और देखना चाहते हो इस प्रभु के शासन को। जानते हैं आप प्रकाश की चाल क्या है? प्रकाश एक क्षण में एक लाख ८६ हजार मील की रफ्तार से चलता है और कुछ नक्षत्र इतने दूर हैं कि २ अरब वर्ष चलता हुआ भी यह प्रकाश हमारे पास नहीं पहुँच पाया है। अनुमान कीजिए कितना बड़ा विस्तार इस सृष्टि का है। यह नन्हा सा एटम (अणु) जिसे हमारी यह स्थूल आखें बिना यन्त्र की सहायता के नहीं देख सकतीं एक पूर्ण सौर मण्डल की भांति है। आजकल वैज्ञानिकों ने सारी पृथ्वी से १४७००००००००००००००००० (१४७ से आगे १९ बिन्दु) मील दूर प्रकृति की वह अवस्था देखी है जो विकृत होकर रूप धारण करने लगती है। इस प्रकार जिसने अपनी सविता शक्ति द्वारा इस विशाल विश्व का निर्माण किया है और जो इस विशाल विश्व का अपनी नन्हीं सी ही सामर्थ्य से संचालन, पालन एवं पोषण कर रहा जिसकी शक्ति का यह एक चौथाई भाग हमें दिखाई दे रहा कितना महान् और बुद्धिमान् है वह हमारा प्रभु। वह कौन शक्ति है जिसके शासन में इस विश्व के सब पदार्थ बन्धे हुये हैं, हम तो उसके विषय में 'नेति नेति' कह कर मूक हो जाते हैं। समझ में नहीं आता:—

विश्वदेव सविता या पूषा
सोम, मरुत, चंचल पवमान,
वरुण आदि सब घूम रहे हैं,
किसके शासन में अम्लान।

जिस समय प्रलय होता है। उस समय यह शक्ति चिह्न निर्बल दिखाई देते हैं, हम सोच भी नहीं पाते। उस प्रलय की अवस्था का ध्यान कर कवि के मुंह से निकल पड़ा है:—

किसका था भ्रू भङ्ग प्रलय सा
जिसमें ये सब विकल रहे,
अरे! प्रकृति के शक्ति चिह्न ये,
फिर भी कितने निबल रहे।
महानील इस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते थे सन्धान।

यह सब उसी प्रभु की खोज में लगे हुए हैं जो प्रभु प्राण वाले और अप्राण वाले जगत् का अपनी महिमा के कारण एक ही राजा है। 'रञ्जनात् राजा' जो अपनी प्रजाओं का रञ्जन करता है वही राजा होता है, इस प्रभु ने प्राणियों के सुख के लिए क्या नहीं दिया? यह प्रभु ही दोपायों और चौपायों का संचालक है। इस प्रभु की भक्ति, इसकी सेवा हमारा परम कर्तव्य है। उसकी सेवा का, उसकी भक्ति का एक ही उपाय है कि हम इस विश्व में जो भी कार्य करें, जो भी वस्तु प्राप्त करें वह सब उसी को अर्पित कर दें उसी को अर्पित

करने का मतलब है कि हम इस विश्व में, संसार में प्रत्येक प्राणि को प्रभु को वृत्ति समझ कर उसी की सेवा में अपना सर्वस्व अर्पित करें।

सदा ध्यान रखिये चाहे प्राणी मनुष्य योनि मे रहे चाहे कीट, पतंग, पशु, पक्षी योनि में सर्वत्र उसी एक प्रभु का शासन देखने को मिलेगा। कोई योनि उसके शासन से परे नहीं। वह सचमुच राजा है, विश्व सम्राट्। दुनिया में उसी का राज्य है और दुनिया का प्रत्येक काम चाहे प्रत्यक्ष में वह हानि कर भी प्रतीत हो रहा हो उसी प्रभु की महती कृपा है। इसलिये—

आओ गायें उसका गान,
जिसकी महिमा देख चकित सा,
विश्व खड़ा है कुछ विस्मित सा,
सांस रोक कर चित्र लिखित सा,
अर्ध चेतना अर्ध ज्ञान में,—
शिशु-सा बन करके अनजान,
और अभीष्ट सुधा बरसाता,
वाणी में प्रकृष्टता लाता,
महामहिम उस महादेव पर,
हो जावें हम सब बलिदान।

—***—

[५]

जगत् उद्यान के हे दिव्य माली !

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढ़ा) धारण किया है। (येन) जिस जगदीश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता है और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

इस संसार में तीन पदार्थ अनादि हैं। ईश्वर जीव और प्रकृति। इन तीनों पदार्थों की सत्ता भी है। परन्तु इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ परमात्मा है। परमात्मा क्यों सर्वश्रेष्ठ है? इसका कारण स्पष्ट है। प्रकृति जड है। जड़ स्वयं कुछ नहीं कर सकता। इंजन चलेगा तो उसे चलाने वाला कोई चाहिए। मोटर भोंपू बजायेगी तो उसे भोंपू को बुजाने वाला कोई चेतन ही होगा। जड़ तो स्वयं कुछ नहीं कर सकता। यदि प्राकृतिक कारणों से कोई गति आदि आ भी गई तो वह गति नियम में नहीं होगी. उसका कोई क्रम नहीं होगा। और जीव चेतन होते हुए भी अल्पज्ञ है। स्थान की दृष्टि से तथा ज्ञान की दृष्टि से उसमें व्यापकता एवं पूर्णता नहीं। व्यापकता और पूर्णता न होने से वह भूलें कर सकता है और भूल एवं अभाव के परिणाम स्वरूप उसे कष्ट अवश्य होगा। यह जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। पर स्वतन्त्र कर्मों की अच्छाई और बुराई का निर्णय करने वाला 'न्यायाधीश' तो भगवान् ही है। अपने कर्म तो प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे ही लगते हैं। अपनी दही को कौन खट्टा कहता है अतः निर्णायक न्यायाधीश ही हो सकता है और यह न्यायाधीश परमेश्वर ही है। परमात्मा ही ऐसा सत पदार्थ है जो अपनी व्यापकता एवं ज्ञान के कारण किसी बन्धन में नहीं आता, जीव और प्रकृति हैं तो सत् परन्तु ये

दोनों बन्धन में आ जाते हैं, प्रकृति प्रभु आज्ञा से विकृत होकर नाना रूपों के बन्धन में आ जाती है, जीव भी कर्मों के अनुसार अनेक बन्धनों में आ जाता है परन्तु परमात्मा ही एक ऐसा पदार्थ है जो किसी बन्धन में कभी नहीं आता, वह काल से ऊपर, अवस्था से ऊपर, तीनों प्रकार के गुणों से ऊपर रह कर सबके अंदर और सबके बाहर रहता है अतः वह सबसे ऊंचा और पराकाष्ठा का सत है। प्रलय हो या सृष्टि, रात हो अथवा दिन, गर्मी हो या शीत—वह परमात्मा सदा एक रस रहता है, न जन्मता है, न मरता है। विश्व कल्याण के लिये विष्णु बना सब पर दृष्टि रखता है।

वास्तव में इस मन्त्र में मनुष्य के अज्ञान को दूर करने के लिए परमेश्वर की शक्ति एवं गुणों का ज्ञान कराया गया है। मनुष्य पाप में दो कारणों से प्रवृत्त होता है। एक है कि वह अपने को प्रभु से बड़ा मान लेता है और समझने लगता है कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ वह ठीक है। वास्तव में उसे इस विश्व में सेवक बन कर रहना चाहिए पर वह मालिक बन कर सब पर शासन करना चाहता है। वह सोचने लगता है कि विश्व की सम्पूर्ण शक्ति मुझ में है अतः सारा राज्य, सारी पृथ्वी सारी धन दौलत मुझे मिलनी चाहिए और यह मैं की भावना उसे उचित या अनुचित रूप से संसार के सभी ऐश्वर्यों को—जिन्हें वह ऐश्वर्य समझता प्राप्त करने को बाध्य करती है। इस मन्त्र में बतलाया गया है कि प्रभु ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले और अंधकारमय दोनों लोकों का निर्माण किया है। और बतलाया है कि रे मानव, तू क्यों इतना अभिमान करता है तेरा तो जिस शरीर में तू रह रहा है उस पर भी अधिकार नहीं। जिस समय इस शरीर रूपी वृक्ष की एक शाखा भी प्राण के छूटने से सूखने लगेगी तो तू उसे एक क्षण के लिये भी धारण नहीं कर सकता। उस प्रभु ने तो सम्पूर्ण विश्व को धारण कर रखा है। सांसारिक सुख (स्वर्ग) और दुःख रहित मोक्ष उस प्रभु के आधार से ही हैं। यह प्रभु ही है जो इस विस्तृतमय, इस फैले हुए आकाश में अनेक लोक लोकान्तरों का निर्माण करता है। ऐ अभिमान में मस्त मनुष्य! जरा नजर उठा। इस विराट् विश्व को देख, जिसके एक पत्ते की रचना को समझने में मनुष्य का सम्पूर्ण ज्ञान जिसका कि तुझे घमण्ड है असमर्थ है। अनन्त काल से संसार में प्रकाश का प्रसार करने वाले सूर्य और चांद जिसकी लीला के निमेष मात्र हैं, ऊंची लहरों में उमड़ता असीम समुद्र जिस की आज्ञा से सीमा न छोड़ने को विवश है और जिसके हुक्म को बजाने के लिये सैकड़ों आत्माएं हर वक्त हाथ जोड़े खड़ी हैं। जब वह प्रभु प्रलय का महातांडव करता है धरती कांप उठती है, आसमान में चमकने वाले सूर्य चन्द्र और सितारे टूट पड़ते हैं। ऊंचे खड़े पहाड़ों के कण कण चकनाचूर हो जाते हैं। विशाल समुद्र की बूंद बूंद सूखकर आसमान में विलीन हो जाती है। और यह देखकर हमारे मुंह से अनायास निकल पड़ता है:—

'अणोरअनीयान् महतो महीयान्' (कठ० २-२०)

जो प्रभु के महतो महीयान का दर्शन कर लेगा वह क्या अभिमान करेगा?

और परमेश्वर की शक्ति का ज्ञान न होने से अवमान की स्थिति में पड़े मानव तू भी देख! सृष्टिकर्ता के लिये असम्भव क्या? जड़ परमाणुओं से वह सुन्दर संसार खड़ा करता है। नीचे पड़े हुओं को उठाता है। डूबतों को बचाता है। पतित से पतित का उद्धार करता है। उसकी एक वर्षा से सूखे और मुरझाए हुये घास, पत्ती और पेड़ लहलहा उठते हैं। तो तुझे उठाना क्या कठिन है? अतः हे जीव तू न अभिमान कर न अवमान से पीड़ित हो। तुझ में जितना सामर्थ्य है उतना तू परिश्रम कर प्रभु तेरी नौका पार करने वाले बनेंगे। चाहे तू कितना अशक्त हो पर यदि अपनी शक्ति भर यत्न कर लेगा तो प्रभु तेरे सहायक बन जायेंगे जैसा कि कहा है कि "न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः" इस तरह परिश्रम करता हुआ ही तू आगे बढ़ सकता है। इस लिये तू आ उस जगत् उद्यान के माली को देख, उस के नजदीक पहुँच वह तुझे सुन्दर फूल और फल प्रदान करेगा।

करो सामर्थ्यमय मन प्राण जीवन,
बस जिससे विफल मैं मोह बन्धन
दया कर नाथ दुःखिया का करो हित,
गहन तम भेद, पथ कर दो प्रकाशित

[६]

तुम मेरे हो, तुम मेरे हो, मेरी यही पुकार

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए भूगोलादि जगत् को बनाने वाला और (परिता) व्यापक (न) नहीं (बभूव) है (ते) उस आपकी भक्ति करने वाले हम चेतनादिकों को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कृत करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले होके हम लोग भक्ति करें (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेने और वान्छा करें (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होव जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनेश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें।

सचमुच मनुष्य इस विशाल विश्व में जब किसी सहायक की खोज में निकलता है तो उसे अपना सहायक कोई नहीं दिखाई देता। माता पिता सहायता करते हैं पर अपनी शक्ति भर ही न? गुरु और आचार्य मार्ग दिखलाते हैं पर अपने ज्ञान भर ही न? राजा और शासक रक्षा करते हैं पर अपने सामर्थ्य भर ही न? मित्र और परिवार के दूसरे आदमी सहानुभूति एवं सहायता करते हैं परन्तु अपनी बुद्धि एवं दृष्टि भर ही न? इस लिये मनुष्य उस सहायक, उस पिता और उस बन्धु की खोज में रहता है जो उसका पूर्ण सहायक हो। उसे सिवाय प्रभु के और कोई अपना सहायक नहीं दीखता और अन्त में उसके मुख से निकल पड़ता है:—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देवा ॥

हे नाथ! तुम हमारे पिता हो, माता हो, बन्धु हो, मित्र हो, तुम ही विद्या हो, तुम ही धन हो, तुम मेरे राजा हो। हम आप की प्रजा है, पुत्र हैं। आप हमारे स्वामी हैं। हमारे सब सन्देह दूर हो जाते हैं और हम उस प्रभु को "तुम मेरे हो, तुम मेरे हो" कह कर पुकारने लगते हैं।

वास्तव में मनुष्य जब अपने विषय में विचार करने लगता है तो उसे मालूम पड़ता है कि उसने बहुत ही पाप किये हैं, न जाने कितने बुरे कार्य किये हैं उनका उसे अत्यन्त भयंकर कष्ट सहना होगा। उस समय उसे अपना कोई सहायक नहीं दीखता। तब निराश हो कर जब वह अपने को बिल्कुल प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है। तब उसे यह विश्वास हो जाता है कि संसार में कोई दूसरी शक्ति ऐसी नहीं जो मुझे दबा सके। मेरे ऊपर तो केवल एक व्यक्ति का शासन है और जिसका शासन है वह शिवस्वरूप, सदा कल्याण करने वाला भगवान् है। तभी तो उस प्रभु की कल्याणकारी भावना कठिन से कठिन विपत्ति में भी हमारी रक्षा करती है। प्रभु का विश्वास जब किसी व्यक्ति के हृदय में आ जाता है तो उसका आध्यात्मिक आधार ही ऊंचा हो जाता है उस समय संसार के ये भोग पदार्थ उसे तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। उसे सर्वत्र अपने पालक और पिता की लम्बी लम्बी रक्षक भुजाएं दीखने लगती हैं और यह विश्वास हो जाता है कि किस के लिये धन बटोरूं। मैं किस के लिये सम्पत्ति की याचना करूं। झूठ बोलूं और पाप के द्वारा दूसरों को धोखा दे कर धन एकत्र करूं उस समय तो वह यह कहने लगता है:—

कबहुँक हौं यही रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपातें सन्त
सुभाउ गहौंगो।

जथालाभ सन्तोष सदा काहू सों
कछु न चहौंगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम
वचन नेमु निबहौंगो ।
पुरुष वचन अति दुसह श्रवण
सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान सम सीतल मन
पर गुन नहीं दोष कहौंगो ।
परिहरि देह जनित चिन्ता दुःख
सुख समबुद्धि सहौंगो ।
'तुलसीदास' प्रभु यहि पथ रहि
अविचल हरिभक्ति लहौंगो ॥

जिस समय मनुष्य के हृदय में परमेश्वर का पूर्ण विश्वास जम जाता है उस समय उसमें एक नई चेतना और नई भावना आ जाती है। संसार में उसका न कोई पराया बनता है, न कोई शत्रु। वह सब का होता और सब उसके। विश्व का कोई कष्ट उसे कष्ट नहीं लगता। उसमें ऋषि दयानन्द की भांति जहर देने वाले को भी रुपये देकर एक राज्य से दूसरे राज्य में जहां उसे कोई गिरफ्तार न कर सके भेजने की भावना आ जातीहै।

उस समय पत्थरों की वर्षा उसे फूलों की वर्षा प्रतीत होती है। विपक्षियों की गालियां गालियां नहीं लगती। वह स्वामी श्रद्धानन्द की भांति गुरुकुल खोलने जैसे कठिन कार्यों को सरलता से सम्पन्न कर लेता है। और जब उसे यह विश्वास हो जाता है प्रभु हमारा राजा है, हम उसकी प्रजाएं हैं, पुत्र हैं इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संसार का बनाने वाला और उन पदार्थों में विद्यमान प्रभु के सिवाय और कोई नहीं, वही उन पदार्थों का मालिक है तब हम अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए उसकी शरण में जाते हैं। उस समय हमारा और उसका सम्बन्ध चातक और स्वाति नक्षत्र के बादल के समान हो जाता है। चातक की विशेषता यही है कि वह संसार में विस्तृत समुद्र, कूप, नदियां, तालाब और किसी गढ़े का पानी नहीं पीता वह अपनी तृष्णा को, अपनी प्यास को, अपनी कामना को मिटाने के लिए स्वाति नक्षत्र की बूंद का ही पान करता है। कैसा विचित्र सम्बन्ध इन दोनों में होता जाता है। जरा देखिये तो :—

'तुलसी' चातक मांगनो, एक सबै धन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि ॥

अर्थात् स्वाति नक्षत्र से बढ़ कर कोई दानी नहीं और चातक से बढ़ कर कोई भिक्षु नहीं। वह अपना सम्पूर्ण तत्व और पदार्थ चातक रूपी भिक्षु के लिए दान कर देता है परन्तु अजीब है यह भिक्षु भी वह केवल एक घूंट पानी ले कर ही तृप्त हो जाता है। इसलिए इस मन्त्र में बतलाया गया कि हे मनुष्य जब तुझे प्रभु पर विश्वास हो जाएगा तब तुझे ज्ञात होगा कि संसार के सारे पदार्थ और ऐश्वर्य प्रभु ने तुझे तेरी कामना की पूर्ति के लिए दिये हैं और उस समय तेरी दशा यह होगी कि तुझे कोई कामना न रहेगी तू जो कुछ चाहेगा वह केवल इसलिए कि जीवित रह कर उसकी भक्ति कर कर सके। उस समय हमारी जो भी इच्छा होगी उसकी प्राप्ति के लिए हम भगवान् का ही दरवाजा खट खटायेंगे। और उस समय 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' हम ऐश्वर्यों के स्वामी हो जायेंगे। स्वामी रामतीर्थ ने एक बहुत ही सुन्दर बात कही है। उन्होंने लिखा है:—

इस संसार में हम जब भौतिक सुखों एवं ऐश्वर्यों के पीछे भागते हैं तो ये ऐश्वर्य और सुख हम से वैसे ही भागते जाते हैं जैसे यदि हम छाया के पीछे भागें तो छाया हम से दूर ही दूर होती जाती है। छाया को अपने पीछे भगाने के लिए मुख मोड़ लो और चल दो तब वह छाया आपके पीछे भागेगी वैसे ही ऐश्वर्यों से मुख मोड़ने वाला ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है वह उसके पीछे भागने लगते हैं और वह भावना प्रभु की भक्ति से ही हृदय में समा सकती है। अतः आइये हम भी उसकी ही भक्ति करें।

[७]

आनन्द का निधान 'प्रभु'

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमान शाना स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।

(सः) वह परमात्मा (नः) हमारा (बन्धुः) बन्धु और (जनिता) उत्पादक (पिता) है। (सः) वह परमात्मा (विधाता) हमारा धारण पोषण करने वाला या कर्मों का फल देने वाला है। (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (धामानि) उन लोको के नाम स्थान और उत्पत्ति प्रकार को (वेद) जानता है। (यत्र) जिस (तृतीये) तीसरे (धामन्) धाम (मोक्ष) में (अमृतम्) मोक्ष सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुये (देवाः) ज्ञानवान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरण करते हैं।

वेद मन्त्रों में तथा भारतीय वैदिक संस्कृति में मनुष्य को यह बोध बार बार कराया गया है कि ईश्वर सर्वव्यापक है। सर्वव्यापकता में यदि मनुष्य विश्वास कर ले तो वह पापों से बड़ी आसानी से बच सकता है। बात यह है कि मनुष्य पाप में तभी प्रवृत्त होता है जब वह एकान्त का अनुभव करता है या यह सोचता है कि संसार में उसे देखने वाला कोई नहीं है। कितने भी शक्तिशाली व्यक्ति का यह साहस नहीं होगा कि वह एक छोटे से बच्चे के सामने भी पाप की ओर प्रवृत्त हो। पर मेरे भाई, धीरे धीरे यह पाप की प्रवृत्ति ऐसी होती है कि बाद में जाकर मनुष्य छोटे की कौन कहे बड़े आदमियों के सामने भी पाप करते हुए नहीं डरता। पर जब मनुष्य परमेश्वर को सर्वव्यापक मान लेता है, इस बात को अपने हृदय में बैठा लेता है तब वह पाप करते समय सोचता है कि मुझे भले ही कोई भौतिक प्राणी नहीं देख रहा पर वह सहस्र आंखों वाला प्रभु तो अवश्य ही देख रहा है अतः वह पाप करते हुये डरता है।

प्रभु से डरने की आवश्यकता नहीं। केवल भय से किया जाने वाला कार्य ठीक नहीं होता अतः इस मन्त्र में प्रभु को बन्धु और पिता भी कहा है। देखते नहीं उसने हमें उत्पन्न किया सुख भोगने के लिये? हमें उसने संसार के सब पदार्थ दिये धन दिया, दौलत दी। फूल की पंखड़ियों में तितली के पंखों में, परिन्दों के परों में, बादलों में, इन्द्र धनुष में, प्रभात की उषा में, सन्ध्या की छिटकती लाली में उसी प्रभु की शक्ति विद्यमान है। पवन के झकोरों में, झरनों की झर झर में, बादलों की गर्जन में, पंछियों के कलख में प्रपातों की झंकार में और नदियों की कल कल में वही चतुर गवैया बैठा अपनी संगीत की सुरीली तान छेड़ रहा है? पृथ्वी सूर्य, चन्द्र तारे तथा ग्रह और उपग्रहों में उसी प्रभु की शक्ति काम कर रही है। आसमान में टिमटिमाते तारों को दीपमाला उसी का स्वागत कर रही है? वृक्षों की मधुर मुहारनियां उसी की महिमा जता रही हैं। ऊंचे खड़े पहाड़ों की गगन चुम्बिनी चोटियां उसी प्रभु की ऊंचाई खोज रही हैं? अगाध समुद्र को अचिन्तनीय गहराई उसी गांभीर्य का पता लगा रही है? पत्ते पत्ते की विचित्र रचना उसी शिल्पी के चातुर्य को बता रही है। यह है परमात्मा की महिमा? वही हमारा पालक है। वह हमारा बन्धु है। वह हमारा रक्षक है। उसके प्रत्येक कार्य में हमारी रक्षा की भावना विद्यमान है। यहां यह भी समझ लीजिये कि यदि वह न्यायकारी या विधाता बन कर हमें हमारे कर्मों का फल देता है उस दिशा में भी वह हमारा पालन कर रहा होता है। मनुष्य क्षणिक सुख

और लाभ के लिये अपनी आंखें परमात्मा की ओर से बन्द कर लेता है और कुकर्म कर बैठता है और अपने आपको धोखा देने के लिए कह देते हैं कि—

अब तो आराम से गुजरती है,
आकबत की खबर खुदा जाने।

परन्तु परमेश्व तो पिता है। पालना करना उसका काम है तो वह पाप के फोड़े को दूर करने के लिये एक कुशल चिकित्सक के रूप म चीर फाड़ और आपरेशन करता है। रोग और व्याधियों, गरीबी निर्बलता हमारे लिये परमेश्वर का दिया हुआ दण्ड है। इन दण्डों को परश्वर क्षमा भी नहीं करेगा अतः आपको विधाता के दण्डों से बचने के लिये स्वयं पुरुषार्थ और सत्कर्म करने होंगे? इसलिये कहा गया है कि परमात्मा पर पूर्ण विश्वास करो उसे अपना पिता माता सब कुछ समझो। एक कथा आती है कि एक राजा अपने मंत्री के साथ पर्यटन करने को गया। चलते चलते कांटों वाली झाड़ी में राजा का वस्त्र उलझा और हाथ से रक्त बहने लगा। यह देख मंत्री ने कहा "परमेश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। राजा ने यह सुन मंत्री को वहां से भगा दिया और मंत्री फिर भी यह कहता हुआ कि परमेश्वर जो करता है भला ही करता है—वहाँ से चला गया। थोड़ी देर में कुछ सिपाही किसी पुरुष की तलाश में वहां आये और राजा को पकड़ कर ले गये। बात यह थी वे सिपाही जिस राज्य के थे उस राजा के राज्य में आज देवी की बलि के लिये एक पुरुष की आवश्यकता थी। जब वे राजा को ले गये तो बलि चढ़ाने से पूर्व जब पुरोहित ने उसे नहलाना प्रारम्भ किया तो उसकी कटी हुई ऊंगली देख कर कहा 'अरे यह तो अंग भंग है। इसकी बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।' राजा ने छुटकारा पाया और मन्त्री की बात पर विश्वास आया कि "ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा करता है।" पर राजा को यह समझ में नहीं आया कि मंत्री का कैसे भला हुआ तो वह उसकी खोज कर पहुँचा और उसने कहा कि मुझे यह तो विश्वास हो गया है कि परमेश्वर ने मेरी अंगुली काट कर मेरा भला किया परन्तु तुम्हें जो मैंने हटा दिया था उसमें तुम्हारा क्या भला हुआ? मंत्री ने झट से जबाब दिया 'महाराज जब सिपाही आपको पकड़ कर ले गये थे उस समय यदि आपने मुझे निकाला न होता तो मैं भी आप के साथ रहता और आप तो अंगुली कटने से बच जाते पर मैं पूर्ण अंग वाला होने से मारा जाता तो मेरे लिए भी मेरे पिता ने, मेरे बन्धु से रक्षा और सहायता का मार्ग साफ कर दिया।

यह तो हुआ परमेश्वर का पालन का कार्य। यही कारण है कि हम उसे पिता कहते हैं, बन्धु कहते हैं। संसार का प्रत्येक प्राणी उसी की कामना करता है। विश्व में सर्वत्र उसी की छटा छाई हुई है। और वह प्रभु अपनी आंखों द्वारा संसार के प्रत्येक प्राणी के हित का ध्यान रखता है। इसलिये मनुष्य को दो बातें ध्यान में रखने का उपदेश मन्त्र के इस पहले भाग में दिया गया है। एक तो यह कि परमेश्वर हमारा पिता और बन्धु है वह हमारा कभी अपकार नहीं करता, उसकी पीड़ा और कष्ट भी हमारे लाभ के लिये ही है। और दूसरी और आवश्यक बात यह है कि संसार में पापों से बचने के लिये परमेश्वर के सर्वव्यापक रूप का ध्यान करें।

इस मन्त्र के दूसरे भाग में कहा गया है कि वह परमेश्वर उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त होता है जो सत्य और असत्य को समझ लेते हैं और सत्य के पालन तथा असत्य के परित्याग द्वारा प्रभु की समीपता प्राप्त कर लेते हैं। प्रभु की समीपता हो नहीं बल्कि प्रभु में लीन होकर स्वेच्छापूर्वक विचरण करने लगते हैं।

ईश्वर, जीव और प्रकृति यह तीन अनादि और अनश्वर तत्व हैं। पर तीनों के गुण भिन्न २ हैं। प्रकृति जड़ है, उसे न तो कष्ट होता है और न सुख या आनन्द। जीव चेतन है पर वह आनन्द स्वरूप नहीं, वह सुख चाहता है, आनन्द चाहता है। सुख

और आनन्द प्राप्ति की खोज में वह कभी प्रकृति की ओर जाता है और प्रकृति की ओर जाने का परिणाम यह होता है कि वह प्राकृतिक पदार्थों में, भोगों में एवं विषय वासनाओं में सुख मानता है और इस प्रकार अपने से उच्च वस्तु की ओर न जाकर वह निम्न प्रकृति की ओर जाता है। जीव चेतन होने से प्रकृति की अपेक्षा अधिक उच्च है और जब वह अपने से निम्न को अपना लक्ष्य बना लेता है तो उसे स्थायी शान्ति नहीं मिलती। इसे ही दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उसे पशु योनि प्राप्त हो जाती है। इससे उच्च स्थिति तब होती है जब मनुष्य को अतिशय सुख प्राप्त होता है वह प्राकृतिक भोगों से ऊपर उठ जीवात्मा की प्राप्ति का प्रयत्न करता है। वह सुख भौतिक पदार्थों के सुख की अपेक्षा अधिक होता है। ऐसा सुख हम तब अनुभव करते हैं जब किसी बौद्धिक कार्य में हमें सफलता मिलती है। यही स्वर्ग है। यह दूसरा लोक है। और सांसारिक सुख दुःख से रहित जीवात्मा की एक तीसरी स्थिति भी है और वह स्थिति तब होती है जब आनन्द के धाम प्रभु में विचरण करता है। वह जन्म मरण के बंधन से छूट जाता है। वहाँ मृत्यु का भय नहीं। वही है तृतीय धाम और वहां ज्ञानी मनुष्यों का ही प्रवेश सम्भव है।

—***—

[८]

हे देव, मेरे देव !

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम् ॥

(अग्ने) प्रकाशस्वरूप भगवन् (राये) ऐश्वर्य के लिये (अस्मान्) हम को (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नय) चलाइए (देव) हे परमात्मन् (विश्वानि) आप सब (वयुनानि) कर्मों को (विद्वान्) जानने वाले हैं (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलता युक्त (एनः) पाप को (युयोधि) दूर कीजिए (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) अत्यन्त (नम उक्तिम्) स्तुति को (विधेम) हम करें।

यह प्रार्थना मन्त्रो में अन्तिम मन्त्र है। इस में अग्नि स्वरूप परमात्मा को संबोधन करते हुये उत्तम मार्ग द्वारा आगे बढ़ने की प्रार्थना की गई है। अग्नि नाम परमेश्वर का है। 'तदेवाग्निस्तदादित्यः' (यजु० ३२।१)। अग्नि का अर्थ करते हुए निरुक्त में यास्काचार्य लिखते हैं—"अग्निः कस्मात्" 'अग्रणीः भवति' (निरुक्त ७।१४) परमात्मा अग्नि है क्योंकि वह अग्रणी है। सब से आगे रहने से और सब को आगे ले चलने - परमात्मा का नाम 'अग्नि' है। परमात्मा में ज्ञान, बल इत्यादि गुणों की पराकाष्ठा है। वह अन्तिम सीमा है जहां तक कोई बढ़ सकता है। राम, कृष्ण, बुद्ध, दयानन्द, श्रद्धानन्द आदि महापुरुष अग्नि—अग्रणी हैं। परन्तु परमात्मा परम अग्नि है। वह अग्रिणियों में अग्रणी है, ज्ञानियों में ज्ञानी है। परमात्मा के इस तेजस्वी ज्ञानस्वरूप को समक्ष रख कर प्रार्थना की गई है कि हे अग्ने उत्तम ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए मुझे उत्तम मार्ग से आगे ले चल। इस मंत्र के इस भाग से दो बातें परिलक्षित होती हैं। प्रथम तो यह कि हमें जब मानव जीवन मिला है तो इस का हमें सदुपयोग करना है। एक तो दीनों, हीनों, गरीबों

और दुखियों की सेवा तथा सहायता से और दूसरा उपाय है आत्मोन्नति से। आत्मोन्नति शब्द जरा व्याख्या के लिए उपयुक्त है। दीन और गरीबों की सेवा भी आत्मोन्नति में सहायक है परन्तु आत्मोन्नति का यह उच्च पथ है। यहां हम स्वार्थ छोड़ परार्थ में बहुत आगे बढ़ जाते हैं परन्तु स्वार्थ छोड़ने और परार्थ में अग्रसर होने के लिए हमें अपनी भौतिक उन्नति भी करनी होगी। हमें इस संसार में रहते हुए सांसारिक ऐश्वर्यों को प्राप्त करना होगा। हां यह ठीक है कि इन सांसारिक ऐश्वर्यों के पीछे हम पागल नहीं होंगे। परन्तु इन सांसारिक भोग विलासों को प्राप्त करते हुए भी इन से बचने का मार्ग इस मन्त्र में बताया गया है कि हे प्रभु तू हमें ऐश्वर्य प्राप्त करा। परन्तु उन ऐश्वर्यों को हम सुपथा—उत्तम साधनों से प्राप्त करें।

मनुष्यों में आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा स्वाभाविक है। जिस हृदय में यह महत्वाकांक्षा उत्पन्न नहीं होती और यह प्रार्थना व पुकार नहीं उठती 'प्रथमं नो रथं कृधि' 'मेरे जीवन रथ को आगे कर दो' यह भावना जागृत नहीं होती, वह जीवन शून्य है। जीवन को आगे बढ़ाने के लिए कर्म का उपदेश दिया गया है। वैदिक धर्म के अनुसार जीवन कर्मक्षेत्र है। वेद भगवान् की आज्ञा है "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः" ऐ मनुष्य! तू कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा कर। वेद के अनुसार तो कर्म हीन होकर मनुष्य को जीवित रहने का भी अधिकार नहीं। सन्त तुलसीदास जी ने लिखा है "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा"। ज्ञान भी कर्म का मार्ग दर्शक है इसीलिए उसकी महत्ता है और भक्ति का भी यही उद्देश्य है कि व्यक्ति उस असीम के साथ सम्बन्ध जोड़ कर अपने कर्म के लिए असीम शक्ति व बल प्राप्त कर सके। वैदिक धर्म ज्ञान, कर्म और भक्ति का यही समन्वय करता है। मनुष्य का यह कर्म उत्तम ऐश्वर्यों के लिए और ऐश्वर्य की प्राप्ति जिस जिस प्रकार न करके परमेश्वर की देख रेख में उत्तम मार्ग द्वारा करने की प्रार्थना की गई है। परमेश्वर की देख रेख में आगे बढ़ने का कार्यक्रम इस लिए बनाया गया है क्योंकि वह प्रभु 'विश्वानि वयुनानिवेद' हमारे सब कर्मों का सर्व व्यापक होने से जानने वाला है। हम अपने सब कर्मों को करते हुए अपने सुख और सुविधा का ध्यान रखेंगे और उन सुख सुविधाओं के अनुसार कष्टों से बचने के लिए बुरे कर्म भी कर सकते हैं परन्तु परमेश्वर का ध्यान और उसकी सर्वव्यापकता और उसके कर्मों का फल देने वाले न्यायधीश के समान समझना, यह ऐसे उपाय हैं जिन उपायों के द्वारा वह मार्ग भ्रष्ट होने से बच सकता है। और जीवन संघर्ष में युद्ध करने के लिए शक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

हम संसार में ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हैं। ऐश्वर्य—भौतिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक प्राप्ति करने का उद्देश्य है आनन्द की प्राप्ति। बहुत बार हम देखते हैं कि सब ऐश्वर्य होते हुए भी मनुष्य दुःखी है, उसे सुख नहीं मिलता ऐसे समय मनुष्य क्या करे? वह चिन्तित होता है, उसे समझ में नहीं आता कि वह अपने दुःखों को कैसे दूर करे? वास्तव में आनन्द पदार्थों में नहीं—मन में है। और यह मन जीवात्मा को जिस समय परमात्मा के समीप ले जाता है तो परमात्मा आनन्द का निधान है, अतः वहां पहुँचने पर आत्मा को आनन्द की अनुभूति होती है। आप प्रश्न करेंगे कि—परमात्मा के समीप पहुँचने का क्या मतलब? यदि परमात्मा सर्वव्यापक है तो हम तो सदा परमात्मा के पास हैं? पर मेरे भाई, बात यह है कि समीप पहुँचने का मतलब स्थान की दृष्टि से नहीं कहा जा रहा है। समीप पहुँचने का मतलब यह है कि उसके गुणों को अपने में धारण करना परन्तु हम ऐसा क्यों नहीं कर पाते हैं? क्यों नहीं हम उस तक पहुंचते? क्यों नहीं हमें उत्तम ऐश्वर्य मिलते? इस में कौन सी बाधा है? वह बाधा है कुटिल पाप जो हमें प्रभु से नहीं मिलने देते। पाप हमेशा मनुष्य पर कुटिलता पूर्वक आक्रमण करते हैं देखिये न! वह नवयुवक पूजा का भाव लिए मन्दिर में प्रभु की उपासना करने जा रहा है परन्तु वह सामने

छत पर खड़ी स्त्री से आंखें मिलते ही पूजा में भगवान् का स्मरण न कर उसे पाने के उपाय सोचने लगा। कुटिल पाप ने उसे मार्ग भ्रष्ट किया। ऐसे समय में इन पापों से रक्षा करने वाला केवल प्रभु है। यह पाप तो मनोरम रूप धारण कर मनुष्य को ठग रहे हैं। हे प्रभु तू हमें शक्ति दे कि हम इन पापों से लड़ सकें।

अन्त में हम आप से प्रार्थना करते हैं कि आप हमें अपनी शरण में लीजिये। हे ईश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जो जो उत्तम काम हम करते हैं वे सब आपके अर्पण हैं जिस से हम लोग आप को प्राप्त हो के धर्म जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हम को शीघ्र प्राप्त हो। यह समर्पण का स्वरूप है। यह नमस्कार की विधि है। हम बारम्बार प्रभु के चरणों में अपना नमस्कार करते हैं।

सत्य ज्ञान की परिचायक यह
पृथ्वी जिस के चरण समान,
जो इस विस्तृत अन्तरिक्ष को
रखता है निज उदर समान।
शीर्ष तुल्य है जिसके शोभित
यह नक्षत्र लोक द्युतिमान्।
उस महान् जगदीश्वर को है।
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम॥

लेखक—श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार गोरखपुर

—❀❀❀—

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

[लेखक—श्री सत्यानन्द सरस्वती]

महर्षि दयानन्द का सुललित, सुमधुर, भावपूर्ण, श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

अनेकों चित्रों से सुसज्जित, बढ़िया कागज पर मोटे अक्षरों में, बड़ेसाइज के ६०० पृष्ठों में मुद्रित।

कथा करने तथा शुभ अवसरों पर भेंट देने योग्य अद्वितीय ग्रन्थ।

मूल्य १२) वेदप्रकाश के ग्राहकों को डाक खर्च माफ। १२) अगाऊ आना आकश्यक है।

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

निम्न पुस्तकों विशेष रियायत

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी की दूसरी पुण्य तिथी शिवरात्रि (४ मार्च) के उपलक्ष्य में निम्न पुस्तकों पर १५ फरवरी से १५ मार्च १९६२ तक १) से १९) तक पुस्तकें मंगाने पर =) रुपया, २०) से ५०) तक की पुस्तकें मंगाने पर ≡) आने रुपये की छूट दी जावेगी। ५०) रु० के आर्डर तक डाक रेल खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा। ५०) से अधिक के आर्डर पर रेल खर्च हम देंगे।

१९६१ के नये प्रकाशन

श्री मद्दयानन्द प्रकाश [स्वामी सत्यानन्द] १२)
(महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन चरित्र मोटे अक्षरों में)
दो सनातन सत्ताएं [पं० रामचन्द्र देहलवी] १)
ऋग्वेद शतकम् [श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी] १)
यजुर्वेद शतकम् ,, ,, १)
अथर्ववेद शतकम् ,, ,, १)
सामवेद शतकम् ,, ,, १)
राधास्वामी मतदर्पण ,, ,,)२५
ब्रह्मकुमारी मतदर्पण ,, ,,)३७
प्रार्थना-मन्त्र [सुरेशचन्द्र वेदालंकार] १)
व्याख्यानमाला [स्वामी नित्यानन्द] २)

—❀—

तत्वज्ञान महात्मा आनन्द स्वामी ३)
प्रभुदर्शन ,, ,, २)५०
प्रभुभक्ति ,, ,, १)५०
आनन्द गायत्री कथा ,, ,,)७०
एक ही रास्ता ,, ,,)८०
शंकर और दयानन्द ,, ,,)५०
आनन्द भगवत कथा ,, ,,)६२
भक्त और भगवान ,, ,, १)
मानव जीवन गाथा ,, ,, १)
उपनिषदों का सन्देश ,, ,, १)२५
उपनिषदार्थभाष्य पं० आर्य मुनि ६)
(इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य एतरेय तैत्तिरीय आठ उपनिषद हैं अलग अलग भी मिल सकती है।)

बाल्मीकि रामायण प्रेमचन्द विद्यासागर १२)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा [स्वा० ब्रह्ममुनि] ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ,, ,, ३)५०
सृष्टि का इतिहास [पं० लेखराम आर्य पथिक] २)
गुरुदत्त लेखावलि [पं गुरुदत्त विद्यार्थी] २)
महर्षि से पूर्व का भारत [आत्माराम अमृतसरी] २)
बहनों की बातें [पं० सिद्धगोपाल] १)२५
मित्रों की बातें ,, ,, १)२५
दर्शनानन्द ग्रंथ संग्रह पूर्वार्द्ध [स्वा० दर्शनानंद] २)२५
,, ,, उत्तरार्द्ध ,, ,, २)५०
वैदिक गृहस्थाश्रम [पं० विश्वनाथ विद्यालंकार] ५)
ऋषिगाथा महाकाव्य [विमलचन्द्र विमलेश] ४)
वेद परिचय [स्वामी वेदानन्द])३७
महर्षि दयानन्द [इन्द्र विद्यावाचस्पति] २)
सचित्र योगासन [पं. गणेशदत्त वि. वा.] १)५०
दयानन्द चित्रावली [पं. रामगोपाल वि. अ.] २)५०
स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग [पं. अत्रिदेव वि.] ३)
विवाह और विवाहित जीवन [गंगा प्रसाद उपाध्याय] २)५०
सन्ध्या विनय [नित्यानन्द वेदालंकार] १)
प्रार्थना प्रदीप ,, ,,)५०
कर्तव्य दर्पण [म० नारायण स्वामी] १)२५
आर्य समाज क्या है ,, ,,)७५
वैदिक सन्ध्या रहस्य ,, ,,)३७
वैदिक यज्ञ रहस्य ,, ,,)३७
आर्य सिद्धान्त दीप [पं. मदनमोहन विद्या.] १)२५
गीत श्रद्धाञ्जलि भजन १)
महिला पुष्पाञ्जलि भजन १)

दयानन्द ग्रंथ संग्रह	[महर्षि दयानन्द]	४)५०
आत्म कथा	,,	)४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	,,	)९
वेदान्तिध्वान्त निवारण	,,	)१९
वेद विरुद्ध मत खण्डन	,,	)३७
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	,,	)३७
आर्याभिविनय	,,	)५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	,,	)१०
ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त	,,	)२५
भ्रान्ति निवारण	,,	)३७
व्यवहारभानु	,,	)२५
भ्रमोच्छेदन	,,	)२५
गोकरुणानिधि	,,	)६
गृहस्थाश्रम	,,	)६२
काशी शास्त्रार्थ	,,	)२०
सत्यधर्म विचार	,,	)२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	,,	)१२
ईशोपनिषद	,,	)२५
बालशिक्षक	,,	)३७
संस्कार विधि सजिल्द	,,	२)
यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द	,,	२)५०
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१)
स्वामी दयानन्द और वेद	अरविन्द घोष	)२५
गायत्री व्याख्या	पं० मदनमोहन विद्या	)२५
नास्तिकवाद	पं० देवेन्द्र नाथ शास्त्री	)५०
वेदों का महत्व	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	)२५
ईश्वर प्राप्ति	,, ,,	)१९
ईश्वर विचार	,, ,,	)१२
जीवात्मा	,, ,,	)१२
वेदों की आवश्यकता	,, ,,	)६
वेद किस पर प्रकट हुए	,, ,,	)६
बालशिक्षा	,, ,,	)१०
धर्म शिक्षा	,, ,,	)१०
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	[स्वा. सत्यानन्द]	)५०
ब्रह्मचर्य जीवन	[पं० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]	)३७
वैदिक धर्म शिक्षा	पं० शिवशर्मा	)२५
गोरक्षा परम कर्तव्य	पं० धर्मदेव वि० मा०	)५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका सन्ध्याहवन स्वास्तिवाचन शान्ति प्रकरण अर्थ सहित		)६५
आर्य सत्संग गुटका-सन्ध्या हवन आदि		)४०
वैदिक सत्संग गुटका		)३०
वैदिक यज्ञ प्रकाश		)२०
हवन मंत्र		)१०
सन्ध्या मत्र		)१०

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	)५६
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	)३७
गुरु विरजानन्द	,,	)५०
महात्मा हंसराज	,,	)३७
स्वामी वेदानन्द	जगदीशचन्द्र विद्यार्थी	)२५
भगवान कृष्ण	,,	)३०
अनमोल मोती	,,	)३५
आदर्श सुधारक दयानन्द	देवेन्द्रनाथ मुखर्जी	)६१
गुरुधाम एकांकी—चन्द्रनारायण सक्सेना		)५०

धार्मिक चित्र फोटो आदि

महर्षि दयानन्द रंगीन	साइज २०×३०	१)२५
महर्षि दयानन्द एक रंग	,,	१)
गुरु विरजानन्द ,,	,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	,,	१)
महात्मा हंसराज ,,	,,	१)
पं० लेखराम ,,	,,	१)
स्वामी दर्शनानन्द ,,	,,	१)
पं० गुरुदत्त ,,	,,	१)

मोटोज साइज ११×१४

ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम, गायत्री मंत्र, प्रत्येक	)२५
ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रथम मंत्र दीर्घ जीवन को प्रार्थना, धर्मचर सत्यंवद प्रत्येक	)१९

मोटोज साइज १४×२२

यम नियम–तथा ऋग्वेद के अंतिम सूक्त प्रत्येक	)३१
महर्दि दयानन्द जीवन घटना साइज १५×२०	)५०
महर्षि की महत्ता अरविन्दघोष ,, २०×३०	)५०

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली।

शिवरात्रि पर प्रचारार्थ विद्वानों के ट्रैक्ट मंगावें मूल्य -) प्रति, सैकड़ा ४)

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७. ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क दिल्ली।

वेद सप्ताह पर पारायण यज्ञों के लिए

यजुर्वेद मूल

अभी से मंगा कर संग्रह कर लीजिये

इस संस्करण की विशेषताएं

१. स्वर सहित मूल मन्त्र
२. ४० पृष्ठ की मन्त्र अनुक्रमणिका
३. पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की विशेष भूमिका
४. २४० पृष्ठ की बड़ी साइज की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) मात्र।

१९६२ का महर्षि दयानन्द का
६ रंगा चित्र
बीच में गायत्री मन्त्र दोनों ओर
आर्य समाज के दस नियम
नीचे हिन्दी में १९६२
की तारीखें, एक
का मूल्य ॥)
दर्जन ४)
डाकखर्च पृथक।

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क दिल्ली-६

वेद सागर के चुने हुये मोती

चारों वेदों के १००-१०० सुन्दर मन्त्रों का संकलन प्रत्येक का मूल्य १)

चारों एक साथ मंगाने पर डाकखर्च १) आता है।

उपहारादि देने के लिये अनुपम वस्तु

—❀❀—

राष्ट्र के नेताओं व विद्वानों की सम्मतियां

श्री के० एम० मुन्शी:—यह जानकर प्रसन्नता है कि आपने जन साधारण में वेदों के प्रचार के लिए हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार शृंखला में नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिए शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर:—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the Present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will be become popular and useful.

डा० सर राधाकृष्णन:—They are valuable and I hope they will be read widely.

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता है:—प्रत्येक वेद से अलग अलग चुने हुए सौ सौ मन्त्रों को संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय है।

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ:—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षकरूप से मुद्रित हुए हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोको शैड फिटर	१२)
मोटर मकैनिक	६)
जनरल मकैनिक	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटर ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागबानी	२॥)
आम की बागबानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

स्त्री मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	,,
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जिरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	।)
धर्मवीर हकीकत	२)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— फोन नं० २२००३०

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदालया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

अप्रैल	१९६२
चैत्र	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	९

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रतिका ।)

सूचना

वेदप्रकाश के प्रत्येक ग्राहक को एक नम्बर दिया गया है जो कि पते की चिट पर लिखा व छपा रहता है पत्रव्यवहार करते समय वह नम्बर अवश्य लिखना चाहिये अन्यथा पत्रोत्तर की प्रतीक्षा न करें।

सब मनुष्य समान नहीं।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥
(ऋ० १०।७१।७)

सब मनुष्य (अक्षण्वन्तः) नेत्र वाले (कर्णवन्तः) कान वाले होते हैं, अर्थात् नयन, कर्ण, नासिका, हस्त, चरणादिक सब को होते हैं और इस में (सखायः) सब प्रायः तुल्य दीखते हैं। किन्तु (मनो जवेषु) मनोवेगों में अर्थात् बुद्धि, विवेक, विचार इत्यादि अंशों में (असमाः बभूवुः) वे अतुल्य होते हैं। आगे अतुल्यता दिखलाते हैं। उन में से कोई (आदघ्नासः) मुख पर्यन्त जल वाले (ह्रदाः इव) सरोवर के समान होते हैं, इससे मध्यम पुरुष दिखलाये गये हैं (त्वे उ) कोई-कोई (उपकक्षासः) कक्षपर्यन्त जल वाले सरोवर के समान होते हैं, इस से अल्पज्ञ पुरुष सूचित किए गये हैं (त्वे) कोई कोई (स्नात्वा) स्नानाई अक्षोभ्योदक ह्रदों के समान (ददृश्रे) देख पड़ते हैं, इससे महाप्रज्ञ पुरुष दर्शाए गये हैं।

आशय—यह प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अंश में समान नहीं हैं, केवल मनुष्य ही नहीं किन्तु सब प्राणियों में ऐसी अवस्था विद्यमान है। अतएव मानव समाज में वैषम्य अथवा पारस्परिक मनोमालिन्य और असमञ्जस्य देखकर आश्चर्यान्वित होना नहीं चाहिए। यही शिक्षा इससे दी गई है।

अनुवाद—जिनके चक्षु हैं, कर्ण हैं, ईदृग् बन्धुगण मन के भाव प्रकाश करने में असाधारण होते हैं। जिस ह्रद के जल में केवल मुख वा कक्षपर्यन्त निमग्न होता, जैसे वह अगमीर वैसे कोई अगमीर

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थ माला के सदस्य बनिये

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरंभ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

(४) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २॥) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

महर्षि दयानन्द जी का प्रामाणिक और सम्पूर्ण जीवनचरित्र

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

❀ इतने मोटे अक्षरों में ❀

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्तिभाव पूर्ण जीवन चरित्र "दयानन्द प्रकाश" आर्य समाज के साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है इसके लेखक **श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज** ने इसे इतनी सुन्दर, रोचक और ललित भाषा में लिखा है कि पढ़कर हृदय गद्गद् हो उठता है। भाषा और शैली की दृष्टि से अद्वितीय है। इसमें ऋषि के जीवन की प्रत्येक घटना इतनी सजीव हो उठी हैं कि पाठक के हृदय पर महर्षि क महिमा की छाप अनायास ही लग जाती है। यह पुस्तक दैनिक पाठ कथा रूप में सत्संगों में पढ़ कर सुनाने के लिए अद्वितीय है। ६०० पृष्ठ की बड़ी साइज की पुस्तक केवल १२) में।

गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, देहली

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

सम्पादकीय टिप्पणियां

नव वर्ष का बृहद् विशेषाङ्क संस्कार विधि व्याख्या

अगस्त १९६२ में वेद प्रकाश अपने जीवन के दस वर्ष पूर्ण कर ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करेगा। इस अवसर पर हम अपने पाठकों को "संस्कार विधि व्याख्या" भेंट करेंगे। यह व्याख्या बहुत ही महत्व-पूर्ण एवं उपयोगी होगी। इसके लेखक हैं गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्री पंडित सोमदत्त विद्यालंकार। इस का संशोधन सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान पं० धर्मदेव जी विद्या मार्तण्ड ने किया है। पुस्तक कैसी होगी इस के लिये इन दो महारथियों का नाम ही पर्याप्त है। सम्पादन मेरे द्वारा होगा ही। इस प्रकार यह आर्य जगत् में एक अभूतपूर्व ग्रन्थ रत्न होगा। इसकी पृष्ठ संख्या वेद प्रकाश साइज के ४०० पृष्ठों से अधिक होगी। इस का मूल्य ८ रुपये होगा परन्तु वेद प्रकाश के ग्राहकों को छः रुपये में यह अंक भी मिलेगा और वर्ष भर के अन्य ११ अङ्क भी जिन में कई विशेषांक भी होंगे मिलेंगे। इस स्वर्ण अवसर से मत चूकिये स्वयं अपना शुल्क भेजिये और अन्यों को ग्राहक बनाइये।

मैंने महाभारत के सम्बन्ध में पाठकों की सम्मति जानने का प्रयत्न किया था कुछ पत्र आये और वे बहुत ही उत्साह वर्धक भी थे। परन्तु यह कार्य बहुत ही परिश्रम साध्य है और समय भी बहुत लगेगा अतः इस वर्ष 'संस्कार विधि व्याख्या' ही देने का निश्चय किया गया है। महाभारत अंक भी आपको मिलेगा और निश्चित रूप से मिलेगा। परन्तु अभी कुछ समय लगेगा। मेरा विचार एक वेदांक भी देने का है वैदिक मनुस्मृति भी मैं देना चाहता हूँ। ये सभी ग्रन्थ आप को मिलेंगे यदि वेद प्रकाश परि-वार के सदस्य मुझे सहयोग देते रहे तो।

ये दीवारें कब तक खड़ी रहेंगी:—जिन दीवारों की चर्चा मैं करने चला हूँ ये ईंट और पत्थर की दीवारें नहीं हैं अपितु संकीर्णता की दीवारें हैं। वेद का आदेश है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' सारे संसार को आर्य बनाओ। परन्तु दूसरों को आर्य बनाने वाले स्वयं गड्ढे में गिरे हुए हैं। महर्षि दयानन्द ने जन्मना वर्ण व्यवस्था का विरोध कर उसे गुण कर्म स्वभावानुसार बताया परन्तु हम उस दलदल से अभी निकल न सके। हम सन्ध्या में प्रतिदिन 'ओं महःपुनातु हृदये' पढ़ते हैं परन्तु हमारे हृदयों में अभी क्षुद्रता ही है। यही तो कारण है कि हम समाजों के पदाधिकारी होते हुए भी जन्मगत जात-पात से ऊपर नहीं उठे। हम अपने नाम के साथ भल्ला और पकौड़ी, चण्डोक और कपूर, लौ और चुग, खन्ना और मल्होत्रा, अग्रवाल, खण्डेलवाल, अरोड़ा और पता नहीं क्या २ लिखते हैं। अब इन दीवारों को समाप्त करो। अपने नाम के आगे जाति-वाचक शब्द मत लिखो। पाठक मेरे सम्बन्ध में भी कह कहते हैं कि मैं विद्यार्थी क्यों लिखता हूँ। विद्यार्थी मेरी जाति नहीं यह मेरा उपनाम है और यदि पाठकों को आपत्ति हो तो मैं इसको भी तिलाञ्जलि दे सकता हूँ। आप जैसा महर्षि ने लिखा है अपने नाम के साथ शर्मा, वर्मा और गुप्ता लिख सकते हैं। शेष जातिवाचक नामों को तो छोड़ना ही श्रेयस्कर है। सत्य कटु होता है। मैंने अपनी बात बड़े कोमल शब्दों में कही है फिर भी किसी को कष्ट हुआ हो तो इस कटु सत्य के लिये क्षमा चाहता हूं।

विदेह गप्पः—मैं विदेह जी के सम्बन्ध में मौन ही रहना चाहता था परन्तु उनके पुत्र श्री विश्वदेव के आर्य नेताओं के साथ हुए दुर्व्यवहार को देखकर कुछ लिखने के लिये बाध्य होना पड़ा है। श्री विश्व

देव ने आर्य विद्वानों और नेताओं के ऊपर खूब मिट्टी उछाली है। मुझे प्रसन्नता होती यदि सब से पूर्व वे अपने पिता जी की भी आलोचना करते परन्तु वे तो अपने पिता जी को ऋषि ? समझे बैठे हैं। उनकी दृष्टि में वे दूध जैसे धवल हैं परन्तु मेरी अपनी सम्मति में विदेह जी जैसा मिथ्या भाषी व्यक्ति शायद ही कहीं मिले। 'वेद प्रकाश' के पृष्ठ मुझे आज्ञा नहीं देते कि उनके जीवन की बहुत सारी घटनाएं प्रस्तुत की जायें अतः एक गप्प यहां देता हूं। जैसे एक दाने को देखकर चावल के पूरे कडाह के पक जाने का ज्ञान हो जाता है ठीक इसी प्रकार इस एक ही घटना से पाठक जान लेंगे कि विदेह जी कैसी सफेद झूठ बोलते हैं।

इन्दौर में अपने व्यस्त जीवन का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—"ठीक आठ बजे अपने दफ्तर की कुर्सी पर जा जमता और सायं छः बजे तक पूरे दस घण्टे मैं आफिस में सीधी कमर किये कार्य करता रहता। इस दस घण्टे में न खाना न पीना न टट्टी न पेशाब सारा आफिस स्टाफ दस बजे आता और सायं चार बजे चला जाता।

सायं छः बजे अपने कमरे से बाहर निकल कर मैं पेशाब करता। अपने स्वयं के कमरे का ताला बन्द करके मैं अन्य कमरों की तालाबन्दी का निरीक्षण करता और बड़े इतमीनान के साथ घर की राह लेता। घर पहुँच कर शौच स्नानादि से निवृत्त हो सपरिवार सन्ध्या हवन करके सब मिलकर भोजन करते। घर के लोग अपने काम काज में लग जाते और मैं अपने एकान्त कमरे में अपनी चारपाई पर लेट कर आधा घण्टा बड़े सुख की नींद सोता। ठीक सात बजे अपने बक्स को सामने रखकर मैं वेदानुवाद में संलग्न हो जाता।"

पाठक वृन्द ! है न मजेदार गप्प। आधा घण्टे में घर आना, शौच स्नान, सन्ध्या और हवन तथा भोजन क्या यह सम्भव है। विदेह जी के अनुसार ही केवल सन्ध्या और हवन के लिये आधा घण्टा चाहिये। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि विदेह जी शौचालय में बैठ कर ही सन्ध्या कर लेते होंगे और भोजन करते हुए ही 'इदं मुखाय। इदंन मम॥ इदं जठराग्नये। इदं न मम॥ इत्यादि कह कर आहुतियां दे लेते होंगे। विदेह जी ! इतना झूंठ बोलकर भी आप ऋषि होने का दावा करते हैं और विश्वदेव जी ! आप भी मुरीद बन कर अपने पिता को पीर बनाना चाहते हैं। शीशे के मकान में रहने वाले लोगों को दूसरों के घर में पत्थर नहीं फैंकने चाहिये यही अच्छा है। पहले स्वयं आदर्श बनो फिर किसी की समालोचना करना। औरों को वेद पढ़ने का उपदेश देने से पूर्व स्वयं तो पढ़ लो।

ब्रह्मचारी कृष्ण दत्त के पाखण्ड से बचिये— ब्रह्मचारी कृष्णदत्त नामक एक व्यक्ति लेट कर व्याख्यान देता है। आरम्भ में वह वेद पाठ करता है और फिर व्याख्यान देता है। इस व्यक्ति की आजकल बड़ी चर्चा है। यह ऋषि शृंगी का अवतार बताया जाता है। आर्य समाजी भी पाखण्ड में फंस रहे हैं उसके भाषणों का टेप रिकार्ड कर रहे हैं और कहते हैं कि इस पर अनुसन्धान करायेंगे।

इस व्यक्ति के दो व्याख्यान मैंने भी सुने। मैं तो सोच विचार के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचा कि यह पाखण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आप कहेंगे कैसे ? लीजिये सुनिये।

आरम्भ में वह जिन संस्कृत शब्दों का पाठ करता है वे वेद मन्त्र नहीं हैं। मैंने वेदों का १० बार पारायण किया है हमें तो उसके व्याख्यान में एक भी मन्त्र मिला नहीं जिन लोगों ने पढ़ने की तो बात ही दूर रही वेद देखे भी नहीं उन्हें संस्कृत के शब्द बोल कर अपने जाल में फंसा रहा है। १२ मार्च को हनुमान रोड़ आर्य समाज में उसने जो व्याख्यान दिया उसमें उसने कहा था कि आज के मन्त्रों में ईश्वर को दुर्गेवेति कहा गया है वेद में यह नाम नहीं आता। यदि है तो कोई माई का लाल निकाल कर दिखाये हम चेलेञ्ज देते हैं।

११ मार्च के व्याख्यान में उसने वेदों में ३५ सहस्र मन्त्र बताये जब कि हैं लगभग २० सहस्र ही। १२ मार्च के व्याख्यान में यह भी कह दिया कि स्वामी दयानन्द को सारे वेद नहीं मिले। उसने बुद्ध के सम्बन्ध में बोलते हुए यह भी कहा कि बुद्ध

ने कहा जो वेद अहिंसा की बात कहता है मैं ऐसे वेद को भी नहीं मानता। जो व्यक्ति इस प्रकार के अनर्गल व्याख्यान देता है आर्य भी उनके चक्कर में फंसे हुए हैं यह शोक की बात है।

एक शरीर में एक ही आत्मा रह सकती है जब शृंगी की आत्मा उसमें आती है तो उस की अपनी आत्मा कहां जाती है यदि किसी के पास कोई उत्तर हो, तो देने की कृपा करें।

शृंगी ऋषि को संस्कृत भाषा बोलनी चाहिये थी यह हिन्दी में क्यों बोलता है? और हिन्दी भी टूटी फूटी। उदाहरण के रूप में अमृत धारा को वह इमरित धारा और मज्जा को अपनी ग्रामीण भाषा में मिजा बोलता है।

इस प्रकार यह एक ढोंग और पाखण्ड है। उसने कुछ व्याख्यान रटे हुए हैं उन्हें वह लेट कर बोलता है। वेद मन्त्र का तो नाम ही है वेद के स्थान पर कुछ और ही बोलता है आर्यों को इस अन्धड़ से बचना चाहिये। मैं इस विषय पर जब चाहें जहां चाहें शास्त्रार्थ करने के लिये समुद्यत हूँ यदि किसी में दम खम है तो सामने आयें।

तिनोडिया में:—जनवरी मास में तिनोडिया (उज्जेन) के उत्साही आर्य वीर श्री रामकृष्ण जी ने आर्य समाज का उत्सव रचाया। मुझे भी निमन्त्रित किया गया था। श्री रामकृष्ण जी का उत्साह कमाल का था। अकेले ही वीर ने सारा काम अपने ऊपर लिया हुआ था। प्रातः सायं २०-२०, २५-२५ व्यक्तियों का भोजन उत्सव के दिनों में उनके ही घर बनता रहा। रामकृष्ण जी की भांति उनकी धर्म-पत्नी भी दिन भर सेवा कार्य में संलग्न रहती थी। श्री रामकृष्ण जी जैसी लग्न और श्रद्धा सभी आर्यों में आजाये तो हम दिन दुगनी और रात चौगनी उन्नति कर सकते हैं।

तीन दिन तक यज्ञ का कार्यक्रम चला। इसके ब्रह्मापद का भार मुझे सौंपा गया था। यज्ञ के उपरान्त वेद प्रवचन होकर प्रातः कालीन कार्य समाप्त हो जाता था। सायं काल भजन और व्याख्यान होते थे। श्री अजय कुमार जी के धनुर्विद्या के खेल भी अतीव आकर्षक रहे। जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

यहां की तथा आस पास की जनता बहुत गरीब है। उनकी गरीबी से लाभ उठा कर ईसाई और बहाई मत वाले उन लोगों को ईसाई और बहाई बनाने में लगे हुए हैं। इनके बढ़ते हुए प्रचार को रोकने के लिए एक ओर जहां स्वामी सर्वानन्द जी जैसे संन्यासियों की आवश्यकता है जो भरी जवानी में ही सन्यास लेकर आत्मना उन लोगों के उपकार और उद्धार में लगे हुए हैं वहां हमारी सार्वदेशिक और प्रतिनिधि सभाओं को भी अपने प्रचारक भेजने चाहिए जिससे ईसाइयों और बहाइयों के काले करनामों को रोका जा सके।

कुछ महर्षि दयानन्द अंक के सम्बन्ध में:—इस अंक को पाठकों ने आशा से भी अधिक पसन्द किया है और पत्रों द्वारा अपने उद्गार प्रकट किए हैं परन्तु यह अंक अधूरा रहा। पांच शीर्षकों के अतिरिक्त दयालु दयानन्द, सत्यवादी दयानन्द और परोपकारी दयानन्द, विषय का उपसंहार (जिसे पढ़ कर आप गद्गद् हो जायेंगे) लोक मत में दयानन्द और दयानन्द के ग्रन्थों का परिचय इतने विषय और देकर इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करा दिया है। २८ पौंड का कागज, बढ़िया छपाइ और १०८ पृष्ठ सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) २५ मात्र है।

जिन महानुभावों ने मुझे प्रोत्साहित किया है मैं उन सभी का आ आभारी हूँ। कुछ व्यक्तियों ने 'योगिराज दयानन्द' अंक की शीघ्र मांग की है। यह अंक बहुत बड़ा होगा और एक अभूतपूर्व वस्तु होगी। कभी वेद प्रकाश के वृहद् विशेषांक के रूप में देने का प्रयत्न करूंगा।

दुखद वियोग:—दिसम्बर और जनवरी में जो शीत लहर चली उसमें आर्य समाज हिलसा (पटना) के मन्त्री और वेद प्रकाश परिवार के उत्साही सदस्य भी परलोक सिधार गये। बहुत दिन से लकवा रोग से पीड़ित वैद्य ठाकुर दत्त जी शर्मा का भी अभी पिछले दिनों देहावसान हो गया। प्रभु दिवंगत आत्माओं को उनके कर्मानुसार सद्गति प्रदान करे। और उनके शोकसन्तप्त परिवारों को इस कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

"विद्यार्थी"

[समाधाता—ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी]

शङ्का समाधान

श्री गोकुल प्रसाद व्यास, आरा

शंका—क्या कुटुम्ब में किसी व्यक्ति के जन्म या मृत्यु पर दैनिक पञ्च महायज्ञ बन्द कर दिये जायें अथवा चालू रखे जायें ?

समाधानः—पञ्च महायज्ञ हमारे दैनिक कृत्य हैं। अतः ये बन्द नहीं होने चाहिए। इस विषय में हम सत्यार्थ प्रकाश से ही प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नेत्यिके :
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होम मन्त्रेषु चैव हि ॥
नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥

(मनु० २ । १०५-६)

वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पञ्च महायज्ञों के करने और होम मन्त्रों में अनध्याय विषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है क्योंकि ॥१॥ नित्यकर्म में अनध्याय नहीं होता जैसे श्वास प्रश्वास सदा लिए जाते हैं बन्द नहीं किये जा सकते वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये। न किसी दिन छोड़ना क्योंकि अनध्याय में भी अग्नि होत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्य रूप होता है जैसे झूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है वैसे ही बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है।

श्री ए० एस० वरदराजन, मद्रास

शंकाः—मृग चर्म और कुशासन पर बैठ कर जप करने का क्या तात्पर्य ?

समाधानः—मृग चर्म खाल है अतः इसे अशुद्ध समझते हैं और इसी लिए यह शंका उपस्थित की गई है, ऐसा प्रतीत होता है परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने चर्म को अशुद्ध मानते हुये भी मृग चर्म को शुद्ध ही माना है। जैसे कीड़ा अशुद्ध है परन्तु उसके द्वारा निर्मित रेशम शुद्ध है। मृग चर्म पर बैठ कर सन्ध्या करने से बवासीर और भगन्दर रोग नहीं होते। यदि हों तो दूर हो जाते हैं।

इसी प्रकार कुशा का भी अपना महत्व है। यह कीटाणु नाशक है। इस पर बैठे हुए व्यक्ति पर बिजली नहीं गिर सकती। तथा इस पर बैठ कर सन्ध्यादि करने से आयु वृद्धि भी होती है। वेद में कहा है—

दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ।

(अ० १९।३२।१)

दर्भ (कुशा) जो उत्तम औषधि है उसे दीर्घ जीवन के लिए बांधता हूं।

शंकाः—द्रौपदी के पांच पति वास्तविक या काल्पनिक। यदि वास्तविक थे तो हमें द्रौपदी का व्यवहार व्यभिचारिणी स्त्री जैसा मालूम पड़ता है। एक पतिव्रत ही वैदिक है।

समाधानः—यह विषय बड़ा ही विवाद ग्रस्त है। इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर देने के लिए तो कई पृष्ठ चाहियें परन्तु संक्षेप में आप इतना ही समझिये कि द्रौपदी का एक ही पति था। द्रौपदी के पांच पति बताने के लिए जो कहानी घड़ी गई है वह ही झूठी है। वह कहानी तो पाठकों को ज्ञात ही होगी कि स्वयंवर के पश्चात् पांचों भाई जब अपने घर पहुंचे तो बाहर से ही कहा माता हम भिक्षा लाये हैं और माता ने अन्दर से ही कह दिया कि पांचों बांट बांट लो और इस प्रकार वह पांचों की पत्नी बन गई। लीजिए मैं इस सारी घटना को ही असत्य सिद्ध कर देता हूं।

जब पांचों पाण्डव एकचक्रा नगरी में ठहरे हुए थे तो एक ब्राह्मण वहां आया और उसने विचित्र कथाए सुनाते हुए एक दिन द्रौपदी के स्वयंवर की बात भी सुनाई। द्रौपदी के स्वयंवर की बात सुन कर पांचों पाण्डव माता कुन्ती सहित पाञ्चाल नगर को प्रस्थानित हुए। वहां एक स्थान पर ठहरे।

नियत तिथि और समय पर पांचों पाण्डव स्वयंवर में गये। जब अन्य वीर योद्धा हार गये तो ब्राह्मण वेश में अर्जुन आगे बढ़ा और उसने लक्ष्य भेद कर दिया। तब चारों ओर से पुष्प वृष्टि होने लगी और बाजे बजने लगे। उच्च स्वर से सूत यशोगान करने लगे—

तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृद्धे,
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः।
आवासमेवोपजगाम शीघ्रं,
सार्धमं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम्॥
(महा० आदिपर्व १८९।२६)

उस समय जब महान् कौलाहल बढ़ने लगा, धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर पुरुषोत्तम नकुल और सहदेव को साथ लेकर डेरे पर ही चले गये।

पाठक वृन्द! वहां जाकर उन्होंने अपनी माता को यह सुखसमाचार तो सुनाया ही होगा फिर क्या माता अन्दर ही बैठी रही होगी। वह तो द्वार पर आकर अपने पुत्र के आगमन की घड़ियां गिन रही होगी। अतः तुम पांचों इस भिक्षा को बाँट लो यह बात कुन्ती ने नहीं कही। किसी स्वार्थी ने मिलावट की है।

इस प्रकार द्रौपदी का एक ही पति सिद्ध होता है और वह पतिव्रता थी। यहां उस सब के लिखने का स्थान नहीं है।

शंका:—अग्नयाधान और पूर्णाहुति खड़े होकर देना है या बैठ कर भी?

समाधान:—कुछ लोग ऋषि की विधि अनुसार न करके मन मानी करने लगे हैं जो ठीक नहीं है। ऋषि ने जहां जैसी विधि करनी थी उसका वैसा ही उल्लेख कर दिया है। ऋषि दयानन्द वे अग्नयाधान और पूर्णाहुति खडे होकर करने के लिए नहीं लिखा अतः खड़े होकर करना उचित नहीं बैठ कर करना ही ठीक है।

शंका:—सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास के पृष्ठ संख्या २१८ पर आचार्य दयानन्द ने लिखा है "जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उन में इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? मेरा सन्देह तो इसी में है कि सूर्य में मनुष्यादि जीव कैसे सम्भव हैं जब कि सूर्य एक जलता अग्निपिण्ड है। जब कि मई महिने की धूप में लोग लू के कारण मर जाते हैं तो सूर्य में मनुष्य का जिन्दा रहना तीनों काल में असम्भव है। कृपया आप अपना दृष्टिकोण लिखें।

समाधान:—मेरा दृष्टिकोण तो वही है जो आचार्य लिख गये हैं अर्थात् मैं आचार्य की बात को १६ आने सत्य और यथार्थ मानता हूं। आप कहेंगे युक्ति ने प्रमाण मान न मान मैं तेरा महमान। परन्तु अपने पक्ष की पुष्टि में मेरे पास युक्ति भी है। पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों में पृथिवी का अंश अधिक होता है इसी प्रकार सूर्य में रहने वाली सृष्टि में अग्नि का अंश अधिक मात्रा में होगा। जब उनमें अग्नि अंश अधिक होगा तो जलने की आशंका ही निराधार है। यदि यह समुद्र कहीं आकाश में होते तो शायद आपको यह शंका हो जाती कि इस में रहने वाले जीव जल में श्वास कैसे ले सकेंगे और निरन्तर जल के स्पर्श से वे गल भी जायेंगे। परन्तु परमात्मा ने उनमें जलीय अंश अधिक रक्खा है और उनको इस प्रकार की शक्ति प्रदान की है कि वे जल में ही श्वास ले सकें। बस यही बात आप सूर्य के लिए भी समझ लें। अब तो वैज्ञानिक भी ऋषि की बात को स्वीकार करने लगे हैं।

शंका:—जब हम ईसाई और इस्लामी को वैदिक धर्म में प्रविष्ट कराते हैं तो उनको किस गोत्र में गिनें।

समाधान:—जिस का कोई गोत्र न हो उसका गोत्र कश्यप समझें।

(शेष फिर)

सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत

पं० जयगोपाल जी कृत

सम्पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश दोहे चौपाई में बहुत ही सुन्दर ललित भाषा में लिखा गया है मूल्य १५) से घटा कर ८) में इस समय दिया जा रहा है। थोड़ी ही पतियां शेष हैं। शीघ्र मगावें। डाकखर्च पृथक।

साहित्य समीक्षा

श्रीकृष्ण चरितः—लेखक श्री भवानी लाल जी भारतीय एम० ए० सिद्धान्त वाचस्पति।

प्रकाशक—आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर। पृष्ठ संख्या २६१ मूल्य २।)

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है प्रस्तुत पुस्तक में श्रीकृष्ण का जीवन चित्रित किया गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। श्रीकृष्ण के उदात्त और उज्ज्वल चरित्र को ठीक प्रकार से जानने के लिये इस पुस्तक का अध्ययन आवश्यक है। लेखक महोदय श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने में पूर्ण सफल हुए हैं। इस सुन्दर पुस्तक प्रणयन के लिये भारतीय जी बधाई के पात्र हैं।

योग और स्वास्थ्यः—लेखक आचार्य भद्रसेन जी।

प्रकाशक—आदर्श साहित्य निकेतन अजमेर। प्राप्ति स्थान—गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली, पृष्ठ संख्या ३०७। मूल्य ३) ५० नये पैसे।

आचार्य जी स्वयं योगाभ्यासी हैं। अपने अभ्यास और अनेक रोगियों पर किये गये परीक्षणों के अनुभव के आधार पर ही इस पुस्तक में योगासनों के लाभ और विधियों का विस्तृत विवेचन किया है। हमारी आदर्श दिनचर्या क्या हो, योगासाधन क्यों करें? योग आसनों की अन्य व्यायामों से क्या विशेषता है योग आसन करने के अधिकारी कौन हैं इत्यादि सभी बातों पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। बिना औषधि के रोगों को दूर करने के उपाय भी लिखे गये हैं। प्राणायाम के ऊपर भी विस्तृत विवेचन किया गया है। यह इस पुस्तक का चतुर्थ संस्करण है। पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान इससे सहज में ही लगाया जा सकता है। छपाई उत्तम है पृष्ठ १७० पर 'अष्टचक्रा' मन्त्र अत्यन्त अशुद्ध छपा है। मुख पृष्ठ सुन्दर और आकर्षक है।

भारत और मुस्लिम भावनाओं का एक रूप—लेखक श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी।

प्रकाशक—लोक साहित्य प्रकाशन सुभाष बाजार मेरठ। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य २)।

किसी भी देश की एकता को सुदृढ़ बनाने के लिये और उसके सर्वाङ्गीण विकास के लिये उस देश के सभी निवासियों के हृदयों में प्रेम भावना होनी चाहिये परन्तु भारतवर्ष के अधिकाँश मुसलमानों को इस देश से, यहां की संस्कृति और सभ्यता से तनिक भी प्रेम नहीं है। राष्ट्रगीत, राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, पं० नेहरू डा० सम्पूर्णानन्द आदि महानुभावों के विचारों पर जो टीका टिप्पणी मुस्लिम पत्रों में की गई है तथा हिन्दु संस्कृति और सभ्यता के प्रति 'अलजमीयत' में जो विषवमन किया गया है उस सब का इस पुस्तक में दिग्दर्शन कराया गया है। आर्य समाज और महर्षि दयानन्द और सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में इन का दृष्टिकोण क्या है? आदि १४ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। मुसलमानों की मनो भावनाओं को जानने में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी। इन भावनाओं को जानकर हमें उनकी भावनाओं को समाप्त करने के लिये उद्यत होनाचाहिये। इस उत्तम पुस्तक के प्रणय के लिये मैं लेखक और प्रकाशक दोनों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

वैदिक ज्ञान प्रकाशः—लेखक मास्टर शान्त।

प्रकाशक—आर्य युवक संघ १६५७, दरियागंज दिल्ली-७। गुटका साइज पृष्ठ १२०। मू० ५० पैसे।

इस पुस्तक में ईश्वर जीव, प्रकृति, वेद, यज्ञ, आश्रम, संस्कार भक्ष्याभक्ष्य, आचार अनाचार

भ्रम निवारण

❀ श्री फूलचन्द शर्मा निडर

जनवरी मास के 'वेदप्रकाश' में 'आध्यात्मिक सारणी' शीर्षक लेख में मान्या श्री चंचल बहिन मणिकलाल पाठक की ओर से हमारे प्रश्नों के उत्तर नाम से कुछ विचार छपे हैं। बहिन जी के इसी शीर्षक से यही विचार जुलाई सन् ६१ के 'टंकारा-पत्रिका' में भी निकल चुके थे और तब हमने इसे बहिन जी की एक साधारण भूल समझ कर इस पर कुछ लिखना आवश्यक न समझा था। परन्तु अब पुनः उन्होंने विशेष बल के साथ 'वेद-प्रकाश' में अपने वही विचार प्रकट किये तथा विशेष पत्र व्यवहार द्वारा हम से विचार विनय तक के लिए लिखा है, अतः हमारे लिए इसका स्पष्टीकरण आवश्यक हो गया है।

मान्या बहिन जी, 'टंकारा पत्रिका' तथा 'वेद-प्रकाश' के पाठकों की सेवा में विनम्र निवेदन है कि इस विषय में हमारी निम्नोक्त घोषणा को पढ़कर हमारे प्रति उत्पन्न हुये अपने भ्रमों का निवारण करें:—

१—गत मई सन् ६१ में होने वाले दिल्ली के 'नवमार्य महासम्मेलन' के अवसर पर हमारा यह विचार हुआ कि इस महासम्मेलन में एक 'सिद्धान्त सम्मेलन रक्खा जावे, जिसमें जिन विषयों पर आर्यों में परस्पर मतभेद हैं (अर्थात् स्वामी जी ने जिन विषयों पर कुछ नहीं लिखा, अथवा स्पष्ट नहीं लिखा, अथवा जिसे कोई स्पष्ट नहीं समझता अथवा स्पष्ट समझने में मतभेद है, उनका निर्णय किस प्रकार हो।) उनका सब पर एक मत करने का प्रयत्न किया जाये।

हमारे उक्त विचार ही आर्य महासम्मेलन के अधिकारियों तथा आर्य विद्वानों से प्रार्थना अथवा सुझाव रूप में कई आर्य पत्रों में प्रकाशित हुए। और हमारे यही विचार ता० ९-४-६१ के 'सार्वदेशिक' तथा मई ६१ के 'टंकारा-पत्रिका' में 'सिद्धान्त' सम्मेलन की आवश्यकता' तथा 'नवम आर्य महासम्मेलन' शीर्षक से प्रकाशित हुये थे। यदि पाठक हमारी उस प्रार्थना अथवा सुझावों को फिर से पढ़ने का कष्ट करेंगे तो बहिन चंचला जी जो अब तक उन पर लिखती जा रही हैं उस पर आश्चर्य करेंगे। क्यों कि हमारा वह लेख महासम्मेलन के अधिकारियों तथा आर्य विद्वानों से एक प्रार्थना एवं सुझाव मात्र था। किसी भी रूप में किसी से भी कोई प्रश्नादि उसमें नहीं किये गये थे।

२—यहां यह लिखना भी अनुपयुक्त न होगा कि ऊपर यह स्पष्ट हो गया है कि हमारे कोई प्रश्नादि नहीं थे, तथा बहिन जी की समझ के अनुसार उन्हें प्रश्न ही समझ लिया जाये तो यह कहना पड़ेगा कि मस्तिष्क शास्त्रज्ञा होने पर भी उन्होंने हमारे भावों को ठीक नहीं समझा है और उनका 'वेदप्रकाश' के लेख के अनुसार केवल सं० ३ और ५ तथा 'टंकारा पत्रिका' के लेख के अनुसार केवल सं० ३ और ४ को छोड़ कर अन्य कोई समाधान भी हमें स्वीकार्य नहीं है।

मान्य बहिन जी का धर्म-प्रेम, लग्न एवं भावना श्लाघ्य हैं परन्तु साथ ही उनसे क्षमा याचना करते हुए यह कहे बिना भी नहीं रहा जाता कि उन का हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार न होने से वे अपने भावों को ठीक से व्यक्त नहीं कर पा सकी हैं। अतः उनके विचारों को ठीक से समझा नहीं जाता। कहीं-कहीं तो बिल्कुल ही संगति नहीं बैठती है।

अन्त में हम अपने को ऋषिवर दयानन्द के कृपा-पात्र तथा आर्य विद्वानों का एक तुच्छ सेवक समझते हुए इस वक्तव्य द्वारा यह घोषणा करते हैं कि हमें वैदिक मत तथा महर्षि दयानन्द अथवा आर्य समाज के मन्तव्यों पर गर्व है और हमें न कोई शंका है न किसी से हमारा कोई प्रश्न है, वरन् किसी भी मतावलम्बी अथवा आर्यों का भी यदि कोई प्रश्न या शंका हो तो हम उसका समाधान करने का साहस रखते हैं।

बहिन चंचल जी की इच्छा बहुत से विचार विनिमय करने की है तो बड़ी अच्छी बात है। इसके लिए हम सहर्ष समुद्यत हैं! ❀ ❀ ❀

आदि २२ विषयों पर प्रकाश डाला हैं। साधारण पाठकों के लिये विशेष कर विद्यार्थियों और वैदिक धर्म का आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये पुस्तक उपयोगी है।

अष्टादश पुराण परिशीलनः—लेखक आचार्य शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा पथिक बी. ए. कानपुर।

प्रकाशक—जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम पथ बड़ौदा। पृष्ठ संख्या-६६ मूल्य ७५ नये पैसे।

श्री शिवपूजन सिंह जी आर्य जगत् के ख्याति प्राप्त लेखक हैं। आपने अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया है। प्रस्तुत पुस्तक में आपने पौराणिक लेखकों के अनुसार ही पुराणों में गड़बड़ सिद्ध की हैं। और यह भी सिद्ध किया है कि अभी तक पौराणिक भी यह निश्चय नहीं कर पाये हैं कि वास्तव में १८ पुराण कौन से हैं। १८ पुराणों का सामान्य परिचय देते हुए यह सिद्ध किया गया है कि इन पुराणों में किस प्रकार मिलावट होकर श्लोक संख्या बढ़ी और घटी है। पुराणों का परिचय करने के लिये इस पुस्तक का पढ़ना बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा। छपाई आदि उत्तम है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य कुछ कम होना चाहिये था।

अवतारवाद रहस्यः—लेखक डा० श्रीराम आर्य प्रकाशक वैदिक साहित्य संघ कासगंज। पृष्ठ संख्या १५० मूल्य १॥)।

अवतार क्यों होता है? किस का होता है? क्या ईश्वर अवतार ले सकता है? क्या ईश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता है? क्या श्रीराम और श्री कृष्ण आदि महानुभाव ईश्वर के अवतार थे? आदि अनेक बातों पर लेखक ने प्रभूत प्रकाश डाला है। अवतारवाद की धज्जियां उड़ा दी गई हैं। भाषा मंजी हुई और परमार्जित है। एक बार आरम्भ करके फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता। पुस्तक पठनीय, मननीय और संग्रह करने योग्य है।

त्रैत्वादः—लेखक पं० बुद्धदेव 'विद्यालंकार'।

प्रकाशक—आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण, सुलतान बाजार हैदराबाद आ० प्र०। पृष्ठ संख्या ४१ मूल्य ५० नये पैसे।

यह छोटी सी पुस्तिका ११ अध्यायों में विभक्त है। आरम्भ में ए० आई० ओपारिन की पुस्तक The orgin of life on earth की समालोचना करते हुए लेख ने अनेक उद्धरणों से यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि अचानक नहीं बनी इसका कोई कर्ता है फिर विकासवाद के सिद्धान्तों की प्रबल समीक्षा की है। आरम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि पुस्तक का त्रैत्वाद नाम निरर्थक सा है। परन्तु ज्यूं ज्यूं हम आगे बढ़ते जाते हैं पुस्तक का नाम सार्थक चरितार्थ हो जाता है। भाषा में गति और प्रवाह है। कहीं कहीं हास्य का पुट भी विद्यमान है। नास्तिकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। इस पुस्तक लेखन के लिये पण्डित जी को हार्दिक बधाई।

कागज और छपाई आदि उत्तम है परन्तु मूल्य अधिक है। प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य २५ नये पैसे से अधिक नहीं होना चाहिये था।

विद्यार्थियो की दिनचर्या

अनेक सम्मतियों में से एक—

"विद्यार्थियों की दिनचर्या" नामक लघु पुस्तिका देखी, लेखक ने गागर में सागर भरा है। छात्रों के जीवन को बनाने वाली इससे अच्छी कोई अन्य पुस्तक अभी तक मेरे देखने में नहीं आई। स्वल्प मूल्य में लाखों का ज्ञान, भला इससे अधिक और क्या होगा? इसे प्रत्येक छात्र डायरी के समान हर समय जेब में रखे और जीवन की कुञ्जी समझे। पथभ्रष्ट होते हुए छात्रों के लिये तो यह पुस्तक रसायन सिद्ध होगी।

ऐसी उपयोगी पुस्तक के लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों छात्र समाज के चिर ऋणी रहेंगे।

आचार्य रमेश चन्द्र शास्त्री विद्या भास्कर (अजमेर)

३२ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २० नये पैसे · २००० का प्रथम संस्करण केवल ४ मास में समाप्त हो गया अब दूसरा संस्करण छपा है।

विज्ञान का स्रोत वेद

❀ ले० विद्यार्थी भारतेन्दु "विमल" व्याकरणोपाध्याय
आर्ष गुरुकुल एटा]

पाठक वृन्द ! पूर्व लेख में मैंने आपके समक्ष इसी शीर्षक से यह दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया था कि वेद ही विज्ञान का स्रोत है। उस लेख में यान विषयक ही कुछ निर्देश किया था। इस बार मैं कुछ विस्फोटक पदार्थों का तथा तत्सम्बन्धी अस्त्र शस्त्रों का जो वर्णन वेद में यत्र तत्र आता है, वर्णन करूंगा। परन्तु पहले यान विषयक एक अन्य मन्त्र उपस्थित कर पुनः अग्रिम विषय पर चलूंगा देखिये-

ऋ० मं० १ अ० १७ सू० ११६।५ वें मन्त्र को (तिस्रः क्षपः) भाष्यः—(तिस्रः क्षपः) तीन रात (त्रिः अहा) तीन दिन (अति व्रजद्भिः) अति वेग से चलने वाले (शतपद्भिः) सैकड़ों चरणों वाले [और] (षडश्वै) ६ वेगवान् यन्त्रों से [यन्त्र शीघ्र गामी होते हैं अतः यन्त्रों का अश्व नाम भी है] (त्रिभिः रथैः) जल-स्थल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों पर चलने वाले (रथैः) रथों के द्वारा [यान भी रमण के साधन हैं अतः रथ संज्ञा है] (नासत्या) सत्य स्वभाव वाले (भुज्युम्) राष्ट्र के पालक को (समुद्रस्य) समुद्र के (धन्वनि) आकाश में (आर्द्रस्य) और जल से युक्त जो भूमि ऐसे स्थल के (पारे) पार (उहथुः) ढोया करो।

इस मन्त्र में देखने से प्रत्यक्ष हो जाता है कि तीनों प्रकार के यानों का वर्णन वेद में स्पष्ट है। अब मैं आज के मुख्य विषय पर आता हूँ आशा है पाठक इन ऋचाओं पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे। देखियेः—

ऋ० मं० १ अ० ११ सू० ५८ मं० ५ मन्त्र हैं:—
विवातजूतो० इत्यादि।

भाष्यः—जैसे अग्नि (जुहूभिः) अपने भीतर अग्नि तत्वों को रखने वाले पदार्थ, जैसे मैनसिल, पोटाश, आदि और (सृण्याः) फूटकर वेग से निकलने वाली बारूद आदि शक्ति से (तुविस्वनिः) बड़ा भारी धड़ाके का शब्द करता है [वैसे ही] पुनः आगे यह मन्त्र अध्यात्म में घटाया जाता है जिसका इस विषय से कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु यह जो अध्यात्म को लेकर उपमा इन पदार्थों को दी गई है उससे यह बात स्पष्ट है कि वेद में भी इस प्रकार के पदार्थों का स्पष्ट वर्णन है। अन्यत्र भी इसी प्रकार ऋ० मं० १ अ० १२ सू० ७१ मं० २ में आया है कि (अद्रिरुज-नङ्गिरसो रवेण) अर्थात् जिस प्रकार (अङ्गिरसः) बारूद (रवेण) गर्जना के साथ (अद्रिम्) दृढ़ पर्वत को भी (रुजन्) तोड़ते हुए इत्यादि आगे इसको भी अध्यात्म में घटाया जाता है किन्तु केवल इस उपमा मात्र से ही ऐसे पदार्थों की अनुपम कार्य क्षमता का वेद में वर्णनित विषय का पूर्णतया स्पष्टीकरण हो जाता है। इसी प्रकारः-

"पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना निपेदवे अहथुराशुमश्वम्। सहस्रसां वाजिनम प्रतीतमहिहनं श्रवस्यन्तरुत्रम्॥" **ऋ० मं० १ अ० १७सू० ११७ मंत्र ९**

भाष्यः—(अश्विनौ) हे विद्वान् शिल्पियो (पुरु) बहुत से (वर्पांसि) पदार्थों को (दधानाः) बनाते हुए (पेदवे) दूर जाने के लिये (सहस्रसां) अति बल को धारण करने वाले (वाजिनम्) वेगवान् (अप्रतीतम) बेरोक (अहिहनम्) आगे आने वाली डाट पर धक्का मारने वाले ["आहन्ति इति अहिः" इस लिये पिस्टन अर्थात् डाट को अहि कहा है] (श्रवस्यम्) शब्दकारी (तरुत्रम्) दूर तक पहुँचा देने वाले (आशुम्) शीघ्रगामी (अश्वम्) बन्दूक के घोड़े को (अहथुः) दबाओ।

इस मन्त्र पर भी दृष्टिपात कीजिये कि कितना

स्पष्ट वर्णन बन्दूक का दृष्टिगोचर होता है। इसके पश्चात् मैं आपको बन्दूक में चलने वाली गोली कैसी होती है उसका एक मन्त्र द्वारा दिग्दर्शन कराऊंगा।

देखिये:—

"यदि नो गां हन्सि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तंत्वा सीसेन विध्यामो यथा नो सो अवीरहा॥"
अथर्व० कां १ सू० १६ मं० ४॥

अर्थात् हे दुष्ट! यदि तू हमारी गौओं को अश्वों को और हमारे वीर पुरुषों को मारेगा तो हम तुझे शीशे की गोली से मार कर बींध देंगे जिससे कि तू हमारे वीर पुरुषों को न मार सके। इस मन्त्र के अर्थ पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि पूर्व निर्दिष्ट मन्त्र से जहां बन्दूक का स्पष्टीकरण होता है वहां यह मन्त्र इस बात की पूर्ति करता है कि उस बन्दूक में शीशे की गोलियाँ चलाकर हम अपने शत्रुओं को पराजित कर सकते हैं। पाठक वृन्द! अद्यत्वे प्रायेण शीशे की गोलियों का प्रयोग न देखे जाने पर भी वैदिक मन्त्र में निर्देश होने से यह प्रतीत ही नहीं होता अपितु पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि शीशे की गोलियों का प्रयोग सफल हो सकता है।

मैंने आपके समक्ष कुछ मन्त्र इस विषय के प्रस्तुत किये हैं उन पर अच्छी प्रकार विचार करें। स्मरण रहे कि इस प्रकार के सैकड़ों मन्त्र हैं किन्तु मैंने दिग्दर्शनार्थ ही मन्त्र प्रस्तुत किये हैं। आगे यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो अन्य विषयों पर भी स्व सामर्थ्यानुसार प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा।

॥ इति शम् ॥

"शान्ति के पथ पर न चल कर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ"

[श्री मित्रसैन आर्य शास्त्री, एल० एस०-सी० अलीगढ़]

ओ युवक तुम सोचते क्या जग पुकारे आज तुम को।
आपदा की वीथियों से पार करना क्या न तुम को।
जग उठो चैतन्यता से कार्य पूरा कर दिखाओ।
शान्ति के पथ पर न चल कर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ॥

भय बिना प्रीति नहीं है यह समझते हो नहीं क्या?
रौद्र रस का पान करना है नहीं जग में तुम्हें क्या?
उठ पड़ो स्वातन्त्र्य पथ ले जीवन तरंगों को बहाओ?
शान्ति के पथ पर न चल कर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ॥

वीर गति से पूज्य होता है सदा मानव सुनो तुम।
सिंह सारे श्वापदों का क्यों बना नायक कहो तुम।
सोच लो संसार में फिर कीर्तिपद का ध्यान लाओ।
शान्ति के पथ पर न चल कर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ॥

मर मिटो जनता तुम्हारी देश भी सारा तुम्हारा।
कृष्ण जैसे कर्मठों का था यही उपदेश प्यारा।
युद्ध में निज वैरियों को मेट कर यश को कमाओ।
शान्ति के पथ पर न चल कर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ॥

वृक्षों में जीव

❀ श्री प्रेम चन्द्र जी विद्या भास्कर

आजकल वेदादि ग्रन्थों और अन्य ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के स्वाध्याय न होने का परिणाम यह है कि ईश्वर की साकारता, और निराकारता, जीवित पितरों का श्राद्ध और मृत पितरों का श्राद्ध द्वैतवाद और त्रैतवाद, भूत-प्रेत को मानना, आदि अनेक विषयों पर विचारशील विद्वानों में संघर्ष चल रहा है। इसी प्रकार "वृक्षों में जीव है या नहीं"...इस विषय पर भी संघर्ष है। कई तो यह कह डालते हैं कि इस विषय पर निर्णय किसी प्रमाण-ग्रन्थ में नहीं है। उनमें दोनों प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। भला यह कैसे हो सकता है? प्रमाण-ग्रन्थ दोनों प्रकार की बातें लिख कर किसी को भ्रम में कैसे डाल सकते हैं! यदि आप सावधान होकर बैठेंगे तो आपको सुनाई देगा कि सब शास्त्र उच्च स्वर से यही कह रहे हैं कि वृक्षों में जीव है। देखिये, जो वृक्षों में जीव को नहीं मानते, वे वपने पक्ष की पुष्टि में यह कह देते हैं कि वैदिक ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर जगत् और तस्थुष्-शब्द आये हैं। जिनका अर्थ है चेतन और जड़। इस लिये जब सृष्टि जड़ और चेतन दो प्रकार की है तो जड़ वृक्ष ही हुए और उनमें अचेतन होने से जीव नहीं है। परन्तु वे यह नहीं सोचते कि हमने यह प्रमाण किस बात की पुष्टि में ढूंढे। वृक्षों में जीव है—इसकी पुष्टि में, या सृष्टि दो प्रकार की होती है-इसकी पुष्टि में—सृष्टि को दो प्रकार की तो सभी मानते हैं।

अपने कथन की पुष्टि में वे एक प्रमाण यह भी देते हैं कि सत्यार्थप्रकाश (वैदिक यन्त्रा० संवत् १९९०) के पृष्ठ ३२९ पर ऋषि दयानन्द ने वृक्षों को जड़ लिखा है, इसलिए उनमें जीव नहीं हो सकता। देखिये जड़ का अर्थ है निर्बुद्धि। यह बालक तो जड़ है, कुछ इसकी समझ में ही नहीं आता। यहां भी तो जड़ निर्बुद्धि का ही द्योतक है। 'स्थाणुरयं भारहार' इस निरुक्त के वचन में भी तो निर्बुद्धि भारवाहक को ठूंठ कहा है। क्या उस भारवाही मनुष्य में भी जीव नहीं है?

उनका तीसरा प्रमाण यह है कि 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, ऋग्वेद के इस मन्त्र में, वे कहते हैं कि, वृक्ष की प्रकृति से उपमा दी है। इसलिए वे निर्जीव हैं, उन्हें यहां पर यह ध्यान रखना चाहिये कि इस मन्त्र में उपमा नहीं है। यहां है रूपक, फिर इसका यह तात्पर्य नहीं हो सकता कि यदि प्रकृति में जीव नहीं है तो वृक्षों में भी जीव नहीं है। अच्छा रूपक का उदाहरण है 'चरणकमल', तब तो यदि कमल में भी जीव नहीं हैं तो आपके चरणों में भी नहीं होगा; एक उदाहरण है 'चन्द्रानन' यदि आपका मुख खाता है तो चन्द्रमा भी खाता है और यदि चन्द्रमा निजीव है तो आपका मुख भी निजीव है। इसी प्रकार 'विम्बोष्टी' को लीजिए। यदि बिम्ब में जीव नहीं तो क्या किसी देवी के ओष्ठ में भी जीव नहीं—यह बात सिद्ध नहीं होती।

वास्तविक बात सुनिये, यह बात तो सभी मानते हैं कि सृष्टि दो प्रकार की है। स्थावर और जंगम अर्थात् जड़ और चेतन, और चेतन सृष्टि कर्मों के अनुसार होती है। कर्म तीन प्रकार के हैं—सात्विक राजस और तामस। यह तीनों कर्म बुद्धि, निर्बुद्धि और प्रमाद से किये जाते हैं। बुद्धिपूर्वक सात्विक कर्मों को करने से ज्ञानयुक्त मनुष्य शरीर बनता है, निर्बुद्धिपूर्वक कुछ न कुछ उलटे सीधे कर्म करने से अज्ञानयुक्त पशु शरीर बनता है। और आलस्य, प्रमाद और अहंकार युक्त दुष्कर्मों के करने से ज्ञान और कर्महीन अन्धकारमय वृक्ष शरीर बनता है। ज्ञानपूर्वक इन्द्रियों के उपयोग करने से मनुष्यों को

ज्ञान और कर्म के धारण करने वाले परिपूर्ण अंग दिये गये हैं। अज्ञान से केवल कुछ न कुछ करने से पशुओं को ज्ञान हीन केवल कुछ न कुछ कर्म करने वाले अपूर्ण अंग दिये गये हैं और ज्ञान व कर्म दोनों का जानबूझ कर दुरुपयोग करने से वृक्षों को ज्ञान और कर्म दोनों से वंचित कर दिया गया है, इस प्रकार से तीन प्रकार के कर्मों के कारण तीन वर्ग के प्राणी बने हैं। मनुष्य, पशु और वृक्ष।

संसार का नियम है कि पहले भोग्य उत्पन्न होता है और फिर भोक्ता; जैसे कि पहले दूध उत्पन्न होता है और बाद में बालक पैदा होता है। इसी प्रकार जब पशुओं के भोग्य वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं, तब पशु पैदा होते हैं और जब मनुष्यों के भोग्य वृक्ष तथा पशु उत्पन्न हो जाते हैं तब दोनों का उपभोग करने वाला मनुष्य पैदा होता है। वेद में भी चेतन सृष्टि का यही क्रम लिखा है। देखिये यजुर्वेद अ० ३१ मन्त्र ६—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

अर्थात् चेतन सृष्टि में पहले भक्ष्यान्न हुआ, फिर पशु हुए और उसके बाद मनुष्य। इस मन्त्र के पृषद् शब्द का अर्थ स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के सृष्टि विद्या प्रकरण में भक्ष्यान्न ही किया है।

और देखिये, मनुष्यों का यह शरीर बुद्धिपूर्वक सात्विक कर्म करने से ही मिला करता है। इसलिए मनुष्य का सिर द्युलोक की ओर होता है। किन्तु जिन मनुष्यों ने बुद्धि का समुचित उपयोग नहीं किया, उनकी बुद्धि का केन्द्र स्थान सिर द्युलोक की ओर से हटाकर शिक्षित की ओर आड़ा कर दिया है। आज किसी भी पशु पक्षी को देखिये, किसी का भी सिर द्युलोक की ओर नहीं होगा। किन्तु यह सब चल फिर सकते हैं, जिससे मालूम होता है कि इनकी कर्मेन्द्रियों का ह्रास नहीं हुआ, परन्तु जिन मनुष्यों ने प्रमाद और अभिमान से जान बूझ कर दुष्कर्म किये हैं, उनकी कर्मेन्द्रियां भी छीन ली गई हैं और उनकी बुद्धि का केन्द्र स्थान सिर जमीन में गाड़ दिया गया है, सब वृक्ष बना दिये गये हैं, वे न तो चल फिर ही सकते हैं और न कुछ ज्ञान ही रखते हैं।

पशुओं और वृक्षों ने अपने पूर्व जन्म में अपने मनुष्य शरीर द्वारा अन्य मनुष्यों को नुकसान पहुंचाया है, इसलिये मनुष्यों की अपेक्षा हीनेन्द्रिया होकर और उनके काबू में आकर मनुष्यों का ऋण चुका रहे हैं। और वृक्षों ने अपने पूर्व कालीन शरीर द्वारा मनुष्य और पशु दोनों को नुकसान पहुँचाया है। इसलिये वे मनुष्य और पशु दोनों के काबू में आकर दोनों के उपभोग में जा रहे हैं।

और लीजिये:—

महर्षि दयानन्द ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' के नवम समुल्लास में उपर्युक्त कथन का पोषक लेख बिल्कुल स्पष्ट दिया है। उसमें शंका की कोई बात नहीं। आपने मनुस्मृति के अ० १२ के 'स्थावराः कृमि कीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः। पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥

इस श्लोक का अर्थ करते हुये सिद्ध किया है कि जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि कीट, मत्स्य, सर्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं।' मनु महाराज ने डंके की चोट यह घोषणा की है कि 'शरीरजैः कर्मदोषैः याति स्थावरतां नरः' स्वामी जी महाराज ने उसका यह अर्थ किया है कि 'जो नर शरीर से चोरी, परस्त्री गमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है, उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म मिलता है। जब स्वामी जी ने इतना स्पष्ट लिख दिया तो कौन विचारशील मनुष्य उन पर दोष लगा सकता है कि स्वामी जी वे वृक्षों में जीव के विषय पर कुछ स्पष्ट नहीं लिखा। 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समु० में लिखा है (प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि कृमि कीट पतंगादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है, (उत्तर) पक्षपात नहीं आता,

क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से, जो कर्म के बिना जन्म देता तो पक्षपात आता। इस प्रश्नोत्तर से भी यही स्पष्ट सिद्ध है कि परमात्मा कर्मानुसार जीवों को वृक्षादि का भी जन्म देता है।

अच्छा, अब आप ही बतलाइये कि क्या कोई निर्जीव पदार्थ ऐसा है जो बढ़ता हो? आप कहेंगे नदी में पड़ा हुआ पत्थर। परन्तु उस पत्थर का बढ़ना तो ऐसा है जैसे गुड़ में गुड़ मिला दिया जाय या मिट्टी के ढेले में और मिट्टी चिपका दी जाय। इसी प्रकार नदी का पत्थर नदी के रेत और जल के संयोग से बढ़ भी जाता है और उसके संघर्ष तथा दूसरे पत्थर की टक्कर से घट भी जाता है। क्या कभी कोई निर्जीव पदार्थ पैदा होता है, क्या कोई निर्जीव पदार्थ नर और मादा के संयोग से उत्पन्न होता है! आप अरण्ड खरबूजे का एक पेड़ नर या मादा लगा दीजिये, फिर देखिये कभी ठीक नहीं फलेगा। अब आपके दिल में एक शंका पैदा हो सकती है कि यदि वृक्षों में जीव मान लिया जाय तो सजीव पदार्थ को हम कैसे खा सकते हैं! मांस भक्षण में जो दोष है वही दोष शाक सब्जी और फल आदि के भक्षण में भी लगेगा। सुनिये...सोचने की बात यह है कि मांस भक्षण में दोष क्यों है? मांस भक्षण से भी अधिक दोष—संसार का उपकार करने वाले पशुओं के मारने में है। मांस भक्षण में तो इसलिये दोष विशेष है कि यदि मांस की चाट पड़ गई तो यदि अपको मरे हुये पशुओं का मांस नहीं मिलेगा तो अपनी तृप्ति के लिये आप जीवित पशुओं को भी मारेंगे और पशुओं के मारने में पाप है ही। इसलिये मांस भक्षण में भी पाप बताया गया है कि न मांस खायेंगे न पशुओं को मारने की आवश्यकता होगी। जो जन्तु मनुष्यों का जितना अधिक उपकार करते हैं उनको मारने से उतना ही अधिक पाप होता है। सब से अधिक उपकार माता-पिता और भाई-बन्धु करते हैं, इनके मारने में सबसे अधिक पाप लगता है। पशुओं में सब से अधिक उपकार गाय करती है, इससे कम भैंसें और उससे कम बकरी आदि। इनके मारने में इसी क्रम से पाप लगता है। जंगली सूअर और शेर मनुष्यों का कोई मुख्य उपकार नहीं करते। इसलिये इनके मारने में अधिक पाप नहीं समझा जाता, किन्तु वीरता समझते हैं। इस प्रकार जिन से जितना अधिक उपकार मनुष्यों को होता है, उनके नष्ट करने में भी उतना ही पाप माना जाता है।

जो वृक्ष मनुष्यों के लिये जितने अधिक उपयोगी हैं, उनका काटना भी उतना ही अधिक बुरा है। पीपल के वृक्ष को काट देने से तो मनुष्य मरने-मारने तक को तैयार हो जाते हैं। परन्तु ऐरेण्ड को कोई परवाह नहीं करता, और जहां झाड़-झंखाड़ खड़े हों तो उनको तो साफ कर देना ही अधिक अच्छा समझा जाता है। इसी प्रकार शाक सब्जी आदि खेतों में लगी रहेगी तो मनुष्यों का कोई उपकार नहीं होगा, किन्तु वह सड़ गलकर बीमारी ही फैलायगी और अपकार ही करेगी। यदि उनको उपयोग में लाया जायगा तो स्वास्थ्य लाभ होगा। सारा अभिप्राय तो परोपकार से है। जिससे उपकार हो उसे नष्ट करने में पाप होगा, और जिससे उपकार न हो उसके नष्ट करने में कोई पाप न होगा। इसलिये अब आपकी हिंसा सम्बन्धी शंका भी दूर हो जानी चाहिये। वृक्षों में जीव है, यह निर्भ्रान्त व सत्य मत है और शास्त्र तथा तर्कानुमोदित है।

राधा स्वामी मत दर्पण

लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यदि आप राधास्वामी मत का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। बड़े परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है। प्रचारार्थ पुस्तक का मूल्य लागत मात्र चार आने ही रक्खा गया है। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

ब्रह्माकुमारियों के ढोल की पोल। बढ़िया कागज सुन्दर छपाई। मूल्य ३७ नये पैसे। प्रचारार्थ मंगाने पर २५) सैकड़ा।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

एक पत्र

वारशिया आर्य समाज
वारशिया कोलोनी,
बड़ौदा ता० २१-१२-६१

मान्यवर सम्पादक वेद प्रकाश, देहली

बड़ौदा नगर में ता० ४-१२-१९६१ सोमवार को राधास्वामी पंथ बयास (पंजाब) के महन्त श्री चरणसिंह जी का सत्सङ्ग न्याय मन्दिर हाल में हुआ।

हमने दो पत्र (चिट्ठियां) उनके ग्रन्थों से पते देकर शंका समाधान के लिए श्री सुजानसिंह जी आर्य द्वारा भेजी जो उनके पास रख कर अपने स्थान पर बैठ गये और एक चिट्ठी श्री पंडित प्रतापचन्द्र जी ने भी श्री मेघराज जी से सन्त जी के पास भेजी चिट्ठियों को देख कर महाराज चरणसिंह जी का रङ्ग फीका हो गया, और शीघ्र (निश्चित समय से पूर्व) ही सत्संग समाप्त कर तीनों पत्र साथ ले कर चले गये, चिट्ठियों का उत्तर कुछ भी नहीं दिया और धीमें से मञ्च पर बैठे हुये अपने साथी (ग्रन्थ साहिब का पाठ करने वाले पाठी से) कहा कि आर्य समाजी आ गये हैं, प्रबन्धकों को बड़ा क्रोध आया और आपस में आर्य समाजियों की निन्दा करने लगे, उधर श्रोताओं में हलचल मच गई और पूछताछ होने लगी कि आखिर इन पत्रों में क्या लिखा था जो महाराज उत्तर न देकर शीघ्र सत्सङ्ग समाप्त कर चले गये, और आर्य समाजियों को लोगों ने घेर लिया, और धर्म चर्चा सुन्दर हुई। उपस्थित आर्यसमाजी यह महानुभाव थे १. प्रो०-हंसराज जी २. पंडित प्रतापचन्द्र जी, ३. रामचन्द्र जी स्नातक, ४. गणपतराय जी, ५. सुजानसिंह जी, ६. मेघराज जी, ७. ज्ञानचन्द जी, ८. किशनचन्द जो, तथा इनके अतिरिक्त वारशीया आर्य समाज के सदस्य अच्छी संख्या में हाजिर थे।

सत्संग समाप्ति के बाद उस स्थल पर द्वार के बाहर सड़क पर हमने राधास्वामी मत दर्पण (लेखक ब्रह्मचारी जगदीशचन्द्र विद्यार्थी) पुस्तक श्री मेघराज जी को बिक्री के लिए दी। राधा स्वामी मत दर्पण पुस्तक की ८ प्रतियां बिकीं और बिक रही थी पर इतने में कुछ राधा स्वामी अनुयायी आये और श्री मेघराज जी को धमकाया और कहा कि हमने तीन चार बार इस पुस्तक के लेखक को दिल्ली में पीटा है, और अब तुम्हारा नम्बर है। पर श्री मेघराज जी के दो आर्य वीर रक्षक थे उन्होंने उनकी रक्षा की और वे क्रोधित हो कर एक प्रति राधा स्वामी मत दर्पण खरीद कर फाड़ कर चले गये।

अब जो हमने उनसे प्रश्न किये थे वह पत्र लिख रहे हैं। सो जानना जी, और हमारा निवेदन आर्य-जगत् से है कि वह हर जगह जहां भी इस मत के सन्त जायें इसी प्रकार आर्य बन्धु वहां जाकर इन वेद निंदकों से प्रश्न करें जिससे साधारण जनता इन लुटेरों से बचे, आप इस कार्य को उत्तम रीति से कर सकते है, सो आप से भी हमारी प्रार्थना है कि कोई सुन्दर सफल योजना बना कर आर्य जगत् के आगे रखें, जिससे असत्यवादी मतों का नाश हो, सार्वदेशिक पत्र नवम्बर १९६१ के सम्पादकीय टिप्पणी में सफेद झूठ श्री मन्त्री जी की टिप्पणी आपने पढ़ी होगी, अब आप विचारें किस में पाखण्डी मतों से संसार का अहित देख कर क्या आर्य समाज चुप र हे ? यदि हां तो फिर आर्य समाज के छटे नियम का क्या अर्थ ? यदि नहीं तो फिर सार्व-देशिक अवैदिक मत नाश योजना बनावे।

गोविन्दराम नागदेव
मन्त्री
वारशिया आर्य समाज, बड़ौदा।

(१) खुदा और परमेश्वर दोनों के पैदा करने वाले सन्त हैं। और इनकी गति को वे दोनों नहीं जान सकते। सार वचन हिदायतनामा पृ० ४०१

(२) ज्ञान ध्यान और जौग वैराग तुच्छ समझ मैंने इनको त्यागा। सार वचन २-१-११।

(३) वेद शास्त्र और स्मृत पुराना पढ़ना इनका बिरथा जाना। (सार वचन ८-१७-१२)

(४) षट शास्त्र और स्मृति पुराना लीक पीटें छोड़े नहीं पनको (सार वचन १९-९-९)

(५) षट शास्त्र और चारों वेद यह सन्तन ने किये निषेध। (सार वचन २४-१-९५)

(६) सतजुग त्रेता द्वापर बीता काहु न जानी शब्द की रीता कलजुग में स्वामी दया विचारी परगट करके शब्द पुकारी। (सार छन्द ७-१-४-५)

(७) जग बिच्छु तिरिया नागन इन संग रहत मिलीत। (सार० ३१-९-१५)

इनका अर्थ बता कर व्याख्या कीजिये

[टाइप की अशुद्धियों को शोध कर हमने इस पत्र को ज्यूं का त्यूं उद्धृत कर दिया है। पाठकों को इस पत्र से राधा स्वामियों के ढोल के पोल की और अच्छी जानकारी हो गई होगी। राधा-स्वामी अनुयायी कितने असत्य भाषी हैं यह और स्पष्ट कर दूं। जैसा कि इस पत्र में लिखा है मुझे तीन चार बार की तो कथा ही क्या किसी ने एक बार भी नहीं पीटा और न इनमें इतना दमखम है। साथ ही ऐसी धमकियों से मैं डरने वाला भी नहीं हूँ क्योंकि—

चोट खा कर तो ये सीने उभर जायेंगे।

मैं अपनी ओर से तो अवैदिक मतों के खण्डन में लगा ही रहूँगा। प्रति वर्ष किसी न किसी मत के खण्डन में एक पुस्तक लिखता रहूँगा। अन्य लोगों से भी लिखवाऊंगा। सार्वदेशिक सभा को भी इन अवैदिक मतों के खण्डन का प्रबल उद्योग करना चाहिए ऐसी मेरी अधिकारियों से प्रार्थना है।

"विद्यार्थी"]

भाग्य का अपने मनुज ही स्वयं विधाता है

[श्री प्रकाशचन्द्र कविरत्न अजमेर]

एक जन देव दयानन्द के निकट आया
हाथ अपना बड़ी श्रद्धा से उन्हें दिखलाया
देखकर हाथ वे गम्भीर वचन उच्चारे
रक्त चर्मास्थि हैं इन में न और कुछ प्यारे
हाथा दिखलाता व्यर्थ ज्योतिषी को क्या ? घर में।
हाथ दिखला अरे ! बढ़ बढ़ के कर्म संगर में॥

व्यर्थ है जन्म-पत्र कर्म-पत्र सच जानो
और प्रारब्ध को पुरुषार्थ के आश्रय मानो
सिन्धु में रम्य रत्न-राशि वही पाते हैं
शौर्य साहस से जो डुबकी गहन लगाते हैं
आपदा लाख हो पुरुषार्थ से न मुख मोड़ो
और फल को सदा भगवान भरोसे छोड़ो
फन्द में क्यों प्रपञ्चियों के व्यर्थ आता है
भाग्य का अपने मनुज ही स्वयं विधाता है॥

वैदिक सिद्धान्त

❀ स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती 'विदर्भी'

विद्यमान् जगत् की उत्पत्ति से प्राक् (पूर्व) काल में प्रलयरूप अर्थात् सत्त्व रजस् तमस् इन तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति में परिणत अवस्था को प्राप्त था। उस समय प्रत्येक पृथिव्यादि लोक लोकान्तर वा भूगोलों के जीवात्माओं की स्थिति दो भागों में विभक्त होके अपने २ स्थानों में शान्तरूपों में स्थिर अवस्था रही है। जब प्रलयकाल की रात्रि समाप्त होने लगती है तब प्रथम उन जीवों की जन्म लेकर माता पिता के दर्शन करने की पुनः इच्छा होती है, जो मुक्ति से छूट जाते हैं। अभी कारण में=प्रकृति विलीन जीवात्माओं में किसी प्रकार की कामना उत्पन्न नहीं हुई थी। इस प्रकार उपरोक्त इच्छा की पूर्त्ति के निमित्त ईश्वर के स्वभाव में जगन्निर्माण प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। क्योंकि जीवात्माओं की उस कामना वा इच्छा की पूर्त्ति जगदीश्वर से विना दूसरा कोई पूर्ण नहीं कर सकता था। अतः उस सच्चिद्विज्ञान घनस्वरूप के साधकतम करण भी चेतन ही होते हैं। वे उसके करण सवितादेव=आदित्य-अग्नि, वायु-अंगिरा ये चार ऋषि आत्मायें थे उनमें से पूर्व में अग्नि ऋषि से कहते हैं कि—

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे मेरे अग्रणी इस संसार के सङ्गतिकरण यज्ञ के प्रथम नेताजन्मेच्छुक जीवात्माओं स (गृणानः) स्तुति किये गये हो अतः आप के लिये मेरी जगत् और वेद तथा मनुष्य देह निर्माता ईश्वर की आज्ञा है कि तुम (वीतये) इस ज्ञान गमन प्राप्ति के निमित्त प्रजन-प्रादुर भावरूप कान्ति को धारण करके आसन दृढ़ होके कानपान व्यवहार के लिए (आ याहि) इस प्रकृति गोद में आ (सत्सि) विराजिये। क्योंकि और, वहां, (हव्य दातये) वेद वाणी के दान करने के लिये मैंने आप को ही (होता) दाता निश्चय किया है तस्मात् आप (वर्हिषि) इस विशाल हिरण्ययी योनि में प्रवेश कर (सत्सि) विराजमान हूजिये ॥१॥

ओ३म् अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ऋ० मं० १। सू० २४। मं० २॥

संक्षिप्त भावार्थ—(वयम्) हम सब मुक्तात्मा इस सर्वात्मान्तर्यामी (अग्नेः) स्वप्रकाश स्वरूप अनादि अनन्त सदा मुक्तस्वभाव परमात्मा का नाम पवित्र जानते हैं जो हम को हमारे शुभ पवित्र कर्मों के अनुसार मुक्त करता और वह कर्म फल पूरा हो जाने के अनन्तर मुक्ति से छुड़ा के पुनः पृथिवी में माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है ॥२॥

इसीलिये ईश्वर ने (अग्न आ याहि वीतये०) से आध्यात्मिक अधिकरणस्थ परावाचा और प्रज्ञानाम वाली पूर्वाबुद्धि क्षेत्र में सामवेद की स्वतंत्र तृतीय अपने आनन्द पद के वाचक सामऋचाओं का प्रकाश सवितादेव जो आदित्य सूर्य त्वष्टा रवि नामों से प्रसिद्ध है ॥१॥

अथ द्वितीया ऋचा ऋषि देवता पूर्ववत् ॥२॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब के पूजनीय ज्ञान यज्ञ के प्रकाश करने वाले अग्रणी देव हमने (त्वम्) आप को ही ऋग्वेद के प्रकाश करने वाला (होता) दाता माना है क्योंकि आप क्रान्त दर्शी होने से (विश्वेषाम्-यज्ञानाम्) सब पांचों कर्मों के क्रियारूप शिल्प कर्मों के ज्ञाता हैं। अतः (मानुषे) इस मनुष्य लोक

के प्रादुर्भूत हुये सज्जनों के बीच में (देवेभिः) सब विद्वान् श्रेष्ठ जनों द्वारा सुसम्मत होके सब के प्रति (हितः) समक्ष होके प्रस्थापित करता हूं, आप उन सब मनोकामनाओं को पूरी कीजिये ॥२॥

भावार्थ–अग्निः ऋषि वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, और परा इन चारों वाणियों का ज्ञाता था अतएव वह (विश्वेषां यज्ञानाम्) होता सब शिल्प यज्ञ से लेकर साधारण हवन विधि अग्निष्टोम गोमेध अश्वमेध सादि सब यज्ञों को जानने वाला था जैसा कि अनुक्रम से जानना चाहिये ॥२॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः ।
स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥

॥ ऋ० मंडल ३ । सू० १२ । मं० १ ॥

अग्ने त्री ते वाणिनात्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वी । तिस्र उ ते तन्वो देवजातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अभयुच्छन् ॥२॥

॥ ऋ मंडल ३ । सू० २० । मं० २ ॥

भावार्थ—इन दोनों मन्त्रों के प्रमाण से अग्नि सम्पूर्ण यज्ञों का और ऋग्०, यजु०, और अथर्व वेद की वाचा का भी ज्ञाता था तीनों शरीरों का भी जानने वाला था ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है ॥२॥

इसीलिए ईश्वर अग्नि ऋषि को अपने वेद रूप ज्ञान यज्ञ का दूतपद् के लिये स्वीकार करते हैं ।

अग्नि दूतवृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥

भावार्थ—हे मुक्तात्माओ ! तुम जानते हो कि अब प्रलय काल की रात्रि का समय समाप्त होने वाला है रचना काल का उदय होने को समीप आ गया है तथा बहुत से मुक्तात्माओं मोक्षदा कर्मों का भी अन्त हो गया है जिससे वे पुनरपि जन्म लेके माता पिता के दर्शन करने की इच्छा कर रहे हैं । भाइयो ! उनकी उस इच्छा को पूर्ण करने में मेरे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी के बिना दूसरा कोई समर्थ नहीं है अतः मैं इस (अस्य) प्रत्यक्ष मेरे गुण, कर्म, स्वभाव का क्रियासिद्ध कारीगरी (यज्ञस्य) संसार सङ्गतिकरण रूप महायज्ञ के (सुक्रतुम्) जो सब क्रिया सिद्ध करने में सुहस्त स्वावलम्बी समर्थ तथा (विश्ववेदसम्) सब वर्ण आश्रम और कृषि, वाणिज्य, राजधर्मादि के कर्म धर्म का ज्ञाता पुरुष है । (होतारम्) विमानादि यानों के वा उनमें भौतिक अग्नि को स्थापन करके वेगादि देके चलाने में प्रसिद्ध है, उसी को मैं अपना (दूतम्) दूत प्रमाणे कार्यरूप जगत् को मार्ग प्रदर्शन कराने वाला साधक तम करण बनाता हूं । अथवा (वृणीमहे) वरण करता हूं । अतः जब कभी तुम में से कोई इस भूमि पर जन्म ले ले तो तुम सब इस (अग्निम्) अग्नि देव को ही अपना अग्रगण्य नेता मार्ग प्रदर्शक मानना अन्य किसी निगुरे को नहीं ॥३॥

इस प्रकार ईश्वर सृष्टि निर्माण समय के पूर्व मुक्तात्माओं के साथ परामर्श करते हुये अपने करणों को चिताते हुए प्रथम हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य पतिरासूति य इति ॥ तस्मा द्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ॥

अर्थात् इस प्रामाण्यानुसार ईश्वर ने प्रथम सूर्य वा सविता देव से जड़ जगत् की रचना का प्रारम्भ करते हैं तब प्रथम सत्त्वगुण के परमाणुओं को संगठित सूर्य के स्थान में दो प्रमाणुओं को संयुक्त कर के उनको एक हो अधिकरण वा स्थान में घुमाते हैं तथा सत् राजस् तमस् की साम्यवस्था प्रकृति में से सत्त्वगुण विशिष्ट परमाणु उस अग्रणी अग्नि के प्रताप से उससे दूर भाग निकलते हैं । एतस्मादात्मनः आकाशः । आकाशादवायु वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी ऐसी अनुक्रम से उत्पत्ति का प्रारम्भ हुआ है ।

स्पष्ट व्याख्या—परमाणुओं का संघात होने से आकाशरूप आकाश की उत्पत्ति, उसके भ्रमण से वायु परमाणुओं के यातायात के संघर्ष से अग्नि और अग्नि सूर्य को धारण करने वाला विजुलीरूप अग्निरजायत । अग्नि का वैधर्मी जल जल से पृथिवी उत्पन्न हुई थी ।

यज्ञ चिकित्सा

❀ डा० सोभराज के० आर्य

रोग का तीसरा कारण है त्रिदोष अर्थात् "वात पित्त, और कफ" (Gas, Bile, Phlegm)

(अ) वात—(GAS) जब हम अप्राकृतिक भोजन जैसे, मांस, अण्डे, चाय, शराब, तम्बाखू आदि का प्रयोग करते हैं, तो हमारे अन्दर प्रथम तो पाचन शक्ति दुर्बल होती है, द्वितीय हमारे मल मूत्र निकालने वाले स्थान (अंग) दुर्बल पड़ जाते हैं। तथा अंगोपांग की क्रिया जो वास्तव में होनी चाहिये वह पूर्णरूप से नहीं हो पाती, तथा हमारी आंतों में खुरदरापन व सख्ती हो जाने के कारण मल का ठीक प्रकार निकास नहीं होता और वह वहीं पर सड़ता रहता है, जिससे गन्दी वायु बनती रहती है, और सही मार्ग द्वारा न निकलने के कारण वह गन्दी वायु हमारे शरीर के ऊपरी हिस्सों की ओर चढ़ना शुरू कर देती है, इसके परिणाम स्वरूप मनुष्य को खट्टी डकारें, पेट व छाती में जलन होती रहती है, और जिस भी अंग पर उसका प्रभाव पड़ जाता है, वही रोग का शिकार बन जाता है।

वायु केवल उपर्युक्त कारणों द्वारा ही नहीं होती, वरन् कुछ सब्जियां व दालों से भी उत्पन्न होती है जो पेट के अन्दर पहुंच कर गैस पैदा करती हैं। परन्तु मल मूत्र के अंगों में खराबी न होने के कारण और "वात संस्थान" (Nervous System) और रोग निवारक शक्ति (Immunity) जाग्रत होने के कारण वायु सही मार्ग से निस्सरण होता रहता है, अप्राकृतिक भोजन से न केवल मल निकालने वाले अंगों में ही खराबी आ जाती है, बल्कि मूत्र वाले अंगों में भी कमजोरी आ जाती है, परिणाम स्वरूप मूत्र थोड़ी २ देर बाद अधिक मात्रा में अनुचित रंगत वाला होता रहता है।

(ब) पित्त (BILE):—यह जिगर में एक पीला सा पदार्थ होता है, जो हमारे भोजन को शीघ्र पचाने में बड़ी सहायता करता है, इसकी कम मात्रा होने के कारण भोजन आमाशयों में पूर्ण रूप से नहीं पक पाता है, तथा ताकत के आवश्यक तत्व जो मनुष्य के लिये अपेक्षणीय हैं वह नहीं बन पाते, तथा शरीर के अन्दर नाना प्रकार के विकार तथा उनसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं, और मनुष्य का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ने लगता है।

(ज) कफ (PHLEGM):—वेद में इस के लिये श्लेष्मा शब्द आया है, यह हृदय, अण्डकोष तथा शरीर के अन्य अंगों में भी होता है। जो भोजन हम करते हैं, वह आमाशय में पहुंचते ही एक तरल पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाता है, जिसको केलोस—कहते हैं। शेष मल आंतों द्वारा बाहर निकल जाता है, ऊपर कहे तरल पदार्थ का सूक्ष्म भाग आंतों की दीवारों से छन कर जिगर में पहुँचता है, यहां उसको केमोस कहते हैं, उस समय इसका रंग लाली लिये होता है। और यहाँ पर उसके ४ भाग हो जाते हैं।

१—झाग (Effervescence) २—रक्त(Blood) ३—सौदा (Liquid causing insanty) तथा ४—कफ (Phlegm)

१. झाग (Effervescence):—इसे "सफरा" भी कहा जाता है, इसका स्वभाव अग्नि की तरह गर्मशुष्क होता है, इसकी अधिक मात्रा से शरीर गर्म, तथा मुंह, आंख और जिह्वा का रंग पीलापन लिये होगा, जीभ खुष्क रहेगी, नाक से गर्म वायु निकलती हुई अनुभव होगी, प्यास अधिक और भूख कम मात्रा में लगेगी, उल्टी (कै) होने पर उसका स्वाद कड़वा होगा, तथा पेशाब का रंग पीला होगा, शीतल तथा तर (चिकनी) वस्तुयें खाने की अधिक इच्छा होगी और नाड़ी की गति शरीर में तेज तथा छोटी चलेगी।

२. रक्त (Blood):—इसका स्वभाव हवा की भांति गर्म तर होता है। इसकी अधिकता से शरीर शीतल तथा भारी लगेगा और ज्ञानेन्द्रियां सचेत नहीं रहेंगी तथा जीभ का स्वाद मीठा होगा। मुंह, आंख तथा जिह्वा का रंग लाल होगा और पेशाब का भी रंग लालिमा लिए होगा, शरीर में आलस्य रहेगा, अधिक हंसवा फुंसियों का निकलना, मसूड़ों से खून आना, और नकसीर फूटना ये सब खून की अधिकता के ही द्योतक हैं, और ऐसी अवस्था में मनुष्य की नाड़ी की गति भी तेज तथा लम्बी चाल से चलती है।

३. सौदा (Liquid causing insanty):—इसका स्वभाव मिट्टी की भांति सर्द, खुश्क होता है। इसकी अधिकता से शरीर दुर्बल तथा कालापन लिये होगा। चिन्ता अधिक, तथा नींद कम आयेगी, जबान का रंग काला, तथा बिना प्यास के ही जीभ शुष्क रहेगी, पेशाब थोड़ी मात्रा में और पतला होगा—भूख कम तथा आलस भाव रहेगा और रात्रि को सोते समय स्वप्न में भी काले रंग के दृश्य दिखाई देंगे, नाड़ी की गति भारी भारी चलेगी।

४ कफ (Phlegm):—इसका स्वभाव पानी की भांति तर-सर्द होता है। शरीर में इसकी अधिकता से शरीर नर्म, सफेद, और शीतल होगा, आंखें व जबान का रंग भी सफेद तथा अंग भारीपन लिये होंगे और नींद अधिक मात्रा में आयेगी। पाचन शक्ति दुर्बल तथा खट्टी डकारें आयेंगी ज्ञानेन्द्रियां सचेत नहीं होंगी तथा नाक में से पानी बहेगा, पेशाब अधिक और सफेद रंग का होगा, पेशाब गिरने से जमीन पर एक ही जगह काफी भाग इकट्ठे हो जायेंगे। नाड़ी की गति इस अवस्था में सुस्त, मोटी, और नर्म होगी।

इससे यह स्पष्ट है कि कफ शरीर में घुल मिल जाने वाली वस्तु नहीं है। इसको शरीर से बाहर निकालना अति आवश्यक है। यदि यह निकलने के बजाय शरीर के अन्दर ही इकट्ठी होती रहेगी तो विकार अवश्य ही उत्पन्न करेगी और स्वस्थ शरीर रोगी का रूप धारण कर लेगा।

यदि हम त्रिदोष से मुक्त होना चाहते हैं तो हमें अप्राकृतिक भोजन का त्याग करना अति आवश्यक है। तथा साथ में विटामिन (Vitamin) से भरा युक्त सन्तुलित (आहार करना) चाहिये। और वात-संस्थान को जाग्रत करने के लिये ब्रह्मचर्य, यम तथा नियमों का पालन करते हुये "यज्ञ हवन" करते समय उसकी सुगन्धित वायु में लम्बी २ सांस लेनी चाहिये। जिससे कि हमारे शरीर के अन्दरूनी हिस्सों पर भी उसका प्रभाव पड़े और बीमारी के बहुत से कीटाणु नष्ट हो सके और हमारा स्वस्थ तथा दीर्घ जीवी अवस्था को प्राप्त कर सकें।

हवन सामग्री में क्या २ अपेक्षणीय है?

इस विषय के उत्तर में, मैं कुछ सामग्रियां "वेद प्रकाश" जुलाई सन् १९६१ के अंक में प्रस्तुत कर चुका हूं, तथा कुछ जनवरी १९६२ के अंक में भी बताई हैं। उन दोनों सामग्रियां में केवल निम्न-लिखित दो औषधियां और सम्मिलित करके आहुति देनी चाहिये।

१—आपामार्ग २—असगन्ध।

प्रत्येक दो दो भाग।

विटामिन, और सन्तुलित भोजन क्या है?

तथा किस खाद्यापन में प्राप्य है यह अगले किसी अंक में पढ़ें।

'वेद प्रकाश' मासिक के ग्राहक बनिए

वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक निष्पक्ष पत्र। इस पत्र के लेखों को साप्ताहिक सत्संगों में जहां प्रचारक कभी पहुंचते ही नहीं पढ़ कर सुनाया जा सकता है।

वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है और प्रवेशांक अगस्त का १५० पृष्ठ से २०० पृष्ठ तक का होता है वर्ष में और भी तीन चार विशेषांक प्रकाशित होते हैं। नमूना मुफ्त मंगावें। वार्षिक मूल्य केवल ३)

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

आर्य समाज के मर्यादा पुरुषोत्तम राम

श्री श्यामकिशोरजी आर्य सिद्धान्तशास्त्री
आर्य समाज सतना म. प्र.

"स्वस्ति पन्था मनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥"

वेदों के प्रसिद्ध उद्धारक आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का उपदेश और मान्यता है कि हम श्रेष्ठाचारों को व्यवहार में लायें। जिससे हमारा जीवन सूर्य चन्द्र बन जगत् हेतु आदर्श बन कर चमकता रहे। इसी हेतु उन्हें अपने महापुरुषों पर लगाये गये लांछन असह्य हो गये और उसका घोरतम विरोध किया। जिस कारण उन्हें आज जनसाधारण की मान्यतानुसार नास्तिक कहा जाता है। अस्तु अब हमें इसी विषय पर विचार करना है कि क्या वे नास्तिक थे? और आर्य समाज क्या राम को नहीं मानता ?

राम विषयक मत—स्वामी दयानन्द जी से पूर्व रामचन्द्र जी के विषय में हमारे भारतीय एवं अभारतीय विद्वायों के विभिन्न मत थे। भारतीय विद्वान भी इस विषय पर दो मत वाले थे। एक दल प्रचलित परम्परानुसार राम को मानता था, द्वितीय पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार विश्वास करता था। भारतीय परम्परायें राम को ईश्वर कहकर, अवतार बनाकर मानती थी, परन्तु वे स्वयं उसे कहीं-कहीं इतना निकृष्ट सिद्ध करती थीं कि राम का अस्तित्व भी मानना कठिन हो गया था। इसी कारण अभारतीय विचारक तथा भारतीय संस्कृति विरोधी दल राम को ऐतिहासिक नायक स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। यदि कुछ उद्यत भी हुये तो उनका उद्देश्य राम को अपने साम्प्रदायिक नायकों से हेय सिद्ध करके भारतीयों का मत परिवर्तन कराना था।

गोस्वामी तुलसीदास जी के राम—

राम ब्रह्म है—

(१) ब्रह्म राम ते नामु बड़, बरदायक बरदानि'
(बालकाण्ड पृ० १८)

(२) परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषण भूपा ॥ (उत्तरकाण्ड पृ० ५९०)

(३) विश्वरूप रघुवंश मणि,
करहु वचन विश्वास।
लोक कल्पना वेद कहि,
अंग अंग प्रति जास ॥
(लंकाकाण्ड पृ० ५१७)

(४) उमा अवध वासी नर,
नारी कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन,
रघुनायक जंह भूप ॥
(उत्तरकाण्ड पृ० ६८६)

(५) राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानन्द परेश पुराना ॥
(बालकाण्ड पृ० ६६)

(६) सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय माया पतिधनी ॥ (बालकाण्ड पृ० ३३)

(७) माया संभव भ्रम सब अब न व्यापिहहि तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥
(उत्तरकाण्ड पृ० ६१२)

राम ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव से भिन्न तथा श्रेष्ठ है

(१) हरि हित सहित राम जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे ॥
(बालकाण्ड पृ० १७४)

(२) शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना ।
उपजहिं जासु अंश ते नाना ॥
(बालकाण्ड)

(३) जग पेखन तुम देखन हारे ।
विधि हरि शंभु नचावन हारे ॥
तेउ न जानहि मरम तुम्हारा ।
और तुम्हहि को जाननि हारा ॥
(अयोध्या काण्ड पृ० २८९)

(४) शंकर सहस विष्णु अज (ब्रह्मा) तोही ।
सकहि को राखि राम कर द्रोही ॥
(सुन्दरकाण्ड पृ० ४८२)

(५) कहौ ब्रह्म (ब्रह्मा) हरि हर कहं आनी ।
अमर अमर बुलवावों बानी ॥
(लंकाकाण्ड पृ० ६८३)

ब्रह्मा विष्णु एवं शिव भरत के भी तुल्य नहीं

विधि हरि हर माया बड़ि भारी,
सोउ न भरत मति सकइ निहारी ॥
(अयोध्या काण्ड पृ० ३५५)

राम और विष्णु एक है ।

(१) ... ... ।
गावहिं वेद जासु यश लीला ॥
दूषण रहित सकल गुण राशी ।
श्री पति पुर बैकुण्ठ निवासी ॥
(बालकाण्ड पृ० ४७)

(२) नाम विभीषण जेहि जग जाना ।
विष्णु भक्त विज्ञान निधाना ॥
(बालकाण्ड पृ०)

(३) गिरजा चकित भई सुनि वानी,
नारद विष्णु भक्त मुनि ज्ञानी ।
कारण कौन शाप मुनि दीन्हा,
का अपराध रमापति कीन्हा ॥
(बालकाण्ड पृ० ७१)

(४) राम रमापति कर धनु लेहू,
खैंचहु चाप मिटै संदेहू ।
(बालकाण्ड पृ० १६५)

(५) अस वर जबहिं रमापति भाषा ।
सुनत गिरा हरषे मृग शाखा ॥
(लंकाकाण्ड पृ० ६०४)

(६) एवमस्तु करि रमा निवासा ।
हरषि चले कुम्भज रिषि पासा ॥
(अरण्यकाण्ड पृ० ३८३)

(७) रमानाथ जहं राजा ।
सोपुर वरणि न जाइ ॥
अषिमादिक सुख सम्पदा ।
रही अवधपुर छाइ ॥
(उत्तरकाण्ड पृ० ६७८)

(८) सो राम रमा निवास संतत दास वश
त्रिभुवनधनी । (अरण्यकाण्ड पृ० ४२०)

राम विष्णु भिन्न है—

हरि हित सहित राम जब जोहे ।
रमा समेत रमापति मोहे ॥
(बालकाण्ड पृ० १७४)

राम शिव भिन्न नहीं

(राम) शंकर प्रिय मम द्रोही ।
शिव द्रोही मम दास ॥
ते नर करहि कल्प भरि,
घोर नरक मंह बास ॥
(लंकाकांड पृ० ५११)

शिव राम के प्रेमी तथा उपासक

(१) जेहि बर बाजि रामु असवारा ।
तेहि सारदा उ न बरनै पारा ॥
संकरु रामरूप अनुरागे ।
नयन पंच दश अति प्रिय लागे ॥
हरि हित सहित राम जब जोहै ।
रमा समेत रमापति मोहै ॥
निरखि राम छवि विधि हरषाने ।
आठई नयन जानि पछताने ॥
(बालकांड पृ० १७८)

(२) ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक
बरदानि ।

राम चरित सत कोटि मँह लिय महेश
जिय जानि ॥
(बालकांड पृ० १८)

(३) निगम नेति शिव ध्यान न पावा ।
माया मृग पाछे सो धावा ॥
(अरण्यकांड पृ० ४१३)

राम पक्षपाती एवं अन्यायी

लहत न प्रभु चित चूक किये की ।
करत सुरत सौ बार हिये की ॥
जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली ।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली ॥
सोइ कर तूति विभीषण केरी ।
स्वप्नेहु सो न राम हिय हेरी ॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने ।
राजसभा रघुबीर बखाने ॥
(बालकांड पृ० २२)

राम ईश्वर (ब्रह्मा या विष्णु) के अवतार भी नहीं तो ब्रह्म कैसे ?

(हनुमान) जग कारण तारण भवहिं,
भंजन धरनी धार ।
कै तुम अखिल भुवनपति,
लीन्ह मनुज अवतार ॥
मुनि बोले रघुवंश कुमारा,
विधिकर लिखा को मेटन हारा ।
कोशलेश दशरथ के जाये ।
हम पितु वचन मान वन आये ॥
इहां हरी निश्चर वैदेही ।
विप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
(किष्किन्धाकांड पृ० ४३४)

राम ब्रह्म के उपासक

(१) निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा ।
सबहीं सन्ध्या वन्दनु कीन्हा ॥
(बालकांड पृ० १२७)

(२) विगत दिवस गुरु आयसु पाई ।
सन्ध्या करन चले दोऊ भाई ॥
(बालकाँड पृ० १३३)

(३) पुरुजन करि जोहारु घर आये ।
रघुवर सन्ध्या करन सिधाये ॥
(अयो० पृ० २५०)

विष्णु आदि भी जीव थे

तप बल ते जग सृजे विधाता ।
तप बल विष्णु भये जग त्राता ॥
तप बल शम्भु करहि संहारा ।
तप बल शेष धारै महि भारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भुआरा ।
तप ते अगम न कछु संसारा ॥
(बालकाण्ड)

गोस्वामी तुलसीदास जी के अस्थिर मत ने आज बड़े २ विद्वानों को चक्करमें डाल रखा है अतः अवश्यमेव विचारणीय है ।

पद्मपुराणानुसार रामवतार वृन्दा के कारण हुआ । उन्होंने (विष्णु ने) वृन्दा को माया से छल कर उसका सतीत्व हरण किया था । इस कारण श्राप दिया था कि तुम मनुष्य जन्म लेकर दुःख भोगोगे । उन्हीं राम ने लंका विजय हेतु एकादशी का व्रत रखा था ।

देवी भागवतानुसार विष्णु के अवतार पाप के कारण हुये । क्योंकि उसने हेतु दिया है ।

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु ।
पश्चान्नृसिंह इति यच्छल कृद्धरायां तान्सेवतां जननि मृत्यु भयं न किं स्यात् ॥
(देवी भागवत स्कन्ध ५। अ० १६। श्लोक १८)

हे जननि प्रकुपित भृगुमुनि के श्राप से ही हरि पृथिवी में मीन, शूकर, नृसिंह और वचनातत्पर वामन इत्यादि रुपधारण करके अवतीर्ण हुये थे । इसमें उनकी पराधीनता है । जो इन पराधीन की सेवा करते हैं उनको मृत्यु भय क्यों न होगा ?

राम को नवरात्रि व्रतोपासना नारद द्वारा सिखाने पर लंका युद्ध में विजय मिली थी । श्री ज्वालाप्रसाद जी मिश्र द्वारा संपादित रामायण के क्षेपक प्रकरणानुसार अहि रावण का राम बध न

कर सके तब सीता ने चण्डी का रूप धारण करके उसका संहार किया।

बौद्धों के राम जातकानुसार सीता राम लक्ष्मण दोनों की बहिन थी।

इसी प्रकार अन्यान्य वृतान्त मिलते हैं जो परस्पर विरोधी हैं। विरोधी सम्प्रदाय वाले ग्रंथों में अत्यन्त निकृष्ट चरित्र वर्णित हैं। इसी आधार पर आज कम्युनिस्ट पत्रिका सरिता तथा अन्य अभारतीय सम्प्रदाय एवं विदेशी संस्कृति के उपासकों ने इस महापुरुष पर भी ग्रंथ लिख कर इनके शुद्ध चरित्र पर आक्षेप किये है और करते हैं। जिसके फलस्वरूप राम के अनेकों भक्त ईसा और मुहम्मद की गोद में चले गये। अब वे रामभक्त नहीं अपितु राम के घोर शत्रु हो गये।

परस्पर विरोधी मान्यताओं के परिणामस्वरूप विदेशी एवं उनके शिष्यों ने राम को इतिहास का पात्र ही मानने से इन्कार कर दिया। उनका यह कहना है कि ये ऐतिहासिक घटनायें नहीं। प्रसिद्ध विदेशीय विद्वान पारजीटर ने राम और सीता को काल्पनिक व्यक्ति माना है। पाश्चात्यों का यहां तक मत है कि रामायण की रचना महाभारत के काफी दिनों पश्चात् हुई है। कुछ वर्ष पूर्व तक भारतीय विद्वान् भी इसी मत के अनुयायी रहे। श्रीयुत रमेश चन्द्र दत्त ने अपनी पुस्तक ऋग्वेद कालीन भारत में भी इस मत को माना है।

वर्तमान जगतवन्द्य प्रसिद्ध रामधुन के प्रचारक रामभक्त राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी स्वयं राम को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते थे और अवतार सिद्धांत को भी गलत मानते थे। तब इन राम को ईश्वर किस प्रकार मान सकते हैं। उनका कहना था कि मैं तुलसी के राम की नहीं अपितु कबीर के राम का उपासक हूँ। फिर भी उनका भजन 'रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम" उनके अन्तिम काल तक एक विवाद का विषय बना रहा।

स्वामी दयानन्द जी ने जब हम सबों को यह बताया कि "प्रमाणंपरमश्रुतिः" है। तब राम को ईश्वर मानने वाले बन्धुओं ने वेद के एक मन्त्र—

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्नि र्वितिष्ठनु रुद्भि र्वर्णौ रभि राममस्थात्॥

का प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहा कि रामावतार की घटना का वर्णन वेद में भी है। परन्तु अब उन्हें सन्तोष हो गया है कि उक्त मन्त्र तब का है जब कि राम का जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय राम के अर्थ ईश्वर परक नहीं माने जाते थे। प्राचीन भाष्यकार राम के अर्थ काला और अन्धकार करते थे। विशेष आश्चर्य जनक बात तो यह है कि मन्त्र में एक भी पद घटना परक नहीं लगाया जा सकता। अस्तु प्रचलित राम ब्रह्म अथवा ईश्वरावतार है इन मान्यता की आधार शिला निराधार हो जाती है।

ऋषि के प्रचार एवं सिंहनाद से क्रान्ति उत्पन्न हो गई, लोगों ने विचारना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने हमें दिशा दी और राम चरित्र पर लगे हुए लाञ्छन को सूत्ररूप में समाप्त कर दिया। उसके लिए हमें बताया कि महर्षि बाल्मीकि रामायण के पक्षिप्त अंशों को छोड़ कर पढ़ने पर हमें राम का उज्ज्वल चरित्र दृष्टि गोचर होने लगेगा।

महर्षि बाल्मीकि जी ने राम को महापुरुष माना और स्थान-स्थान पर उनके मनुष्य होने के प्रमाण दिये हैं। उनके रामायण में स्वयं की एक भी उक्ति राम को ब्रह्म मानने के लिए नहीं मिलती। अपितु उनके मनुष्य होने एवं दशरथात्मज होने की उक्ति उपलब्ध है। देखें—

(१) विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः॥
(बालकाण्ड सर्ग १।१६)

राम विष्णु के सदृश वीर्यवान और चन्द्रमा के समान प्रिय दर्शन (सुन्दर) है।

(२) या त्वं विरहिता नीता चल चित्तेन रक्षसा।
दैव सम्पादिते दोषो मानुषेणमया जितः॥
(युद्ध काण्ड सर्ग ११५।१३)

हे सीते ! जो तू चलायमान चित्त वाले राक्षस रावण से हर ली गई थी, वह दैव कृत दोष था, जो मुझ मनुष्य ने जीत लिया।

(३) यत्कर्त्तव्यं मनुष्येण धर्षणा प्रतिमार्जिताः ।
तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मान कांक्षिणा ॥
(युद्ध काण्ड सर्ग ११५।१३)

शत्रु द्वारा किये गये अपमान को मिटाने के लिए मनुष्य को जो कुछ करना चाहिये वह मैंने मान चाहते हुये रावण को मार कर किया।

(४) आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
(युद्ध काण्ड सर्ग० ११७।१३)

मैं अपने को मनुष्य समझता हूँ, मैं दशरथ का पुत्र राम हूँ।

आलङ्कारिक वर्णन तथा अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन को याथातथ्य न स्वीकार करके उसके मूल को पकड़ कर बुद्धि अनुकूल विषय का ग्रहण करना ऋषि दयानन्द का निर्देश है जिसे आर्य समाज मानता है।

महर्षि वाल्मीकि जी ने इतिहास को काव्य में लिखा, परन्तु उसे तुलसीदास की भांति इतना पोषित नहीं किया कि राम अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक हो हो जायं और दूसरी ओर इष्ट द्वेष के कारण साधारण मनुष्य से भी हेय हो जायं। उनके राम आदर्श राजा, पितृभक्त, संयमी, प्रजा पालक, धर्मात्मा, योग्य राजनीतिज्ञ है। जो शत्रुओं से भी गुणों को सीखना जानते हैं। और शत्रु रावण है तो क्या वह भी चरित्रवान् है। वह सीता को अशोक वाटिका में कहता है कि ऐ सीते मैं तुझ से चाहता हूँ कि तू मेरी पत्नी हो जा। इसके लिए मैं तुझे त्रास दूंगा, लोभ देता हूँ परन्तु तू विश्वास रख तुझ पर मैं कभी बलात्कार नहीं करूंगा। चरित्र नायक राम को यह सह्य नहीं कि अहिल्या ऐसी देवी जो छल द्वारा लूटी गई है, जिसमें उसका दोष नहीं था फिर भी उसने काफी पश्चाताप कर लिया है। परन्तु उसका पति इस पर भी अन्याय करें अर्थात् वह पति के साथ न रह कर निष्कासित रहे। या पति को समाज द्वारा यह भय हो ग्रहण करने में। इसके लिए उन्होंने पति को समझा कर पति-पत्नी का मेल करा कर एक सामाजिक क्रान्ति की। अकेले ही वन चारियों की ऐसी सेना सजाई कि रावण ऐसे महा वैज्ञानिक प्रतापी सम्राट को सपरिवार समाप्त कर दिया। ऐसे ही मर्यादा पूर्ण आदर्शतम् चरित्र हैं राम के जिसका आर्य समाज प्रचार करता है। वह चाहता है कि सभी राम बन जायं तो विश्व में जो आज रावण ही रावण दृष्टिगोचर हो रहे हैं उनका तभी विनाश सम्भव है। क्योंकि उन दिनों एक रावण तो एक राम की आवश्यकता थी परन्तु आज घर-घर में रावण है तो घर-घर में राम होने की अत्यन्त आवश्यकता है।

यदि परमात्मा को परमात्मा मानना नास्तिकता है तो आर्य समाज और स्वामी दयानन्द को ऐसे नास्तिक कहलाने में गर्व है। नहीं तो स्वामी जी ने ईश्वर की सत्ता को—

"सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है।

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्मान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।"

इन शब्दों में स्पष्ट स्वीकार किया है।

राम में यह गुण नहीं अतः राम ईश्वर नहीं महामानव है।

परमात्मा हमें ऐसी शक्ति दे कि हम अपने महान् आदर्शों के अनुकूल अपने को निर्मित कर पुनः भारत को जगद्गुरु बनायें। जैसा कि आर्य समाज चाहता है।

परमात्मा के तुल्य न कोई हुआ है न होगा। न जन्मा है न जन्मेगा

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२)
यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ८५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
पं० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
टयूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीवाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३।)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

आर्य मित्र

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
ब्र० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७६५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

मार्च १९६२
फाल्गुन २०१८
वर्ष अङ्क
१० ८

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रतिका ।)

महर्षि दयानन्द के आक्षेपों का उत्तर
नीर क्षीर विवेक
लेखक—डा० शिवपूजन सिंह
२८६ पृष्ठ की पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य २)
जिन लोगों का रुपया अग्रिम आया था, उन्हें पुस्तकें भेज दी गई हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती-अंक

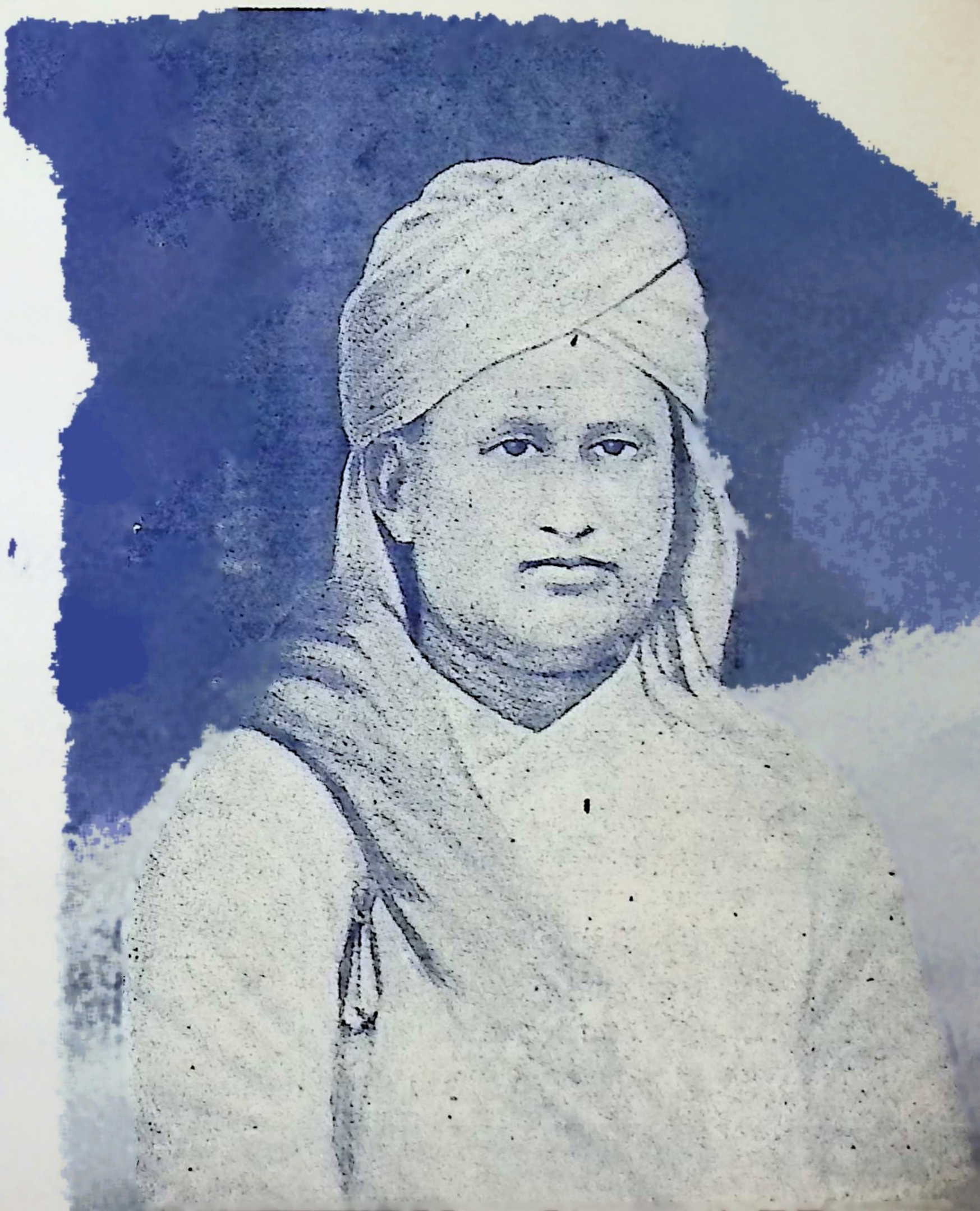

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थ माला के सदस्य बनिये

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरंभ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

(४) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक का महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २।।) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखक:—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सम्पूर्ण प्रामाणिक जीवन चरित्र।

यह जीवन चरित्र इतनी श्रद्धामयी और सजीव भाषा में लिखा गया है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन फिल्म की तरह आंखों के सामने आ जाता है। सभी गुरुकुलों में यह ग्रंथ पाठ्य पुस्तक के रूप में भी पढ़ाया जाता रहा है। उपहार पुरस्कार, भेंट, आदि देने के लिए अनुपम वस्तु। बड़े साइज के ६०० पृष्ठ। मूल्य १२)

आर्य राजनीति के कतिपय तत्त्व

ले०—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर

मान्य पंडित जी ने बहुत युक्ति युक्त ढंग से वैदिक राजनीति को प्रतिपादित किया है। ५२ पृष्ठ की पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३० न पै.। २५) सै.।

बड़ी संख्या में प्रचारार्थ मंगाइये।

—*—

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

दिव्य दयानन्द

[लेखक—ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति]

हम ने देखा तो नहीं परन्तु पुस्तकों में पढ़ा है और वृद्धों एवं विद्वानों के मुख से सुना है कि एक हीरा होता है जिसमें चारों ओर कोणें निकली होती हैं। आँग्ल भाषा में इन्हें Diamond cut कहते हैं। इस प्रकार के हीरों की जिस भी कोण अथवा अनीक को देखें वही देदीप्यमान, कान्तियुक्त एवं चमकदार दिखाई देती है। ठीक यही बात महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन उस हीरे के समान है जो हर ओर से चमकता है। उनके जीवन के जिस पहलू पर दृष्टिपात करें वही जाज्वल्यमान और चमकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यहां हम महर्षि दयानन्द के जीवन के कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे।

योगीराज दयानन्द

महर्षि दयानन्द को समझने में लोगों ने भारी भूल की है। बहुत से व्यक्तियों को यह भ्रम है कि ऋषि दयानन्द केवल एक समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में फैली रूढ़ियों और पाखण्डों का खण्डन किया और बस। परन्तु वस्तुतः देखा जाये तो समाज सुधार तो स्वामी जी के कार्य का एक अङ्गमात्र था। उनका जीवन तो सर्वतोमुखी था। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक, शैक्षणिक और नैतिक सभी क्षेत्रों में काम किया। वे आप्त पुरुष थे, तत्वदर्शी एवं परोक्षदर्शी थे। वे अध्यात्मिक विद्या के धनी और उच्च कोटि के योगी थे। अपने लगभग २० वर्ष के अल्प प्रचार काल में उन्होंने जो महान् कार्य किया वह उन्हीं के शब्दों में बिना योग बल के असम्भव था। महर्षि का आरम्भिक जीवन योगमय जीवन था अतः सब से पूर्व उसी के सम्बन्ध में कथन करते हैं।

चौदह वर्ष की अवस्था में शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर चढ़े नैवेद्य को खाते हुए चूहे को देख कर ऋषिवर के हृदय में सच्चे शिव को प्राप्त करने की लालसा जागी और अपनी बहन तथा प्रिय चचा की मृत्यु देख कर मृत्युञ्जय बनने की इच्छा बलवती हुई। शिव प्राप्ति और मृत्युञ्य बनने का मार्ग उन्हें योगाभ्यास बतलाया गया। अपनी साध को सिद्ध करने के लिए २१ वर्ष की अवस्था में वे अपने धन धान्य से आपूर परिवार को, माता पिता के प्यार और दुलार को तथा बन्धु बान्धवों और मित्रों के स्नेह को छोड़ कर घर से निकल पड़े और चल दिये योगियों की खोज में। जहाँ कहीं किसी सिद्ध अथवा योगी के सम्बन्ध में सुनते वहीं जा पहुँचते। उन्होंने अनेक कुटियों, आश्रमों और मठों का चक्कर लगाया, अनेक महात्माओं का सत्संग किया परन्तु तृप्ति नहीं हुई फिर भी वे निराश और हताश नहीं हुए। होते भी क्यों?

गिरे सौ बार भी बिजली अगर किश्ते तमन्ना पर।
जो हिम्मतदार हैं मायूस कब होते हैं हासिल से॥

उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रक्खा। अन्ततः

खोजते खोजते चाणोद कर्नाली में स्वामी जी महाराज को श्री ज्वाला नन्दपुरी और श्री शिवानन्द गिरी के दर्शन हुए। उन्होंने स्वामी जी को आत्म पिपासु जिज्ञासु जान कर अपने साथ अभ्यास कराया। कुछ समय पश्चात् ये दोनों योगी अहमदाबाद चले गये और स्वामी जी को आदेश दे गये कि एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में आने पर हमें तुम्हें योग विद्या के रहस्य और चरम प्रणाली के विषय में शिक्षा देंगे। योग जिज्ञासु दयानन्द एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में जा पहुँचे। उन्होंने भी स्वामी जी को सुपात्र जान कर उन्हें योग के भेद और रहस्य बता कर योग के अमूल्य रत्नों से माला माल कर दिया। इस विषय में स्वामी जी अपने स्वलिखित जीवन चरित्र में लिखते हैं—

"वहां उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया। उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से मुझे क्रिया सहित सम्पूर्ण योग विद्या भलीभांति विदित हो गई। इस लिये मैं उन का अत्यन्त कृतज्ञ हूं। वास्तव में उन्होंने मुझ पर एक महान् उपकार किया।"

महर्षि यहीं तक सीमित नहीं रहे। जब उन्हें पता लगा कि जो कुछ शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है उससे भी उच्चतर योग विद्या को जानने वाले योगी विद्यमान हैं तो उन्होंने और भी अनेक स्थानों पर घूम घूम कर योगविद्या के रहस्य हस्तगत किये। परन्तु पूर्ण योगी बन कर भी उन्होंने अपने को छिपाये रक्खा क्योंकि सिद्धियों के चक्कर में पड़कर वे अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहते थे। एक बार 'पायोनियर' के सम्पादक सिनट ने स्वामी जी से योग के चमत्कार दिखाने के लिये कहा था उसी का वर्णन करते हुये स्वामी जी ने कर्नल अलकाट और मैडमब्लेविस्टकी को एक पत्र में लिखा था—

"जो मैंने सिनट साहेब से कहा था वह ठीक है। क्योंकि मैं इन तमाशे की बातों को देखना दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों। क्योंकि योग के किये कराये बिना किसी को भी योग का महत्व वा इसमें सत्यप्रेम कभी नहीं हो सकता, वरण सन्देह और आश्चर्य में पड़ कर उसी तमाशे दिखलाने वाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सिनट साहेब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूँ, चाहे वे राजी रहें चाहे नाराज हों क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊं तो सब मूर्ख और पण्डित मुझ से यही कहेंगे कि हम को भी कुछ योग के आश्चर्य काम दिखलाइये, जैसा उसको आपने दिखलाया, ऐसी संसार की तमाशे को लीला मेरे साथ लग जाती जैसी मेडम-एच० पी० ब्लेवस्तिकी के पीछे लगी है। अब जो इनकी विद्या धर्मात्मता की बातें हैं कि जिस से मनुष्यों की आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं उनका पूछना और ग्रहण करने से दूर रहते हैं। किन्तु जो कोई आता है मेडम साहेब आप हम को भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्त नहीं करता न कराता हूँ। किन्तु कोई चाहे तो योग रीति सिखलासकता हूँ कि जिससे वह स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों को देख लेवे।" (महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन)

योग दर्शन का तीसरा पाद विभूति पाद है। इस पाद में योग के ऐश्वर्यों—योग से होने वाली सिद्धियों का वर्णन है। बहुत से लोग समझते हैं कि यह सब गप्प है परन्तु महर्षि दयानन्द इन सिद्धियों को गप्प नहीं समझते यह उनके उपर्युक्त कथन से स्पष्ट सिद्ध है। इस विषय में स्वामी जी के जीवन की एक अन्य घटना भी अवलोकनीय है—

एक बार एक व्यक्ति ने स्वामी जी से पूछा—"भगवन्! पातञ्जल शास्त्र का विभूति पाद क्या सच्चा है?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"आप यों ही सन्देह करते हैं। योगशास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराणों की सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभव सिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओं में

उत्तीर्ण होने के लिए आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिये यदि आप तीन मास तक मेरे पास निवास करें और मेरे अनुकूल योग क्रियायें साधें, तो आप इस शास्त्र की सिद्धियों का साक्षात् स्वयं कर लेंगे।"

स्वामी जी को अनेक सिद्धयां प्राप्त थी। स्वामी जी अपनी योग शक्ति के द्वारा दूसरों के मनोगत भावों को जान लिया करते थे।

एक बार एक सज्जन ने स्वामी जी से प्रार्थना की—"महाराज! अभ्यास में मन लगाने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु मन टिकता ही नहीं, संकल्प विकल्प शान्त ही नहीं होते।"

स्वामी जी ने व्यङ्ग करते हुए कहा—'मन नहीं टिकता तो भङ्ग भवानी का एक लोटा और चढ़ा लिया करो।"

यह उत्तर सुन उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि स्वामी जी के उसको भंग पीने की बात का पता नहीं था।

उदयपुर वास के दिनों में ऋषिवर बहुत प्रातः नौलखा उद्यान वाले सरोवर के किनारे किनारे गोवर्द्धन पर्वत की ओर जाया करते थे। एक दिन उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द जी ने देखा कि कि महाराज जल पर पद्मासन लगाये, योगमुद्रा में कमल दल की भान्ति विराजमान थे।

आगरा निवास के समय स्वामी जी दोनों समय योगारूढ़ हुआ करते थे। किसी किसी दिन पहरों अचलभाव से ध्यानावस्थित रहते। लोगों ने उनको १८-१८ घण्टे की समाधि लगाते देखा था।

जब महाराज प्रयाग पधारे तो भगवान्दास नामक एक व्यक्ति को महाराज की योगक्रिया देखने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। एक दिन उसने छिप कर देखा कि महाराज भूमि से छः इञ्च ऊपर शून्य में स्थित थे।

एक अन्य पत्र में महाराज ने मेडम ब्लेवस्टकी को लिखा था—

"आत्मा मनुष्य शरीर में अद्भुत कार्य कर सकती है। संसार में (ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त) सभी पदार्थों के स्वरूप और गुणों को जान कर मनुष्य अत्यन्त दूर के पदार्थों का दर्शन श्रवण आदि की शक्ति प्राप्त कर सकता है। जिसे प्राप्त करने में प्रायः असमर्थ रहता है।" (पत्र और विज्ञापन)

एक नवाब ने महाराज से पूछा—"क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे यहां बैठा मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले।" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"योगी लोग इच्छा नहीं करते। सब मे गुप्त विद्या ब्रह्मविद्या है, योगी को उसी को जानने का उद्देश्य है। अतः यदि योगी चाहे तो योग विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।"

ऋषिवर को यह सिद्धि भी प्राप्त थी। उदयपुर की घटना है। एक दिन श्री राणा सज्जनसिंह जी और सहजानन्द जी आदि सज्जन स्वामी जी के पास बैठे थे। स्वामी जी ने राणा जी से कहा, "पण्डित सुन्दरलाल जी यहां आ रहे हैं। यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए यान का उचित प्रबन्ध कर दिया जाता।" राणा जी ने कहा—"भगवन्! यान तो अब भी भेजा जा सकता है।" इस पर स्वामी जी ने कहा, "अब तो बैल गाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल शुक्लवर्ण हैं और दूसरे के तन पर लाल धवल धब्बे है। वे कल यहां पहुँच जायेंगे।" महाराज का कहना अगले दिन बिल्कुल ठीक सिद्ध हुआ।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में योग के बहुमूल्य रत्न बिखरे हुए हैं। पाठकों की ज्ञानवृद्धि और लाभार्थ कुछ यहां उपस्थित किये जाते हैं।

"जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमा आदि सिद्धि उत्पन्न होती है उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है अन्यथा नहीं। (यजुर्वेद भाष्य १८।६७ का भावार्थ)

"जो योगी पुरुष तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप, संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्रादि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है। अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिए।" (यजुर्वेद १७।७१ का भावार्थ)

"जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करने वाले विद्वान् का संग और प्रीति से सम्वाद करते हैं वे सब के अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं।" (यजु० १७।७३ का भावार्थ)

प्राणायाम का वर्णन करके उसके लाभों का वर्णन करते हुए ऋषिवर लिखते हैं—

"बल पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा।"
(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

उपासना पद्धति पर प्रकाश डालते हुए योगीराज दयानन्द लिखते हैं—

"जब जब मनुष्य लोग उपासना करना चाहें, तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त देश में बैठ कर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली भांति उसमें लगा दें।"
(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय)

"जब आसन दृढ़ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है, और न सर्दी गर्मी अधिक बाधा करती है।" (वही)

ईश्वर के दर्शन कहां होते हैं इस तथ्य का सुन्दर निरुपण भी स्वामी जी के शब्दों में पढ़िये—

"कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में, और उदर के ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश एक स्थान है, और उसी के बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर भर रहा है, वह आनन्द स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई स्थान वा मार्ग नहीं है।" (वही)

इस प्रकार के सैंकडों उद्धरण दिये जा सकते हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण उन सब का उल्लेख यहां नहीं हो सकता। हम अपने अन्य प्रकाशन "योगीराज दयानन्द" में इनका विशद विवेचन करेंगे।

वेदज्ञ दयानन्द

जिस प्रकार 'धनुर्धारी' कहा और मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सम्पूर्ण जीवन हमारे नेत्रों के सामने नृत्य करने लगता है, 'चक्रधारी' शब्द के साथ आनंदकन्द योगेश्वर कृष्णचन्द्र का जीवन मानस पटल पर अंकित हो जाता है, 'कलंगी वाला' कहते ही गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन का नकशा सामने आ जाता है ठीक इसी प्रकार 'वेदों वाला' कहते ही ऋषि दयानन्द का जीवन सम्मुख उपस्थित हो जाता है। महर्षि दयानन्द का काम वेद, महर्षि का सन्देश वेद, महर्षि का जीवन वेद और ऋषि की मृत्यु भी वेद के ही कारण हुई। वेद उनके हृदय में थे, मस्तिष्क में थे और जिह्वा पर थे। वे वेद के लिये जीये और वेद के लिये मरे।

जिस समय महर्षि दयानन्द रंगमञ्च पर आये उस समय लोग तुलसीकृत रामायण, गीता और भागवत् पुराण से आगे नहीं बढ़ते थे। वेद जो आर्यों का परमधर्म है यहां से लुप्त हो चुका था। इस प्रसंग में एक घटना का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा।

स्वामी जी महाराज अपने मधुर उपदेशों से शाहजहांपुर की जनता को मुग्ध और कृतार्थ कर रहे थे। एक दिन लक्ष्मण शास्त्री जी स्वामी जी के पास आकर उनसे शास्त्रार्थ करने लगे। शास्त्रार्थ का विषय था 'मूर्तिपूजा'। स्वामी जी ने शास्त्री जी से कहा, "आप अपने पक्ष की पुष्टि में कोई वेद का प्रमाण दीजिये।"

यह सुनकर शास्त्री जी ने कहा, "वेद कहां है जिसका प्रमाण दूं। वेद को तो शंखासुर चुराकर पाताल ले गया।" स्वामी जी ने उसी समय वेद हाथ में उठा कर कहा, "पण्डित जी! आप के आलस्य और प्रमाद रूपी शंखासुर का वध करके मैंने ये वेद जर्मनी से मंगवाये हैं। लीजिये, इन में से खोज कर कोई प्रमाण प्रस्तुत कीजिये।"

इस घटना से पाठकों को भारतीय अवस्था का पता तो लग गया होगा। अब पाश्चात्य विद्वानों के [illegible] भी सुनिये। पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के विषय में नाना प्रकार की भ्रांतियां फैला रक्खी थी। वेद के सम्बन्ध में उन्होंने ऐसी अटकलपच्चू कल्पनाएं की थी—

"वेद बच्चों की बिलबिलाहट और गडरियों के गीत हैं। इन में अग्नि, वायु, मित्र, वरुण और इन्द्र आदि देवताओं की पूजा का विधान है। इसी प्रकार विभिन्न देवताओं की स्तुति है। वेद में गाय, घोड़ा, बकरी और यहां तक कि पुरुषों की भी बलि देने का वर्णन है। वेद ईसा से तीन चार सहस्र वर्ष पूर्व बने। वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं है अपितु इनके बनाने वाले भिन्न भिन्न ऋषि थे जो समय समय पर इन्हें बनाते रहे। इन में कर्तव्यशास्त्र और आध्यात्मिक शिक्षाओं का नितान्त अभाव है।"

जब महर्षि दयानन्द कार्यक्षेत्र में आये तो उन्होंने वेदों का सच्चा भाष्यकर वद के सम्बन्ध में फैली इन सभी भ्रान्तियों को दूर कर वेद का सच्चा स्वरूप लोगों के समक्ष रक्खा। महर्षि के वेद भाष्य को पढ़कर लोगों के विचार बदले। प्रो० मैक्समूलर ने अपने Biographical Essay में महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य का निर्देश करते हुए लिखा है—

"To Swami Dayananda every thing contained in the Vedas was not only perfect truth but he went one step further and by their interpretation, succeeded in persuading others that everything worth knowing even the most recent inventions of modern science were alluded to in the Vedas. Steam-engine, electricity, telegraphy and wireless marconigram was shown to have been known in the germs of poets of the Vedas"

अर्थात् महर्षि दयानन्द की दृष्टि में वेद में प्रतिपादित प्रत्येक वस्तु न केवल पूर्ण सत्य थी अपितु वे और एक पग आगे गये और अपनी व्याख्या से वे औरों को यह विश्वास दिलाने में सफल हुए कि प्रत्येक जानने योग्य वस्तु यहां तक कि आधुनिक विज्ञान के आविष्कारों का भी वेद में निर्देश है। रेल, बिजली, तार, बेतार का तार इत्यादि सभी वस्तुएं कम से कम बीज रूप में वैदिक ऋषियों को ज्ञात थी।

कुछ लोगों का विचार है कि स्वामी जी ने कुछ अविष्कारों का नाम सुनकर उन्हें अपने वेद भाष्य में प्रस्तुत कर दिया परन्तु यह भ्रम है। इस विषय में श्री अरविन्द घोष के विचार पठनीय और मननीय हैं अतः उन्हें यहां उद्धृत करते हैं—

"Dayananda affirms that the truth of modern physical science are discoverable in the hymns. There is nothing fantastic in Dayanandas' idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion. I will even add my own convction that veda contains the other truths of science the modern world does not at all possess, and in that case Dayananda has rather understated than overstated the depth and range of the Vedic wisdom."

(Dayananda the man and his work)

भाव यह है कि "वेदों में केवल धर्म ही नहीं विज्ञान भी है, दयानन्द के इस विचार में चौंकने को कोई बात नहीं है। मेरा विचार तो यह है कि वेदों में विज्ञान को ऐसी बातें भी हैं जिनका पता आज के वैज्ञानिकों को नहीं चला है। इस दृष्टि से देखा जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द ने वेदों में निहित ज्ञान के विषय में अत्युक्ति नहीं, अपितु अल्पोक्ति से कार्य लिया है।"

महर्षि मनु ने कहा है—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनु २।६) धर्म का मूल वेद है। ऋषिवर का आरम्भिक नाम मूलशंकर था अतः उन्होंने जाल ग्रंथों को छोड़कर वेद को ही पकड़ा और वेद को ही सत्य विद्याओं का पुस्तक घोषित किया। वेद में एक मन्त्र आता है—

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति। यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ (ऋ० १०।७१।६)

जो व्यक्ति वेदरूपी मित्र को छोड़ देता है उस की वाणी में सार, तत्व नहीं रहता। वह जो कुछ सुनता है व्यर्थ ही सुनता है। वह उत्तम कर्म, पुण्य धर्म के मार्ग को भी ठीक प्रकार से नहीं जान सकता।

महर्षि दयानन्द ने गुरु के आदेश पर तन्त्रादि सभी जाल ग्रंथों को यमुना के अर्पित कर दिया और सच्चे मित्र एवं उपकारक वेद को ही पकड़ा। उन्होंने वेद को स्वतः प्रमाण और अन्य ग्रंथों को परतः प्रमाण माना। वेद को अपनाने के कारण ही उनकी वाणी में ओज और तेज था और उन्होंने अनेकों को प्रभावित किया।

वेद में एक और मंत्र आता है—

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्र मुक्थ्यम्॥ (ऋ० १।३८।१४)

मैं वेद मन्त्रों से अपना मुख भर लूं और मेघ के समान सर्वत्र उन मन्त्रों की वृष्टि करूं स्वयं गाऊं और दूसरों से गवाऊं।

इस मंत्र के अनुसार महर्षि दयानन्द ने स्वयं वेदामृत का पान किया और दूसरों को कराया। वेदों के मन्त्र उन की जिह्वा पर नाचते थे। अपने व्याख्यानों में वे वेदमंत्रों की झड़ी लगा देते थे। उन के वेद ज्ञान की प्रशंसा करते हुए मैडम ब्लेवस्ट्की ने भी कहा था—He was possessed of the Vedas. अर्थात् दयानन्द पर वेदों का भूत सवार था।

स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् थियासोफिस्ट पत्र ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा था।

"उन्होंने जरजर हिन्दुत्व के गतिहीन ढूह पर भारी बम्ब प्रहार किया और अपने भाषणों से लोगों के हृदयों में ऋषियों और वेदों के लिये अपरिमित उत्साह की आग जला दी। सारे भारत में उनके समान हिन्दी और संस्कृत का वक्ता कोई और नहीं था।"

श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास का कहना था कि स्वामी जी ने राजकोट में वेद विषय पर ऐसा व्याख्यान दिया था कि उच्चता गम्भीरता और युक्ति युक्तता में, मेरी सम्मति में वह अपूर्व था।

स्वामी जी वेद को ही प्रमुखता देते। एक बार मेरठ में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा था, "मैं वेद को ही सर्वोपरि मानता हूँ।"

जब महाराज उदयपुर में थे तो एक दिन राणा जी ने महाराज की सेवा में निवेदन किया कि यदि आप दर्शनों का भाष्य कर दें तो उसके छपाने के लिए बीस सहस्र रुपया मैं भेंट करने को समुद्यत हूं। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वेद भाष्य समाप्त होने पर दर्शनों के विषय में सोचा जायेगा यह है ऋषि का वेदप्रेम।

अब एक दो बातें वेद भाष्य के सम्बन्ध में भी सुन लीजिये। अपने वेद भाष्य से महर्षि दयानन्द क्या क्या आशायें रखते थे यह उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

"परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देख मिला कि वेद भाष्य सम्पूर्ण हो जावे, तो निस्संदेह इस आर्यवर्त देश में सूर्य का सा प्रकाश हो जावेगा कि जिसके मेटने और झांपने को किसी का सामर्थ्य न होगा। क्योंकि

सत्य का मूल ऐसा नहीं कि जिस को कोई सुगमता से उखाड़ सके। और कभी भानु के समान ग्रहण में भी आ जावे, तो थोड़े ही काल में फिर उग्रह अर्थात् निर्मल हो जावेगा।" (भ्रान्ति निवारण)

महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य पर अपनी सम्मति देते हुए श्री अरविन्द घोष ने लिखा है—

"In the matter of Vedic interpretation I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the choas and obsecurity of old ignorance and age long misunderstanding he was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on that which was essential. He has fouud the keys of the doors that time has closed and rent asunder the seal of the imprisoned fountains. (Dayananda the man)

अर्थात् वेदों का अंतिम तथा प्रामाणिक भाष्य चाहे कुछ भी हो दयानन्द का स्थान उपयुक्त शैली के प्रथम आविष्कारक के रूप में सर्वोच्च है। उस ने अपनी दिव्य दृष्टि से पुराने अज्ञान तथा भ्रम के मध्य में से सत्य का अन्वेषण किया। जिन वेदों के द्वार को समय ने बन्द कर रक्खा था उसकी चाबी को उसने पा लिया।

वेद भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो मानव मात्र के कल्याण के लिये प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में दिया था। लोग वेदों को भूल चुके थे। महर्षि ने कहा—

Back to the Vedas वेदों की ओर लौटो।

गंगा का जल शुद्ध पवित्र और निर्मल होता है परन्तु यदि हुगली पर जाकर देखा जाये तो वहां के जल को देख कर घृणा उत्पन्न होती है, उसे पीने को जी नहीं चाहता। यदि गंगा का शुद्ध स्वरूप देखना हो तो हमें हिमालय की ओर जाना होगा। यही बात धर्म के सम्बन्ध में है। स्वामी जी ने सहस्रों ग्रन्थों को पढ़ने और विचार करने के पश्चात् डिण्डम घोषणा की कि यदि धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हो तो वेदों की ओर चलो, वेद ही धर्म का आदि स्रोत है।

मनु जी महाराज ने कहा है—

धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः (मनु २।१३)

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है। इस निर्देशानुसार स्वामी जी वेद को ही परम प्रमाण मानते थे। महर्षि ने अपने प्रत्येक सिद्धान्त की पुष्टि के लिये वेद मन्त्र उपस्थित किये हैं यहां दिग्दर्शनार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

जिज्ञासु—वेद ईश्वरीय ज्ञान है इसमें क्या प्रमाण है)

महर्षि—यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का ७वां मन्त्र

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

अर्थात् उसी यज्ञरूप परमेश्वर से ऋग्यजुः साम और अथर्व वेद प्रकट हुए।

जिज्ञासु—तीन पदार्थ अनादि हैं इसमें क्या प्रमाण हैं?

महर्षि—ऋग्वेद १।१६४।२० देखिये।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

अर्थात् दो मित्र एक वृक्ष पर एक दूसरे को आलिंगन किये हुये बैठे हैं। उन में से एक तो उस वृक्ष के फलों को खाता है परन्तु दूसरा साक्षी होकर देखता है।

जिज्ञासु—ईश्वर एक है इसमें क्या प्रमाण है?

महर्षि—अथर्व वेद के निम्न मन्त्र देखिये—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक ऐव॥

(अथर्व ११।४।१५-१८)

अर्थात् ईश्वर न दूसरा है न तीसरा, न चौथा, न पांचवां, न छटा न सातवां, न आठवां न नववां और न दसवां। वह सदा एक अद्वितीय है। उससे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं।

जिज्ञासु—मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिये इसमें क्या प्रमाण है ?

महर्षि—यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय का तीसरा मन्त्र—

न तस्य प्रतिमा ऽ अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

जिस का नाम महान् यश वाला है उसकी कोई मूर्ति नहीं है।

जिज्ञासु—ईश्वर अवतार नहीं लेता उसमें क्या प्रमाण है ?

महर्षि—ऋ० ७।३५।१३ में ईश्वर को 'अज'—अजन्मा कहा गया है और यजुर्वेद ८।४० में उसे 'अकायम्'—शरीर रहित कहा गया है। जो अजन्मा और शरीर रहित है उसका अवतार कैसा ?

जिज्ञासु—मृतक शरीर का क्रियाकर्म किस प्रकार किया जाना चाहिये ?

महर्षि—भस्मान्त ँ शरीरम्। यजुर्वेद ४०।१५ के अनुसार जलाना ही ठीक है।

इन उद्धरणों से प्रकट है कि ऋषि कैसे वेदज्ञ थे और कितने वेदप्रेमी। प्रो० मैक्समूलर ने उनकी प्रशंसा करते हुए ठीक ही लिखा है—

"स्वामी दयानन्द एक महान् विद्वान् थे। उनके धर्म नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर आधारित थी। उन्हें वेद कण्ठस्थ थे। उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था। वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान्, साहित्य का पुतला, वेदों के महत्व को समझने वाला, अत्यन्त प्रबल नैयायिक और विचारक यदि भारतवर्ष में हुआ है, तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती ही था।"

ऋषिवर ने वेद पर कैसा अद्भुत परिश्रम किया था इस तथ्य का दिग्दर्शन करा हम इस विषय को विराम देंगे।

जब महाराज लखनऊ में थे तो पण्डित प्रभुदयाल जी से वार्तालाप करते हुए उन्होंने कहा था, "मैंने वेदों के एक एक मन्त्र को भली भांति विचार दृष्टि से जांच लिया है। उन में ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है, जो अयुक्त सिद्ध हो सके। जैसे सराफ रुपयों की परख कर थैली में रख लेता है और फिर उन की निर्दोषता में निर्भ्रान्त हो जाता है, ऐसे ही एक-एक वेद मन्त्र को युक्ति और प्रमाण की कसौटी पर कस कर उनकी सत्यता में मैं निस्सन्देह हो गया हूं।"

इतने गम्भीर अध्ययन, चिन्तन और मनन के पश्चात् ही ऋषि ने वेद को सत्यविद्याओं का पुस्तक कहा था। स्वामी भगवदाचार्य जी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है—

"यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो जगत् में सर्वप्रथम विद्वान् स्वामी दयानन्द ही हैं जिन्होंने यह घोषित किया कि "वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" मैं इस कथन के साथ सर्वथा सहमत हूँ।"

(साम संस्कार भाष्य की प्रस्तावना पृष्ठ १३)

ब्रह्मचारी दयानन्द

भर्तृहरि जी ने एक स्थान पर लिखा है—

मत्तेभकुम्भ दलने भुवि सन्ति शूराः,
केचित्प्रचण्ड मृगराजवधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः ॥

(शृंगार शतक ५८)

मत्त गजराज के मस्तक को फोड़ने वाले और प्रचण्डसिंह को मारने वाले वीर तो संसार में बहुत मिल जायेंगे परन्तु कामदेव के घमण्ड को खण्डित करने वाला कोई विरला ही मनुष्य होगा। ऋषि के जीवन के आलोक से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी उन विरले मनुष्यों में से ही थे। शंकर की भांति मूलशंकर ने भी कामदेव को भस्म कर दिया था।

यदि हम इतिहास के पृष्ठों को उलटें तो ब्रह्मचारी तो और भी मिलेंगे परन्तु महर्षि दयानन्द अद्भुत और निराले ब्रह्मचारी थे। आइये कुछ

ब्रह्मचारियों के जीवनों का अवलोकन करें—

इस धरा धाम पर महावीर हनुमान का नाम किस ने न सुना होगा ? आप जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। अपने ब्रह्मचर्य के बल पर आप ने कैसे भयंकर एवं अद्भुत कर्म किये थे यह सर्वविदित ही है। परन्तु हनुमान जी ब्रह्मचारी क्यों रहे ? लोकोपकार के लिये ? नहीं, अपने स्वामी राम को रिझाने के लिये।

परशुराम भी ब्रह्मचारी थे परन्तु आप ने अपने ब्रह्मचर्य का उपयोग किस प्रकार किया ? २१ वार क्षत्रियों का संहार करके।

भीष्म पितामह भी ब्रह्मचारी थे ! परन्तु आप ने ब्रह्मचर्य धारण किस लिये किया ? संसार के उपकार और उद्धार के लिये नहीं अपितु पिता की एक तुच्छ कामना को पूर्ण करने के लिये। निस्संदेह बहुत बड़ा त्याग और बलिदान था परन्तु इस से ब्रह्मचर्य का गौरव नहीं झलकता।

शंकराचार्य भी ब्रह्मचारी थे परन्तु जब आप मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी के सामने निरूत्तर हो गये तो एक मास की अवधि लेकर आप ने एक राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर गृहस्थ का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया था ऐसा उनका इतिहास बतलाता है। प्रत्यक्ष में न सही परोक्ष में ही सही अखण्ड ब्रह्मचर्य तो न रहा।

अब तनिक महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य को भी देखिये। महर्षि दयानन्द माता पिता अथवा किसी स्वामी को प्रसन्न करने और रिझाने के लिये ब्रह्मचारी नहीं बने। संसार का संहार करने के लिये भी उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण नहीं किया था। उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण किया था मृत्युञ्जय बनने के लिये, सच्चे शिव के दर्शन करने के लिये संसार से कुरीतियों और पाखण्ड का खण्डन करने के लिये, समस्त संसार में वैदिक सभ्यता और संस्कृति का नाद बजाने के लिये, संसार का उपकार और उद्धार करने के लिये। हुए न अद्भुत ब्रह्मचारी !

लीजिये महर्षि के विमल ब्रह्मचर्य की कुछ घटनाओं का रसामृतपान कीजिये—

एक बार महर्षि कुछ व्यक्तियों के साथ एक शिवालय के पास से निकल रहे थे। चलते चलते उन्होंने अपना सिर झुका दिया। किसी ने कहा—"हमारी मूर्तियों में कितनी शक्ति है, दयानन्द से नास्तिक का सिर स्वयं झुका दिया।" ऋषि ने एक नग्न बाला की ओर संकेत करते हुए कहा, "देखते नहीं यह मातृ शक्ति है। मैंने इसी के लिये सिर झुकाया है।" कैसा अद्भुत ब्रह्मचर्य है। एक बालिका में भी मातृ भावना !

जब महर्षि दयानन्द बंगाल में प्रचारार्थ पधारे तो प्रसिद्ध साधक श्री अश्विनी कुमार दत्त जी भी उनके सत्सङ्ग में जाया करते थे। एक दिन दत्त महाशय ने एकान्त पाकर स्वामी जी से प्रश्न किया "क्या आप को काम ने कभी नहीं सताया ?" ऋषि ने आंखें बन्द करके ध्यान मग्न हो २-३ मिनट में अपने सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि दौड़ाकर कहा, "जहां तक मैं स्मृति दौड़ाता हूँ, मुझे मेरे जीवन में ऐसा अवसर स्मरण नहीं पड़ता।" इस उत्तर को सुन कर उत्तेजित हो दत्त महाशय ने कहा, "क्या आप हाढ-मांस के बने हुए नहीं हैं ?" ऋषिवर ने इसका जो उत्तर दिया ब्रह्मचर्य पालन के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को उसे हृदय में धारण कर लेना चाहिये। उन्होंने कहा, "अश्विनी कुमार जी ! अवकाश ही नहीं है।" अश्विनी कुमार जी इस पर सन्तुष्ट हो कर चले गये।

सचमुच ऋषि दयानन्द के ऊपर इतना कार्य भार था कि उन्हें उस सम्बन्ध में सोचने और विचारने का अवसर ही नहीं मिलता था। साधु टी० एल० वास्वानी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है। He was married to his mission. अर्थात् वे अपने मिशन के साथ विवाहित थे।

हरिद्वार में एक अवधूत मथुरादास जी नामक उच्च कोटि के योगी हुए हैं। सवा सौ वर्ष से अधिक आयु पाकर सन् १९१८ में उन्होंने शरीर त्याग किया था। उन से किसी ने ऋषि के ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, "दयानन्द बहुत वीर था। इस प्रकार का अखण्ड ब्रह्मचारी

पुस्तकों में सुनने में आता है, देखने में विरला मिलता है। दयानन्द पुस्तकों में वर्णित ब्रह्मचारी थे।"

गांधी जी ने महर्षि के सम्बन्ध में एक बार अपने एक लेख में लिखा था I envy his Brahmacharya but at once a despair. अर्थात् मुझे महर्षि के ब्रह्मचर्य से डाह (अनुताप) होता है परन्तु जब मैं उन जैसा ब्रह्मचारी बनने की बात सोचता हूँ तो एक दम निराश हो जाता हूँ।

बाबू देवेन्द्र नाथ ने लिखा है, "मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जयकिशन दास ने हम से कहा था कि जिस जोर, जिस आग्रह और जिस उत्साह के साथ स्वामी जी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता प्रतिपादन करते थे उस प्रकार से इस विषय पर बोलते हुए हम ने किसी को नहीं सुना। वह सब से अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे।"

स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और महत्त्व पर बल देते हुए लिखा है—

"जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधारों का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिस से उत्तम सन्तान होवें।

(संस्कार विधि गर्भाधान प्रकरण)

ऋषिवर ब्रह्मचर्य को ही देश के उद्धार और पतन का कारण मानते थे। सन् १८८१ में लार्ड रिपन ने चित्तौड़ में एक दरबार का आयोजन किया था। इसमें सारे राजस्थान से राजा महाराजा एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर महर्षि को भी आमन्त्रित किया गया था और वे उदयपुर के अतिथि थे। वहां राणा संग्रामसिंह और महाराणा प्रताप जैसे क्षत्रिय वीरों की सन्तानों को मांस मदिरा तथा विषय वासनाओं में फंसे देख महर्षि की अन्तर्वेदना आंखों में अश्रुधारा और जिह्वा पर इन शब्दों में फूट पड़ी थी—

"ब्रह्मचर्य का नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ है और ब्रह्मचर्य का उद्धार होने से ही फिर देश का उद्धार होगा।"

बच्चों में आरम्भ से ही ब्रह्मचर्य पालन और रक्षण के संस्कार डालने के लिए महर्षि सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

"देखो! जिस के शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकेगा तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।" (द्वितीय समुल्लास)

स्वामी जी के ग्रन्थ ब्रह्मचर्य की गरिमा से भरे पड़े हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यहां अधिक उल्लेख नहीं हो सकता। ऋषिवर स्वयं अखण्ड ब्रह्मचारी थे। उन के ब्रह्मचर्य की गरिमा पढ़िये—

शाहपुराधीश सर नाहरसिंह जी ने महर्षि के सत्सङ्ग का आनन्द खूब लूटा था। ब्रह्मचर्य के कारण महर्षि के सद्गुणों का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

"स्वामी जी पुष्टकाय, दृढ़ जत्रु (हंसली) और बड़े बलिष्ठ थे। उनके शरीर की इस समय के बलवानों से जब तुलना करता हूँ तो बड़ा भारी अन्तर पाता हूँ। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग ऐसे सुदृढ़ और सुडौल थे कि वैसे आज तक देखने में नहीं आये। वे नित्य प्रति प्रातःकाल योग साधन के लिये जंगल में जाते और

प्राणायाम को क्रियाएं करते थे। एक दिन मैं भी उनके साथ गया तो उन्होंने कुछ प्राणायाम को विधि जो वे मुझे नित्य प्रति सिखाया करते थे सिखा कर विदा करना चाहा किन्तु मेरी इच्छा उनके पास रहने की हुई परन्तु स्वामी जी जंगल में दौड़ लगाते थे इसलिये उन्होंने मुझ को कहा कि तुम इतना परिश्रम न कर सकोगे परन्तु मैं नहीं माना और मैं भी उनके साथ दौडने लगा तो थोडी देर बाद थक गया और स्वामी जी बराबर दौड़ते चले गये। शायद उन्होंने पांच मील से कम की दौड न लगाई होगी और लौट आने पर भी फेफडे न फूले थे। मैंने उस दिन से यह बात समझ ली कि स्वामी जी के पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही यह फल है।"

श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए० उन के ब्रह्मचर्य को प्रशंसा करते हुए लिखती हैं—

नैपोलियन और सिकन्दर जैसे राजा और महाराजा तो संसार में बहुत से उत्पन्न हुए हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जी महाराज इन सब से बढ़ कर शक्तिशाली और विजेता हुए हैं जिन्होंने अपनी इंद्रियों को वश में करके ब्रह्मचर्य का अद्वितीय पालन किया—

बड़े मूजी को मारा नफस अम्मारा को गर मारा।
नहंग वो अजदाह वो शेरे नर मारा तो क्या मारा॥

और एक सच्चे योगी का जीवन व्यतीत किया।

विद्वच्चक्रचूड़ामणि गुरु विरजानन्द जी ने शतशः विद्यार्थियों को विद्या दान दिया और अनेकों को पण्डित बनाया। विद्वता की दृष्टि से श्री गोस्वामी उदय प्रकाश जी द्वितीय शिष्य थे। श्री पं० उदय प्रकाश जी के दो पुत्र थे (१) श्री पंडित नन्द किशोर जी और (२) श्री पं० मुकुन्द देव जी। मुकुन्ददेव जी ने गुरु विरजानन्द जी की एक जीवनी लिखी थी। उस पर एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—

"हमारा स्वामी दयानन्द जी से कुछ सम्बन्ध नहीं। न हम दयानन्द स्वामी के मतानुयायी, न आर्य भाई।..... स्वामी दयानन्द जी में साहस गाम्भीर्य आदि गुण तो थे ही परन्तु ब्रह्मचर्य गुण अद्वितीय एव लोकोत्तर था जिस एक गुण का होना भी आजकल असम्भव है।"

मथुरा अवस्थिति के समय महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए स्वामी सत्यानन्द जी लिखते हैं—

"वे बाजारों में चलते, गलियों में जाते और घाट से बार बार पानी लाते थे। इन स्थानों में सैंकड़ों स्त्रियां इधर उधर आती जाती थी, परन्तु ढाई वर्ष में कभी किसी ने उन्हें किसी स्त्री को और आंख उठाकर देखते नहीं देखा। वे सदा नीची मार्ग विलोकिनी दृष्टि रखकर चला करते थे। उन की इस वृत्ति की सारी मथुरा में धाक थी। मंदिरों में, घाटों पर, विश्रान्तो में, पाठशालाओं में, बाजारों में हाटों पर, गृहों में चौबों के अखाड़ो में और विजयापान की मण्डलियों में—सर्वत्र श्री दयानन्द की सुशीलता और अंभग ब्रह्मचर्य व्रत का गुण गान किया जाता था।"

ऋषि का यह गुण ऐसा था कि विरोधियों ने भी इसकी प्रशंसा की है। यहां इस सम्बन्ध में उनके जीवन की एक घटना प्रसिद्ध पौराणिक पत्र 'परमार्थ' के ब्रह्मचर्याङ्क से उद्धृत की जाती है—

"आर्य समाज के प्रर्वतक स्वामी दयानन्द अपने प्रचारकाल में एक बार लाहौर में ब्रह्मचर्य की महिमा का उपदेश कर रहे थे। ब्रह्मचर्य की आश्चर्य जनक शक्ति का प्रभाव सुनकर वहां के एक सुप्रसिद्ध बैरिष्टर ने कहा, "स्वामी जी ये सब पुरानी कहानियां तो हमने बहुत सी सुनी हैं। मैंने सुना है कि आप भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं आप ही कुछ करामात दिखाइये।" भरी सभा में ऐसी बात एक सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित व्यक्ति के मुख से सुन कर स्वामी दयानन्द जी मौन हो गये। उन्हें मौन देख कर श्रोताओं को एक प्रकार की गंभीर निराशा का अनुभव हुआ। सभा का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के पश्चात् जब वे बैरिष्टर महोदय अपनी चार घोड़ों से जुती बग्घी पर बैठ कर जाने लगे तो स्वामी जी ने दौड़ कर

पीछे से उस गाड़ी को बलपूर्वक पकड़ लिया। सहस्रों नर नारियों ने देखा कि ऊपर कोच पर स्थित साईस बारम्बार घोड़ों पर कोड़े फटकार रहा है किन्तु घोड़े अपने स्थान पर ही पैर पटक रहे हैं। यथाशक्ति जोर लगाने पर भी आगे एक इञ्च भी नहीं बढ़ रहे है। जो जनता स्वामी जी के प्रति नैराश्य का अनुभव करने लगी थी वह इस अपूर्व पराक्रम को देख कर मुक्तकण्ठ से स्वामी जी का जयघोष करने लगी। आश्चर्य से गाड़ी में बैठे हुए बैरिष्टर साहब ने पीछे मुड़ कर देखा तो अपने कहे हुए प्रश्न का ऐसा क्रियात्मक उत्तर पा कर गाड़ी से कूद कर भावावेश में श्री स्वामी जी के चरणों में लिपट गये और अपने अपराध की क्षमा याचना कराने लगे। स्वामी जी ने कहा, "भैया! यह शक्ति तो केवल मेरी निजी ब्रह्मचर्य रक्षा की है। यदि मेरे माता पिता और उनसे पहले का पीढ़ियों ने शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया होता तो इससे भी अधिक चमत्कार आप देख सकते थे।"

स्वामी दयानन्द के जीवन की इस घटना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यदि इस ओर ध्यान दिया जाये तो आज असम्भव जान पड़ने वाली बातें भी सम्भव हो सकती हैं।"

महर्षि दयानन्द ने वेद के इस मंत्र को अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिखाया—

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलितस्य पृष्ठे तपो ऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते॥ (अ० ११।५।२६)

अर्थात् ब्रह्मचारी प्राण, अपान व्यान, मेधा, यश, वीर्य आदि को धारण करता हुआ समुद्र के जल के ऊपर तपते हुए सूर्य के समान तप करता है। विद्या और व्रत में निष्णात् होकर ब्रह्मचारी अपने अपूर्व तपोबल और आश्चर्य जनक कृत्यों से संसार को चकित कर डालता है और संसार में सर्वत्र सुशोभित होता है।

अपने ब्रह्मचर्य बल से ही उन्होंने मृत्यु को भी पराभूत और परास्त किया। मृत्यु आती थी परन्तु ब्रह्मचारी दयानन्द ठोकर मार कर उसे परे हटाते थे। उन्होंने वेद की इस शिक्षा को भी सत्य सिद्ध कर दिखाया—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
(अथर्व० ११।५।१९)

ब्रह्मचर्य रूपी तप से देव मृत्यु को मार भगाते हैं।

महर्षि दयानन्द के अखण्ड ब्रह्मचर्य की गौरव गरिमा का गान करते हुए श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय "दयानन्द—ब्रह्मचर्य का पोषक" शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं—

"भारत की महिमा का मूल क्या था? ब्रह्मचर्य! हिन्दुओं की जिस गरीयसी प्रतिभा को देख कर प्राचीन यूनान और रोम आश्चर्यान्वित हो गये थे उस का हेतु क्या था? ब्रह्मचर्य! जो उपनिषदादि अनुपम और उपादेय ग्रंथमाला के रचियता थे, वे कौन थे? ब्रह्मचारी! रामायण और महाभारत के जिस अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मनुष्य मण्डली अवाक् रह रह जाती है, उसके सृष्टि कर्ता कौन थे? ब्रह्मचारी! गम्भीर विचार शीलता और तत्त्वानुसन्धान के अद्भुत् क्षेत्र स्वरूप सांख्य-मीमांसा की रचना किन्होंने की? ब्रह्मचारियों ने! पाणिनि का पुनरुद्धार, साधनपूर्वक भाषानुवादक, साहित्य विज्ञान के पथ का प्रचारक कौन था? एक ब्रह्मचारी! सुतराम देखा जाता है कि भारत भूमि का जो कुछ संबल, जो कुछ गौरव, जो कुछ प्रतिष्ठा थी उस सब के मूल में ब्रह्मचर्य ही विद्यमान था। अतः जब तक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान होता रहेगा, तब तक भारत के विलय होने की सम्भावना नहीं हो सकती, जब तक ब्रह्मचारी का अभ्युदय होता रहेगा, तब तक आर्य जाति के लिये निराश होने का कोई कारण नही है। यह निश्चित है कि यदि आर्यावर्त्त फिर जागेगा तो ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से जागेगा। यदि इन पद दलित परानुग्रह जीवी हिन्दुओं का पुनरुत्थान होगा तो ब्रह्मचारियों के द्वारा ही होगा। यदि आर्यों का प्रनष्ट गौरव फिर कभी वापस आकर चमकेगा तो ब्रह्म-

चर्य की ही महिमा से चमकेगा। क्योंकि बल वीर्य मेधा, धारण शक्ति, नीरोगता और शारीरिक पराक्रम जिस प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है, मनुष्य की आशा, उत्साह, अध्यवसाय, कष्ट सहिष्णुता, श्रम शीलता, तितीक्षा और अटल प्रतिज्ञा आदि का संचार और परिपुष्टि भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। जैसे दयानन्द अपने जीवन में निष्कलंक ब्रह्मचर्य का परिचय देकर अपनी विद्या, पाण्डित्य और प्रतिभा आदि के विषय में असाधारणत्व को प्रतिष्ठित कर गये हैं, वैसे ही वह अपने जीवन में ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च आसन पर स्थापित करके इस देश का महान् उपकार कर गये हैं।"

इसी शीर्षक में वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"वह बार बार कहा करते थे कि यदि इन मृत प्रायः हिन्दुओं को पुनर्जीवित करना है, हृतसर्वस्व आर्यवर्त्त के शिर को एक बार फिर गौरव मुकुट से मण्डित करना है, तो उसका उपाय ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। इसी लिये उन्होंने प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुद्धार के लिये विशेष प्रयत्न किया था और इसी लिये उन्होंने गुरुकुल के स्थापना की व्यवस्था की थी। दयानन्द जैसे स्वयं निष्कलंक ब्रह्मचारी थे और जैसा लाभ ब्रह्मचर्य के द्वारा उन्होंने स्वयं उपलब्ध किया, वैसे ही निष्कलंक ब्रह्मचारी वह अन्य साधारण मनुष्यों को बना वैसा ही लाभ उन्हें उपलब्ध कराना चाहते थे। इसी हेतु वे अपने देश वासियों से ब्रह्मचर्य धारण करने का बारम्बार साग्रह अनुरोध करते थे।"

आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रह कर जहां उन्होंने अपने जीवन में विलक्षण क्रान्ति की वहां उन्होंने अपने ओजस्वी विचारों से न केवल भारत में अपितु समस्त संसार में एक तहलका मचा दिया। यह उन के ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव था।

देशभक्त दयानन्द

महर्षि दयानन्द की देशभक्ति की प्रशंसा करते हुए श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए० लिखती हैं—

"सोते जगते, चलते फिरते वे (महर्षि दयानन्द) हर समय और हर प्रकार भारत माता की सेवा में लगे रहे और अन्ततोगत्वा उन्होंने अपना प्यारा जीवन अपने देश के लिये बलिदान कर दिया। यदि स्वामी दयानन्द जी जैसे महर्षि भारतवर्ष में पैदा न होते तो आज हम को महात्मा गांधी जी, महात्मा तिलक जी और ला० लाजपतराय जी जैसे कार्यकर्ता और भक्तों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता।"

सचमुच देश भक्ति महर्षि दयानन्द के रग रग और रोम रोम में कूट कूट कर भरी हुई थी। ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज की आलोचना करते हुए स्वामी जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं—

"जो कुछ ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ कुछ पाषाणादि मूर्तिपूजा को हटाया अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं। खान पान विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यवर्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। वेदादियों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।.....भला जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न-जल खाया पीया अब भी खाते पीते हैं अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना.....वृद्धिकारक काम क्यों कर हो सकता है?.....देखो! अपने देश के

बने हुए जूते को आफिस और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं इतना अन्य देशस्थ मनुष्य का नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहरते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत से लोगों ने उनकी नकल कर ली इससे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं..... इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।"

(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास)

कैसा उत्कट देश प्रेम है। इस उद्धरण में महर्षि का वेद प्रेम, ऋषि मुनियों के प्रति भक्ति तो प्रकट होती है परन्तु महर्षि की देश भक्ति की चरमसीमा तो यह है कि ऋषि के हृदय में अपने देश के जूते के लिए एक कसक, टीस और वेदना है। हो भी क्यों न थे जो सच्चे देश भक्त!

'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का उद्घोष करने वाले श्री बालगंगाधर लोकमान्य तिलक जब अभी कार्यक्षेत्र में भी नहीं आये थे और स्वराज्य के लिए प्रयत्न करने वाली कांग्रेस का जब जन्म भी न हुआ था उससे बहुत पूर्व महर्षि दयानंद ने स्वराज्य शब्द का उल्लेख अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में किया था—

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहना किन्तु आर्यवर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों से पादाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत मतांतर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।"

(सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास)

महर्षि दयानंद की प्रबल देशभक्ति का एक और उदाहरण देखिये—

महर्षि दयानंद ने कलकत्ते में कुछ दिन भाषण दिये थे। कभी कभी कलकत्ता के एक प्रमुख बिशप सभा की अध्यक्षता करते थे। वे ऋषि दयानंद के इस्लाम और ईसाइयत के सम्बंध में अगाध ज्ञान को देख कर विस्मित हो जाते थे। उन्हें इस बात पर आश्चर्य होता था कि अरबी और अंग्रेजी न जानते हुए भी उन धर्मों को इन्हें कितनी जानकारी है।

कलकत्ता के उस पादरी से तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक ने स्वामी जी की विलक्षण प्रतिभा की बात सुन कर उन से मिलने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने उन से दुभाषिये के द्वारा बात चीत की। इस बातचीत से ऋषि दयानद के हृदय की देशभक्ति पूर्ण प्रदीप्त भावना प्रकट होती है। लार्ड नार्थ ब्रुक ने इस बातचीत का विवरण इण्डिया आफिस को भेजते हुये लिखा था कि सरकार को इस 'विद्रोही फकीर' पर सतर्कता पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिये। इण्डिया आफिस को भेजे गये विवरण के अनुसार यह बातचीत निम्न प्रकार हुई थी—

वायसराय—मुझे बताया गया है कि आप अन्य धर्मों पर जो कटु प्रहार करते हैं उससे हिन्दुओं और मुसलमानों में आपके प्रतिविरोध भाव पैदा हो गया

गया है। क्या आपको यह भय है कि आपके विरोधी आप पर कोई आक्रमण करेंगे ? विशेष रूप से मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप को हमारी सरकार की ओर से किसी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता है ?

ऋषि दयानंद—मुझे इस राज्य में अपने विश्वास के अनुसार प्रचार करने की पूरी स्वाधीनता है। मुझे अपने ऊपर किसी के द्वारा आक्रमण का किसी प्रकार का भय नहीं है।

वायसराय—पण्डित दयानंद ! यदि ऐसी बात है तो क्या आप इस देश को ब्रिटिश शासन द्वारा दिये गये शांति और सुख के वरदान के सम्बन्ध में अपनी प्रशंसा के कुछ उद्गार प्रकट करेंगे और अपने उपदेशों के साथ की जाने वाली प्रार्थनाओं के समय भारत पर ब्रिटिश शासन की स्थिरता बने रहने की चर्चा करेंगे ?

दयानंद—मैं किसी भी स्थिति में इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों के विकास के लिये और संसार के राष्ट्रों में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिये भारतवर्ष शीघ्र स्वाधीनता प्राप्त करे।

"मैं प्रतिदिन प्रातः सायं भगवान् से प्रार्थना करते हुए यह मांगता हूँ कि वह दयालु भगवान् मेरे देश को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त करें।"

लार्ड नार्थब्रुक ने तो इस स्पष्ट और निर्भीक उत्तर की कतई कल्पना भी नहीं की थी। उसने एक दम बातचीत समाप्त कर दी। इस बातचीत ने वायसराय के हृदय में ऋषि दयानन्द के उद्देश्यों तथा कार्यों के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर दिया तभी उन्होंने सरकार को इस 'विद्रोही फकीर' से सावधान रहने की सलाह दी थी।

(दैनिक हिन्दुस्तान १३ मई १८६१)

महर्षि दयानंद ही स्वदेशी प्रचार के सबसे पहले पैगम्बर थे। यह बात उनके ग्रंथों के उद्धरणों से भली भाँति स्पष्ट है। लीजिये कुछ उद्धरणों का अवलोकन कीजिये—

'इषे पिन्वस्वोर्जे' (यजु०) मंत्र की व्याख्या में ऋषि लिखते हैं—

"अन्य देशवासी राजा देश में कभी न हो, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।" (आर्याभिविनय)

'ऋजुनीति नो वरुणः' इस ऋग्वेद मंत्र की व्याख्या में ऋषि ने लिखा–"आप 'वरुणः' सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो सो हम को वर राज्य, वर विद्या, वरनीति देओ।.....हे कृपासिन्धु भगवन् ! हम पर सहाय करो जिस से सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।" (आर्याभिविनय)

"जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।" (सत्यार्थ प्रकाश दशम समुल्लास)

महर्षि दयानंद से पूर्व भी अनेक सुधारक हुए परन्तु महर्षि की देशभक्ति और राष्ट्रीयता विलअद्भुत और निराली थी। महर्षि की मातृ भाषा गुजराती थी और संस्कृत के वे धुरंधर विद्वान् थे परंतु उन्होंने अपने सारे ग्रंथ भारत की भावी राष्ट्र भाषा हिन्दी में, जिसको उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा था ही लिखे। यह है ऋषि की राष्ट्रीयता !

ऋषि दयानंद को भारत की संस्कृत भाषा से कैसा प्रेम था इस सम्बन्ध में एक रोचक और महत्वपूर्ण घटना पढ़िये—

महर्षि के पाण्डित्य, अकाट्य यौक्तिक शक्ति और अद्भुत प्रतिभा का परिचय पाकर एक बार केशवचन्द्र सेन ने कहा, "शोक है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान् अंग्रेजी नहीं जानता, अन्यथा इंगलैण्ड जाते समय वह मेरा इच्छानुकूल साथी होता।" स्वामी जी ने भी हंसकर कहा, "शोक है कि ब्राह्मसमाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वे समझते ही नहीं।"

अब ऋषि की देशभक्ति की कुछ अन्य घटनाओं का रसास्वादन कीजिये और महर्षि की दशभक्ति

की दाद दीजिये—

सोरों की घटना है। एक दिन गंगा तीर पर एक साधु कमण्डल आदि प्रक्षालन करके वस्त्र धोने में प्रवृत्त था। वह था घुटा हुआ मायावादी। दैव योग से भ्रमण करते हुए स्वामी जी भी वहां जा पहुँचे। उसने स्वामी जी को सम्बोधन करके कहा —"इतने त्यागी परमहंस—अवधूत—होकर आप खण्डन मण्डन रूप प्रवृत्ति के जटिल जाल में क्यों उलझ रहे हो? निर्लेप होकर क्यों नहीं विचरते?" महाराज मुस्करा कर बोले, "हम तो यह सब कुछ करते हुए भी निर्लेप हैं। अब रही प्रवृत्ति की बात सो शास्त्रीय प्रवृत्ति प्रजा प्रेम से प्रेरित होकर सब ही को करना उचित है।"

साधु जी ने कहा, "प्रजा प्रेम का नया बखेड़ा क्यों डालते हो? आत्मा से प्रेम करो, जिस के लिये कि श्रुति पुकार रही है।" उस समय उसने मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य के सम्वाद के वाक्य भी बोले। तब स्वामी जी ने पूछा, "महात्मन्! आप किस से प्रेम करते हैं?" साधु बोला, "आत्मा से।" स्वामी जी ने पूछा, वह प्रेममय आत्मा कहां है?" साधु ने कहा, "वह राजा से लेकर रङ्कपर्यन्त और हस्ती से लेकर कीट तक सर्वत्र ऊंच नीच में परिपूर्ण है।" स्वामी जी बोले, "जो आत्मा सब में रमा हुआ है क्या आप सचमुच उससे प्रेम करते हैं?" साधु ने उत्तर दिया, "तो क्या हमने मिथ्या वचन बोला है?" तत्पश्चात् स्वामी जी ने गम्भीरता-पूर्वक कहा, "नहीं, आप उस महानात्मा से प्रेम नहीं करते। आप को अपनी भिक्षा की चिंता है, अपने वस्त्र उज्ज्वल बनाने का ध्यान है, अपने भरण पोषण का विचार है। क्या आप ने कभी उन बंधुओं का भी चिंतन किया है जो आप के देश में लाखों की संख्या में भूख की चिता पर पड़े हुए रात दिन, बारहों महीने, भीतर ही भीतर जल कर राख हो रहे हैं? सहस्रों मनुष्य आपके देश में ऐसे हैं जिन्हें आजीवन उदर भरकर खाने को अन्न नहीं जुड़ता। उनके तन पर सड़े गले मैले कुचैले चिथड़े लिपट रहे हैं। लाखों निर्धन दीन ग्रामीण भेड़ों और भैंसों की भाँति गंदे कीचड़ और कूड़े के ढेरों से घिरे हुए सड़े गले झोंपड़ों में लौटते हुए जीवन के दिन काट रहे हैं। ऐसे कितने ही दीन दुखिया भारतवासी हैं, जिनकी सार सम्भार कोई भूले भटके भी नहीं लेता। बहुतेरे कुसमय में राज-मार्ग में पड़े पड़े पांव पीट कर मर जाते हैं परन्तु उनकी बात तक पूछने वाला कोई नहीं मिलता। महात्मन्! यदि आत्मा से और विराट् आत्मा से प्रेम करना है तो अपने अङ्गों की भांति सब को अपनाना होगा। अपनी क्षुधा-निवृत्ति की तरह उन की भी चिंता करनी पड़ेगी। सच्चा परमात्मा प्रेमी किसी से घृणा नहीं करता। वह ऊंच नीच को भेद भावना को त्याग देता है। उतने ही पुरुषार्थ से दूसरों के दुःख निवारण करता है, कष्ट क्लेश काटता है, जितने से वह अपने करता है। ज्ञानी जन ही वास्तव में आत्मप्रेमी कहलाने के अधिकारी हैं।" वह साधु यह सुन कर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा, अपने अपराध की क्षमा कराने लगा।"

(श्री मद्दयानंद प्रकाश)

स्वामी जी संवत् १९३५ के कुम्भ पर प्रचारार्थ पधारे। स्वामी जी के सिंहनाद से चहुँ ओर एक खलबली मच गई। स्वामी जी को साम्प्रदायों के खण्ड और आडम्बर देख कर देश की अधोगति पर दया आती थी। एक दिन की बात है स्वामी जी बैठे बैठे लेट गये और फिर उठकर टहलने लगे। एक भक्त ने पूछा, "महाराज! क्या कोई शारीरिक कष्ट है?" स्वामी जी ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा—"भाई! इससे अधिक हृदय-विदारक दारुण वेदना और क्या हो सकती है कि विधवाओं की दुःख भरी आहों से, अनाथों के निरंतर आर्त्तनाद से और गोवध से, इस देश का सर्वनाश हो रहा है।" कैसी कसक है?

हरिद्वार में ही एक दिन एक पुरुष ने स्वामी जी से कहा कि यदि आप अपने ग्रंथों का भिन्न २ भाषाओं में अनुवाद कर दें तो जो लोग आर्य भाषा नहीं जानते उन्हें वैदिक धर्म के जानने में बड़ी सुविधा हो। ऋषि ने उत्तर दिया कि भारतवासियों

को आर्य भाषा का सीख लेना कुछ कठिन नहीं है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा के सीखने का परिश्रम नहीं करता ससे उऔर क्या आशा की जा सकती है? महाराज का विचार था कि सारे भारत की एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिये और वे आर्य भाषा (हिन्दी) को ही इस योग्य समझते थे।

महाराज दानापुर में वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार कर रहे थे। एक रात्रि को वे आधी रात के समय जाग पड़े और उठ कर इधर उधर घूमने लगे। उनके पैरों की आहट पाकर एक कर्मचारी की आंख भी खुल गई। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि स्वामी जी किसी बड़ी व्याकुलता और घबराहट में घूम रहे हैं। उसने विनय पूर्वक निवेदन किया, "भगवन्! यदि कोई वेदना है तो आज्ञा दीजिए, सेवक औषधोपचार करने के लिए उपस्थित है। यदि आदेश हो तो वैद्य को भी बुला लाऊं।"

उस समय स्वामी जी ने दीर्घ सांस छोड़ते हुये कहा, "भाई! यह बड़े वेग से बढ़ती हुई वेदना, आपके औषधोपचार से शमन होने वाली नहीं है। यह वेदना भारत के परिश्रमी लोगों की दुर्दशा के चिन्तन से चित्त में अभी उत्पन्न हुई है। ईसाई लोग कोल-भील आदि भारत वासियों को ईसाई बनाने के लिए अपनी कल्पनाओं के ताने बाने तन रहे हैं। रुपया भी पानी की भांति बहाने को तत्पर है। परन्तु इधर आर्यजाति के भी पुरोहित हैं जो कुम्भकर्ण की नींद पडे सोते हैं। उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। यही पीड़ा है जो मुझे सता रही है।" कैसी विमल देश भक्ति है!

एक टीस जिगर में उठती है,
एक दर्द सा दिल में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं,
जब सारा आलम सोता है॥

यह उक्ति महर्षि की जीवन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है।

संवत् १९३८ में महाराज बम्बई में विराजमान थे। उन्हीं दिनों पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम् भारत पधारे। एक दिन वे स्वामी जी से मिलने के लिए आये। बहुत देर तक वार्तालाप करने के पश्चात् मोनियर महाशय ने कहा, "आपके विचार परिमार्जित और अत्युच्च हैं। यूरोप वासियों में भी इन विचारों का प्रचार होना चाहिये। यदि आप उस महाद्वीप की यात्रा करना स्वीकार करें तो मैं आप के व्यय आदि का भार अपने ऊपर लेता हूं।"

स्वामी जी ने अतिथि को उसकी उदारता के लिए धन्यवाद देते हुये कहा, "जिस भारत-भू-खण्ड में मैं रहता हूं वहां अविद्या अन्धकार घोरतमरूप धारण किये बैठा है। इस देश के वासी दिन पर दिन दुःखी और दरिद्र होते चले जाते हैं। यहां के समाज में कुरीतियों और रूढ़ियों की भरमार है। ऐसे ही कारणों से मैं पहले इस देश का सुधार करना अपना मुख्य कर्तव्य समझता हूं। दूसरे, विदेश जाने के लिये वहां की भाषा का ज्ञान आवश्यक है। जितना समय विदेशी भाषा सीखने में लगेगा उससे यहीं अधिक कार्य कर सकूंगा। तीसरे, जिस देह के इतने लोग विरोधी हैं उसका भी अब अधिक भरोसा नहीं है। थोड़े से समय में यदि इस शरीर से इस देश का लाभ और कल्याण हो जाये तो बहुत अच्छा है।"

ऋषिवर स्वयं स्वदेशी वस्त्र पहनते थे और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते थे और अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को भी स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की प्रेरणा देते थे। ऋषि जीवन की दो घटनाओं से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

उन दिनों महाराज अलीगढ़ में विराजमान थे। एक दिन छावली निवासी ठाकुर उघोसिंह अपने पिता और ठाकुर भूपालसिंह जी के साथ स्वामी जी के दर्शनों के लिये आये। उस दिन ऊघोसिंह जी के वस्त्र नये ढंग के बने हुए और सब के सब विलायती कपड़े के थे। ऊघोसिंह ने कुछ समय तक छलेसर की पाठशाला में भी अध्ययन किया था इसलिये स्वामी जी उन्हें भली प्रकार जानते थे। स्वामी जी ने प्रेम भरे शब्दों में उस से कहा,—"ऊधव! देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के कपड़े के बने वस्त्र पहरते हैं। उनका जाति बिरादरी में कितना

मान है। क्या तुम इस विदेशी कपड़े से बने नये वेष से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक आदर के पात्र हो गये हो ? ऊधव ! अपने ही देश की वस्तुओं को अपनाने में शोभा है।"

स्वामी जी के इस उपदेश से प्रभावित होकर ऊधोसिंह जी ने घर जाकर वे विदेशी वस्त्र उतार दिये और पुराने ढंग के स्वदेशी वस्त्र पहन लिये।

एक बार स्वामी जी के एक भक्त ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम से महाराज को चाकू से सेव काट कर दिया। चाकू राजर्स का था। स्वामी जी की दृष्टि उस पर पड़ गई, बोले, "चाकू तो सुन्दर है, कितने का है ?" भक्त ने गर्व से कहा, "महाराज ! यह विलायती राजर्स का चाकू है इसका मूल्य १।) है।" स्वामी जी ने पूछा, "क्या यहां भी चाकू बनते हैं ?" भक्त ने कहा, "हां महाराज !" ऋषि ने पुनः पूछा कितने का मिल जाता है ?" भक्त ने कहा, "छः पैसे में।" स्वामी जी ने अगला प्रश्न किया, "क्या वह चाकू सेव काट सकता है और इसी प्रकार के अन्य काम कर सकता है।" भक्त ने कहा, "हां महाराज !" तब देश भक्त दयानन्द ने कुछ क्रुद्ध होकर घृणात्मक मुद्रा में कहना प्रारम्भ किया, "जब अपने देश का बना छः पैसे का चाकू यही काम कर सकता है तो तुम ने सवा रुपये का विदेशी चाकू मोल लेकर क्यों अपने देश का धन नष्ट किया।" यह है स्वामी जी का देश प्रेम !

अन्त में हम स्वामी जी के देशप्रेम को प्रकट करने वाले संदर्भ को उन्हीं के शब्दों में उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। स्वदेश की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं—

"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यहा सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे। जितने भूगोल में देश हैं वे इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूंठी है परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिस को लोह रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास)

निर्भीक दयानन्द

महर्षि दयानंद की मृत्यु के पश्चात् मैडम ब्लैवेस्टकी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा था—

"जन समूह के उबलते हुए क्रोध के सामने कोई संगमरमर की मूर्ति भी स्वामी जी से अधिक अडिग नहीं हो सकती। एक बार हमने उन्हें काम करते देखा था। उन्होंने अपने सभी विश्वासी अनुयायियों को यह कहकर अलग हटा दिया कि तुम्हें हमारी रक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भीड़ के सामने वे अकेले ही खड़े हो गये। लोग उतावले हो रहे थे, क्रुद्ध सिंह के समान वे स्वामी जी पर टूट पड़ने को तैयार थे। किन्तु स्वामी जी की धीरता ज्यों का त्यों बनी रही।...यह बिल्कुल सही बात है कि शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उन से बड़ा दार्शनिक, उन से अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उन से अधिक निर्भीक रहा हो।"

(Renaissance of Hinduism)

भारत का यह आध्यात्मिक योद्धा और शक्ति का पुञ्ज निर्भय था। उन्होंने एक बार कहा था, "मैं परमात्मा के अतिरिक्त किसी से नहीं डरता।"

जब महर्षि ने जोधपुर में महाराज को नन्ही जान वेश्या के साथ देखा तो वे सिंहनाद करते हुए गर्ज कर बोले—"सिंहों के आसन पर कुतिया का राज्य। इन कुतियों से कुत्ते ही उत्पन्न होंगे।" एक उर्दू के कवि ने क्या खूब कहा है—

इस तरह का हमने ऐसा रहनुमा देखा नहीं।
यूं निडर यूं बेखतर यूं पेशवा देखा नहीं॥

स्वामी जी मिर्जापुर में प्रचार कर रहे थे। एक दिन पादरी जे० जे० लूकस ने उन से प्रश्न किया कि यदि आप को तोप के मुख पर रखकर आप से

कहा जाये कि यदि तुम मूर्ति को मस्तक नहीं नवाओगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायेगा, तो आप क्या कहेंगे ? स्वामी जी ने उत्तर दिया था कि मैं कहूंगा कि उड़ा दो। कितनी निडरता है ! और हो भी क्यों न ?

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशो ऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्,
ऐते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥

धैर्य जिस का पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति गृहस्था पत्नी है, सत्य पुत्र है, दया बहन है और मन का संयम भ्राता है, भूमि ही शय्या है, दिशाएं ही वस्त्र हैं, ज्ञानरस ही भोजन है ऐसे योगी को संसार में भय कहां ?

लीजिये अब आप महर्षि दयानंद की निर्भीकता सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण और रोंगटे खड़े कर देने वाली घटनाएं पढ़िये और स्वयं भी निर्भय बनने का प्रयत्न कीजिये—

महाराज काश्मीर ने स्वामी जी को रियासत में आने का निमन्त्रण भेजा परन्तु साथ ही यह भी कहला भेजा कि यहां आकर मूर्ति पूजा का खण्डन न करें। स्वामी जी ने उत्तर में कहला भेजा पहले तो मुझे आने का अवकाश ही नहीं है परन्तु मुझे अवकाश मिला और मैं आया तो सब से पहला व्याख्यान मूर्ति पूजा पर ही दूंगा। यह है ऋषि की निर्भीकता।

महाराज जसवन्त सिंह जी ने ऋषिवर को जोधपुर आमन्त्रित किया। जब स्वामी जी महाराज वहां गये तो प्रतिदिन सायंकाल ४ से ६ बजे तक वैदिक धर्म मण्डन तथा ईसाई आदि मतों का खंडन किया करते थे। नित्य पांच सहस्र के लगभग उपस्थिति होती थी। एक दिन स्वामी जी ईसाई मत के विषय में कुछ कह रहे थे उस समय फैजुल्ला खां लेट मिनिस्टर के भतीजे मोहम्मद हुसेन ने हाथ में तलवार लेकर बल्कि मूठ पर हाथ धर कर कहा, "स्वामी जी ! हमारे मजहब के सम्बन्ध में कुछ मत कहना।" उस समय निर्भय दयानन्द ने उत्तर दिया कि मैं ईसाई मत पर बोल रहा हूं इसको पूरा करके तुम्हारे मोहम्मद साहेब की पोल और इस्लाम मजहब की धज्जियां उड़ाऊंगा।" फिर क्या था थोड़ी ही देर में जोमन, आसमान व सातों आसमानों तक की व्याख्या की गई। उस समय फैजुल्ला खां ने अपने भतीजे को खूब डांटा और कहा कि अब इस का क्या उत्तर देता है। वहाँ से मोहम्मद हुसेन का भागना कठिन हो गया। पता नहीं हुल्लड़ में किस समय भाग गया परन्तु निर्भीक दयानंद उसी प्रकार गर्जते रहे।

जोधपुर की ही एक और घटना सुनिये—

स्वामी जी प्रातःकाल वायु सेवनार्थ रातानाड़ा के पहाड़ पर जाया करते थे और वहीं योगाभ्यास आदि किया करते थे। उस पहाड़ पर बहुधा हिंसक पशु रहते थे। अतः महाराज ने एक सवार स्वामी जी के साथ आने जाने के लिये नियत कर दिया। जिस समय स्वामी जी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने उस सवार को अपने साथ जाने से रोक दिया और कहा जो परमात्मा प्राणिमात्र की रक्षा करता है वही मेरी रक्षा करेगा। तुम्हारे रक्षा करने से मैं रक्षित नहीं रहूंगा। मुझे परमात्मा ने जो बाहुबल दिया है, वही पर्याप्त है, मैं उसी का भरोसा करता हूं, दूसरों के बल का सहारा मैं नहीं करता।

मेरठ नगर में स्वामी जी ने मृतकश्राद्ध खण्डन पर एक व्याख्यान दिया। इस से वहां के ब्राह्मण वर्ग में खलबली मच गई। व्याख्यान समाप्ति पर स्वामी जी को जिस मार्ग से जाना था वे लोग लाठियां लेकर उस स्थान पर बैठ गये और कहने लगे—"आज दयानन्द इधर से निकले तो सही हम उसे जीता न छोड़ेंगे।"

स्वामी जी के भक्तों को भी इसका भेद मिल गया। व्याख्यान के पश्चात् जब स्वामी जी डेरे पर जाने लगे तो भक्तों ने प्रार्थना की, "भगवन् ! कुछ देर ठहर जाइये। पहले प्रबन्ध कर लेने दीजिये। आज कुछ उपद्रवी लोग मार्ग में लट्ठ लिये बैठे हैं और आपके ऊपर आक्रमण करना चाहते हैं।"

स्वामी जी ने हंसते हुए कहा, "वे लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। ऐसी घटनाओं से मैं सर्वथा निर्भय हूं। मैंने एक सभ्य को समय दे रक्खा है, इसलिये ठहर नहीं सकता।"

स्वामी जी महाराज उस सारी गली में गम्भीर गति से चलते हुए उस के दूसरे छोर तक पहुंच गये परन्तु किसी को 'ओ' तक कहने का साहस नहीं हुआ। वे उपद्रवी एक दूसरे का मुंह ताकते ही रह गये।

जब महाराज काशी गये तो वहां को पण्डित मण्डली को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। पण्डितों में शास्त्रार्थ का दम तो कहां था परन्तु जैसे तैसे अपनी लाज बचाने के उपाय सोचे जाने लगे। स्वामी जी को पीड़ा देने के लिये अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे जाने लगे। जब भक्त बलदेव को उपद्रव का आभास मिला तो उसने स्वामी जी से निवेदन किया, "भगवन्! आज आप के स्थान पर सहस्रों मनुष्यों का जमघटा लगेगा। उस में केवल हुल्लड़ मचाने के लिये भी कुछ उदण्डजन आयेंगे। यदि फर्रुखाबाद होता तो ऐसे समय में आपके समीप भी २०-२५ सेवक बैठ जाते।"

महाराज ने कहा, "बलदेव! कोई चिन्ता की बात नहीं। अन्धकार की तमोराशि को जीतने के लिये सूर्य अकेला ही पर्याप्त होता है। एक मैं—आत्मा हूं, एक परमात्मा है और एक ही धर्म है। फिर डर और भय किस का? सचमुच जो लोग 'ब्रह्म वर्यं ममान्तरम्। (ऋ० ६।७५।१९) ईश्वर मेरा कवच है, इस वैदिक आदर्श को हृदयाङ्गम कर लेता है, जो हर समय अपने आपको ईश्वर की गोद में अनुभव करता है उसे भय कहां?

एक बार स्वामी जी सोरों में उपदेश दे रहे थे। बीसियों व्यक्ति ध्यान पूर्वक श्रवण कर रहे थे। इतने में ही कन्धे पर एक मोटा डण्डा रक्खे हुए एक हट्टा कट्टा पहलवान सा जाट वहां आया और लोगों को चीरता हुआ स्वामी जी की ओर ही बढ़ा। उस का चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। होठ चबाता और दांत पीसता हुआ वह स्वामी जी से बोला, "अरे साधु तू ठाकुर पूजा का खण्डन करता है और श्री गंगा मैया को निन्दा करता है, देवताओं के विरुद्ध बोलता है। झटपट बता यह सोटा तेरे कहां मारूं।" ये वचन सुन कर सारी सभा विचलित हो गई परन्तु स्वामी जी की गम्भीरता में तनिक भी अन्तर नहीं आया उन्होंने शान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा, "भद्र! यदि तेरे विचार में मेरा धर्म प्रचार करना कोई अपराध है, तो इस अपराध का प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है। यदि तू अपराधी को दण्ड देना चाहता है तो यह सोटा मेरे सिर पर मार दे।" इन वाक्यों को कहते हुए स्वामी जी ने अपनी नेत्र ज्योति उस की आंखों में डाल कर उसे देखा तो वह श्री चरणों में गिर पड़ा। और अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करने लगा। यहां क्या देर थी। स्वामी जी ने आश्वासन देते हुए कहा, "तुम ने कोई अपराध नहीं किया। मुझे मारते तो भी कोई बात थी।"

कर्णवास में कर्णसिंह स्वामी जी से चिढ़ गये और उन्हें मारने के उपाय सोचने लगे। एक रात्रि को उसने अपने तीन नौकरों को अति तीक्ष्ण तलवारें देकर स्वामी जी के वध के लिए भेजा। आधी रात का समय था। चहुं ओर सन्नाटा था। स्वामी जी ध्यानारूढ़ थे और पास ही कैथल सिंह गाढ़ निद्रा में पड़ा खर्राटे ले रहा था। कर्णसिंह के नौकर दो बार तो लौट गये परन्तु कर्णसिंह ने उन्हें डांट फटकार कर तीसरी बार पुनः भेजा। उस समय स्वामी जी समाधि से उतर आये थे और कर्णसिंह ने अपने नौकरों को जो डांट डपट की थी उसे भी सुन लिया था। जब आतताई गिरते पड़ते स्वामी जी की कुटी के पास पहुँचे तो स्वामी जी ने बलपूर्वक हुंकार किया और भूमि पर एक लात भी मारी। स्वामी जी की हुंकार सुन कर वे मूर्छित होकर गिर पड़े और तलवारें भी हाथ से गिर गई।

महाराज की सिंह गर्जना सुन कर कैथलसिंह की भी आंख खुल गई। वह कांपता हुआ स्वामी जी से बोला, "वे दुष्टजन कहीं फिर न आ जायें

इसलिये चलिये किसी ऊंचे स्थान पर चल कर रात्रि व्यतीत कर लें।"

तब स्वामी जी ने

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
(गीता २।२३)

(अर्थात् इस आत्मा को शास्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता)

गीता का यह श्लोक पढ़ते हुए कहा—"कैयल सिंह ! संन्यासी जन अपनी रक्षार्थ गढ़ और गुहा का आश्रय नहीं ढूंढा करते; हमारा रक्षक तो केवल एक भक्तवत्सल भगवान् ही है। तुम्हें घबराना नहीं चाहिये। हम चाहें तो उनके ही शास्त्रों को छीन कर उन्हें सीधा कर सकते हैं।"

स्वामी जी कभी कभी अपने जीवन की घटनाएं भी सुनाया करते थे। फरुखाबाद में पंजाब के एक नगर का वर्णन करते हुए महाराज ने निम्न घटना सुनाई—

"वहां मैंने विज्ञापनों द्वारा घोषणा कर दी कि कल ईसाइयों का खण्डन किया जायेगा। व्याख्यान के समय बहुत से देशी और योरुपीय ईसाई तथा पादरी महाशय आकर बैठ गये। उस समय प्रधान सेनापति लार्ड राबर्टस महोदय भी वहां उपस्थित थे। उस दिन मैंने अपने सारे सामर्थ्य से ईसाई मत की समालोचना की। उस पर आक्षेप किये। बाइबल में परस्पर विरोध दिखाया परन्तु रूष्ट होना तो दूर प्रधान सेनापति अति प्रसन्न हुए। व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने पास आकर मुझ से हाथ मिलाया और कहा कि निस्संदेह आप निर्भय पुरुष हैं। हम लोगों की उपस्थित में हमारे धर्म का खण्डन करते आप तनिक भी नहीं हिचके, तो भला दूसरों से आप को कब भय हो सकता है।"

मनुष्यों की तो बात ही क्या स्वामी जी को हिंसक पशुओं से भी भय नहीं था। वे सिंह और भालुओं से आपूर वनों में निर्भय होकर चले जाते थे। वे शिव के समान सर्पों की माला धारण कर सकते थे और मगरमच्छों के साथ सो सकते थे।

कानपुर की घटना है। एक दिन स्वामी जी गंगा में लेटे पड़े थे उनका आधा शरीर पानी के अन्दर था आधा बाहर। उसी समय एक बड़ा भारी मगर उनके अति निकट आ निकला। भक्त प्यारे लाल जी स्वामी जी को संकट के समीप देख भागते हुए निकट आये और जोर से चिल्लाने लगे, "स्वामी जी ! झटपट पानी से बाहर निकल जाइए, एक बढ़ा भारी मगर निकल आया है।" महाराज ने सुना परन्तु वे गम्भीरता पूर्वक ऐसे ही लेटे रहे और बोले, "जब हम इसे कुछ नहीं कहते तो यह भी हमें कुछ नहीं कहेगा।" और कहता भी क्यों ?

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् ॥

जो मुनि सर्व प्राणियों को अभयदान देकर विचरता है उसको भी किसी से कभी कोई भय नहीं होता।

स्वामी जी की निर्भीकता के सम्बन्ध में एक घटना प्रसिद्ध सनातनधर्मी संन्यासी स्वामी गुरु-चरणदास जी ने सुनाई थी। पाठकों की ज्ञान वृद्धि के लिए मैं उसे यहां अंकित करता हूं—

एक बार एक साधु ने ऋषि दयानन्द से पूछा "आप भी खाते है, हम भी खाते हैं, आप भी पढ़ते हैं, हम भी पढ़ते हैं, आप भी वस्त्र धारण करते हैं, हम भी वस्त्र पहनते हैं, आप भी उपदेश देते है हम भी उपदेश देते हैं परन्तु आपके समान हमारा प्रभाव नहीं पड़ता। आप में और हम में क्या अन्तर है ?" सायं काल एक सभा होनी थी जिसमें अनेक राजा और महाराजा आमन्त्रित थे। स्वामी जी ने कहा, "आपके प्रश्न का उत्तर सभा में मिल जायेगा।" सायंकाल सभा हुई। अनेक व्यक्ति और सन्यासी उस सभा में बोले। जब महर्षि दयानन्द बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अन्य वक्ताओं की भांति आदर के योग्य मातृ शक्ति और उपस्थित सभ्यो ! नहीं कहा। इसी प्रकार का कोई अन्य सम्बोधन भी

उन्होंने नहीं किया अपितु वे गर्ज कर बोले, "ओ अभिमान के पुतलो! ओ शोहरत के पुजारियो! ओ मद्यमांस का सेवन करने वालो! विषय वासना के कीड़ो! विषय लोलुप विद्वानो!" और फिर अपना व्याख्यान आरम्भ किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि साधु को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।

महर्षि की निर्भीकता देखने के लिए तनिक इतिहास के पन्ने पलटिये। भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में नामधारी सिखों का विशेष स्थान रहा है। जिस समय अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध एक शब्द कहना भी कठिन था उस समय श्री सत्गुरु रामसिंह जी और उन के नामधारी सिखों ने अंग्रेजी राज्य से असहयोग करके नाना प्रकार के कष्ट सहन किये और यातनायें झेली। जहां उन्होंने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये त्याग और बलिदान किये वहां भारत की आत्मा गो की रक्षा के लिये भी वे पीछे नहीं रहे। अमृतसर के पवित्र सरोवर के निकट बने बूचड़खाने को तोड़ने के अपराध में ५ अगस्त १९७१ को ३ तथा २६ नवम्बर १८७१ को २ नामधारी सिख भगवान्नाम कीर्तन करते हुए फांसी के तख्ते पर झूले।

जब नामधारी सिखों ने रामकोट और मालेर कोटला में होने वाले अत्याचारों को देखा तो बूचड़खानों को तोड़ दिया। गोहत्यारों से संघर्ष कर उन्हें पराजित कर दिया। इस संघर्ष में कितने ही नामधारी गोभक्त मौत के घाट उतारे गये। अंग्रेजी सरकार की आज्ञा से १७ जनवरी १८७२ को ४९ तथा १८ जनवरी को १६ नामधारी सिख मालेरकोटला के निकट बामा, जींद और पटियाला के राजाओं द्वारा भेजी हुई तोपों से उड़ाये गये।

जिस गौरक्षा के कारण इन नामधारी सिखों को तोपों से उड़ाया गया था उसी गोरक्षा के प्रश्न को लेकर १८७६ में हम महर्षि दयानन्द को कार्य क्षेत्र में देखते हैं। कैसी निर्भीकता है?

श्रीमती ऐनी बीसेन्ट ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

"मेरा यह जबरदस्त विश्वास है कि स्वामी दयानन्द भारत का सच्चा सपूत था उसमें गजब की निडरता और भारत के लिए अगाध भक्ति का समुद्र ठाठें मारता था। महर्षि का शानदार काम उनकी याद को सदा तरोताजा रखेगा।"

अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है—

अभयं मित्रादभयंममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभय दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(हमें मित्र से भय न हो, शत्रु से भय न हो, ज्ञानी से भय न हो, रात्रि में भय न हो दिन में भय न हो, सारी दिशाएं मेरी मित्र हों।)

इस मन्त्र के अनुसार उनमें निर्भयता कूटकूट कर भरी हुई थी। उन्हें मित्र, शत्रु, राजा और महाराज, विद्वान् और मूर्ख, किसी से कोई भय नहीं था। लोगों ने ऋषि को तंग करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी थी। उनके ऊपर ईंट और पत्थर फेंके गये, तलवारों के प्रहार किये गये, गाली गलौच की बौछाड़ की गई, परन्तु ऋषिवर कभी भी भयभीत नहीं हुये। सच्च है—

किनारों से जो टक्कर ले उसे तूफान कहते है।
जो तूफानों से टकराये उसे इन्सान कहते हैं॥

अभी इस चित्र का एक पहलू शेष है। संसार में सब से भयंकर वस्तु क्या है? मृत्यु। जिसका नाम सुन कर बड़े बड़े योद्धाओं और विजेताओं के छक्के छूट जाते हैं वह क्या है? मृत्यु। जिसका नाम सुन कर बड़े बड़े सुधारक भी घबरा जाते हैं वह क्या है? मृत्यु। जब महान् विजेता नेपोलियन बोना पार्ट को मृत्यु दण्ड की आज्ञा हुई तो वह कांप गया। जब ईसा को फांसी पर चढ़ाया गया तो उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े, "हे पिता! क्या तू मुझे भूल गया।" मोहम्मद साहब भी मृत्यु के समय अत्यन्त दुःखी थे। परन्तु महर्षि दयानन्द के मुख मण्डल पर आभा और कान्ति थी, एक अद्भुत आभा, लावण्य, शक्ति, ओज और तेज था। गीता के शब्दों में—

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

आकाश में एक साथ सहस्रों सूर्यों के उदय होने से जैसा प्रकाश होता है उस महात्मा के मुखमण्डल पर भी ऐसी ही आभा और ज्योति थी। जब महर्षि की मृत्यु का समय आया तो मृत्यु उनके चेहरे की मुस्कान अह्लादकता और शांति को न छीन सकी। मृत्यु को सामने खड़ी देख तो वे प्रसन्न हो रहे थे। एक कवि के शब्दों में—

जा मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द ।
कब मरिये कब पाइये पूर्ण परमानन्द ॥

उन्होंने हंसते हंसते मृत्यु का आलिङ्गन किया। मृत्यु के समय महर्षि दयानन्द के शब्द अपूर्व, अद्भुत और निराले थे। उन्होंने कहा—

हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, सचमुच तेरी यही इच्छा है। परमात्मदेव ! तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा, मेरे परमेश्वर ! तू ने अच्छी लीला की।"

———

डिक्लेरेशन

१. प्रकाशन स्थान...	...	दिल्ली
२. प्रकाशन की अवधि...		मासिक
३. मुद्रक का नाम...	...	विजयकुमार
राष्ट्रीयता...	...	भारतीय
पता...	...	नई सड़क दिल्ली
४. प्रकाशक का नाम...		विजयकुमार
राष्ट्रीयता...	...	भारतीय
पता...	...	नई सड़क दिल्ली
५. सम्पादक का नाम	...	विजयकुमार
राष्ट्रीयता...	...	भारतीय
पता...	...	नई सड़क दिल्ली
६. मालिक...		M/s गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली

मैं विजयकुमार यह घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

ता २८-२-१९६१ ह० विजयकुमार

महात्मा आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

पृष्ठ संख्या २०० मूल्य १) २५

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन	२)५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्दगायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
भगवान् शंकर और दयानन्द	)५०
सत्यनारायण व्रतकथा	)६२

चतुर्वेद शतकम्

सम्पादक
ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी

वेद सागर के चुने हुये मोती

चारों वेदों के १००-१०० सुन्दर मन्त्रों का संकलन

प्रत्येक का मूल्य १)

चारों एक साथ मंगाने पर डाकखर्च १) आता है।

उपहारादि देने के लिये अनुपम वस्तु

—❀❀—

राष्ट्र के विद्वानों व नेताओं की सम्मतियां

श्री के० एम० मुन्शी:—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जन साधारण में वेदों के प्रचार के लिए हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार शृंखला में नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिए शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर:—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the Present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will become popular and useful.

डा० सर राधाकृष्णन:—They arc valuable and I hope they will be read widely.

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता है:—प्रत्येक वेद से अलग अलग चुने हुए सौ सौ मन्त्रों को संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय है।

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ:—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुए हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानद) ५०
सत्य नारायण कथा) ६१
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमोव्याख्या) ५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्या मार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वागी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
पं० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म् नमस्ते स्वागतम् गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इंजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधियां	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जिरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दशन	२)
न्याय दशन	३॥)
वैशिषिक दशन	३।)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर वदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेद

वदोऽखिलो धर्म-

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७६५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

मई	१९६२
बैशाख	२०१८
वर्ष	अङ्क
१०	१०

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रतिका ।)

सूचना

वेदप्रकाश के प्रत्येक ग्राहक को एक नम्बर दिया गया है जो कि पते की चिट पर लिखा व छपा रहता है पत्रव्यवहार करते समय वह नम्बर अवश्य लिखना चाहिये अन्यथा पत्रोत्तर की प्रतीक्षा न करें।

—व्यवस्थापक

नूतन संस्कार चन्द्रिका

संस्कार विधि की सर्वाङ्गीण व्याख्या

—❀❀❀—

वेदप्रकाश मासिक ११ वें वर्ष के प्रवेशांक में श्रावणी पर्व पर संस्कार विधि की अनुपम व्याख्या पाठकों को भेंट दे रहा है। इसके व्याख्याकार हैं श्री पं० सोमदत्त जी विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड श्री-पण्डित धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति (सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान) तथा वेदप्रकाश के सह-सम्पादक ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी।

संस्कार विधि की अब तक जितनी भी व्याख्यायें निकलीं हैं उन सभी को दृष्टिगत रखते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न किया गया है।

वेदप्रकाश का वार्षिक मूल्य ३) तथा इसी वेदप्रकाश साइज के ४०० पृष्ठ के बृहद् विशेषांक के ३) तथा रजिस्ट्री डाक- खर्च ।।) मिलाकर ६॥) भेजें।

—व्यवस्थापक

विष्णु पुराण आलोचना--अंक

वेदप्रकाश का जून मास का अंक विष्णुपुराण आलोचनांक प्रकाशित होगा। वेदप्रकाश के पिछले विशेषांकों की तरह यह भी खोजपूर्ण व अद्वितीय होगा। अपने क्षेत्र में प्रचारार्थ बगावें। २५ प्रतियों के ५), ५० प्रतियों के ९।।) तथा १०० प्रतियों के १८), २० मई तक भेज कर अपनी प्रतियां सुरक्षित करालें। जितनी प्रतियों के आर्डर आवेगा उतनी ही प्रतियां छापी जावेगीं शीघ्र आर्डर दें ताकि निराश न होना पड़े।

—व्यवस्थापक

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थ माला के सदस्य बनिये

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरंभ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

(४) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २॥) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

महर्षि दयानन्द जी का प्रामाणिक और सम्पूर्ण जीवनचरित्र

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

❀ इतने मोटे अक्षरों में ❀

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्तिभाव पूर्ण जीवन चरित्र "दयानन्द प्रकाश" आर्य समाज के साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है इसके लेखक **श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज** ने इसे इतनी सुन्दर, रोचक और ललित भाषा में लिखा है कि पढ़कर हृदय गद्गद् हो उठता है। भाषा और शैली की दृष्टि से अद्वितीय है। इसमें ऋषि के जीवन की प्रत्येक घटना इतनी सजीव हो उठी हैं कि पाठक के हृदय पर महर्षि क महिमा की छाप अनायास ही लग जाती है। यह पुस्तक दैनिक पाठ कथा रूप में सत्संगों में पढ़ कर सुनाने के लिए अद्वितीय है। ६०० पृष्ठ की बड़ी साइज की पुस्तक केवल १२) में।

गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, देहली

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

सम्पादकीय

धूर्त कौन ?

अजमेर के एक बदनाम पत्र ने स्वामी ध्रुवानन्द जी के सम्बन्ध में अति ओछे और कमीने शब्दों का प्रयोग कर अपने कालुष्य हृदय का ही परिचय दिया है। सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है। जिस को पीलिया का रोग हो गया हो उसे सब कुछ पीला ही दिखाई देता है। श्री विश्वदेव जी भी ऐसे ही अन्धे और पीलिया के रोगी प्रतीत होते हैं। उन्हें अपने बाप के अतिरिक्त सब में दोष ही दोष दिखाई देते हैं। अथवा विचारे विश्वदेव का भी कोई दोष नहीं है कारण उन में तो इतनी बुद्धि और मस्तिष्क ही नहीं है कि वे ऐसे लेख लिख सकें। यह सब करामात तो उनके नाम से लेख लिखने वाले की है जो देहली में बैठ कर ये लेख लिखते हैं।

वास्तविक धूर्त्त तो वह है जो दूसरों के नाम से लेख लिखता हो, जो संन्यासी होकर भी पुत्र पुत्रियों, पोते, पोतियों और घर वाली के चक्कर में पड़ा हुआ है। जो एक वर्ष में ३५००० रुपये कमा लेता हो और उस का हिसाब किसी को न देना हो। जो पद पद पर झूंठ बोलता हो और फिर भी वेदोपदेशक और वेद भाष्यकार बनने का स्वांग रचता हो जो योग की आरम्भिक बातें भी न जानता हो और योगी होने का ढोंग करता हो। पाठक गण आप समझ गये होंगे कि मेरा संकेत किस ओर है ? यदि नहीं समझे तो लो स्पष्ट कर देता हूँ मेरा संकेत श्री विद्यानन्द जी विदेह की ओर है।

इससे अधिक धूर्त्तता और पक्षपात क्या होगा कि अपनी वेदी खुलवाने के लिये इन्होंने एक गुट से पैक्ट कर लिया है और स्वामी ध्रुवानन्द जी श्री प्रकाश वीर जी शास्त्री और लाला रामगोपाल जी आदि को गिराने में लगे हुए हैं। मुझे न किसी से द्वेष है न किसी से राग है यदि किसी व्यक्ति में कमियां हैं तो वे कमियां उन्हें बताई और सुझाई भी जा सकती है, परन्तु जो स्वयं कीचड़ में फंसा हुआ है, जिस के अपने जीवन में हजारों ऐब और छिद्र हों वह दूसरों की आलोचना किस मुंह से कर सकता है।

झूंठ, फरेब और धोखा देना तो आप की नस-नस में नहीं नहीं, रोम रोम में भरा हुआ है। लीजिये एक नमूना प्रस्तुत है जिसे संसार की कोई शक्ति काट नहीं सकता—

विदेह जी की मासिक पत्रिका 'सविता' श्रावण २०१२, अगस्त १९५५ के अन्तिम पृष्ठ पर एक विज्ञापन छपा है जिस के आरम्भ के शब्द हैं—"३५ वर्षों के अनवरत कठोर ·····स्वाध्याय का सुस्वादु सुफल।" यह पहला विज्ञापन है और इसी रूप में यह विज्ञापन पौष २०१३ जनवरी १९५७ तक अर्थात् १ वर्ष और पांच मास तक चलता रहा है परन्तु एक वर्ष और छटे मास में ये ३५ वर्ष ३८ वर्ष में बदल गये हैं। अर्थात् एक वर्ष और पांच मास बराबर है ३ वर्ष। आपने एक स्थान पर लिखा है कि मैंने वेदानुशीलन में अपने जीवन के ४० वर्ष लगाये हैं। ये ४० वर्ष इस हिसाब से २० वर्ष से भी कम ही बैठेंगे। कहिये है न धूर्त्तता। समझ में नहीं आता आप अपने बच्चों का पेट

[शेष पृष्ठ ४ पर]

विचित्र प्रभु

❀ श्री स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा। यजु० ७।४२॥

(चित्रं) विचित्रं, विचित्र, अद्भुत (देवानां-अनीकं) देवानां मुखं, देवों का मुख, देवों में प्रधान, देवों में मुख्य (उत्-अगात्) उत्कृष्ट तथा भली भांति प्राप्त है। (चक्षुः) चक्षु, नेत्र है, (मित्रस्य) मित्र का सूर्य का, (वरुणस्य) वरुण का, वरण करने के योग्य का, चन्द्रमा का, (अग्नेः) अग्नि का, ज्ञानी का, विद्वान् का। (द्यावा) द्यौ लोक (पृथिवी) पृथिवी लोक [तथा] (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक को (आ-अप्रा) भली भांति आप्लावित कर रहा है। (सूर्य्य) [वह] प्रकाश स्वरूप, प्रकाशक (आत्मा) आत्मा है, जीवन का कारण है (जगतः) जगत् का, गतिशील का, प्राणियों का (तस्थुषः च) और अप्राणी अर्थात् जड़ का। (स्वाहा=सु+आहा) सुन्दर उच्चारण है, ठीक कहा गया है, ठीक कहा।

प्रस्तुत मन्त्र का प्रथम शब्द चित्रं भगवान् की अद्वितीय शक्ति का वर्णन करता है। चित्रं, विचित्रं अर्थात् वह प्रभु विचित्र है। क्या सचमुच प्रभु विचित्र हैं? संसार की प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि डालिये प्रभु इन सभी से विचित्र है। यदि किसी वस्तु में प्रभु का कोई गुण मिलेगा भी तो स्वल्प मात्रा में। पूर्णतया तो संसार के किसी भी पदार्थ में चाहे वह जड़ हो वा चेतन प्रभु का कोई भी गुण नहीं मिलेगा। उदाहरण के लिये आकाश व्यापक है किन्तु वह व्यापक मात्र ही है सर्व व्यापक नहीं। सर्व व्यापक तो केवल प्रभु ही है, यहां तक कि व्यापक आकाश में भी व्यापक है, यह प्रभु की विचित्रता ही तो है। किसी भी प्रकार संसार का कोई भी पदार्थ उस जैसा नहीं। इसी लिये वेद चित्रं विशेषण द्वारा उसकी गुणावली का गान कर रहा है। प्रभु विचित्र तो हैं ही, परन्तु उनकी विचित्रतायें जिस प्रकार की हैं उनका भी दिग्दर्शन मन्त्र में आगे कराया गया है।

देवानां अनीकं, देवों का मुख, समस्त देवों में मुख्य, प्रधान है। है ही प्रधान, सन्देह को स्थान ही कहां है? संसार के जितने भी दिव्य पदार्थ हैं उन सब से बढ़कर दिव्यतायें हैं उस दिव्य प्रभु में। सत्य बात तो यह है कि समस्त दिव्य पदार्थों में उसी की दिव्यतायें हैं। सारे दिव्य पदार्थ उसी दिव्य देव की दिव्यता से दीप्यमान हो रहे हैं। वही देव अपनी दिव्यताओं को संसार के विभिन्न पदार्थों में से विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित कर रहा है। अग्नि में उसी का तेज है, वायु में उसी की गति, चन्द्रमा में उसी की शीतलता है, सूर्य में उसी का प्रकाश, स्वर्ग में उसी की दमक है और हीरे में उसी की चमक। हो भी क्यों नहीं हिरण्यगर्भ जो ठहरा वह।

देव का एक अर्थ है विद्वान्। संसार के समस्त विद्वानों की विद्वता उस प्रभु की विद्वता के सामने राई का दाना। विद्वानों के पास भी जो विद्वता है वह आई कहां से। आदि सृष्टि में कौन था जिसने मानव को ज्ञान दिया, विद्वता प्रदान की, विद्वान् कहलाने का अधिकारी बनाया? वही था न वही प्रभु जिसे वेद ने कहा है "आनीदवातं स्वधया तदेकं" तब वह अकेला बिना वायु के ही श्वास ले रहा था तथा "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" वह हिरण्यगर्भ जो उत्पन्न हुए प्राणिमात्र का एक मात्र स्वामी है सृष्टि की उत्पत्ति से पहले भी सम्यक् प्रकारेण था। जो पुकार पुकार कर कह रहा है कि "स्तुता मया वरदा वेद माता" वरदात्री वेद माता मेरे द्वारा प्रस्तुत की गई है। उस दयालु ने दया कर सृष्टि के प्रारम्भ में ही मानव के कल्याण के लिये वेद ज्ञान प्रदान किया जिस से सृष्टि के प्रारम्भ में मानव विद्वान् बना

और अब भी परम्परा से बनते चले आ रहे हैं। तो क्यों उस देव की कृपा से ही समस्त विद्वानों (देवों) को ज्ञान प्राप्त हुआ है अतः समस्त विद्वानों (देवों) में वही मुख्य है।

उत्-अगात् उत्कृष्टतया, भली भांति प्राप्त है। अपनी व्याप्ती की शक्ति मात्र से, व्यापक होने के कारण से वह किसी से भी दूर नहीं। उसके लिये उसकी खोज में नगर-नगर, जंगल-जंगल तथा पर्वत-पर्वत भटकने की आवश्यकता नहीं है। सर्व व्यापक प्रभु सर्व व्यापक होने के कारण प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक को प्राप्त है। उस की प्राप्ति की इच्छा से किसी स्थान विशेष पर जाना वा जाने के लिये प्रयत्न करना सर्वथा भूल है।

वह मित्र, वरुण और अग्नि का चक्षु है। मित्र अर्थात् सूर्य, वरुण अर्थात् चन्द्रमा तथा अग्नि जिस चक्षु से देख रहे हैं वह प्रभु ही है। इन तीनों में जो प्रकाश है, जिस प्रकाश से यह तीनों प्रकाशित हैं, वह उस प्रभु ही का है। यह तीनों तो प्रकृति के परमाणुओं का संघात मात्र है और परमाणु अपने आप में प्रकाश रहित है। यदि परमाणुओं में प्रकाश होता तो वह प्रलयकाल में भी प्रकाश देते किन्तु उस समय तो "तम आसीत्तमसा गूढ़म्" महान् अन्धकार से ढका हुआ अन्धकार था। इस समय जो परमाणु संघात अर्थात् प्रकृति जन्य सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि से प्रकाश प्रस्फुटित होता रहता है वह उसी प्रभु का है अतः प्रभु इन सब का चक्षु है।

जो लोग संसार में राग द्वेष रहित होकर अर्थात् संसार के मित्र बन कर रहते हैं वह प्रभु के ही मित्र होते हैं और प्रभु इन मित्रों का मार्ग दर्शक होता है अर्थात् राग द्वेष रहित निर्मल चित्त होने से ऐसे लोग ही प्रभु के ज्ञान से वास्तविक लाभ उठाते हैं। जो वरुण अर्थात् वरण करने के योग्य उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले लोग हैं वह प्रभु उन का भी (चक्षुः) प्रकाश प्रदान करने वाला है। अग्नि अर्थात् जो विद्वज्जन हैं प्रभु उन का भी (चक्षुः) मार्ग दर्शक हैं अर्थात् विदान् (विद्+वान्) जानने वाले उस प्रभु के ज्ञान से लाभ उठाते हैं।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ लोक में वह (आ-अप्रा) आप्लावित हो रहा है, भर रहा है, सर्वत्र व्याप रहा है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक में कोई भी स्थान ऐसा नहीं जहां प्रभु न हो, जहां उस की गति न हो, जहां उसकी व्याप्ती न हो, जहां उस का वास न हो। वह न केवल (अप्रा) आप्लावित हो रहा है अपितु (आ) आ समन्तात् सब ओर से, सर्व प्रकारेण, भली भांति (अप्रा) आप्लावित हो रहा है। उस की व्याप्ति सीमित नहीं है, ऐसा नहीं कि वह पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ के किसी क्षेत्र में स्थान विशेष में, कुछ दूरी तक व्याप कर रह गया हो। समस्त भूमण्डल समग्र द्यौ लोक तथा सम्पूर्ण अन्तरिक्ष लोक उससे ओत-प्रोत हैं।

वह सूर्य, प्रकाश स्वरूप तथा समस्त संसार का प्रकाशक समस्त चेतन और जड़ का, संसार के समस्त चेतन और जड़ पदार्थों का निरन्तर सर्वत्र व्यापक होने से "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा" जीवन का कारण, अस्तित्व को बनाये रखने वाला अर्थात् आत्मा है। संसार में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है चाहे वह जड़ हो वा चेतन सब का अस्तित्व केवल उस प्रभु के कारण से है। उसी की शक्ति है जो यह सब पसारा अस्तित्व में है। उस सर्वोत्पादक और सर्व नियन्ता की शक्ति के बिना यह संसार कुछ भी नहीं अतः वेद ने उसे जड़ और चेतन दोनों प्रकार के संसार का आत्मा कहा है।

मन्त्र का अंतिम शब्द है स्वाहा। (सु+आहा) सु आहेति, स्वा वागाहेति अर्थात् सुन्दर उच्चारण है, ठीक कहा है। लोक भाषा में स्वाहा का अनुवाद होता है वाह-वा, बहुत अच्छे अर्थात् मन्त्र में जो यह विचार प्रकट किये गये हैं कि वह विचित्र प्रभु जो देवों में मुख्य है, जो मित्र, वरुण और अग्नि का चक्षु है, पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ लोक में सर्वत्र व्यापक है। समस्त जड़ और चेतन संसार का अस्तित्व जिस के आधार पर है वह प्रकाश स्वरूप और सारे संसार का प्रकाशक प्रत्येक स्थान पर भली भांति प्राप्त है वाह-वा, खूब अर्थात् यह भी खूब रहीं कि हमें आज तक ज्ञान न हो सका, हम निरर्थक ही भटकते रहे और वह अद्भुत देव सर्वत्र उपस्थित है।

हमारे पाठक क्या कहते हैं ?

वेद प्रकाश का "महर्षि दयानन्द सरस्वती अङ्क" प्राप्त हुआ। उसे आद्योपान्त पढ़ा और जो ऋषि महात्म्य विदित हुआ उससे उन्हें तत्त्वतः समझ ने में बड़ी सहायता मिली। सचमुच उक्त अङ्क को प्रकाशित कर आपने आर्य जनों एवं इतर जनों का बहुत कल्याण किया है। इस प्रकाशन से आपकी और विशेष रूप से आपके आदरी सम्पादक ब्र० जगदीश चन्द्र जी विद्यार्थी जो कि समस्त अङ्क के लेखक प्रतीत होते हैं, की ऋषि भक्ति तो प्रकट है ही साथ ही उच्च कोटि के विचारों की आभ व्यञ्जना और संघटना शक्ति भी स्फुटित होती है। मैं विशेष कर इस पुस्तक के लिए आपका कृतज्ञ हूं।

कृपया योगिराज दयानन्द अङ्क जिसकी अन्यत्र चर्चा की है, भी शीघ्र निकालने का कष्ट करें।

श्री जयदत्त जी शास्त्री लखनऊ।

आपने गज़ब ढ़ा दिया है इस अङ्क में तो। इसकी प्रशंसा अवर्णनीय है।

श्री भगवती प्रसाद जी 'विशारद' रतलाम।

मैं वेद प्रकाश का उसके जन्म काल से ही ग्राहक हूँ।.....अब आपके सम्पादकत्व में वेद प्रकाश अत्याधिक चमक रहा है।.....आपकी रचना योगीराज दयानन्द कब तक छप जावेगी।

श्री चन्द्रसिंह आर्य सिद्धान्त शास्त्री।

सम्पादकीय [शेष पृष्ठ १ का]

पालने के लिये ऐसी झूंठी बातें क्यों लिखते हैं। धूर्त्तता स्वयं करते हैं और दोष दूसरों पर मढ़ते हैं धिक्कार है इस मनोवृत्ति पर।

आप को न ईश्वर पर विश्वास है न वेदों में श्रद्धा है यह सब कुछ भी आपने अपने और अपने परिवार के पापी पेटों को पालने का ढोंग बनाया हुआ है। विदेह के चेलों को और विश्वदेव जी को विदेह जी द्वारा लिखित इन पंक्तियों को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये—

"वेद धर्म नहीं है। वेद तो सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद में धर्म नहीं है, सत्य है। वेद का पढ़ना पढ़ाना धर्म नहीं है, एक कृत्य है।"

(सविता वर्ष १० अक ३ अप्रैल १९५७)

मनु जी महाराज ने कहा "नास्तिको वेद-निन्दकः" वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक है। विदेह जी भी वेद निन्दक होने के कारण नास्तिक हैं।

एक और धूर्त्तता देखिये। अपने वेद व्याख्या ग्रन्थ प्रथम पुष्प पृष्ठ १७ पर आप लिखते हैं—

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वे समस्त ज्ञानों और विज्ञानों के वे सब भाषाओं और धर्मों के.....आदि स्रोत है।"

यह है धूर्त्तता। एक स्थान पर ईसाइयों को प्रसन्न करने और उन से रुपया ऐंठने की बातें लिख रहे तो दूसरे स्थान पर भोली भाली जनता को धोखे में डाल कर उन से धन छीनने का यह धूर्तता पूर्ण प्रयास है या नहीं ?

दूसरों पर कीचड़ उछालने से पूर्व अपने गिरे-बान में भी मुंह डाल कर देखो। जो आरोप पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द पर लगाया गया है। वह आरोप विदेह जी पर अधिक चरितार्थ होता है।

इस लेख माला में प्रत्येक व्यक्ति को यह उपदेश दिया गया है कि एकान्त में बैठो और वेद पढ़ो। मैं श्री विश्वदेव जी से पूछना चाहता हूँ आप ने कितना वेद पढ़ा है जो दूसरों को उपदेश देते हुए नहीं थकते। आप गन्दगी की मक्खी की भांति दूसरों के दोष देखते रहते हो कभी अपने और अपने बाप के एव भी देखा करो।

मैं नहीं चाहता था कि मैं 'वेद प्रकाश' में विदेह जी को इस प्रकार नंगा करूं परन्तु विवश होकर मुझे ऐसा करना पड़ा है। आपके अन्याय, पाखण्ड और दम्भ का भण्डा फोड़ करने के लिये यदि आवश्यकता हुई तो आगे भी लिखता रहूँगा। सामग्री मेरे पास भी बहुत है वर्षों लिख सकता हूँ।

[शेष पृष्ठ ८ का]

जावेगा। ग्रन्थों में बहुत कुछ पीछे से मिलाया गया है। यदि सब कुछ माना जायगा तो सबा ऋषि महर्षि धर्मात्मा राजा महाराजा महापापी सिद्ध हो जायेंगे और अजमेध में बकरा, अश्वमेध में घोड़ा मारना, गोमेध में गो वध और नरमेध में मनुष्य को मारना और इन सब के मांसों की आहुतियां देनो लिखी हैं। यह सभी कुछ मानना पड़ेगा। और ऋषियों तथा राजों का मांस खाना तथा गो मांस खाना भी मानना पड़ेगा।

बुद्धिपूर्वक विचार करके सत्य को मानने और और असत्य को छोड़ने का नाम अर्ध कुक्कुट न्याय नहीं, "नीर क्षीर विवेक न्याय" है। जैसा तुलसी दास जी ने भी कहा है कि--

जड़ चेतन गुण दोष मय विश्व की ह करतार।
सन्त हंसगुण लहंहि पय, परिहर वारि विकार॥

यदि हनुमान जी के पूंछ थी तो उनके दोनों पिताओं केसरी और पवन के पूंछ क्यों नहीं थी ? माता अंजनी के पूंछ क्यों नहीं थी ? अन्य वानरों तथा उनके माता पिता और उनकी स्त्रियों के पूंछ क्यों नहीं थी ? साथ ही मैंने यह भी कहा कि—यदि वानर बन्दर ही थे तो मानव भाषा कैसे पढ़ते और बोलते थे ? वेद शास्त्र किस प्रकार जानते और मानते थे ? माधवाचार्य जी के व्याख्यान इस विषय पर न होकर फिर गोरक्षा आदि पर होते रहे कि—सनातन धर्म और आर्य समाज एक ही है।

यह कहना और लिखना उनका सर्वथा असत्य है कि–वह हनुमान आदि को पूंछ वाला बन्दर सिद्ध करते रहे और मैं चुपचाप बैठा सुनता रहा तथा मैंने उनकी बात का खण्डन न किया।

हाथ कंगन को आरसी क्या ?

श्री माधवाचार्य जी को यदि हनुमान आदि को पूंछ वाले बन्दर सिद्ध करने का साहस है तो मैं इस पर वाद करने को उद्यत हूँ।

मौखिक वाद करना हो तो उसको भी तैयार हूँ यदि लेखबद्ध करना चाहे तो 'वेदप्रकाश' आदि किसी मासिक पत्र द्वारा करलें।

—❀❀❀—

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—[आयुर्वेदालंकार, बी. आई. एम. एस.] पुरोहित आर्य समाज करौल बाग से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कौलोनी, सोनीपत।
२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैंक लोधी रोड़ नई दिल्ली।
३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपुर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पुरोहित आर्य समाज करोलबाग नई दिल्ली।

श्री माधवाचार्य जी का एक महा बेतुका झूठ

❀ श्री पं० अमरसिंह जी आर्य, पथिक, कलकत्ता

सुना है कि श्री माधवाचार्य जी ने अपने मासिक पत्र में यह लिखा है कि बद्दोमल्ली (जिला स्यालकोट पंजाब) के शास्त्रार्थ में मैंने अमरसिंह जी से १८ पुराणों के नाम पूछे थे सो अमरसिंह जी नहीं बता सके थे।

उनका यह लिखना या कहना सर्वथा असत्य है। यह झूठ ही नहीं बेतुका झूठ है। किसी ने कहा कि "तेली रे तेली तेरे सिर पै कोल्हू" तेली ने कहा तुक नहीं मिली, उसने कहा तुक मिले न मिले बोझ से तो मरेगा ही।

श्री माधवाचार्य या कोई भी पौराणिक मुझ से यह पूछे कि १८ पुराण कौन २ से हैं उनके नाम बताओ! तो इसमें क्या तुक है? क्या हम आर्य-समाजियों का यह दावा है कि—पुराण १८ हैं? यह तो दावा पौराणिकों का है। हम को उनकी संख्या से कुछ प्रयोजन नहीं है। हमारा दावा तो यह है कि—जो भागवत आदि वैष्णव पुराण हैं जो शिव आदि शैव पुराण हैं और जो देवी भागवत आदि शाक्त पुराण तथा जो उप पुराण हैं सब वेद विरुद्ध हैं।

संख्या में वह १८ हों १८ सौ हों चाहे घटते २ एक रह जाय गिनती मुझ को १८ की सिद्ध करनी नहीं है मुझको तो उनके वेद विरुद्ध अंश का खण्डन करना है।

श्री माधवाचार्य जी न तो बहुत पढ़ते हैं न सोचने विचारने से उनको कुछ प्रयोजन है। इसी कारण वह शास्त्रार्थों में सदा हारते ही रहते हैं और शास्त्रार्थ करने से वह ऐसे डरते हैं जैसे तीर से कव्वा। जब कभी मजबूर होकर सामने आना पड़ जाय तो वह कभी "वाद" नहीं करते सदा "वितण्डा" ही करते हैं। वह कुछ पठित तो हैं पर—

"सिर मोटा मोटी अकल मोटे पेट और पांय।
तन मन मोटे पोप जी कहां मुटाई नाय?"

अब शास्त्रार्थों से बचने के लिये उन्होंने तीन नई शर्तें निकाली हैं।

(१) हार जीत का निर्णय देने वाला कोई निर्णायक "जज" होना चाहिये। (कोई उनसे पूछे कि—क्या जज गलत निर्णय नहीं दे सकता? जज सर्वज्ञ परमेश्वर होगा?? न नौ मन तेल होगा न...नाचेगी)

(२) शास्त्रार्थ संस्कृत में होना चाहिए (खाक न समझे कोई पोल छुपी रहे)

(३) शास्त्रार्थ लेख बद्ध होना चाहिए (जिससे समय अधिक नष्ट हो और बात थोड़ी हो सके)

शास्त्रार्थ करने की शक्ति नहीं है पुराने शास्त्रार्थ जिनमें पराजित होते रहे उनके सम्बन्ध में झूठी बातें बना बना कर अपनी झूठी धाक बिठाना उनका उद्देश्य है।

बद्दोमल्ली में क्या हुआ था? उलटा चोर कोतवाल को डांटे।

लगभग ३० वर्ष से भी अधिक हुए होंगे तब बद्दोमल्ली जिला स्यालकोट (पंजाब) (जो अब पाकिस्तान में है) में आर्य समाज और सनातनधर्म के मध्य ८ आठ दिन शास्त्रार्थ होने का निश्चय हुआ।

क्रम यह था कि—एक दिन आर्य समाज की ओर से इस विषय पर प्रश्न किए जायेंगे कि क्या भागवत आदि पुराण वेदानुकूल हैं? दूसरे दिन पौराणिकों का पक्ष होगा कि स्वामी दयानन्द जी के बनाये सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं। इसी क्रम से शास्त्रार्थ ८ दिन चले। नियमों पर एक

ईसाई और एक मुसलमान के भी साक्षी के रूप में हस्ताक्षर हुए थे।

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता मैं था मेरे साथ सहायक मेरे परम मित्र श्री पं० वाचस्पति जी विद्यावाचस्पति एम० ए० थे।

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता श्री· माधवाचार्य जी थे। इनके साथ सहायक श्री पण्डित श्री कृष्ण जी शास्त्री, श्री पं० दिवाकर जी शास्त्री श्री पं० अमर नाथ जी शास्त्री और श्री पण्डित कुञ्जलाल जी शास्त्री थे।

पहले दिन मैंने पुराणों पर प्रश्न किये। मैंने जो प्रश्न किये उन में से किसी का भी उत्तर माधवाचार्य जी से नहीं दिया जा सका। श्री माधवाचार्य जी ने पुराणों के वह स्थल देखे भी नहीं थे जिन पर मैंने प्रश्न किए।

मेरे प्रश्न क्या थे और उनके उत्तर श्री माधवाचार्य जी ने क्या दिये यह सब अब तक भी मेरे पास लिखे हुये रखे हैं। उन मेरे प्रश्नों में एक मेरा प्रश्न यह भी था कि—

"अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः।" यह जो पौराणिक दावा है कि—सत्यवती सुत व्यास १८ पुराणों के कर्त्ता हैं तो बताइए वह अठारह पुराण कौन २ से हैं १८ पुराणों के नाम क्या २ हैं? यह प्रश्न मेरा था माधवाचार्य जी का नहीं। श्री-माधवाचार्य जी उस समय भी १८ पुराणों के नाम नहीं बता सके और अब भी नहीं बता सकते हैं। वह ही नहीं **कोई भी पौराणिक पण्डित १८ पुराणों के नाम नहीं बता सकता है।**

इसमें रहस्य यह है कि—पुराणों में १८ पुराणों की सूचियां भिन्न २ प्रकार की हैं वह एक सूची दिखलाते तो मैं दूसरी दिखाता तीसरी दिखाता। सूचियों में एक-एक दो-दो नामों के भेद हैं और यही नहीं कि केवल सूचियों में ही नामों का भेद है अपितु उन सब नामों वाले पुराण विद्यमान भी है। ऐसी स्थिति में कोई भी पौराणिक पण्डित १८ पुराणों के नाम नहीं गिना सकता है।

हम से १८ पुराणों के नाम पूछना तो अपनी मूर्खता का प्रमाण देना है। हम तो उनमें से एक को भी नहीं मानते हैं हमारे लिये आठरह क्या और न्यूनाधिक क्या? १८ की संख्या को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व पौराणिकों का है हमारा नहीं क्योंकि—यह दावा उनका है। आर्य समाज का नहीं।

ऊपर लिखे श्लोकार्ध पर दूसरा दावा मेरा यह है कि—पुराण १८ हों चाहे अधिक पर वह महर्षि वेद व्यास के बनाये क्या किसी भी एक विद्वान् के बनाये नहीं हैं। भिन्न २ सम्प्रदायों के भिन्न व्यक्तियों के बनाये हुये ही हैं और सर्वथा अमान्य और वेद विरुद्ध हैं।

मुझ को श्री माधवाचार्य जी के झूठ पर तो बहुत आश्चर्य नहीं है क्योंकि इसके बिना तो उनका काम चल ही नहीं सकता है, हां बुद्धि पर अवश्य आश्चर्य है कि उनको यह भी नहीं सूझता है कि मुझ से क्या किसी भी आर्य समाजी पण्डित से पुराणों के १८ नाम पूछने में अपनी बुद्धि का दिवालियापन ही सिद्ध होगा।

बद्दोमल्ली में आगे क्या हुआ यह भी लगे हाथों बतलाता हूँ—एक दिन पुराणों पर मैंने प्रश्न किये दूसरे दिन श्री माधवाचार्य जी ने ऋषि दयानन्द जी से ग्रन्थों पर प्रश्न किये और मैंने उत्तर दिये तीसरे दिन पुराणों पर प्रश्न करने की मेरी बारी थी। हम समय पर शास्त्रार्थ के पण्डाल में पहुँच गये। पौराणिक पण्डित देर में पहुँचे और उनके पीछे ही पुलिस पहुँच गई कि—सनातनधर्म सभा के मन्त्री ने स्यालकोट के डिप्टी कमिश्नर और एस० पी० के पास शिकायत की है दरख्वास्तें दी हैं कि—हम शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते हैं और आर्य समाज हमको शास्त्रार्थ के लिए मजबूर करता है इससे झगड़ा फिसाद और कुश्तोखून का अन्देशा है इसलिए शास्त्रार्थ बन्द कराया जाय।

सनातनधर्म सभा के मन्त्री जी की दरख्वास्तें पढ़कर सुनाई गईं और दोनों अफसरों के हुक्म भी सुनाये गये तथा शास्त्रार्थ बन्द कर दिये गये।

[शेष पृष्ठ १९ पर]

श्री माधवाचार्य का दूसरा झूठ

❀ अरमसिंह आर्य पथिक

मासिक "लोकालोक" वर्ष १ अक्तूबर १९६१ ई०, अङ्क ९ पृष्ठ २०-२१ पं० नवीनचन्द्र शर्मा ज्योतिष मार्तण्ड का "बढ़ती नास्तिकता को रोकने के लिये स्वस्थ शास्त्रार्थ होने चाहिए" शीर्षक लेख छपा था जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

अभी इस वर्ष टाटानगर में रामनवमी के उत्सव पर इसने अपने हनुमान अखाड़े के अवसर पर किराया और भेंट देकर ठाकुर अमरसिंह को इस लिने बुलाया कि उन्होंने एक ट्रैक्ट लिख कर यह सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है कि "हनुमान जी की पूंछ नहीं थी।" लालच के मारे आ तो गये परन्तु आगे भी आचार्य जी विद्यमान थे ही। सहस्रों जनता के सामने हनुमान जी के रामायणोक्त स्वरूप का खूब प्रतिपादन किया गया वाल्मीकि रामायण के प्रमाणों से हनुमान जी की लम्बी लांगूल का खूब वर्णन किया गया स्टेज के ऊपर ही हनुमान जी की दश फुठ ऊंची लम्बी लांगूल वाली मृण्मय मूर्त्ति विराजमान थी। बहुत ललकारा गया पर कान 'काटो तो खून आये।' तीन दिन तक 'या वेशरमी तेरा आसरा' किये महाशय जी हनुमाग जी की पूंछ के नीचे दुबके सब सुनते रहे। अपने व्याख्यान में आचार्य जी के एक शब्द का प्रतिवाद कर सकने का भी साहस नहीं हुआ। इस तरह पचास-साठ रुपये का दाव लगा कर टाटा नगर के सनातन धर्मियों ने आर्य समाज की नाक काट ली।"

मैंने श्री ठाकुर जी को पत्र लिख कर समाधान मांगा था उत्तर उन्हीं के शब्दों में पढ़िये।

"विद्यार्थी"

गत वर्ष राम नवमी के पवित्र पर्व पर मुझको और श्री माधवाचार्य जी को भी जमशेदपुर (टाटा नगर) एक ही वेदी पर बुलाया गया था। उससे पहिले वर्ष में श्री माधवाचार्य जी जमशेदपुर गये थे तो अपने स्वभावानुसार मैदान खाली देखकर अपने व्याख्यानों में तालें ठोकते और यह कहते रहे थे कि—है कोई आर्य समाजी माई का लाल जो हम से शास्त्रार्थ करे। इसी कारण हम दोनों को इकट्ठा बुलाया गया था।

मैंने अपने पहिले ही व्याख्यान में यह बता दिया था कि मैं और श्री माधवाचार्य जी एक दूसरे के व्याख्यानों का खण्डन किया करते हैं और हमारे दोनों के मध्य बहुत से शास्त्रार्थ हो चुके हैं।

मैंने यह श्री माधवाचार्य जी के सम्मुख ही कहा था माधवाचार्य जी चुप बैठे रहे, न उन्होंने इसका समर्थन किया न विरोध।

उनके पुत्र ने और उन्होंने "हिन्दु" नाम पर एक २ व्याख्यान दिया मैं ने दोनों व्याख्यानों के विरुद्ध हिन्दु नाम का खण्डन और "आर्य" नाम का मण्डन वेदों, स्मृतियों रामायण, महाभारत, और अनेक पुराणों के असंख्य प्रमाणों द्वारा किया।

श्री माधवाचार्य जी ने अपने एक व्याख्यान में हनुमान जी के विषय में केवल इतना कहा था कि रामायण में तो हनुमान जी की पूंछ लिखी है। यदि कुछ रामायण को माना जायगा और कुछ को न माना जायगा तो अर्ध कुक्कुट न्याय हो जायगा। किसी ने आधी मुर्गी काटकर खाली और आधी अण्डे देने को रख ली।

मैंने इसके उत्तर में कहा कि—ग्रन्थों में जो कुछ इस समय लिखा हुआ मिलता है यदि उस सब को प्रामाणिक मान लिया जायगा तो अनर्थ हो

[शेष पृष्ठ ५ पर]

हमारे घर

❀ ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति

गृहस्थाश्रम विशालतम आश्रम है। यह आश्रम सभी आश्रमों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। यह परम पवित्र तथा तीर्थ के समान पावन है। स्मृतिकारों ने मुक्त कण्ठ से इसकी महिमा का गान किया है। वेदों के महान् विद्वान् आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भी गृहस्थ का गौरव गान किया है। महर्षि के शब्दों में, "जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता है, वह प्रयत्न से गृहस्थाश्रम का धारण करे।" वास्तव में गृहस्थाश्रम बड़े महत्व का आश्रम है। वेदों में इस आश्रम के सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है। वेद के अनुसार हमारे घर ऐसे होने चाहिये:—

यज्ञं दुहानम्। जहां यज्ञ होते रहें। वेदों में यज्ञानुष्ठान का बड़ा भारी महत्व वर्णन किया गया है:—

उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव इजानं च यक्ष्यमानं च धेनवः। पृपन्तं च पर्पुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः। (ऋ० १।१२५।४)

यज्ञ करने वाले और यज्ञ की इच्छा करने वाले को गायें तथा सुख और शान्ति इस प्रकार प्राप्त होते हैं जिस प्रकार नदियां स्वयंमेव समुद्र में जा गिरती हैं। इतना ही नहीं अपितु पालन करने की शक्ति अन्न और यश, पुष्टि और तुष्टि जल की धाराओं के समान चारों ओर से प्राप्त होते हैं।

वेद में एक अन्य स्थान पर कहा गया है:—

यज्ञ इन्द्रमवर्धयत्। (अथर्व० २०।२७।५)

यज्ञ से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। यज्ञ के अनुष्ठान से ही सद्गुण सुविचार उत्तम आचार और सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।

यज्ञ शब्द 'यज्ञ्' धातु से बनता है जिसके अर्थ हैं देवपूजा, संगतिकरण और दान। श्रेष्ठों का आदर सत्कार, बराबर वाले सज्जनों से मित्रता और अपने से छोटों को दान, ये भाव यज्ञ से ध्वनित होते हैं। यज्ञ एक प्रकार का तप है:—

यज्ञं तपः (तै० आ० १०।८।१)

अतः प्रत्येक घर में यज्ञों का अनुष्ठान होना ही चाहिए। गृहस्थ के पांच महायज्ञों का विधान है जो दैनिक कर्तव्य हैं। वे पांच यज्ञ हैं:—

ब्रह्मयज्ञः—प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल वेद मन्त्रों से ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करते हुए अपने विनय प्रेम तथा श्रद्धा का प्रकाश करना और परमपिता के गुणों को अपने जीवन में धारण करना ब्रह्म यज्ञ का एक भाग है और स्वाध्याय अर्थात् वेदादि शास्त्रों का पढ़ना दूसरा अंग है। वेद का नित्य प्रति स्वाध्याय करना चाहिए क्योंकि इससे शरीर तथा मन की शुद्धि होती है। तथा इसी के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है, जो सब जीवों का परम लक्ष्य है। एक ही व्यक्ति के स्वाध्याय से जगत् का विशेष लाभ नहीं होता। इसलिये इस परम्परा को चलाते रहना चाहिये तथा ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे नये-नये वैदिक विद्वान् पैदा होते रहें इसके लिए अधिकारी शिष्यों को वेद पढ़ाना भी चाहिये। क्योंकि जो शिष्य को वेद नहीं पढ़ाता वह श्रेयस का द्वार ही बन्द कर देता है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है, अतः प्रत्येक गृहस्थ को वेदादि ग्रन्थों का संग्रह कर प्रतिदिन थोड़ा-बहुत स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

देवयज्ञः—ईश्वर और वेद के सत्संग से पवित्र होकर अग्नि, वायु, जल आदि जड़ देवताओं की शुद्धि-अर्थ अग्नि में किये हुए हवन को देवयज्ञ कहते हैं। वह घर आर्य घर नहीं जहां नित्य अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, तथा अन्य यज्ञ नहीं होते रहते। आधुनिक लोग होमाग्नि में दी हुई आहुति को भले ही

अपव्यय समझें परन्तु दूरदर्शी ऋषि इसके महत्व को जानते थे। मनु महाराज ने कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
(मनु० ३।७६)

अग्नि में जो आहूति दी जाती है वह सूर्य तक पहुंचती है, सूर्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न होता है और उस अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और जीते हैं।

यज्ञ का भौतिक उन्नति से विशेष सम्बन्ध है। महामारी आदि रोग, पृथ्वी जलवायु आदि के दूषित होने से होते हैं। यज्ञ करने से वायु जलादि शुद्ध रहने से रोग नहीं होते। यही कारण था कि प्राचीन काल में लोग अधिक स्वस्थ और शक्ति सम्पन्न हुआ करते थे।

पितृयज्ञः—प्रतिदिन अपने जीवित माता-पिता, वृद्ध कुटुम्बियों तथा अन्य विद्वानों का भोजन वस्त्रादि द्वारा यथा योग्य आदर सत्कार करने का नाम पितृयज्ञ है। इसी को श्राद्ध और तर्पण भी कहते हैं। माता-पिता अपनी सन्तान के लिए जो कष्ट उठाते हैं उसका चुकाना असम्भव है। ऐसे दयालु माता-पिता आदि जब इतने वृद्ध हो जायें कि स्वयं जीवकोपार्जन न कर सकें, तो गृहस्थों का परम् कर्तव्य है कि उनकी तृप्ति तथा सम्मान के लिए और अपनी कृतज्ञता प्रकाशन तथा उनके ऋण से उऋण होने के लिए उनकी सेवा सुश्रुषा करें।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि श्राद्ध और तर्पण मृतक के लिये किये जाते हैं, परन्तु यह भूल है। यह एक नित्य कृत्य है और जीवित माता-पिता के लिये ही है, मरे हुओं के लिये नहीं।

अतिथि यज्ञः—यह महायज्ञ वहीं हो सकता है, जहां पितृयज्ञ की प्रतिष्ठा हो। अतिथि से तात्पर्य ऐसे ऋषि, मुनि, साधु संन्यासी से हैं, जो स्वयं जीवका नहीं कमाते तथा परिव्राजक बनकर संसार के कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं। गृहस्थियों को उपदेश करते और उनकी त्रुटियों को दूर करते हैं। इनके आने जाने की कोई तिथि नियत नहीं होती, हमारा द्वार इनके स्वागत के लिये सर्वदा खुला रहना चाहिये (अथर्ववेद ६।३।७) का आदेश है:—

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ।

जो वेद वक्ता है वही अतिथि है उससे पूर्व मत खाओ।

जहां अतिथियों की सेवा होती है, वही घर वास्तव में घर है। ठीक ही कहा है:—

दूरादतिथयो यस्य गृहमायन्ति निर्वृताः ।
स गृहस्थ इति प्रोक्तः शेषश्च गृहं रक्षिणः ॥

जिस घर में दूर से अतिथि आते हैं और तृप्त होकर लौटते हैं वही गृहस्थ है शेष तो गृह के रक्षक हैं।

यहां एक बात और ध्यान में रखने योग्य है, वह यह कि इष्ट मित्रादि की सेवा करने का नाम अतिथि यज्ञ नहीं है, तथा गेरुए वस्त्र पहन कर भारत की गली गली में फिरने वाले और गृहस्थियों को धोका देने वाले ठग भी अतिथि नहीं है। इनका तो वाणी से भी सत्कार न करना चाहिये, अपितु इनके दमन का उपाय करना चाहिये।

बलिवैश्वदेव यज्ञः—अपने आश्रित प्राणियों अर्थात् कृमि, कीट, पतंग और पशु पक्षी आदि की सेवा का नाम बलिवैश्वदेव यज्ञ है। जब घर में भोजन तैयार हो जाये तो स्वयं ही न खाने बैठ जाये, अपितु कोई पाप रोगी, कुष्ठी, पंगु, कंगला द्वार पर खड़ा हो, अथवा कोई भूखा प्यासा ही किसी अन्नदाता की प्रतीक्षा करता हो तो पहले उसका पेट भरना चाहिये। इसी प्रकार गो, कुत्ता, बिल्ली, कौआ चिड़िया आदि सबको भोजन देना प्रत्येक गृहस्थ का परम कर्तव्य है।

गोपालनः—घर कैसे हों? जहां गोपालन होता रहे। गो भारतीय संस्कृति का प्रतीक है वैदिक संस्कृति में हम गो के बिना घर की कल्पना ही नहीं कर सकते तथा जिस घर में प्रातः दही बिलोने का घोष सुनाई न दे उसे हम घर नहीं कह सकते। आर्य संस्कृति और गो में कार्य कारणभाव का सम्बन्ध

है। यदि घर में गो नहीं, तो सन्तान भी स्वस्थ बलिष्ठ, दीर्घायु और उत्तम नहीं बन सकती, अतः वेद कहता है—

आ गावो अग्मन् उतभद्रमक्रन् (अथर्व० ४।२१।१)

गोएं हमारे घरों में आयें और हमारा कल्याण करें। इनका सात्विक दूध हमारे जीवनों को भी सात्विक बनाये।

(अथर्ववेद ४।२१।५) में गो को प्रमुख ऐश्वर्य माना है:—

गावो भगो गाव इन्द्रो मे इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः। इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छमि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥

गायें हमारा प्रमुख धन हों। गोपालक इन्द्र हमें गोधन प्रदान करे क्योंकि यह धन सम्पूर्ण विश्व का पालक है। यही सारे विश्व का जीवन है।

वेद में एक स्थान पर गो महिमा का वर्णन करते हुए कहा है:—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम् (ऋ० ८।१०१।१५)

गो रुद्रों (दश प्राण तथा आत्मा का नाम रुद्र है) की माता है। यह रुद्रों का निर्माण करती है। गो दुग्ध रुद्रों का पोषण करता है, शरीरों में कांति देता है और सौन्दर्य वर्धक है। किसी ने ठीक कहा है (Cow milk and honey are the cause of beauty.) गो वसुओं को पूर्ण करने वाली है। पंच-महाभूत, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र आठ वसु हैं। गो इन सभी की त्रुटियों को पूर्ण करती है। यही कारण है कि वेदों में गो को अघ्नया, अदिति आदि नामों से पुकारा गया है।

गो के महत्व का वर्णन करते हुए अमेरिका के एक डाक्टर ने ठीक ही लिखा है—

"जिस राष्ट्र ने सफलता प्राप्त की है, जो महान् सुदृढ़ और शक्तिशाली हुआ है, जिसके बच्चों की मृत्यु संख्या घटी है, जिसका व्यापार संसार में फैला है, जो कला साहित्य और संगीत का गुण पहचान सका है तथा जो विज्ञान और प्रत्येक बौद्धिक क्षेत्र में उन्नत हुआ है, वह सदा उन्हीं लोगों से बना है जिन्होंने स्वच्छन्द होकर गो दुग्ध और तन्निर्मित पदार्थों का सेवन किया है।"

इस प्रकार गो की महिमा महान् है। वाणी और लेखनी उसे व्यक्त करने में असमर्थ हैं, वेद के शब्दों में बस यही कहा जा सकता है:—

गोऽस्तु मात्रा न विद्यते (यजु० २३।४८)

जिस राज्य में गो का नाश होता है। वहां का राजा और प्रजा दोनों नष्ट हो जाते हैं' इस बात को भली प्रकार परख कर ही, देश को नाश से बचाने के लिये गोपाल महर्षि दयानन्द ने विवाह अवसर पर गोदान पर विशेष बल दिया है।

धन धान्य की समृद्धिः—गृहस्थ में धन की अत्यन्त आवश्यकता है। जब ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी का कार्य भी बिना धन के नहीं चल सकता तो फिर भला गृहस्थ का कार्य ही धन के बिना किस प्रकार चल सकता है। गृहस्थ ही अन्य तीन आश्रमों का आश्रम दाता है अतः हमारे घर धन धान्य से समृद्ध होने चाहियें तभी हम ब्रह्मचारी वानप्रस्थी और सन्यासी का आदर सत्कार कर सकते हैं धन आपत्ति के समय रक्षा करता है, संकटों को दूर करता है, प्रतिष्ठा बढ़ाता है और मनोरथों की सिद्धि करता है संक्षेप में यह अलादीन का चिराग है, घर के सारे कार्य इसी से सम्पन्न होते हैं। व्यास जी महाराज का तो कहना है कि 'पुरुषोऽधनं वधः' धन का न होना ही मनुष्य की मृत्यु है। तथा एक अन्य नीतिकार का मत है 'सर्व-कष्टा दरिद्रता' निर्धनता ही सब प्रकार के कष्ट देने वाली है। धन से ही मनुष्य आदर और सम्मान पाता है। एक कवि ने कहा है—

अस्ति यावत्तु सधनस्तावत्सर्वेस्तु सेव्यते।
निर्धनस्त्यज्यते भार्या पुत्राद्यैः सगुणोऽप्यतः ॥

जब तक मनुष्य के पास धन होता है सब उसकी सेवा करते हैं और जब मनुष्य निर्धन हो जाता है तो बन्धु बान्धवों का तो कहना ही क्या पुत्र और स्त्री भी उसे त्याग देते हैं, अतः धन कमाना प्रत्येक

मनुष्य का कर्तव्य है क्योंकि धन के बिना गृहस्थ चल ही नहीं सकता। पृथिवी के अनेक नामों में से एक नाम वसुमति (धन वाली) भी है, जो वसुमत् (धन सम्पन्न) नहीं बनता वह वसुमति का उपभोग नहीं कर सकता। जो वसुमत् नहीं बनता वह इस रत्न सम्पन्न पृथिवी में भी नारकीय जीवन व्यतीत करता है। जो वसुमत् नहीं बनता वह भौतिक जीवन का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता, अतः सभी दृष्टियों से धनोपार्जन मनुष्य का कर्तव्य है। वेद का भी यही आदेश है कि—

वयं स्याम पतयो रयीणाम्। (ऋ० १०।१२।१०)

हम ऐश्वर्यों के स्वामी हों। बात है भी ठीक क्योंकि 'धनाद्धर्म ततः सुखम्' धन से धर्म होता है और उसी से सुख मिलता है। धन पाप का मूल नहीं अपितु धर्म का मूल है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को धन कमाना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति की यह कामना हो कि मैं धनियों में शिरोमणि बनूं परन्तु साथ ही इस बात को ध्यान में अवश्य रखें कि हम जो धन कमायें, वह गाढ़े पसीने की कमाई हो, अन्याय, अधर्म और दूसरों का शोषण करके द्रव्य संग्रह न करें अपितु न्याय और सत्य के मार्ग पर चलते हुए धर्म पूर्वक ही धन का उपार्जन करें क्योंकि धर्म पूर्वक उपार्जित धन ही कल्याणकारी होता है, अधर्म द्वारा उपार्जित धन से आरम्भ में मनुष्य फलता और फूलता है, परन्तु पीछे समूल नष्ट हो जाता है। धन कमाओ, परन्तु उसके साधन भी पवित्र हों।

श्रेष्ठ सन्तानः—घर में सन्तान का होना भी आवश्यक है। घर में यज्ञों का अनुष्ठान होता है, गोपालन होता है और धन धान्य भी है परन्तु यदि सन्तान नहीं तो वह घर श्मशान है। एक संस्कृत के कवि ने कहा भी है 'अपुत्रस्य गृहं शून्यम्'। हमारे घरों में कुमार हों, तरुण हों नन्हे-नन्हे बच्चे किलकारी मारते हों। घर में सन्तान हो परन्तु वह सन्तान श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ सन्तान का निर्माण उस समय हो सकता है जब विवाह के उद्देश्य को भली भांति हृदयगम कर लिया जाये। वैदिक धर्म के अनुसार 'विवाहो न विलास अर्थो' विवाह भोगों के लिये नहीं है। विवाह का उद्देश्य है परस्पर की सहायता से आत्मिक उन्नति प्राप्त करना जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है:—

'स रोक्ष्यण जायामामन्त्रयते' "जाया एहि स्वो रोहाव इति।"

"रोहाव" इत्याह जाया (शतपथ ५।२।१।१०)

पुरुष अपनी पत्नी को ऊपर जाने के लिये बुलाता है, "हे पत्नी ऊपर चलें।" वह उत्तर देती है 'अवश्य'

यह है विवाह का उद्देश्य। इस बात को ध्यान में रखते हुए उत्तम सन्तान भी अवश्य ही उत्पन्न करनी चाहिये परन्तु दो या तीन से अधिक नहीं क्योंकि:—

बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश (ऋ० १।१६४।३२)

बहुत सन्तान वाले बहुत कष्ट उठाते हैं। सिंही एक सन्तान उत्पन्न करती है परन्तु वह सिंह होता है, गधी अनेक सन्तान उत्पन्न करती है परन्तु सब भार ढोते हैं। एक कवि ने कहा है।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्या युक्तेन साधुना।
अह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी॥

यदि पुत्र सज्जन और विद्वान् हो तो एक भी कुल को आनन्दित कर देता है जैसे चन्द्रमा रात्रि को आनन्ददायक बना देता है।

वातावरण की वेदमयता और सत्संग—सन्तानों को श्रेष्ठ, मातृ, पितृ, गुरुभक्त, देश भक्त और राष्ट्रभक्त बनाने के लिये घर वातावरण को वेदमय बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। घरों में प्रातःकाल और सायंकाल वेद की ध्वनि निनादित हो। शृंगार और सिनेमा के अश्लील गाने न हों। बच्चा जो कुछ सीखता है, वह माता पिता पारिवारिक जनों तथा घर के वातावरण से सीखता है। यदि माता पिता अच्छे कर्म करते हैं तो बच्चे भी निश्चित रूप से अच्छे बनेंगे। यदि घर में वेद का स्वाध्याय होता है, धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन होता है, तो बच्चे भी वेद के विद्वान् धार्मिक और ईश्वर

भक्त बनेंगे। इसके विपरीत यदि माता पिता सिनेमा आदि देखते हैं, घर में हर समय रयिदेव (Radio) बजता है तो बच्चे भी सिनेमा के शौकीन बनेंगे। पवित्र वातावरण से ही सन्तान सदाचार सम्पन्न बनेंगी अतः घर में प्रातः सायं प्रभु की उपासना होनी चाहिए। मनु जी महाराज कहते हैं—

न तिष्ठति तु या पूर्वां नोपासते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रबद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विज कर्मणः॥
(मनु० २।१०३)

जो न प्रातःकाल सन्ध्या करता है और न ही सायंकाल सन्ध्या करता है, वह सम्पूर्ण द्विज कर्मों से शूद्र के समान बहिष्कार करने योग्य है।

बच्चों को श्रेष्ठ, सदाचारी और उत्तम बनाने के लिए एक पारिवारिक सभा प्रतिदिन लगनी चाहिए, जिसमें घर के अबाल वृद्ध—सभी व्यक्ति यहां तक कि घर का सेवक भी उसमें सम्मिलित हो। सन्ध्या तथा ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् वहां ज्ञान चर्चा हो। प्रत्येक सदस्य प्रतिदिन कोई न कोई नई बात अवश्य सुनाये। इसी प्रकार वातावरण की वेदमयता और पारिवारिक सभा से बच्चों में उत्तम गुणों का विकास होगा और सचमुच वे श्रेष्ठ सन्तान बन सकेंगे।

प्रेमभावः—उपरोक्त अन्य सभी बातों के साथ घर में प्रेम का समुद्र ठाठें मारता हो। प्रत्येक व्यक्ति में प्रेम, सेवा भावना और आज्ञा पालन हो। वेद के अनुसार घर में इस प्रकार मिलकर रहें।

अनुव्रतः पितु पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥
(अथर्व ३।३०।२)

पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता के प्रति प्रेम और समान मन वाला हो। पत्नी पति से मिठास भरी और शान्त वाणी में वार्तालाप करने वाली हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसार मुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं बदत भद्रया॥
(अथर्व० ३।३०।३)

भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे, परिवार के सभी लोग एक व्रत—उद्देश्य वाले होकर मीठी वाणी बोलें।

इन दोनों मन्त्रों में मीठी वाणी पर बड़ा बल दिया गया है और घर की सुख शान्ति के लिए यह है भी आवश्यक। जहां दो बर्तन होते हैं वे खटक भी जाते हैं, परन्तु यथा सम्भव मधुर वाणी का ही प्रयोग करना चाहिये। मधुर भाषण का बड़ा प्रभाव होता है। मधुर भाषण से मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी भी प्रसन्न होते हैं। मधुर भाषण से संसार को वश में किया जा सकता है। फिर एक छोटे से घर का तो कहना ही क्या? मीठा बोलना वशी करण मन्त्र है—

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजे चहुं ओर।
वशी करण यह मंत्र है तजदे वचन कठोर॥

मीठा बोलने से शान्ति प्राप्त होती है और व्यय कुछ नहीं होता, अतः मीठा बोलो। प्रेम के ऊपर बल देते हुए Henry Van Dyke ने बड़ा सुन्दर लिखा है—

"Every home where love abides and friendship is a guest is surely home, and home, sweet home, for there the heart can rest."

वह घर जिसमें प्रेम का निवास है तथा जहां पर मित्रता का निवास है, वही वास्तव में घर है, वही प्यारा घर है क्योंकि वहीं मन को शान्ति प्राप्त हो सकता है।

गृहस्थ स्वर्ग—स्वर्ग और नरक कहीं आकाश में नहीं, अपितु इसी संसार में हैं, इस विषय में Hare ने भी ठीक ही लिखा है—

"To Adam paradise was home and to the good among his desendants home is paradise.

अर्थात् आदम ने तो स्वर्ग में अपना घर बनाया था, परन्तु उसकी उत्तम सन्तान अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य घर में स्वर्ग बनाते है अथर्ववेद ४।३४।६ में इस स्वर्ग का चित्र इस प्रकार खेंचा गया है—

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः ॥

जहां घी और शहद के तालाब भरे हों, दूध दही की नदियां बह रही हों तथा आनन्द को उत्पन्न करने वाली धारायें सदा उपस्थित रहें, वही स्वर्ग लोक है।

और घर का बाह्य आकर्षण किस प्रकार का हो—

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणी।
उत्सो वा तत्रजायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥
(अथर्व० ६।१०१।१)

घर के उपवन में हरी हरी घास लगी हुई हो जिनमें नाना प्रकार के पुष्प खिले हुए हों, एक ओर फव्वारा छूट रहा हो और दूसरी ओर कमल खिला सरोवर शोभायमान हो।

चाणक्य ने कहा है—

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी।
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥

जिसका पुत्र वश में है, स्त्री आज्ञाकारिणी है और विपुल धन धान्य है, उसको यहीं, इस संसार में ही स्वर्ग प्राप्त हो जाता है। इसी गृह स्वर्ग के लिए पति और पत्नी से कहा है—

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥
(अथर्व० १४।१।२२)

आप दोनों वर वधु गृहाश्रम के इस स्वर्ग में रहें और पुत्र पौत्रों के साथ हंसते खेलते आनन्द मनाते हुए सुन्दर घर में रहते हुए इस आश्रम की सारी आयु व्यतीत करें।

हमारे घरों में यज्ञों का अनुष्ठान होता रहे, गोपालन हो, धन धान्य की न्यूनता न हो, कोई रोगी न हो, कोई दुःखी न हो, पुत्र आज्ञाकारी हो और धर्मपत्नी मधुर बोलने वाली हो, तो फिर संसार में आमोद प्रमोद, आनन्द और प्रसन्नता का एक अभूतपूर्व स्रोत बहेगा, तब यह संसार जो नरक धाम बना हुआ है, निवास करने योग्य एक उत्तम स्वर्ग समान होगा जो मुसलमान और ईसाइयों की जन्नत से कहीं अधिक श्रेष्ठ होगा।

अन्त में प्रभु से आप के लिए यही मंगल कामना है, कि प्रभु आपको बल दे, शक्ति दे और सुमति दे कि आप अपने गृह को एक आदर्श वैदिक घर बनाने में सफल हों।

आह्वान

❀ मित्रसैन आर्य शास्त्री, एल० एम० सी० अलीगढ़

बढ़ा आ रहा शत्रु तुम्हारा तुम अब तक क्यों सोते हो ?
विश्वविजयनी शक्ति तुम्हारी उसको तुम क्यों खोते हो ?
तनिक तो सोच विचारो मन में रक्षक ईश तुम्हारा है।
जाग उठो भारत के पुत्रों मां ने तुम्हें पुकारा है ॥ १ ॥

सिसक रहा कश्मीर आज भी खूनी अत्याचारों से।
मानवता हो रही त्रसित पापी के पापाचारों से।
चीनी शत्रु ने सीमा पर तुमको आज निहारा है।
जाग उठो भारत के पुत्रों मां ने तुम्हें पुकारा है ॥ २ ॥

कोटि कोटि पुत्रों के बल पर रक्षित जिसका मान रहा।
ऊंचा मस्तक सदा हिमालय मां का जो अभिमान रहा।
हुआ पददलित तीर्थ विश्व का जिस पर देव तुम्हारा है।
जाग उठो भारत के पुत्रो मां ने तुम्हें पुकारा है ॥ ३ ॥

जाग उठी अब शक्ति शिवा की वीर प्रतापी जाग पड़ा।
लक्ष्मी जागी राणा जागा और वैरागी हुंकार पड़ा।
लद्दाख असम का कण कण भी करता आह्वान तुम्हारा है।
जाग उठो भारत के पुत्रों मां ने तुम्हें पुकारा है ॥ ४ ॥

वैदिक विश्वकोश

[वैदिक अनुसन्धान कार्य की महत्त्वपूर्ण योजना]

❀ श्री पं० वीरसेन जी वेदश्रमी, वेद-सदन,
७९, महारानी रोड, इन्दौर

हमारी मान्यता तथा दृष्टिकोण से वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद समस्त ज्ञान का भण्डार है। सृष्टि के आरम्भ से ही अनेक ऋषि, मुनि, ब्रह्मनिष्ठ योगी एवं विद्वानों ने इसके लिये अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण किया। इसके रहस्यों का पता लगाने का प्रयत्न किया तथा अपने सामर्थ्यानुसार वेद से ज्ञान प्राप्त करके भूमण्डल पर विद्या एवं विज्ञान का प्रचार किया। वेद अगाध ज्ञान राशि हैं। उसका दोहन निरन्तर होना चाहिये अर्थात् उससे ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रयत्न निरन्तर होते ही रहना चाहिये। इस परम धर्म के लिये हमें अपना जीवन अर्पण करना चाहिये। जितना ही अधिक वेदों का मन्थन होगा उतना ही अधिक नवनीत भी उससे प्राप्त होगा।

महर्षि दयानन्द ने इस युग में वेदों का उद्धार किया। उन्होंने बताया कि वेद सब सत्य विद्याओं के भण्डार हैं। महान् ज्ञान राशि हैं। महर्षि दयानन्द के पश्चात् योगिवर अरविन्द ने अनुभव किया कि वेद उच्चतम ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। वास्तव में वेदों का अवलोकन और उससे परोक्ष अर्थ की प्राप्ति केवल विद्वत्ता के आधार पर ही नहीं हो सकती है, अपितु विद्वत्ता के साथ योग साधनादि अन्य योग्यताओं की भी आवश्यकता है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने वेदार्थ को समझने के लिये १२ प्रकार की योग्यतायें सम्पादन करना बताया है। आज के विद्वान् चाहे वे पाश्चात्य देशीय हों या एतद्देशीय हों, जब तक उन योग्यताओं को प्राप्त नहीं करेंगे, तब तक यथार्थ में वे वेदार्थ को नहीं समझ सकेंगे और न समझा ही सकेंगे।

अभी मार्च मास में श्री प्रो० देवप्रकाश जी पातंजल, शास्त्री एम० ए० के साथ बड़ौदा विश्व विद्यालय के प्रोफेसर श्री भावे महोदय से भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। आप सुविख्यात वेदों के विद्वान् हैं। आपने कहा कि अब ऐसा अनुभव होता है कि जो कुछ अर्थ हमने वेदों का समझा और किया है, वास्तविक अर्थ और ज्ञान तो उससे परे ही है, और यह ज्ञान बहुत उत्कृष्ट है। इन बातों से ज्ञात होता है कि वेदार्थ की प्राप्ति एवं वेद की विद्याओं के अनुसन्धान के लिये अनेक प्रकार से प्रयत्न निरन्तर होने चाहिये। वेद का ज्ञान हमारी दृष्टि से अगाध है, अनन्त है। अतः यह कार्य बड़ी तत्परता, उत्साह एवं वेग से अनेक विद्वानों द्वारा अनेक स्थानों पर करना अत्यावश्यक एवं अनिवार्य है।

वेद से आज यदि हम विद्या, विज्ञान, सभ्यता, कला, साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, आदि नहीं सीख सकते और न सिखा सकते हैं तो वेदों का पठन-पाठन तथा प्रचार हम में से व्यवहारतः लोप हो जायगा। व्यवहार रूप में हम कुछ और ही बन जावेंगे तथा बन भी गये हैं। केवल मात्र नाम के लिये ही हम अपने को वैदिक धर्मी कह कर संतुष्ट हो जाते हैं। वर्तमान में हमारी स्थिति वास्तव में यही सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। आज वेद की हममें कोई प्रतिष्ठा नहीं। पूर्ण उपेक्षा ही है।

लोग वेद नहीं पढ़ते। उनको वेदों के प्रति श्रद्धा ही नहीं है। श्रद्धा हो भी क्यों। जब तक उनको उससे कुछ प्राप्त नहीं होता तब कैसे उनको श्रद्धा हो सकती है? जिससे लोगों को प्राप्ति हो, जो उनके व्यवहार का साथी हो, उसके प्रति श्रद्धा हो सकेगी। जब तक वेदों को अपना सर्वस्व मानने वाले लोग ही वेदों को नहीं पढ़ते पढ़ाते, नहीं सुनते

सुनाते और वेद के अन्तर्गत विद्याओं एवं विज्ञान को रूप रेखा तथा नाम भी प्रकट नहीं करते तथा वेदों को सर्व साधारण के समझने समझाने के लिये उपयोगी ग्रन्थों का निर्माण भी नहीं करते तब तक वेदों के प्रति श्रद्धा और उसके प्रति अध्ययन की रुचि भी जागृत नहीं हो सकती। जो श्रद्धावश वेदों को पढ़ते भी हैं, वे उसे शीघ्र ही छोड़ देते हैं। कहते हैं समझ में नहीं आता है। अथवा यह कह देते हैं कि हमें कुछ प्राप्त नहीं होता। शिक्षणालयों में जो वेदों को पढ़ते हैं वे पाश्चात्य विद्वानों के अभिमतों को ग्रहण कर, वेदों को केवल ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रंथ ही मानने लगते हैं।

ऐसी स्थिति में वेदों के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने के लिये विशाल वैदिक विश्वकोश के निर्माण की आवश्यकता है, जिसके आश्रय से सर्व साधारण को तथा विद्वानों को एवं अनुसन्धान करने वालों को वेद के अध्ययन में महान् सुविधा हो सके। यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है, एवं महान् भी है। एक ही नहीं, अपितु अनेकों विद्वानों के स्वेच्छा एव त्याग भाव के सहयोग से तथा ऋषि ऋण से यत्किंचित् उऋण होने के लिये अपना जीवन वेदों के लिये अर्पण करने अथवा यथावकाश वेदों के लिये समय देने से ही यह महान् कार्य पूर्ण हो सकेगा।

वैदिक विश्व कोश के महान् कार्य का प्रारम्भ १४ जनवरी १९६२ की मकर संक्रान्ति से यजुर्वेद के आधार पर मैंने प्रारम्भ भी कर दिया है। मैंने अभी इस वैदिक विश्व कोश की रूपरेखा निम्न प्रकार निर्धारित की है। विद्वानों के परामर्श से इसमें परिवर्तन तथा परिवर्धन भी हो सकेंगे—

(१) वेद के ६ अंग हैं। उनमें प्रथम अंग शिक्षा है। शिक्षा की रीति से यजुर्वेद संहिता के मन्त्रों का मुद्रण अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव से आज सर्व साधारण में मन्त्रों के उच्चारण में इतने दोष बढ़ गये हैं कि वेद का स्वरूप ही विकृत होने लगा है। अतः शिक्षा की पद्धति के अनुसार यजुः संहिता का सम्पूर्ण स्वर चिन्हों सहित मुद्रण और उच्चारण का प्रचलन आवश्यक है। इसमें अध्यायान्तर्गत अनुवाद एवं सूक्तों का भी प्रदर्शन हो। ऋषि, देवता छन्द एवं स्वर भी मुद्रित हों। इस प्रकार का यजुर्वेद का ग्रन्थ प्रत्येक के गृह में होना ही चाहिये। इसी से सर्व प्रथम मन्त्रों के पाठ एवं अभ्यास करायें जावें जिससे दोष रहित उच्चारण-पूर्वक मन्त्रों का शुद्ध एवं स्वर सहित अभ्यास वृद्धि को प्राप्त हो तथा प्रचलित हो सके।

(२) दूसरा वेदांग कल्प है जिसके द्वारा कर्म-काण्ड, यज्ञ-यागादि होते हैं। हमारे यहाँ पारायण यज्ञ प्रचलित हो गया है। इसके भी विधिवत् प्रयोग ज्ञान के लिए महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के कर्मकाण्ड ग्रन्थों का तथा अन्य कर्मकाण्ड के ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि प्रचलित परिपाटी में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है और उसकी पूर्ति के लिए यजुर्वेद पारायण स्वाहाकार संहिता के पृथक् मुद्रण की आवश्यकता है जिससे सर्व साधारण जो पारायण यज्ञ के प्रेमी हैं वे व्यवस्थित एवं शुद्ध रीति से पारायण यज्ञ को कर सकें। इसी के अन्तर्गत अनेक ऐसे यज्ञों का भी उल्लेख हो सकेगा जो मन्त्रों में अपने प्रकरणानुसार अथवा देवता या कर्मानुसार भी प्रकट हो रहे हैं। पारायण यज्ञ के कार्य में अनभिज्ञता से से केवल मात्र संहिता ग्रन्थ से यज्ञ करने में अनेक अपूर्णतायें रह जाती हैं। वे इस प्रकार के ग्रन्थ के मुद्रण से पूर्ण हो सकेंगी। इसके अतिरिक्त इसमें निम्न विभागों का भी समावेश होगा—

(अ) विविध यज्ञों के नाम और इन यज्ञों में प्रयोजनीय मन्त्रों का निदर्शन। विविध कर्मांगों के लिये मन्त्रों का विनियोग तथा प्राचीन विधियों का निरूपण।

(आ) वेद में आये यज्ञ निमित्त द्रव्य एवं पात्रों के नामों की सूची।

(इ) विविध वस्तुओं एवं प्राणियों के यज्ञ तथा अन्य कार्यों में उपयोग के विधि वाक्य संग्रह।

(ई) विविध देवताओं के मन्त्रों का दैवत् क्रमानुसार स्थल निदर्शन।

(उ) यज्ञ से सम्पादनीय तत्व एवं कर्मों की सूची।

(ऊ) देवता, ऋषि, छन्द एवं मंत्र स्वर की सूची, स्थल निर्देश सहित।

(ए) दिशा, दिशाधिपति, मन, अध्यात्म, परमेश्वर आदि शब्दों की सूची। (क्रमशः)

वैदिक धर्म में सत्य का महत्व

❀ वैदिक गवेषक, शिवपूजन सिंह "पथिक"
बी० ए० सिद्धान्त वाचस्पति, कानपुर

आर्य समाज का चतुर्थ नियम हैं—"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।"

"An Arya should always be ready to accept truth and renounce untruth when discovered."

वैदिक संस्कृति और सभ्यता का मूल वेद है। वेद की शिक्षा है कि—

"अग्ने व्रतपतेव्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि" ॥

[यजु० अ० १, मंत्र ५]

महर्षि दयानन्द जी कृत अर्थः—"(व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर! मैं (अनृतात्) जो झूंठ से अलग (सत्यम्) वेद विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश कराने हारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (शकेयम्) समर्थ और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा।"

पुनः वेद में आया है कि—

"दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धमनृते ऽदधाच्छ्रद्धा ꣳ सत्ये प्रजापतिः।

[यजु० अ० १९ मंत्र ७०]

महर्षि दयानन्द जी—"जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक परमेश्वर (ऋतेन) यथार्थ अपने सत्य विज्ञान से (सत्यानृते) सत्य और झूंठ जो (रूपे) निरुपण किए हुए हैं उनको (दृष्ट्वा) ज्ञान दृष्टि से देखकर (व्याकरोत्) विविध प्रकार से उपदेश करता है जो (अनृते) मिथ्या भाषणादि में (अश्रद्धाम्) अप्रीति को (अदधात्) धारण कराता और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) प्रीति को धारण कराता।

इसी मन्त्र के आधार पर आर्य समाज का चतुर्थ नियम बनाया गया है। यह सत्य शब्द व्याकरण के अनुसार =सत्+यत् से बना है और सत् अस्+शतृ—से कि जिसका अर्थ—अस्तीति है तथा सत्य का अर्थ 'सते हितम्' है।

जो तीनों काल में एक सा ही रहे, यथार्थ ज्ञान का विषयत्व हो और जिसमें हित हो उसको सत्य कहते हैं।

उपनिषद् में 'सत्यम्' इस शब्द को ३ शब्दों का संघात बतलाते हुए कहा है—

..."त्यक्षरं सत्यमिति स इत्येकमक्षरं तीत्येकमक्षरं यमित्येक मक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतो ऽनृतं तदेतदनृतमुभयतः सत्येन परिगृहीतं सत्यभूयमेव भवति नैनं विद्वांसमनृतं हिनस्ति।"

[बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५, ब्रा० ५ कं० १]

अर्थात्—इस 'सत्य' शब्द में तीन अक्षर हैं स त् यः प्रथम सकार और उत्तम अर्थात् अंतिम यकार ये दोनों अक्षर सत्य हैं अर्थात् स्वरयुक्त होने के कारण सत्य हैं। इन दोनों स, य में परमात्मा-वाचक अकार विद्यमान है अतः ये सत्य हैं और

मध्यगत त् हल होने के कारण अनृत=असत्य है परन्तु यह अनृत दोनों ओर सत्य से गृहीत है इसी कारण जगत् में सत्य की ही अधिकता होती है। ऐसे जानने वाले को असत्य नष्ट नहीं करता।"

इस प्रकार "सत्यम्" नाम की व्याख्या करते हुए उपनिषद् ने कहा है कि—

"तत्सत्ये प्रतिष्ठितम्"

[बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५ ब्रा० १४ कं० १]

अर्थात्—वह (ईश्वर) सत्य में ही प्रतिष्ठित है इसलिए सत्य का आश्रय लिए बिना कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता।

"असतो सद्गमय मा तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमयेति।"

[बृहदारण्यकोपनिषद् अ० १ ब्रा० ३, कं०२८]

यह ईश्वर से पवमान सूत्र में प्रार्थना की गई है कि—

"मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो। अन्धकार से मुझको ज्योति की ओर ले चलो। मृत्यु से मुझको अमृत की ओर ले चलो।"

सत्य का बड़ा महत्व बतलाया गया है।

राजर्षि मनु जी ने धर्म के दश लक्षणों में 'सत्य' को भी स्थान दिया है।

"धृतिः क्षमा दमो ऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

[मनुस्मृति ६।९२]

इसकी टीका करते हुए पं० कुल्लूक भट्ट जी लिखते हैं—"यथार्थाभिधानं सत्यं" अर्थात् यथार्थ-कथन सत्य है।

महर्षि दयानन्द जी इस श्लोक की व्याख्या करते हुए "सत्यार्थ प्रकाश" पंचम समुल्लास में लिखते हैं—(सत्य) जो पदार्थ जैसा हो उसको वसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी।"

"सत्येषुयतितव्यवः सत्यं हिरमं बलम्"

[महा० अनुशासन पर्व १६७-५०]

अर्थात्—"सत्यता के साथ व्यवहार करना चाहिये सत्य ही सब से बड़ा है।

"नास्ति सत्यात्परो धर्मः"

[महा० शान्तिपर्व १६२।२४]

अर्थात्—सत्य से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है।

"अश्वमेध सहस्रंच सत्यंच तुलयाधृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते"॥

[महाभारत आ० ७४।१०२]

अर्थात्—"सहस्र अश्वमेध और सत्य की तोल की जाये तो एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों से सत्य का पलड़ा भारी रहेगा।"

"सत्यपूतांवदेद्वाचं" [मनुस्मृति ६।४६]

अर्थात्—सत्य से वाणी को पवित्र करके बोलना चाहिए।

"सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यम्प्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥"

[मनु० ४।१३८]

अर्थात्—"सत्य बोले, प्रिय बोले और जो प्रिय न हो ऐसा न बोले और असत्य प्रिय भी न बोले, यह सनातन धर्म है।"

"सत्यंवद, धर्मंचर" [तैतिरियोपनिषद् १।११।१]

अर्थात्—"सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो।"

"सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितंवदेत।
यत्भूतहितमत्यन्तं एतत्सयं मतंमम्॥"

[महा० शान्ति पर्व ३२९।१३ तथा २८७।१९]

अर्थात्—(नारद जी शुक्र से कहते है)—जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता है। वही हमारे मत से सत्य है।"

हास्य में भी असत्य बोलना ठीक नहीं है।

"आत्महेतोः परार्थे वा नर्म हात्याश्रयन्तथा।
ये मृषा नवदन्तीहतेनराः स्वर्गगामिनः॥"

[महा० अनुशासन प० १४४।१९]

अर्थात्—"जो व्यक्ति अपने या पराये के लिए

हंसी में भी असत्य नहीं बोलते वे सुख प्राप्त करते हैं।

"सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरहजीयस्तदित्सोमो अवति हन्त्यासत्॥" [ऋ० ७।१०४।१२]

अर्थात्—"समझदार व्यक्ति के लिए यह भली भांति विदित है कि (सत् च-असत्-च वचसी) सत्य वचन और असत्य वचन, परस्पर स्पर्द्धा करते हैं, परन्तु उनमें वह सत्य है जो दोनों में सरल है उसी को सौम्य प्रकृति वाला सुजन अपने पास रखता है, असत्य को नष्ट कर सकता है।

यहां सत्य को अति सरल कहा गया है। विद्वान् मूर्ख, वृद्ध, शिशु सभी सुगमता से सत्य बोल सकते हैं असत्य में अनेक बनावटी युक्तियों की शरण लेनी पड़ती है। वेद के अनुसार जो सरल रूप सत्य को अपनाता है वह सोम है।

श्री पातञ्जल ऋषि ने 'योगदर्शन' द्वितीय अध्याय साधन पाद, सू० ३० में कहा है—

"अहिंसात्यास्तेयब्रह्मचर्यापिरिग्रहा यमा।"

व्यासभाष्यम्—"सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे। यथा दृष्टं यथाऽनमितं यथाश्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति। परत्र स्वबोध संक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वंचिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्ति वन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय। यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्पापमेव भवेत्तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण दुःखं तमः प्राप्नुयात्। तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्।"

अर्थात्—"अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना। जैसा देखा हो, जैसा अनुमान किया हो, जैसा सुना हो, वैसा वाणी से कथन करना और मन में धारण करना। दूसरे पुरुष में अपने बोध के अनुसार ज्ञान कराने में कही हुई वाणी यदि वह धोखा देने वाली, भ्रांति करने वाली, या उल्टी बन्धन करने वाली न हो तो "सत्य" है। यह सब प्राणियों के उपकार के लिए प्रवृत्त हुई हो तो सत्य है न कि प्राणियों के नाश करने के लिए जो वाणी कही गई हो वह सत्य है। अर्थात् वह कदापि सत्य नहीं है, पापयुक्त ही है उस पाप से बड़े दुःख को प्राप्त होता है। इस कारण अच्छे प्रकार परीक्षा अर्थात् शास्त्र से तत्त्व निर्णय करके सर्व प्राणियों के हितार्थ सत्य बोले।"

भोजवृत्तिः—**"सत्यं वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वम्।"**

अर्थात्—"सत्य यह है कि वाणी और मन की यथार्थता अर्थात् जैसा अर्थ है उसके अनुसार ही कहना और मन में धारण करना।

उपनिषद् में भी कहा है कि—

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।"
[मुण्डकोपनिषद् ३।१।१।५]

अर्थात्—सत्य से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

[शेष ७ पृष्ठ का]

कहिये इसको श्री माधवाचार्य जी के सनातन धर्म की जय कहा जाय या पराजय ?

देश भर के पौराणिक पण्डितों और विशेषकर श्री माधवाचार्य जी को मेरा खुला चेलेंज

यदि साहस है तो यह सिद्ध करें कि—पुराण १८ हैं दूसरा यह कि—भागवत आदि पुराण महर्षि वेद व्यास जी के बनाये हुए हैं तथा वेदानुकूल हैं और मानने योग्य हैं।

यदि मौखिक शास्त्रार्थ करना चाहें तो मैं किसी भी बड़े नगर में शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ। और यदि लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना चाहें तो कहीं भी आने जाने की आवश्यकता नहीं है "वेदप्रकाश" आदि किसी भी मासिक पत्र में लेखबद्ध शास्त्रार्थ आरम्भ करने को मैं तैयार हूँ। पीछे उस शास्त्रार्थ को अविकल रूप से पुस्तकाकार भी छपवाया जा सकेगा।

ग्रामों में जा जा कर लेखबद्ध शास्त्रार्थ की डींगें मारना सर्वथा अनुचित है।

निवेदक—
अमरसिंह आर्य पथिक
स्थाई पता—अरनियां (बुलन्द शहर) उ० प्र०
वर्तमान पता—गोल्डन फैक्टरी जी० टी० रोड
लिलुआ (हवड़ा)

एक महत्त्वपूर्ण पत्र

[यह पत्र डाक्टर साहब ने प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू की सेवा में भेजा था। उन्होंने इसे स्वास्थ्य विभाग में भेज दिया 'वेद प्रकाश' परिवार के सदस्यों के लाभार्थ हम इसे यहां दे रहे हैं। पत्र आङ्गल भाषा में था। इसका अनुवाद मेरे लघु भ्राता श्री कृष्ण स्वरूप B. E. ने किया है।

—विद्यार्थी

सेवा में,

श्री जवाहर लाल जी नेहरू
प्रधान मन्त्री,
त्रिमूर्त्ति, नई दिल्ली।

आदरणीय महोदय,

हमारे देश के लाखों व्यक्तियों की सेवा करने की इच्छा ने मुझे प्रेरित किया है कि मैं मनुष्य की व्याधियों के कारणों पर अपने विचार प्रस्तुत करूं, यद्यपि मैं कोई बड़ा विद्वान् होने अथवा वैज्ञानिक खोज करने का दावा नहीं करता। आपको ज्ञात ही होगा कि सहस्रों वर्ष पहले हमारे प्राचीन ऋषि जैसे 'कणाद' और 'शृङ्गी' सत्य की खोज के लिए केवल जिज्ञासु एवं समाधिस्त होकर इस परिणाम पर पहुंचे कि 'अणु' ही द्रव्य का मूल है और यही सिद्धान्त वैज्ञानिक परीक्षा की कसौटी पर आज भी पूरा उतरता है। यदि मेरे विचारों से जो कि मैंने कई वर्षों में सैकड़ों रोगियों की जांच एवं निरीक्षण के आधार पर बनाए है, लाखों व्यक्ति अपनी हानिकारक आदतों जिनका वे अनजाने में शिकार हो जाते हैं के प्रति सजग हो जाते हैं तो मेरा उद्देश्य सफल हो जायेगा।

मनुष्य क्यों व्याधिग्रस्त होता है तथा क्यों विभिन्न रोगों का शिकार होता है—

उपर्युक्त प्रश्न बाल्यकाल से ही मेरे मस्तिष्क में घूम रहा था। मेरे पूज्य पिता श्री केवलराम जी सिंध (पाकिस्तान) में प्रसिद्ध हकीम थे तथा उन्हीं के चरणों में मैंने चिकित्सा की शिक्षा पाई जब कि वे रोगियों का निदान करते थे। तत्पश्चात् मैंने कराची में गवर्नमेण्ट सिविल हस्पताल में प्रवेश किया तथा वहां मुझे सहस्रों रोगियों के निरीक्षण का अवसर मिला। विनीत रूप से मैं उनसे प्रश्नोत्तर करता तथा उनके रोग का इतिहास तथा खान-पान सम्बन्धी स्वभाव का अध्ययन करता, किन्तु एलोपैथिक पद्धति द्वारा मेरे प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर न मिल सका। अतएव मैं प्राचीन ऋषियों के प्रसिद्ध आयुर्वैदिक कार्यों जैसे हवन यज्ञ की ओर अग्रसर हुआ। आयुर्वेद के अध्ययन तथा एलोपैथिक ज्ञानकी सहायता से मैं निम्न परिणाम पर पहुँचा--

मनुष्य की व्याधियों के तीन कारण है।

(अ) आन्तरिक विष
(ब) सूक्ष्म जीवाणु (बेकटिरिया)
(स) त्रिदोष (वात, पित्त, कफ का असन्तुलन)

यदि उपर्युक्त तीन कारणों को हटा दिया जाये तो मनुष्य व्याधियों से मुक्त हो जायेगा। किन्तु क्या इन कारणों से मनुष्य बच सकता है?

मैंने फिर आयुर्वैदिक पुस्तकों का अध्ययन किया तथा मुझे 'हां' में उत्तर मिला। मनुष्य व्याधियों से अवश्य मुक्त हो सकता है यदि वे अपने खान-पान तथा रहन-सहन की ओर विशेष ध्यान रखें।

(१) **भोजन**—शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता के विषय में मुझे यहां विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है। आयुर्वेद के अनुसार भोजन "अमृत" है किन्तु भोजन का उचित रूप से चुनाव होना चाहिए (घी, गेहूँ, चावल ज्वार, दालें तथा फल सब्जियां)

(६) **पेयपदार्थ**:—प्राकृतिक पेयपदार्थ जैसे जल तथा दूध।

(अ) **स्वास्थ्यकर रहन-सहन**:—ऐसे मकानों में जहां वायु का समुचित रूप से प्रवेश हो, शारीरिक स्वच्छता तथा शारीरिक परिश्रम अथवा व्यायाम।

(व) **उचित वस्त्र धारण**:—वस्त्र थोड़े ढीले होने चाहिये। मनुष्य को मन की पवित्रता पर विशेष बल देना चाहिए तथा जहां तक सम्भव हो अत्यधिक शरीर सुख के लिए अपनी जीवन शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहिये। इन सब बातों के अतिरिक्त मनुष्य को परमात्मा के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। दैनिक जीवन में हवन यज्ञ तथा गायत्री मन्त्र का पाठ करने से पवित्रता तथा मन की शान्ति प्राप्त होगी जो कि स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। यदि वर्तमान समय के मशीन की भांति व्यस्त जीवन में यह सम्भव न हो, तो भी ईश-प्रार्थना के लिए थोड़ा समय तो अवश्य निकालना चाहिए। गांधी जी का प्रार्थना में अटूट विश्वास था तथा इसी से उन्हें साहस तथा सहनशीलता प्राप्त हुई।

किन्तु हमें तो प्रायः अस्वास्थ्यकर तथा अप्राकृतिक भोजन का स्वभाव सा हो गया है तथा यही अनेक रोगों का कारण है। कुछ उदाहरण लीजिए:—

चाय, काफी तथा कोको–चाय में कैफीना, टेनिन तथा आग्जैलिक एसिड होते हैं। चाय में कैफीना की मात्रा अन्य दोनों तत्त्वों की अपेक्षा अधिक होती है, अतः मैं केवल कैफीना के औषधि तत्त्वों का विवेचन करूंगा:—

कैफीना:—$C_5H(CH_3)_3N_4 2.H_2$

चाय में 3% तथा काफी में 1% कैफीना होती है।

SYN B.P.—Theine, Guaranine

"औषधि विज्ञान"

आन्तरिक प्रभाव:—कैफीना प्रायः लार तथा जठराग्नि की ग्रन्थियों को उत्तेजित करती है तथा पेट की अंतड़ियों से सम्बन्धित रक्तवाहिनी नाड़ियों को फैलाती है। परिणाम स्वरूप चाय तथा काफी कुछ अवस्थाओं में पाचन क्रिया में सहायक होती है। कुछ अन्य दशाओं में काफी मल को मृदु करने वाली (रेचक) सिद्ध होती है। इनके अधिक मात्रा के प्रयोग से पेट की अतड़ियों में उत्तेजना के कारण अजीर्ण व मन्दाग्नि रोग हो जाते हैं।

हृदय:—कैफीना शीघ्र ही रक्त में मिल कर बिना किसी परिवर्त्तन के चक्कर लगाती है। औषधि के रूप में ली गई मात्रा से भी इससे न केवल ऐंठन ही बढ़ती है वरन हृदय की धमनी के सिकुड़ने का समय भी बढ़ जाता है। और इस प्रकार हृदय की धमनी के फैलने का समय कम हो जाता है। परिणाम स्वरूप धमनी का तनाव बढ़ जाता है तथा नाड़ी पूर्ण किन्तु धीमी चलती है। अत्यधिक मात्रा से नाड़ी बहुत तेज, अव्यवस्थित रूप से (क्रमहीन) तथा रुक २ कर चलती है और अन्त में हृदय धमनी के सिकुड़ते समय बन्द हो जाता है। ये परिणाम अधिकतर औषधि के हृदयस्नायु पर सीधे प्रभाव के कारण होते हैं तथा कुछ हृदय के निवास-स्थल पर प्रभाव के कारण।

रक्तवाहिनी नाड़ियां:—कैफीना से पहले धमनियां सिकुड़ती हैं तथा फिर फैल जाती है इस प्रकार ये पहले रक्तचाप बढ़ाती है तथा फिर कम करती है। मांस पेशियों की झिल्ली पर इसके दुष्प्रभाव के कारण ऐसा होता है।

श्वास क्रिया:—थोड़ी (औषधि रूप) मात्रा से श्वास क्रिया तीव्र होती है किन्तु अधिक मात्रा में श्वास तथा हृदय सम्बन्धी स्नायु और प्रभाव के कारण श्वास क्रिया कम हो जाती है।

तापमान:—थोड़ी मात्रा से कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु अधिक मात्रा से तापमान बढ़ जाता है।

नाड़ीमण्डल:—थोड़ी मात्रा में कैफीना नाड़ी-

मण्डल के मस्तिष्क के प्रधान भाग, कुब्बेदार भाग तथा महीन तन्तुओं को उत्तेजित करती है। इसका उत्तेजक प्रभाव चाय अथवा काफी के एक कप पीने से स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि इससे भूख तथा थकावट दूर हो जाती है मन प्रसन्न हो जाता है तथा कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती हैं। अधिक मात्रा में इससे विकलता, जागरण कान बजना, मूर्छा तथा कंपकंपी आदि रोग हो जाते हैं। मनुष्य के महीन तन्तु तथा मांस पेशियां प्रभावित नहीं होती किन्तु मेढ़कों की पेशियों में ऐंठन अथवा मांस पेशियों में कठोरता आ जाती है। मस्तिष्क की तथा गति देने वाली नाड़ियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मेटाबोलिज्म:—(शरीर की वह क्रिया जिससे भोजन जीवित पदार्थों में बदल जाता है।)—हम इसके प्रभाव के विषय में इससे अधिक नहीं जानते कि यह मूत्र में पीले रङ्ग का मल तथा यूरिया (Urea) की मात्रा को बढ़ाता है। कैफीना के प्रभाव के कारण ही ऐसा होता है।

गुर्दा:—प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि कैफीना पहले गुर्दा सम्बन्धी नाड़ियों को सिकुड़ाती है जिससे मूत्र का बहाव कम हो जाता है, किन्तु शीघ्र ही ये नाड़ियां फैल जाती है तथा मूत्र का बहाव बढ़ जाता है। कैफीना का गुर्दे व स्राव सम्बन्धी बाह्य त्वचा पर भी उत्तेजक प्रभाव होता है, किन्तु यह इतना अधिक नहीं जितना प्यूरिन ग्रुप (Theo-bromine and Theophylline Q. V.) के अन्य अंगों पर अतः ये नाड़ियों पर प्रभावोत्पापक भी है तथा मूत्रवर्धक भी।

अत्यधिक विषैला प्रभाव:—६० ग्रेन साईट्रेट विष देने से एक घटना में गले में खुश्की व जलन, प्यास, अंतड़ियों में दर्द, तीव्र उल्टियां व दस्त, सर चकराना अत्यधिक कंपकंपी अधिक मूत्र आना तथा स्पष्ट बुद्धिज्ञान होना देखे गये हैं। नाइटो गिलिसरीन के प्रयोग से रोग मुक्ति हुई (A Treatise or Materia Medica and Therapeutics.)

ये हैं चाय के सम्बन्ध में अन्य प्रवीण व्यक्तियों की सम्मितियां:—

१. डा० जौन हार्वे केलौग (एम० डी० एल० एल० डी० एफ० ए० सी० एस०) औषध विज्ञान के प्रसिद्ध अमरीकी लेखक। इन का एक बड़ा सेनीटोरियन हैं तथा प्राकृतिक चिकित्सा में इनका विश्वास है। अपनी "New Principles of Food" (आहार सम्बन्धी नये सिद्धान्त) पुस्तक में चाय के विषय में लिखते हैं—

"२॥ तोले चाय में ७-८ ग्रेन कैफीना होती है अतः एक चाय के प्याले में प्रायः ४ग्रेन कैफीना होती है। सभी प्रसिद्ध रसायन शास्त्री जानते हैं कि कैफीन एक प्रबल विष है। एक श्री सेह लिखते हैं कि कैफीना इतना शक्तिशाली विष है कि इसकी ६-७ ग्रेन की मात्रा ज्ञानतन्तुओं को उत्तेजित कर देती है ये हृदय के कम्पन को तेज, नाड़ी को गति को क्रमहीन तथा रुक रुक कर चलने वाली बना देती है। इससे सरदर्द, चक्कर आना, कानों में झनझनाहट आदि रोग उत्पन्न होते हैं। आंखों की ज्योति क्षीण होती है तथा मनुष्य अस्थिर तथा निद्रा विमुख हो जाता है। इससे छिद्रों में अनावश्यक उत्तेजना के कारण शरीर को हानि पहुँचती हैं।

२. **डाक्टर एडवर्ड स्मिथ:**—इङ्गलैण्ड के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने सिद्ध किया हैं कि निस्सन्देह कैफीना आरम्भ में मनुष्य को उत्तेजित करती है तथा वह कार्य करना प्रारम्भ कर देता है किन्तु इसका परिणाम वास्तव में बहुत बुरा होता है तथा मनुष्य बहुत थकन अनुभव करता है। आगे ये डाक्टर महोदय चाय, काफी, तम्बाकू व मदिरा आदि अनेक उत्तेजक वस्तुओं को त्यागने की सलाह देते हैं। इन वस्तुओं के प्रयोग से मस्तिष्क तथा हृदय में कृत्रिम उत्तेजना उत्पन्न करके किसी लाभ की आशा व्यर्थ है। जिन व्यक्तियों को उपर्युक्त वस्तुओं से लाभ पहुंचने की आशा है वे मानव आरोग्य शास्त्र के सिद्धान्तों को तनिक भी नहीं समझते।

३. **डा० वैलार्डी**—लिखते हैं "चाय पीने वालों को प्रायः भूख न लगना, मन्दाग्नि अस्थिरता (चित्तभ्रम) दिल बैठना, ज्ञानतन्तुओं की दुर्बलता,

एकाएकी बेहोशी, अजीर्ण व छाती का दर्द आदि रोग लगे रहते हैं।

प्रो० मैण्डॉल--ने एक प्रयोग (परीक्षा) के आधार पर यह सिद्ध किया है कि चाय पीने के पश्चात् मूत्र में यूरिक एसिड की मात्रा दुगनी हो जाती है।

डा० टैल—इंगलैण्ड के खाद्य अनुसंधान विभाग के प्रसिद्ध डाक्टर टैल लिखते हैं मूत्र सम्बन्धी अनेक रोग चाय में कैंफीना के कारण होते हैं। ये यकृत पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है।

महात्मा गांधी लिखते हैं—शरीर को इनमें से (चाय आदि के विभिन्न तत्त्वों) किसी की आवश्यकता नहीं है। चाय जैसी कि प्रायः बनाई तथा पी जाती है, में कुछ भी तो अच्छाई नहीं वरन् यह हानिकारक है। इसके पत्तों में 'टैनिन' होती है जो कि शरीर के लिए बहुत हानिप्रद है। टैनिन का प्रयोग चमड़ी कमाने के कारखानों में चमड़े को कड़ा बनाने के लिए किया जाता है। चाय पीने से टैनिन शरीर में पहुंच कर पेट तथा अंतड़ियों के श्लेष्मायुक्त भीतरी आवरण को भी इसी प्रकार प्रभावित करती है। इससे पाचन शक्ति बिगड़ जाती है तथा अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं। कहा जाता है कि इंगलैण्ड में अनेकों स्त्रियां चाय पीने की आदत के कारण अनेक रोगों से ग्रस्त हैं क्योंकि इसमें टैनिन होती है जो व्यक्ति चाय के अभ्यस्त हो जाते हैं उन्हें यदि उचित समय पर चाय का प्याला न मिले तो वे प्रायः व्यग्र हो उठते हैं"-
(स्वास्थ्य की कुञ्जी)

मेरा अनुभव--कुछ वर्ष पूर्व मुझे चाय पीने की आदत थी, जिसके फल स्वरूप मैं प्रायः गले की खराबी, जुकाम, खांसी, जोड़ों में दर्द, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द, सुस्ती, भूख न लगना, दांत दर्द, मसूड़ों का फूलना आदि रोगों से ग्रस्त रहता तथा मेरा वजन भी कम होने लगा, किन्तु जब से मैंने चाय पीने की आदत छोड़ दी है तभी से प्रायः सभी बातों में सुधार होने लगा है।

मेरा अनुभवः—मैंने आर्य समाज गांधी नगर में श्लेष्मा, खांसी व दमे के रोगियों का 'हवनयज्ञ' द्वारा उपचार के लिये एक कैम्प खोला। मैं सर्वप्रथम रोगियों को चाय से दूर रहने का परामर्श देता तथा इसका बहुत अच्छा परिणाम निकला। इससे प्रोत्साहित होकर में बम्बई गया तथा वहां पर 'सुन्दर सेवक सभा' और प्रो० ताराचन्द्र गाजरा (एम० ए०) के प्रबन्ध में तीन कैम्प खोले ताकि हवन यज्ञ द्वारा उपचार की पद्धति को अधिक बढ़ावा मिले। परिणाम यह हुआ कि ८०% व्यक्ति जो कि उपर्युक्त रोगों से ग्रस्त थे ठीक हो गये!

विना पक्षपात के मैंने वास्तविकता तथा इस क्षेत्र के विशिष्ट अधिकारियों के दृष्टिकोण आपके विचारार्थ तथा ऐसे कार्य के लिए प्रस्तुत किए हैं जैसा कि आप अनेकानेक लोगों के सुधार के लिए उचित समझें जो कि अनजाने में हो कई आदतों का शिकार हो रहे हैं। इससे ५०% रोग समाप्त हो सकते हैं।

आपसे पत्र की प्राप्ती का उत्तर पाकर मुझे अपने प्रयत्नों को आगे बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

आपका विश्वासपात्र

नई दिल्ली — हस्ताक्षर
८ फरवरी १९६२ — (डा० सोभराज के० आर्य)
एफ० आर० सी० पी० कलकत्ता
'हवन यज्ञ' चिकित्सा विशेषज्ञ

पता :
३५५/१५, गांधी नगर,
दिल्ली-३१

सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत

रचयिता—महाकवि पं० जयगोपाल

सम्पादक—पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्यभूषण

सत्यार्थ प्रकाश को दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैय्या छप्पया, कुण्डली तथा कविता में ऐसा सरल सरस रूप दिया है कि पढ़ते २ पाठक आनन्द विभोर हो जाता है।

मूल्य १५) है प्रचारार्थ ८) में दिया जा रहा है। शीघ्र मगावें थोड़ी प्रतियां शेष हैं।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखक:—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सुललित, भावपूर्ण श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र प्रामाणिक सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

बढिया कागज, मोटे अक्षर, बड़े साइज के ६०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १२) केवल

—❀❀❀—

दो सनातन सत्ताएं

लेखक—श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीव और प्रकृति अनादि काल से हैं" को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिनका उत्तर इस्लाम और ईसाईयों के पास नहीं है मूल्य १)। आज ही खरीदिये।

—❀❀❀—

राधास्वामी मत दर्पण

मूल्य २५ नये पैसे प्रचारार्थ २०) सैंकड़ा

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

मूल्य ३७ नये पैसे प्रचारार्थ २५) सैंकड़ा

आर्य राजनीति के कतिपय तत्व

[श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर]

मूल्य ३० नये पैसे प्रचारार्थ २२) सैंकड़ा

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रदायक पुस्तकें

तत्त्वज्ञान	३)
प्रभुदर्शन	२)५०
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्द गायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त भगवान	१)
शंकर दयानन्द	)५०
उपनिषद सन्देश	१)२५
सत्यनारायण कथा	)६२

—❀—

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानद का रंगीन चित्र	१) २५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

———

महर्षि दयानन्द घटना चित्र	)५०
ओ३म्, स्वागतम, नमस्ते, गायत्रीमन्त्र,	मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक)२५

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली-६

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ८५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
प० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३।)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

जून	१९६२
ज्येष्ठ	२०१९
वर्ष	अङ्क
१०	११

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

यश के लिए पुरुषार्थ

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः ।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ (ऋ० ८।६७।१३)

"जो (क्षितीनां) मनुष्यों के (मूर्धानः) सिर स्थान में रहने वाले (अदब्धासः) न दबने वाले (अद्रुहः) द्रोह न करने वाले, (स्वयशसः) अपने यश के (व्रताः) कर्म (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं, वे प्रशस्त है।"

तात्पर्य यह है कि अपने यश बढ़ाने के पुरुषार्थ करके अपना धवल यश चारों दिशाओं में बढ़ाना चाहिये। इसके लिये सब मनुष्यों में श्रेष्ठ होना चाहिये, किसी के सामने दब जाना भी उचित नहीं। तथा सत्य धर्म की सदा रक्षा करनी चाहिये। इस रीति से जो मनुष्य पुरुषार्थ करेंगे, वे यशस्वी हो सकते हैं।

सूचना

वेदप्रकाश के प्रत्येक ग्राहक को एक नम्बर दिया गया है जो कि पते की चिट पर लिखा व छपा रहता है पत्रव्यवहार करते समय वह नम्बर अवश्य लिखना चाहिये अन्यथा पत्रोत्तर की प्रतीक्षा न करें।

—व्यवस्थापक

हमारा वृहद् विशेषांक

पिछले अंक में हमने यह घोषणा की थी कि वेदप्रकाश का अगस्त अंक संस्कार विधि व्याख्याङ्क होगा।

यह सूचित करते हुये प्रसन्नता होती है। कि संस्कार-चन्द्रिका मथुरा के सत्य-साहित्य संस्था ने प्रकाशित कर आर्य जनता के लिए प्रस्तुत कर दी है। संस्कार चन्द्रिका छा गई है इसलिए वेदप्रकाश के ग्राहकों को हम और कोई महत्वपूर्ण अङ्क देना चाहते है उसकी घोषणा अगले अङ्क में की जावेगी।

—व्यवस्थापक

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थ माला के सदस्य बनिये

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक ग्रन्थ माला आरंभ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति को बनाये रखना है वहां यह भी है कि वैदिक साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहे और वह पाठकों अल्प-मूल्य में प्राप्त होता रहे।

अधिक से अधिक संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन व बना कर वैदिक साहित्य के प्रचारार्थ सहयोग दें।

नियम

(१) स्थायी ग्राहक को २) जमाकरा कर पंजी बद्ध होना पड़ेगा।

(२) स्थायी ग्राहक को ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक ही प्रति दी जावेगी।

(३) स्थायी ग्राहकों को प्रत्येक पुस्तक पर चार आना रुपया छूट दी जावेगी।

(४) पुस्तकें छपते ही वी० पी० द्वारा प्रेषित की जावेगी। डाकखर्च ग्राहक का होगा।

इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुस्तकें उत्तम कोटि की होगीं। तथा इसके लिए हम आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त करेंगे।

इस स्मृति माला में अब तक निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रथम पुष्प

यजुर्वेद संहिता:—इसमें स्वर सहित सम्पूर्ण मूल यजुर्वेद है। मन्त्रानुक्रमणिका दी गई। प्रारम्भ में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल्य सजिल्द २।।) पृष्ठ संख्या ३०० बड़े साइज के।

द्वितीय पुष्प

गुरुदत्त लेखावलि:—इसमें श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने किया है। मूल्य सजिल्द २)

तृतीय पुष्प

ऋग्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन ब्र० श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी ने किया है। मूल्य १)

चतुर्थ पुष्प

यजुर्वेद शतक:—इसमें महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य से सौ मन्त्रों का संकलन है। मूल्य १)

पंचम पुष्प

सामवेद शतक:—पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से सौ मन्त्र चुने हैं। मूल्य १)

षष्ठ पुष्प

अथर्ववेद शतक:—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेद भाष्य से सौ मन्त्र इसमें हैं। मूल्य १)

महर्षि दयानन्द जी का प्रामाणिक और सम्पूर्ण जीवनचरित्र

श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश

❀ इतने मोटे अक्षरों में ❀

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्तिभाव पूर्ण जीवन चरित्र "दयानन्द प्रकाश" आर्य समाज के साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है इसके लेखक **श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज** ने इसे इतनी सुन्दर, रोचक और ललित भाषा में लिखा है कि पढ़कर हृदय गद्गद् हो उठता है। भाषा और शैली की दृष्टि से अद्वितीय है। इसमें ऋषि के जीवन की प्रत्येक घटना इतनी सजीव हो उठी हैं कि पाठक के हृदय पर महर्षि क महिमा की छाप अनायास ही लग जाती है। यह पुस्तक दैनिक पाठ कथा रूप में सत्संगों में पढ़ कर सुनाने के लिए अद्वितीय है। ६०० पृष्ठ की बड़ी साइज की पुस्तक केवल १२) में।

गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, देहली

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

विष्णुपुराण आलोचना

[लेखक—ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी प्रभाकर, साहित्यरत्न]

पौराणिक जगत् में पुराणों का बड़ा महत्व है। पौराणिक लोग भागवतादि पुराणों को वेदों से भी बढ़ कर मानते हैं। प्रमाण स्वरूप आप शिवपुराण को देखिये—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मण स्मृतम्।
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्यविनिर्गताः॥
(शिव० वायु० सं० पू० अ० १।३१, ३७)

अर्थात् सब शास्त्रों से पूर्व ब्रह्मा जी ने पुराण की रचना की उसके पश्चात् उनके मुख से वेद प्रकट हुए।

इतना ही नहीं ब्रह्मवैवर्त पुराण तो इस से भी आगे बढ़ गया है—

सार भूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्।
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रम भञ्जनम्॥
(ब्रह्म० ब्रह्मखण्ड अध्याय १)

अर्थात् ब्रह्मवैवर्त पुराण सब पुराणों में श्रेष्ठ है। पुराण और उपपुराणों की तो बात ही क्या यह वेदों के भी भ्रम को दूर करने वाला है।

क्या वस्तुतः पुराण ऐसे ही हैं? यह जानने के लिये हमें यह देखना पड़ेगा कि पुराणों की रचना कब हुई? यहां हम कुछ प्रमाण देकर यह सिद्ध करेंगे कि पुराणों की रचना महाभारत काल के बहुत पश्चात् आरम्भ हुई और अंगरेजों के शासन काल तक इन की रचना होती रही।

काशी का सुप्रसिद्ध जगन्नाथ का मन्दिर सं० १२३१ उड़ीसा के राजा अनङ्ग भीमदेव ने बनवाया था इस बात को सभी इतिहासवेत्ता स्वीकार करते हैं। इस मन्दिर पर भी यही संवत् पड़ा हुआ है परन्तु इसका महात्म्य स्कन्ध पुराण में लिखा है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि यह पुराण संवत् १२३१ के पश्चात् बना है।

पद्मपुराण में माधवाचार्य (आनन्द तीर्थ) के नाम का उल्लेख है जिन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है। इनका नाम पद्म पुराण में कैसे आ गया क्योंकि इनका समय ११९७ से १२७३ ई० तक है अतः यह पुराण नवीन है।

पद्म पुराण में लिखा है—

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः॥
(पद्म पुराण)

पौराणिक माधवाचार्य जो इस श्लोक को पुराण का नहीं मानते परन्तु भक्त रामशरण दास पिलखवा निवासी ने "सब पापों की जड़ चाय तम्बाकू" नामक पुस्तक में इसे पुराण का ही श्लोक माना है। दूसरों पर आक्षेप करने से पूर्व माधवाचार्य जी को पहले अपने घर में फैसला करके फिर दूसरे पर आक्षेप करना चाहिये।

तम्बाकू भारतवर्ष में अकबर के समय में आया और इनका राज्यकाल १५५६ से १६०५ ई० तक है अतः यह पुराण लगभग ३५० वर्ष पुराना है।

भविष्य पुराण की रचना तो अंगरेजी राज्य-

काल में होती रही है। देखिये—

रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैव फरवरी।
षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुहारणमीदृशम् ॥
(भविष्य पुराण)

अर्थात् आङ्गल भाषा में रविवार को सण्डे, फाल्गुन को फरवरी और षष्टि को सिक्सटी कहते हैं।

क्या व्यास देव जी अङ्गरेजी भाषा के भी पण्डित थे? यह श्लोक पुकार पुकार कर कह रहा है कि यह पुराण नवीन है।

पुराणों के समर्थक बहुत से विद्वान् कहते हैं कि व्यास जी योगी थे उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से भविष्य की घटनाओं को देखकर पुराणों में उन का वर्णन कर दिया। परन्तु यह तर्क ठीक नहीं। व्यास जी को यदि भविष्य का ही वर्णन करना था तो फिर महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का वर्णन क्यों नहीं किया। स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने वाले दलों और वीरों की गाथा का गान क्यों नहीं किया? भारत विभाजन और पाकिस्तान बनने की इतिहास प्रसिद्ध घटना उनकी दृष्टि से कैसे ओझल हो गई? अतः स्पष्ट है कि इन पुराणों की रचना महर्षि व्यास ने नहीं की। यदि व्यास जी ने इनकी रचना की होती तो इन में सृष्टिक्रम और विज्ञान विरुद्ध गपोड़े न होते। ये पुराण तो अनेक धूर्तों के बनाये हुए हैं—

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले,
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराण चतुरैर्हरिशंकराणां,
सेवा पराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥
(देवी भागवत ५।१९।१२)

अर्थात्—अहो कैसे खेद की बात है कि दुष्ट कलि काल के आने पर मनुष्य लोग तेरा भजन नहीं करेंगे और तेरे प्रेम से वंचित हो जायेंगे क्योंकि पुराण बनाने वाले अनेक चतुर धूर्तों ने तेरे स्थान पर तेरे द्वारा निर्मित शिव और विष्णु की पूजा का विधान कर दिया है।

एक और प्रमाण लीजिये—

पौराणिकानां व्यभिचारदोषो,
नाशङ्कनीयः कृतिभिः कदाचित्।
पुराण कर्ता व्यभिचारजात,
स्तस्यापि पुत्रो व्यभिचारजातः ॥
(सुभाषित रत्नभण्डागारम् पृष्ठ ४४)

अर्थात् विद्वानों को पौराणिकों में व्यभिचार दोष की तो शंका ही न करनी चाहिये क्योंकि पुराण बनाने वाला व्यभिचार से उत्पन्न हुआ था और उसकी सन्तान भी व्यभिचार से उत्पन्न हुई थी।

पुराणों की नवीनता का एक और प्रमाण प्रस्तुत है—

"राय बहादुर योगेशचन्द्र राय का अनुमान है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण १६ वीं शताब्दी में पश्चिमी बंगाल में लिखा गया और इसके लेखक का गीत गोविन्द से परिचय था। पद्मपुराण में वृन्दावन की नित्य लीलाओं की चर्चा है। राधा का नाम आता है, पर यह पुराण बहुत पुराना नहीं कहा जा सकता और जिस अंश में राधा कृष्ण के नित्य विहार की चर्चा है, वह तो निस्संदेह परवर्त्ती है।
—हजारी प्रसाद द्विवेदी (मध्यकालीन धर्मसाधना)

वायु पुराण में महाराज विश्वफानि के वर्णन के पश्चात् लिखा है—

अनुगङ्गं प्रयागं च साकेतं मागधांस्तथा।
एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥
(वायु पुराण ९९।३९३)

गंगा के समीपवर्त्ती प्रदेश, प्रयाग, अयोध्या और मगध इन प्रदेशों पर गुप्तवंश के शासक राज्य करेंगे।

इस पर सुप्रसिद्ध इतिहासविद् पं० भगवद्दत्त जी लिखते हैं हमारा विचार है कि यह श्लोक जिस परिस्थिति का उल्लेख करता है, वह गुप्त साम्राज्य के नाश के पश्चात् गुप्तों के खण्ड खण्ड होने की है। पुराण प्रकरण इसी बात का संकेत करता है। (भारतवर्ष का वृहद् इतिहास द्वितीय भाग पृष्ठ ३५०)

इस पुराण में गुप्तवंश का वर्णन होने से यह

पुराण गुप्तकाल में बना है, इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

विष्णु पुराण में भी भगवान् बुद्ध और मगध वंश तथा मौर्य वंश का वर्णन आता है जिससे यह स्पष्ट है कि यह पुराण चौथी शताब्दी में बना है।

पुराणों को वेदों से भी पूर्व का बताना बहुत बड़ा अन्याय और पक्षपात है। यह स्वार्थियों की पोप लीला है। पुराण शब्द ही पुकार पुकार कह रहा है कि पुरा+न, हम पहले विद्यमान नहीं थे।× पुराणों की रचना के सम्बन्ध में डा० श्रीराम जी ने ठीक ही लिखा है—

पुराण तो जैन बौद्ध काल से लेकर अंगरेजों के भारत शासन काल तक में बनते रहे हैं। उन में ईसा, मूसा, नूह, मोहम्मद, अकबर, शिवाजी, तैमूरलंग, मीरा, रैदास, कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, अंगरेजों का भारत में आना, राज्य करना व दसवें लार्ड तक का इतिहास दिया हुआ है। ऐसा कौन सा गपोड़ा है जो पुराणों में न दिया हो।
(अवतार रहस्य पृष्ठ ४४-४५)

पुराणकारों के गप्प घड़ने के सम्बन्ध में चतुर्वेद भाष्यकर पं० जयदेव विद्यालंकार ने ठीक ही लिखा है—

"ये सब पुराणकार गप्पें घड़ लेने में बड़े चतुर मालूम होते हैं। इन्होंने सत्य को भ्रष्ट करने और छिपा देने और वाजि आदि नामों के आधार पर जितनी भी असत्य कल्पना की जा सकीं कर लीं।" (यजुर्वेद भाष्य भूमिका पृष्ठ १३)

विष्णु पुराण की श्लोक संख्या

इस संक्षिप्त भूमिका के साथ अब हम विष्णु पुराण पर आते हैं और सब से पूर्व इसकी श्लोक संख्या पर विचार करेंगे।

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार विष्णु पुराण की श्लोक संख्या २३००० है यथा—

ब्राह्मं दश सहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च।
श्री वैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम्॥
(भागवत १२।१३।४)

अर्थात् ब्रह्म पुराण में १० सहस्र पद्म पुराण में ५५ सहस्र। वैष्णव पुराण में २३ और शिव पुराण में २४ सहस्र श्लोक हैं।

देवी भागवत में भी यही बात कही गई है—

त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्।
(देवी भागवत १।३।८)

परमाद्भुत वैष्णव पुराण में २३ सहस्र श्लोक हैं।

मत्स्य पुराण भी यही घोषणा करता है—

वराहा कल्प वृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत्प्राह धर्मानखिलाँस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः।
त्रयोविंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः॥
(मत्स्य पुराण ५३।१५।१७)

अर्थात् पराशर ऋषि ने वराहकल्प वृत्तान्त को लक्ष्य करके जो वैष्णव धर्मों का प्रतिपादन किया है वही विष्णु पुराण है। विद्वान् लोग इस की श्लोक संख्या २३००० मानते हैं।

परन्तु लिंग पुराण इन सब से निराली और अद्भुत बात कहता है। देखिये—

अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः।
प्रसादाद्वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः॥
षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसंचयम्।
षट् साहस्रमितं सर्वं वेदार्थेन च संयुतम्॥
(लिंग पुराण ५३। १२० से १२२)

पराशर ने पुलस्त्य और बुद्धिमान् वसिष्ठ की कृपा से वैष्णव पुराण की रचना की। ज्ञान की निधि और समस्त कार्यों के साधक इस पुराण में ६ अंश और छः हजार श्लोक हैं।

इन उद्धरणों से पुराण स्वयंमेव झूठे सिद्ध हो गये। भगवत, देवी भागवत और मत्स्य पुराण के अनुसार तो लिंगपुराण झूठा है और लिंगपुराण के अनुसार अन्य तीनों झूठे हैं और परस्पर विरुद्ध होने से चारों ही झूठे हैं।

मैं ससार के समस्त पुराण पंथियों को चैलेञ्ज देता हूं कि यदि उन्हें पुराणों की सत्यता पर विश्वास है, यदि उन में कुछ भी और पाण्डित्य है, यदि उनमें पुराणों की गप्पों को सत्य सिद्ध करने की क्षमता है, यदि किसी माई के लाल में तनिक

भी दमखम है तो इस परस्पर विरोध को सत्य करके दिखायें।

प्रसिद्ध पौराणिक माधवाचार्य भी इसका कोई समाधान न दे सके। वे लिखते हैं—

"उपलब्ध पुराण में उपर्युक्त लक्षण सर्वथा घटता है परन्तु इसकी श्लोक संख्या बहुत कम है। 'विष्णु धर्मोत्तर' को सम्मिलित कर लेने पर भी लगभग ७००० श्लोकों की कमी रहती है।··· अतः दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह पुराण अधूरा है।" (पुराण दिग्दर्शन पृष्ठ ७८)

यहां तो श्री माधवाचार्य जी ने भी घुटने टेक दिये।

इस पुराण में १७००० श्लोक गुम हैं। इस कमी की पूर्ति के लिये पौराणिकों ने एक नई चाल निकाली है और वह यह कि 'विष्णु धर्मोत्तर' भी इसी पुराण का एक भाग है। इस से कमी पूरी कर लो। परन्तु विष्णु धर्मोत्तर के श्लोक मिला कर भी ७ हजार श्लोकों की कमी रह गई। इस कमी को पूरा करने के लिये ज्वाला प्रसाद मिश्र जी ने एक और गप्प हांकी। वे लिखते हैं—

"हेमाद्रि और स्मृति रत्नावलीकार ने बृहद् विष्णु पुराण से श्लोक उद्धृत किये हैं किन्तु यह पुराण इस समय नहीं पाया जाता। सुना है कि काठियावाड़ में किन्हीं के घर पूरा २३ हजार श्लोक का विष्णु पुराण हो। मिलने पर उसका उल्लेख किया जायेगा।"

(अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ १२०)

मिश्र जी तो मर गये और काठियावाड़ का पता भी नहीं दे गये। परन्तु पौराणिक बन्धुओं ने इस गप्प को सत्य मान लिया और मिश्र जी का अन्धानुकरण करते हुए श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी ने भी 'पुराण तत्व मीमांसा' में यही बात लिख मारी। मैं पौराणिकों से पूछना चाहता हूं कि यदि यह ग्रन्थ काठियावाड़ में रक्खा है तो इसे प्राप्त क्यों नहीं कर लेते? इसका प्राप्त न करना ही यह सिद्ध करता है कि यह केवल एक गप्प है।

यहां तक हमने विभिन्न पुराणों के द्वारा विष्णु पुराण की श्लोक संख्या पर विचार किया है अब हम विष्णु पुराण की अन्तः साक्षी द्वारा यह सिद्ध करेंगे कि भागवत देवी भागवत और मत्स्य पुराण तो झूंठे हैं ही लिंग पुराण जो विष्णु पुराण की श्लोक संख्या ६००० बताता है वह भी झूंठा है।

गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा २०१४ में प्रकाशित चतुर्थ संस्करण हमारे सामने है। इसके अनुसार इस पुराण की श्लोक संख्या निम्न है—

[इन श्लोकों की आकृति चित्र पृष्ठ ५ पर देखिये]

इस प्रकार इस पुराण में कुल १२६ अध्याय और ६३९९ श्लोक हैं।

अब एक दूसरे पुराण की श्लोक संख्या देखिये। यह पुराण खुले पन्ने का है। इसका संशोधन वासुदेवाचार्य ने किया है। यह गोपाल नारायण प्रभृति जनता मुद्रणायन्त्रालय में मुद्रित हुई है तथा इस पर १८२५ शक सम्वत् पड़ा हुआ है। इस प्रति के अनुसार श्लोक संख्या इस प्रकार है—

[इन श्लोकों की आकृति चित्र पृष्ठ ६ पर देखिये]

इस प्रकार कुल १२६ अध्याय और ५४९२ श्लोक हैं। यह है श्लोक संख्या का गड़बड़ घोटाला है कोई पौराणिक जो इन संख्याओं को ठीक ६००० करके दिखला दे?

पुराणों का रचयिता कौन?

पौराणिक वर्ग पुराणों को व्यासकृत मानता है। और अपने झूंठे दावे को सत्य सिद्ध करने के लिये वे निम्न प्रमाण दिया करते हैं—

अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः।

अर्थात् १८ पुराणों के कर्ता सत्यवती के पुत्र व्यास जी हैं।

परन्तु पुराण स्वयं ही इस दावे का खण्डन करते हैं। पीछे लिंग पुराण के उद्धरण में विष्णु पुराण का रचयिता पराशर जी को बताया गया है। स्वयं विष्णु पुराण भी डिण्डिम घोष के साथ

अध्याय संख्या	प्रथम अंश	द्वितीय अंश	तृतीय अंश	चतुर्थ अंश	पंचम अंश	पंचम अंश क्रमागत		षष्ठ अंश
१	३१	४३	४६	९६	८६	२५	१९	६०
२	७०	५६	६१	१३३	२१	२६	१२	४१
३	२८	२८	३१	४९	२९	२७	३२	४१
४	५२	९८	२६	११३	१७	२८	२८	५०
५	६७	२७	२९	३४	२३	२९	३५	८७
६	४२	५१	३३	९४	५१	३०	८०	५०
७	४८	४४	३९	३९	८३	३१	२०	१०६
८	३५	१२४	४१	२१	१३	३२	३०	६३
९	१४९	२५	३३	२८	३८	३३	५३	
१०	२०	२२	२६	३२	४९	३४	४४	
११	५७	२६	१२५	३०	२५	३५	३८	
१२	१०३	४७	४५	४५	२६	३६	२४	
१३	९५	१०४	४०	१६२	६२	३७	७६	
१४	४९	३३	३१	५३	१४	३८	९४	
१५	१५७	३६	५५	५०	२४			
१६	१६	२५	२०	६	२८		१५१७	
१७	९१		४५	५	३३			
१८	४६		१०४	३०	५८			
१९	८६			८५	२९			
२०	३९			५३	१०५			
२१	४१			१८	३२			
२२	९०			१३	१८			
				१३	४७			
				१५१	२१			
	१४१२	७८९	८३०	१३५३				४९८

अध्याय संख्या	प्रथम अंश	द्वितीय अंश	तृतीय अंश	चतुर्थ अंश	पंचम अंश	अध्याय	पंचम अंश	षष्ट अंश
१	३५	४४	४६	३८	८६	२५	१९	५९
२	६७	५५	६०	५२	२०	२६	११	४१
३	२७	२८	३१	२१	२९	२७	३१	४०
४	५२	९८	२६	४७	१७	२८	२८	४९
५	६५	२७	२९	१३	२३	२९	३५	८७
६	४१	५१	३०	४६	५१	३०	७८	४९
७	४४	४३	३९	१६	८१	३१	१८	१०४
८	३३	१२३	४०	९	१३	३२	२४	६२
९	१४६	२५	३१	८	३८	३३	५०	
१०	२०	२२	२६	१८	४८	३४	४४	
११	५६	२६	१२३	५	२५	३५	३९	
१२	१०३	४७	४५	१७	२६	३६	२३	
१३	९५	१००	४०	७१	६१	३७	६९	
१४	४९	३३	३१	१५	१४	३८	९३	
१५	१५५	३६	५६	२८	२४			
१६	१६	२५	२०	२	२८			
१७	९१		४५	१	३३			
१८	४३			८	५८			
१९	८६		१०३	१९	२९			
२०	३९			१३	९१			
२१	४०			४	३१			
२२	८९			३	१८			
२३				३	४६			
२४				७६	२१			
	१३९२	७८३	८२१	५३३		१४७३	४९१	

कह रहा है कि यह पुराण पराशर द्वारा बनाया गया है। लीजिये प्रमाण प्रस्तुत है—

ब्रह्मा जी के पुत्र पुलस्त्य जी ने पराशर को एक और उत्तम वर दिया। और वह वर था—

पुराण संहिता कर्ता भवान्वत्स भविष्यति।

(वि० पु० १।१।२६)

अर्थात् हे वत्स! तुम पुराण संहिता के रचयिता होओगे।

इस प्रमाण से तो स्पष्ट सिद्ध है कि कम से कम विष्णु पुराण के कर्ता तो व्यास जी नहीं हैं उनके पिता जी हैं। वस्तुतः तो यह पराशर का भी बनाया हुआ नहीं है। अपितु किसी धूर्त्त की ही रचना है। बहुत से लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये दूसरों के नाम से ग्रन्थ रच लिया करते हैं। महाराजा भोज के समय में भी ऋषि मुनियों के नाम से ऐसे ही कुछ ग्रन्थ लिखे गये थे। इस विषय में महर्षि दयानन्द ने लिखा है—

"राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था, उसका समाचार राजा भोज को विदित होने से उन पण्डितों को हस्तछेदन आदि दण्ड दिया और उन से कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनाये तो अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये 'संजीवनी' नामक इतिहास में लिखी है जो कि ग्वालियर राज्य के 'भिंड' नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। जिस को लखुना के राव साहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आंखों से देखा है।"

(सत्यार्थ प्रकाश ११ समुल्लास)

श्रीमद्भागवत पुराण तो बोपदेव का बना हुआ है यह बात तो अब निर्विवाद सिद्ध है। एक अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत है—

"शाहजहां के समय में बनारस मीर घाट पर कवीन्द्र सरस्वती नामक एक विद्वान् संन्यासी रहते थे। उन का पुस्तकालय अच्छा बड़ा था। उसका सूचीपत्र बड़ौदा की ओरियण्टल लायब्रेरी की ओर से प्रकाशित हो चुका है। उस में भागवत को बोपदेव कृत लिखा है। प्रसिद्ध पुराण टीका कर्ता नील कण्ठ ने देवी भागवत की स्वकृत टीका के उपोद्घात में लिखा है। **'विष्णु भागवतं बोपकृतमिति वदन्ति'** अर्थात् विष्णु भागवत (श्रीमद् भागवत) को बोपदेव कृत मानते हैं। (स्वामी वेदानन्द जी सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३००)

यदि ये पुराण श्री व्यास जी महाराज अथवा ऋषियों के बनाये होते तो न इन में परस्पर विरुद्ध बातें होती, न विज्ञान और सृष्टक्रम विरुद्ध गपोड़े होते न ऋषियों मुनियों पर व्यभिचार के दोष लगाये जाते और न योगेश्वर कृष्ण और श्री बलराम जैसे महापुरुषों पर व्यभिचार और मद्यपान आदि के दोष लगाये जाते। इन्हें व्यास कृत बनाता महर्षि व्यास का अपमान करना है। जैसे देवी भागवत में लिखा है निश्चय ही ये पुराण चतुर धूर्तों के बनाए हुए हैं।

विष्णु पुराण वर्तमान मनुस्मृति के पीछे बनी है। विष्णु पुराण में एक श्लोक आता है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
आयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

(वि० १।४।६)

नर अर्थात् पुरुष से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहते हैं। वह 'नार' ही उनका प्रथम 'अयन' निवास स्थान है। इसलिये भगवान् को नारायण कहा है।

तनिक से भेद से यही श्लोक मनुस्मृति (१।१०) में विद्यमान है। कुछ लोग कह सकते हैं कि यह पुराण से मनुस्मृति में गया है। ऐसे भोले भाइयों के सन्तोष के लिये हम एक दूसरा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—

पापे गुरूणि गुरूणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगुः स्वायम्भुवादयः॥

(वि० २।६।३६)

हे मैत्रेय! स्वायम्भुव मनु आदि स्मृतिकारों ने महान् पापों के लिये महान् और अल्पों के लिये अल्प प्रायश्चित्तों की व्यवस्था की है।

यहां पुराणकार ने मनु जी को अपने से पूर्ववर्ती स्वीकार किया है अतः यह पुराण मनुस्मृति के पश्चात् बनी है।

पौराणिक निर्धन क्यों ?

इस पुराण के प्रथम अंश के ९ वें अध्याय के ११७ से १३३ श्लोक तक इन्द्र द्वारा श्री लक्ष्मी जी की स्तुति की गई है। कुछ श्लोक देखिये—

मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥१२७॥
सश्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ।१३१।
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापिवेधसः ।
प्रसीद देवि पद्माक्षि मा स्मांस्त्याक्षी कदाचन ।१३२।

अर्थात्—हे सर्वपावानि मातेश्वरी ! हमारे कोश, गोष्ठ, गृह, भोग सामग्री शरीर और स्त्री आदि को आप कभी न त्यागें अर्थात् इन में भरपूर रहें।

हे देवि ! जिस पर तुम्हारी कृपा दृष्टि है वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्यभाग है, वही कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है।

हे देवि ! तुम्हारे गुणों का वर्णन करने में तो श्री ब्रह्मा जी की रसना भी समर्थ नहीं है अतः हे कमल नयने ! अब मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे कभी मत छोड़।

इस लक्ष्मी स्तोत्र का महात्म्य बताते हुए पराशर जी कहते हैं कि—

पठ्यते येषु चैवेयं गृहेषु श्री स्तुतिर्मुने ।
अलक्ष्मी कलप्तधारा न तेष्वास्ते कदाचन ॥
(वि० १ । ९ । १४७)

हे मुने ! जिन घरों में लक्ष्मी जी के इस स्तोत्र का पाठ होता है उनमें कलह की आधारभूता दरिद्रता कभी नहीं ठहर सकती।

समीक्षा—यदि लक्ष्मी के इस स्त्रोत्र पाठ से ही दरिद्रता समाप्त हो जाती है तो पौराणिक लोग व्यापार क्यों करते हैं ? और पौराणिक पण्डित मंगल और शनिवार को गली गली में तेल मांगते क्यों फिरते हैं ? सभी पौराणिकों को और विशेष कर पण्डित वर्ग को इस सस्ते सौदे से लाभ उठाना चाहिये और साथ ही इस की रजिस्ट्री भी करा लेनी चाहिये जिससे और लोग लाभ न उठा सकें।

ध्रुव की तपस्या से भूकम्प ?

प्रथम अंश के १२ वें अध्याय में ध्रुव की तपस्या का वर्णन करते हुए पुराणकार ने कैसी शानदार गप्प ठोकी है। पढ़िये और कल्पना की दाद दीजिये—

मनस्यवस्थिते तस्मिन्विष्णौ मैत्रेय योगिनः ।
न शशाक धराभारमुद्वोढुं भूतधारिणी ॥ ८ ॥
वामपाद स्थिते तस्मिननामार्द्धेन मेदिनी ।
द्वितीयं च ननामार्द्धं क्षितेर्दक्षिणतः स्थिते ॥९॥
पादांगुष्टेन सम्पीड्य यदा स वसुधां स्थितो ।
तदा समस्ता वसुधा चचाल सह पर्वतैः ॥१०॥

हे मैत्रेय ! योगी ध्रुव के चित्त में भगवान् विष्णु के स्थित हो जाने पर सर्व भूतों को धारण करने वाली पृथिवी उसका भार न सम्भाल सकी।

उसके बायें चरण पर खड़े होने से पृथिवी का बायां आधा भाग झुक गया और फिर दायें चरण में खड़े होने से दायां भाग झुक गया।

जिस समय वह पैर के अंगूठे से पृथिवी को बीच से दबाकर खड़ा हुआ तो पर्वतों के सहित समस्त भूमण्डल विचलित हो गया।

समीक्षा—आज पृथिवी पर एटम बम्ब और हाइड्रोजन बम्बों के परीक्षण हो रहे हैं। इनके परीक्षणों से भूमि के थोड़े से भाग पर ही प्रभाव होता है परन्तु यहां तो ४-५ वर्ष के बालक के भार से पृथिवी ही बैठ गई। है न गप्प नम्बर एक। ऐसी बेतुकी बातों पर कोई बुद्धिहीन व्यक्ति ही विश्वास कर सकता है। यदि इस गप्प को ठीक ठीक भी मान लिया जाये तो फिर वह पृथिवी अपने वास्तविक स्वरूप में कैसे आई ? एक बात और। क्या पुराणों के अतिरिक्त किसी अन्य इति-

हास में भी इस का वर्णन है ? यह भूकम्प कौन से सन् अथवा संवत् में आया था। यदि किसी पौराणिक को पता हो तो सूचित करें।

आकाश से धनुष और वाणों की वृष्टि

आद्यमाजगवं नाम खात्पपात ततो धनुः ।
शराश्च दिव्या नभसः कवचं च पपातह ॥
(वि० १।१३।४०)

इसी समय आजगव नामक सर्वप्रथम शिव धनुष और दिव्य बाण तथा कवच आकाश से गिरे।

समीक्षा—आकाश पोल को कहते है। पोल से धनुष और वाण कैसे टपक पड़े ? क्या वहां कोई स्थान विशेष बना हुआ था यदि आकाश से गिरे थे तो अब क्यों नहीं गिरते। आकाश से नहीं गिरे होंगे किसी धूर्त्त ने धूर्त्तता की होगी ?

समुद्र का जमना

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥
(वि० १।१३।४९)

जब वे (वेन पुत्र पृथु) समुद्र में चलते थे तो जल स्थिर हो जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई।

समीक्षा—ऐसी ऊटपटांग बातों पर वही व्यक्ति विश्वास कर सकता है जिसके शरीर पर मस्तिष्क की बजाये कद्दू रक्खा हुआ हो। थोड़ा सा भी मस्तिष्क रखने वाला कोई बुद्धिमान् व्यक्ति इन बेतुकी बातों पर विश्वास नहीं कर सकता।

दशपति

प्रथम अंश १५ वें अध्याय में मारिषा का वर्णन है। मारिषा पूर्व जन्म में एक साध्वी महारानी थी। पुत्रहीन अवस्था में ही इसके पति मर गये। पति के मर जाने पर इसने अपने भक्तिभाव से भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट किया। विष्णु ने प्रसन्न होकर कहा "वर मांगो।" तब मारिषा ने कहा, भगवन् ! बाल विधवा होने के कारण मेरा जन्म व्यर्थ हो गया अतः आपकी कृपा से जन्म जन्म में मेरे प्रशंसनीय पति हों।" यह सुनकर भगवान् बोले—

भविष्यन्ति महावीर्या एकास्मिन्नेव जन्मनि ।
प्रख्यातोदारकर्माणो भवत्याः पतयोदश ॥
(वि० १।१५।६८)

अर्थात्—तेरे एक ही जन्म में बड़े पराक्रमी और विख्यात कर्मवीर दश पति होंगे।

समीक्षा—यहां मारिषा को एक ही जन्म में दशपति होने का वरदान दिया गया है। महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करने वाले पौराणिकों को पहले अपने घर की जांच पड़ताल करके फिर किसी पर आक्षेप करना चाहिये। महर्षि ने तो नियोग को आपद्धर्म लिखा है और एक पति के मरने अथवा उससे सन्तान न होने पर अन्यों के साथ नियोग की बात लिखी है। क्या एक ही समय दस पतियों की खुली छूट देने से पुराण व्यभिचार को प्रोत्साहन नहीं देते ?

असम्भव प्रजा उत्पत्ति

पहले तो दक्ष ने ऋषि गन्धर्व असुर और सर्प आदि मानसिक प्राणियों को ही उत्पन्न किया परन्तु जब इस प्रकार प्रजा वृद्धि न हुई तो उन्होंने मैथुन धर्म से नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने के लिये प्रजापति की पुत्री असिक्नी से विवाह किया।

अथपुत्रसहस्राणि वैरण्यां पञ्च वीर्यवान् ।
असिक्न्यां जनमामास सर्ग हेतोः प्रजापतिः ॥
(वि० १।१५।९१)

वीर्यवान् प्रजापति दक्ष ने सर्ग की वृद्धि के लिये वीरण सुता असिक्नी से पांच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये।

समीक्षा—एक स्त्री से ५००० पुत्रों का उत्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। स्त्री १३ वर्ष की अवस्था में रजस्वला होती है और लगभग ४८ वर्ष तक यह अवस्था रहती है। यदि कुत्ता बिल्लियों की भांति प्रतिवर्ष ५ सन्तानें हों तो भी ३५ वर्ष में १७५ सन्तानें होंगी असम्भव ही हमने तो दुर्जनतोष न्याय वश लिखा है) परन्तु यहां तो ५००० बताई हैं और इस की इतिश्री यहां ही नहीं हुई। आगे चल कर पुनः

एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। और फिर ६० कन्यायें। एक पुरुष और स्त्री में तो इतनी शक्ति होती नहीं। हां यदि ये कोई कोटाणु हों तो हमें कोई आपत्ति नहीं है।

सौ योजन ऊंचा महल

प्रथम अंश के १९वें अध्याय में प्रह्लाद चरित्र का वर्णन हो रहा है। एक दिन महल की अट्टालिका पर बैठे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने अपने अनुचरों से कहा—

दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्प्रासादाच्छतयोजनात् ।
गिरिपृष्ठे पतत्वस्मिन् शिलाभिन्नाङ्ग संहतिः ॥
(१।१९।११)

यह (प्रह्लाद) बड़ा दुरात्मा है। इसे इस सौ योजन ऊंचे महल से गिरा दो जिससे यह इस पर्वत के ऊपर से गिरे और शिलाओं से इसके अङ्ग अङ्ग छिन्न भिन्न हो जायं।

समीक्षा—महल था या हिमालय की चोटी? हिमालय की चोटी भी इस महल के सामने क्या वस्तु है। कहां ५॥ मील ऊंचा हिमालय और कहां ५२५ मील ऊंचा महल। जब हिमालय पर इतनी बर्फ पड़ती है, लोग न वहां जा सकते हैं, न ठहर सकते हैं और न रह सकते हैं तो फिर इस १०० योजन ऊंचे महल में भयंकर शीत में ये लोग कैसे रहते होंगे? क्या उस महल में लिफ्ट लगी हुई थी या राकेट के द्वारा वहां जाते थे। पुराणकार ने इन दोनों का ही वर्णन नहीं किया। क्या कोई पौराणिक बताने का कष्ट करेंगे? यदि वे राकिट या विमानों द्वारा जाते थे तो इनका उल्लेख भी पुराणों में सिद्ध करना होगा। भले ही पौराणिक यह कह कर आत्म सन्तोष कर लें कि हमारा वास्तु-कला विज्ञान कितना ऊंचा था। अथवा वे यह भी कह सकते हैं कि जिस प्रकार आज वैज्ञानिक चन्द्रमा पर जाने के लिए उपग्रह बना रहे हैं यह भी उसी प्रकार का उपग्रह था परन्तु वस्तुतः तो यह डबल गपाष्टिक है।

१०० वर्ष गर्भ धारण

दिति ने अपनी आरधना से कश्यप जी को प्रसन्न किया। सन्तुष्ट हुए कश्यप जी ने दिति से वर मांगने के लिए कहा। दिति ने इन्द्र का वध करने में समर्थ एक अति तेजस्वी पुत्र मांगा। वर देते हुये कश्यप जी बोले—

शक्रं पुत्रो निहन्ता ते यदि गर्भं शरच्छतम् ।
समाहितातिप्रयता शौचिनी धारयिष्यसि ॥
(वि० १।२१।३३)

यदि तुम भगवान् के ध्यान में तत्पर रह कर अपना गर्भ शौच और संयम पूर्वक सौ वर्ष तक धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा।

समीक्षा—ईश्वर के नियम सब देशों और कालों में एकसे हुआ करते हैं। श्री राम, श्री कृष्ण, भीम, अर्जुन आदि सभी योद्धा ९-१० मास ही गर्भ में रहे और महान् वीरता के कार्य किये। अपने शत्रुओं को भी परास्त किया। इन बे सिर पैर की बातों पर पौराणिक ही विश्वास कर सकते हैं। बुद्धिमान् तो इन को पढ़ और सुन कर हंसेंगे ही।

इन्द्र का गर्भ में प्रवेश

इन्द्र इस गर्भ का वध करने के लिये दिति की सेवा में नियुक्त हो गये। और जब एक दिन—

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ।
निद्रां चाहारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥
वज्रपाणिर्महागर्भं चिच्छेदाथ स सप्तधा ।
(वि० १।२१।३७,३८)

दिति विना पैर धोये ही अपनी शय्या पर लेट गई। उस समय निद्रा ने उसे घेर लिया। तब इन्द्र हाथ में वज्र लेकर उसकी कुक्षि में घुस गये और उस महा गर्भ के सात टुकड़े कर डाले।

समीक्षा—क्या दिति की कुक्षि कोई बहुत बड़ा कमरा था जिसमें इन्द्र घुस गया और गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। पुराणों के बिन्दु और विसर्ग तक को ठीक मानने वाले पौराणिक क्या किसी गर्भ में

घुस कर दिखा सकते हैं ? यदि नहीं तो यह सब झूंठ है।

ऋषभ के १०० पुत्र

ऋषभाद्भरतो ज्ञजे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः ॥
(वि० २ । १ । २८)

ऋषभ जी के भरत का जन्म हुआ जो उनके सौ पुत्रों में सब से बड़े थे।

समीक्षा—वेद का आदेश है "दशास्यां पुत्राना धेहि" (ऋ० १० । ८५ । ४५) हे पुरुष ! तू इस स्त्री में दश सन्तान उत्पन्न कर। परन्तु साथ ही यह भी कह दिया है "बहु प्रजा निर्ऋतिमा विवेश" (ऋ० १ । १६४ । ३२) बहुत सन्तान वाले बहुत दुःख पाते हैं। मनु महाराज ने भी प्रथम सन्तान को छोड़ कर अन्य सभी सन्तानों को कामज बताया है। आजकल जब लोग अत्यन्त कामी, विषय लोलुप और अजितेन्द्रिय हो गये हैं तब भी १०० की बात तो दूर रही ५० सन्तान भी उत्पन्न नहीं होती। फिर प्राचीन काल के राजा आदि जो आज की अपेक्षा अत्यधिक सदाचारी और चरित्रवान् होते थे वे वेद और मनु की आज्ञा के विरुद्ध इतनी सन्ताने कैसे उत्पन्न कर सकते थे। निश्चय ही ये बातें उन्हें कलंकित करने के लिये घड़ी गई हैं।

पौराणिकों का अद्भुत भूगोल

मैत्रेय जी के सारे भूमण्डल का विवरण सुनने की इच्छा व्यक्त करने पर पराशर जी ने कहा, "हे द्विज ! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्कर—ये सातों द्वीप चारों ओर से खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।

जम्बूद्वीप समस्तनामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय मध्ये कनक पर्वतः ।
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥
(वि० २ । २ । ७,८)

हे मैत्रेय ! जम्बू द्वीप इन सब के मध्य में स्थित है और उसके भी बीचों बीच सुवर्णमय सुमेरु पर्वत है। इसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन है और नीचे की ओर यह १६ हजार योजन पृथिवी में घुसा हुआ है, और ऊपरी भाग में इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है।

समीक्षा—ओ संसार के वैज्ञानिको ! अभी तुम्हारी खोज अधूरी है। आप लोगों ने अभी तक इस सुमेरु पर्वत का पता नहीं लगाया यह क्या बात है ? उठो और कमर कस कर इसे ढूंढने में लग जाओ। यदि तुम्हें पता नहीं है तो पुराण बनाने वाले से पूछ लो। आप कहेंगे वह तो मर गया। तो भी घबराने की आवश्यकता नहीं गीता प्रेस वालों से पूछ लो और वहां भी पता न लगे तो पुराणों के ठेकेदार श्री दीनानाथ शास्त्री और माधवाचार्य से पूछ लो। भारत के वैज्ञानिको ! आप भी इस पर्वत को खोजो। इस पर्वत के ज्ञात होते ही भारत वर्ष की अनेक समस्याएं हल हो जायेंगी। बांध निर्माण के लिएए विदेशों से जो धन लिया जा रहा हैं उसके मांगने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

अरे ओ पर्वतारोहियो ! आपने हिमालय के ऊपर चढ़ कर संसार की सब से ऊंची चोटी पर विजय प्राप्त नहीं की है। अभी तो ८४ हजार योजन ऊंचा पहाड़ बाकी है। इसके ऊपर अभियान करोगे तभी तुम सच्चे विजेता कहला सकोगे।

पृथिवी की गोलाई तो कुल २५००० मील है तो ३२ सहस्र योजन का शेष भाग क्या गोरखपुर में रखा हुआ है।

वृक्षों की लम्बाई

कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ।
एकदशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ॥
(वि० २ । २ । १७, १८)

इन पर (मेरु आदि पर्वतों पर) पर्वतों की ध्वजाओं के समान क्रमशः ग्यारह ग्यारह सौ योजन ऊंचे कदम्ब, जम्बू पीपल और वट के वृक्ष हैं।

समीक्षा—पौराणिको ! क्या पुराणकार ने इन वृक्षों को नापा था या अनुमान से ही लिख मारा है।

फलों का परिमाण

महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै ॥
(वि० २ । २ । १९)

इन जामन के वृक्षों के फल महान् गजराज के समान बड़े होते हैं।

समीक्षा—पुराण रचयिता ने अतिशयोक्ति की भी पराकाष्ठा कर दी है। यदि कोई भूला भटका पशु या मनुष्य नीचे हो और ऊपर से फल गिर पड़े तो उसका तो ईश्वर ही रक्षक है।

पाठकगण! एक बात की तो प्रशंसा करनी पड़ेगी कि गप्प घड़ने में शायद ही कोई पुराणकार का मुकाबला कर सके।

खगोल विज्ञान

अब तनिक पुराणकार का अद्भुत खगोल विज्ञान भी अवलोकन कीजिए—

भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् ।
लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ॥
पूर्णेशत सहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ॥
(वि० २ । ७ । ५, ६)

हे मैत्रय! पृथिवी से एक लाख योजन दूर सूर्य मण्डल है और सूर्य मण्डल से भी एक लक्ष योजन के अन्तर पर चन्द्रमण्डल है। चन्द्रमा से पूरे सौ हजार (एक लाख) योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल प्रकाशित हो रहा है।

समीक्षा—सूर्य पृथिवी से नौ करोड़ ३० लाख मील की दूरी पर है परन्तु पुराणकार उस केवल ५ लाख २५ सहस्र मील दूर बता रहा है और उससे भी मजेदार बात तो यह है कि चन्द्रमा जो पृथिवी से लगभग २ लाख ८० हजार मील दूर है और सूर्य से बहुत परे है उसे सूर्य से भी एक लाख योजन दूर अर्थात् पृथिवी से १०॥ लाख मील दूर बता रहा है। कैसी अद्भुत गप्प है। संसार के सभी शिक्षा मन्त्रियों को यह अद्भुत खगोल विज्ञान अपने अपने विश्वविद्यालयों में पढ़ाना चाहिए।

गङ्गा गङ्गा कहने का फल

गङ्गा के महात्म्य का वर्णन करते हुए पुराणकार लिखता है—

गङ्गे गङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि ।
स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम् ॥
(वि० २।८।१२३)

सौ योजन की दूरी से भी गंगा गंगा किये जाने पर गंगा जीव के तीन जन्मों के संचित पापों को नष्ट कर देती है।

समीक्षा—जैसे मिश्री मिश्री कहने से मुंह मीठा नहीं होता इसी प्रकार गङ्गा गङ्गा कहने से भी जब शरीर तक की शुद्धि नहीं होती तो मन के पाप कैसे दूर हो सकते हैं? यदि यह बात सत्य होती तो पौराणिक तीर्थों पर जाकर धक्के नहीं खाते। इनका तीर्थों में जाना और गंगा में स्नान करना ही यह सिद्ध करता है कि स्वयं पौराणिकों को इस बात पर विश्वास नहीं है। जादू वह जो सिर चढ़ कर बोले। पौराणिकों के आचरण ने ही इस विश्वास पर पानी फेर दिया है।

सामवेद की ध्वनि अपवित्र

सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥
(वि० २।११।१३)

सर्ग के आदि में ब्रह्मा ऋक्मय हैं, उसकी स्थिति के समय विष्णु यजुर्मय हैं तथा अन्तकाल में रुद्र साममय हैं। इसलिये सामगान की ध्वनि अपवित्र मानी गई है।

समीक्षा—सामवेद की ध्वनि को अपवित्र कहना नास्तिकता है। यदि पुराणों के कर्ता व्यास जी होते तो वेदों के सम्बन्ध में ऐसी निकृष्ट बात कभी नहीं कहते। गीता में योगेश्वर कृष्ण तो कहते हैं कि "वेदानां सामवेदोऽस्मि" वेदों में मैं सामवेद हूँ और यहां उसकी ध्वनि को अपवित्र बताया जा रहा है। इस से देवीभागवत की यह बात और भी प्रामाणिक प्रतीत होती है कि पुराणों के रचयिता अनेक पाखण्डी और धूर्त थे। यदि

ये व्यास जी के बनाये होते तो इनमें ऐसी अनर्गल बातें न होती।

सूर्य सान पर

संज्ञा सूर्य की भार्या थी। अपने पति का तेज सहन न कर सकने के कारण वह छाया को पति सेवा में नियुक्त करके तपस्या करने चली गई। एक दिन रहस्य खुल गया। भगवान् सूर्य संज्ञा को अपने घर ले आये। और तब—

तेजसश्शमनं चास्य विश्वकर्मा चकारह।
भ्रममारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोनिशातनम्॥
(वि० ३.२।८,९)

विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को शान्त कर दिया। उन्होंने सूर्य को भ्रमियन्त्र (सान) पर चढ़ा कर उसका तेज छांटा।

समीक्षा—क्या सूर्य कोई चाकू या छुरी थी जिसे सान पर चढ़ाया गया? हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य नहीं कोई तश्तरी होगी और पुराण कर्ता को आंख के दोष के कारण सूर्य दिखाई दिया होगा, इसी लिये ऐसा लिख मारा है। अन्यथा पृथिवी से १३॥ लाख गुणा बड़े सूर्य को सान पर कैसे चढ़ाया जा सकता है। वह सान कितनी बड़ी होगी। उसकी नेती को किसने खेंचा होगा? क्या पुराण बनाने वाले ने खेंचा था?

तैत्तिरीय यजुर्वेद कैसे बना?

तृतीय अंश के पांचवें अध्याय में तैत्तिरीय यजुर्वेद की रचना की अद्भुत कथा दी हुई है। वैशम्पायन जी के शिष्य याज्ञवल्क्य ने एक दिन वैशम्पायन के अन्य शिष्यों को निस्तेज बता दिया। गुरु जी अत्यन्त कुपित हुए और कहने लगे मुझे तेरे जैसे शिष्यों की आवश्यकता नहीं है अतः तू ने जो कुछ पढ़ा है वह सब त्याग दे। यह सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा मुझे भी आप से कोई प्रयोजन नहीं है। लीजिये, जो कुछ मैंने आप से पढ़ा है वह यह विद्यमान है।

इत्युक्तो रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि सः।
छर्दयित्वा ददौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः॥
यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज।
जगृहुस्तित्तरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः॥
(वि० ३.५।११, १२)

ऐसा कहकर याज्ञवल्क्य जी ने रुधिर से भरा हुआ मूर्तिमान यजुर्वेद वमन करके उन्हें दे दिया और स्वेच्छानुसार चले गये। हे द्विज! याज्ञवल्य द्वारा वमन की हुई उन यजु श्रुतियों को अन्य शिष्यों ने तित्तिर (तीतर) होकर ग्रहण कर लिया, इसलिये वे सब तैत्तिरीय कहलाये।

समीक्षा—कैसी अद्भुत और असम्भव गप्प है। कुछ तो बुद्धि से काम लिया होता। विद्या भी क्या कोई भोजन था जिसे उन्होंने उगल दिया। न तो कोई गुरुद्वारा उपदिष्ट विद्याओं को रुधिर सहित उगल सकता है और दूसरों द्वारा तीतर बन कर उस वमन को खा जाना तो बड़ी ही घृणा जनक और सृष्टि क्रम के विरुद्ध है। अल्प बुद्धि और मूढमति लोग ही ऐसी घटनाओं और चमत्कारों पर विश्वास कर सकते हैं बुद्धिमान् नहीं। एक बात और यह गपोड़ा इतिहास विरुद्ध भी है। तैत्तिरीय शाखा का नाम तित्तिरि आचार्य के नाम पर पड़ा है जैसा पाणिनी ने भी लिखा है—

तित्तिरिवरतन्तु खण्डिकोरवाच्छण॥
(पा० अ० ४।३।१०३)

तित्तिर आचार्य से कहे प्रवचन को पढ़ने वाले छात्र तैत्तिरीय कहलाये और वह प्रवचन तैत्तिरीय कहलाया।

पुराणों में परस्पर विरोध

पुराणों में परस्पर बड़ा मतभेद है। एक कुछ कहता है तो दूसरा कुछ। यहां तक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। विष्णु पुराण में श्राद्ध में मांस खिलाने का विधान है यथा—

हविष्यमत्स्य मासैस्तु शशस्य नकुलस्य च।
सौकरच्छागलैणेयरौरवैर्गवयेन च॥
औरभ्रगव्यैश्च तथा मास वृद्धया पितामहाः।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वार्ध्रीण सामिषैः॥

खड्गमांसमतीवात्र काल शाकं तथा मधु ।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्त तृप्तिदानि नरेश्वर ॥
(वि० ३।१६।१-३)

और्व बोले—हवि, मत्स्य, खरगोश, नकुल, शूकर, छाग, कस्तूरिया मृग, कृष्ण मृग गवय (वन गाय) और मेष के मांसों से तथा गव्य (गौ के घी दूध आदि) से पितृगण क्रमशः एक एक मास अधिक तृप्ति लाभ करते हैं और वार्ध्रीणस पक्षी के मांस से सदा तृप्त रहते हैं। हे नरेश्वर ! श्राद्ध कर्म में गेंडे का मांस कालशाक और मधु अत्यन्त प्रशस्त और तृप्तिदायक हैं।

श्राद्ध में मांस की कैसी प्रशंसा है। पौराणिकों को श्राद्ध करते समय वार्ध्रीणस पक्षी का मांस खिलाना चाहिये जिससे पितर एक ही वार में तृप्त हो जायें। यह तो हुई विष्णु पुराण की लीला। अब आप तनिक भागवत को भी देखें वहां श्राद्ध में मांस भक्षण का कैसा प्रबल खण्डन किया गया है।

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्ववित् ।
मुन्यन्नैः स्यात् परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥
नैतादृशो परो धर्मो नृणां सद्धर्मिच्छताम् ।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥
(श्रीमद् भागवत ७।१५।७-८)

धर्म के मर्म को समझने वाला पुरुष श्राद्ध में मांस न दे और न स्वयं ही खाये क्योंकि पितृगण की तृप्ति जैसी मुनि जनोचित आहार से होती है वैसी पशु हिंसा से नहीं होती। सद्धर्म की इच्छा वाले पुरुषों के लिये 'सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति मन, वचन और शरीर से दण्ड का त्याग कर देना'—इसके समान कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है।

समीक्षा—यह है पुराणों में परस्पर विरोध का स्वरूप। मैं पुराण पन्थियों से पूछना चाहता हूँ कि क्या अब भी इनको व्यास की रचना मानोगे।

पुराणों में बौद्ध मत

विष्णु पुराण में बौद्धमत का स्पष्ट उल्लेख है। देखिये—

एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन् ।
माया मोहः स दैतेयान्धर्ममत्याजयन्निजम् ॥
(वि० ३।१८।१९)

इस प्रकार बुध्यत (जानो), बुध्यध्वम् (समझो) बुध्यत (जानो) आदि शब्दों से बुद्धधर्म का निर्देश कर मायामोह ने दैत्यों से उनका निज धर्म छुड़ा दिया।

समीक्षा—महात्मा बुद्ध को उत्पन्न हुए २५०० वर्ष हुए हैं और महर्षि वेदव्यास महाभारत काल में हुए जिस समय बुद्ध अभी भविष्य के गर्भ में भी नहीं आये थे फिर इस पुराण में बुद्ध मत का वर्णन कैसे आ गया। निश्चय ही यह पुराण बुद्धमत के अविर्भाव के भी बहुत पश्चात् बना है। चतुर्थ अंश के तेईसवें और चौबीसवें अध्याय में तो मगध वंश का वर्णन, नन्द वंश का शासन और कौटल्य द्वारा उनके वंश का नाश, चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक फिर शुङ्ग वंश का राज्य करना, कण्ववंशीय भूपालों आन्ध्र भृत्य राजागण और शकों के शासन का विस्तार पूर्वक उल्लेख है। यहीं तक नहीं यवन और तुर्कों तक का भी वर्णन है। अतः यह पुराण यवन काल में बना है। कुछ पुराण पोषक पुराणों को व्यास कृत सिद्ध करने के लिये यह दलील दिया करते हैं कि व्यास त्रिकालज्ञ थे। उन्होंने भविष्य की घटनाओं को पहले ही हस्तआमलकवत् देखकर भविष्यत् क्रिया में उनका वर्णन किया है। परन्तु जैसा हमने आरम्भ में दर्शाया है यह लचर दलील है, यदि वे त्रिकालज्ञ थे तो उन्हें अङ्गरेजों के पश्चात् घटित होने वाली घटनाओं का भी वर्णन करना चाहिये था। परन्तु ऐसा उन्होंने किया नहीं। रही भविष्यकाल की क्रिया की बात तो पुराण लेखक ने इन सब गपोड़ों को व्यास के मथ्थे मढ़ने के लिये भविष्यत् कालिक क्रिया का प्रयोग कर दिया है। देवीभागवत के अनुसार पुराण बनाने वाले चतुर धूर्त थे। धूर्त लोग क्या नहीं कर सकते ?

क्या यह भी कोई आदर्श है ?

मान्धाता ने शतबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से विवाह किया और—

पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च तस्यां पुत्रत्रिय-मुत्पादयामास । पञ्चाशद्द्युतिरस्तास्यामेव तस्य नृपतेर्बभूवुः ॥ (वि० ४।२।६७-६८)

उससे पुरुकुत्स अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये तथा उसी बिन्दुमती से उसके ५० कन्यायें हुईं ।

समीक्षा—इससे कौन सी वैदिक शिक्षा का आदर्श दिया जा रहा है। क्या सब लोग ५२-५३ सन्तान उत्पन्न करें। वेद के अनुसार तो १० सन्तान से अधिक उत्पन्न करने वाला कामी होता है। अतः मान्धाता भी कामी सिद्ध होते हैं।

सर्प विष चिकित्सा

लीजिये पाठक गण ! सर्प विष तथा अन्य विषों के प्रभाव को दूर करने का कितना सस्ता और अद्भुत नुसखा है—

नर्मदा यै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि ।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ॥
(वि० ४।३।१३)

नर्मदा को प्रातःकाल नगस्कार है और रात्रि काल में भी नर्मदा को नमस्कार है। हे नर्मदे तुम को बारम्बार नमस्कार है, तुम मेरी विष और सर्प से रक्षा करो।

इसका उच्चारण करते हुए दिन अथवा रात्रि में किसी समय भी अन्धकार में जाने से सर्प नहीं काटता तथा इसका स्मरण करके भोजन करने वाले का खाया हुआ विष भी घातक नहीं होता।

समीक्षा—पौराणिक वैद्यों को औषधियों के स्थान पर इसी मन्त्र ? का प्रयोग करना चाहिए और संसार को अपने ज्ञान और विज्ञान की पराकाष्ठा का परिचय देना चाहिए। हम अधिक नहीं ३ माशा विष देंगे। है कोई पौराणिक जो खा कर दिखा दे और फिर जीवित भी रह जाये। यदि पुराणों को ठीक मानने वालों में कुछ भी दम खम है तो इस चुनौती को स्वीकार करें। इस चैलेञ्ज को स्वीकार न करने पर पुराण गप्प सिद्ध हो जायेंगे।

श्रीकृष्ण बाल के अवतार

विष्णु पुराण में एक बात बड़ी ही महत्वपूर्ण कही गई। वह यह कि श्रीकृष्ण न ईश्वर के अवतार हैं न विष्णु के वे तो बाल के अवतार हैं—

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले ।
अवतीर्य भुवो भार क्लेशहानिं करिष्यतः ॥
वासुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा ।
तत्रायामष्टमो गर्भो मत्केशो भवितासुरा ॥
(वि० ५।१।५९, ६०, ६३)

पराशर बोले—हे महामुने ! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर परमेश्वर ने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े, और देवताओं से बोले—मेरे ये दोनों केश पृथिवी पर अवतार लेकर पृथिवी के भार रूप कष्ट को दूर करेंगे। वसुदेव की जो देवी के समान देवकी नामक भार्या है उसके आठवें गर्भ से मेरा एक श्याम केश अवतार लेगा।

समीक्षा—यहाँ तो पुराणकार ने सारे पौराणिक मण्डल की कमर तोड़ दी है। अन्य पुराणों में कृष्ण को भगवान् का अवतार बताया है। परन्तु यहां तो उन्हें काले बाल का अवतार बताया गया है। अब तो पौराणिकों को भी अपने मान्य पुराण का आदर करते हुए हठ और दुराग्रह छोड़ देना चाहिये।

विचित्र उत्पत्तियां

ईश्वर के नियम बड़े ही अटल हैं। राजा हो या रङ्क, विद्वान् हो या मूर्ख, भोगी हो या योगी किसी में भी ईश्वरीय नियमों को तोड़ने की शक्ति नहीं है। मानव उत्पत्ति का भी एक नियम है। स्त्री और पुरुष के संयोग से ही सन्तान उत्पन्न होती है परन्तु

इस पुराण में कहीं जांघ से उत्पत्ति दिखाई है तो कहीं मुख से। कुछ उदाहरण देखिये—

सत्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतोब्राह्मणो द्विज।
(वि० १।५।३३)

हे द्विज! प्रजापति के मुख से सत्वप्रधान देवगण उत्पन्न हुये।

गायतोऽङ्गात्समुत्पन्ना गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात्।
(वि० १।५।४६)

गान करते समय उनके (ब्रह्मा के) शरीर से तुरन्त ही गन्धर्व उत्पन्न हुये।

वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महामुने।
वैन्यो नाम महिपालो यः पृथुः परिकीर्तितः॥
(वि० १।१३।८, ९)

हे महामुने वेन के हाथ का मत्थन करने पर उससे वैन्य नामक महिपाल उत्पन्न हुए जो पृथु नाम से विख्यात है।

मथ्यमानात्समुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल।
(वि० १।१३।१४)

उसकी (वेनकी) जंघा के मथने पर उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ।

अगुष्ठाद्दक्षिणा दक्षः पूर्वं जातो मया श्रुतः।
(वि० १।१५।९)

मैत्रेय जी ने कहा—हे महामुने! मैंने तो सुना था कि दक्ष का जन्म ब्रह्मा जी के दायें अंगूठ से हुआ था।

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत।
(वि० १।१५।११५)

अग्नि का पुत्र कुमार शरस्तम्ब (सरकण्डे) से उत्पन्न हुआ था।

षट् सुता सुमहासत्त्वास्ताभ्रायाः परिकीर्तिताः॥
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि गृद्ध्रिकाः।
शुकी शुकानजनयदुलूकप्रत्युलूकिकान्॥
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृद्ध्रांश्च गृद्ध्र्यपि।
शुच्यौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु व्यजायत॥
अश्वानुष्ट्रान्गर्दभांश्च ताम्रावंश प्रकीर्त्तितः॥
(वि० १।२१।१४ से १७)

कश्यप जी की स्त्री ताम्रा की शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि, और ग्रद्ध्रिका ये छः कन्यायें कही जाती हैं। शुकी से शुक (तोते) उलूक एवं उलूकों के प्रतिपक्षी (काक) आदि उत्पन्न हुये श्येनी से श्येन (बाज) भासी से भास और गृद्ध्रिका से गृद्ध्रों का जन्म हुआ। शुचि से जल के पक्षिगण और सुग्रीवी से अश्व, उष्ट्र और गर्दभो की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार यह ताम्रा का वंश कहाता है।

सूर्य की पत्नी थी संज्ञा। सूर्य के तेज को न सह सकने के कारण वह वनों मे तप करने चली गई और छाया को सूर्य की सेवा में नियुक्त कर गई। एक दिन भेद खुला तो सूर्य ने देखा कि संज्ञा घोड़ी का रूप धारण कर वन में तपस्या कर रही हैं और तब—

वाजिरूपधरः सोऽथ तस्यां देवावथाश्वि नौ।
जनयामास रेवन्त रेतसोऽन्ते च भास्करः॥
(वि० २।३।७)

अतः सूर्य ने भी घोड़े का रूप धारण कर दो अश्वनिकुमार और रेत स्राव के अनन्तर ही रेवन्त को उत्पन्न किया।

क्षुतवतश्च मनोरिक्ष्वाकुः पुत्रो जज्ञे घ्राणतः॥
(वि० ४।२।११)

छींकने के समय मनु की घ्राणेन्द्रिय (नाक) से इक्ष्वाकु नामक पुत्र का जन्म हुआ।

सत्यधृतेर्वराप्सरसमुर्वशीं दृष्ट्वा
रेतस्कन्नं शरस्तम्बे पपात्।
तच्च द्विधागतमपत्यद्वयं
कुमारः कन्या चाभवत्॥
(वि० १९।६५-६६)

एक बार अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी को देखने से सत्य धृति का वीर्य स्खलित होकर सरकण्डे पर पड़ा। उसके दो भागों में बट जाने के कारण पुत्र और पुत्री रूप दो सन्तानें उत्पन्न हुई। (इन में से पुत्र का नाम कृप और कन्या का नाम कृपि हुआ)

समीक्षा—पाठक गण ! विचित्र और अद्भुत उत्पत्तियों के कुछ ही उदाहरण यहां दिये हैं इस प्रकार की और भी बहुत सारी बातें इस तथा अन्य पुराणों में भरी पड़ी हैं। ये उत्पत्तियां सृष्टि क्रम विरुद्ध होने के कारण बुद्धिग्राह्य नहीं । यदि हाथ पांव के मथने से सन्तान उत्पन्न हो जाती थी तो अब क्यों नहीं होती। क्या कोई पौराणिक ऐसा करके दिखा सकता है। इसी प्रकार थूकने और छींकने से भी सन्तानें उत्पन्न नहीं होती यह भी गप्प ही है। और शुकी श्येनी आदि से जो पशु पक्षियों की उत्पत्ति मानी है यह वेद के विरुद्ध तो है ही साथ ही पुराण विरुद्ध भी है क्योंकि इसी पुराण में प्रथम अंश के १२ वें अध्याय में सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति ईश्वर से ही मानी है। जिस प्रकार शुकी आदि से शुक आदि की कल्पना निराधार है उसी प्रकार घोड़ी से अश्वनि कुमारों की उत्पत्ति भी असम्भव है।

महापुरुषों पर दोषारोपण

पुराणकारों ने महापुरुषों के ऊपर मन माने दोष लगाकर उनको जनता की दृष्टि में गिराने का प्रयास किया है। कुछ स्थलों का अवलोकन कीजिये—

ता वार्यमाणः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रति प्रियाः ॥
(वि० पु० ५।१३।५९)

वे रास रसिक गोपिकाएं पति, माता पिता और भ्राता आदि के रोकने पर भी रात्रि में श्री कृष्ण के साथ रमण करतीं थीं।

पुराणकार के अनुसार श्री कृष्ण जी की १६००८ रानियां थी (वि० ५।२८।३-५)

एकदा रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः ।
(वि० ५।३६।११)

एक दिन श्रीबलभद्र जी (बलराम) ने रैवतोधान में मद्यपान किया।

समीक्षा—इस प्रकार इस पुराणकार ने महापुरुषों के जीवन पर दोष लगाकर अपने कलुषित हृदय का ही परिचय दिया है। समझ में नहीं आता कि इन दोषों को लिखकर पुराणकार अपने पाठकों के समक्ष कौन सा आदर्श रखना चाहता है। क्या और लोग भी इस प्रकार मद्यपान करें, दूसरों की स्त्रियों से रमण करें और अनेक विवाह करें ? वस्तुतः इस पुराण में भगवान् कृष्ण और श्रीबलराम जी के आदर्श चरित्र को दूषित करने का कुप्रयास किया गया है। कृष्ण जी के १६००८ रानियां नहीं थी उनके तो एक ही पत्नी थी। अपनी पत्नी से सन्तान उत्पन्न करने के लिये उन्होंने १२ वर्ष तप किया था फिर वे गोपियों के पीछे कैसे भाग सकते थे । श्री बलराम भी मद्यपान जैसा दूषित कर्म कैसे कर सकते थे ? ये बातें पुराणकार की कपोल कल्पना होने के कारण सर्वथा त्याज्य हैं।

वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन

अब हम पुराण के कुछ ऐसे स्थल पाठकों के समक्ष रक्खेंगे जिन में वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि की गई है—

ईश्वर का स्वरूप

वेद में ईश्वर को अज (अजन्मा) और अकायम् (शरीर रहित) आदि बताया गया है पुराण में भी ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसी प्रकार के विशेषण दिये गये हैं यथा—

शृणोष्यकर्णः परिपश्यसि त्व-
मचक्षुरेको बहुरूपरूपः ।
अपादहस्तो जवनो गृहीता
त्वं वेत्सि सर्वं न च सर्व वेद्यः ॥
(वि० ५।१।४०)

हे प्रभो ! आप कर्णहीन होकर भी सुनते हैं, नेत्र हीन होकर भी देखते हैं, एक होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। हस्तपाद आदि से रहित होकर भी बड़े वेगशाली और ग्रहण करने वाले हैं

तथा सब के अवेद्य होकर भी सब को जानने वाले हैं।

तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
(वि० १।२।१३)

वह प्रभु नित्य, अजन्मा अक्षय और अव्यय है।

विशुद्धबोधवन्नित्यमज मक्षयम व्ययम् ।
अव्यक्तमविकारं यत्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
(वि० १।९।५१)

जो विशुद्ध, बोधरूप, नित्य, अजन्मा अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है वही विष्णु का परम पद (परम स्वरूप) है।

इसी प्रकार के भाव और भी अनेक स्थानों पर प्रकट किये गये हैं।

सन्ध्या दो ही समय

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में दो समय सन्ध्या करने का उल्लेख किया है। परन्तु बहुत से पौराणिक त्रिकाल सन्ध्या का विधान बताते हैं। परन्तु यह पुराण दो काल सन्ध्या का ही विधान बताता हैं—

देव गोब्राह्मणान्सिद्धान्वृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत् ।
द्विकालं च नमेत्सन्ध्यामग्नीनुपरचत्तेथा ॥
(वि० ३।१२।१)

गृहस्थ पुरुष को नित्य प्रति देवता, गौ ब्राह्मण सिद्धगण, वयोवृद्ध तथा आचार्य की पूजा करनी चाहिये और दोनों समय सन्ध्या वन्दन तथा अग्निहोत्रादि कर्म करने चाहिये।

एक और प्रमाण देखिये—

दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षैर्युतां बुधः ।
उपतिष्ठेद्यथान्यायं सम्यगाचम्य पार्थिव ॥
(वि० ३।११।९८)

हे राजन् ! बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि सायं काल के समय सूर्य के रहते हुये और प्रातः काल तारागण के चमकते हुये ही भली प्रकार आचमनादि करके विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करे।

अतिथि यज्ञ का महत्त्व

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमदाय गच्छति ॥
(वि० ३।११।६६)

जिस के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है उसे वह अपने पाप देकर उसके शुभ कर्मों को ले जाता है।

यहां कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। पापों और पुण्यों की कोई गठड़ी नहीं होती जिसे अतिथि देकर और लेकर चला जाता हो अपितु जिसके घर से अतिथि निराश लौट जाये उस गृहस्थी का अपयश होता है। यही भाव है।

श्राद्ध खण्डन

महाभारत काल में ही मृतक श्राद्ध की अवैदिक प्रथा का आरम्भ हो गया। अनेक ग्रन्थों में इस कुप्रथा का खण्डन विद्यमान हैं। पुराणों ने भी इसका घोर खण्डन किया हैं। एक उदाहरण देखिये—

तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः ।
कुर्याच्छ्राद्धं श्रमायान्नं न वहेयुः प्रवासिनः ॥
(वि० ३।१८।२८)

यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन करने से किसी पुरुष की तृप्ति हो सकती है तो विदेश को यात्रा के समय खाद्य पदार्थ ले जाने का परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है, पुत्रगण घर पर ही श्राद्ध कर दिया करें।

यद्यपि पुराणकार ने इस श्लोक को पूर्वपक्ष की ओर से प्रस्तुत किया हैं परन्तु इस प्रबल युक्ति का पुराणकार कोई भी उत्तर नहीं दे सका और न कोई पौराणिक दे ही सकता है अतः पुराण डंके की चोट से श्राद्ध का खण्डन कर रहा है।

आश्रम मर्यादा

यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते ।
परिव्राट् चापि मैत्रेय स नग्नः पापकृन्नरः ॥
(वि० ३ । १८ । ३७)

हे मैत्रेय ! जो पुरुष गृहस्थाश्रम को छोड़ने के अनन्तर वानप्रस्थ या सन्यासी नहीं होता वह पापी भी 'नग्न' हो है ।

उलटे मार्ग को अवलम्बन करने वाले को 'नग्न' कहते हैं ।

नियोग

पौराणिक नियोग का नाम सुनते ही नाक भौं चढ़ाने लगते हैं परन्तु इनके ग्रन्थों में स्थान स्थान पर नियोग द्वारा सन्तान उत्पत्ति का वर्णन है । यहां दो प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं—

इक्ष्वाकु के महाराज सौदास के यहां सन्तान नहीं हुई तब—

वसिष्ठश्चापुत्रेण राज्ञा पुत्रार्थमभ्यर्थितो
मदयन्त्यां गर्भाधानं चकार ॥
(वि० ४ । ४ । ६९)

पुत्र हीन राजा के प्रार्थना करने पर वशिष्ठ जी ने मदयन्ती के गर्भाधान किया ।

विचित्र वीर्य ने काशिराज की पुत्री अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया । उनके उपभोग में अत्यन्त व्यग्र रहने के कारण वह असमय में ही मृत्यु का ग्रास बन गया । तब मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायन ने सत्यवती के नियुक्त करने से माता का वचन टालना उचित न समझ विचित्रवीर्य की पत्नियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और उन को भेजी हुई दासा से विदुर नामक पुत्र उत्पन्न किया । (वि० ४।०।३६-३८)

यहां तो स्वयं व्यास देव जी ने नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न की है अब तो किसी भी पौराणिक को महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करने का साहस न होना चाहिये ।

फलित ज्योतिष खण्डन

असत्प्रतिगृहीता तु नरके यात्यधोमुखे ।
अयाज्ययाजकश्चैवै तथा नक्षत्र सूचकः ॥
(वि० २।६।१७-१८)

आसत्-प्रतिग्रह से लेने वाला अयाज्य याजक नक्षत्रोपजीवी पुरुष अधोमुख नरक में पड़ता है ।

फलित ज्योतिष का कैसा घोर खण्डन किया है । ज्योतिषियों ! यदि नरक में गिरने से बचना चाहते हो तो इस ढोंग को छोड़ दो और भोले भाले लोगों को लूटना बन्द करो ।

आर्य और नमस्ते

इन दो शब्दों से कुछ कट्टर पन्थी पौराणिक ऐसे चिढ़ते हैं जैसे लाल वस्त्र से बैल जब कि १८ पुराणों में इन शब्दों का प्रभूत प्रयोग किया गया है । परन्तु कुछ लोग अपनी मनमानी चलाते हैं । पौराणिक श्री माधवाचार्य जी लिखते हैं—

आर्य शब्द निःसन्देह वैदिक है, शास्त्रीय है और श्रेष्ठार्थ वाचक भी है, तथा भारतीय साहित्य में इसका प्रयोग भी यत्र तत्र पर्याप्त मिलता है, परन्तु यह शब्द 'हिन्दु' शब्द का स्थान कदापि नहीं ले सकता ।

(क्यों धर्म दिग्दर्शन उत्तरार्द्ध पृष्ठ १०१०)

यह तो वही बात हुई पञ्चों की बात सिर माथे पर परनाला गिरेगा वहीं । यह मा+धव जी का पक्षपात ही है । एक निष्पक्ष सनातन धर्मी के उद्गार देखिये—

कुछ लोग 'हिन्दु' शब्द को आर्य शब्द का पर्याय बताकर उसे वैदिक सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयास करते हैं । यह हिन्दु शब्द आर्यों के लिये विदेशी व्यवसाइयों द्वारा व्यवहृत 'सिन्धु' शब्द का अपभ्रंश है ।.....इसलिये यहां पर (इस पुस्तक में) 'हिन्दु' शब्द की जगह 'आर्य' 'भारतीय' शब्द ही अधिक प्रयुक्त हुआ है ।

(भारतीय संस्कृति, म० म० पं० श्री रामगोपाल शास्त्री पृष्ठ २८, २९)

इस पुराण में भी आर्य शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार वेदों उपनिषदों, रामायण महाभारत स्मृतियों तथा पुराणों में नमस्ते का ही प्रयोग मिलता है किसी प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थ में 'राम राम' 'जय सीताराम', 'राधे श्याम' 'राधे राधे' ये और इस प्रकार के अन्य अवैदिक वाक्यों से अभिवादन करने का विधान नहीं मिलेगा अतः पौराणिकों को अपने ग्रन्थों का मान और सम्मान करते हुए अपनी हठधर्मी और दुराग्रह को छोड़ कर आर्य और नमस्ते जैसे श्रेष्ठ शब्दों को ही अपनाना चाहिये, इस में गौरव है।

कुछ रमणीय स्थल

मूढतामैव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः ।
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान् ॥
सञ्चितस्यापि महता वत्सक्लेशेन मानवैः ।
यशसस्तपश्चैव क्रोधो नाशकरः परः ॥

(वि० १।१।१७-१८)

क्रोध तो मूर्खों को ही हुआ करता है, ज्ञानवालों को भला कैसे हो सकता है? भैया! भला कौन किस को मारता है? मनुष्य अपने किये का ही फल भोगता है।

वत्स! यह क्रोध तो मनुष्य के अत्यन्त कष्ट से सञ्चित यश और तप का भी प्रबल नाशक है।

यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्याययन्ते धर्मज्ञः यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥

(वि० १।६।८)

हे धर्मज्ञ! यज्ञ से तृप्त होकर देव गण जल बरसा कर प्रजा को तृप्त करते हैं अतः यज्ञ सर्वथा कल्याण का हेतु है।

बलशौर्याद्याभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना ।
लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्य विवर्जितः ॥

(वि० १।९।३०)

बिना गुणों के पुरुष में बल शौर्य आदि सभी का अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभी से अपमानित होता है।

सुशीलोभव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहितेरतः ।
निम्नं यथापः प्रवणा पात्रमायन्ति सम्पदः ॥

(वि० १।११।२४)

तू सुशील पुण्मात्मा प्रेमी और समस्त प्राणियों का हितेषी बन क्योंकि जैसे नीची भूमि की ओर ढलकता हुआ जल अपने आप ही पात्र में आ जाता है वैसे ही सत्पात्र मनुष्य के पास सारी सम्पतियां स्वयंमेव ही आ जाती हैं।

कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः केन रक्ष्यते ।
हन्ति रक्षति चैवात्मा ह्यसत्साधु समाचरन् ॥
कर्मणा जायते सर्वं कर्मैव गतिसाधानम् ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन साधु कर्म समाचरेत् ॥

(वि० १।१८।३१-३२)

कौन जीव किस से मारा जाता है और कौन किस से रक्षित होता है? शुभ और अशुभ आचरणों के द्वारा आत्मा स्वयं ही अपनी रक्षा और विनाश करता है।

कर्मों के कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही उनकी शुभाशुभ गतियों के साधन हैं। इसलिये प्रयत्न पूर्वक शुभ कर्मों का ही अनुष्ठान करना चाहिये।

कर्मणा मनसा वाचा परपीड़ां करोति यः ।
तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चा शुभम् ॥

(वि० १।१९।६)

जो मनुष्य मन, वचन या कर्म से दूसरों को कष्ट देता है उसके उस पर पीड़ा रूप बीज से ही उत्पन्न हुआ उसको अत्यन्त अशुभ फल मिलता है।

धर्मार्थ कामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि ॥

(वि० १।२०।२७)

हे प्रभो! समस्त संसार के कारणरूप आप में जिसकी निश्चल भक्ति है, मुक्ति भी उसकी मुट्ठी में रहती है फिर धर्म अर्थ काम की तो बात ही क्या है।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते
भवन्तिभूमः पुरुषाः सुरत्वात् ॥
(वि० २।३।२४)

देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य है।

दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता ।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर ।
अनसूया च सामान्य वर्णानां कथिता गुणः ॥
(वि० ३.८।३६-३७)

हे नरेश्वर ! समस्त प्राणियों पर दया, सहनशीलता अमानिता, सत्य शौच, अधिक परिश्रम न करना, मंगलाचरण प्रियवादिता, मैत्री, निष्कामता अकृपणता और किसी के दोष न देखना—ये समस्त वर्गों के सामान्य गुण हैं।

अभय सर्व भूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ।
तस्यापि सर्व भूतेभ्यो न भय विद्यते क्वचित् ॥
(वि० ३।८।३२)

जो मुनि समस्त प्राणियों को अभयदान देकर विचरता है उसको भी किसी से कभी कोई भय नहीं होता।

प्राच्यां दिशि शिरशस्तं याम्यायामथवा नृप ।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ॥
(वि० ३।११।१११)

हे नृप ! सोने के समय सदा पूर्व अथवा दक्षिण की ओर शिर रखना चाहिये। इस के विपरीत दिशाओं की ओर शिर रखना रोग कारक है।

परदारान्न गच्छेच्च मनसापि कथञ्चन ।
किमु वाचास्थिबन्धोऽपि नास्ति तेषु व्यवायिनाम् ॥
मृतो नरकमभ्येति हीयतेऽत्रापि चायुषः ।
परदाररतिः पुंसामिह चामुत्र भीतिदा ॥
(वि० ३।११ १२३-२४)

परस्त्री से तो वाणी से क्या मन से भी प्रसंग न करे, क्योंकि उनसे मैथुन करने वालों को अस्थि बन्धन भी नहीं होता (अर्थात् कीटादि बनते है)

पर स्त्री की आसक्ति पुरुष को इहलोक और परलोक दोनों स्थानों पर भय देने वाली है। इस लोक में उसकी आयु क्षीण होती है और मरने पर वह नरक में जाता है।

देवता पितृभूतानि तथानभ्यर्च्य योऽतिथीन् ।
भुङ्क्ते से पातकं भुंक्ते निष्कृतिस्तस्यनेष्यते ॥
(वि० ३।१८।४६)

जो मनुष्य देवता पितर भूतगण (प्राणिसमूह) और अतिथियों का पूजन किये बिना स्वयं भोजन खाता है वह पापमय भोजन करता है, उसको शुभ गति नहीं हो सकती।

मनोरथानां न समाप्तिरस्ति
वर्षायुतेनापि तथाब्लक्षैः ।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथाना-
मुत्पत्तयस्सन्ति पुनर्नवानाम् ॥
(वि० ४।२।११६)

इन मनोरथों की तो हजारों लाखों वर्षों में भी समाप्ति नहीं हो सकती। उनमें से यदि कुछ पूर्ण भी हो जाते हैं तो उनके स्थान पर अन्य नये मनोरथों की उत्पत्ति हो जाती है।

निस्सङ्गता मुक्तिपदं यतीनां
सङ्गादशेषः प्रभवन्ति दोषाः ।
आरूढयोगो विनिपात्यतेऽध-
स्सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ॥
(वि० ४।२।११४)

'अधिक परिश्रम न करना' हम इस बात से सहमत नहीं हैं। प्रत्येक वर्ण को अपने कार्यों को ठीक रूप से सम्पादन करने के लिये ठीकर परिश्रमी तो होना ही चाहिये।

निः संगता ही यतियों को मुक्ति देने वाली है, सम्पूर्ण दोष संग से ही उत्पन्न होते हैं संग के कारण तो योग में पूर्णता को प्राप्त हुए यति भी पतित हो जाते हैं, फिर जिन्हें थोड़ी ही सिद्धि प्राप्त हुई है उनकी तो बात ही क्या है ?

यत्पृथिव्यां व्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः ॥
(वि० ४ । १० २४, २७)

सम्पूर्ण पृथिवी पर जितने भी धान्य एव सुवर्ण पशु और स्त्रियां हैं वे सब एक मनुष्य के लिए भी सन्तोषजनक नहीं हैं, इसलिए तृष्णा को सर्वथा त्याग देना चाहिए ।

शरीर के जीर्ण होने पर केश और दांत तो जीर्ण हो जाते हैं किन्तु जीवन और धन की आशाएं उनके जीर्ण होने पर भी जीर्ण नहीं होती ।

कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते ॥
गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्चपूजनम् ।
कुर्वतां सफलः कालो देहिनां तात जायते ॥
(वि० ५ । २१ । ३ । ४)

जो समय माता पिता की सेवा किए विना व्यतीत होता है वह असाधु पुरुषों की आयु का भाग व्यर्थ ही जाता है ।

हे तात ! गुरु, देव ब्राह्मण और माता पिता का पूजन करते रहने से देहधारियों का जीवन सफल हो जाता है ।

जातस्य नियतोमृत्यु पतनं च तथोन्नतेः ।
विप्रयोगावसानस्तु संयोगः सञ्चयक्षयः ॥
विज्ञाय न बुधाश्शोकं न हर्ष मुपयान्ति ये ।
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तस्सन्ति तादृशाः ॥
(वि० ५ । ३८ । ८७, ८८)

जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, उन्नति का पतन अवश्यम्भावी है, संयोग का अन्त वियोग ही है तथा संचय के अनन्तर क्षय होना सर्वथा निश्चित ही है—ऐसा जान कर जो बुद्धिमान पुरुष (हानि और लाभ में) हर्ष अथवा शोक नहीं करते उन्हीं की चेष्टा का अवलम्बन कर अन्य लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः ॥
ज्ञान वैराग्य योश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
(वि० ६ । ५ । ४७)

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः का नाम 'भग' है ।

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगास्वाध्यायमावसेत् ।
स्वाध्याय योगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥
(वि० ६ । ६ । २)

स्वाध्याय से योग का और योग से स्वाध्याय का आश्रय करे । इस प्रकार स्वाध्याय और योग-रूप सम्पत्ति से परमात्मा प्रकाशित होते हैं, जाते हैं ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥
(वि० ६ । ७ । २८)

मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण केवल मन ही है, विषय का सङ्ग करने से वह बन्धनकारी और विषय शून्य होने से मोक्ष कारक होता है ।

उपसंहार

हम ने निष्पक्षरूप से पुराण के इतिहास विरुद्ध गपोड़े, सृष्टिक्रम विरुद्ध उत्पत्तियां, असम्भव गप्पें तथा पुराण के उत्तम स्थल पाठकों के समक्ष रख दिये हैं । इस विवेचन से इतना स्पष्ट है यह पुराण न तो धर्मग्रन्थ हो सकते हैं और न ये व्यासकृत हैं । पाठकों को इस समालोचना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके पुराणों को छोड़कर वेदों की शरण में आना चाहिये । वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है । यहां भी जो उत्तम बातें हैं वे वेद की है और जो वेद विरुद्ध अनंगल तथा सृष्टिक्रम विरुद्ध बातें हैं वे पुराणकार को अपनी हैं । अतः चेतो, और वेद की ओर चलो !

"वेदप्रकाश" मासिक के ग्राहक बनिए

वार्षिक मूल्य केवल ३)

पिछले दस वर्षों से वेद प्रकाश विना किसी अड़चन के निरन्तर वैदिक धर्म के प्रचारार्थ निकल रहा है। अत्यल्पकाल में ही वेदप्रकाश ने आर्य जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था।

विगत कुछ वर्षों में "वेदप्रकाश" ने १. दयानन्द ग्रन्थ संग्रह, २. बाल्मीकि रामायण, ३. बृहदारण्यकोपनिषद् कथामाला (स्वामी ब्रह्ममुनि कृत) ४. सृष्टि का इतिहास (पं० लेखराम कृत) ५. गुरुदत्तलेखावलि (पं० गुरुदत्त विद्यार्थी कृत) ६. महर्षि से पूर्व का भारत (पं० आत्माराम अमृतसरी कृत) ७. व्याख्यानमाला (स्वामी नित्यानन्द कृत) अपने विशेषांकों के रूप में प्रकाशित कर आर्य जनता की खूब वाह वाही लूटी।

बृहद विशेषांकों के अतिरिक्त इस वर्ष अब तक निम्न विशेषाङ्क छोटे छोटे प्रकाशित हुए जो कि ठपाकों को उसी वार्षिक मूल्य में प्राप्त हुए—१. रामेश्वरानन्द अङ्क, २. ब्रह्मकुमारी मत खण्डन अङ्क, ३. राजनीतिक अङ्क, ४. ईश्वरस्तुतिप्रार्थना उपासना अङ्क, ५. महर्षि दयानन्द सरस्वती अङ्क ६. विष्णुपुराण आलोचना अङ्क आपके हाथ में है।

प्रत्येक साधारण अङ्क में सम्पादकीय टिप्पणियां होती है जो बड़े चाव से पाठक पढ़ते हैं इसके अतिरिक्त शङ्का समाधान, साहित्य समीक्षा आदि स्थाई स्तम्भ हैं।

देखिये हमारे पाठक क्या कहते हैं

श्री वीरसेन जी वेदश्रमी इन्दौर:—वेद प्रकाश के इस अङ्क का सम्पादकीय पढ़ा। कवि सम्मेलन पर टिप्पणी बहुत उत्तम है। वेद सम्मेलनों का सुझाव आर्य समाज मान ले तो आर्य समाज वैदिक संस्था हो जावे।

श्री भवानीलाल जी भारतीय एम० ए० जोधपुर:—वेदप्रकाश में आपकी टिप्पणियां पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी सभी टिप्पणियां उचित और अनुकूल है।

श्री प्रीतनारायण जौहरी फतेहगढ़:—मैं आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्ष टिप्पणी से बहुत प्रभावित हुआ हूँ तथा मैंने इस प्रकार विक्रय विभाग का आरम्भ करने का निश्चय किया है।

श्री राजकुमार रणञ्जतसिंह M. P.:—(भूतपूर्व प्रधान प्रतिनिधि सभा उ. प्र.) जिस सुयोग्यता एवं निर्भीकता से वेदप्रकाश चलाया जा रहा है तदर्थ आपको धन्यवाद।

श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक:—दिसम्बर के वेद प्रकाश में आर्य विद्वानों की प्रिय पुस्तकों के नाम पढ़ कर मैं चकित रह गया। आपकी टिप्पणी युक्त थी।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—[आयुर्वेदालंकार, बी. आई. एम. एस.] पुरोहित आर्य समाज करौल बाग से चिकित्सा करायें—इलाज का कर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कौलोनी, सोनीपत।
२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैंक लोधी रोड़ नई दिल्ली।
३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपुर।

—श्रीपता पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पुरोहित आर्य समाज करोलबाग नई दिल्ली

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखक:—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सुललित, भावपूर्ण श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र प्रामाणिक सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

बढ़िया कागज, मोटे अक्षर, बड़े साइज के ६०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १२) केवल

दो सनातन सत्ताएं

लेखक—श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीव और प्रकृति अनादि काल से हैं" को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिनका उत्तर इस्लाम और ईसाईयों के पास नहीं है मूल्य १)। आज ही खरीदिये।

विष्णुपुराण की आलोचना

मूल्य ३७ नये पैसे — प्रचारार्थ २५) सैकड़ा

राधास्वामी मत दर्पण

मूल्य २५ नये पैसे — प्रचारार्थ २०) सैंकड़ा

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

मूल्य ३७ नये पैसे — प्रचारार्थ २५) सैंकड़ा

आर्य राजनीति के कतिपय तत्व

[श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर]

मूल्य ३० नये पैसे — प्रचारार्थ २२) सैकड़ा

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रदायक पुस्तकें

तत्त्वज्ञान	३)
प्रभुदर्शन	२)५०
प्रभुभक्ति	१)२०
आनन्द गायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त भगवान	१)
शंकर दयानन्द	)५०
उपनिषद सन्देश	१)२५
सत्यनारायण कथा	)६२

—*—

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानद का रंगीन चित्र	१) २५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

———

महर्षि दयानन्द घटना चित्र	)५०
ओ३म्, स्वागतम, नमस्ते, गायत्रीमन्त्र,	मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक)२५

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली-६

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ८५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
प० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा-कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३।)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७६५.

आदरी सह-सम्पादक
पं० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
टेलीफोन नं० २२१३२८

जुलाई	१९६२
असाढ़	२०१९
वर्ष	अङ्क
१०	१२

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

सूचना

वेदप्रकाश के प्रत्येक ग्राहक को एक नम्बर दिया गया है जो कि पते की चिट पर लिखा व छपा रहता है. मनीआर्डर भेजते समय वह नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

—व्यवस्थापक

आगामी वर्ष का वृहद् विशेषांक

वैदिक धर्म प्रकाश

होगा

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् वेदों के प्रकाण्ड पंडित दर्शनों के मर्मज्ञ स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द जी ने यह पुस्तक लाहौर में लिखी थी। आर्य समाज के जितने भी सिद्धान्त हैं उन सभी के सम्बन्ध में वेद मन्त्र इस पुस्तक में उद्धृत किये गये हैं। सिद्धान्त प्रतिपादक २१९ मन्त्र इस पुस्तक में हैं। यह अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण ग्रन्थ बहुत दिनों से अप्राप्त था। इस बार हम वेद प्रकाश परिवार के सदस्यों को यह अमूल्य ग्रन्थ भेंट कर रहे हैं। इसमें पुस्तक साइज के लगभग १६० पृष्ठ होंगे। आरम्भ में स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी होगी। ऐसा अमूल्य ग्रन्थ प्रत्येक परिवार और पुस्तकालय में होना ही चाहिये। अतः स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को ग्राहक बनावें।

इस ग्रन्थ का मूल्य २) होगा। परन्तु 'वेद प्रकाश' के ग्राहकों को यह निश्शुल्क मिलेगा। अतः ३) भेज कर शीघ्र ग्राहक बने। अंक सीमित संख्या में छप रहा है।

—*—

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखक:—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सुललित, भावपूर्ण श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र प्रामाणिक सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

बढिया कागज, मोटे अक्षर, बड़े साइज के ६०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १२) केवल

दो सनातन सत्ताएं

लेखक—श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीव और प्रकृति अनादि काल से हैं" को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिनका उत्तर इस्लाम और ईसाईयों के पास नहीं है मूल्य १)। आज ही खरीदिये।

विष्णुपुराण की आलोचना

मूल्य ३७ नये पैसे प्रचारार्थ २५) सैकड़ा

राधास्वामी मत दर्पण

मूल्य २५ नये पैसे प्रचारार्थ २०) सैंकड़ा

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

मूल्य ४० नये पैसे प्रचारार्थ ३०) सैंकड़ा

आर्य राजनीति के कतिपय तत्व

[श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर]

मूल्य ३० नये पैसे प्रचारार्थ २२) सैंकड़ा

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रदायक पुस्तकें

तत्त्वज्ञान	३)
प्रभुदर्शन	२)५०
प्रभुभक्ति	१).०
आनन्द गायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त भगवान	१)
शंकर दयानन्द	)५०
उपनिषद सन्देश	१)२५
सत्यनारायण कथा	)६२

—*—

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानद का रंगीन चित्र	१) २५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

———

महर्षि दयानन्द घटना चित्र	)५०
ओ३म्, स्वागतम, नमस्ते, गायत्रीमन्त्र,	मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक)२५

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

उस से पूछो

* श्री स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक

तं पृच्छता स जगामा स वेद, स चिकित्वाँ ईयते स न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥

ऋ० १ । १४५ । १ ॥

मन्त्र का प्रथम वाक्य "तं पृच्छता स जगामा स वेद" तीन उपवाक्यों में विभक्त हैं, तं पृच्छता, सः जगाम, सः वेद । सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ हुआ उसको पूछो, वह पहुँचा हुआ है, वह जानता है। तं पृच्छता का प्रयोगात्मक अर्थात् व्यावहारिक, व्यवहार में आने वाला अर्थ है उस से पूछो । अगले दोनों उप वाक्यों की उपस्थिति इसे स्पष्ट कर रही है ।

उस से पूछो (तं पृच्छता) को पढ़ते ही प्रश्न उपस्थित होता है कौन है? वह जिस की ओर मन्त्र इंगित कर रहा है । मन्त्र का निर्देश किस से पूछने का है यदि हम किसी से कुछ पूछना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि जिस से हम पूछना चाहते हैं उसे वह ज्ञात होना चाहिये जो हम पूछना चाहते हैं । यदि हम किसी बात को किसी ऐसे व्यक्ति से पूछ बैठें जो स्वयं ही उस विषय में अनभिज्ञ हो तो फिर वह हमें बतायगा ही क्या ? बता तो वही सकता है जो स्वयं जानता हो । यदि जानता हो परन्तु उस की यह जानकारी दूसरों पर आधारित हो अर्थात् उसने केवल मात्र दूसरों से सुन रखा हो । उस का स्वयं का अपना कोई अनुभव न हो तो वह जो बतायेगा उसमें भ्रान्ति हो सकती है। उदाहरण के लिये हम किसी व्यक्ति से किसी स्थान का मार्ग पूछते हैं तो जहां यह आवश्यक है कि उसे वह मार्ग ज्ञात हो वहां यह भी आवश्यक है कि उसने वह मार्ग देखा भी हो । मार्ग उसने तब देखा होगा जब वह कभी उस स्थान पर गया भी हो, बिना जाये मार्ग देखने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । यदि उसने उस स्थान को जाने वाले मार्ग को देखा नहीं अर्थात् वह कभी उस स्थान को गया नहीं तो हो सकता है कि उसका उस विषयक ज्ञान भ्रान्त हो और यदि यह मान भी लिया जाय कि उसका वह ज्ञान भ्रान्ति रहित है तो भी बिना देखे ठीक-ठीक, यथा तथ्य रूपेण यह बता सकेगा इस में सन्देह है इसलिये वेद ने कहा कि उस से पूछो, (सः जगाम) वह [जो] पहुंचा हुआ है और (सः वेद) जो जानता है ।

प्रत्येक चित्र का एक अंधेरा पार्श्व भी होता है अतः कई बार ऐसा भी होता है कि हम किसी स्थान पर पहुँच चुके, किसी मार्ग से जा चुके भी होते हैं किन्तु फिर भी मार्ग स्मरण नहीं रहता । जब स्वयं को ही स्मरण न हो तो अन्यों को क्या बताया जाय ? अतः वेद ने कहा "तं पृच्छता स जगामा स वेद" उस से पूछो जो पहुँचा हुआ है अर्थात् जा चुका है और जो जानता भी है।

द्वितीय वाक्य में कहा है "सः चिकित्वान् ईयते सः नु ईयते" । इस वाक्य में भी तीन उप वाक्य हैं । (सः चिकित्वान्) वह चिकित्सा कर सकता है, वह अज्ञान रोग को दूर कर सकता है, वह समझा सकता है, उस में समझाने की योग्यता है । है न, 'सः वेद' वह जानता है, वह योग्यता रखता है वह स्वयं वेद है, वेद स्वरूप है (वेद=विद् ज्ञाने) ज्ञान स्वरूप है अतः ज्ञान दे सकता है । अभी दे सकता हो सो बात भी नहीं है आदि सृष्टि से देता रहा है और भविष्य में भी देता रहेगा । आदि सृष्टि में भी दिया और तदुपरान्त जिसने (समाधि अवस्था में) उसका साक्षात किया उसी पर अपने

ज्ञान के रहस्य खोले। जिन पर रहस्य खोले नहीं तो ऋषि कहलाये। रहस्यों को जानकर मन्त्र दृष्टा होकर ही तो ऋषि कहलाये। कहा जा सकता है कि हर एक मन्त्र दृष्टा है क्योंकि हर एक ही मन्त्रों को देखता है। केवल इन आंखों से मन्त्र लिखे देख लेने से कोई मन्त्र दृष्टा नहीं हो जाता, यदि हो जाता होता तो किसी पशु या पक्षी को मन्त्र दिखला देते। भले ही वह पढ़ न सकता, बोल न सकता लेकिन देख तो सकता है। किन्तु देख लेना मन्त्र दृष्टा होने के लिये पर्याप्त नहीं है। तो क्या फिर व्याकरण पढ़कर मन्त्र दृष्टा हो सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। संसार में बड़े-बड़े वैयाकरण हुए हैं, अब भी हैं और भविष्य में भी होंगे, किन्तु वैयाकरण होना और बात है और मन्त्र दृष्टा होना और बात। न तो चर्म चक्षुओं से मन्त्रों को देखने मात्र से ही कोई मन्त्र दृष्टा कहाता है और न वैयाकरण होने से। मन्त्र दृष्टा तो वही होता है जो समाधिस्थ होकर उस प्रभु से वेद को पढ़ता है। जो उस वेद से उस वेद स्वरूप से वेद मन्त्रों के रहस्यों को समझ लेता है और ऐसे मन्त्र दृष्टा को ही ऋषि कहा जाता है। अतएव मन्त्र कहता है 'सः चिकित्वान्' वह समझा सकता है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह मिलता भी है जो उस से पूछे, जो उस से अज्ञान रोग की चिकित्सा करायें। बात समाधिस्थ होने की कह तो दी किन्तु समाधिस्थ होकर भी वह प्राप्त होगा सन्देह तो इस में भी है। 'संशयात्मा विनश्यति' जो सशय-वान् हो वह तो नाश को प्राप्त होता है। संशय को मन से निकालकर प्रयत्न तो कीजिये वह प्राप्त होगा और अवश्यमेव प्राप्त होगा। प्रस्तुत मन्त्र स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर रहा है 'ईयते' वह प्राप्त किया जाता है तथा 'सः नु ईयते' वह सचमुच, निश्चित रूपेण प्राप्त किया जाता है। उसके प्राप्त होने में सन्देह को कोई स्थान नहीं, कोई प्राप्त करने वाला तो हो।

ससार की स्थिति पीलिया के रोगी जैसी है जिसे सब पीला ही पीला दृष्टिगोचर होता है। दोष तो हमारी दृष्टि का है, 'सः जगाम' वह [तो] पहुँचा हुआ है। बताओ वह कहां नहीं है? प्रश्न यह नहीं कि वह कहां है? प्रश्न तो यह है कि वह कहां नहीं है? है संसार में कोई ऐसा स्थान जहां वह न हो? यदि कोई स्थान भी इस प्रकार का सम्भव हो सके कि जहां प्रभु न हो तो संसार के उस भाग की गाड़ी ही ठप्प हो जाय। संसार की गाड़ी संसार का चक्र चल ही उसकी शक्ति से रहा है। वह तो प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक स्थान पर है। कण-कण में, प्रत्येक अणु, प्रत्येक परमाणु में ओत-प्रोत हो रहा है। 'दीदार कहां नहीं है कोई दीदावर तो हो' कोई देखने वाला तो हो वह तो सब स्थानों पर पहुँचा हुआ है। वह तो प्राप्त किया जाता है और निश्चय पूर्वक प्राप्त किया जाता है किन्तुः—

आंख, नाक, मुख बन्द कर नाम निरंजन लेय।
भीतर के पट तब खुलें जब बाहर के पट देय॥

मन्त्र का तीसरा वाक्य हैं "तस्मिन् सन्ति प्रशिषः तस्मिन् इष्टयः" इस वाक्य के दो भाग हैं पहले भाग में कहा है 'तस्मिन् प्रशिषः सन्ति' उसमें उत्तम शिक्षायें हैं और दूसरे भाग में कहा है 'तस्मिन् इष्टयः' उसमें इष्टियां, और सत्कर्म और भद्र भाव हैं। यदि उसमें उत्तम शिक्षायें भद्र भाव और सत्कर्म न हो तो भला अज्ञान रोग की चिकित्सा ही वह किस प्रकार कर सकता है उत्तम शिक्षाओं के अभाव में ही दुष्कर्म होते हैं और सत्कर्मों की प्रेरणा सर्वदा उत्तम शिक्षाओं से ही मिला करती है। भगवान् के पास उत्तम शिक्षायें हैं और साथ ही हैं भद्र भाव, तभी तो वह सत्कर्म कर्त्ता है, उस से कभी कोई दुष्कर्म नहीं होता। उत्तम शिक्षायें ही भद्र भावों की जननी है तथा भद्र भावों से ही सत्कर्मों का सम्पादन होता है। यदि मानव अपना कल्याण चाहता है तो उसका एक ही प्रकार है कि वह प्रभु की शरण में जाय और दुष्कर्मों से बचने के लिये, दुष्कर्म रूपी रोग के निवारणार्थ उस प्रभु से चिकित्सा कराये। वह अज्ञान रोग और तज्जन्य दुष्कर्म (रोग) को चिकित्सा कर सकता है क्योंकि उसमें उत्तम शिक्षायें हैं। जब अज्ञान रोग की चिकित्सा हो जायगी, अज्ञानता

दूर हो जायगी। जब उत्तम शिक्षायें प्राप्त होगी तब भद्र भाव जगेंगे, तब भद्र भावों का उदय होगा। जितना जितना भद्र भावों का उदय होगा, उतनी ही उतनी सत्कर्मों में प्रवृत्ति होगी, क्योंकि भद्र भाव सत्कर्मों के प्रेरक होते हैं। जिस प्रकार भद्र भावों की उत्पत्ति के लिये उत्तम शिक्षाओं की आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार सत्कर्मों के लिये भद्र भावों की। वेद ने यह स्वर्ण-सूत्र स्वर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया मानव जीवन की सफलता के लिये। किन्तु इतना सब होने पर भी यदि मानव गड़बड़ करे, उस प्रभु की उत्तम शिक्षाओं से लाभ प्राप्त न करे जिस से भद्र भावों की उत्पत्ति होकर सत्कर्मों का आचरण हो तो.....तो उसकी व्यवस्था भी है, सुन लीजिये मन्त्र का चौथा वाक्य क्या कहता है ?

"सः वाजस्य शवसः शुष्मिणः पतिः" वह ज्ञान व क्रिया शक्ति का, बल का तथा शोषण शक्ति का पति अर्थात् स्वामी है। वह ज्ञान का स्वामी है, ज्ञान उसके अधिकार में है, वह ज्ञान से सम्पन्न है। मानव की कोई भी गति विधि उससे छिपी नहीं रह सकती। एक तो वह सब स्थानों पर पहुंचा हुआ, दूसरे ज्ञान से सम्पन्न और फिर ज्ञान भी किस प्रकार के ? जिस के साथ क्रिया शीलता है। वाज का अर्थ जहां ज्ञान है वहां क्रिया भी है। वह केवल ज्ञानी ही नहीं है अपितु ज्ञान को क्रिया रूप में परिणित करने की शक्ति से भी सम्पन्न है अतः सावधान !

प्रभु की क्रिया शीलता भी साधारण नहीं यह ध्यान रहे। वह तो 'शवसः' बल का भी स्वामी है, उसके पास अपरिमित बल है। वह है ही बल स्वरूप, तभी तो वैदिक साधक कहता है 'बलमसि बलं मयिधेहि' तू बल का भण्डार है मुझे भी बल प्रदान कर। बताइये जहां ज्ञान के साथ क्रिया शीलता भी है और बल भी, वहां किस प्रकार पार पाया जा सकता है। सीधी तरह कोई होश में नहीं आये तो वह अपनी क्रिया शीलता का बल पूर्वक प्रयोग करेगा और तब.....। तब क्या ? अभी आगे भी उसके पास कुछ है। आप को ज्ञात होना चाहिये कि वह 'शुष्मिणः पतिः' शोषण शक्ति का भी स्वामी है। जो उसकी उत्तम शिक्षाओं के द्वारा अपने में भद्र भाव उत्पन्न करके सत्कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता वह प्रभु अपनी ज्ञानमय क्रिया शक्ति का बल पूर्वक प्रयोग करके इस प्रकार के दुष्कर्मियों का शोषण कर डालता है। अब कहिये है कोई बचने का उपाय, कोई मार्ग। मार्ग ही क्या ? कोई ठौर ठिकाना भी नहीं है, क्योंकि वह सब स्थानों पर पहुंचा हुआ है। केवल एक ही और एक मात्र उपाय यही है कि उसकी शरण गहो और उसकी उत्तम शिक्षाओं को प्राप्त कर भद्र भाव मय जीवन बनाकर सत्कर्मों में प्रवृत्त हो जाओ।

—❀—

'वेद प्रकाश' मासिक के ग्राहक बनिए

वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक निष्पक्ष पत्र। इस पत्र के लेखों को साप्ताहिक सत्संगों में जहां प्रचारक कभी पहुंचते ही नहीं पढ़ कर सुनाया जा सकता है।

वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है और प्रवेशांक अगस्त का १५० पृष्ठ से २०० पृष्ठ तक का होता है वर्ष में और भी तीन चार विशेषांक प्रकाशित होते हैं। नमूना मुफ्त मंगावें। वार्षिक मूल्य केवल ३)

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली।

सम्पादकीय टिप्पणियां

"वेद प्रकाश" का प्रथम दशक—

परम पिता परमात्मा की असीम कनुकम्पा और महती कृपा से आर्य विद्वानों और पाठकों के सहयोग से इस अंक के साथ 'वेद प्रकाश' सफलता पूर्वक अपने जीवन के १० वर्ष समाप्त कर रहा है। इन दस वर्षों में वेद प्रकाश ने अपने पाठकों को अनेक दुर्लभ और महत्वपूर्ण ग्रन्थ अत्यन्त अल्प मूल्य में प्रदान किये हैं। महर्षि दयानन्द ग्रन्थ संग्रह, श्री मद्वाल्मीकि रामायण, सृष्टि का इतिहास, गुरुदत्त लेखावली, बृहदारण्यक कथा माला, व्याख्यान माला आदि ग्रन्थ पिछले वर्षों में पाठकों को भेंट किये जा चुके हैं। इन बृहद् विशेषांकों के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषांक भी हमने दिये हैं यद्यपि उनका कलेवर छोटा है परन्तु महत्व की दृष्टि वे भी कम नहीं है। हमारे लघु विशेषांकों में भगवान् कृष्ण, राधा स्वामी मतालोचन, रामेश्वरानन्द अंक ब्रह्माकुमारी अंक, राजनीति अंक, आर्य समाज अंक, दयानन्द अंक, स्तुतिप्रार्थनोपासना अंक, और विष्णु पुराणालोचना अंक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी अंकों की विद्वानों ने और पाठकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। समय समय पर हम अपने पाठकों के विचारों को प्रकाशित भी करते रहे हैं।

इस वर्ष हम बृहद् विशेषांक के रूप में श्री स्वामी वेदानन्द जी द्वारा लिखित "वैदिक धर्म" दे रहे हैं। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में सभी सिद्धान्तों के सम्बन्ध में वेद मन्त्र उद्धृत किये गये हैं। इस में २१९ मन्त्र हैं और पुस्तक साइज के १६० पृष्ठ होंगे। यह अंक श्रावणी के पावन पर्व पर पाठकों की भेंट किया जायेगा। स्वाध्याय के के लिये अत्युपयोगी पुस्तक है।

कुछ ग्राहकों को छोड़कर शेष का शुल्क जुलाई मास में समाप्त हो जायेगा अतः जिन भी महानुभावों का शुल्क समाप्त है वे विना विलम्ब के शीघ्रातिशीघ्र ३) वार्षिक शुल्क भेजने को कृपा करें।

इस विशेषांक के अतिरिक्त इस वर्ष निम्न लघु विशेषांक देने की योजना है—

(१) इसलाम के स्वर्ग और नरक पर महर्षि दयानन्द की आलोचना का प्रभाव। इसके लेखक हैं आर्य जगत् के प्रसिद्ध युवक विद्वान् श्री आचार्य शिवपूजन सिंह जी। आचार्य जी के लेख और पुस्तकें कितनी खोजपूर्ण होती हैं इस से पाठक भली भांति परिचित हैं। पुस्तक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

(२) **"हंस पोल प्रकाश"** इस का लेखन कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न होगा।

(३) शिव संकल्प—इसके लेखक हैं आप के सुपरिचित वैदिक विद्वान् श्री पं० सुरेश चन्द्र जी वेदालङ्कार। इस वर्ष हमने पं० जी की एक पुस्तक स्तुति प्रार्थनोपासना पाठकों की भेंट की थी। पाठकों ने इसकी प्रभूत प्रशंसा की। अनेक व्यक्तियों ने पत्र लिखे, और अनेक पाठकों से भेंट होने पर उन्होंने पुस्तक की सराहना की। उन्हीं पं० जी की लेखनी से रात्रि को सोते समय पाठ किये जाने वाले छः मन्त्रों की सारगर्भित व्याख्यान इस अंक में आपको मिलेगी।

(४) **ब्रह्मवैवर्त्त पुराणलोचना**—इसके लेखक हैं श्री पं० भवानी लाल जी भारतीय एम० ए०। आप भी एक मंजे हुए लेखक हैं। बहुत परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है।

(५) बालक अंक—यह वेद प्रकाश के ३२ पृष्ठ का अङ्क होगा। इस में बालक और युवकों के लिये

३१ दिन के लिये ३१ उपदेश होंगे। अपने बालकों में उत्तम गुणों के विकास के लिये यह अंक बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। यह भी मेरे द्वारा ही रचित है।

इस प्रकार इस वर्ष में एक बृहद् और ५ लघु कुल छः विशेषांक देने का निश्चय है।

इसके अतिरिक्त साधारण अङ्क के लेख भी बड़े ही मार्मिक जीवन उपयोगी और पठनीय होते हैं। हमारे पत्र में न सभा सूचनाएं छपती हैं और न समाजों का चुनाव। सारा ही पत्र ठोस सामग्री से भरपूर रहता है।

बहुत से पाठकों के पत्र भी हमारे पास आते रहते हैं जिन में उनकी मांगे सुझाव और सम्मतियां आती रहती हैं। जगाधरी से एक सज्जन ने लिखा है कि मनुस्मृति, महाभारत आदि अङ्क निकाले जायें। मैं भी इनकी उपयोगिता और आवश्यकता समझता हूं, परन्तु क्या करूं विवश हूँ। बड़े अङ्कों के लिये ग्राहक संख्या भी बड़ी चाहिये। यदि 'वेद प्रकाश' की ग्राहक संख्या ३ सहस्र भी हो जाये तो बड़े बड़े अङ्क सरलता से दिये जा सकते हैं। पाठक 'वेद प्रकाश' की प्रशंसा करते हैं परन्तु ग्राहक संख्या बढ़ाने में सहयोग नहीं मिलता। यदि प्रत्येक ग्राहक ५-५ ग्राहक भी और बनाये तो थोड़े समय में वेद प्रकाश की ग्राहक संख्या पर्याप्त बढ़ सकती है। परन्तु हमारे पाठक बन्धु शायद इधर ध्यान ही नहीं देते। जो लोग एक बार सिनेमा देखने में ३-४ रुपये फूंक देते हैं उन्हें तनिक सी प्रेरणा से ग्राहक बनाया जा सकता है। यदि आर्य समाज का प्रत्येक मन्त्री थोड़ी सी भी प्रेरणा करें तो एक समाज से ८-१० ग्राहक बनना कठिन नहीं है। परन्तु दोष किस को दूं। वेद प्रकाश की ग्राहक संख्या नहीं बढ़ने का दोषी भी मैं अपने आपको ही मानता हूँ। मेरे ही त्याग और तप की कमी का यह परिणाम है अच्छा मुझे और तप करने दो!

उपदेशक विद्यालयः—

देहली भारतवर्ष की राजधानी है। यहां सनातनियों के संस्कृत अध्ययन के लिये ४-५ निश्शुल्क विद्यालय हैं। जैनियों का भी एक संस्कृत महा विद्यालय है जहां नाम मात्र शुल्क लेकर संस्कृत का अध्ययन कराया जाता है। देहली में १२५ आर्य समाजें हैं। इन समाजों के ऊपर एक केन्द्रीय सभा है। आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपकार्यालय भी देहली में विद्यमान है। इतना ही नहीं सब समाजों की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा भी देहली में ही है। इतना सब कुछ होते हुए भी देहली में आर्य विद्यार्थियों के लिये संस्कृत विद्यालय का अभाव खटकता है। जब देहली जैसे स्थान पर संस्कृत विद्यालय न होने की बात मेरे सामने आती है तो मस्तिष्क फटता है और हृदय धड़कता है: इस कमी को दूर करने के लिये मेरा विचार है कि देहली में एक विद्यालय स्थापित किया जाये।

बहुत से पाठक सोचेंगे कि अब विद्यार्थी जी धन की अपील करेंगे। विद्यालय बनाने के लिये धन मांगेंगे, फिर विद्यार्थियों के भोजन और वस्त्र के लिये धन मांगेंगे। परन्तु मैं इनमें से कोई भी वस्तु आप से नहीं मांगूंगा आप निश्चिन्त रहें और धैर्य पूर्वक आगे पढ़ें।

हां तो, इस विद्यालय के लिये किसी भवन की आवश्यकता नहीं है। यह विद्यालय किसी ऐसी समाज के भवन में चलाया जायेगा जहां देहली के विभिन्न स्थानों में रहने वाले विद्यार्थी सुविधा पूर्वक आ सकें। यह विद्यालय केवल रात्रि में ३ घण्टे कार्य करेगा। २ घण्टे प्रतिदिन अध्ययन होगा और एक घण्टे, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा दर्शन आदि किसी विषय पर कथा हुआ करेगी। पाठ्य क्रम में व्याकरण और संस्कृत के ज्ञान के अतिरिक्त वेद, दर्शन उपनिषद् का और महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन होगा।

अपने ग्रन्थों के स्वाध्याय और अध्ययन के अतिरिक्त मेरा विचार यह भी है कि इस विद्यालय में एक बाइबल आचार्य, एक कुराणाचार्य एक पुराणाचार्य और एक गुरुग्रन्थाचार्य भी तैयार किया जाये। शास्त्रार्थों के युग को पुनः लाने के लिये शास्त्रार्थों की ट्रेनिंग दी जाये। इसका कोर्स २ वर्ष का होगा। आरम्भ में यह योजना केवल देहली वाले विद्यार्थियों के लिये होगी और ऐसे विद्यार्थी ही इस में प्रविष्ट हो सकेंगे जो अपने जीवन निर्वाह करने में स्वतन्त्र हों। यदि बाहर के कोई व्यक्ति अपने भोजन और निवास आदि का प्रबन्ध करके पढ़ना चाहेंगे तो हमें कोई आपत्ति न होगी।

जैसा मैंने पूर्व कहा मुझे इस कार्य के लिये धन की आवश्यकता नहीं है अपितु आवश्यकता है—

कुछ पागलों की, दीवानों की, सिर फरोश नौ जवानों की, जो समाज के उद्धार के लिये,

महर्षि दयानन्द के स्वप्नों को साकार करने के लिये,

अपनी उठती हुई जवानियों को और अमूल्य जीवनों को होम दें। जो पृथिवी माता को अपना बिस्तरा और आकाश को अपना ओढना बनाकर और हाथ को सिरहाना बनाकर सो सकें।

जो भोजन न मिलने पर चने चबा कर रह सकें परन्तु मुख से उफ तक न करें।

जो पार्टीबाजी की दलदल से दूर हों।

इस पते पर आवेदन करें।

ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी
८ ई कमला नगर, देहली।

दस विद्यार्थी होते ही बिना साधनों की प्रतीक्षा किये यह विद्यालय शुरू हो जायेगा। "विद्यार्थी"

है विश्व एक परिवार यहां

❀ श्री मित्रसैन आर्य शास्त्री, एल. एम. सी. अलीगढ़

नभ की रेखा सभी छोड़,
मानव को बन्धन मुक्त करो।
सागर की सीमा काट छांट,
फिर निखिल विश्व को एक करो
जन जन का हो विस्तार यहां ?
है विश्व एक परिवार यहां ॥

पर्वत की सीमा लांघ आज,
कितने जहाज नभ में उड़ते।
सागर की छाती नित्य रौंद,
हैं यान यहां कैसे चलते।
सब के होते व्यापार यहां।
है विश्व एक परिवार यहां ॥

नक्षत्र निवासी प्राणी से,
हैं मिलना चाहें ये मानव।
पर भूमि पुत्र को मान रहे,
क्यों अछूत तुम हे मानव।
मिलता मानव दुश्वार यहाँ ?
है विश्व एक परिवार यहां ॥

भेद भाव सब दूर करो,
गोरे, काले का तुम मानव।
अब करो आर्य वसुधा सारी,
खोलो तुम अपना वक्षस्थल।
है एक सभी का करतार यहां।
है विश्व एक परिवार यहां ॥

तुम्हें शपथ भगवान राम की,
पावन जल गंगा प्रवाह की।
महावीर, शंकर, रामानुज,
भगवान बुद्ध, दयानन्द की।
कर दो सब का निस्तार यहां।
है विश्व एक परिवार यहां ॥

स्नेह सत्य से, शुद्ध हृदय से,
मुक्त भाव से प्राणी डोले।
ईर्ष्या, द्वेष भगे दुनियां से,
सब वेद धर्म की जय बोलें।
हो 'राज' सभी विस्तार यहां।
है विश्व एक परिवार यहां ॥

वैदिक विश्वकोश से (मई अंक से आगे)

(३) तीसरा वेदांग व्याकरण है। आज कल की उपलब्ध यजुः संहिताएं एक प्रकार से पाणिनि व्याकरण को लक्ष्य में रख कर, प्रातिश ख्यादि की उपेक्षा तथा शिक्षा-ग्रन्थों की अनभिज्ञता से प्रकाशित हो रही है। इनमें व्याकरण सन्धियुक्त पदों को मिला कर तथा सन्धि रहित पदों को पृथक्-पृथक् करके खंडित रूप से पाठ छापा गया है। अर्थ विचारने की सुगमता और लौकिक रीति से मन्त्रों के उच्चारण में इससे बहुत सहायता प्राप्त हुई है। इससे सर्व साधारण को बिना शिक्षक की सहायता से वेदाभ्यास में प्रवृत्ति हुई है और वेदों का घर-घर प्रचार भी हुआ है। तथापि वास्तविक रीति से न तो वह संहिता पाठ ही है और न वह पद-पाठ ही है। इस खंडित पाठ की नवीन प्रणाली से शिक्षा की विधि से जिस प्रकार मन्त्र का उच्चारण होना चाहिये, उसका सर्वथा लोप हो गया है। अतः उच्चारण के लिये शिक्षा की रीति से ही मंत्रों का मुद्रण हो और अर्थ ज्ञान की सहायता के लिये तथा पदों एवं उनके स्वरों के ज्ञान के लिये "पद-पाठ" ग्रन्थ का मुद्रण होना चाहिये और पदों के सन्धि पूर्वक उच्चारण-अभ्यास के लिये, उदात्तानुदात्तादि स्वरों की सन्धि ज्ञान के लिये तथा मन्त्रों के विरामादि ज्ञान के लिये "क्रम-पाठ" का भी मुद्रण होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त व्याकरण दृष्टि से निम्न प्रकार के और भी कार्य होंगे:—

(अ) अकारादि क्रम से पद-सूची का निर्माण स्थल निर्देश सहित।

(आ) अकारादि क्रम से स्वरानुक्रम विभाजन सहित निम्न प्रकार भी पदों का संग्रह होगा, जिसमें सर्वोदात्त, आद्युदात्त, मध्योदात्त, अन्तोदात्त द्वयुदात्त, त्र्युदात्त, आद्य स्वरित, जात्य स्वरित, न्युब्ज स्वरित, सर्वानुदात्त इन स्वर क्रमों के सहित शब्दों का चयन होगा।

(इ) सेतिकार सावग्रह पद, सेतिकार निरवग्रह पद तथा अन्य समास पदों का संग्रह।

(ई) वेद में प्रयुक्त पदों का नाम, आख्यात, उपसर्ग निपात रूप से वर्गीकरण। एक ही मूल शब्द के अन्तर्गत उसके अन्यों रूपों का भी ग्रंथन इसमें होगा।

(उ) विभक्ति, प्रत्यय, प्रक्रिया एवं लकारादि के अनुसार शब्दों का सङ्कलन।

(ऊ) पदों के यौगिक, योगरूढ़ और रूढ़ अर्थों का विवेचन, जिस में व्याकरण, कल्प, निरुक्त एवं ज्योतिषादि वेदांगों की दृष्टि से व्युत्पत्तिगत अर्थ होंगे तथा स्वर भेद से अर्थ के भेदों का भी निरूपण होगा।

(ए) पदों के ब्राह्मण ग्रन्थानुसार अर्थ पूर्व भाष्यकर्ताओं तथा महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित अर्थों का निरूपण।

(ऐ) एक ही मूल शब्द से बने रूपों का रूप, विभक्ति, पुरुष, वचन, लकार, प्रत्य आदि का उल्लेख।

(ओ) विशेष्य-विशेषण युक्त पद, उपमा-उपमेय पद, अनुप्रास, श्लेष शादि पदों का संग्रह।

(औ) वेद में उपलब्ध वर्णमाला के अक्षर।

(४) निरुक्त वेदांग के अनुसार यजुर्वेद के जो शब्द निघण्टु एवं निरुक्त में आये हैं उनकी वर्णानुक्रम से सूची और उनकी निरुक्ति तथा निर्वचन।

(आ) समानार्थ वाची शब्दों का संग्रह।

(इ) वेद में प्रयुक्त भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी नाम, पार्थिव तत्वों के नाम, धातुओं के नामादि।

(ई) वनस्पति शास्त्र सम्बन्धी नाम, यथा-वृक्षों के अंग प्रत्यंगों के नाम, अन्न, फल, औषधि, वनस्पनि तथा कृषि सम्बन्धी आदि नामों का संग्रह।

(उ) जल विद्या सम्बन्धी नाम, यथा—जलों की विविध स्थितियां, उनके गुणादि।

(ऊ) तीनों प्रकार की ज्योतियों के नाम, तथा इनके गुणादि।

(ए) वायु विद्या सम्बन्धी नाम, अनेक प्रकार की वायुओं के नाम संग्रह, प्राण विद्यान्तर्गत नाम संग्रह।

(ऐ) आकाशीय तत्वों के नाम।

(ओ) प्राणि शास्त्र सम्बन्धी नाम, पशु, पक्षी,

जलचर, सर्पण शील जन्तुओं के नाम, आरण्य तथा ग्राम्य पशुओं के नाम।

(औ) शारीरिक शास्त्र एवं इन्द्रिय व्यापार शास्त्र सम्बन्धी नाम।

(अं) समाज शास्त्र, वास्तुकला, आरोग्य, राजनीति, भूगोल, नाट्य, संगीत, वाद्य, युद्ध, वाणिज्य, नौका, विमान, यान, विज्ञान, पारिवारिक सम्बन्ध द्योतकनाम, भोज्य वस्तु, रंगों के नाम आदि विविध विषयानुक्रम से पदों का संग्रह।

(अः) चिकित्सा शास्त्र, जीवन रसायन शास्त्र, शासन, राजनीति, युद्ध, यन्त्र, कला, योगादि के प्रतिपादक मन्त्र या मन्त्रांशों का स्थल निर्देश।

(५) छन्द अंग की दृष्टि से—छन्दों के लक्षण एवं गणना का स्पष्ट प्रदर्शन पूर्वक मन्त्रों का मुद्रण।

(आ) मन्त्रों के विरामादि ज्ञान के लिये कितनी और कौनसी ऋचायें बिना विराम की हैं और किनमें मध्य में ही विराम है, किनमें अन्त में है तथा एक, दो, तीन चार, पांच या इससे भी अधिक विराम वाले कौन से मंत्र हैं, इसका ज्ञापन रहेगा।

(इ) छन्दों की सूची एवं उनका रचनाक्रम तथा उनके स्वर।

(ई) छन्दों का ब्रह्माण्ड में स्थिति का क्रम और विश्व रचना में उसका महत्व।

(उ) छन्दों के क्रम से व्याप्त देवत्व का स्वरूप।

(ऊ) छन्द क्रम से तथा दैवत क्रम से ऋषियों का सम्बन्ध।

(ए) वेद की पुनरुक्त और प्रतीक ऋचाओं का निर्देश।

(६) ज्योतिष वेदांग को लक्ष में रख कर—संख्यावाची शब्द, गणित, खगोल, ग्रह, नक्षत्र, ऋतु, काल, परिमाण, सृष्टि विद्या, अन्तरिक्ष तथा स्थानीय तत्वों या देवताओं के संयोग प्रदर्शक पद, उनके अधिष्ठातृत्व आदि शब्दों का संग्रह तथा उनके उपयोग के प्रदर्शक मन्त्र पादों या मन्त्र स्थलों का निदर्शन इसके अन्तर्गत होगा।

(७) वेद में प्रयुक्त शब्द जो ऐतिहासिक तथा भौगोलिक प्रतीत होते हैं, उनके परोक्ष अर्थ का प्रतिपादन।

(८) वेद के शब्दों का भूमण्डल में प्रचार तथा उनके विविध भाषाओं के विकृत रूप।

(९) यजुर्वेद में प्रतिपादित विद्याओं की नामावलि तथा उन विद्याओं का लाभ।

(१०) यजुर्वेद के सूक्तों की सूची, उनका स्थल तथा मन्त्र संख्या निर्देश।

(११) ऋषि तथा देवताओं के नामों की व्याख्या।

(१२) वैदिक स्वरों का परिचय एवं स्वर सम्बन्धी सामान्य नियम।

(१३) प्रत्येक विभाग के पूर्व उसके उपयोग के ज्ञापनार्थ भूमिका।

इत्यादि अनेक प्रकार से उपयोगी इस "वैदिक विश्वकोश" का निर्माण होगा, जिससे वेद का निकट रूप से अध्ययन करने वालों को सुविधा हो सके तथा वेद से उपयोगी तत्वों एवं रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने में सुविधा हो सके।

यह कार्य मैंने अभी यजुर्वेद से प्रारम्भ किया है। एक वेद का कार्य पूर्ण होने पर दूसरे वेद का भी कोश ग्रन्थ बनाने का कार्य प्रारम्भ हो सकेगा। इस कोश ग्रन्थ का अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रशियन, चीनी, जापानी आदि भाषाओं में भी अनुवाद होना चाहिये। यह कार्य अनेक विद्वानों के सहयोग से होगा।

इस वैदिक विश्व-कोश के कार्य का प्रकाशन प्रति तीसरे मास में पत्रिका के रूप में नियमित होता रहे। इसके ग्राहक, सहायक, संरक्षक पोषक आदि बनने पर ही निर्माण की एवं नियमित प्रकाशन की व्यवस्था हो सकती है। प्रति तीसरे मास में जो अंक प्रकाशित हो वह न्यून से न्यून २५० पृष्ठों का हो और एक प्रति का मूल्य ७ रु० तथा वार्षिक मूल्य २५ रु० कम से कम हो। एक सहस्र ग्राहक बनने पर प्रकाशन प्रारम्भ हो सकेगा।

यह कार्य थोड़े ही व्यय और परिश्रम से सफल नहीं हो सकेगा, अतः वेद प्रेमी जन जब तक मुक्त हस्त से इस कार्य में सहयोग नहीं प्रदान करेंगे और हमारी विद्वन्मण्डली भी जब तक इसके लिये जीवन दान या अवकाश के समय का दान न करेगी तब तक यह कार्य सम्भव नहीं होगा। मैं तो इस कार्य के लिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न कर ही रहा हूं और आशा करता हूं कि परमात्मा की महान् कृपा से आप सब भी इसमें सहयोग प्रदान करेंगे।

कुछ करो कुछ बनो

❀ ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी

संसार में मनुष्य जन्म दुर्लभ है। सन्त तुलसीदास जी ने कहा है:—

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थहिं गावा॥

ऐसे दुर्लभ मनुष्य देह को पाकर जो इस जीवन का सदुपयोग नहीं करता, अपने जीवन को चमकाता नहीं, न यश प्राप्त करना है, न कोई श्रेष्ठ कर्म करता है, उसका जीवन व्यर्थ ही है। बड़े भाग्य से प्राप्त होने वाले इस मानव जीवन को प्राप्त कर इसका सदुपयोग करो—कुछ करो, कुछ बनो।

कुछ करो, परन्तु करने का यह अर्थ कदापि नहीं कि दिन भर सोते ही रहो, या ताश खेल कर समय को व्यर्थ नष्ट करते रहो अथवा चौपड़ खेल कर जीवन को चौपट करते रहो।

बहुत से युवक अपने अमूल्य जीवन को आवारागर्दी में, व्यर्थ की गपशप में, सिगरेट पीने में, पान चबाने में और इसी प्रकार के व्यसनों में समाप्त कर देते हैं। मनुष्य संसार में एक विशेष उद्देश्य से आता है। खाना, पीना, सुन्दर वस्त्र पहनना और मर जाना उस के जीवन का उद्देश्य नहीं है। उसे संसार में कुछ महान् कार्य करना है अपने उद्देश्य को अपने समक्ष रक्खो और कुछ करो।

जीवन सफल करो

प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठिये शौचादि से निवृत्त हो कर सन्ध्या कीजिये। जब आप सन्ध्या करें तो अपनी चित्त वृत्तियों को सांसारिक बातों से हटाकर केवल मात्र सन्ध्या में ही लगावें और सन्ध्या करते समय ऐसा अनुभव करें कि ईश्वर आपके हृदय में विराजमान है और आपकी सन्ध्या को सुन रहा है। सन्ध्या के पश्चात् स्वाध्याय कीजिये। वेद संसार के साहित्य का मुकुटमणि है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।" वेद का स्वाध्याय करते हुए अपने परम धर्म का पालन कीजिये। चाहे कितने ही कष्ट सहने पड़ें सत्य बोलो। कम बोलो। मीठा और मधुर बोलो। सत्य प्रिय एवं हितकर बोलो। धर्म पर चलते हुए, अपने कर्तव्य का पालन करते हुये इसी जीवन में प्रभु प्राप्ति का यत्न करो।

सब से प्रेम करो

सब के साथ प्रेम का व्यवहार कीजिये। वेद माता के शब्दों में आपकी यह भावना हो कि:—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे
(यजु० ३६। १८)

मैं सब प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखूं। सब की आत्म भाव से सेवा कीजिये। ब्राह्मण और चाण्डाल सभी में एक आत्मा का दर्शन कीजिये। हाथी और चींटी में अपनी आत्मा का अनुभव कीजिये। यदि आप सड़क के किनारे पड़े हुये किसी पशु अथवा मनुष्य के शरीर से रक्त निकलता हुआ देखें तो अपने वस्त्र को फाड़ कर उसके घाव पर पट्टी बांधें। ऐसा अनुभव कीजिये कि ईश्वर संसार में दृष्टिगोचर होने वाले सभी हाथों से कर्म करता है, सम्पूर्ण आंखों से देखता है और समस्त कानों से श्रवण करता है। सब प्राणियों में ईश्वर का अनुभव करते हुये सब के साथ सहानुभूति रखिये। निर्धनों की सहायता कीजिये, उनकी सेवा कीजिये। आपत्ति के समय उन्हें धैर्य दीजिये। सब के साथ प्रीति पूर्वक बर्ताव कीजिये।

दान करो

वैदिक शास्त्रों में दान पर बड़ा बल दिया गया है। वेद में कहा है:—

उच्चा दिवि दक्षिणावन्त अस्थुः।
(ऋ० १७।१०७।२)

दानी संसार में बहुत ऊंचा स्थान पाते हैं और गीता में कहा है:—

यज्ञो दानं तपश्चैवपावनानि मनीषिणाम्।

यज्ञ दान और तप मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं। जब किसी निर्धन दीन दुःखी को देखो उसकी सहायता करो। सैकड़ों हाथों से कमाओ और हजारों हाथों से दान दो। यदि आप देंगे तो संसार का धन आप का होगा। यदि आप दान करेंगे तो वह कई गुणा होकर आपको मिलेगा, यह प्रकृति का अटल सिद्धान्त है, अतः दान करो।

बाधाओं का सामना करो

धर्म का आचरण करते हुए आपके ऊपर आपत्तियां और सङ्कट आ सकते है उन से घबराइये मत अपितु उन का डट कर सामना कीजिये। कष्टों को झेलते हुए आपत्तियों पर विजय प्राप्त करते हुए आगे बढ़ो, इसी में सच्ची वीरता है। एक कवि ने कितना सुन्दर कहा है:—

वह पथ क्या पथिक कुशलता क्या,
　　जिस राह में बिखरे शूल न हों।
नाविक की वह धैर्य परीक्षा क्या,
　　जब धारा ही प्रतिकूल न हों॥

विजय बाहर नहीं आपके अन्दर है उसको सुनो और आफतों से भिड़ जाओ।

कुछ न कुछ करो

प्रार्थना की शक्ति महान् है। वाणी इसका वर्णन करने में असमर्थ है। सच्चे प्रभु भक्त ही इसकी महत्ता को जान सकते हैं, परन्तु हाथ पर हाथ धर कर बैठने और ईश्वर ईश्वर चिल्लाने से कुछ नहीं बनेगा। प्रति क्षण, हर घड़ी कुछ न कुछ करते रहिये क्योंकि ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं।

माता, पिता, आचार्य, गुरु और अतिथियों की सेवा कीजिये। उनकी सेवा करने से आपकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होगी। सन्ध्या और स्वाध्याय कीजिये, रामायण और महाभारत का पाठ कीजिये। ऐसा आचरण करने पर ज्ञान वृद्धि के साथ आप में श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होगी, फिर प्रभु कृपा भी आप को प्राप्त होगी।

नौजवानो! "मैं अकेला हूं, मैं क्या कर सकता हूँ" ऐसा मत सोचो। आप में महान् शक्ति और सामर्थ्य है; असीम बल है। आप संसार के प्रवाह को मोड़ सकते हैं। देखो! मर्यादा पुरुषोत्तम राम अकेले थे, योगेश्वर कृष्ण अकेले थे। एकाकी होते हुये उन्होंने कितने महान् कार्य किये। आप भी सब कुछ कर सकते हैं:—

नौजवानो! कुछ कर लो उठती जवानियां हैं।

समय बड़ा मूल्यवान है। गया हुआ समय फिर नहीं आ सकता। जब घण्टा 'टन्न' करता है तो समझ लो जीवन का एक घण्टा समाप्त हो गया। यह संसार एक धर्मशाला है। पथिक यहां आकर विश्राम करते हैं और प्रातः काल होने पर चल देते हैं। यहां किसी ने रहना नहीं। परन्तु यह जीवन कुछ दिनों का है ऐसा सोच कर हताश और निराश नहीं होना चाहिये अपितु थोड़े समय में अपने आपको अधिक से अधिक योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। एक उर्दू के कवि ने कहा है:—

बन जो कुछ बन सके जवानी में।
　　रात थोड़ी है स्वांग बहुत॥

आंग्ल भाषा के प्रसिद्ध कवि लांगफैलो ने भी कहा है:—

Art is long, life is short and time is fleeting.

अर्थात् जीवन थोड़ा है, समय तीव्रता से भाग रहा है और कार्य सम्बा है। कितना अमूल्य उपदेश

है। बन्धुओ ! बुढ़ापे में कुछ न हो सकेगा जवानी में ही कुछ बनो।

दयालु बनो

संसार के समस्त प्राणियों में ईश्वर के दर्शन करते हुए अपने से छोटों के साथ दया, बराबर वालों के साथ मित्रता और बड़ों के साथ आदर का व्यव-
हा[illegible] के किसी अङ्ग में
क[illegible]
इ[illegible]

FOLD HERE
पोछे लिखी रकम आज (तारीख) को प्राप्त की।
Received the sum specified on the reverse on
गवाह के हस्ताक्षर
Signature of Witness
पाने वाले के पूरे हस्ताक्षर (स्याही में) या अंगूठे का निशान।
Signature (in ink) or thumb-impression of payee
तारीख
Date
डाक-घर की जिम्मेदारी के लिये 'डाक-तार निर्देशिका' का खण्ड २६५ देखिये।
For responsibility of Post Office see Clause 265 of Post & Telegraph Guide.
यदि मनी-आर्डर का पाने वाला न मिल सके, तो इसकी रकम इसके भेजने वाले को दी जायगी।
If the payee of a money order cannot be found, the amount will be paid to the remitter.
FOLD HERE
FOLD HERE
भेजने वाले का नाम व पूरा पता।
Name and address of remitter
572—23-3-61— 2,000 Bks. H.P.P. (Eng. & Hindi) (M-3-29/58)

हसमुख [illegible]
है। जब आप बिजली बन कर [illegible]
प्रसन्न चित रह सकते हैं, तो वर्षा का बादल अर्थात् रोनी सूरत मत बनो। हास्यशील बनो क्योंकि:—

पूरे हैं वे मर्द जो हर हाल में खुश हैं।

स्वावलम्बी बनो

यदि आप अपना विकास करना चाहते हैं तो स्वावलम्बी बनो। यदि आप सहायकों की प्रतीक्षा में बैठे रहे तो आपकी उन्नति रुक जायेगी अपने कर्तव्य का निश्चय करके पूर्ण मनोबल और पुरुषार्थ के साथ अपने कार्य में जुट जाइये। परीक्षा से डरिये और घबराइये मत; क्योंकि सान पर चढ़ने के पश्चात् ही हीरा मूल्यवान् होता है और अग्नि
[illegible] ही सोना कुन्दन होता है ऐसा दृढ़
[illegible] चाहिए।

[illegible]रित्र शेष
[illegible] बल और
[illegible] मनुष्य का
[illegible]न एक तुच्छ
[illegible]है। चरित्र
[illegible] दूर दूर तक
[illegible]क्ति चाहे वह
[illegible]द्धहस्त गायक
[illegible]पदेशक हो या
[illegible] तो समाज में
[illegible]। चरित्र में
[illegible], सहनशीलता,
[illegible]वेश हो जाता
[illegible] कीजिये। चरित्र
[illegible] प्राप्त करेंगे और
[illegible] करने में सफल

[illegible]
[illegible]का बड़ा महत्वपूर्ण
[illegible]की आधारशिला है।
[illegible]चरण, वेदाध्ययन,
[illegible]ण। ब्रह्मचारी का
शरीर शा[illegible]वोत्पादक होता है।
कठिनाइयां ब्रह्मचारी के आगे झुक जाती हैं। कुटिल मनुष्य उसे देखते ही कांप जाते हैं। रोग

है। बन्धुओ ! बुढ़ापे में कुछ न हो सकेगा जवानी में ही कुछ बनो।

दयालु बनो

संसार के समस्त प्राणियों में ईश्वर के दर्शन करते हुए अपने से छोटों के साथ दया, बराबर वालों के साथ मित्रता और बड़ों के साथ आदर का व्यवहार करो। जिस प्रकार शरीर के किसी अङ्ग में कोई कष्ट होने पर हम तड़प उठते हैं इसी प्रकार इस संसार को एक विशाल शरीर अनुभव करते हुए किसी भी प्राणी को दुःखी देख कर हमारा हृदय द्रवित हो जाना चाहिये। हमारे जीवनों में दया का एक सागर होना चाहिये।

विनम्र बनो

विद्या प्राप्त कर अकड़ मत जाइये, नम्र और विनयशील बनिये क्योंकि:—

विद्या ददाति विनयम्।

विद्या विनय देती है। सब के साथ नम्रता और शालीनता का व्यवहार कीजिये। अभिमानी व्यक्ति का पतन होता है। एक उर्दू के कवि ने कहा है:—

तना वो दरख्तों को आंधी गिराये।
मगर घास झुक झुक कर खुद को बचाये॥

वृक्षों की भांति अभिमानी न बनो, घास की भांति नम्र बनो।

हँसमुख बनो

सदा प्रसन्न रहिये। आपत्तियों और सङ्कटों में, दुःख और दर्द में, सदा हँसते और मुस्कराते रहिए। सम्पत्ति आये अथवा चली जाये आपके मुखमण्डल की मुस्कान में कोई अन्तर नहीं आना चाहिये। हंसमुख रहना मोतियों के कोष दे देने से भी अच्छा है। जब आप बिजली बन कर रह सकते हैं अर्थात् प्रसन्न चित रह सकते हैं, तो वर्षा का बादल अर्थात् रोनी सूरत मत बनो। हास्यशील बनो क्योंकि:—

पूरे हैं वे मर्द जो हर हाल में खुश हैं।

स्वावलम्बी बनो

यदि आप अपना विकास करना चाहते हैं तो स्वावलम्बी बनो। यदि आप सहायकों की प्रतीक्षा में बैठे रहे तो आपकी उन्नति रुक जायेगी अपने कर्तव्य का निश्चय करके पूर्ण मनोबल और पुरुषार्थ के साथ अपने कार्य में जुट जाइये। परीक्षा से डरिये और घबराइये मत; क्योंकि सान पर चढ़ने के पश्चात् ही हीरा मूल्यवान् होता है और अग्नि में पड़ कर ही सोना कुन्दन होता है ऐसा दृढ़ विश्वास लेकर कठिनाइयों में कूद पड़ना चाहिए।

चरित्रवान् बनो

मनुष्य मर जाता है परन्तु उसका चरित्र शेष रहता है। चरित्र ही मनुष्य को सच्चा बल और शक्ति प्रदान करता है। चरित्र के बिना मनुष्य का कुछ भी मूल्य नहीं। चरित्र के समक्ष धन एक तुच्छ वस्तु है। चरित्र एक आत्मिक शक्ति है। चरित्र एक सुगन्धित पुष्प के समान है जो दूर दूर तक अपनी सुगन्ध छोड़ता है। एक व्यक्ति चाहे वह सुन्दर कलाकार हो, चाहे वह एक सिद्धहस्त गायक हो, कवि हो या महान् वैज्ञानिक, उपदेशक हो या सुधारक, यदि वह चरित्रवान् नहीं तो समाज में उसका कोई आदर सम्मान नहीं। चरित्र में दयालुता, सत्यवादिता, क्षमाशीलता, सहनशीलता, आदि सभी सात्विक गुणों का समावेश हो जाता हैं। अपने चरित्र का निर्माण कीजिये। चरित्र निर्माण से आप जीवन में सफलता प्राप्त करेंगे और अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल मनोरथ हो सकेंगे।

ब्रह्मचारी बनो

मनुष्य जीवन में ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि यह जीवन की आधारशिला है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म में विचरण, वेदाध्ययन, ज्ञान उपार्जन और वीर्यरक्षण। ब्रह्मचारी का शरीर शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक होता है। कठिनाइयां ब्रह्मचारी के आगे झुक जाती हैं। कुटिल मनुष्य उसे देखते ही कांप जाते हैं। रोग

उसके ऊपर आक्रमण नहीं कर सकते। ब्रह्मचारी की बुद्धि तीव्र और प्रखर होती है। उसकी स्मरण शक्ति बड़ी तेज होती है। शारीरिक सबलता के साथ साथ ब्रह्मचर्य से अपार आत्मिक बल का उदय होता है। सफलता उसके चरण चूमती है। और चारों दिशाओं में उसका यशोगान होने लगता है, अतः ब्रह्मचारी बनो।

संयमी बनो

संयम शरीर का आभूषण है, अतः सयंमशील बनो मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रक्खो। संयम के अभ्यास से शरीर निरोग और बलवान्, स्वास्थ्य उत्तम और बुद्धि निर्मल बनेगी। संयम शरीर के लिए हानिकारक नहीं अपितु लाभप्रद है अतः संयमी बनो।

नेता नहीं सेवक बनो

नेता नहीं सेवक बनो। इस सम्बन्ध में यहां स्वामी श्रद्धानन्द जी के भाषण का एक भाग उद्धृत किया जाता है:—

"सेवक बनने का यत्न करो, क्योंकि लीडरों की अपेक्षा आर्य जाति को सेवकों की बहुत अधिक आवश्यकता है। जब कभी आप का पैर डगमगाने लगे तो राम के सेवक हनुमान् का स्मरण कर लिया करो .....नवयुवको! मैं पूछता हूं क्या तुम में से कोई भी दयानन्द रूपी राम का सेवक हनुमान बनने का यत्न न करेगा? महावीर के बिना दयानन्द का काम अधूरा पड़ा है। मुझे पूरी आशा है कि दयानन्द का काम करने के लिये, पाप की लङ्का का विध्वंस करने के लिए, तुम ही में से महावीर निकलेगें।"

नौजवानो! शक्ति आपकी है, आप शक्ति के हैं। संसार में पहले महापुरुष जो कुछ कर गये हैं अथवा जो कुछ बन गये हैं आप भी वह सब कुछ कर सकते हैं और वैसा ही बन सकते हैं। नहीं, नहीं उससे भी अधिक कर और बन सकते हैं। आवश्यकता है कमर कसने की, तैयार होकर रणक्षेत्र में कुदने की। सच्चे कर्मवीरों के लिये तो संसार में कुछ भी असम्भव नहीं:—

ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
वे बबूलों को लगा देते हैं चम्पे की कली॥

अब अधिक सोच विचार न करो, रणक्षेत्र में कूदो केवल बातें न करो, कुछ करो, कुछ बनो।

॥ ओ३म् शम् ॥

—❀❀❀—

राधा स्वामी मत दर्पण

लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यदि आप राधास्वामी मत का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। बड़े परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है। प्रचाराथ पुस्तक का मूल्य लागत मात्र चार आने ही रक्खा गया है। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

ब्रह्माकुमारियों के ढोल की पोल। बढ़िया कागज सुन्दर छपाई। मूल्य ३७ नये पैसे। प्रचारार्थ मंगाने पर २५) सैकड़ा।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

लड़कियों का नाच या चरित्र-नाश ?

❀ लक्ष्मणप्रसाद गुप्त

अब आपको भी शायद मालूम होगा कि प्राय: सभी जगह स्कूल और कालेज की कुमारी और जवान लड़कियों को पब्लिक में नचाया जाता है। अंग्रेजों के जमाने में हमारी स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियां कभी कहीं नहीं नचाई जाती थीं। कांग्रेस गवर्नमेन्ट के आने पर कुछ रसिक साहित्यकार सरकारी शिक्षा कमेटियों में शामिल हो गये और उन्होंने लड़कियों के नाचने को शिक्षा कार्यक्रम में शामिल करवा दिया। शुरू-शुरू में पांच-सात साल की लड़कियां नाचती थीं और उनका नाच किसी को बुरा नहीं लगता था, बल्कि मनोरंजन का साधन बन गया था। जब एक दफा लज्जा का पर्दा हट गया, तब ये लड़कियां बड़ी होकर भी नाचने लगीं। यहीं से पतन शुरू हुआ और शिक्षा अधिकारियों के इशारे पर सांस्कृतिक प्रोग्राम के बहाने से मिनिस्टरों और बड़े अधिकारियों को खुश करने के लिये इन लड़कियों को नचाया जाने लगा।

मिनिस्टरों को चाहिये था कि उसी समय आदेश जारी कर देते कि स्कूल और कालेजों की लड़कियों को पब्लिक में नहीं नचाना चाहिये, परन्तु उन्होंने कोई विरोध नहीं किया और खामोशी इख्त्यार की, जिसका एक बुरा नतीजा यह हुआ कि जो जिला व शिक्षा अधिकारी व स्कूल के मैनेजर इन नाचों को बुरा समझते हैं, वे भी मजबूरन इन नाचों का आयोजन करने लगे और रसिक अधिकारी हर मौके पर इन नाचों का आयोजन कराकर आनन्द लूटने लगे। अब तो स्कूल और कालेजों की जवान लड़कियां पूरी सजधज के साथ और हाव-भाव से परियों की तरह पब्लिक के सामने नाचती हैं। जिससे—दिल्ली में तो इन नाचों की (Ball Dances) की पराकाष्ठा हो गई है। भगवान् जाने यह विलासिता और नाश की ओर ले जाने वाले कार्यक्रम कहां और कब रुकेंगे—१—व्यभिचार फैलता है। २—फैशन और प्रमाद को बढ़ावा मिलता है। ३—विलासिता फैलती है।

यह तो निश्चय ही है कि नाचने वाली लड़कियां चटक-मटक और फैशन से रहती हैं। अपनी आमदनी से अधिक खर्च करती हैं। अपने बच्चों की भी देखभाल में पूरा मन नहीं लगाती हैं। इनके पतियों का इनके चरित्र में कोई विश्वास नहीं रहता है और सारा जीवन क्लेशमय हो जाता है।

यह भी निश्चय है कि विलासिता—सब पापों की जड़ है। विलासिता से वासनायें बढ़ती हैं। वासनाओं का कोई अन्त नहीं है। विलासी आदमी घरबार, रोजगार की देखभाल नहीं करता है—सब चौपट कर देता है। जब रुपया नहीं रहता है—तब वह चोरी करता है और घूस लेता है।

विलासी कर्मचारी अपना कर्तव्य पालन नहीं कर पाते हैं, जिसके कारण सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार बढ़ रहा है।

विलासी आदमी हृदय-हीन भी हो जाते हैं—उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में अधिक वर्षा होने के कारण अक्टूबर १९६० में किसानों की खेती बर्बाद हो गई थी। उनके मकान गिर गये थे, उन के पास खाने को कुछ नहीं रहा था। वे दुःख से पीड़ित होकर त्राहि-त्राहि कर रहे थे। उन्हीं दिनों में वहां एक नुमायश की जा रही थी—जिसमें नाचने के लिये बहुत सी नाचने वाली बुलाई गई और दो फिल्म स्टार दस हजार रुपया खर्च करके बम्बई से बुलवाये गये।

गृहस्थी लोग अपनी कालेज में पढ़ने वाली

कुमारी लड़कियों के पब्लिक में नाचने से बहुत दुःखी हैं। वे समझते हैं कि उनको लड़कियों को सरकार नचाती है और इस वास्ते वे सरकार को कोसते हैं।

पिछले वर्ष अक्टूबर में साधुओं ने आगरे में चरित्र निर्माण सम्मेलन किया, मैंने उनको लिखा कि कालेज की लड़कियों को पब्लिक में नचाये जाने का विरोध कीजिये, परन्तु उन्होंने इन नाचों के विरोध में एक शब्द भी नहीं कहा। मालूम हुआ कि सरकार से सहायता मिलती है और उन का ख्याल है कि इन नाचों को सरकार कराती और अगर वे इन नाचों का विरोध करेंगे तो सरकार व सरकारी अफसर नाखुश होंगे और फिर सरकार उनको रुपया न देगी। लेकिन अब तो उत्तर प्रदेश सरकार ने ही इन नाचों पर रोक लगा दी है। अब तो इन नाचों का विरोध करने में साधुओं को भी हिचक नहीं होनी चाहिये।

बुरी बात को लोग जल्दी ग्रहण करते हैं। भले घरों की बहन-बेटियों को नृत्य-कला देखने का ऐसा चसका लगा है कि **धर्म-प्रचारक, समाज-सुधारक, साहित्यकार, पत्रकार** और **माता-पिता** सब खामोश हैं, मानो चुपके-चुपके लड़कियों के नाचों का आनन्द ले रहे हैं। इतना ही नहीं, बहुत से तो इस सदाचार का सर्वनाश करने के लिये काल रूपिणी कला को हर तरह से प्रोत्साहन दे रहे हैं।

जहां एक तरफ सरकार ने देश की खुशहाली बढ़ाने के लिये सब कुछ किया है और कर रही है वहां दूसरी ओर जानबूझ कर या अनजान में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से स्कूल और कालेज की लड़कियों को नचा कर सरकार विलासिता का प्रचार कर रही है।

क्या देशवासियों की आंखें अब भी खुलेंगी? जबकि हमें हमारे सीमाक्षेत्र पर चीन हमको ललकार रहा है। क्या अब भी विलासिता के नित्य नये प्रोग्राम रचते रहेंगे?

हमें उस समय की याद आती है कि जब विलासिता इतनी बढ़ गई थी कि जब अंग्रेजी फौजें लखनऊ में घुस रही थी। और नवाब साहब महलों में नाच गानों का आनन्द ले रहे थे क्या वही समय आने वाला है?

स्कूलों में सांस्कृतिक प्रोग्रामों की डिवीजन रैली कराई जाती है वहाँ मुख्य तौर से लड़कियों के नाच-ड्रामा कराये जाते हैं। उनमें बहुत से अश्लील होते हैं जिला शिक्षा अधिकारी इन नाचों को स्वयं देखते हैं और अच्छा नाचने वाली लड़कियों को इनाम देकर बढ़ावा देते हैं। यह अत्यन्त अनुचित है।

अब उत्तर प्रदेश सरकार ने सार्वजनिक रूप से सांस्कृतिक कार्यक्रमों में युवतियों के नृत्य आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और गर्ल्स स्कूल की महिला इन्सपैक्टरों को तथा अन्य अधिकारियों को राज्य सरकार ने आदेश दिया है कि घटिया किस्म के प्रदर्शनों पर रोक लगाई जावे। यह भी कहा है कि जहां कहीं भी सांस्कृतिक कार्यक्रम हो वे नाटकों के रूप में हों और समारोहों में भाग लेने वाली लड़कियों के मां बाप की लिखित अनुमति से हों। सरकार ने आदेश के परिपालन में ढिलाई करने वालों के प्रति कड़ी कार्यवाही करने की भी चेतावनी दी है।

हम आशा करते हैं कि जिला अधिकारी सांस्कृतिक समारोहों के बहाने से लड़कियों के नाचने का प्रोग्राम न रचेंगे और न प्रोत्साहन देंगे हम यह भी आशा करते हैं कि गर्ल्स स्कूलों के मैनेजर व अध्यापिकायें ऐसे समारोहों में अपनी लड़कियों को नहीं भेजेंगे। और लड़कियों को फैन्सी पोशाकों को पहनने से रोकेंगे और सादा वेश में रहने को शिक्षा देंगे।

हम आशा करते हैं कि दूसरे प्रान्तों की सरकारें भी स्कूलों की लड़कियों के नाच रोकने के लिये आदेश जारी करेगी।

आर्य समाजों और पत्रकारों को हर समय सतर्क रह कर जवान कुमारी लड़कियों के नाचने की नई प्रथा को जड़ से मिटा देना चाहिये अगर जरा सी भी ढील दी गई तो विलासिता प्लेग की तरह सब जगह फैल जायगी—इस बुराई को रोकने को आर्य समाजों को, समाज सुधारकों को और साधु समाज को और शिक्षक वर्ग की खास जुम्मेदारी है।

आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना

❀ "रक्षक"

आज आर्य समाज में बहुं ओर एक शिथिलता दिखाई देती है। हमारी सभाएं चुनाव के अखाड़े बनी हुई हैं। समाजों में भी यह गन्दगी पहुंचने लगी है। सन्ध्या यज्ञ में लोगों की रुचि नहीं, स्वाध्याय समाप्त हो गया है। स्वाध्याय न होने के कारण विद्वानों का आदर और सम्मान भी नहीं होता। उपदेशकों को नौकर समझा जाता है। दूसरी ओर उपदेशक भी धनलोलुप होकर आचार से गिर रहे हैं ऐसी परिस्थिति में आर्य समाज की रक्षा के लिये, इसके पूर्व गौरव और वैभव को पुनः प्राप्त करने के लिये हम एक अति महत्वपूर्ण लेख माला आरम्भ कर रहे हैं।

पाठकों को न केवल इसे पढ़ना ही चाहिये अपितु गम्भीरतापूर्वक इस पर मनन करके इन बातों को अपने जीवन में धारण करना चाहिये।

"विद्यार्थी"

"कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्" आर्य समाज का अन्तिम, परम उदात्त व चरम लक्ष्य है। इसे पूर्ण करने में हमारी कहां तक सफल हुये हैं सो सर्व विदित है। दो दशाब्दी से सारी शक्ति निरन्तर क्षीण होती जा रही है वस्तुतः वेदानुकूल आचरण का आर्य समाज में सर्वत्र अभाव है। साथ ही हमारा संगठन भी दोष पूर्ण है। आर्य ब्राह्मणों, संस्थाओं व धन की कोई विशेष न्यूनता नहीं फिर भी हमारी दशा इतनी क्षीण। यदि प्रत्येक सदस्य कर्मणा आर्य हो तथा हमारे सङ्गठन में तनिक सुधार करलें तो हमारी गति अत्यन्त तीव्र हो सकती है। आर्य समाज आरम्भ से ही ब्राह्मण की उपेक्षा करता रहा है अतः "ब्रह्मद्रोही विनश्यति" उक्ति चरितार्थ हो रही है। हम अपनी शक्ति सब ओर लगा रहे है परन्तु कोई निश्चित परिणाम नहीं निकल रहा है। यदि विचार पूर्वक कार्य किया जावे तो अति शीघ्र वैदिक धर्म सार्वदेशिक बन जायगा। हम एक निश्चित लक्ष्य लेकर चलते हैं। १९७५ तक १०० वर्ष पूरे हो जायेंगे। अब तक सम्पूर्ण विश्व में वैदिक सिद्धान्तों को फैलाया जा सकता था १३ वर्ष और हैं। इन वर्षों में हम आर्य्यावर्त के प्रत्येक शिक्षित अशिक्षित युवक वृद्ध सब स्त्री पुरुषों तक वैदिक सिद्धान्त पहुंचा सकते हैं। यदि ७५ तक इतना काम हम कर सके तो २००० ई० तक विश्व के प्रत्येक व्यक्ति तक हम वैदिक सिद्धान्त वेद सन्देश पहुँचा सकेंगे। आर्य जनता से जो कुछ निवेदन किया जा रहा है वह इस लक्ष्य को पूर्ण करने हेतु किया जा रहा है। अतः पाठक पठन के साथ मनन करें।

नियम-विचार

दस नियम तीन मुख्य भागों में बंटे हैं। प्रथम दो नियम ईश्वर सम्बन्धी कर्तव्य बोध कराते हैं। आगे के तीन व्यक्तिगत कर्तव्य सूचक है। अन्तिम पांच समाज सम्बन्धी कर्तव्य बतला रहे हैं। आर्य समाज एक आस्तिक संस्था है। नियमों के रहस्य पर तनिक ध्यान दीजिये दस नियम ही दयानन्द की क्रान्तदर्शिता को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं। किसी भी काल में कहीं कोई भी व्यक्ति जिसने समाज को सन्मार्ग बताया है, मनुष्य का हित किया है वह आस्तिक था। जिन महापुरुषों को नास्तिक कहा जाता है वे भी मन में आस्तिक थे। प्रकट रूप में परिस्थिति वश नास्तिक भले ही रहे हों। आर्य वही बन सकता है जो आस्तिक है। यदि हम आस्तिक नहीं तो अनार्य हैं।

प्रथम नियम बतलाता है कि ईश्वर सत्यविद्या का दाता है। सत्यविद्या वेद है। वेद के द्रष्टा ऋषि इसीलिये निर्भ्रान्त होते हैं क्योंकि वेद में जो है वह त्रिकालिक सत्य है। इसीलिये ऋषि लिखते हैं मैं मन्तव्य उनको मानता हूँ जो त्रिकाल में भी असत्य न हो। वेदज्ञ बनने की आवश्यक व अत्यन्त महत्व-पूर्ण शर्त है मनुष्य ईश्वरोपासक हो। क्योंकि जो ईश्वरोपासक नहीं वह ऋचा से वेद से क्या कर सकता है। वैदिक ईश्वरोपासना में यम नियम पालन अत्यावश्यक है, बिना यम नियम पालन किये आचार अच्छा न होगा। यम तो सार्व भौम महाव्रत। प्रत्येक मत इनका पालन करने की सम्मति देता है।

आर्य जब उपासक हो जायगा तो वेद सरल हो जायगा। अतः कहा गया वेदाध्ययन परम धर्म है तथा वेदार्थ के लिये अङ्ग उपाङ्ग ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन भी आवश्यक है। वेद को जानने वाला सत्य ग्रहणकर्ता होगा तथा उसमें सत्यासत्य विधि का विवेक भी होगा।

पहले कहा जा चुका है कि जिस व्यक्ति ने मानव समाज का हित किया है वह अवश्य आस्तिक ईश्वरोपासक होना चाहिये। आस्तिक मनुष्य सामाजिक उन्नति करेगा, प्रीतिपूर्वक व्यवहार करेगा तथा क्योंकि वेद जानता है अतः अविद्या का नाश भी कर सकेगा। जो वास्तव में आस्तिक है वह समाज से उपेक्षा वृत्ति नहीं रख सकता वह अपने साथ अन्यों को उन्नति भी चाहेगा। जो व्यक्ति सब का भला चाहता है वह सामाजिक सर्वहित-कारी नियमों का पालन अवश्य करेगा।

विश्वशान्ति

शान्ति होने के लिये आनन्द जो ईश्वर से ही मिल सकता है, का होना अनिवार्य है। आस्तिक व्यक्ति ही आनन्द को प्राप्त कर सकता है। ऋषि दयानन्द ने दस नियमों में विश्व-शान्ति का रहस्य भर दिया है। यदि सब मनुष्य उपर्युक्त कर्तव्य-त्रयी का पालन करने लगे तो विश्व शान्ति अति शीघ्र हो जाय। क्योंकि आर्यसमाज के अधिकांश सदस्य इन नियमों को क्रियात्मक रूप नहीं देते अतः वैदिक धर्म का प्रसार नहीं हो रहा है।

महर्षि दयानन्द व अन्य सुधारकों में ये मौलिक अन्तर है। अन्य विद्वानों ने शान्ति के लिये दार्श-निक एकता करने का प्रयत्न न किया परन्तु उस कमी को ऋषि ने अनुभव किया। आर्य सदस्यों को योग्य है कि वैदिक धर्म प्रसार हेतु कुछ बातों में एक हों। विश्वशान्ति करने का मतलब सम्पूर्ण मनुष्य जाति को हमें ईश्वर, ईश्वरीयज्ञान ईश्वरो-पासना, भाषा, जाति, भोजन, वेशभूषा आदि सम्बन्धी एकता देनी है। अतः आर्य सदस्य उपर्युक्त नियमों में एक हो। दस नियमों के क्रियात्मक पालन का व इस एकता का सम्बन्ध है।

अतः इन नियमों के आधार पर आर्यसमाज के उपनियम इस प्रकार बनाये जायें कि प्रत्येक सदस्य एक दृढ़ धार्मिक अनुशासन में बन्धा रहे। तथा नियम वेदानुकूल हैं ही, अतः हमारा प्रत्येक कार्य वेदानुकूल होगा। यहां एक सदस्य व संगठन आदि सब के लिये उपनियम लिखे जाते हैं साथ ही उनकी संक्षिप्त व्याख्या भी है जिससे हमारा प्रयोजन स्पष्ट हो जाय। आर्य जनता, नेता, व ब्राह्मणों से निवेदन है कि वे ध्यान देवें। वस्तुतः ये योजना न होकर योजना व उपलक्षण भाव है। आर्यसमाज प्रसार की योजना को समस्त आर्य साङ्गोपाङ्ग वेद वेत्ताओं को मिलकर बनानी चाहिये तथा आर्य जनता धन से सहायता करे।

वेदाध्ययन

(१) सदस्य बनते ही आर्य पंच महायज्ञ संस्कारविधि सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका खरीद ले। (२) पंचमहायज्ञ विधि से "सन्ध्या" सरलार्थ सहित स्मरण करके। (३) संस्कारविधि में सब संस्कारों की परिभाषा स्म-रण करके अग्निहोत्र करने के बलिवैश्व के मन्त्र कण्ठस्थ करके, सामान्य प्रकरण तथा इसके अग्नि-होत्र में काम आने वाले मन्त्र कण्ठस्थ करे, ईश्वर स्तुतिप्रार्थना कण्ठस्थ करके। (४) सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका ध्यान से पढ़े तथा प्रथम दस समुल्लास

का आर्यभाषा भाग पढ़े दो तीन बार आवृत्ति करके, तब उत्तरार्द्ध एक बार पढ़ लें। (५) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का आर्य भाषा भाग पढ़े भली भांति (६) अब संस्कृत भाषा का इतना अभ्यास कर लेवें जिससे पठन, लेखन व वार्तालाप संस्कृत में कर सके। (७) सत्यार्थप्रकाश, भूमिका के संस्कृत भाग को पढ़े व संस्कारविधि पूर्ण पढ़ के। (८) ऋषि कृत वेद भाष्य से वेदाध्ययन किया करे। (९) इनको पूरा करने के लिये नियमित आधा घण्टा स्वाध्याय करे (१०) दयानन्द पठन विधि लिखित प्राप्य ग्रन्थ घर में अवश्य रखे तथा इनका अध्ययन करे। वे अनिवार्य नहीं है। परन्तु उपर्युक्त ग्रन्थ चतुष्टयी का अध्ययन व संस्कृत शिक्षण अवश्य ही करले।

हम देखते हैं कि स्वाध्याय में न्यूनता दिन प्रतिदिन होती जा रही है। बिना इसके सिद्धान्त ज्ञान हो नहीं सकता। स्वाध्याय एक रस है। इस की पूर्णता वेद के स्वाध्याय से प्राप्त होती है। भला जिस व्यक्ति ने वैदिक सिद्धान्तों को नहीं जाना वह उनका क्रियात्मक पालन कैसे करेगा? तथा उस ब्राह्मण का जो वेदवित है कैसे महत्व समझेगा? जिसने शहद की एक बूंद नहीं चखी उसे क्या पता कि शहद के छते में कितना मिठास हैं। ब्राह्मण उपेक्षा क्यों? स्वाध्याय यदि होता तो ब्राह्मण का महत्त्व समझा जाता। परन्तु न स्वाध्याय है न ब्राह्मण का सम्मान है। तथा मत मतान्तरों को ऋषि दयानन्द ने बुद्धि का प्रयोग करवाना सिखाया कितना आश्चर्य है? कि आर्य सदस्य तनिक भी बुद्धिवादी नहीं बनता। एक यह माने कि ईश्वर अवतार नहीं लेता, परन्तु यदि यह सदस्य किसी पौराणिक को न समझा सके कि ईश्वर अवतार नहीं लेता, तो उसके आर्य होने का क्या लाभ? प्रचार युग में तो आर्य सदस्य ही शास्त्रार्थ कर लिया करते थे।

उपासना

(१) सायं प्रातः पञ्चमहायज्ञविधि अनुसार सन्ध्या करे। (२) यम नियम पालन करने में पूर्ण प्रयत्नशील रहे।

सन्ध्या का गुणगान मनु से दयानन्द पर्यन्त सब ऋषियों ने किया है सन्ध्या से ही "आनन्द" प्राप्ति हो सकती है। इसके अभाव में द्विज शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। अधिकांश सदस्य सन्ध्या नहीं करते। कोई कुछ कहने सुनने वाला है नहीं। कुछ तोता पाठ कर लेते हैं पर सन्ध्या में रुचि नहीं होती। आर्य सतोगुणी वृत्ति युक्त है। हम सतोगुणी होने का पूर्ण प्रयत्न करें। क्योंकि सतोगुणी होने पर ही हम निष्काम कर्म योगी हो सकते हैं तब उपासना में सहायता मिलेगी तथा ज्ञान (वेद विद्या) प्राप्त होगा, ज्ञान कर्म उपासना के समन्वय से मोक्षतक पहुँच सकेंगे।

सतोगुणी रजोगुणी व तमोगुणी का तात्पर्य समझ लिया जाये। रास्ते में सुवर्णखण्ड पड़ा है एक व्यक्ति उसे देखता है उसे ले जेब में रख आगे चलता है। आरक्षी दल द्वारा पकड़ा जाता है तथा दण्ड भोगता है। एक अन्य व्यक्ति सुवर्ण को देख मन में विचार करता है कि वह उसे रख ले परन्तु शासन के दण्ड भय से उसे लेता नहीं। तृतीय व्यक्ति उस सुवर्ण को देखता है, परन्तु उसके मन में लोभ नहीं होता प्रथम व्यक्ति परमेश्वर व राज्य शासन दोनों से दण्ड का भागी है। द्वितीय परमेश्वर की दृष्टि में अपराधी हैं। क्योंकि उसके मन में चोरी का सङ्कल्प हुआ सो उसे ईश्वर की ओर से दण्ड मिलेगा। तृतीय व्यक्ति शासन व ईश्वर दोनों के नियमों से निर्दोष है। प्रथम व्यक्ति तमोगुणी है द्वितीय रजोगुणी, तृतीय सतोगुणी है। तात्पर्य यह कि शुभ मन वाला व्यक्ति आर्य है ऐसा व्यक्ति ही समाज का हित कर सकता है। अतः हम सतोगुणी बनने का प्रयास करें। यम नियमों का जितनी दृढ़ता से पालन करेंगे उतने ही सतोगुणी बढ़ते जायेंगे तथा सन्ध्या में आनन्द आने लगेगा। साप्ताहिक अधिवेशनों की दशा ये है कि सन्ध्या अग्निहोत्र होने तक चार महानुभाव भी न मिलें। सन्ध्या करने में रुचि नहीं तब आर्यत्व आये कैसे? अतः सायं प्रातः सन्ध्या करिये। (क्रमशः)

आर्य समाज और पुरोहित

❀ सिद्धान्ताचार्य श्री विद्याभास्कर शास्त्री
आर्यसमाज देहरादून

विद्वान् लेखक ने निष्पक्ष होकर आर्य समाज के पुरोहितों और अधिकारियों के सम्बन्ध पर यथार्थ प्रकाश डाला है। पुरोहित और अधिकारियों को इस लेख का गम्भीरता पूर्वक मनन कर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। "विद्यार्थी"

आर्य समाज में भी पुरोहित रखने की प्रथा है। कुछ आर्य समाजें जो समर्थ हैं वहीं पुरोहित रखती हैं। ठीक भी है पौरोहित्य कार्य के लिए कोई न कोई तो चाहिये ही। जहां तक पुरोहित का कार्य है। मैं समझता हूँ कि कोई बुरा कार्य नहीं। पुरोहित का क्या अर्थ है? कैसा पुरोहित आर्य समाज में देर तक रह सकता है? कैसा पुरोहित आर्य समाज में देर तक नहीं रह सकता? जब मैं इन बातों को सोचता हूँ तो कभी कभी तो बड़ी उदासीनता होती है। और फिर सोचने लगता हूँ कि क्या सर्वथा पुरोहित ही दोषी है अथवा आर्य समाज के उन अधिकारियों का भी कुछ दोष है जो पुरोहित के साथ अशोभनीय व्यवहार करते हैं। जब कि अपने अपने कर्तव्य को भूलकर पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहते हैं जिसका निभना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। आइये आज हमारी इस विचार धारा पर आप भी गंभीरता पूर्वक विचार कीजिए मैं निष्पक्ष भाव से सत्य एवं स्पष्ट विचार पाठकों के सामने उपस्थित कर रहा हूँ।

पहले पुरोहित को ही लीजिये—पुरोहित कैसा होना चाहिये? विद्वान् सदाचारी, धर्मात्मा, तपस्वी सुवक्ता, संस्कारादि कराने में निपुण, अगुआ, नेता, गुरु, जनता का हित चाहने वाला, यजमान का कल्याण चाहने वाला, तथा सबको अपने गुणों तथा सद् व्यवहारों से अपनी ओर आकर्षित करने वाला, अलोभी स्वाभिमानी, सत्य एवं स्पष्ट वक्ता होना चाहिये। यह पुरोहित का लक्षण हुआ। लेकिन ऐसा पुरोहित आर्य समाज के उन पदाधिकारियों के लिए सर्वथा अयोग्य है जो यह चाहते हैं कि चाहे कुछ भी हो लेकिन जब हमारी आर्य समाज पुरोहित को १००) मासिक देती है कम से कम दिन में दो एक बार हमारे घर पर हम से मिलने अवश्य आया करें इच्छा तो उनकी ऐसी रहती है लेकिन वह स्पष्ट रूप से उक्त गुणों से अलंकृत योग्य पुरोहित से खुद कह भी नहीं सकते। कुछ ऐसी भी समाजें हैं कि जोश में आकर पुरोहित तो रख लेती हैं और इस अनुमान से रखती हैं कि १००) पुरोहित का वेतन हैं चार पांच मास तक देखा यदि यह सौ सवा सौ मासिक दान से प्राप्त कर लाया, तब तो वह योग्य और यदि अपने मासिक वेतन से कम लाया तो कोई न कोई दोष लगाकर निकाल बाहर किया, पुरोहित जी महाराज अब आपकी कोई जरूरत नहीं रही। आप करते ही क्या है एक दो संस्कार आया उसे करा दिया। और दिन भर बेकार बैठे रहे।

कुछ समाजों के अधिकारी ऐसे भी हैं जिन्हें इस बात से कुछ मतलब नहीं कि पुरोहित जी क्या करते हैं क्या नहीं करते बस उनकी तो एक ही इच्छा रहती है कि पुरोहित जी हमारी खुशामद में दिन रात एक करते रहें हमारी तारीफ के पुल बांधते रहें और जब कभी मिलें तो हाथ जोड़कर मुझसे पहले जरा गर्दन झुकाते हुए मुस्कराकर नमस्ते प्रधान जी, नमस्ते मन्त्री जी किया करें। कुछ अधिकारी ऐसे भी हैं जो यह चाहते हैं कि

पुरोहित पैसे की दृष्टि से इतना कमजोर बना रहे कि मुश्किल से उसे तथा उसके बाल बच्चों को रोटी मिल जावे अतः दक्षिणा पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं कि विवाह पर ५ या १० से ज्यादा मिले वह सब समाज को तथा अन्य सब संस्कारों पर २ से ज्यादा मिले वह सब समाज को दे दिया जाये। किसी हद तक अधिकारियों का इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगा देने के कुछ कारण उचित भी होंगे यह हो सकता है। यह भी सम्भव है कि लोभी पुरोहितों ने संस्कारों पर दक्षिणा के लिए लोभ का परिचय दे दिया होगा। यजमान ५ दे रहा होगा पुरोहित ने १० मांग लिया होगा, कुछ इधर उधर को और भी, बस यही तो, लेकिन इस में भी सर्वथा पुरोहित ही दोषी नहीं कहा जा सकता, कहीं कहीं यजमान भी अश्रद्धा का परिचय देता है। पुरोहित की योग्यता तथा उसकी आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर दक्षिणा में ही अपनी सारी कंजूसी का परिचय देने लगता है तब पुरोहित को भी कुछ दुःख होता है और उसे ऐसा करना पड़ता है। फिर भी मैं तो यह कहूंगा कि विद्वान् पुरोहित की परीक्षा इसी स्थान पर है इसी समय उसे धैर्य एवं सन्तोष से काम लेना चाहिये और अपना आदर्श ऊंचा रखना चाहिए क्योंकि दक्षिणा एक श्रद्धा की चीज है श्रद्धा से कोई जितना भी दे देवे बहुत समझना चाहिये। पुरोहित को ऐसी ही वृत्ति रखनी चाहिए। लेकिन संस्कार करवाने वाले यजमान को भी चाहिये कि पुरोहित को यथा शक्ति अधिक से अधिक दक्षिणा देवे महर्षि दयानन्द जी ने भी ऐसा ही संस्कार विधि में लिखा है। खैर मैं, अधिक विस्तार में न जाता हुआ दोनों की उस स्थिति को स्पष्ट कर दूं जो परमावश्यक है:—

आर्य समाजों में विद्वान्, सदाचारी, धर्मात्मा, सद्व्यवहारी, सन्तोषी, स्वाभिमानी तथा ऐसा व्यक्ति जो पार्टीबन्दी के चक्कर में न रहे, इधर-उधर की निन्दा शिकायत में न रहे, पौरोहित्य कार्य के लिए होना चाहिये। इन गुणों के विपरीत अर्थात् थोड़ा संस्कारादि करा सके मन्त्रोच्चारण भी शुद्ध न कर सके, जिसका जनता पर कुछ भी प्रभाव न पड़ सके, जो दक्षिणा के लिए लड़े झगड़े आर्य समाज के सदस्यों, अधिकारियों तथा नगर के प्रमुख व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने की योग्यता जिसके अन्दर न हो जो वेद प्रचार आदि कार्यों में तत्पर न रहता हो, आर्य समाज का हृदय से हित न चाहता हो, जो सत्य एवं मृदु भाषी और मिलनसार न हो जो अपने सद्व्यवहार से दूसरों को अपनी ओर आकर्षित न कर सके, उसे पौरोहित्य कार्य नहीं करना चाहिये। क्योंकि पुरोहित का स्थान बहुत ऊंचा हैं, गुरु का स्थान है। यह तो रही पुरोहित की बात, अब आर्य समाज के पदाधिकारियों के बारे में भी दो शब्द कह दूं आर्य समाज के अधिकारी भी जरा उदारता से काम लेवें। पुरोहित भी एक मनुष्य है उससे भी तो भूल चूक हो ही सकती है अतः विशेषतः प्रधान और मन्त्रियों को चाहिये कि वह इस प्रकार के योग्य एवं स्वाभिमानी पुरोहित को अपना गुरु मानें तथा सदा उसके स्वाभिमान की रक्षा करें पुरोहित से खुशामद न चाहें। पुरोहित के साथ नौकर का सा व्यवहार करें कहने का तात्पर्य यह है कि आप पैसा चाहे कम दे कुछ न दें पर श्रद्धा दें सम्मान दें आवश्यक सुविधायें दें। पुरोहित और अधिकारी अपने अपने कर्तव्य का समुचित रूप से पालन करते रहें ताकि आर्य समाज का भरपूर उत्थान हो सके।

पुरोहित कार्य के बारे में कुछ मेरे मित्रों के विचार किसी हद तक ठीक भी हैं मेरे मित्रों में कभी कभी इस प्रकार की चर्चा होती रहती है कि पुरोहिताई से खराब कोई काम नहीं, उपदेशकी तो फिर भी अच्छी है किसी की धोंस नहीं, प्रोग्राम मिला, उत्सव पर पहुंच गये, एक दो व्याख्यान दिया और चलते बने, बड़ी इज्जत, बड़ी शान, लेकिन पुरोहिताई में तो रात दिन अधिकारियों की खुशामद करते फिरो, उनकी हां में हां मिलाते रहो। विवाह संस्कारों में जाओ रात भर जागो, उनकी पार्टी हो तो तुम बैठे एक कोने में किसी कुर्सी पर टुकुर टुकुर ताकते या ऊंघते रहो। १२-

१ बजे तुम्हारी खोज होने लगे पुरोहित जी कहां गये, पुरोहित जी मिले, देखिये जी पण्डित जी १ घण्टे में फेरे खतम होने चाहिये। संस्कार के बाद ५ रुपल्ली पकड़ाई दक्षिणा में, महाराज आपने बड़ी कृपा की धन्यवाद, बस यह हैं आज की पुरोहिताई का नमूना। मित्रों की इन बातों पर विचार करता हूँ तो मुझे उनकी इस बात में सच्चाई प्रतीत होती है फिर भी मेरे कुछ मित्र ऐसे हैं जो पुरोहित का कार्य कर रहे हैं और स्थानीय आर्य-समाज के सदस्यों एवं अधिकारियों पर अपनी कार्य दक्षता, योग्यता, अनथक परिश्रम आर्य समाज की उन्नति में सर्वदा सर्वथा अग्रसर रहने आदि गुणों से छाये हुये हैं। उनका सम्मान है, उनकी प्रतिष्ठा है। उपदेशक और पुरोहित में कोई अन्तर नहीं संस्कारादि भी तो वेद प्रचार का उत्तम साधन है उपदेशक का क्षेत्र बड़ा और पुरोहित का सीमित होता है—बस बात तो इतनी सी है।

मैं पंजाब प्रतिनिधि सभा में उपदेश था, सभा की ओर से रावलपिंडी पुरोहित बन कर कार्य करने लगा। श्री प्यारेलाल भाटिया उन दिनों मन्त्री थे। यह, बाबू बालकराम, पं० विष्णुदत्त जी आजकल देहरादून में हैं वहां का वातावरण बड़ा सुन्दर था। इन लोगों की श्रद्धा के कारण में ६ मास के लिये गया था और ५ वर्ष रह गया। इन्हीं लोगों के आकर्षण से देहरादून में आ गया हूँ, आर्य समाज देहरादून का वातावरण बहुत ही अच्छा है श्री-जयरामसिंह जी प्रधान श्री पं० तेजकृष्ण जी उपप्रधान श्री धर्मेन्द्र सिंह जी मन्त्री एवं देवदत्त जी बाली एवं बलदेव सिंह जी उपमन्त्री ये लोग कर्मठ आर्य हैं स्वयं विद्वान् हैं और विद्वानों की बड़ी इज्जत करते हैं। मैं कुछ ही मास से इन लोगों के सम्पर्क में हूँ मैं पौरोहित्य कार्य कर रहा हूँ इन लोगों ने मुझे अत्यन्त मान दिया है। यदि इसी प्रकार के पदाधिकारी सभी समाजों में हो जावें तो आर्य समाज का वही पहला आदर्श जनता के सामने पुनः आ सकता है।

निष्कर्ष यह है कि आर्य समाज के पदाधिकारी और पुरोहित दोनों ही एक दूसरे को सम्मान देते हुये आर्य समाज की उन्नति को लक्ष्य में रख कर पारस्परिक सद्भावना एवं सद्व्यवहार से निरन्तर कार्य करते रहें तो इसमें आर्य समाज का विस्तार एवं गौरव है। आर्य समाज और पुरोहित की रूप-रेखा के बारे में मेरा यह अपना विचार है। इस पर आप भी विचार करें।

—❀❀—

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—[आयुर्वेदालंकार, बी. आई. एम. एस.] पुरोहित आर्य समाज करौल बाग से चिकित्सा करायें—इलाज का कर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कौलोनी, सोनीपत।
२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैंक लोधी रोड़ नई दिल्ली।
३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपुर।

—श्रीमान पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पुरोहित आर्य समाज करोलबाग नई दिल्ली।

सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास—

शिक्षा के साधक अङ्ग— माता पिता

❀ श्री पं० सुरेशचन्द्र जी वेदालङ्कार एम० ए० एल० टी०
डी० ए० बी० कालेज गोरखपुर

शिक्षा के लिए आवश्यक वस्तुओं का उल्लेख करते हुए स्वामी जी महाराज ने द्वितीय समुल्लास में लिखा है कि यदि बालक को उत्तम बनाना है तो इसका पूर्ण उत्तरदायित्व माता, पिता तथा आचार्य पर है। मानव के निर्माण का प्रयत्न शिक्षा का उद्देश्य है और मानव के निर्माण के लिए प्राचीन काल में दो तरह की व्यवस्था की गई थी। एक का सम्बन्ध विद्यालयों से था और दूसरे का सम्बन्ध स्कूल से बिल्कुल न था। अर्थात् स्कूल से असम्बन्धित शिक्षा माता पिता दिया करते थे, समाज दिया करता था और इसके लिए सोलह संस्कारों की व्यवस्था थी। यह संस्कार मानव के जन्म लेने के पूर्व से ही शुरू हो जाते थे। माता पिता बालक को लक्ष्य रख कर सब से पहला संस्कार 'गर्भाधान संस्कार' करते थे। उस समय दोनों व्यक्ति अपने से ऊंचे, अपने से श्रेष्ठ आत्मा को जीवन में निमन्त्रण करते थे, वे ऐसे आत्मा को बुलाते थे जो संसार को आगे ले जाय। और उसके बाद गर्भाधान होने पर पुंसवन संस्कार किया जाता था। इस संस्कार के समय माता पिता को सम्बोधन कर के कहा जाता था 'आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः' दस मास तेरी कोख में रह कर तेरा वीर पुत्र उत्पन्न हो। इस प्रकार शिक्षा का प्रारम्भ माता-पिता से होता था। माता 'निर्माता भवति'। इस लिए माता जीवन के प्रारम्भ से ही अपने प्रबल सशक्त विचारों से अपनी वेगवती संस्कारों की धारा से अपने पुत्र को जीवन की दिशा देने लगती थी। पुंसवन संस्कार तब होने लगता था जब बालक के भौतिक शरीर का निर्माण होता था। और उसके बाद बालक के गर्भ में रहने पर जब मानसिक शरीर का निर्माण होने लगता था तब 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार किया जाता था। माता के बाल संवारे जाते थे, उसे अपने सिर का मस्तिष्क का विशेष ध्यान रखने को कहा जाता था। माता के सम्मुख घी का कटोरा रख कर पिता पूछता था 'किं पश्यसि' इस कटोरे में क्या देखती हो? माता कहती थी 'प्रजां पश्यामि' मैं इस में अपनी प्रजा को देखती हूँ। अर्थात् माता पिता के सम्मुख बालक के निर्माण के अतिरिक्त और कोई भी लक्ष्य न रहता था। यह तीनों संस्कार जन्म लेने के पूर्व के संस्कार थे जिनका सम्बन्ध बिल्कुल माता पिता से था। अब जब बालक जन्म लेता था तब वह समाज के सम्पर्क में आता था और समाज का पहला व्यक्ति पिता उसके सब से समीप रहता था और इस प्रकार उसके निर्माण का उत्तरदायित्व माता के साथ पिता को भी प्राप्त होता था।

बच्चे के जन्म लेने के बाद के संस्कारों में कुछ संस्कार स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते थे अर्थात् अन्नप्राशन, निष्क्रमण, कर्णवेध आदि का स्वास्थ्य से सम्बन्ध था। इनके अतिरिक्त अन्य संस्कारों का उनके शारीरिक और मानसिक विकास में महत्वपूर्ण योग था। जन्म लेने के संस्कारों का प्रभाव बच्चों पर कितना अधिक होता है यह इतिहास के द्वारा जाना जा सकता है नैपोलियन, शिवा जी और अभिमन्यु का उदाहरण हमारे सामने है। नैपोलियन की माता जब गर्भवती थी तो नित्य कवायद देखने जाती थी। सैनिकों के जोशीले गीतों को सुन कर उसके हृदय में जो प्रबल लहरें उठती थीं उन्होंने नैपोलियन को नैपोलियन बना दिया। अभिमन्यु ने गर्भ में चक्रव्यूह भेदना सीखा

यह सब माता की निर्माण शक्ति का ही परिणाम है। परन्तु जन्म के बाद के स्वास्थ्य विषयक एवं अन्य संस्कार भी कम महत्वपूर्ण नहीं। जातकर्म संस्कार बच्चे के जन्म लेने के बाद किया जाता है। उस समय सोने की शलाका से उसकी जीभ पर 'ओ३म्' लिखा जाता है, कान में 'वेदोऽसि' कहा जाता हैं, 'अश्मा भव—परशुर्भव' आदि मन्त्र उच्चारण किये जाते थे। इन सब का अभिप्राय यही है कि जिन माता पिता के हाथ में बालक के व्यक्तित्व के निर्माण का भार है उन्हें अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना है।

इस प्रकार बालकों की शिक्षा प्रारम्भ करते हुए माता पिता को यह ध्यान रखना चाहिए कि शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शिक्षा का बीज घर में ही पड़ जाता है। यदि माता पिता व्यायाम करेंगे तो बालक को व्यायाम का शौक होगा, यदि माता पिता नियमित सन्ध्या हवन करेंगे, स्वाध्याय करेंगे, धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे, धार्मिक प्रवृत्ति के होंगे तो निश्चय है कि उनके बच्चों में ये प्रवृत्तियां आयेंगी। साधारणतया माता, पिता और अध्यापक भी बच्चों की अनुशासन हीनता, आचरण विहीनता एवं सङ्कल्प हीनता की चर्चा करते हुए पाये जाते हैं ? पर क्या बच्चों की इन बुराइयों का कारण कभी उन्होंने सोचा है। मेरे एक मित्र हैं। उनके पास आप जब बैठिये वे अपने बच्चों के झगड़े उनकी शिक्षा के प्रति उदासीनता और अन्य दुर्गुणों की चर्चा करते रहते है। एक दिन की बात है मैं दोपहर को उनके यहां पहुँचा। वे गर्मी की दुपहर में निद्रा का आनन्द ले रहे थे। मैंने उनका दरवाजा खटखटाया और उसी क्षण एक छोटा बच्चा बाहर आया। असत्य से अपरिचित शुद्ध हृदय बालक ने भोलीभाली आवाज में बताया कि मेरे पिता जी का कहना है कि जब मैं सो रहा होऊं तो तुम किसी के आने पर जाकर कह दिया करो कि मैं नहीं हूँ। इस लिये वे घर पर नहीं हैं। बात तो जरा सी थी पर मुझे समझने में आ गया कि वे अपने बच्चों के दुर्गुणों से क्यों इतने परेशान हैं ?

याद रखिये बच्चों के निर्माण के लिये आपको अपना निर्माण करना पड़ेगा। यह नहीं हो सकता कि आप शराब पीयें, सिगरेट बीड़ी उड़ायें, रोज सिनेमा देखने जायं और आपके बच्चे इनसे अछूते रहें। माता पिता आपस में झगड़ते रहें, रोज चिमटा चलायें, झाड़ू ले ले कर लड़ें तो बच्चे कैसे शिष्ट होंगे ? सोचिए तो सही। इसलिए आप बच्चों को जिस दिशा में ढालना चाहें उस दिशा का वातावरण निर्माण कीजिए। जिस प्रकार का विचार परिवार के सदस्यों का होगा, देश की राजनैतिक समस्याओं पर उनकी जो सम्मतियां होंगी बालक वैसे ही बनेंगे।

अतः बालक को उत्तम बनाने के लिए "माता को पिता अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शांति, आरोग्य बल, बुद्धि पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करे कि जिससे रजस् वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुण युक्त हों।"

स्वामी जी ने आगे लिखा है कि "जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धि युक्त जल से बालक को स्नान नाड़ी छेदन करके सुगन्धि युक्त घृतादि के होम और स्त्री के भी स्नान भोजनादि का यथोचित प्रबन्ध करे जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जायेगा।

माता पिता के विषय में लिखते हुए स्वामी जी महाराज ने लिखा है "बालकों को माता पिता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावे।"

इस प्रकार बालकों की शिक्षा का प्रारम्भ माता पिता से होता है। इस प्रकार शिक्षा के इस रहस्य को यदि माता पिता अच्छी तरह समझ लें तो यह निश्चय समझिये कि वे बालकों से पहले अपना निर्माण प्रारम्भ कर देंगे और इस प्रकार बालकों का निर्माण-पथ प्रशस्त होगा। इस रहस्य को समझने पर एक नया मानव नहीं एक नया समाज ही बन जायगा।

यह काया की रेल.....रेल से अजब निराली है !

❀ प्रोफेसर बलदेव प्रसाद आर्य

श्री बलदेव प्रसाद जी आर्य बड़े ही उत्साही लग्नशील और धुन के धनी हैं। महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के मिशन के लिये आपने अपने जीवन को अर्पित किया हुआ है। आप पहले राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक रहे फिर आप ने सागर विश्वविद्यालय और ट्रेनिंग कालिज शिवपुरी और आरमर फोर्सिज मेडिकल पूना में योग शिक्षण विभाग स्थापित करा वहां कार्य किया आजकल आप सैन्ट्रल जेल तिहाड दिल्ली में कैदियों को सफलता पूर्वक योग शिक्षण दे रहे हैं। आर्य समाजों को लेखक महोदय की विद्या और अनुभवों से लाभ उठाना चाहिये। "विद्यार्थी"

आज का संसार विज्ञान द्वारा बनाई गई मशीनों को देखकर चकित और गर्व से अपने को कृत्य कृत्य मानता है। उसके लिये निरन्तर प्रयास और शक्ति का व्यय करता है, परन्तु इतना घोर प्रयास करने के बाद भी परमात्मा की रचना में सबसे श्रेष्ठ पित्त कफ के सममिश्रण द्वारा बनाई गई मानव शरीर की रचना को वह भूल जाता है। मानव शरीर ऐसा विचित्र यन्त्र है जिसको सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो नस नाड़ी और सूक्ष्म स्नायुओं से सुगठित और रक्त मांसादि द्वारा पोषित पंच तत्वों की विशेष सामग्री से संचालित है जिसका निर्माण इस विचित्र ढंग का है कि मनुष्य यदि थोड़ी सी भी सावधानी रखे और प्रकृति के परिवर्तन के साथ अपने दैनिक भोजन आदि व्यवस्था का परिवर्तन करता चला चले तो यह यन्त्र दृढ़ और शक्तिशाली होकर निरंतर चिरकाल तक कार्य करता रह सकता है परन्तु जो मनुष्य अपने द्वारा निर्मित यन्त्रों की देखभाल उनकी सफाई और व्यवस्था पर तो ध्यान देता है पर शरीर के सम्बन्ध में वह यह भूल जाता है कि बाह्य यन्त्रों से भी अधिक इस शरीर यन्त्र के देखभाल की आवश्यकता है। जिस तरह यन्त्र के सम्बन्ध में बताई गई थोड़ी सी भी असावधानी यन्त्र के कमजोर और शीघ्र विनाश का कारण होती है, ठीक यही स्थिति शरीर की है।

शरीर एक छोटा नगर है जिसमें हर प्रकार की सुविधायें परमात्मा ने दी हैं। नगर की सुव्यवस्था के लिये बिजली नल नालियां, स्वच्छ सामान आवश्यक है। इनमें यदि किसी प्रकार की त्रुटि हो तो उस नगर की देखभाल करने वाले अयोग्य समझे जाते हैं क्योंकि मानव समाज के जीवन के लिये स्वच्छ वायु, जल, अग्नि, भूमि की आवश्यकता है। चतुर नगर रक्षक वे हैं जो इन्हें स्वच्छ रखने के लिए सतत् उद्योग करते हैं अन्यथा नालियों की सडान, कूड़े कचरों का समूह, विकृत भोजन मानव समाज को नष्ट कर देते हैं। यही स्थिति शरीर की है। अगर शरीर रूपी नगर को ठीक न रखा जाय तो इसमें पैदा हुई गन्दगी अनेक प्रकार के रोगों में परिणित होकर इसके विनाश का कारण बनती है इसलिये आचार्यों ने रोगों के मूल कारण का वर्णन करते हुये सर्वेषामेव रोगानाम निदाने कुपिता मलः अर्थात्, सारे रोगों का मूल कारण मलों का कुपित होना है। उससे बचने के लिये शरीर की स्थिति पर सदा विचार करते रहना और उससे बचने के साधनों के प्रयोग को कार्य में लाते रहना बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है। इसके लिये आज का संसार दो प्रकार के साधनों को काम में ला रहा है। एक बाह्य, दूसरा अभ्यन्तर। बाह्य साधन बाहर से प्रयोग करके किसी कार्य की सिद्धि में सहायक होते हैं। उनके द्वारा जो कार्य सिद्ध होता है वह क्षणिक होता है और अपने प्रभाव से अपने अनुकूल बना उस यन्त्र के क्रम को अव्यवस्थित कर अनेक प्रकार की आवश्यकता ला देता है। जिसका परिणाम यह होता है कि उसे बार बार शक्ति बाहर से उधार लेना पड़ती है। उदाहरण के किये किसी मशीन में यदि आंतरिक स्थिति के अनुकूल उपचार न कर यदि बाहर के यन्त्र के अनुकूल साधनों से यदि चलाने का प्रयास किया जाय तो मूल यन्त्र का जीवन अधिक नहीं रहेगा। यदि उसके अतिरिक्त संचालन को दृष्टि में रखकर तदनुकूल क्रिया की जावे तो वही यन्त्र अधिक समय कार्य कर सकता है। आज शरीर की यही हालत है। किसी प्रकार का रोग या अन्य विकार होने पर बाह्य कृत्रिम साधनों से रोकने का प्रयास किया जाता है। नगर की गन्दगी को नगर

से दूर करने के बजाय सारे नगर में फैलाने की कोशिश की जाती है। जिस प्रकार प्रत्येक अपराध के लिये एक विधान नहीं, प्रत्येक शहर के लिये एक सा प्रबन्ध नहीं प्रत्येक सोसायटी के जीवन के लिये एक सरीखा नियम नहीं उसी तरह इनके जीवन के लिये परिस्थिति पर विचार करना आवश्यक होगा उसी प्रकार शरीर की भी बात है। परन्तु यहां शारीरिक स्थिति कुछ भी हो उपाय एक पेटैण्ट चीज है। परिणाम प्रत्यक्ष है जिसे सब जानते हैं। आवश्यक यह है कि नस नाड़ियों के उनमें क्षमता और कार्य शीलता लाने के लिये स्थिति पैदा की जावे और उनकी क्षमता के परम सहायक प्राणों में बल और सुव्यवस्थित रहने का बल पैदा किया जावे। वह बिना आसन और प्राणायाम की क्रिया के नहीं हो सकता। बाहरी क्रियायें उतना ही काम कर सकती हैं कि जितना उनसे अभीष्ट है। जैसे नंगे रहने से खाल मजबूत होगी, दण्ड बैठक से मांस पेशियां मजबूत होंगी, तेल से शरीर का रूखापन दूर होगा आंतरिक व्यवस्था इनसे ठीक होना सम्भव नहीं है।

इसलिये दीर्घ—जीवी स्वास्थ्य और अपने को बलवान बनाने के लिये आसन प्राणायाम आदि का करना परम आवश्यक है। आसनों से शरीर में स्फूर्ति, नस-नाड़ियों में लोच और पाचन संस्थान में तदनुकूल कार्य करने की क्षमता आती है। प्राणायाम से प्राणों का व्यापार नियमित होकर रक्त की शुद्धि से शरीर निर्मल और हृदय की दृढ़ता होकर मन शांत और मस्तिष्क में स्थिरता आती है जो मानव जीवन को विकसित करने के लिये अनिवार्य है। शरीर में कार्य करते हुए कई प्रकार की कमियां आती हैं। उनको दूर करने के लिये उस प्रकार के आसन की आवश्यकता होती है जैसे पेट के रोगों के लिये पृष्ठ भूमि—तड़ासन हस्तपाद में दण्डासन, हलासनादि, स्नायु विकार व हृदय रोगों के लिये गर्भासन, कर्ण-पीडासन सर्वाङ्गण आदि, वीर्य विकारों के लिये पश्चिमोतानासन पादागुष्ठासन, विस्तृत पाद मूमनासनादि हैं। उसी प्रकार फेफड़े, हृदय, यकृत और प्लिहा-तिल्ली के संशोधन और रक्त शुद्धि के लिये नाड़िशोधन वा भस्त्रिकादि प्राणायाम आवश्यक हैं। ब्लड-प्रेशर (रक्त-चाप) को दूर करने को शीतलों प्राणायाम तत्काल लाभ करता है। इस प्रकार इन क्रियाओं का प्रभाव शरीर पर स्थायी और शारीरिक रचना के अनुकूल होता है। मनुष्य का शरीर पाचन संस्थान के ऊपर विशेष आश्रित है। ये सारी क्रियायें भी पाचन संस्थान पर विशेष प्रभाव डालती हैं कुछ लोगों का यह मत है कि इस प्रकार की योगिक क्रियायें योगियों के लिये ही आवश्यक हैं। यह बड़ी भूल है। ये क्रियायें तो बाल, युवा, वृद्ध, ब्रह्मचारी गृहस्थी आदि के लिये समान रूप से मानव मात्र के लिये हैं। हां, स्त्रियों के लिये उनकी शारीरिक रचना के अनुकूल कुछ आसनें वर्जित हैं कि उनके कुछ संस्थानों पर अति खिचाव न पड़े। यदि आज के मानव अपनी स्थिति को ठीक समझ लें तो इस प्रकार के वातावरण निर्माण से रोगों की बाढ़ को सहज ही में रोका जा सकता है क्योंकि आज के रोगों का कारण फेफड़ों को कमजोरी, पाचन संस्थान का बिगड़ना, वीर्य की कमी आदि है। शासन इसके लिये इन्जेक्शन द्वारा प्रयत्नशील है कि इनसे होने वाले भयंकर रोगों से मनुष्यों को बचाया जावे परन्तु विचारना यह है कि जिन कारणों से इनमें कमजोरियां आती हैं उसको दूर करने का क्या उपाय है। प्रत्यक्षतः दो कारण हैं जिनसे यह कमजोरी आती है। मानसिक विचारों का पतन और भोजन की ठीक व्यवस्था का न होना, इन्जेक्शन और विटामिन की गोलियां इस कमी को पूरा नहीं कर सकतीं। इसको पूरा करने के लिये सात्विक आहार और सात्विक विचार हो आवश्यक हैं, जो आसन, प्राणायाम और उसके सहकारी सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि यम और तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानादि, नियमों के द्वारा हो सकता है। जब तक यह नहीं होगा तब तक रोगों से छुटकारा आत्मबल नहीं आ सकता और बिना आत्मिक बल के मनुष्यों में मनुष्यता आनी दुर्लभ है इसलिये मनुष्य को अपनी बनावट और इसकी स्वस्थता तथा उसको स्थिर रखने के साधनों पर सदा विचार करते रहना चाहिये (योगाभ्यास द्वारा) इसी से मानव समाज का शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण हो सकता है।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

श्रीमद्दयान्द प्रकाश [स्वामी सत्यानन्द] १२)
(महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन चरित्र मोटे अक्षरों में)
दो सनातन सत्ताएं [पं० रामचन्द्र देहलवी] १)
ऋग्वेद शतकम् [श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी] १)
यजुर्वेद शतकम् ,, ,, १)
अथर्ववेद शतकम् ,, ,, १)
सामवेद शतकम् ,, ,, १)
दिव्य दयानन्द ,, ,, १)२५
राधास्वामी मतदर्पण ,, ,,)२५
ब्रह्मकुमारी मतदर्पण ,, ,,)३७
प्रार्थना-मन्त्र [सुरेशचन्द्र वेदालंकार] १)
व्याख्यानमाला [स्वामी नित्यानन्द] २)
तत्वज्ञान महात्मा आनन्द स्वामी ३)
प्रभुदर्शन ,, ,, २)५०
प्रभुभक्ति ,, ,, १)५०
आनन्द गायत्री कथा ,, ,,)७०
एक ही रास्ता ,, ,,)८०
शङ्कर और दयानन्द ,, ,,)५०
आनन्द भगवत कथा ,, ,,)६२
भक्त और भगवान ,, ,, १)
मानव जीवन गाथा ,, ,, १)
उपनिषदों का सन्देश ,, ,, १)२५
उपनिषदार्यभाष्य पं० आर्य मुनि ६)
(इसमें ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य एतरेय तैत्तिरीय आठ उपनिषद हैं अलग अलग भी मिल सकती है।
बाल्मीकि रामायण [प्रेमचन्द विद्यासागर] १२)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा [स्वा० ब्रह्ममुनि] ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ,, ,, ३)५०
सृष्टि का इतिहास [पं० लेखराम आर्य पथिक] २)
गुरुदत्त लेखावली [पं० गुरुदत्त विद्यार्थी] २)

महर्षि से पूर्व का भारत [आत्माराम अमृतसरी] २)
बहनों की बातें [पं० सिद्धगोपाल] १)२५
मित्रों की बातें ,, ,, १)२५
दर्शनानन्द ग्रंथ संग्रह पूर्वार्द्ध [स्वा. दर्शनानंद] २)५०
,, ,, उत्तरार्द्ध ,, ,, २)५०
वैदिक गृहस्थाश्रम [पं० विश्वनाथ विद्यालंकार] ५)
ऋषिगाथा महाकाव्य [विमलचन्द्र विमलेश] ४)
वेद परिचय [स्वामी वेदानन्द])३७
महर्षि दयानन्द [इन्द्र विद्यावाचस्पति] २)
सचित्र योगासन [पं० गणेशदत्त वि. वा.] १)५०
दयानन्द चित्रावली [पं. रामगोपाल वि. अ.] २)५०
स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग [पं० अत्रिदेव वि.] ३)
विवाह और विवाहित जीवन [गंगा प्रसाद उपाध्याय] २)५०
सन्ध्या विनय [नित्यानन्द वेदालङ्कार] १)
प्रार्थना प्रदीप ,, ,,)५०
कर्तव्य दर्पण [म० नारायण स्वामी[१)२५
आर्य समाज क्या है ,, ,,)७५
वैदिक सन्ध्या रहस्य ,, ,,)३७
वैदिक यज्ञ रहस्य ,, ,,)३७
आर्य सिद्धान्त दीप [पं. मदनमोहन विद्या.] १)२५
गीत श्रद्धाञ्जलि [भजन] १)
महिला पुष्पाञ्जलि [भजन])५०
दयानन्द ग्रंथ संग्रह [महर्षि दयानन्द] ४)५०
आत्म कथा ,,)४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश ,,)१०
वेदान्तिध्वान्त निवारण ,,)१६
वेद विरुद्ध मत खण्डन ,,)३७
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,,)३७
आर्याभिविनय ,,)५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला ,,)१०

ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त	,,	)२५
भ्रान्ति निवारण	,,	)३७
व्यवहारभानु	,,	)२५
भ्रमोच्छेदन	,,	)२५
गोकरुणानिधि	,,	)६
गृहस्थाश्रम	,,	)६२
काशी शास्त्रार्थ	,,	)२०
सत्यधर्म विचार	,,	)२५
आर्यसमाज के नियमोपनियम	,,	)१२
ईशोपनिषद	,,	)२५
बालशिक्षक	,,	)३७
संस्कार विधि	,,	१)२५
यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द	,,	२)५०
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र]		१)
स्वामी दयानन्द और वेद [अरविन्द घोष]		)२५
गायत्री व्याख्या	पं० मदनमोहन विद्या	)२५
नास्तिकवाद	पं० देवेन्द्र नाथ शास्त्री	)५०
वेदों का महत्व [स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती]		)२५
ईश्वर प्राप्ति	,, ,,	)१९
ईश्वर विचार	,, ,,	)१२
जीवात्मा	,, ,,	)१२
वेदों की आवश्यकता	,, ,,	)६
वेद किस पर प्रकट हुए,	,,	)६
बालशिक्षा	,, ,,	)१०
धर्म शिक्षा	,, ,,	)१०
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	[स्वा० सत्यानन्द]	)५०
ब्रह्मचर्य जीवन	[पं० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]	)३७
वैदिक धर्म शिक्षा	पं० शिवशर्मा	)२५
गोरक्षा परम कर्तव्य	पं० धर्मदेव वि० मा०	)५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका सन्ध्याहवन स्वास्तिवाचन शान्ति प्रकरण अर्थ सहित		)६५
आर्य सत्संग गुटका सन्ध्या हवन		)४० सैकडा २५)
वैदिक सत्संग गुटका		)३० ,, २०)
वैदिक यज्ञ प्रकाश		)२० ,, १५)
हवन मन्त्र		)१० ,, ६)
सन्ध्या मन्त्र		)१० ,, ६)

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	)७५
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	)३७
गुरु विरजानन्द	,,	)५०
महात्मा हंसराज	,,	)३७
स्वामी वेदानन्द	जगदीशचन्द्र विद्यार्थी	)२५
भगवान कृष्ण	,,	)३०
अनमोल मोती	,,	)३५
आदर्श सुधारक दयानन्द	देवेन्द्रनाथ मुखर्जी	)६२
गुरुधाम एकाको—चन्द्रनारायण सक्सेना		)५०

धार्मिक चित्र फोटो आदि

महर्षि दयानन्द रंगीन साइज २०×३०		१)२५
महर्षि दयानन्द एक रंग	,,	१)
गुरु विरजानन्द	,, ,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	,, ,,	१)
महात्मा हंसराज	,, ,,	१)
पं० लेखराम	,, ,,	१)
स्वामी दर्शनानन्द	,, ,,	१)
पं० गुरुदत्त	,, ,,	१)

मोटोज साइज ११×१४

ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम, गायत्री मंत्र, प्रत्येक	)२५
ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रथम मंत्र दीर्घ जीवन की प्रार्थना, धर्मं चर सत्यवद प्रत्येक	)१९

मोटोज साइज १४×२२

यम नियम-तथा ऋग्वेद के अंतिम सूक्त प्रत्येक	)३१
महर्षि दयानन्द जीवन घटना साइज१५×२०	)५०
महर्षि की महत्ता अरविन्दघोष ,, २०×३०	)५०

आपकी लाइब्रेरी के लिए आवश्यक पुस्तकें

वैदिक गृहस्थाश्रम

[लेखक—प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार]

स्वामी वेदानन्द जी ने पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है "वैदिक सुक्तों के प्राय: ४०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्राय सभी कर्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य सजिल्द ५)।

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

[ले०—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषग रत्न]

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किया गया है। दैनिक शारीरिक शिकायतों की रोग और चिकित्सा पर प्रामाणिक पुस्तक।

मूल्य २)

विवाह और विवाहित जीवन

[लेखक—श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय]

आधुनिकता के रंग में रंगा हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटकता रहा है। उसे प्रकाश दिखाने के लिए तथा विवाह सम्बन्धी सभी पहलुओं का दिग्दर्शन कराने के लिए ही पुस्तक रची गई है।

मूल्य २॥) मात्र

ऋषि गाथा महाकाव्य

[लेखक—विमलचन्द्र शर्मा विमलेश]

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि का काव्य-मय जीवन चरित्र। महात्मा आनन्द स्वामी जी लिखते हैं। "श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है। और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है।" पुस्तक का मूल्य ६) है प्रचारार्थ घटाकर ४) कर दिया गया है।

आर्ष योग प्रदीपिका

[लेखक—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक]

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं उस पर प्रामाणिक व्यास भाष्य का हिन्दी भाष्य किया गया है। योग दर्शन के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर आधारित होने से ही इस ग्रन्थ का नाम आर्षयोग प्रदीपिका रखा गया है।

२७५ पृष्ठ मूल्य ३॥)

महाभारतम्

थोड़ी बहुत संस्कृत जानने वालों के लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तक। आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री अध्यक्ष दयानन्द उपदेशक विद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य ३) से घटाकर २) कर दिया गया है।

वेद प्रकाश के कुछ पुराने विशेषांक

रियायत। मूल्य में (डाक खर्च अलग)

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	(२० ग्रंथों का संकलन)	४॥)	रियायती ४)
सृष्टि का इतिहास	(पं० लेखराम कृत)	२)	,, १॥)
महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत	(मास्टर आत्माराम अमृतसरी)	२)	,, १॥)
गुरुदत्त लेखावलि	(पं० गुरुदत्त विद्यार्थी)	२)	,, १॥)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	(स्वामी ब्रह्ममुनि)	३)	,, २)
वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला	(स्वामी नित्यानन्द)	२)	,, १॥)

श्रावणी पर प्रचारार्थ विद्वानों लिखे ट्रैक्ट मंगावें

प्रत्येक का मूल्य -) सैकड़ा ४)

१ मनुष्य बन
२ गायत्रीमाता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक नास्तिक सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ मनुष्य के कर्तव्य
३० भजन सत्संग
३१ वर्ण व्यवस्था
३२ ब्रह्मण समाज मूर्ति पूजा
३३ विद्यार्थी और सदाचार
३४ सत्य की खोज
३५ जिज्ञासु के छः प्रश्न
३६ तुलसी कृत रामायण और आर्य समाज
३७ श्राद्धमीमांसा
३८ दयानन्द की महानता
३९ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
४० हम आर्य क्यों बनें ?
४१ वैदिक देवता रहस्य
४२ धूम्रपान
४३ सच्ची पूजा
४४ कर्म व्यवस्था
४५ शिक्षा का उद्देश्य
४६ चाय भयंकर विष
४७ बुद्धि प्रखर कैसे हो
४८ ब्रह्मचर्य
४९ चरित्र निर्माण
५० ईश्वरावतार
५१ सामाजिक व्यवहार
५२ सत्य की महिमा
५३ क्या वेद में मृतक श्राद्ध है ?
५४ ईसाइयों का भयंकर षडयन्त्र
५५ वैदिक काल में तोप बन्दूक
५६ कुछ करो कुछ बनो
५७ देवताओं की कहानी
५८ श्रेय और प्रेय
५९ आर्य समाज किस ओर
६० हमारे घर
६१ पतिव्रत धर्म
६२ जीवन की समस्याओं का समाधान
६३ वैदिक धर्म ही क्यों
६४ कृण्वन्तो स्वयंमार्यम
६५ भक्तिवाद की रूप रेखा
६६ वैदिक भक्तिवाद
६७ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
६८ ईश्वरोपासक दयानन्द
६९ आ. स. की उन्नति का साधन
७० वेद ज्ञान
७१ मुर्दा क्यों जलावें
७२ कर्मयोगी कृष्ण
७३ स्वामी दयानन्द का लक्ष्य
७४ स्वामी दयानन्द का उद्देश्य
७५ झांसी वाली रानी
७६ मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७७ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७८ नास्तिकों को सन्देश
७९ यज्ञोपवीत का महत्व
८० सूर्य और चन्द्र ग्रहण
८१ वेदों की आवश्यकता
८२ षड शास्त्रों की उत्पत्ति क्रम
८३ वैदिकधर्म सब मतों का केन्द्र
८४ वेद किस पर प्रकट हुए
८५ क्या वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को नहीं
८६ रामायण कथा रहस्य
८७ क्या हम आर्य हैं ?

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

चारों वेदों से सौ-सौ जीवनोपयोगी मन्त्रों का संकलन

ऋग्वेद शतकम् सामवेद शतकम

यजुर्वेद शतकम् अथर्ववेद शतकम्

संकलनकर्ता:—श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति

अनेक सम्मतियों में से कुछ सम्मतियां

डा० सर राधाकृष्णन:—They are valuable and I hope they will be read widely.

श्री के० एम० मुन्शी:—इससे वैदिक प्रचार शृंखला में नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिए शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर:—The extracts from the four vedas are select ones, appro te and useful to the Present generation, to give them an insight into our ancient lore.

दैनिक हिन्दुस्तान:—प्रत्येक वेद से अलग अलग चुने हुए सौ सौ मन्त्रों को संकलन किया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय है।

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ:—शतक अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुए हैं। वस्तुत: ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री:—वेदों के सौ-सौ मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने प्रकाशित की हैं मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है।

प्रत्येक का मूल्य १), चारों का ४) चारों पर डाकखर्च १) लगता है।

प्रार्थनामंत्र

लेखक—श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार

प्रार्थना के आठ मन्त्रों की सरल सुबोध विद्वता पूर्ण व्याख्या।

पांच रंगों के आकर्षक आवरण में बढ़िया कागज पर छपी १४० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १) मात्र। उपहार भेंट आदि में देने योग्य एक मात्र पुस्तक।

प्राप्ति स्थान:—गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, दिल्ली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती वाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
टयूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीवाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥।)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेद

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
प्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

सितम्बर	१९६२
भाद्रपद	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	२

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

सूचना

जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है उनके अंक पर चन्दा समाप्ति की मोहर लगी है। कृपया ३) वार्षिक मूल्य भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या जो कि पते के साथ लिखी रहती है अवश्य लिखें। पत्र व्यवहार में भी संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। —व्यवस्थापक

वेदप्रचार की आज्ञा

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवाः अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥
॥ १ । ४० । ६ ॥

अर्थ—(देवाः) हे भद्र पुरुषो ! (विदथेषु) यज्ञादि शुभ कर्मों में (तम्+इत्) उसी (शम्भुवम्) सुखकारी (अनेहसम्) दोषरहित (मन्त्रम्) माननीय वेदमन्त्र को (वोचेम) कहें, सुनें, सुनावें। (नरः) हे मनुष्यो ! (इमाम्+च+वाचम्) इस ईश्वरीय कल्याणी वाणी को (प्रतिहर्यथ) यदि आप सदैव कामना करो, तो (विश्वा+इत्) सब ही (वामाः) मननीय, माननीय, पदार्थ (वः) आप लोगों को (अश्नवत्) प्राप्त होंगे।

आशय—हे मनुष्यो ! यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो सकल शुभ कर्मों में वैदिक मन्त्रों का शुद्ध और पवित्र उच्चारण करें और सर्वत्र इसका प्रचार कर यशोभागी बनें। वेद के विस्तार से ही आपको शुद्ध सत्ययुक्तवाणी प्राप्त होगी क्योंकि वेद सर्वथा मिथ्याभाषण और मिथ्याचिन्तन से आने उपदेश को रोकते रहते हैं। जो मिथ्याभाषण और छलकपटादि से युक्त और ईश्वरविमुख हैं, वे ही वेद में राक्षस शब्द से पुकारे गये हैं और वे दण्डनीय समझे जाते हैं।

आपकी लाइब्रेरी के लिए आवश्यक पुस्तकें

वैदिक गृहस्थाश्रम

[लेखक—प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार]

स्वामी वेदानन्द जी ने पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है "वैदिक सुक्तों के प्राय: ४०० मन्त्रों की शृंखलाबद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्राय सभी कर्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। पृष्ठ संख्या ४०० मूल्य सजिल्द ५)।

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

[ले०—श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषग रत्न]

इस पुस्तक में स्त्री और पुरुषों के जीवन के लिए सब उपयोगी पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किया गया है। दैनिक शारीरिक शिकायतों की रोग और चिकित्सा पर प्रामाणिक पुस्तक।

मूल्य २)

विवाह और विवाहित जीवन

[लेखक—श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय]

आधुनिकता के रंग में रंगा हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटकता रहा है। उसे प्रकाश दिखाने के लिए तथा विवाह सम्बन्धी सभी पहलुओं का दिग्दर्शन कराने के लिए ही पुस्तक रची गई है।

मूल्य २॥) मात्र

ऋषि गाथा महाकाव्य

[लेखक—विमलचन्द्र शर्मा विमलेश]

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि का काव्यमय जीवन चरित्र। महात्मा आनन्द स्वामी जी लिखते हैं। "श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है। और ऋषि दयानन्द जैसे उदात्त महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है।" पुस्तक का मूल्य ६) है प्रचारार्थ घटाकर ४) कर दिया गया है।

आर्ष योग प्रदीपिका

[लेखक—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक]

इस भाष्य में पातञ्जलि ऋषि के सूत्रों एवं उस पर प्रामाणिक व्यास भाष्य का हिन्दी भाष्य किया गया है। योग दर्शन के सम्बन्ध में केवल ऋषियों के वचनों पर आधारित होने से ही इस ग्रन्थ का नाम आर्षयोग प्रदीपिका रखा गया है।

२७५ पृष्ठ मूल्य ३॥)

महाभारतम्

थोड़ी बहुत संस्कृत जानने वालों के लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तक। आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री अध्यक्ष दयानन्द उपदेशक विद्यालय देहली द्वारा रचित केवल संस्कृत गद्य में मंगाकर संस्कृत में वार्तालाप करना सीखें। मूल्य ३) से घटाकर २) कर दिया गया है।

वेद प्रकाश के कुछ पुराने विशेषांक

रियायती मूल्य में (डाक खर्च अलग)

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	(२० ग्रंथों का संकलन)	४॥)	रियायती ४)
सृष्टि का इतिहास	(पं० लेखराम कृत)	२)	,, १॥)
महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत	(मास्टर आत्माराम अमृतसरी)	२)	,, १॥)
गुरुदत्त लेखावलि	(पं० गुरुदत्त विद्यार्थी)	२)	,, १॥)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	(स्वामी ब्रह्ममुनि)	३)	,, २॥)
वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला	(स्वामी नित्यानन्द)	२)	,, १॥)

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

वशीकरण मंत्र

※ श्री स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक

मधुमन्ये निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमत् भूयासं मधु संदृशः ॥

अथर्व० १ । ३४ । ३ ॥

प्रस्तुत मंत्र चार वाक्यों में विभक्त है। 'मधुमन्मे निक्रमणं' मंत्र का प्रथम वाक्य है। मधुमत् मे निक्रमणं वा मे निक्रमणं मधुमत्'। निक्रमण का अर्थ है निकलना, गति करना, व्यवहार करना। मधुमय का अर्थ है मधु से युक्त, मधु सदृश, मधु जैसा मीठा। सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ हुआ मेरा व्यवहार मधु मय, मिठास,युक्त अर्थात् मीठा हो। दूसरे शब्दों में मेरे व्यवहार में कटुता न हो।

व्यवहार का मिठास सब को प्यारा है, सब को पसन्द है। व्यवहार की कटुता कोई भी पसन्द नहीं करता। अतः मीठा व्यवहार करने वाले के सब प्रशसक होते हैं उससे सब स्नेह करते हैं। कटु व्यवहार करने वाले के लोग विरोधी हो जाते हैं। उससे घृणा करने लगते हैं। मनुष्य का जीवन एकाकी जीवन नहीं है क्योंकि उनका कार्य अकेले-अकेले चल ही नहीं सकता। यदि मनुष्य का कार्य अकेले-अकेले चल सकता तो मनुष्य नगर न बसाता अपितु भेड़ियों और व्याघ्रों की भांति पृथक्-पृथक् रहा करता किन्तु उसका कार्य अकेले-अकेले चलता नहीं अतः, वह मिल जुल कर तथा एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित कर रहना पसन्द करता है अतएव 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है' ऐसा कहा जाता है।

मनुष्य को सामाजिकता तभी प्रशंसनीय है जब उसका व्यवहार मिठास से परिपूर्ण हो, यदि व्यवहार में मिठास नहीं तो सामाजिकता क्या रही? एक दूसरे के पास तो अनेक पशुओं को बांध दिया जाता है परन्तु इससे वह सामाजिक थोड़े ही बन जाते हैं। सामाजिकता तो मिठास युक्त व्यवहार में निहित है। मिठास सामाजिकता की सुई है और कटुता सामाजिकता की कैंची।

जो उधार लेकर देना न जानता हो उसे कौन अच्छा कहेगा। अच्छा तो वह भी नहीं कहलाता जो उधार लेकर दे तो देता है किन्तु नियत समय पर अपने वचन का करके न दे। कइयों की तो इतनी आदत बिगड़ी हुई होती है कि वह लेकर देना नहीं जानते सो बात तो रही एक ओर अपितु और देने वाले के मांगने पर लड़ने मरने को तैयार हो जाते हैं, यह सब व्यवहार की कटुता ही तो है। ऐसे व्यक्ति सर्वदा समाज में हीन दृष्टि से देखे जाते हैं। जो लिया हुआ नियत समय पर पहुंचा देते हैं और यदि परिस्थिति वश कभी नियत समय पर नहीं पहुंचा पाते तो मिलकर परिस्थिति से देने वाले को अवगत करा कर थोड़ी और समय की मांग करते हैं तथा यथा संभव शीघ्र ही देय धन को उस

के स्वामी के पास पहुंचा देते हैं उनका जीवन इस व्यवहारिक मधुमयता के कारण मधुमय बना रहता है। समाज में उनकी प्रतिष्ठा बनी रहती है।

जो व्यक्ति उठते-बैठते, चलते-फिरते चंचलता, असभ्यता और अशिष्टता का प्रदर्शन करता है वह अच्छा आदमी नहीं। जो व्यक्ति प्रत्येक समय शिष्टता, सभ्यता, सौम्यता और गम्भीरता प्रदर्शित करता है वह मधुमयता का प्रसार करता है। उस का यह मीठा व्यवहार देखने वालों को बलात् उस की ओर आकर्षित करता है। सत्य बात तो यह है कि इसी का नाम मानवता है, इससे विपरीत तो पशुत्व ही है। जिस व्यवहार से मानव अन्यों को अपनी ओर आकर्षित कर सके, अपना बना सके वही सामाजिकता है। जिससे परस्पर स्नेह और सद्भाव उत्पन्न हो उसे ही सामाजिकता कहते हैं उससे इतर को नहीं। स्नेह और सद्भावनामय व्यवहार मनुष्य को मनुष्य के निकट लाते हैं परिणाम स्वरूप मेल बढ़ता है। जिससे मेल बढ़े वही मधुमयता है तथा जिससे बिलगाव और विरोध बढ़े वही कटुता है। कटुता में असामाजिकता और मधुमयता में सामाजिकता है अतः वेद के निर्देशानुसार समस्त मानवों को अपने व्यवहारों को मधुमय बनाना चाहिये जिससे मानव समाज मधुमयता से ओत प्रोत हो कर सुखमय जीवन बिता सके।

मंत्र का दूसरा वाक्य है 'मधुमत्ये परायणम्'। मधुमत् मे परायणम् अथवा मे मरायणम् मधुमत्। परायण का अर्थ है दूर जाना अथवा परलोक गमन करना। परलोक गमन भी दूर जाना ही है। जिस का निक्रमण मधुमय होगा उसका परायण अवश्यमेव मधुमय होगा। जिसका निक्रमण ही मधुमय न हो उसका परायण मधुमय कहां से होगा? जो व्यक्ति जीवन भर लोगों से उधार ले लेकर खाता रहा हो और देने का कभी नाम न लिया हो। कभी किसी पडौसी के साथ भी जिसने प्रेम और सद्भावनामय व्यवहार न किया हो। जिसके किसी भी व्यवहार से कभी भी शिष्टता, सभ्यता और गम्भीरता न प्रदर्शित हुई हो भला उस का परायण भी कभी मधुमत हो सकता है। परायण तो मधुमय उसी का होता है जिसने सदैव मधुमयता का व्यवहार किया हो।

ऐसा व्यक्ति जिसने कभी मधुमय व्यवहार न किया हो यदि कभी एक स्थान से दूसरे स्थान को अपनी नौकरी के कारण परिवर्तन हो कर जाने लगे तो उसके साथी और विशेषकर उसके अधीनस्थ कर्मचारी बड़े प्रसन्न होते हैं तथा कहते हैं अच्छा हुआ, इस दुष्ट ने बड़ा तंग कर रखा था, भगवान् फिर कभी इसका मुख न दिखाये। इसी प्रकार का कोई किराये दार जब मकान छोड़ कर जाता हो तो पड़ौसी कहते हैं बड़े दिनों के बाद भगवान् ने सुनी, बड़ा ही दुष्ट था, सभी का नाक में दम कर रखा था इत्यादि। किन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसका जीवन मधुमयता से ओत-प्रोत रहा हो परिवर्तित होकर किसी दूसरे स्थान को जा रहा हो तो लोग स्वागत करके अत्यंत भावपूर्ण विदाई देते हैं। नेत्रों में अश्रु भरे हुए अवरुद्ध कण्ठ से ऐसे लोगों को विदाई के अवसर पर प्रायः विदाई देने वाले कहा करते हैं, अजी क्या पूछिये? देवता है, कभी किसी से बुरा नहीं रहा। क्या उच्चाधिकारी? क्या अधीनस्थ कर्मचारी? सभी के साथ ऐसा प्रेममय, ऐसा मधुमय व्यवहार रखा कि बस……।

लोगों की इच्छा यही होती है कि यह सर्वदा यहीं रहे, हमसे कदापि पृथक् न हो। मानो कोई अपना सगा संबंधी छूट रहा हो। पड़ौस से जब कोई इस प्रकार का किरायेदार मकान छोड़ कर जाने लगे तब भी यही स्थिति होती है। जिन लोगों को इस प्रकार के पड़ौसियों और साथियों को विदा करने का अवसर प्राप्त हुआ है वही जानते हैं उस स्थिति को। जब कोई मधुमय जीवन वाला व्यक्ति इह लोक लीला समाप्त कर संसार से विदा हो रहा हो तो पड़ौसियों पर जो बीतती है उसका वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर की बात है।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

अथर्ववेद का केन सूक्त

※ श्री पं० जगदीशचन्द्र जी दर्शनाचार्य

पंडित जी वेदों और दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। पिछले वेद सप्ताह पर हमें उनकी कथा सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। आर्य समाज में उनके जैसे विद्वान् कम ही हैं जिनके व्याख्यान इतने रोचक सिद्धान्त परक तथा तर्क संगत होते हैं। —सम्पादक

अथर्ववेद के १०वें काण्ड का दूसरा सूक्त 'केन सूक्त' कहलाता है। सूक्त के प्रारम्भिक मन्त्रों में 'केन' शब्द का बार २ प्रयोग होने से ही इस सूक्त को केनसूक्त कहा जाता है। केन का अर्थ है किसने। विचार शील मनुष्य के हृदय में सृष्टि के उद्देश्यों को देखकर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि किस ने इस सृष्टि की रचना की। किसने इस अद्भुत संसार को प्रकट किया। संसार के प्रत्येक पदार्थ को देख कर वह सोचता है कि किसने ये ऊंचे २ पर्वत और ये गहरे समुद्र तथा कल २ करती नदी बनाई। किसने ये चमकने वाले सूर्य चन्द्र और नक्षत्र बनाये। किसने अनेक प्रकार के फूलों फलों से भरे हरे २ वृक्षों को उत्पन्न किया। किसने बीज में वृक्ष और वृक्ष में बीज को स्थापित किया। न केवल यही अपितु प्राणियों की रचना को देखकर और भी अधिक आश्चर्य में भरा होकर सोचने लगता है कि अनेक प्रकार के पशु पक्षी कीट पतंगों की अद्भुत रचना किसने की है। वास्तव में यह जिज्ञासा या जानने की उत्कट अभिलाषा ही है जिस के साधारण से साधारण मनुष्य को जिज्ञासा बना कर आस्तिकता की ओर ले चलती है। जिस के मन में जिज्ञासा का उदय नहीं होता वह कभी ज्ञानी भी नहीं बन सकता और इसी लिये उस को आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान भी नहीं हो सकता।

वेद ने इसी उद्देश्य से जिज्ञासा जागृत करने के लिये मन्त्रों में केन पद का बार २ पुनर्वचन किया है। सूक्त ने अधिक बल शरीर और आत्मा पर दिया है। सूक्त कहता है कि बार २ इस बात का विचार करो कि हमारे शरीर की रचना किसने की शरीर के प्रत्येक अंग पर दृष्टि डालते हुए यह विचार करो कि इस अंग को इस स्थान पर किस ने लगाया। प्रत्येक अंग के कार्य और बनावट पृथक है परन्तु फिर भी ये अंग अपने भेद भाव को भुला कर अपना २ कार्य याथातथ्य रूप से परस्पर साहचर्य पूर्वक कर रहे हैं।

विचार करने का उपक्रम अथवा जिज्ञासा का आरम्भ 'एडी' से किया गया है और धीरे २ चोटी तक पहुंच कर जिज्ञासा का क्षेत्र दिखाया गया है, वैसे भी एडी से लेकर चोटी तक का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

अब आप मन्त्रों पर विचार कीजिये और जिज्ञासा को जागृत कीजिये।

(पहला मन्त्र)

केन पाष्णीं आभृते पुरुषस्य
केन मांसं सम्भृतं केन गुल्फौ।
केनांगुलीः पेशनीः केन खानि
केनोच्छ्लंखौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥

(१) **पुरुषस्य पाष्णीं केन आभृते**—इस शरीर रूपी पुरी में बसने वाले पुरुष के शरीर में पाष्णीं अर्थात दोनों पांवों की एडियें किसने स्थापित कर दीं।

(२) **केन मांसं सम्भृतम्**—किसने एडियों में मांस भर दिया। जब हम चलते हैं तो शरीर का सारा भार पैरों पर पडता है। पैर के तीन विभाग हैं, एक पैर का अगला भाग, दूसरा तलवा। तीसरा एडी. तीनों की बनावट पृथक २ है और कार्य सब का समान है—शरीर को सम्भाल कर चलना, तीनों भागों में विशेष मात्रा में मांस भरा गया है। एडी की हड्डी के नीचे मांस की गद्दी जमाई हुई है। यदि यह अस्थि मांस से सज्जित न होती तो मनुष्यों के पांव का सौन्दर्य न रहता। चलने में भी बड़ी भारी असुविधा होती, पशुओं के खुरों के समान हमारी एडी का भी वैसा ही आकार प्रकार होता। तब पैर के अगले भाग की आवश्यकता न रहती, परन्तु अगले भाग का उपयोगिता भी इसी लिये अत्यधिक

है कि उस के बिना मनुष्य के शरीर का सन्तुलन विशेषतः चलते और भागते समय कदापि न रह सकता। अगले भाग की उपयोगिता पर विचार किया जावे तो यह भी मानना पडेगा कि उस के बिना लेटने उठने और बैठने में भी महान् कष्ट और भारी असुविधा होती। पशुओं के चार पैर हैं अतः उन के पैरों में केवल एडी स्थानीय खुर ही बनाये जिस से उन के उठने तथा चलने फिरने में कोई असुविधा नहीं होती परन्तु मनुष्य के पैर की बनावट ऐसे ढंग से बनी हुई है कि जो काम पशु चार पैरों से करता है वही कार्य मनुष्य दो पैरों से कर सकता है। देखा और विचारा जावे तो पता लगेगा कि इसका कारण एडी और तलवों में मांस की गद्दी जमाना तथा अगले भाग का यथोचितरूप में आगे बढ़ाकर मांस से सज्जित करना ही है।

अब प्रश्न यह है कि एडी और पांव के तलवे तथा अगले भाग का इस प्रकार उद्देश्य की पूर्ति के लिए निश्चित होना-क्या यह रचना अपने आप हो गई है अथवा किसी कलाकार ने अत्यन्त सोच विचार के अनन्तर की है। यह कहना ऐसी अद्भुत रचना अपने आप हो गई है—यह तो बुद्धि हीनों की कल्पना है क्योंकि संसार में एक भी रचना नहीं है जिस को देखने से कला की प्रतीत होती हो और वह अपने आप हो गई हो। Purposism या आयोजनवाद का सिद्धान्त है कि जिस पदार्थ से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हो वह किसी विचार शील की कृति होती है—जैसे मकान और उद्यान आदि मकान और उद्यान से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति होती है। उन को देखकर कोई यह नही कह सकता कि मकान अपने आप बन गया अथवा अनेक प्रकार के पत्र पुष्प और फलों वाले वृक्षों से भरा हुआ उद्यान न अपने आप बन गया। अतः जैसे मकान और उद्यान आदि को देखकर यह मानना पडता है कि इन को किसी बुद्धिमान ने बनाया है वैसे ही पांव की बनावट को देखकर यह स्वीकार करना पडता है कि इस को भी किसी ने अवश्य बनाया है।

तो क्या अपने पांव की या पैर की एडी को आप आपने स्वयम् बनाया है? कहना होगा हम ने नहीं बनाया—हम को बना बनाया मिला है। तो फिर किस ने बनाया? क्या माता पिता ने बनाया है? नहीं, उन्होंने भी नहीं बनाया क्योंकि उन को इस विषय का ज्ञान नहीं कि यह चीज इतने सौन्दर्य से कैसे बनाई जाती है। तो फिर सोचिये कि यह पैर की सुन्दर एडी किसने बनाई और उस में मांस की गद्दी उचित परिमाण में किसने जमाई। यह भी सोचिये पैर के तलवे और अगला भाग किस ने बनाया।

(३) **केन पुरुषस्य गुल्फौ आभृते**—मनुष्य के पैरों के टकने किसने ठीक प्रकार से बना कर जोड दिये।

टांगों और पैरों के मध्य में टखनों को रख कर इस प्रकार से जोडा गया है कि चलने फिरने और उठाने बैठने मे पैरो को आगे पीछे तथा ऊपर नीचे करने में बडी भारी सुविधा रहती है। यदि इन की बनावट में किञ्चिन्मात्र भी भूल हो जाती तो बना बनाया काम बिगड जाता। यह भी सोचो की इन गुल्फों की ऐसी अद्भुत भाव भी रचना किसने की है।

(४) **केन पूरुषस्य पेशनीः अंगुलीः आभृते**—मनुष्य की सुन्दर-सुन्दर अंगुलियों को किसने बनाया है। कलाकार को कला देखो कि हाथों और पैरों की अंगुलियों के बनाने में कितनी बुद्धिमत्ता से काम लिया है। अंगुली २ में अन्तर है—यद्यपि प्रत्येक हाथ और पैर में पांच २ अंगुलियें हैं तथापि प्रत्येक अंगुली का आकार प्रकार पृथक् २ है। हाथ के अंगूठे और पैर के अंगूठे की तुलना कीजिये। हाथ की अंगुलियों और पैर की अंगुलियों की तुलना कीजिये। तुलना करने से पता लगता है कि हाथ के कार्य क्षेत्र में कार्य करने के लिये ऐसे ही अगूठे और अंगुलियों की और पैरों के कार्य क्षेत्र के लिये अन्य प्रकार के अंगूठे और अंगुलियों की आवश्यकता थी। हाथ के अंगूठे और अंगुलियों के परस्पर अन्तर

को देखने से प्रतीत होता है कि इनको रचना करने वाला जहां गणितज्ञ है वहां व्यवहारिक विज्ञान का भी महान् विद्वान् है, हाथ की अंगुलियें समय पड़ने पर परस्पर भेद भाव का परित्याग कर मुख में ग्रास देने के लिये चमचे का स्वरूप धारण कर लेती हैं। यदि विपत्ति आ पड़े तो ये सब मिल कर लाठी या शस्त्र को पकड़ कर प्रहार करने में सहायता देती हैं या मुठ्ठी और मुक्का बन कर रक्षा करती हैं, यदि कान या नाक से कुछ निकालना हो तो जिस अंगुली से चाहें आप काम ले सकते हैं। शरीर के किसी अंग को खुजलाना चाहें तो अंगुलियें आपकी सेवा के लिये उद्यत रहती हैं, किमधिकम्, इन हाथों की अंगुलियों की विविध बनावट के कारण ही अनेक प्रकार के शिल्पों का आविष्कार हुआ है—वस्त्र बुनना, लेख लिखना, वस्त्र रंगना, मकान बनाना, भूषण बनाना, लोहे लकड़ी के काम बनाना और भोजन बनाना आदि सब काम इन अगुलियों के प्रताप और प्रभाव से ही सिद्ध होता है। यदि हाथ की अंगुलियों की ऐसी बनावट न होती तो मनुष्य के ये जीवनोपयोगी कार्य भी सिद्ध न हो पाते, पैर की अंगुलियों में ये बातें नहीं हैं, वे खाने, पकड़ने और पकाने तथा शिल्प कला के अन्य कामों के लिये मुख्य साधक न होते हुए भी केवल चलने-फिरने आदि में ही परम सहायक हैं।

यह भी सोचिये कि प्रत्येक अंगुली के ऊपर वाले भाग पर मांस का पतला परदा लगाया गया है और निचले भाग में मांस का मोटा परदा रखा गया है। प्रत्येक अंगुली के ऊपर अग्रभाग में नख लगाये गये है और प्रत्येक अंगुली तीन २ जोडों से जोडी गई है। नखों को देखने से रक्त की गति और शक्ति का ज्ञान होता है और पता लगता है कि शरीर में रक्त की मात्रा आवश्यकता से अधिक है या स्वल्प है, यदि अंगुलियों में जोड न होते तो अंगुलियें मुड न सकती और न मुडने से महान् अन्तराय उपस्थित हो जाता-भोजन करना भी सम्भव न हो सकता किसी वस्तु को पकडना भी असम्भव हो जाता और किसी भी प्रकार का शिल्प कला का प्रकाश न हो सकता।

अतः यह भी सोचो कि इन सुन्दर अंगुलियों को किसने ऐसा उपयोगी बनाया।

(५) केन खानि—ये आंख, नाक, कान, मुख और मलमूत्र के छिद्र किसने बनाये। हमारे शरीर में दो आंखें सब से ऊपर लगी हैं। इन आंखों के छिद्रों अर्थात सूक्ष्म परदों के द्वारा बाह्य दृश्यों का स्वरूप प्रतिबिम्ब रूप में अन्तः करण तक पहुंचता है जिस से हम को पता लगता है कि सामने क्या वस्तु है यदि आंखों में यह सूक्ष्म छिद्र न हो तो हम को किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष न होता, इसी प्रकार नाक के दोनों छिद्रों से सूंघने से सुगन्ध का ज्ञान होता है तथा शरीर को जीवन दान देने वाले प्राण अपान का कार्य होता है। यदि नाक के छिद्र न होते तो हम को सुगन्ध का ज्ञान न होता और जीवन के लिये श्वास प्रश्वास भी न ले सकते तब जीवन कैसे चलता। अब कानों के छिद्रों को देखो इन छिद्रों के द्वारा हम बाहर के अच्छे बुरे शब्दों को सुन सकते हैं। इन के न होने पर हम बहिरे रहते और एक दूसरे की बात को समझ न सकते। मुख का छिद्र न होता तो खाना पीना असम्भव होता। तब मलमूत्र के छिद्र की कोई आवश्यकता न थी, यदि मुख का छिद्र होता और खाने पीने का कार्यक्रम चालु रहता परन्तु-मलमूत्र के निकलने का निकास न होता तो भी जीवन नहीं रह सकता था। इसी प्रकार रोम २ के छिद्र बना कर प्रस्वेद के निकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया अत एक जीवन सुखमय बन गया।

अब फिर सोचिये कि शरीर में इन मुख आदि छिद्रों को बना कर जीवन को सुखमय किसने बना दिया।

(६) केन उच्छ्रलंखौ—किस ने दोनों घुटने बनाये। टांगों की दोनों लम्बी अस्थियों के बीच में घुटनों की रचना हुई है। इन की बनावट को देखने से पता

लगता है कि यदि यह संधि स्थान न होते तो क्लेश सहन करना पडता। खडे हैं तो लेट न सकते लेटे हैं तो बैठ न सकते, और लेटे से उठना तो महान् कठिन हो जाता है तथा भाग कर प्राण रक्षा करना तो सर्वथा असम्भव होता। यह गोडों का ही प्रताप है कि उठ सकते हैं बैठ सकते हैं और उछल-कूद कर छलांग लगा सकते तथा भाग दौड कर अनेक प्रकार के खेल खेल सकते और प्राण रक्षा कर सकते हैं।

अतः यह भी विचार करो कि घुटनों को इतना उपयोगी किस ने बनाया।

(७) **मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्**—टखने और गोडे के मध्य में लम्बी अस्थि को प्रतिष्ठा स्वरूप किस ने बनाया।

नीचे टखने या गिट्टे हैं और ऊपर गोडे हैं। इन दोनों जोड़ों के बीच लम्बी अस्थि है जिस के दोनों सिरों पर ये दोनों जोड़ हैं। यदि मध्य में यह अस्थि न होती तो इन जोड़ों की आवश्यकता भी न रहती और मनुष्य का मध्य भाग भी प्रतिष्ठित न रह सकता। उठने बैठने आदि की कठिनाई भी बड़े भयंकर रूप में सामने आती। इस अस्थि को अधिकाधिक उपयोगी और कार्यकारी बनाने के लिये इसके मध्य भाग में मांस की पिंडली बना दी जिस से अस्थि का सौन्दर्य भी बढ़ गया और पैरों का संचालन करने के लिये नस नाड़ियों का संस्थान भी सुरक्षित हो गया।

सोचिये, इस प्रतिष्ठा स्वरूप अस्थि की सौन्दर्य-मयी कल्याणकारिणी रचना किसने की है। इस मन्त्र में इन छः प्रश्नों की ओर आवश्यक ध्यान दिलाया गया है। इन पर गम्भीर विचार कीजिये और अद्भुत कलाकार परमेश्वर की विचित्र कला का दर्शन कीजिये और जिज्ञासा को जागृत करते हुए अपने अन्तः करण से बार २ पूछते कि शरीर के एडी से चोटी तक अंगों प्रत्यंगों को इतनी बुद्धि-मता और कुशलता से किस ने बनाया है। और यदि कोई नास्तिक मिल जावे तो उस के आगे भी यह प्रश्न रख दीजिये कि आप के शरीर के अंगों की यह सुन्दर रचना किस ने की है—आपने अपने आप की है या किसी अन्य ने की है। माना पड़ेगा कि न आपने स्वयं की है न मानना पिता ने की है और न ही स्वतः अपने आप हो गई है—किन्तु सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ही अद्भुत कृति है।

[शेष पृष्ठ २ का]

मंत्र का तीसरा वाक्य है 'वाचा वदामि मधु-मत्' वाचा मधुमत् वदामि, वाणी से मधुमय (मीठा) बोलता हुं, वाणी से मीठा बोलूं। वाणी के मिठास का बड़ा महत्व है। कोई कितने भी मधुमय व्यवहार वाला व्यक्ति हो जहां वाणी से कटु बोला और बस सारे किये किराये पर पानी फिर गया। वाणी की कटुता अपनों को भी पराया बना देती है। वाणी की मधुरता परायों को भी अपना बना लेती है।

काग का को धन हरे कोयल का को देय।
मीठे वचन सुनाय कर जग अपनो कर लेय॥

कोयल और कौवे वाणी में के अतिरिक्त और अन्तर ही क्या है। गोस्वामी तुलसी दास जी के शब्दों में तो,

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण एक मन्त्र है तजि दे वचन कठोर॥

मीठा बोलना मात्र ही वशीकरण है किन्तु वेद तो वाणी की मधुरता के साथ-साथ व्यवहार की मधुरता का प्रतिपादन करता है इसीलिए हम इस मंत्र को वशीकरण मंत्र कहते हैं। यदि वाणी की मधुरता के साथ व्यवहार की मधुरता भी हो तो 'स्वर्ण में सुगंध' वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो जाय।

मंत्र के अन्तिम वाक्य में कहा गया है 'भूयासं मधु सदृशः' मधु संदृशः भूयासं, (अहं) मधु सदृशः भूयास, मैं मधु के समान दिखाई देने वाला हो जाऊँ अर्थात् मेरे जीवन में लेश मात्र भी कटुता न रहे, मेरा जीवन सर्वाङ्गरूपेण मधु जैसा अर्थात् मधुरता पूर्ण हो जाय।

कन्या-दान
और
उसके घर का खान पान

❀ श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती

वर्तमान हिन्दु समाज में अनेक शताब्दियों से यह विचार घर किये हुए हैं कि विवाहोपरान्त बेटी के घर का अन्न-जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसी धारणा के कारण अनेक स्त्री पुरुष अपनी पुत्री के यहां किसी कार्य वश जाते हैं तो उसके घर भोजन न करके इधर उधर किसी अन्य स्थान से ही अपनी आवश्यकता पूरी करते हैं। ऐसा आचरण जन साधारण से लेकर सुयोग्य विद्वानों तक सभी करते आ रहे हैं। अभी द्वि० ज्येष्ट शु० १४-२०१८ के दिन एक ऐसे ही योग्य विद्वान् श्री पं० केदारनाथ जी पुरोहित आर्य समाज बुढ़ाना द्वार मेरठ नगर के साथ इस विषय पर लगभग एक घण्टा तक मेरी बातें हुईं। उक्त पण्डित जी भी इसी मत के हैं कि कन्या के घर का अन्न-जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। आपने अपने पक्ष में केवल यही एक हेतु दिया कि जब कन्या का दान हो चुका तो फिर उसके घर का अन्न-जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। क्यों कि दान दी गई वस्तु का उपयोग करने का अधिकार दान दाता को नहीं होता। घण्टा भर की चर्चा के पश्चात् श्री पुरोहित जी चले गये और यह विषय बीच में ही लटकता रह गया। अतः इस लघु लेख में इसी विषय पर सप्रमाण विचार किया जायगा, ताकि यह आवश्यक विषय अधूरा न रहे। पाठक इसे ध्यान पूर्वक पढ़ें और निर्दिष्ट शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर इसके औचित्य अनौचित्य का निर्णय स्वयं करें।

दान का अर्थ है "स्वत्वनिवृत्ति पूर्वक हि पर स्वत्वापादनं दानम्" अर्थात् देय वस्तु पर अपना अधिकार त्याग कर उसे दूसरे के अधिकार में दे देना। तो प्रश्न होता है कि क्या कन्या भी इसी प्रकार स्वत्व निवृत्ति पूर्वक दूसरे के अधिकार में दे दी जाती है। इसका उत्तर है अन्य पदार्थों की भांति कन्या दान का स्वरूप स्वत्त्व निवृत्ति पूर्वक पर स्वत्त्वापादन नहीं है। क्योंकि कन्यादान के पश्चात् भी न तो स्वत्त्व निवृत्ति ही होती है, और न ही गाय, बैल की तरह कन्या ऐसी चल सम्पत्ति है, जिसका इस प्रकार दान किया जा सके। यदि कन्या दान के पश्चात् स्वत्व निवृत्ति हो जाती हो तो फिर लोक में मेरी पुत्री, मेरी बहिन, मेरी भतीजी, मेरी बुआ, मेरी धेवता, मेरी भानजी आदि व्यवहार कन्या के विषय में लुप्त हो जाना चाहिये। क्योंकि विवाह में कन्या दान के उपरान्त उस पर स्वत्त्व रहा नहीं अतः उसके साथ यह व्यवहार भी नहीं बन सकता। जैसा कि गो वृषादि के विषय में लोक में देखने में आता है। परन्तु कन्या विषयक यह व्यवहार उसके जीवन के अन्तिम क्षण तक चलता है।

पित्रा प्रत्तामादाय०। पारस्कर गृह्य सूत्र १-४-१६ पर भाष्य करते हुये प्रसिद्ध पण्डित गदाधर मिश्र लिखते हैं कि "स्वत्त्व त्याग पूर्वकं हि पर स्वत्त्वपादनं दानम्। न च कन्या कथंचिदप्यस्व कन्या कर्त्तुं शक्यते, नापि परस्य कन्या भवति विवाहोत्तरमपि ममेयं कन्येत्यभिधानात्। अत्र गौणो ददातिः। अर्थात् स्वत्त्व त्याग पूर्वक पर स्वत्त्वापादन दान है। परन्तु स्वकन्या किसी भी प्रकार से स्व कन्या न रहे ऐसा नहीं किया जा सकता और न ही कन्या दूसरे की हो जाती है, अतः विवाहोपरान्त भी "यह मेरी कन्या है" इस कथन से। इसलिये यहां विवाह संस्कार में कन्या के लिये दान शब्द का गौण प्रयोग जानना चाहिये। इससे यह सिद्ध

होता है कि अन्य वस्तुओं की भांति कन्या का दान नहीं होता। क्यों कि सन्तान के दान क्रय तथा विक्रय का शास्त्र निषेध करता है।

यथा–दानं क्रय धर्माश्चाऽपत्यस्य न विद्यते ॥

आपस्तम्ब ध० सू० ६।१३।१०॥

इस पर श्री पं० हरदत्त मिश्र उज्जवला टीका में लिखते हैं कि 'विश्व जिति च सर्वस्व दाने गवादि वदपत्यं न देयमिति,' अर्थात् विश्व जित् यज्ञ में यजमान सर्वस्व दान करते समय गो वृषादि वत् अपनी सन्तान-पुत्र एवं पुत्रियों को दान न करे कारण कि सन्तान का दान क्रय और विक्रय नहीं होता। प्रश्न होता है कि स्मृतियों में पुत्र का दान विवित है फिर कैसे कहते हो कि सन्तान का दान नहीं होता! इस पर गजाधर जी फिर लिखते हैं कि "यत्त स्मृतिषु पुत्र दान चोद्यते तत्रापि गौणो ददातिः, पितुरिव परस्यापि पिण्डदानं रिक्थ भावत्वञ्च भवतीत्यर्थः" अर्थात् स्मृत्तियों में जो पुत्र दान का विधान है वहां भी दान शब्द का गौण रूप से प्रयोग है। इससे बालक पिता के समान ही दूसरे की भी भोजनादि से सेवा करने का और उसकी सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है। वहां भी पुत्र का स्वत्त्वनिवृत्ति पूर्वक दानं का विधान नहीं है।

अतः कन्या दान के विषय में जहां कहीं कुछ लिख गया है वह गौण और कन्या को प्रशंसा मात्र समझना चाहिये। ऐसी दशा में यह निः संकोच कहा जा सकता है कि कन्या के साथ दान शब्द सर्वत्र अपने मुख्यार्थ में ही प्रयुक्त नहीं होता। मनुस्मृति में ब्राह्म, दैव आर्ष और प्राजापत्य विवाह में कन्या के साथ प्रयुक्त दान शब्द उसके भरण पोषण तथा उसकी मान मर्यादा की रक्षार्थ दायित्व सौंपने एवं सत्यभाव से परस्पर मिल कर गृहस्थाश्रम में रहते हुये धर्माचरण पूर्वक धनोपार्जन कर उसका उपभोग करने तथा प्रजोत्पादन की अनुमति देने के अर्थ में ही आया है। जैसा कि वैखानस गृह्य सूत्र में पढ़े गये ब्राह्मादि विवाहों के संकल्प से स्पष्ट होता है।

अस्य सह धर्म चारिणी भवतीति ब्राह्मे विवाहे। धर्म प्रजा सम्पत्यर्थम् । यज्ञापत्यर्थम् । ब्रह्म देवर्षि पितृ तृप्त्यर्थं प्रजा सहत्व कर्मभ्यो, ददामीति उदकेन तां दद्यात् ॥ ३। २ ॥

अन्वयार्थ—ब्राह्म विवाह में यज्ञानुष्ठानादि धर्माचरण प्रजोत्पादन और गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिये, दैव में धर्माचरण प्रजोत्पादन एवं धनोपार्जनादि गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिये, आर्ष में यज्ञानुष्ठानादि पुण्य कर्म सन्तानोत्पत्ति तथा गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिये, प्राजापत्य में ब्रह्म यज्ञादि के अनुष्ठान देव ऋषि और पितर जनो को सेवा सुश्रूषा सन्तानोत्पत्ति तथा गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिये धर्मपत्नी के रूप में मैं अपनी पुत्री आपको सौंपता हूँ ऐसा कहकर उदक प्रदान पूर्वक कन्या वर को सौंपे।

उपरोक्त सन्दर्भ से यह सिद्ध होता है कि पत्नी पति को दान में प्राप्त सम्पत्ति नहीं होती अपितु गृहस्थाश्रम के गुरुतर कार्यों के सम्पादन में मनुष्य का विश्वास प्राप्त सखा होती है। सर्वत्र ऐसा ही वर्णन मिलता है। यथा—

सखे सप्त पदी भव ॥ पारस्कर गृ० सू० १।८।
भार्या श्रेष्ठतमः सखा ॥ महाभारत शा० प०
यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम।
यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदय तव ॥ मं. ब्रा. १।३।९
सखा सप्तदी भव सख्यं ते गमेयम् ॥ म. ब्रा. १।२।१३

महर्षि पारस्कर जी ने सप्तपदी क्रिया की समाप्ति सखा भाव की प्राप्ति के साथ की है। महाभारत भार्या को श्रेष्ठ तम सखा बतलाता हैं। मन्त्र ब्राह्मण मित्रता का परिणाम स्वरूप दोनों के हृदयों की एकता का प्रतिपादन करता है। अन्तिम ब्राह्मण वचन में वर प्रार्थना करता है कि हे कन्य! सप्तपदी के मन्त्रों में वर्णित प्रयोजनों (पदार्थों) की सिद्धि के लिये तू मेरी सखा (मित्र) बन। सर्वव्यापकेश्वर की कृपा से मैं तेरा सखा (मित्र) बनता हूँ।

इन सन्दर्भों से कन्यादान का अभिप्राय स्पष्ट रुपेण समझ में आ जाता है कि कन्या स्वत्त्व निवृत्ति पूर्वक गो वृषादिवत् या दास दासीवत् वर को नहीं दी जाती अपितु गृहस्थाश्रम में एक अत्यन्त विश्वसनीय मित्र के रूप में वर को सौंपी जाती है। यही कन्या दान का अभिप्राय है। विश्वसनीय मित्र होने के कारण ही पति अपने घर का सर्वस्व निश्चिन्त होकर पत्नी को सौंप देता है और साथ ही उसे अपने गृहरूपी राज्य की महाराणी घोषित करता है यथा—

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥ ऋ० ॥

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज कृत पदार्थ—हे वरानने ! तू (श्वसुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वसुर है उसमें प्रीति करके (सम्राज्ञी भव) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जो तेरी सासु है उसमें प्रेम युक्त होके उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी भव) सम्यक् प्रकाशमान रह कर (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तेरी ननद है उसमें भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उनमें भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि भव) अधिकार युक्त हो (अर्थात्) सबसे अविरोध पूर्वक प्रीति से वर्त्ता कर।

इस ऋग्वचन से भी यही सिद्ध होता है कि कन्यादान का अर्थ स्वत्त्व निवृत्तपूर्वक पर स्वत्त्वापादन नहीं है और न ही कन्यादान में प्राप्त पदार्थ विशेष है। कन्या-दान का अभिप्राय व्यक्त करते हुए आचार्य शौनक कहते हैं कि—

कन्यां सहत्त्व कर्मभ्यः करोति प्रदिपादनम् ॥

अर्थात् परस्पर मिलकर प्रजोत्पादन और श्रौत तथा स्मार्त्त कर्मों का अनुष्ठान करने के लिए पिता अपनी पुत्री वर के सुपुर्द करता है। यही बात कुछ शब्दों में हेर फेर से लौगाक्षि स्मृति में कही गई है कि—

प्रजा सहत्त्व कर्मभ्य इत्येव प्रतिपादयेत् ॥
प्रतिपादयामीति वदन् धर्मे चार्थे च तत्परम्।
कामेनाभिचरितव्येति कर्त्ता वरमुदीरयेत्

प्रजोत्पादन और धर्म अर्थ तथा काम की सिद्धि के लिये आपके साथ मिलकर पुरुषार्थ करने के लिये मैं अपनी पुत्री आपको सौंपता हूँ, ऐसा कहते हुए पिता कन्या वर को सौंपे और वर से कहे कि अब तुम दोनों मिलकर धर्माचरण पूर्वक धनोपार्जन करते हुए आनन्द के साथ उसका उपभोग करो। यम स्मृति का निम्न लिखत वचन भी इस विषय में विचारने योग्य है—

नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते।
पाणिग्रहण संस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे ॥

इसमें स्पष्ट वर्णन है उदक दान पूर्वक वाणी से कन्या-दान की क्रिया पूरी होने मात्र से वर कन्या का पति नहीं बन जाता। यदि दान शब्द का अर्थ स्वत्त्व निवृत्तिपूर्वक पर स्वत्त्वापादन ही होता तब तो वाणी से कथन मात्र से ही वर कन्या का स्वामी बन जाता। पाणिग्रहण संस्कार और उसके अंग भूत सप्तपदी क्रिया की क्या आवश्यकता रह जाती। परन्तु आचार्य को यह अभीष्ट नहीं है अतः कहा कि पाणिग्रहण संस्कार से सप्तपदी के पश्चात् वर पतिभाव को प्राप्त होता है।

इतना लिखने के पश्चात् यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि प्राचीन आर्यजन धर्म, अर्थ और काम के पवित्रता पूर्वक सम्पादन तथा सेवन के लिये कन्या का सुयोग्य वर के साथ पत्नी रूप पवित्र सम्बन्ध स्थापित कर देने तथा उसको मान मर्यादा की रक्षा और भरण पोषण का दायित्व जो अब तक पिता पर था वर को सौंप देने को ही गौण रूप से कन्या-दान कहते थे। [क्रमशः]

वेद प्रकाश का विशेषांक स्वामी वेदानन्द कृत "वैदिक धर्म" अगस्त मास में ग्राहकों को १३ ता. को भेज दिया गया था उससे पूर्व ही कई ग्राहकों के पत्र आये थे कि अंक नहीं मिला, ऐसे पत्र उन्हीं ग्राहकों के अधिक थे जिनका वार्षिक मूल्य नहीं आया था। अंक थोड़े ही शेष हैं। वार्षिक शुल्क भेजकर विशेषांक प्राप्त कर लीजिये।

राष्ट्र भाषा के प्रथम सेनानी स्वामी दयानन्द

❀ श्री रघुनाथ शास्त्री, मानस भवन, छतरपुर

आज जो हिन्दी राष्ट्र भाषा बन गई है इसके सर्वप्रथम आन्दोलक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। इन्होंने हिन्दी का नामकरण किया और आर्य भाषा के नाम से १७ वर्षों तक भाषा का वैदिक भण्डार भरते रहे।

सन् १८७३ ई० में कलकत्ते में स्वामी जी ने संस्कृत में व्याख्यान दिया। केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को राय दी कि यदि आप भाषा में वैदिक धर्म का प्रचार करें तो अधिक से अधिक जनता में आपके विचार फैलेंगे। तब से स्वामी जी ने बोलना और आर्यभाषा के माध्यम से ग्रन्थों का निर्माण करना कराना आरम्भ कर दिया। उनके २४ ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थों को छोड़कर सभी ग्रन्थों में आर्य भाषा को स्थान दिया गया है।

उनके समय में महारानी विक्टोरिया का राज्य था। देश पर अंग्रेजी दुपहरी का सूर्य चमक रहा था। इस्लामी समाज को प्रोत्साहन देकर अरबी फारसी को सरकारी काम काज में स्थायी बनाने की तैयारी हो चुकी थी। देश में बहुसंख्यक हिन्दी का समाज इसे पसन्द नहीं करता था परन्तु कोई ऐसा नेता सामने नहीं आता था जो नागरी लिपि और हिन्दी को आगे बढ़ाकर आन्दोलन छेड़ता। स्वामी जी ने भाषा के प्रभावशाली व्यवहार के साम्राज्य को देखा और उसके लिए महान् आन्दोलक बन बैठे। उन्होंने देश में ऐसा आन्दोलन खड़ा किया कि अंगरेज सरकार को कमीशन नियुक्त करना पड़ा था। स्वामी जी का एक तात्कालिक पत्र आज सारा नक्शा साकार बता रहा है देखिये—

दूसरी अति शोक करने की यह बात है कि आज कल सर्वत्र अपनी आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन हुआ है उसे पंजाब, हाथरस आदि से मेमोरियल भेजे गए हैं। परन्तु मध्य प्रान्त फर्रुखाबाद, कानपुर बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये ऐसा ज्ञात हुआ है। और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र आया था। उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गये। और हमको लिखा है—कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिये (अब कहिये हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं। जो यहां एक काम हो तो चिन्ता नहीं। इसलिये आपको अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से और जहां जहां परिचय हो सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल भेजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायगी। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। इसलिये विशेष लिखना आवश्यक नहीं। और गोरक्षार्थ कितनी सही हुई है। इस विषय में ध्यान देना आवश्यक है। बड़े हर्ष के ये दोनों विषय प्रकाशित हुए हैं। इसलिये जहां लो हो सके तन मन धन से सब आर्यों को अति उचित है इन दोनों कार्यों को सिद्ध करने में प्रयत्न करें। बारम्बार ऐसा हो निश्चय होता है कि ये दो सौभाग्यकार अंकुर आर्यों के कल्याणार्थ उगे हैं। अब हाथ पसार लेवेंगे तो इससे दुर्भाग्य की दूसरी बात क्या होगी। अलमति विस्तरेण बुद्धि मद्वर्येषु लाला निर्भयराम से हमारा आशीर्वाद कहियेगा (श्रावण शुक्ल ३ वृहस्पतिवार संवत् १९३९—दयानन्द सरस्वती उदयपुर)

(ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृ० सं. ३५५)

देश काल एवं उस परिस्थिति में काम करने वाले स्वामी जी के आदर्श श्रम का परिणाम आज सामने है। हिन्दी के राष्ट्र भाषा का स्वप्न आज पूरा तो है परन्तु हिन्दी हत्यारों का हथियार

आज भी पहले के समान ही मजबूत होना शेष नहीं हुआ है। आज भी देश के विभिन्न स्थानों में अंग्रेजी के पिंजरा बंद बूढ़े तोते हिन्दी को हानि पहुँचाने में एड़ी चोटी का व्यर्थ श्रम कर रहे हैं। सरकारी काम जहाँ हिन्दी में होना सुलभ है वहां आज भी (स्वतन्त्र देश में भी) नहीं हो रहा है।

स्वामी जी के उक्त पत्र द्वारा जिस प्रकार हिन्दी राष्ट्र भाषा एवं गोरक्षार्थ सफल आन्दोलन की परिपुष्टि होती है और प्रथम सेनानी का ओजस्वी गौरव प्राप्त है वैसे ही नागरी लिपि के विषय में भी उनके व्यावहारिक विचार थे। स्वामी जी भेजी जाने वाली वैदिक पुस्तकों के पार्सल बण्डलों पर अंगरेजी में पता तक नहीं लिखने देते थे। जो क्लर्क अंगरेजी में जान बूझ कर पता लिखते थे उन्हें स्वामी जी निकाल दिया करते थे। बानगी के रूप में उनका एक पत्र देखें—

"पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा आनन्द रहो। विदित हो कि आपका पत्र मुम्बई से आया था हाल मालूम हुआ। आपने वहां आकर काम देखा ही होगा कि क्या प्रबन्ध हो अब की बार भो वेद भाष्य के लिफाफे के ऊपर **देवनागरी** नहीं लिखी गई जो कहीं ग्राम में अंगरेजी न पढ़ा होगा तो अंक वहां कैसे पहुँचते होंगे और ग्रामों में **देवनागरी पढ़े बहुत होते** हैं। तुम बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि जी से कहो कि अभी इस पत्र के देखते ही **देवनागरी जानने वाला मुन्शी रख लेवें** जो काम ठीक २ हो नहीं तो वेद भाष्य के लिफाफों पर किसी से रजिस्टर के अनुसार ग्राहकों का पता **किसी देवनागरी जानने वाले से नागरी में लिखा कर टपाल लिया करें** और तुम जाकर **काम की खबरदारी करो** कि वहाँ क्या हाल हो रही है .....हस्ताक्षर दयानन्द

सरस्वती दिल्ली ६ अक्तूबर १८७८ ई०

यह पत्र धीरेन्द्र वर्मा के संग्रह में है। स्वामी जी ने राष्ट्र भाषा हिन्दी और नागरी लिपि के लिये जीवन पर्यन्त लड़ाई की थी। हिन्दी में वैदिक वाङ्मय का विषय साक्षात् रूप से भरने का श्रेय स्वामी जी को ही है। कुरान का अनुवाद भी सर्वप्रथम आपने कराया था। वह अनुवाद अप्रकाशित पड़ा है। भारतीय धर्म के प्रशस्त पथ प्रदर्शक द्वारा समाज तथा साहित्य का जितना मौलिक एवं ठोस काम हुआ है उसको हृदयंगम करके भारत सरकार ने देश में डाक टिकट चलाकर सच्चे श्राद्ध की श्रद्धांजलि अर्पित कर उस आत्मा के प्रति स्वकर्तव्य का श्री गणेशमात्र किया है।

—❀❀—

वैदिक धर्म गान मन भाया

❀ श्री मित्रसैन आर्य शास्त्री एल. एम. सी. अलीगढ़

वर वीणा के तार हिले हैं,
आर्य सुमन नव भाव मिले हैं,
ओस भरे अरविन्द खिले हैं,
क्या अनुपम गुंजार सुनाया।
वैदिक धर्म गान मन भाया ॥२॥

जाति कर रही थी जब क्रन्दन,
हृदय कर उठा किसका स्दन्दन,
प्रकृति अश्रु से करती अर्चन,
जीवन का सन्देश सुनाया।
वैदिक धर्म गान मन भाया ॥२॥

कोई भूला जन्त्र तन्त्र में,
कोई पश्चिम विषम मन्त्र में,
जीवन है केवल स्वतन्त्र में,
अपने पन का ज्ञान कराया।
वैदिक धर्म गान मन भाया ॥३॥

अरे विश्व को भ्रांति नहीं है,
परिश्रम निर्मम क्रान्ति नहीं है,
'मित्र' स्नेह सुख शांति यही है,
जिसने सब को प्रेम सिखाया।
वैदिक धर्म गान मन भाया ॥४॥

'प्राण-अपान'

❀ मास्टर मातुरामार्य, रोहतक

श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक ने मार्गशीर्ष २०१८ वाली टंकारा पत्रिका पृष्ठ ६-७ पर मेरी प्रार्थना पर महर्षि दयानन्द जी महाराज की दृष्टि से 'प्राण-अपान' का प्राचीन रीत्यानुसार स्पष्टिकरण किया। अब यह तो स्पष्ट हो ही गया इन दोनों (प्राण-अपान) की व्याख्या सत्यार्थ प्रकाश के भिन्न २ संस्करणों में उलट पुलट होती चली आई है जिस का ध्यान न तो परोपकारिणी सभा अजमेर और न ही कोई भी आर्य समाज कर पाई। कुछ भी क्यों न हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि असावधानी की पराकाष्ठा में कोई कसर न रही। 'प्राण-अपान' का पर्याय वाचक 'श्वास-प्रश्वास' योग सूत्र "तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः" (साधन पाद ४९) में विद्यमान है जिस को हिन्दी भाष्य—में बाहर की वायु का भीतर जाना 'श्वास' और भीतर की वायु का बाहर आना 'प्रश्वास' ऐसा पण्डित आर्य मुनि जी योगार्य भाष्य प्रकाशित स० १९६२ प्रथम बार वाले पृष्ठ ९६ पर बता गये हैं। इसी बात को पण्डित तुलसीराम जी स्वामी योग दर्शन के चौथे संस्करण में पृष्ठ ४७ पर यों लिखते हैं कि बाह्य वायु को भीतर लेना श्वास और अभ्यान्तर वायु को बाहर फैंकना= प्रश्वास कहाता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शुद्ध वायु (श्वास= प्राण) जीवन का मूल है जो आज की वैज्ञानिक परिभाषा में ओष-जन (Oxygen) कहलाती है। यदि यह वायु न मिले तो प्राणी की मृत्यु ही हो जावे। प्राणो हि भूतानामायुः (प्राण ही प्राणियों की आयु है) इस को तैतरीयोपनिषद् बताता है। इतना ही नहीं किन्तु—वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् (पवन प्राण रूप होकर नासिका में दाखिल हुआ) ऐतरेयोपनिषद् बताता है कि प्राण वायु बाहर से अन्दर दाखिल होता है। इसी प्रकार से गन्दी मलयुक्त वायु (प्रश्वास=अपान) जो आजकल Carbonic Gas कहाती है सेवन की जावे तो जीवन समाप्त ही हो जावे। इसी कारण से अपान=दूर करने, बाहर फैंकने और न सेवन करने योग्य कहते हैं। मीमांसक जी ने उपर्युक्त स्पष्टिकरण में व्याकरण का सहारा लेकर 'प्राण-अपान' की व्याख्या की है। परन्तु केवल व्याकरण ही तो किसी वस्तु स्थिति को वर्णन नहीं कर पाता है। अन्य वैज्ञानिक नियम जो आज की दुनिया प्रत्यक्ष में अनुभव कर रही है उस को किस प्रकार ठुकराया जा सकता है। व्याकरण का कोई भी नियम दो और दो—को पांच कहने में बाधक नहीं। इसी प्रकार से 'अग्निना वृक्षं सिंचामि' को वाक्य रचना की दृष्टि से अशुद्ध नहीं बताया जा सकता है। इन को अशुद्ध करने के लिये गणित और तत्त्वज्ञान आ धमकते हैं। इसी प्रकार से वैद्यक विद्या— 'श्वास-प्रश्वास' (प्राण-अपान) के यथार्थ स्वरूप और गति को समझाने की सामर्थ्य रखती है। इस का खण्डन कौन कर सकता है। सुश्रुत वैद्यक का आर्ष ग्रन्थ महर्षि दयानन्द जी की दृष्टि से पाठ्य हैं इस में 'प्राण-अपान' का रूप वर्णन किया गया है (देखो निदान अ० १ सूत्र १३ व अ० १ सूत्र १९) अर्थात् नाभि के नीचे के भाग में अपान वायु मल मूत्र गर्भ आदि को नीचे से बाहर निकाल फैंकती है। हमें महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का बड़ा मान है। जगद्गुरु माने जाते हैं वह अपने समय को अद्भुत ज्योति रहे। परन्तु वैद्यक आर्ष ग्रन्थ को कैसे झुठलाया जा सकता है। वनस्पति वृक्षादि सभी ओषजन को छोड़ते रहते और अपान=जंगम प्राणियों के त्यागे गये वायु को ग्रहण करते रहते हैं। यह जीवन का दान-आदान संसार में बराबर चलता रहता है। मीमांसक जी यदि इन बातों की ओर ध्यान देने की कृपा करें तो सचमुच कई भ्रान्त जनों के ज्ञान में वृद्धि होकर कल्याण अवश्य होवे। विद्या का प्रकाश और अविद्या का नाश करना आर्य विद्वानों का ही धर्म है। आशा की जाती है कि मीमांसक जी वस्तु स्थिति पर उपर्युक्त प्रमाणों को ध्यान में रखते हुए पुनर्विचार प्रकट करने का कष्ट करेंगे। शंका निवारण ही उद्देश्य है।

आधुनिक शिक्षा

❀ प्रोफेसर बलदेव प्रसाद आर्य

जैण्टिल मैन बनने की धुन में हमें अपना देश, वेष, खान पान, रहन-सहन आदि सब कुछ भुला देने वाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली है।

इसी शिक्षा प्रणाली ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और आर्य धर्म को नष्ट करके हमें चरित्र हीन बनाया है।

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली जहां मनुष्य को इन्द्रियों का स्वामी बनाने की चेष्टा करती थी वहां आधुनिक शिक्षा प्रणाली का अन्तिम ध्येय है मनुष्य को इन्द्रियों का गुलाम बनाना है। भारतीय शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को संयम और त्याग का पाठ पढ़ाती थीं तो आधुनिक शिक्षा प्रणाली नवयुवकों के हृदय में भोग और विलास की भावना को जागृति करती हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली सादगी और सात्विकता को महत्व देती थी तो आधुनिक शिक्षा प्रणाली राजसी ठाठ बाट की। भारतीय शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को सुशील और संयत बना कर उन्हें आदर्श सामाजिक व्यवस्था, वर्णाश्रम धर्म के पालन में प्रवृत्त करती थी तो आधुनिक शिक्षा प्रणाली नवयुवकों को उच्छृंखल और मोहान्ध बनाकर समाज में अशान्ति और अव्यवस्था के बीज बोती है।

दोनों शिक्षा-प्रणालियों में इतना अन्तर है जितना सत्य और असत्य में, पुण्य और पाप में, तम, (अन्धकार) और प्रकाश में स्वर्ग और नरक में। दोनों को यदि विरुद्ध दिशागामिनी ३६ छत्तीस के आकड़े कहा जावे तो कोई अत्युक्ति न होगी—

एक मानव चरित्र के उज्ज्वल अंश को प्रकाशित करके उसे अनन्त आलोक, अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति के राज्य में पहुँचा देना चाहती है तो दूसरी मानव हृदय की कलुषित प्रवृत्तियों को जागृत करके जीवन को अनन्त अन्धकार और निराशा के अथाह सागर में डुबा देना चाहती है।

दोनों शिक्षा-प्रणालियों के विकट अन्तर का वास्तविक कारण जानने के लिये हमें भारतीय तथा योरोपीय सभ्यता के मूल सिद्धान्तों की तुलना करनी चाहिये।

भारतीय सभ्यता निवृति प्रधान है, योरोपीय सभ्यता प्रवृत्ति प्रधान। भारतीय सभ्यता का आदर्श त्याग और योरोपीय सभ्यता का आदर्श भोग। भारतीय सभ्यता शान्ति और सन्तोष को महत्व देती है तो योरोपीय सभ्यता क्रियाशीलता और असन्तोष को। भारतीय स्वभाव त्याग और तपस्या की पूजा करता है योरोपीय स्वभाव भोग और विलास की उपासना करता है। भारतवासी शरीर को नाशवान और आत्मा को अमर समझते हैं वे शारीरिक सुखों को त्याग कर आत्मिक उत्कर्ष की की साधना करते हैं, तो इसके विपरीत योरोपियन शरीर और शारीरिक सुख को ही अपना सर्वस्व समझती हैं। वे आत्मा और परमात्मा के सारे झगड़ों से दूर रहकर स्वछन्द भाव से शारीरिक सुख का ही उपयोग करती हैं।

भारतवासी सरूप और निराकार की उपासना करते हैं। योरोप के बड़े से बड़े दार्शनिक भी सरूप और निराकार की बात सुनकर घबड़ा जाते हैं, उनके आंखों में रूप और आकार ने इतना स्थायी घर कर लिया है कि वे सरूप और निराकार की कल्पना भी नहीं कर सकते।

भारतवासी मृत्यु को देह का त्याग कहते हैं, योरोपियन लोग मृत्यु को आत्मा का त्याग कहते हैं भारतीय मनोवृत्ति देह को गौण और आत्मा को प्रधान समझती है, योरोपियन मनोवृत्ति आत्मा को गौण और देह को प्रधान मानती है। इस तुलना

सेस्पष्ट हो जाता है कि दोनों सभ्यतायें सर्वथा विरुद्ध धर्मी हैं।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली उस व्यक्ति के जीवन को पूर्ण कर सकती है जो पाश्चात्य सभ्यता का अनुयायी है किन्तु भारतीय सभ्यता के अनुयायियों के जीवन को पूर्ण बनाने में कदापि समर्थ नहीं हो सकती।

सारांश यह कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली केवल भारतवासियों के लिये ही नहीं बल्कि मनुष्यमात्र के लिये हानिकारक सिद्ध हुई है। यह बात पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार की है।

मि० रेंमजे मेकडोनल्ड, साम्राज्य प्रधान मन्त्री कहते हैं कि मेरा निश्चय है कि विश्वविद्यालय की जीवनी बहुत से पुरुषों को फायदा के बनिस्बत ज्यादा हानिकारक सिद्ध हुई है। एक इससे भी बढ़ कर विद्वान ने विश्वविद्यालयों को उत्तम बुद्धियों का कसाईखाना बतलाया है और वास्तव में यह बात सत्य है। टाइम्स आफ इण्डिया ता० १—७—२९

इसी प्रकार आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र राय ने लाहौर कांग्रेस प्रदर्शनी खोलते समय कालेजों के विद्यार्थियों से कहा कि क्या इंगलैंड और क्या हिन्दुस्तान सब जगह रोना एक ही बात का है कि नये पीढ़ा के नवजवान आलसी हो रहे हैं काम कम और आराम ज्यादा करते हैं, कमाते कम और खर्च ज्यादा करते हैं। मां बाप से सब कुछ लेते हैं पर देते कुछ नहीं। शारीरिक स्वास्थ पर नहीं सजावट पर अधिक ध्यान देते हैं। सादगी छोड़ भोग-विलास में फंसते जा रहे हैं। 'सर माटेग्युवेब ने विलायत से लौटकर करांची में यह शिकायत की है। मि० वेब और डाक्टर राय दोनों की यह सम्मति है कि नवजवानों की इन बुरी आदतों का कारण वर्तमान शिक्षा-प्रणाली है। मि० बरनार्ड शा और मि० रैमजे मैकडोनाल्ड भी इसी शिक्षा-प्रणाली को बुरी बताते हैं। मि० शा तो वश चलने पर कैम्ब्रिज और आक्स फोर्ड युनिवर्सिटयों को धूल में मिलाने की इच्छा रखते हैं पर हिन्दुस्तान में वे अब भी बड़ी आदर्श मानी जाती है और उन्हीं को ढालने का प्रयत्न किया जा रहा है। (अर्जुन २४ दिसम्बर सन् १९२९)

जो शिक्षा मनुष्य चरित्र को महत्व नहीं देती वह शिक्षा किसी मानवजाति के लिये लाभदायक नहीं हो सकती तब धर्म प्राण आर्य जाति के लिये कैसे हितावह हो सकती है। भारतीय शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों क जीवन को धर्ममय बनाने की चेष्टा करती है तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में धर्म और सदाचार का नाम लेना भी पाप समझा जाता है, तात्पर्य वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को मनुष्य के गुणों से विमुक्त करके उन्हें असुर स्वभाव की ओर अग्रसर करता है, अर्थात् मनुष्य में दम्भ दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान, हिंसा, झूठ, नास्तिकता, भोग-वासना तथा रागद्वेषादि आसुरी गुणों का उत्पन्न कर उसे स्वेच्छाचारी एवं अत्याचारी बनाकर संसार में अशान्ति के बीज बोता है। किन्तु आर्य शिक्षा-पद्धति विद्यार्थियों में क्षमा, दया, तेज, तप, त्याग, शील, सन्तोष, शम, दम, दान, सत्य अहिंसा, धैर्य, शौर्य, निर्भयता और आस्तिक्य आदि दैवी (सात्विक) गुणों को प्रकाशित करके उन्हें सदाचारी धार्मिक और पूर्ण उदार बनाती है।

आर्य जाति जगत की अन्यान्य जातियों की शिक्षक तथा गुरु है और आर्य धर्म अन्यान्य धर्मों का जनक तथा पालक है। इसलिये मनु जी लिखते हैं कि भारतवर्ष में उत्पन्न हुए विद्वानों से भूलोक के सब मनुष्य अपने २ चरित्र की शिक्षा लें।

एतद्देश प्रसूतस्यसकाशादग्र जन्मनः।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

सारांश प्राचीनकाल में भारतवासी विद्वान् संसार के सब मनुष्य को आर्य सभ्यता, संस्कृति और धर्माचरण आदि की शिक्षा देते थे। किन्तु दुख का विषय है कि जगद्गुरु कहलाने वाले आर्य आज अपनी सन्तानों को भी अपनी सभ्यता संस्कृति और आर्य धर्म की शिक्षा नहीं करते। इसी कारण हमारे युवक अपना धर्म कर्म भूलकर पश्चिमी सभ्यता सस्कृति और अन्य धर्मोंमें फंसते जा रहे हैं।

लिङ्गार्चन उद्गम और रहस्य

❀ विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

सृष्टि के आरम्भ युग में मनुष्य जब, ज्ञान के आलोक से वंचित था, तब उसे किसी भी अद्भुत या चमत्कारपूर्ण कार्य, किंवा किसी रहस्यमय वस्तु को देखकर, उसके मन में समझने सोचने की जिज्ञासा जागृत होने लगी। मस्तिष्क और अन्य बाह्य साधन अविकसित थे, अतएव जो भी वह सोच समझ लेता, उसे ही वह सत्य मान बैठता।❀

नर-नारी के मिथुन-संयोग से नर-जीव की उत्पत्ति, उसके समक्ष एक गहन पहेली थी। प्रजनन विज्ञान का रहस्य समझ सकना तब उसके बलबूते के बाहर की बात थी। वह यह जानने को लालायित था कि प्राणी की उत्पत्ति कैसे होती है? नर नारी के गुह्य मिलन से वैसे ही नए प्राणी का प्रादुर्भाव उसके आश्चर्य को दिन दूना बढ़ाता रहा। एक लम्बे अर्से तक सोचने विचारने के बाद, वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि—"कोई एक ऐसी अदृश्य शक्ति है, जो इस कार्य को गुप्त रीति से करती रहती है।" अब इस निहित-शक्ति को समझने देखने और प्राप्त करने की कोशिश करने लगा।

चिर कालीन छानबीन के उपरान्त उसका ध्यान स्त्री-पुरुष की जननेन्द्रियों की ओर केन्द्रीभूत हुआ। अन्त में वह इस निर्णय पर पहुंचा कि, नर नारी के गुह्याङ्ग ही सृष्टि के उपादान हैं। तथा किसी गुप्त शक्ति द्वारा परिचालित, ये ही उसके प्रतिनिधि हैं—जिनके संयोग से नर प्राणी का जन्म होता है। इसे समस्त संसार का महान् शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण तत्व मानकर, अपना सर्वोपरि पूज्य स्वीकार किया। वह नर नारी की गुह्येन्द्रियों का आदर करने लगा और सृष्टि-उत्पत्ति कर्त्ता के रूप में उसने लिंग और योनि की पूजा—सम्मान करना आरम्भ कर दिया। यह उस युग की बात है जब मनु-पुत्र दिगम्बरावस्था में रहता था तथा उसके पास जीवनोपयोगी साधन नाम मात्र के लिये ही थे। उसने जब ऋतुओं की उग्रता से त्राण पाने के लिये, वृक्षों के पत्ते छाल और पशुओं के चमड़ों से शरीर को ढांपना आरम्भ किया तो सब से पहले उसने अपने अभीष्ट, महत्वपूर्ण, शक्तिशाली अवयव गुह्येन्द्रिय ही को आच्छादित किया।

अन्वेषण के बाद इतिहासकारों ने यह पता लगाया कि जननेन्द्रियों को पवित्र तथा सर्वोपरि सिद्ध करने का कार्य सर्वप्रथम रुद्र ने किया था। उसने एक बृहत् कामविज्ञान शास्त्र की रचना भी की, जिसमें गुह्याङ्गों को जगत् का कारण रूप मान कर, पूजाई सिद्ध किया।

यह रुद्र कौन था? इस सम्बन्ध में विचारकों का मत है कि यह मरुतों का पूर्वज था। (१) मरुतों की उत्पत्ति भग के साथ मानी जाती है। मरुत दिति से उत्पन्न होने के कारण "दैत्य" कहलाये। मत्स्य पुराण में रुद्र के पिता का नाम 'धर' और पितामह का "यम" बताया है। यम और धर सूर्य के वंशज थे जो आर्यों से अलग हो गये थे। विष्णु पुराण ने भी रुद्र के पिता का नाम 'धरवसु' बताया है।

वसुओं की गणना यद्यपि देवकोटि में की जाती है, तथापि वे देवों से भिन्न ही पाये गए। इनका आदि निवास आज के मिस्र तथा ग्रीस का प्रदेश था, जो असुर-लोक कहलाता था। वसुओं का देवों तथा आर्यों के साथ बहुत कम सम्पर्क रहा। शाक द्वीपी जातियों में अधिकांश कुल यम का सन्तान हैं (२)। तुर्क भी धरवसु की सन्तान मानी गई हैं (३)। पहले रुद्र का निवास "हेमकूट गरि" पर था। बाद में वह 'शर-वन' में आकर

---

(१) "आते पितु मरुतां सम्नये" (ऋ० २।३३।१)
(२) "पर्शिया का प्राचीन इतिहास" (खं. १ पृ.१०७)
(३) "पर्शिया का इतिहास" (खं. २ पृ०१०६)
❀ यह पश्चात्य विद्वानों की मान्यता है। "विद्यार्थी"

रहने लगा। कुछ समय बाद वह वैश्रवण कुवेर की सम्मति से हिमालय में कैलाश को अपनी राजधानी बनाकर बस गया। कैलाश के पास ही कुवेर की राजधानी अलकापुरी भी थी। रुद्र और कुवेर में धीरे-धीरे प्रगाढ मैत्री हो गई।

जिस युग का यह वर्णन है, उन दिनों भारत की भौगोलिक सीमा दूर-दूर तक फैली हुई थी। आन्ध्रालय (आस्ट्रेलिया) से लगाकर बाली, जावा, सुमात्रा, स्वर्णद्वीप, लङ्काद्वीप आदि द्वीपों में देव, दानव, आर्य, नर, नाग, दैत्य, असुर, राक्षस प्रभृति अनेक जातियां बसी हुई थी, जिनकी संस्कृतियां एक दूसरे से मेल नहीं खाती थीं। भिन्न २ थीं। विन्ध्यगिरि के उत्तरी भाग में सूर्य और चन्द्रवंशी दो प्रसिद्ध आर्यकुल शासन कर रहे थे। सीमान्त में गन्धर्व, देव, किन्नर, असुर और पिशाच जातियां रह रही थीं। एलावर्त्त में आदित्यों का तथा अत्रिपतन में देवों का शासन था। वहीं आस पास चारों दिशाओं में, दैत्य, दानव, असुर, नाग, गरुड़ आदि जातियां अपनी सत्ता फैलाए हुए थीं।

हम पीछे कह आए हैं कि मरुद्गण दिति के वंशज थे। इनके परिवारों की संख्या पचास थी। ये सब प्रकार सम्पन्न थे; परन्तु तत्कालीन समाज ने इन्हें देव नहीं माना। इन्हें यज्ञ भाग नहीं मिलता था। एक बार रुद्र की सहायता देने पर ये देव मान लिये गये। तब मरुतों ने दैत्यों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। मरुत् अपने सिर पर जटाजूट रखते थे। रुद्र का एक नाम "कपर्दिन" इसीलिये भी था (१)। बेबिलोनिया के निवासी सिर पर बाल बढ़ाये रहते थे। मरुतों के अधिनायक रुद्र का पद—ऋग्वेद काल में—इन्द्र के समान था। आरम्भ में रुद्र एक स्थान पर जमकर नहीं रहा। वह अपनी राजधानी बार २ बदलता रहा।

यजुर्वेद में अनेक रुद्रों को वर्णन है। वेद की आठ अध्याय "रुद्राष्टाध्यायी" नाम से स्वतन्त्र संकलित है; जिनमें रुद्र के महत्व का विशद् वर्णन है। लगभग सौ विशेषणों से युक्त रुद्र का नाम सम्बोधित करते हुए उन्हें नमस्कार किया है (२)। वेद ने रुद्र को निषादों का अधिष्ठाता माना है। सीमान्त के रहने वाले, रुद्र को अपना आराध्य देव मानते थे। यजुर्वेद में एकादश रुद्रों का वर्णन है (३)। परन्तु यह रुद्र वैदिक रुद्र से भिन्न था।

'शतपथ ब्राह्मण' में रुद्र की उत्पत्ति का वर्णन भिन्न प्रकार से आया है। प्रजापति के यहां उषा देवी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह रात दिन रोता रहता। प्रजापति ने उससे पूछा—"तू क्यों रोता है?" बालक ने कहा—"अभी तक मेरा नाम कुछ भी नहीं रखा गया!" तब प्रजापति ने रोते रहने के कारण उसका नाम "रुद्र" रखा। रुद्र ने जब और नाम रखने का आग्रह किया तब प्रजापति ने उसे शर्व, पशुपति, ईशान, उग्र, महादेव, अशनि, शिव आदि नामों से सम्बोधित किया। इन नामों से रुद्र सीमा प्रदेश में पूजा जाने लगा।

रुद्र नामक व्यक्ति ही लिंग पूजा का आदि प्रवर्त्तक है। उन दिनों वह दैत्य, दानव असुर, राक्षस, और अनार्यों का परम आराध्य बना हुआ था। रुद्र उन्हें अपनी सहायता के साथ ही दिव्यास्त्र आदि भी दे दिया करता था। यज्ञ भाग न मिलने से रुद्र उन दिनों देवों से ईर्षा, और द्वेष रखता था।

मानव सभ्यता के आरम्भ काल में मनुष्य, जगन्नियन्ता सृष्टि निर्माता की खोज में भटका और अज्ञानवश उसने लिंग को सृष्टि निर्माण का उपादान मान कर 'शिश्नदेव' का अर्चन पूजन आरम्भ कर दिया।

---

(१) 'कपर्दी' सिर पर बालों का जूड़ा रखने वाला।
(२) "नमस्ते रुद्रमन्यवऽ उतोत इषवे नमः...इत्यादि (यजु० १६)
(३) अज, एकपाद् अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, त्वष्टा, वीरभद्र.....आदि।

लिंग को जगन्निर्माता मानकर उसकी पूजा का आरम्भ अज्ञ लोगों से हुआ, और तत्सम-संस्कृति के ऐसे लोगों में ही इसका प्रसार अधिक हुआ, जो भोग विलास तथा पर स्त्री सम्भोग को धर्म मानने लगे थे। लिंग पूजा का उद्गम रुद्र देवता है तो वैश्रवण रावण उसका पोषक, समर्थक और प्रचारक-प्रसारक है। आर्यों को छोड़, दैत्य, दानव, असुर, व्रात्य, अनार्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग आदि सभी को इस लिंग पूजा में रस आया, अतएव यह धर्म का रूप धारण कर, पृथ्वी के सभी भागों में ईश्वर पूजा की जगह महामारी की तरह फैल गई।

रुद्र और उसका समर्थक रावण किसी परम शक्ति को सृष्टि नियन्ता तथा कर्त्ता हर्त्ता न मान कर मनुष्य ही को अपनी उत्पत्ति का कारण मानता है। इसी सिद्धान्त पर रावण ने अपने आप को 'ईश्वर' घोषित किया। अपने मुंह वह अपने को जगदीश्वर कहने कहलाने लगा। रावण ने लिंग पूजा के समर्थन में यह भी प्रतिपादित किया कि "वीर्य कोट का रूप पुरुषेन्द्रिय के आकार का होता है और स्त्री डिम्बका स्त्री-योनि के आकार का। अर्थात् समस्त विश्व इस प्रकार लिंग और योनि से व्याप्त हैं, अतः वही पूज्य है।

अति प्राचीन काल में, आज से लगभग आठ दस हजार वर्ष पूर्व गुह्येन्द्रियों का पूजन आरम्भ हुआ—मूर्तियों के रूप में नहीं, प्रत्यक्ष रूप में। लिंग पूजा का मूल स्रोत रुद्र था। रुद्र ने अपना व्यक्तित्व, प्रभाव तथा प्रभुत्व तत्कालीन समाज में स्थापित करने के हेतु ऐसा करने में अपना हित समझा। कुछ लोगों ने इस पूजार्चन का जम कर विरोध भी किया। रुद्र को अपमानित किया उसे मारा पीटा भी परन्तु उसके तथा उसके हिमायतियों के बल पौरुष के सामने विरोधियों को परास्त होना पड़ा। संसार की प्रवृत्ति काम वासना की ओर संश्लिष्ट थी। काम के गुलामों ने मनोनीत देवता पाकर लिंग और योनि की उपासना स्वीकार कर ली। कोई भी देश प्रदेश इस विलास भोग पूर्ण धर्म से अछूता नहीं बच पाया। लिंग योनि के पूजकों का उस समय स्पष्ट बहुमत हो गया।

अठारह सौ वर्ष पूर्व योरोप में सर्वत्र लिंगार्चन प्रचलित था। अमेरिका, चीन, जापान, इण्डो-चाइना, लम्बोडिया, मालद्वीप, सुमात्रा, जावा, बर्मा श्याम आदि सभी देशों में उन दिनों न्यूनाधिक रूप में सभी लोग लिंग पूजा में भाग लेते थे। इस त्वरित प्रचार और प्रसार का मूल कारण था मुक्त संभोग और अबाध काम के लिए। लिंग पूजा ने सर्वत्र धर्म का रूप धारण कर लिया। वाम मार्ग और चोलीपन्थ इसी के चरण थे। ये धर्म के पर्दे की ओट में खूब फूले फले।]क्रमशः]

राधा स्वामी मत दर्पण

लेखक—ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यदि आप राधास्वामी मत का वास्तविक स्वरूप जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। बड़े परिश्रम और खोज के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है। प्रचाराथ पुस्तक का मूल्य लागत मात्र चार आने ही रक्खा गया है। प्रचारार्थ मंगाने पर २०) सैकड़ा।

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

ब्रह्माकुमारियों के ढोल को पोल। बढ़िया कागज सुन्दर छपाई। मूल्य ३७ नये पैसे। प्रचारार्थ मंगाने पर २५) सैंकड़ा।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

श्री माधवा चार्य शास्त्री का 'संस्कार विधि' पर गर्हित आक्षेप

[क्या 'संस्कार विधि' में छुरे व जूते की पूजा का वर्णन है ?]

[लेखक—आचार्य शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा 'पथिक' बी० ए०]

मासिक पत्र "लोकालोक" दिल्ली ६, वर्ष २, अगस्त १९६२ ई० अंक ७ पृष्ठ ४२ में श्री माधवा चार्य शास्त्री आर्य समाज पर आक्षेप करते हुए लिखते हैं—"दयानन्दी लोग जड़पूजक अवश्य हैं, जो मुण्डन संस्कार में जड़ छूरे को 'नमस्ते अस्तु भगवन्' कह कर नमस्कार करते हैं। समावर्तन संस्कार के समय जूते को सम्बोधन करके कहते हैं कि ओं प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातम्'। अर्थात् हे जूते ! तू चारों ओर से मेरी रक्षा कर—यह सब लीला तुम्हारी ही संस्कार विधि में दर्ज है सो तुम पर ही यह कविता घटती है कि—

देव मूर्ति कभी न पूजें पूजे छुरा जो नाइयों का।
अजब हाल संस्कार विधि में आर्य समाजी भाईयों का॥

समीक्षा—पौराणिकों के प्रायः सभी आक्षेपों का मुंह तोड़, सप्रमाण, युक्तियुक्त उत्तर कई बार दिये जाने पर भी उन्हीं प्रश्नों को बार बार जनता के सामने रख कर शास्त्रार्थ-महारथी बनने का ढोंग करते हैं।

आपका उपर्युक्त प्रश्न कुतर्काचार्य श्री कालू राम शास्त्री का है। उन्होंने अपने पुस्तक "मूर्ति-पूजा" १ पृष्ठ १५-१६ में तथा "आर्य समाज में मूर्तिपूजा" २ में किया है। आपने वहीं से चोरी कर ली है। श्री कालूराम शास्त्री की दोनों पुस्तकों का मुंह तोड़ उत्तर पं० भूमित्र शर्मा आर्योपदेशक ने "मूर्तिपूजा समीक्षा" ३ तथा मैंने "आर्य समाज में मूर्तिपूजा-ध्वान्तनिवारण" ४ पुस्तकों में दिया है। श्री कालूराम शास्त्री तथा उनके पौराणिकसाथियों को प्रत्युत्तर देने में दांत खट्टे हो गए। यदि आप में विद्वता है तो दोनों पुस्तकों का प्रत्युत्तर देकर श्री कालूराम जी तथा सड़ातन धर्म की लाज रख लें अन्यथा 'लोकालोक' के प्रत्येक अंकों में आर्य समाज पर कीचड़ उछालना छोड़ दें।

"संस्कार विधि" में महर्षि दयानन्द जी महाराज का यह लेख है—

इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता।
नमस्ते अस्तु मा मा हि ॐ सीः॥
य० अ० ३ मं० ६३॥

इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवें। तत्पश्चात्—

ओं स्वधिते मैन ॐ हि ॐ सीः। यजु. अ. ४। मं. १।

इस मन्त्र को बोल के कुश सहित उन केशों को काटे।

महर्षि जी के उपर्युक्त लेख में यह कहां लिखा है कि नमस्ते अस्तु भगवन् कह कर नमस्कार करते हैं ? यह तो आपकी कपोल-कल्पना है।

भग-लिङ्ग छूरा, कुदाल आदि की पूजा तो पौराणिक मत में होता है फिर वह दोष आर्य समाजियों पर क्यों लगाते हैं ?

---

१. विक्रम सं० १९७८ मर्चेन्ट प्रेस, कानपुर में मुद्रित, तृतीयावृति।
२. सन् १९३० ई० में बी० एन० प्रेस, इटावा में मुद्रित।
३. पूर्वार्ध संवत् १८७४ वि० में तथा उत्तरार्ध संवत् १९७५ वि० में भास्कर प्रेस, मेरठ में मुद्रित।
४. सन् १९५० ई० में आर्य प्रिंटिंग प्रेस, निकलसन रोड़ अम्बाला छावनी में मुद्रित और जयदेव वैदर्स बड़ौदा द्वारा प्राप्त।

आपका माननीय पुराण कहता है:—

छुरे की पूजा

सर्व सत्वांग भूतासि सर्वाशम निवारिणी ।
क्षुरके क्षुरसां नित्यं शान्ति यच्छनमोस्तुते ।७७।
[भविष्य पुराण उत्तर पर्व० ४, अ० १३८]

अर्थात्—"सारे प्राणियों की अंगभूत है, सारे विघ्नों को दूर करने हारी है। हे छुरी ! मेरी रक्षा कर, मुझको नित्य शान्ति प्रदान कर तुम को नमस्कार है।"

कुदाल की पूजा

तोष्याः कर्मकरा सर्वे कुद्दालानि च पूजयेत् ॥३६॥
[भविष्य पुराण, उत्तर पर्व अ० १२७]

अर्थात्—"सारे काम करने वालों को सन्तुष्ट करे और कुद्दालों की पूजा करे।"

कुठार का पूजन

"वृक्षमूले कुठारंतु धूपमाल्यैः प्रपूज्य च ॥२९॥"
[भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व १ अध्याय १३१]

अर्थात्—"वृक्ष की जड़ में धूप तथा मालाओं से कुठार (कुल्हाड़ी) की पूजा करके कार्य आरम्भ करे।"

हल तथा मूसल की पूजा

राजतं मुसलं चैव हलं पार्श्वेषु विन्यसेत् ।
पुष्पधूपादि नैवेद्यैः पूजा कार्या यथा विधि ।३७।
हलं च मुसलं चैव स्वनाम्ना पूजयेद्बुधः ॥४१॥
[भविष्य पुराण उत्तरपर्व ४, अध्याय १०६]

अर्थ—"चांदी का मूसल और हल पास में रक्खे। उनको पुष्प, धूप आदि नैवेद्य से विधिपूर्वक पूजा करे ॥३७॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि हल और मूसल की अपने नाम से पूजा करे।"

आपके पुराण में छुरा, कुदाल, कुठार, हल व मूसल की पूजा का स्पष्ट विधान है और आप दोषारोपण आर्य समाज पर करते हैं।

यजु० अ. ३ मं० ६३ का अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने 'संस्कार-विधि' में नहीं वरन् 'यजुर्वेद भाष्य' में यों किया है:—

"हे जगदीश्वर और उपदेश करने हारे विद्वन् ! जो आप (स्वधिति) अविनाशी होने से वज्रमय (असि) है जिस (ते) आपका (शिवः) सुखस्वरूप विज्ञान का देने वाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि) हैं (ते) आपके लिए मेरा (नमः) सत्कारपूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिंसीः) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आपको (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम २ पुत्र आदि वा चक्रवर्ती राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्य्याय) उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिए (वर्त्तयामि) वर्त्तता और वर्त्तता हूं इस प्रकार वर्तने से सब दुःखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय करके अन्तर्यामिरूप आपका आश्रय करके सभा में वर्त्तता हूं।५

आपको (श्री माधवाचार्य शास्त्री) उचित था कि आप महर्षि दयानन्द जी के इस अर्थ पर आक्षेप करते। आपका आक्षेप तो आपके मान्य वाममार्गी भाष्यकार श्री महीधराचार्य आदि के भाष्यों पर हो सकता है।

श्री महीधरभाष्यम्—"शिवो नामेति लाहक्षुरमादायेति। हे क्षुर ! त्वं नाम नाम्ना शिवः शान्ताऽसिस्व धितिः वज्रं ते तव पिता। ते तुभ्यं नमोऽस्तु मां मा हिंसीः।"

अर्थात्—"शिवोनामासि--यह कह कर छुरे को को ले (और कहे) हे छुरे तू नाम से शिव शान्त है। वज्र तेरा पिता है। तुम को नमस्कार हो। मुझे मत मार।"६

५. "यजुर्वेद भाष्यम्" प्रथमोभागः तृतीया वृत्ति, १८३-१८४
६. "शुक्ल यजुर्वेद संहिता...मन्त्र भाष्येण.. वेददीपेन च सहिता, प्रथमं खण्डम् पृष्ठ १५७
[सन् १९१२ ई० में चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, बनारस सिटी से प्रकाशित]

इसी प्रकार श्री उव्वटाचार्य का भाष्य है:—

"लोहक्षुरमादत्ते। "शिवोनामासि"। हे क्षुर! यतः त्वं शान्तनामासि यस्यच तव 'स्वधितिः पिता' स्वधिति वज्रः। तस्मै "नमः ते" तुभ्यं भवतु। मा मा हिंसीः" मा विनाशय।...७

इसका भावार्थ उपर्युक्त है।

कहां महर्षि दयानन्द जी अपने भाष्य में "हे जगदीश्वर! आप मेरे पालन करने वाले हैं" अर्थ करते हैं तो श्री महीधर व श्री उव्वट जी "हे छुरे तुम को नमस्कार हो। मुझे मत मार "यह करते हैं। कहिये कौन छुरे की पूजा करवाता है आपके गुरु श्री महीधर श्री उव्वट या महर्षि दयानन्द जी?

पौराणिक श्री ज्वालाप्रसाद विद्यावारिधि"— मुरादाबादी अर्थ करते हैं—"....देव! तुम (नाम) नाम करके (शिवः) शान्त स्वभाव कल्याण कारक (असि) हो (स्वधितिः) वज्र (ते) तुम्हारा (पिता) पालक रक्षक है (ते) तुम्हारे निमित्त (नमः) नमस्कार है (मां) मुझको (मा) मत (हिंसीः) आघात करना।८

पौराणिक डा० राजबली पाण्डेय एम. ए. डी. लिट्—"मुण्डन में व्यवहृत छुरे की स्तुति तथा उससे अहानिकर होने की प्रार्थना को जाती है नाम से तू शिव है। लोहा (स्वधिति) तेरा पिता है। मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। तू शिशु की हिंसा अथवा क्षति न करे।"९

आपके चार पौराणिक विद्वानों ने छुरे को नमस्कार करना लिखा है फिर भी आप महर्षि जी पर दोषारोपण करते हैं!!

आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व आप सरीखे वेद निन्दकों ने प्रश्न किया था जिसकी चर्चा 'मीमांसा दर्शन' में है और श्री सायणाचार्य ने भी अपने "ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका" में इसी प्रश्न को उठा कर उत्तर दिया है।

यथा—"ओषधे त्रायस्वैनम्' (तै० सं० १।२।१।१) इति मन्त्रो दर्भ विषयः (आश्व० गृ० १।१७।८)। 'स्वधिते मैनं हिंसीः' (तै० सं १।२।१।१) इति क्षुर विषयः (आश्व० गृ० १।१७।९)। शृणोतः ग्रावाणः (तै० सं० १।३।१३।१) इति पाषाण विषयः। एतेषु अचेतनानां दर्भक्षुरपाषाणानां चेतनवत् सम्बोधन ब्रूयते। 'द्वौ चन्द्रमसौ' इति वाक्यवत् विपरीतार्थ बोधकत्वाद। प्रामाण्यम्।...

अर्थात्—"हे औषधे! इसकी रक्षा कर, यह मन्त्र दर्भ विषय में है।

हे स्वधिते! इसकी हिंसा न करो, यह क्षुर विषयक है। पत्थर सुनें, यह मन्त्र पाषाण विषयक है। इन मन्त्रों मे चेतना रहित पदार्थ दर्भ, क्षुर, और पाषाण को चेतन के समान सम्बोधित किया गया।। [जब कोई व्यक्ति किसी से कहे कि 'तुम इसकी रक्षा करो। तुम इसे मत मारो एवं सुनो' तो यह बात संगत होती है, अब अगर पत्थरों से कहें कि हे पत्थरो! तुम सुनो, तब ऐसे व्यक्ति की वाणी को कहां तक प्रमाण माना जा सकता है।?]

इन उपर्युक्त मन्त्रों का अप्रामाण्य 'दो चन्द्र हैं' इस वाक्य की भांति विपरीत अर्थ के बोधक होने से सिद्ध होता है।"...

अतः आपका आक्षेप निरर्थक है।

आपका दूसरा आक्षेप जूते के सम्बन्ध में है। वह आपने छल कपट से लिखा है। महर्षि दयानन्द जी तो अपनी "संस्कार विधिः" समावर्त्तन प्रकरणम् में लिखते हैं—"ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्"॥ पार० कां २। कं० ६। ३०॥

---

७. वही पृष्ठ १५६

८. "यजुर्वेद मिश्र भाष्य" प्रथम खण्ड, पृष्ठ १२१ [संवत् १९५९ वि० श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित]

९. हिन्दू संस्कार सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन।

पृष्ठ १२१ [सन् १९५७ ई० में चौखम्बा विद्या भवन, चौक वाराणसी द्वारा प्रकाशित]

इस मन्त्र से उपानह पादवेस्टन, पगरखा और जिसको ज़ोड़ा भी कहते हैं धारण करे।

जब महर्षि दयानन्द जी ने इसका हिन्दी अर्थ किया ही नहीं है तब उन पर आक्षेप कैसा ? यह आक्षेप आप पर होगा क्योंकि आपने अर्थ किया है।

ब्रह्मचारी जूते को पैर में पहनकर चलता है। क्या यह जूते की पूजा है ?

अतः—

"निराकार निर्विकार न पूजें पूजे छुरा जो नाइयों का।
अजब हाल 'भविष्य पुराण' में पौराणिक भाइयों का॥"

कविता आप पौराणिकों पर घटती है।

भागवत पुराण में आता है कि:—

"यस्यात्मबुद्धि कुणपेत्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यस्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचित, जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥"

[भागवत स्कन्ध १०, अ० ८४ श्लोक १३]

यहां "गोखर" का अर्थ विद्वानों ने "गाय वा बैल गदहा" अर्थ किया है। मेरे मित्र डा० श्रीराम ने 'अपनी पुस्तिका' संसार के पौराणिकों से ३१ प्रश्न" में "गोखर" का अर्थ गधा लिखा है। इस पर श्री माधवाचार्य शास्त्री अत्यन्त अशिष्टतापूर्ण आक्षेप करते हैं कि:—(पृष्ठ ४१, ४२) "श्री मद् भागवत के जिस श्लोक के आधार पर महाशय जी उक्त प्रश्न कर रहे हैं उसमें गधा तो कहीं लिखा नहीं बल्कि 'जनेस्व भिज्ञेषु स एव गोखरः' ऐसा लिखा है। संस्कृत ज्ञान शून्य महाशय को यहां 'ख' और 'र' बस दो अक्षर दीख पड़े तो उसे अपनी प्रखर मति के अनुसार उसका खर=गधा अर्थ सूझ गया, पर 'खर' शब्द के पहले जुड़ा हुआ जो 'गो' शब्द है वह उन्हें फूटी आंखों दीख न पड़ा, बोलो ऐसे गोखरों को हम कैसे समझाएं। श्री मान जी ! 'गोखर' गधे को नहीं बोलते किन्तु 'नीलगाय' नामक हरिण को बोलते हैं, जिसके पावों के खुर गधे की भांति बिना फटे हुए होते हैं और मुखाकृति गाय के समान होती है। सो भागवत में जड़ पदार्थों की पूजा करने वाले व्यक्ति को गोखर अर्थात् पशु तुल्य मूर्ख बतलाया है।" ❀

समीक्षा—श्री माधवाचार्य शास्त्री ने जो 'गोखर' का अर्थ 'नीलगाय' किया वह नितान्त अशुद्ध है। किसी भी कोषकार ने और न किसी भागवत के टीकाकार ने 'नीलगाय' अर्थ किया है। यह अर्थ तो आपकी कपोल-कल्पना है। कम से कम अपने अर्थ की पुष्टि में किसी कोष की तो प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिये था। संस्कृत कोषों में 'गो' का अर्थ 'गाय व बैल' आदि है और 'खर' का अर्थ 'गधा' है। अतः डा० श्रीराम का अर्थ उचित है।

आर्य जगत् के तीन विद्वान् श्रीयुत पं. सुखदेव[१०] जी 'विद्यावाचस्पति' दर्शन भूषण, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

पं० भूमित्र शर्मा आर्योपदेशक ११; पं० मनसाराम जी "वैदिक तोप" महोपदेशक १२ ने गाय, बैल और गधा अर्थ किया है।

सम्भवतः आपको यह आपत्ति हो कि उपर्युक्त तीनों आर्य समाजी हैं। अतः पांच पौराणिक टीकाकारों की टीकाएं नीचे दी जा रही हैं—

(क) **चूर्णिकाटीका**:—"अतएव यस्य पुरुषस्य देहेऽहं बुद्धिः स्त्री पुत्रादिषु स्वत्व बुद्धिः मूर्तावेव पूज्यबुद्धिः तथा जले एवं तीर्थ बुद्धिरस्ति स नरो

---

१०. 'पुराण-रहस्य' पृष्ठ १३ [सन् १९३६ ई० में श्री तुलसीराम जी "विशारद" १९ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता]

११. "मूर्ति पूजा समीक्षा" पूर्वार्ध, पृष्ठ ७६ [संवत् १९७४ वि० में भास्कर प्रेस, मेरठ नगर में मुद्रित व प्रकाशित]

१२. "आर्य समाज की मौत" का करारा जवाब "पौराणिक पोल प्रकाश" द्वितीय भाग, प्रथमावृत्ति पृष्ठ १२४९

❀ मूर्तिपूजा करने वाले पशुतुल्य मूर्ख होते हैं यह तो माधव जी ने भी स्वीकार कर लिया (विद्यार्थी)

वृषभ गर्दभ सदृशो द्वोयः। एवं विधा बुद्धिस्तत्त्व-विदां न भवति।"१३

इस 'चूर्णिकाटीका' के सम्पादक पाण्डेय पं० रामतेज शास्त्री व सहायक सम्पादक मण्डल पं० युगलकिशोर द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शास्त्री, पं० ब्रह्मशंकर मिश्र हैं। इस प्रसिद्ध टीका में 'गो खर' का अर्थ वृषभ=बैल और गर्दभ=गधा है। चार संस्कृत के पण्डितों की भी यही सम्मति है अन्यथा 'नीलगाय' अर्थ होता तो वे अवश्य पाद-टिप्पणी में लिखते।

(ख) साहित्यशास्त्री पं० रामतेज पाण्डेय कृत 'सामयिकी' भाषा टीका—"जिस प्राणी की वात, पित्ततथा कफ इन तीन धातुओं से बने शव तुल्य शरीर में ही आत्म बुद्धि है, जो स्त्री आदि को अपना मानता है, जिनकी केवल पार्थिव प्रतिमाओं में ही देवबुद्धि तथा केवल जल में ही तीर्थबुद्धि रहती है और जो ज्ञानी महात्माओं में कभी पूज्य बुद्धि नहीं रखता वह बैल और गधे के समान रहता है।" १४

शास्त्री जी ने बैल व गधा अर्थ किया है।

(ग) "सनातनधर्म पताका" पत्रिका के प्रसिद्ध सम्पादक पं० रामस्वरूप जी—"जिस को वात, पित्त कफ रूप तीन धातुओं से युक्त शव समान जड़ शरीर में ही 'यह मैं हूँ' ऐसा आत्म बुद्धि है, स्त्री पुत्रादिकों के ऊपर ही 'यह मेरे हैं' ऐसे अपने मन की है। ईश्वर देवताओं के दिव्य विग्रह को छोड़ कर केवल मृत्तिका पाषाण आदि की स्थूल मूर्ति में ही पूजनीय बुद्धि है, और तीर्थवासी साधुओं को तथा शास्त्र रूप तीर्थों को छोड़ कर केवल जल में ही तीर्थ बुद्धि रखता है। और तीर्थरूप साधुओं में वह सर्वरूप बुद्धि नहीं है। वह गोओं के तृण आदि को उठाने वाले गर्दभ के समान (पशु तुल्य) हैं।" १५

(घ) पं० चिम्मनलाल जी गोस्वामी शास्त्री, एम० ए० सम्पादक "कल्याण" तथा अन्य संस्कृत के विद्वानों ने भी 'गो, खर' का अर्थ 'गाय गधा' किया है। १६

(ङ) पौराणिक पं० कुतर्काचार्य श्री कालूराम शास्त्री, "तीन धातु (वात, पित्त, कफ) आत्मिक जो यह कुणुप (शरीर) है इसमें जो आत्म बुद्धि करता है वह अभिज्ञ (विद्वान्) जनों में बैल और गधा हैं।....." १७

अब श्री माधवाचार्य शास्त्री का 'नील गाय' अर्थ कहां गया। इस प्रकार अर्थ का अनर्थ करके अंधों में काना राजा और साधारण जनता की आंखों में धूलि-प्रक्षेप करते हैं। कहिए 'संस्कृत ज्ञान शून्य महाशय' आप हैं या नहीं? आपने डा०-श्री राम के ऊपर जितना व्यक्तिगत आक्षेप किया है वह सभी आक्षेप आप पर आता है। भागवतकार के मत में अब भी आप 'गो खर' हैं या नहीं यह आप स्वयं समझ लें।

आपको अपनी विद्वता का गर्व है, सच्चे महा-रथी हैं तो मेरे ग्रन्थ "नीर-क्षीर-विवेक" पर लेखनी उठाइए।

---

१३. "श्रीमद्भागवत चूर्णिकाटीका" पृष्ठ १३७ [संवत २०१४ वि० में गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर वाराणसी में मुद्रित व पण्डित पुस्तकालय, राजा दरवाजा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित]

१४. सन् ९५२ ई० में बम्बई प्रिंटिंग काटेज, बांस फाटक, वाराणसी में मुद्रित तथा पण्डित पुस्तकालय, राजा दरवाजा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित "श्री मद्भागवतं महापुराणम् 'सामयिकी, भाषा टीका सहितम् पृष्ठ ३१६.

१५. पं० शिवशर्मा जी महोपदेशक कृत "मूर्ति पूजा विचार" पृष्ठ ४४ से उद्धृत [सरस्वती प्रेस, मुरादाबाद में मुद्रित और शर्मा आर्य पुस्तकालय, सम्भल द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

१६. देखो—श्री मद्भागवत महापुराण भाषा टीका" द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ६३८ [गीता प्रेस गोरखपुर में मुद्रित व प्रकाशित।]

१७. "मूर्ति-पूजा" पृष्ठ ५१ [संवत् १९७८ वि० में मरचेण्ट प्रेस, कानपुर में मुद्रित तृतीयावृत्ति]

सम्पादकीय

"वेद प्रकाश" परिवार सदस्यों से—

वेद प्रकाश' का वर्ष जुलाई में समाप्त हो जाता है और वर्ष समाप्ति के साथ ही प्रायः ग्राहकों का वार्षिक शुल्क भी समाप्त हो जाता है। बहुत से बन्धु अपना शुल्क तो भेजते नहीं परन्तु पत्र न पहुँचने की शिकायत कर देते हैं। यह ठीक नहीं। अभी तक भी बहुत से सदस्यों का वार्षिक शुल्क प्राप्त नहीं हुआ है ऐसे सदस्यों के अंक के मुखपृष्ठ पर 'चन्दा समाप्त" की मोहर लगी हुई है वे महानुभाव अपना शुल्क शीघ्र भेजकर अपने कर्तव्य का पालन करें।

साथ ही प्रत्येक बन्धु को कम से कम दो दो सदस्य और बना कर वेदप्रकाश की परिवार संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे पत्र को अधिकाधिक उपयोगी बनाया जा सके।

डा० मार्क्स और मास्टर डीनः—'वेदप्रकाश' के पाठक डा० मार्क्स से तो भली भांति परिचित ही हैं आप अमरीका की वैदिक सोसायटी के अध्यक्ष हैं। आजकल आप भारत पधारे हुए हैं। ८-९ मास यहां रहकर वे भारतीय मतों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में उनका अध्ययन सुचारू रूप से चल रहा है। देवमुनि जी (पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड) उन्हें प्रतिदिन दो घण्टे अध्ययन करातें हैं। मास्टर डीन जो डा० महोदय के मित्र के सुपुत्र हैं गुरुकुल में रहकर भारतीय पद्धति से संस्कृत और वेदों का अध्ययन करेंगे। उनका नाम दिनेशकुमार रख दिया गया है और उनका अध्ययन भी आरम्भ हो गया है। वह हिन्दी में दो चार वाक्य भी बोलने लगा है।

उपदेशक विद्यालयः—मैंने उपदेशक विद्यालय के लिये दस विद्यार्थियों की मांग की थी परन्तु वह भी पूर्ण नहीं हुई। इसका खर्च कम से कम २००) मासिक होता। १० विद्यार्थियों से कम पर इतना धन व्यय करना मैं उपयुक्त नहीं समझता अतः इस योजना को स्थगित ही समझे। मैं इस समय शास्त्री कर रहा हूँ। शास्त्री सम्पूर्ण होने पर मैं स्वयं पढ़ाना आरम्भ करूंगा। उस दशा में खर्च तो कुछ भी होगा ही नहीं जितने भी विद्यार्थी होंगे यह योजना चालू हो जायेगी।

भक्त फूलसिंह जी बलिदान जयन्तिः—एक जुलाई को गुरुकुल भैंसवाल में और दो जुलाई को कन्या गुरुकुल खानपुर में भक्त फूलसिंह जी की जयन्ति धूमधाम से मनाई गई। श्री पं० सेवाराम जी की प्रेरणा और आग्रह पर मैं भी जयन्ति में सम्मिलित हुआ और महात्मा फूलसिंह जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

भक्त जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल भैंसवाल में लगभग २०० विद्यार्थी और कन्या गुरुकुल खानपुरमें ६५० कन्यायें शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। यह भक्त जी के त्याग, तपस्या, और बलिदान का ही फल है ऐसा मैं समझता हूँ। जहां इन गुरुकुलों को देख कर हार्दिक प्रसन्नता हुई वहां एक दुःख भी हुआ। वह यह कि भक्त जी ने जिस उद्देश्य और दृष्टिकोण को अपने सम्मुख रखकर इन गुरुकुलों की स्थापना की थी वह पूर्ण नहीं हो रहा है। भक्त जी अपने शिष्यों को आजीवन ब्रह्मचारी रहकर वैदिक धर्म की सेवा करने की प्रेरणा दिया करते थे। उन्होंने अपनी पुत्रियों से भी ऐसी ही आशा व्यक्त की थी परन्तु लगभग ४२ वर्ष में केवल श्री महामुनि जी अपने आपको भक्त जी के आदर्शों के अनुकूल बना पाये हैं।

गुरुकुल के छात्र और छात्राओं को भक्त जी के जीवन का बारम्बार पाठ कर उनके उद्देश्यों और मनोभावों के अनुकूल आजीवन ब्रह्मचारी रहकर वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार में भक्त जी के ही समान अपने जीवनों की आहुतियां देनी चाहिये। आज तो महात्मा फूलसिंह जी जैसे व्यक्तियों की ही आर्य समाज को आवश्यकता है। —विद्यार्थी

वेदप्रकाश की पञ्चवर्षीय योजना

३००० ग्राहक होने पर कार्यान्वित की जा सकेगी

आज सारा संसार योजना बना रहा है। "वेद प्रकाश" को और अधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने के लिये हमने एक पंच वर्षीय योजना तैयार की है। इस योजना के अन्तर्गत हम वेद-प्रकाश के सदस्यों को बढ़िया सफेद कागज पर वर्ष भर में ६०० पृष्ठ बड़े साइज के देंगे। सारे अंक एक ही साइज के होंगे। संख्या भी क्रमवार चलेगी। प्रथम अंक विशेषांक होगा जो लगभग २०० पृष्ठ का होगा। शेष अंकों में २४ पृष्ठ के स्थान पर ३२ पृष्ठ होंगे। वार्षिक मूल्य ५) होगा। कम से कम ३००० सदस्य होने पर ही यह योजना आरम्भ हो सकेगी। यदि प्रत्येक सदस्य हो-दो नये सदस्य बनाये तो यह कार्य कठिन नहीं है।

पांच वर्ष के पांच अंक ये होंगे—

१. वेदांक—विभिन्न विषयों पर ५२ वेद मन्त्रों की सुन्दर सुललित और मनोहर व्याख्या। जिन समाजों में उपदेशक वर्षों नहीं पहुँच पाते वहां कथा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी। प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या चार-चार पृष्ठों में होगी।

२. मनुस्मृति अङ्कः—महर्षि ने अपने ग्रन्थों में मनु के श्लोक खूब उद्धृत किये हैं। मनु के प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ कर शेष श्लोकों का इस में समावेश होगा। गूढ़ स्थलों पर टिप्पणियां होंगी और जो श्लोक वेद मन्त्रों का अनुवाद है पाद टिप्पणी में उन का भी निर्देश होगा।

३. उपनिषद अङ्कः—इस में ईश केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय और तैतरेय इन आठ उपनिषदों की कथा शैली पर भावपूर्ण और मनोहर व्याख्या होगी। पढ़ते-पढ़ते ही अर्थ समझ में आ जायेगा।

४. रामायणांकः—इस अङ्क में महर्षि बाल्मीकि जी द्वारा रचित रामायण के आधार पर सम्पूर्ण रामायण की कथा के अतिरिक्त रामायण सम्बन्धी सभी शंकाओं का समाधान होगा। जैसे क्या अहिल्या पत्थर हो गई थी? क्या सीता भूमि से उत्पन्न हुई थी, ? क्या रामचन्द्र मांस खाते थे। क्या लक्ष्मण जी १४ वर्ष तक सोये ही नहीं थे? क्या हनुमान आदि वानर थे। क्या सीता को पुनः वनवास दिया था? इत्यादि अनेक प्रश्नों के समाधान होंगे। महत्वपूर्ण श्लोकों का संग्रह भी होगा।

५. महाभारत अङ्कः—रामायण की भांति ही महाभारत की सम्पूर्ण कथा और महाभारत सम्बन्धी शंकाओं का समाधान।

इन विशेषांकों के अतिरिक्त हर वर्ष अनेक लघु विशेषांक भी मिलेंगे। प्रिय पाठक गण यदि आपको यह योजना पसन्द हो तो आज ही से उद्योग प्रारम्भ कर दीजिये। एक करोड़ आर्यों की संख्या में ३ सहस्र ग्राहक बनना अथवा बनाना कोई कठिन नहीं है।

५) में बड़े साइज के ६०० पृष्ठ, बढ़िया कागज और उत्तम छपाई मंहगा सौदा नहीं है।

नोटः—"वेद प्रकाश" का उद्देश्य धन कमाना नहीं है यही कारण है कि मैंने बिना किसी वेतन के अपनी सेवाएं दी हुई है और नाही प्रकशक की कोई आर्थिक लाभ है। एक सहस्र ग्राहकों में यह योजना नहीं चल सकती। ३ सहस्र ग्राहक होनेपर ही इस योजना अनुसार आपको विशेषांक मिल सकते हैं। यदि तीन सहस्र ग्राहक भी न बने तो हम ये अङ्क न दे सकेंगे।

'विद्यार्थी'

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
प० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इंजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेट्रर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	॥।)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	॥।=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	६)
लाख की खेती	॥।=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	॥।=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥।)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

अक्तूबर	१९६२
अश्विनी	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	३

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

सूचना

जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है उनके अंक पर चन्दा समाप्ति की मोहर लगी है। कृपया ३) वार्षिक मूल्य भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या जो कि पते के साथ लिखी रहती है अवश्य लिखें। पत्र व्यवहार में भी संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। —व्यवस्थापक

सत्यार्थ प्रकाश

वैदिक साहित्य के महापंडित

श्री भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर

की देख रेख में

मोटे अक्षरों के सत्यार्थप्रकाश का
बढ़िया व सस्ता संस्करण
शीघ्र छप कर तैयार
हो रहा है।

मूल्य की घोषणा अगले अङ्क में

इस संस्करण की विशेषताएं

(१) श्री पं० भगवद्दत्त जी की विशेष स्थानों पर अत्यावश्यक टिप्पणियां होंगी।

(२) प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का संकेत होगा।

(३) प्रत्येक स्तम्भ (पैराग्राफ) पर एक क्रमांक होगा।

(४) अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण सूची तथा विषय सूची होगी।

(५) मोटे अक्षर बढ़िया कागज व मजबूत जिल्द होगी।

★

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र बाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
प० गुरुदत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इंजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेटर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागबानी	२॥)
आम की बागबानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

इस्लाम के 'स्वर्ग-नरक' पर महर्षि दयानन्द जी की आलोचना का प्रभाव

[वैदिक गवेषक आचार्य शिवपूजन सिंह 'पथिक']

—❀—

वहिश्त, जन्नत (स्वर्ग) का वर्णन कुरान में आता है:—

"और आनन्द का सन्देशा दे उन लोगों को कि ईमान लाए और काम किए उनके वास्ते विहिश्तें हैं जिनके नीचे से चलती हैं नहरें जब उसमें से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि वह वो वस्तु हैं जो हमें पहिले इससे दिये गये थे और उनके लिए पवित्र बीवियां सदैव वहाँ रहने वाली हैं।

[मं० १। सि० १। सू० २। आ० २५]१"

"कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिनमें नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीवियां हैं अल्लाह की प्रसन्नता से अल्लाह उनको देखने वाला है साथ बन्दों के [मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १४]"२

"और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले जब देखेगा तू उनको अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुये॥ और पहनाये जावेंगे कँगन चाँदी के और पिलावेगा उनको रब उनको शराब पवित्र॥ [मं० ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९।२१]" ३

"बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार। और प्याले हैं भरे हुए॥ जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ बाँधकर॥" [मं० ७। सि० ३०। सू० ७८। आ० २६। ३४। ३८] ४

इस प्रकार जन्नत का वर्णन कुरान शरीफ में बहुत स्थलों पर आया है जिनमें से सूरा ५५ और ५६ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ वाक्यों का अनुवाद श्री ख्वाजा हसन निज़ामी ने निम्नलिखित प्रकार से दिया है:—

"जन्नत (स्वर्ग) में ये लोग जड़ाऊ सिंहासनों तथा कामदार बिछौनों पर तकिया लगाये हुए बड़े आनन्द मङ्गल के साथ विराजमान होंगे। गिल्मान जो सदा बहार फूल की तरह सर्वदा लड़के ही बने रहेंगे उनके पास (उत्तम २ शर्बतों के भरे हुए) गिलास और कूजे और ऐसी पवित्र तथा स्वच्छ मदिरा के प्याले ला रहे होंगे कि जिसके पीने से न कुछ उन्माद होगा और न उन्माद उतरते समय जो शिर पीड़ा होती है वह शिर पीड़ा होगी और न बुद्धि खराब होगी। और पीने की वस्तुओं के अतिरिक्त जो मेवा वह खाना पसन्द करेंगे (वह उनके लिए विद्यमान होंगा) और मेवा के अतिरिक्त आत्मा को प्रसन्न तथा प्रफुल्लित करने के लिए उनके लिए खज़ानों में सेंते हुए (चमकदार) मोतियों की तरह गोरी गोरी और मृगनयनों के सदृश बड़े २ नेत्रों वाली (रूपवती) स्त्रियां भी होंगी। वास्तव में यह सब कुछ उस मन मारने और उन शुभ कर्मों का प्रतिफल है जो दुनिया में किया करते थे। इत्यादि।"

[कुरान का हिन्दी अनुवाद—ख्वाजा हसन निजामी दहलवी कृत, पृष्ठ ७६८]

---

१. सत्यार्थप्रकाश, चतुर्दश समुल्लास, समीक्षा सं० ९

२. वही, समीक्षा सं० ४६

३. वही, समीक्षा सं० १५०

४. वही, समीक्षा सं० १५१

ठीक इसी प्रकार का अनुवाद पिक्थाल, रॉडवेल डिप्टीनज़ीर अहमद साहब ने भी किया है।

महर्षि दयानन्द जी ने इनकी समीक्षा की है:—

"भला यह कुरान का बहिश्त संसार से कौन सी उत्तम बात वाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं और इतना विशेष है कि यहां जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं, किन्तु यहां की स्त्रियां सदा नहीं रहतीं और वहां बीबियाँ अर्थात् उत्तम स्त्रियां सदा काल रहती हैं तो जब तक क़यामत की रात न आवेगी तब तक उन विचारियों के दिन कैसे कटते होंगे?....."

[सत्यार्थप्रकाश, १४ वां, समु० समीक्षा सं० ९]

"भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यापन? इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है? यह पक्षपात क्यों करता है? जो बीबियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं और जो कयामत की रात से पहले हीं वहां बीबियों को बुला लिया तो उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिया? और कयामत की रात में सब का न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा? यदि वहीं जन्मी हैं तो कयामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं? जो उनके लिए पुरुष भी हैं तो यहां से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को खुदा बीबियां कहां से देगा? और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाईं वैसे पुरुषों को वहां सदा रहने वाले क्यों नहीं बना था?....."

[सत्यार्थप्रकाश, १४वां समु०, समीक्षा सं. ४६]

"क्यों जी मोती के वर्ण से लड़के किस लिए वहां रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा या स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्टजन करते हैं उसका मूल यही कुरान का वचन हो। और बहिश्त में स्वामी सेवक भाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से दुःख तथा पक्षपात क्यों है? और जब खुदा ही मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहां बहिश्त में स्त्री पुरुष समागम और गर्भस्थित और लड़के वाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उनका विषय सेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये? और बिना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उनको बिना ईमान लाने और खुदा की भक्ति करने से बहिश्त मुफ्त मिल गया। किन्हीं विचारों को ईमान लाने और किन्हीं को बिना धर्म के सुख मिल जाय इससे दूसरा बड़ा अन्याय कौन सा होगा?"

[सत्यार्थप्रकाश, १४वां समुल्लास, समीक्षा सं. १५०]

महर्षि दयानन्द जी की उपर्युक्त आलोचनाओं को अत्यन्त कठोर समझा जाता है और इसको परिवर्तन करने की सम्मति सुधारक आर्यसमाजियों को दी जाती है पर प्रसिद्ध मुस्लिम नेता, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी के संस्थापक सर सय्यद अहमद खां ने "तफ़सीरूल कुरान" में बहिश्त की जो कल्पना मुसलमानों में मानी जाती है उनकी कठोर शब्दों में आलोचना की है।

सर सय्यद अहमद खाँ लिखते हैं:—

"यह समझना कि जन्नत (स्वर्ग) मिस्ल एक बाग के पैदा हुई है, उसमें सङ्गमर्मर के और मोती के जड़ाऊ महल हैं। बाग में शराब व सरसब्ज़ दरख्त (वृक्ष) हैं, दूध व शराब व शहद की नदियां बह रही हैं, हर किस्म का मेवा खाने को मौजूद है। साकी व साकिनें निहायत खूबसूरत चांदी के कंगन पहने हुए जो हमारे यहां की धोसिनें पहनती हैं शराब पिला रही हैं। एक जन्नती हूर के गले में हार डाले पड़ा है, एक ने रान पर सर धरा है, एक छाती से लिपटा रहा है, एक ने जानवख्श का बोसा लिया है, कोई किसी कोने में कुछ कर रहा है, कोई किसी कोने में कुछ ऐसा बेहूदापन है जिस पर ताज्जुब (आश्चर्य) होता है। अगर बहिश्त (स्वर्ग) यही है तो वे मुबालगा (बिना किसी अत्युक्ति के)

हमारे खराबात (वेश्यालय) इससे हजारगुना बेहतर हैं।"५

"एक कूड़ मगज मुल्ला या शहवत परस्त (विषय लम्पट) ज़ाहिद यह समझता है कि दर हकीकत (वास्तव में) निहायत अनगिनत हूरें मिलेंगी, शराबें पीयंगे दूध व शहद कीं नदियों में नहायेंगे और जो चाहेंगे व मजे उड़ायेंगे। इस लम्ब व बेहूदा ख्याल से दिन रात अवामिर के बजालाने की कोशिश करता है।"६

सर सय्यद अहमद खां की इस कठोर आलोचना से तो महर्षि दयानन्द जी महाराज की अलोचना कुछ भी कठोर नहीं वरन् अत्यन्त युक्तियुक्त कोमल और तथ्यपूर्ण है। कुछ लोग अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३४ मन्त्र २, ५, ६ में 'स्वर्ग का वर्णन' बतलाते हैं जिसकी प्रतिलिपि मुसलमानों ने की है।

"अनस्था: पूता: पवनेन शुद्धा: शुचय: शुचमपि यन्ति लोकम्। नैषां शिश्नं प्रदहाते जातवेदा: स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्॥ २॥

एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश। आण्डीकं कुमुदं सं तनोति विसं शालूकं शफको मुलालो॰। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वा: स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना। उपत्वा तिष्ठन्तु पुस्करिणी: समन्ता:॥ ५॥

घृतह्रदा मधुकूला: सुरोदका: क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वा: स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना। उपत्वा तिष्ठन्तु पुस्करिणी: समन्ता:॥ ३॥

अर्थ:—"परमात्मा की उपासना एवं ज्ञान करने वाले ब्रह्मचारी गण ऐसे होने चाहिए कि वे विकार रहित, बलिष्ठ हों प्राणायाम, आचार, विचार से पवित्र हों, ऐसे होकर वे शुद्ध लोक (गृहस्थलोक) को प्राप्त होते हैं। ईश्वर इनकी कामेन्द्रिय को नष्ट नहीं करता चाहे गृहस्थ लोक में इनके आस-पास बहुत सम्बन्ध की स्त्रियां रहती हैं॥२॥"

"यह गृहस्थाश्रमयज्ञ अन्य यज्ञों से बहुत श्रेष्ठ तथा विश्व में फैला हुआ है। उस सर्वव्यापक परमात्मा को परिपक्व कर ज्ञानी पुरुष गृहस्थाश्रम को प्राप्त करता है। और गृहस्थाश्रम में आकर मनोहर सरोवर में गोल २ अण्डाकृति कमल, कमलनाल कमलकन्द, शफक प्रभृति कमल विशेषों को फैलाता है अर्थात् ऐसे २ सुन्दर फूलों को लगाता है। हे गृहस्थ! ये गृहस्थोपयोगा शक्तियां तुझे प्राप्त हों और उस सुखमय गृहस्थाश्रम में आनन्द को उत्पन्न करती हुई शुभ परिणाम वाली तथा नाना प्रकार से आत्मा को पुष्ट करने वाली ये सब शक्तियां तुझे प्राप्त हों।" ५॥+

"घृत जिनके उदर में है शहद जिनके किनारों तक भरा हुआ है, (सुरोदका:) देवों का जल= अभिस्रावित जल जिनमें भरा है, तथा जो दूग्ध, सामान्य जल तथा दही के भरे पड़े हों, ऐसे कलशों से प्रवाहित होती हुई धाराएं तुझे प्राप्त होती रहें। और सुखमय जीवन के इस गृहस्थाश्रम में आनन्द को उत्पन्न करती हुई वे धारायें उपस्थित रहें। साथ ही तेरे गृह के समीप नाना प्रकार के छोटे २ ताल भी रहें।

अर्थात्—तेरे गृह में घृत, शहद, शुद्ध जल, दुग्ध, साधारण जल तथा दही के भरे कलश सदैव विद्यमान रहें और इन पदार्थों की सतत् प्रवाहित होती धाराओं द्वारा तू प्रसन्न रहे। साथ ही तेरे गृह के समीप बहुत से छोटे २ ताल से हों। यही गृहस्थाश्रम रूपी स्वर्गलोक है॥ ६॥

उपर्युक्त मन्त्रों के अर्थ पाश्चात्य तथा उनके चरण चिह्नों पर चलने वाले उच्छिष्ट भोजी भारतीय विद्वान् इस प्रकार किये हैं कि स्वर्ग में घी, मधु, सुरा (शराब) क्षीर, दूध, जल और दही से पूर्ण धारायें बहती हैं और मनुष्य वहां जाकर अपनी इन्द्रियों से बहुत सी स्त्रियों का सुख भोग करता

५. तफ़सीरुल कुरान, भाग १ पृष्ठ ४४
६. वही पृष्ठ ०७
+ पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने इस मन्त्र का अर्थ 'विस्टारों यज्ञ' परक लगाया है —लेखक

है। और यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों और पुराणकारों ने इन्हीं मन्त्रों के आधार पर अपने २ 'बहिश्त' और 'स्वर्ग' की कल्पना की है और यह भी कि वे मन्त्र में आये 'बर्हिष्ठ' शब्द से फारसी का 'बहिश्त' शब्द बनाया गया है। ऐसा अर्थ करने वाले एक मौलिक नियम का जो प्राचीन भाषाओं का अर्थ करने के लिए यह है कि प्राचीन ग्रन्थों का अर्थ तत्कालीन साहित्य और उसमें प्रचलित अर्थों के आधार ही पर किया जाया करता है इसी नियम के आधार पर वेदों का अर्थ वैदिक साहित्य, निरुक्त, निघण्टु और ब्राह्मणादि ग्रन्थों की सहायता ही से करना चाहिए न कि प्रचलित शब्दार्थ के आधार पर।

पाश्चात्य विद्वानों में से जिन्होंने इस विषय का अध्ययन किया है उन्होंने भी मुसलमानी बहिश्त की कठोर आलोचना की है।

मार्कस डॉड्स एम० ए०, डी० डी० (Marcus Dods M. A., D. D.) अपनी पुस्तक में लिखते हैं :— " Such passages frequently Occur in the early Suras of Koran and I think a Candid mind must own to being some what shocked and disappointed by the low ideal of perfected human bliss set before the Mohammedans." 7

कर्थात्—"ऐसी पंक्तियां कुरान के पूर्व सुराओं में स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं और मैं समझता हूं कि मुसलमानों के सम्मुख पूर्ण मानव कल्याण के अधम आदर्शों के द्वारा निष्कपट व्यक्ति को आघात और निराशा की ही प्राप्ति होगी।"

पादरी गैरिड्नर नामक विद्वान् ने "रिप्रोच आफ इस्लाम" (Reproach of Islam) नाम के ग्रन्थ में "हीव्न एण्ड हेल इन इस्लाम" (Heaven and hell in Islam) शीर्षक के नीचे लिखा है कि—

"There is indeed little in the representation of paradise given in the Kuran and expanded by the Commentators to uplift the soul. It is first and foremost a garden of delights, of either a gaudy or a sensual nature. It is true, that in one or two places, the vision of Gold is set down as the greatest joy of all, and the most spiritual of Mus lim doctors have not failed to seize that point and to attempt to spiritualise the gross imagery employed. But these attempts have been a failure. The Iarge mass of Muslim always have taken and always will tske the description of paradise in the Kuran as literaly."8

अर्थात्—"कुरान में जो स्वर्ग का स्वरूप वर्णित है जिसको भाष्यकारों ने व्याख्या की है उसमें आत्मा को उत्थान करने वाली चीज वास्तव में कम है। यह प्रथम और प्रधानतया एक आमोद-प्रमोद की वाटिका है, जो आडम्बरमय या भौतिक सुखमय है। यह सत्य है कि एक दो स्थानों पर ईश्वर दर्शन को सब से बड़े आनन्द के रूप में वर्णित किया गया है और आध्यात्मिक प्रकृति वाले कुछ मुस्लिम विद्वानों ने इसके आधार पर कुरान में प्रयुक्त स्थल कल्पना को आध्यात्मिक सिद्ध करने का प्रयत्न करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, किन्तु ऐसे प्रयत्न सर्वथा असफल सिद्ध हुए हैं। मुसलमानों की बड़ी संख्या स्वर्ग के स्वरूप को कुरान में वर्णित शब्दों के अनुसार ही भौतिक लेता रही है और सदैव लेती भी रहेगी।"

इस कल्पना के दोष को प्रदर्शित करते हुए इस विद्वान् ने आगे लिखा है:—

"The curse of Koranic imagery in that its most direct and significant appeal is Carnal, A unique chance to uplift, to spiritualise was lost. On the country, it was turned into a unique means of stardardising the

७. "Mohammed, Buddha and Christ" PP ४९ तुलना करो मासिक "सार्वदेशिक" वर्ष २१, अप्रैल १९४५ ई०, अङ्क २, पृष्ठ १०

८. पादरी डब्ल्यू० एच० टी० गैरिड्नर कृत "दी रीप्रोच ऑफ इस्लाम" पृष्ठ १५२

low level at which ordinary fallen human nature in all too content to live. The imagery of heIl is similarly material and its elaborate and terrible details are intended to be interpreted in a strictly material sense. All the descriptions of both heaven and hell, intermediate state, resurrection and Judgment are then thoroughly materialistic. "9

अर्थात्—"क़ुरान की बुराई यह है कि इसकी सीधी और उद्बोधक प्रार्थना भग विलास सम्बन्धी है। आत्मा को, ऊंचा उठाने वा आध्यात्मिकता को बढ़ाने का अवसर इसने खो दिया। इसके विरुद्ध इसने ऐसे हीन परिमाण को सर्वथा अपना लिया जिस पर रहने में हो साधारण पतित मानवीय प्रकृति सन्तुष्ट रहती है। इसी प्रकार नरक की कल्पना भी सांसारिक है और इसके विस्तृत और भयंकर वर्णन बिल्कुल शब्दशः लिए जाने के लिए हैं। स्वर्ग नरक, माध्यमिक स्थिति, पुनरुत्थान और प्रलय के सब वर्णन स्पष्टरूप से भौतिक हैं।"

मुसलमानों के विचारः—

कवि गालिब कहते हैंः—

"हमको मालूम है जन्नत की हकीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को गालिब यह खियाल अच्छा है।१०

कवि शेख इब्राहीम का कथन हैः—

"कब हक़ परस्त ज़ाहिद जन्नत परस्त है।
हुरों पै मर रहा है यह शहवत परस्त है॥"११

उर्दू के सुप्रसिद्ध **कवि दाग़** ने कहा हैः—

"जिसमें लाखों बरस ही हूरें हो।
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई॥" १२

श्री अब्दुलग़फ़ूर बी० ए० कहते हैं—"स्वर्ग सम्बन्धी कुरान की शिक्षा और भी कुत्सित और घिनावनी है। सच पूछो तो कुरान की शिक्षा ने स्वर्ग को ऐसा बुरा घर बना दिया है कि जहां जाना भले मानसों का काम तो कदापि नहीं है। परन्तु कितने ही मूर्ख लोग स्वर्ग की बात ठीक मानकर रात-दिनउसकी प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं।"१३...

स्वर्ग वालों को लड़के भी मिलेंगे जो बिना दाढ़ी मूंछ के युवा होंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि लड़कों की वहां क्या आवश्यकता है? लड़के किनको मिलेंगे पुरुषों को अथवा स्त्रियों को? न्याय तो यही चाहता है कि जब एक २ पुरुष को बहुत सी हूरें मिलेंगी तो एक २ स्त्री को बहुत से युवा लड़के मिलने चाहियें। परन्तु कुरान से इसका निबटारा नहीं है बुद्धिमान तथा न्याय प्रिय पुण्य स्वयं इसका निबटारा कर सकते हैं। मैं खुदा से प्रार्थी हूँ कि वह सब को उपरोक्त स्वर्ग से बचावे।"१४

महर्षि दयानन्द जी की आलोचना का इस्लाम पर प्रभाव

मौलाना मुहम्मद अली एम. ए. तथा अब्दुल्ला यूसफअली ने अपने कुरान के अंग्रेजी अनुवादों में कुरान विषयक कल्पनाओं को आलङ्कारिक तथा आध्यात्मिक बताने का प्रयास किया है जो खींचातानी प्रतीत होती हैं।

मौलाना मुहम्मद अली का सूरा ६३ के मुख्य अंशों का अनुवाद यों हैः—

"12. In the gardens of bliss. 15On thrones in wrought. 16. Reeling on them,

९. वही, पृष्ठ १५३
१०. पं० नरेन्द्र जी कृत "महर्षि दयानन्द और चौदहवां समुल्लास "प्रथम संस्करण, पृष्ठ २८
११. वही
१२. वही पृष्ठ २८ नं० २९
१३. "तर्क इस्लाम" पृष्ठ २७ [पुस्तक भण्डार, जयपुर द्वारा प्रकाशित]
१४. वही, पृष्ठ ३०, ३१

facing one another. 17. Round about them shall go youths never altring in age. 18. with goblets and ewers and a cup of pure drink. 20 and fruits such as they choose21. and the flesh of foul such as they desire. 22 and pure beautiful ones. 23 The like of the hidden pearls. 24 A reward for what they did 35. We have made them to grow into a new growth. 36And we have made them virgins 37. loving, equals in age 38 For the sake of the companions of good luck."15

इस अनुवाद में बागों, पलङ्गों, फलशों, शराब आदि के प्यालों, पक्षियो के मांस, सुन्दर तरुणी हूरों प्रभृति का वर्णन है तो भी समालोचकों के आक्षपों से बचने के लिये मौलाना मुहम्मद अली ने इस वर्णन को आलाङ्कारिक व आध्यात्मिक सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है। भूमिका में उन्होंने यहां तक लिख दिया है कि:—

"The abiding place of the righteous is generally said to be gardens in which rivers flow, the rivers corresponding to faith and the trees of the garden corresponding to the good which a man does.

The descriptison of paradise as a garden with rivers flowing in it is how ever only a parabls...The blessings of paradise can not be things of the world."16.

अर्थात्—"धार्मिकों का निवास स्थान बाग कहे जाते हैं जिन में नदियां प्रवाहित होती हैं जो विश्वास की प्रतिनिधि हैं और उस बाग के वृक्ष मानवकृत कर्मों के प्रतीक स्वरूप हैं।

स्वर्ग का एक बाग के रूप में वर्णन जिसमें नदियां प्रवाहित हो रही हैं। एक अलङ्कार है।... स्वर्ग के सुखों की इस जीवन में कल्पना नहीं की जा सकती और इसलिये वे इस विश्व की वस्तुएं नहीं हैं।"

महर्षि दयानन्द जी की समालोचना से बचने के लिए यह नवीन आध्यात्मिक कल्पना की गई है, परन्तु कुरान के शब्दों से जिनमें स्पष्टतया बागों, नदियों, शराब के प्यालों, पक्षियों के मांस, हूरों, गिल्मान प्रभृति का वर्णन है, समर्थन नहीं होता है।

श्री अब्दुल्ला यूसफ़ अली के अनुवाद में भी निम्न अर्थ हैं:—

"15. They will be on thrones, ever usted with gold and precious stones. 16. Reclining on them, facing each other 17.Round about them will serve, youths of perpetual freshness, 18 With goblets (shining, breakers and cups filled out of clear flowing fountains' 19 And with fruits, any that they select 20 And the flesh of fowls, and that they may desire, 21 And there will be companions with beautif ul big and lustruous eyes. 22 Like unto pearls well guardd. 23 A reward for the deeds, of their past lives."17

इसमें यद्यपि, तकिये, प्याले, गिल्में, हूर, फल, पक्षियों के मांस प्रभृति को सत्ता स्पष्ट है तथापि इनको जबर्दस्ती आध्यात्मिक वा आलाङ्कारिक, सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

सन् १९४४ ई० में ताज कम्पनी, लाहौर से कुरान का उर्दू में अनुवाद मुद्रित हुआ है जिस पर जनाब मुफ्ती मुहम्मद किफायत अल्ला प्रधान जमायते उलमाए हिन्द दिल्ली का प्रमाण पत्र है कि मैंने ताज लि० लाहौर को ख्वाहिश पर इस कुरान मजीद का मतन हरफ़ व हरफ़न पूरे गौर-इमजाने नजर से पढ़ा और जहां तक इन्सानी

15. Moulana Mohammed Ali's translation of the the Holy Quran chapter 56, PP. 536
16. I leid cinroduction PP. IXII.
17. The Holy Quoran translated by Yusafali, VoL III PP. 1485.

सही का ताल्लुक है मैं पूरे वसूक से कह सकता हूँ कि इस मसहफे मुकद्दिसे (पवित्र पुस्तक) मतन में कोई ग़लती नहीं रही। गल्तियों की दुरुस्ती भी मैंने अपनी निगरानी में करवा दी।"

उस में से स्वग विषयक आयतों का अनुवाद देना यहां उचित प्रतीत होता है जिससे भली भांति ज्ञात हो जाय कि महर्षि दयानन्द जी ने जिस आधार पर समालोचना की थी वह कितना ठीक था। उसमें लिखा है:—

"ऊपर चारपाइयों, सोने की तारों से बनी हुई के हैं—तकिए किए हुए ऊपर उनके आमने सामने फिरेंगे ऊपर उनके लड़के हमेशा रहने वाले, साथ आबखोरों के और आफ़तावों के और प्यालों के शराब साफ़ से नहीं सिर रखाए जायेंगे इससे और न बेजा बोलेंगे और मेवे इस किस्म से बदला उस चीज का कि वे करते और बिछौने बुलन्द तहकीक़ हमने पैदा किया और औरतों उनकी को पैदा करना पक्ष किया हमने उनको कुंवारी सुहाग-वालियां हम ऊपर वास्ते दाहिनी तरफ वालों के"

[पृष्ठ ७७७-८८८]

इस प्रकार यह सर्वथा स्पष्ट है कि कुरान में जिस प्रकार के जन्नत का वर्णन है वह सांसारिक है यहां तक कि हदीसों के अनुवाद में लिखा है कि—

"Abu Musa relates that the Apostle of God said, verily there is a tent for every Muslim in paradise, it is made of one pearl, its breadth is 60 kos and in every corner of it will be his wives; they will not see one another. The Muslims shall love them alternately.'

Abu said relates that the apostle of God said, 'He who is least amongst the people of paradise shall have eighty thousand slaves and seventy two women, and has a tent pitched for him of pearls, rubies and emeralds."18

अर्थात्—अब्बू मुसा ने बताया कि खुदा के पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) ने कहा था कि जन्नत में प्रत्येक मुसलमान के लिए मोतियों से बना हुआ तम्बू योगा। इसकी चौड़ाई ६० कोस होगी और इसके प्रत्येक कोने में उसकी स्त्रियां होंगी। वे एक दूसरे को नहीं देखेंगी। मुसलमान उनको बारीबारी से प्रेम करेंगे।

अब्बू ने कहा कि जो स्वर्गवासियों में सब से निचले दर्जे पर हैं उसको भी ८० हजार गुलाम और ७२ स्त्रियां और हीरे मोतियों से जड़े हुए तम्बू मिलेंगे।"

उपर्युक्त उक्तियों से जो सही बुखारी में प्रामाणिक तौर पर अंकित हैं मुस्लिम बहिश्त की भौतिकता में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं रहता जिसकी महर्षि दयानन्द जी कृत समालोचना ठीक ही है।

हूरों के सम्बन्ध में "इन्सायक्लोपीडिया आफ इस्लाम" वाल्यूम ३ में लिखा है:—

"When the believer enters. paradise he is welcomed by one of these Huries and a large number of them are at his disposal, he cohabits with each of them as often as he has fasted days in Ramzan and as often as he has performed good works besides and yet they ramain virgins. They are equal in age to their husbands. 33 years.

Albadavi observes that it is not agreed whether the Huries are earthly women or not."

[Encyclopedia of Islam Vol. III, PP. 337]

अर्थात्—"जब एक विश्वासी मुसलमान बहिश्त में प्रवेश करता है तो उसका इन हूरियों में से एक स्वागत करती है और उनकी बहुत बड़ी संख्या

18. See Mishkat book XXIII. chapter XIII Quoted in the dictionary of Islam PP. 50 तुलना करो "सार्वदेशिक" का "सत्यार्थ प्रकाश का चतुर्दश समुल्लाङ्क" (३) वर्ष २१, अप्रैल १९४५ ई० अङ्क २, पृष्ठ १३-१४

उसके लिए विद्यमान रहती है। वह उनमें से प्रत्येक के साथ उतनी बार सहवास करता है जितने रमज़ान के दिनों में उसने उपवास किया होता है और अच्छे काम किये होते हैं तो भी वे कुमारियां ही रहती हैं। उनकी आयु उनके पतियों के समान ३३ वर्ष की होती है।"[१]

अल्वदावी कहता है कि इस विषय में सब सहमत नहीं हैं कि हूरियां पृथ्वी की स्त्रियां हैं या नहीं।"

इससे स्पष्ट हो गया कि महर्षि दयानन्द जी की इस विषयक आलोचना सही है।

पादरी ह्यूज लिखते हैं:—

"Muhammadan doctors, whether Sunni, Shiahor, Wahalbi are all agreed as to the literal interpretation of the Sensual enjoyments of the Muslim paradise, and very many are the books written giving minute particulars of the joys in store for the faithful."19

अर्थात्—"मुसलमान विद्वान् चाहे वे सुन्नी, शिया, वाहावी सभी स्वर्ग के भोगों की भौतिकता से सहमत हैं और मुसलमानों के लिए स्वर्ग में जो आनन्द मिलेंगे उनके विस्तार का प्रतिपादन करने वाली बहुत सी पुस्तकें विद्यमान हैं।"

अतएव नवीन कुरान के टीकाकारों की कल्पना के आधार पर महर्षि दयानन्द जी की सत्य आलोचना पर आरोप करना कितना अनुचित है।

महर्षि की समीक्षा को सामने रखकर मौलवी मुहम्मद अली अपने सिद्धान्त में सुधार करके भी दूसरे मतों पर आक्रमण करने से नहीं चूके। वह लिखते हैं:—

"This idea of ceaseless advancement in Paradise is one which is peculiar to the Holi Quran and not the least trace of it is to be met within any other Scripture."

(भूमिका पृष्ठ LXVI)

अर्थात्—"स्वर्ग में इस समाप्त न होने वाले अभ्युदय का विचार कुरान शरीफ की अपनी विशेषता है और इसका थोड़ा सा भी चिन्ह किसी दूसरे धर्म ग्रन्थ में नहीं मिलता है।"

मौलवी मुहम्मद अली का उक्त कथन मिथ्या है। वे स्वर्ग नरक की अपनी इस कल्पना को अन्य मुसलमानों से मनवालें तो फिर अन्य मतों पर आक्रमण करें। किन्तु यदि कुरान ऐसा ही मानता है तो कुरान का यह विचार न अनूठा है और न उसका अपना है। वेद में कहा है:—

"आरोहणमाक्रमण जीवतो जीवतोयनम्।"

[अथर्व० काण्ड ५, सूक्त ३०, मंत्र ७]

अर्थ—"ऊपर चढ़ना, आगे की ओर बढ़ना, यही प्रत्येक जीवन युक्त जीव की वास्तविक गति है।"

उन्नत होने की भावना सर्व प्रथम वेद ने दी, वेद से अन्य ग्रन्थों ने ली।

वेद और स्वर्ग

पौराणिकवर्ग इन्द्रलोक को 'स्वर्ग' मानता है जहां कल्पवृक्ष, दूध की नदियां व इन्द्र को परियां हैं। इसी प्रकार यवनों ने बहिश्त की कल्पना की है जहां हूर, गिलमें, शराब की नदियां हैं। इसी प्रकार अन्यान्य मतावलम्बियों ने भी कल्पनाएं की हैं।

वास्तव में 'स्वर्ग' शब्द का क्या तात्पर्य है? वैदिक दृष्टिकोण क्या है? इस पर ऊहापोह से यहां विचार किया जाता है।

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—"स्वर्ग जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना (है, वह) स्वर्ग कहाता है।" २०

'नरक—जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है, उसको नरक कहते हैं।" २१

पुनः "स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री को प्राप्ति का है।"२२ "नरक" जो दुःख

19. "Dictianary of Islam" PP. 45 २०. "आर्योद्देश्यरत्नमाला" सं० १४.
२१. वही, सं० १५. २२. सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्या मन्तव्यप्रकाशः सं० ४२.

विशेष भोग और उसकी सामग्री को प्राप्त होना है।"२३

इस लेख से स्पष्ट प्रकट होता है कि पौराणिक व यवन प्रभृति की कल्पना निर्मूल है। वेदों में ५० से भी अधिक स्थलों पर 'स्वर्ग' शब्द आया है परन्तु उनका अर्थ 'इन्द्रलोक' आदि नहीं है जैसा पौराणिक वर्ग मानता है।

सुख की सामग्री 'गृहस्थाश्रम' में ही प्राप्त होती है, अतः इसे ही 'स्वर्ग' कहा जा सकता है।

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३४ में 'स्वर्ग' का वर्णन—

"अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्॥"
मन्त्र २.

अर्थ—"(अनस्थाः) ब्रह्मचर्य के कारण जिनके शरीरों में हड्डियां नजर नहीं आतीं, (पूताः) शरीर से जो पवित्र रहते हैं, (पवनेन शुद्धाः) प्राणायाम की पवन अर्थात् वायु द्वारा जो शुद्ध हुए हैं, (शुचयः) आत्मा से जो पवित्र हैं, इस प्रकार के लोग (शुचिम् लोकम्) पवित्र गृहस्थ-लोक को (अपि यन्ति) प्राप्त होते हैं। (जातवेदाः) ब्रह्मचर्याश्रम में प्राप्त की हुई वेद विद्या की अग्नि (एषाम्) ऐसे पवित्रात्माओं की (शिश्नम्) कामेन्द्रिय को (न) नहीं (प्रदहति) प्रदग्ध करती, जलाती, (स्वर्गे लोके) सुख देने वाले गृहस्थ लोक में (एषाम्) इनकी (बहुस्त्रैणम्) बहुत स्त्रियां होती हैं।" २४

मन्त्र में "स्वर्ग लोक" शब्द के द्वारा गृहस्थ-लोक का वर्णन हुआ है। "स्वः गच्छन्ति अत्र इति स्वर्गः"। अर्थात् सुखी जीवन को जिस आश्रम में प्राप्त करते हैं उसे स्वर्ग लोक कहते हैं। वैदिक आश्रम व्यवस्था में गृहस्थ से अतिरिक्त तीनों आश्रमों में तपोमय जीवन का विधान है। केवल गृहस्थाश्रम में ही तप से मिश्रित सुखी जीवन व्यतीत करने की विधि है। इसलिए वैदिक परिभाषा में गृहस्थाश्रम को 'स्वर्गलोक' कहा गया है।

गृहस्थ लोक में उन्हीं लोगों को प्रवेश करना चाहिए जो कि ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचर्य के कारण हृष्ट-पुष्ट हो चुके हैं। जो अस्थि-पञ्जर हैं, जिनके शरीर पर पुष्ट मांस नहीं है, शरीर को देखते ही जिनकी हड्डियां नजर आती हैं—ऐसे कमजोर व्यक्तियों के लिए गृहस्थलोक में प्रवेश की विधि नहीं है। इस भाव को मन्त्र में "अनस्थाः" शब्द द्वारा दर्शाया गया है।

गृहस्थलोक में प्रवेश करने वाले व्यक्ति ऐसे होने चाहिएं जो कि सदा स्नान करने वाले हों, जो कि नित्य स्नान द्वारा अपने शरीरों को पूत बनाते रहें। तथा शुद्ध पवन में रहने वाले हों, और प्राणायाम की पवन द्वारा अपने शरीरों के अभ्यन्तर मलों को दूर कर अपने आप को शुद्ध करते रहें। और साथ ही अपनी आत्माओं को भी शुचि बनाते रहें, सात्विक भावनाओं द्वारा आत्मा के मल को भी दूर करते रहें। ऐसे व्यक्ति ही पवित्र गृहस्थलोक में प्रवेश पाने के अधिकारी होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर जिन लोगों ने वेदविद्या की अग्नि से अपनी कामवासनाओं के मल को भस्म कर दिया है तथा उस अग्नि की सत्ता से जिनकी कामवासनाओं के मल गृहस्थ में भी भस्मीभूत होते रहते हैं, गृहस्थ में भी आकर जिन लोगों की जननेन्द्रिय कामाग्नि की तीव्रता से प्रदग्ध नहीं होती—ऐसे व्यक्ति गृहस्थ में प्रवेश करके अपनी जननेन्द्रिय का सदुपयोग करते हैं, दुरुपयोग नहीं। वर्तमान समय के भोगमय संसार में, भोगियों की जननेन्द्रियां, अति

---

२३. वही, सं० ४३. २४. "वैदिकगृहस्थाश्रम" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २९६ २९७ तुलना करो—चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार' मीमांसा तीर्थ कृत "अथर्ववेद संहिता' भाषाभाष्य, प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ४८१-४८२, तथा पं० बुद्धदेव 'विद्यालंकार' विद्यामार्तण्ड कृत "स्वर्ग" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३९-४०

विषय वासना के कारण रुग्ण हो जाती हैं, प्रदग्ध हो जाती हैं।

गृहस्थ-रूपी स्वर्गलोक में स्त्रियां बहुत होती हैं। यहां स्त्रियों से अभिप्राय एक पुरुष की नाना पत्नियों का नहीं। गृहस्थलोक में माता है, चाची है, ताई हैं, बहिनें हैं, पुत्रियां हैं, पुत्र-वधुएं हैं, भावियां हैं,—इस प्रकार नाना स्त्रियां हैं। इनके होते हुए भी सयमी व्यक्ति की जननेन्द्रिय कामाग्नि से दग्ध नहीं होती। वेदों का यह स्वर्ग लोक कितना पवित्र और सुन्दर है।" २५

"एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो
विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति विसं
शालूकं शफको मुलाली।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना॥
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ता॥"
[अथर्व० ४। ३४। ५]

अर्थ—:"(यज्ञानाम्) नाना प्रकार के यशों में से (एषः) यह विस्तारी यज्ञ अर्थात् गृहस्थ यज्ञ (विततः) बहुत फैला हुआ है, (बहिष्ठः) यह बाहिर का यज्ञ है, मानसिक यज्ञ की न्याईं आभ्यन्तर यज्ञ नहीं है। (विष्टारिणम् पक्त्वा) इस विस्तारी यज्ञ का परिपाक करके व्यक्ति (दिवम् आविवेश) मुक्त होकर द्युलोक में प्रवेश पा जाता है। विस्तारी-यज्ञ को रचाने वाला सद् गृहस्थो (आण्डीकम्) अण्डे की आकृति वाले फूलों को (कुमुदम्) कम्मी के फूलों को, (विसम्) कमल की जड़ को तथा कमल-फूलों की (शालूकम्) शोभा वाले अन्य फूलों को (संतनोति) सम्यक् प्रकार से तथा विस्तृत रूप में लगाता है, (शफकः) वह शफाकृति अर्थात् खर की आकृति वाले फूलों की खेती करता है; (मुलाली) मूली आदि मूलों और कन्दों को लगाता है, इन वस्तुओं की धाराएं अर्थात् नदियां (मधुमत् पिन्वमानाः) मधुर पदार्थों से भरपूर होकर (त्वा उपयन्तु) हे सद्गृहस्थो! तुझे प्राप्त हों, (संमन्ताः) तथा तेरे घर के प्रान्त-भागों में स्थित (पुष्करिणी) कमलों-वाले-जलाशय (त्वा उपतिष्ठन्तु) तुझे उपस्थित हों, वैदिक गृहस्थ का दृश्य इतना सुन्दर तथा रम्य होना चाहिए कि उसमें धर्म-भावना के साथ-साथ तरह-तरह के फल-फूल हों, और वे बहुमात्रा में हों।"२६

"घृतह्रदाः मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः॥
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥"
[अथर्व० ४। ३४। ६]

अर्थ—"(घृतह्रदाः) घी के तालाबों वाली, (मधुकूलाः) मधु अर्थात् शहद आदि मधु पदार्थ जिनके किनारों पर बिखरे पड़े हों, (सुरोदकाः) शुद्ध तथा साफ-सुथरे उदकों वाली (क्षीरेण पूर्णाः) दूध से भरी हुई (एताः त्वा धाराः·····) ये सब धाराएं अर्थात् नदियां तुझे उपस्थित हों·····।

अभिप्राय यह है कि गृहस्थ में घी, मधु, शुद्ध जल, दूध, फल-रस, दही आदि की प्रभूत मात्रा होनी चाहिए। तभी गृहस्थ जीवन स्वर्ग का रूप धारण कर सकता है।"२७

"चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि
क्षीरेण पूर्णां उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः॥
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥"
[अथर्व० ४। ३४। ७]

---

२५. पं० विश्वनाथ विद्यालङ्कार कृत "वैदिक गृहस्थाश्रम" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २९७-२९८।

२६. वही, पृष्ठ ३०१-३०२ तुलना करो, पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' कृत "अथर्ववेद संहिता, भाषाभाष्य" प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ४८३,-४८४. २७. वही।

अर्थ—(चतुर्धा) चार प्रकार के (चतुरः) चार (कुम्भान्) घड़ों को (ददामि) हे सद्गृहस्थो ! मैं तुझे देता हूँ, रखने की आज्ञा देता हूँ। (क्षीरेण) जो कि दूध से (पूर्णाः) भरे हुए हों, (उदकेन) जल तथा रसों से भरे हुए हों, (दध्ना) दही से भरे हुए हा, (उदकेन) जल तथा रसों से भरे हुए हों। (एताः त्वा धारा·····) इन वस्तुओं की धाराएं अर्थात् नदियां तुझे उपस्थित हों·····। यहां "कुम्भों" को "धारा" कहा है।

"इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु
विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो
विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु॥
[अथर्व० ४। ३४। ८]

अर्थ—(इमम्) इस (ओदनम्) गृहस्थ-रूपी-ओदन को (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मण के गुण कर्मों वाले व्यक्तियों में (निदधे) मैं स्थापित करता हूँ, (विष्टारिणम्) जो गृहस्थ रूपी-ओदन विस्तारी यज्ञ-रूप है, (लोकजितम्) जिस द्वारा कि ससार पर विजय पाई जा सकती है, (स्वर्गम्) तथा जिसे कि स्वर्ग कहते हैं। (मे) मेरा (सः) वह स्वर्ग (मा क्षेष्ट) क्षीण न हो। (स्वधया पिन्वमानः) पितरों के सत्कार के योग्य अन्नों द्वारा यह स्वर्ग भरपूर रहे। (विश्वरूपा) विश्व अर्थात् संसार है रूप जिसका, ऐसी (धेनुः) गौ (मे) मेरी (कामदुघा अस्तु) कामनाओं को पूरा करने वाली हो। अभिप्राय यह कि गृहस्थ को विस्तारी यज्ञ तथा स्वर्ग का रूप वे व्यक्ति ही दे सकते हैं जो कि ब्राह्मणों के कर्मों वाले हों। अर्थात् जो कि ब्रह्मवेत्ता हों, त्यागी तपस्वी, निःस्वार्थी तथा परोपकारी हों।

ऐसे गृहस्थ द्वारा लोक विजय हो सकती है। ऐसा गृहस्थ स्वर्ग धाम है। मुझ द्वारा ऐसा स्वग क्षीणावस्था को प्राप्त न हो। इस स्वर्ग में पितरों का, बुजुर्गों का सत्कार मैं सदा करता रहूं, उनके योग्य अन्नों का संग्रह कर उन द्वारा मैं उनका पूजन करता रहूँ। इस प्रकार संसार रूपी-गौ मेरे रास्ते में बाधक न हो, अपितु मेरी कामनाओं को पूरा करने वाली हो।"२८

इस सूक्त पर आर्य-जगत् के प्रसिद्ध संन्यासी परलोकवासी **श्री महात्मा नारायण स्वामी जी** महाराज लिखते हैं,·····इन मन्त्रों के इसी प्रकार के या इनसे मिलते जुलते अर्थ प्रायः किए जाया करते हैं। परन्तु कुछ एक पश्चिमी लेखकों और उनका अनुकरण करने वाले कतिपय देशी विद्वानों ने भी इनके अर्थ इस प्रकार किए हैं कि स्वर्ग में, घृत, मधु, सुरा, दूध, जल और दही से पूर्ण धाराएं बहती हैं और मनुष्य वहां जाकर अपनी इन्द्रियों से बहुत सी स्त्रियों का सुख भोग करता है। और यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों और पुराणकारों ने इन्हीं मन्त्रों के आधार पर अपने २ बहिश्त और स्वर्ग की कल्पना की है और यह भी कि वे मन्त्र में आये बहिष्ठः शब्द ही से फारसी का बहिश्त शब्द बनाया गया है—ऐसा अर्थ करने वाले एक मौलिक नियम का, जो प्राचीन भाषाओं का अर्थ करने के लिये प्रयुक्त हुआ करता है, भूल जाते हैं; और यह नियम यह है, कि प्राचीन ग्रन्थों का अर्थ तत्कालीन साहित्य और उसमें प्रचलित अर्थों के आधार ही पर वेदों का अर्थ वैदिक साहित्य, निरुक्त, निघण्टु और ब्राह्मणादि ग्रन्थों की सहायता ही से करना चाहिए न कि प्रचलित शब्दार्थ के आधार पर। क्लिष्ट कल्पना के तौर पर जो अर्थ आधुनिक विद्वान् करते हैं यदि उसी को स्वीकार कर लिया जावे तब भी कुछ हानि नहीं है। वेद में स्वर्ग शब्द पितृलोक के लिए प्रयुक्त हुआ करता है। पितृलोक वा स्वर्ग में जाना, यह मृत्यु के बाद प्राणियों को दूसरी गति है। इस गति को प्राप्त प्राणी आवागमन से बाहर नहीं होते, किन्तु उसी चक्र में रहते हैं। अन्तर केवल यह है कि मनुष्य योनि में उत्पन्न तो होते हैं परन्तु वे मनुष्य होते हैं जिन्हें पिता कहते हैं और जिन्हें लेशमात्र भी दुःख नहीं भोगना पड़ता। इसलिए मनुष्य योनि में उत्पन्न हो कर यदि कोई स्वर्गाधिकार-मधु, घृत दुग्धादि का बहुतायत से इस्तेमाल

२८. वही।

करता हुआ गृहस्थ के सुख का भी उपभोग करता है तो इसमें आश्चर्य या अपवाद की कौन सी बात है ? इस पर दो आक्षेप हो सकते हैं (१) सुरापान-मन्त्र में आया 'सुरा' शब्द शराब के लिए नहीं हो सकता, इसलिए कि वेद मन्त्र में "सुरोदकाः" शब्द है जिसके शब्दार्थ 'सुर उदकाः' देवों का जल है। इस के सिवा वेद नशों के पीने का असंदिग्ध शब्दों में, अनेक जगह प्रतिवाद करते हैं। आजकल के कोषों में भी 'सुरा' शब्द के अर्थ जल या पान पात्र के किए गये हैं फिर सुरा शब्द के अर्थ यहां मद्य नहीं हो सकते, देवों का जल सोम रस आदि अनेक पेय हो सकते हैं। (२) दूसरे मन्त्र में स्वर्गगामियों के लिए "अनस्था" शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसके अर्थ अस्थि (हड्डी) रहित के है, फिर उन्हें मामूली मनुष्य योनि में उत्पन्न किस प्रकार कहा जा सकता है ? इसका उत्तर यह है कि अनस्थाः शब्द का अर्थ "विकार रहित" है। अनस्थाः के स्थान पर इसी लिए कई विद्वान् विदेह या विदेही लिखा करते हैं। विदेह का अर्थ यह नहीं है कि शरीर नहीं, किन्तु शरीर के सम्बन्ध से जो विकार उत्पन्न होते हैं उससे रहित होना अभिप्रेत हुआ करता है। जनक को विदेह कहने का भी यही भाव है। इसके सिवा अस्थि या अस्थ शब्द के अर्थ फल को गुठली (The kernal or stone of a fruit) के भी हैं। इसका भी तात्पर्य जहां तक फलों के भोज्य होने का सम्बन्ध है, निकम्मी और त्याज्य वस्तु ही के हैं। इसीलिए दोनों आक्षेप, इस प्रकार, निवारण हो जाते हैं।

दूसरे मन्त्र में आया शिश्न शब्द कर्मेंद्रियों के लिए उपलक्षण के तौर पर प्रयुक्त हुआ है। कर्मेन्द्रियों का सम्बन्ध केवल स्थूल शरीर से होता है अतः मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि इस दूसरी गति को प्राप्त प्राणी कर्मेन्द्रिय या स्थूल शरीर सहित होते हैं। मन्त्र में आए घृत, दूध, दही आदि शब्द भी, यही प्रकट करते हैं कि इनके उपयोग के लिए स्थूल शरीर का होना अनिवार्य है। इसके सिवाय शतपथ ब्राह्मण में एक जगह यही बात स्पष्ट शब्दों में लिख भी गई है:—

स ह सर्वतनूरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोके सम्भवति ॥
श० ४।६।१।१॥

अर्थात्—यह यजमान समस्त शरीर के साथ उस अगले (स्वर्ग) लोक में उत्पन्न होता है।

यहां साफ तौर से कह दिया गया है कि दूसरे (स्वर्ग) लोक में, "सर्वतनूरेव" सम्पूर्ण शरीर के साथ यजमान उत्पन्न होता है। इससे साफ जाहिर है कि स्वर्ग लोक में भी प्राणी इसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जैसे इस (पृथिवी) लोक में। यदि यह ठीक है कि पुराणी और कुरानियों ने अपने अपने कल्पित स्वर्गों का विचार अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग के उपर्युक्त विवरण ही से लिया है तो उन्होंने नकल करने में एक गलती की और वह गलती यह हुई कि उन्होंने अपने अपने स्वर्गों को मोक्षस्थान ठहराया जब कि वेद में वह आवागमन के अन्तर्गत ही एक विशेष (मनुष्य) योनि में उत्पन्न होने की अवस्था है और उससे मोक्ष प्राप्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है; मुक्ति उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है। २९

विद्यामार्तण्ड प० बुद्धदेव विद्यालङ्कार लिखते हैं:— "तात्पर्य यह कि यदि मनुष्य चाहते हैं कि उनका गृहस्थाश्रम 'स्वर्ग' अर्थात् परम सुख की ओर ले जाने वाला हो तो वह निम्नलिखित साधन करें।

(१) ब्रह्मौदन का अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत का खूब परिपाक करें।

(२) पवित्र भावना से इसमें प्रवेश करें।

(३) पदार्थों का उपयोग इस प्रकार करें कि अगले आश्रमों के लिए शक्ति बची रहे।

(४) घर अति सुन्दर हरियावल से युक्त हों।

---

२९. "अमृतवर्षा" द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १८३ से १८६ तक तथा साप्ताहिक पत्र "आर्यमित्र" का "ऋष्यङ्क", वर्ष ४४, कार्तिक ९९९८ वि० अङ्क ३९+४० पृष्ठ ३ से ५ तक प्रकाशित "अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग" शीर्षक लेख।

(५) धन-धान्य तथा घी-दूध की उनके घर में नदियां बहती हों।

(६) ब्राह्मणों का अन्नादि से सदा पालन करें।

(७) ब्राह्मण शेष वर्णों के प्रति अति वत्सल हों।

(८) ब्राह्मण प्रकृति के नये-नये तत्त्व खोजकर प्रजा को बताएं जिससे जहां दूध, जल, दधि, घी आदि दुर्लभ हों वहां भी उनकी धाराएं (उपतिष्ठन्तु) उपस्थित हो जावें।

यह है वेद का स्वर्ग। ३०

श्री अमरसिंह जी ने "अमरकोष" में लिखा है—"स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः" यहां पर उन्होंने 'स्व' 'स्वर्ग' और 'नाक' इन तीन शब्दों को पर्यायवाची लिखा है।

वेदों में 'नाक'—

"तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो
नाकमा क्रमतां तृतीयम्।"
[अथर्व० ९। ५। १]

अर्थ—"वह आत्मा (बहुधा) बहुत तरह के (महान्ति) बड़े २ (तमांसि) अज्ञानों को, शोक, मोह, लोभ, काम, क्रोध आदि को (तीर्त्वा) पार करके (अजः) स्वयं अपने को अजन्मा, नित्य जान कर (तृतीयम्) तीर्णतम, इन सब विघ्न बाधाओं से बहुत परे स्थित (नाकम्) सुखमय मोक्षधाम में भी (आ क्रमताम्) जावे। ३१

"नाकम्—स्वर्गो वै लोकों नाकः
[शतपथ ब्राह्म० ६। ३। ३। १४]

अर्थात्—'नाक' ही स्वर्गलोक है।

"स उत्तिष्ठेतो अभिनाकमुत्तमं……"
[अथर्व० ४। १४। ९]

अर्थ—"(सः) और वह अजन्मा जीवात्मा (इतः) इस देह से (उत्तमं नकं अभि) उत्तम आनन्दमय ब्रह्मलोक की ओर चला जाता है……" ३२

"वि नाकमख्यत्सविता वेरण्योऽनु
प्रयाणमुषसो विराजति।"
[यजु० १२। ३]

अर्थ—…(नाकम्) अत्यन्त सुख स्वरूप, स्वर्ग और मोक्ष को भी (वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता, उसका उपदेश करता है।……३३

"क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳहस्तेषु बिभ्रतः…।"
[यजु० १७। ६५। अथर्व० ४। १४। २]

अर्थ—"हे वीर पुरुषो! तुम लोग (अग्निना) अपने अग्रणी तेजस्वी, ज्ञानवान् नेता राजा और आचार्य के साथ (नाकम्) सुखप्रद……।"३४

"…दिवो नाकस्य पृष्ठात्…"
[यजु० १७। ६७; अथर्व० ४। १४। ३]

अर्थ—"…(नाकस्य) सर्व सुखमयः।……"३५

"अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो
दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव॥"
[अथर्व० ६। १२२। २]

अर्थः—"…(सः एव स्वर्गः) वही परम त्यागमय निःसंगता ही परम सुखप्रद दशा है।"३६

"उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा
एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः।"
[अथर्व० १२। ३। ३४]

अर्थ—"……(स्वर्गः) स्वर्ग के समान सुखमय राज्य को (गमय) प्राप्त करा।…" ३७

---

३०. "स्वर्ग" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४६-४७।

३१. पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' कृत "अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य" द्वितीय खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ६२१। ३२. वही, प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ३९८। ३३. पं० चयदेव शर्मा 'विद्यालंकार' 'मीमासातीर्थ' कृत 'यजुर्वेद संहिता" भाषाभाष्य प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ४६३। ३४. वही, पृष्ठ ७३९। ३५. वही पृष्ठ ७४०। ३६. पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' कृत "अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य" द्वितीय खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ १९९। ३७. वही, तृतीय खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ३७२।

"तन्वं स्वर्गो बहुधा विचक्रे
यथा विद् आत्मन्नन्यवर्णाम् ।"
[अथर्व० १२ । ३ । ५४]

अर्थ—"(स्वर्गः) सुखमय लोक, मोक्ष में जाने वाला पुरुष (तन्वं) अपनी देह को (बहुधा) बहुत प्रकार से (विचक्रे) विकृत करता है···।"३८

"त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां-
पतिर्वृषभऽइष्टकानाम् ॥"
[यजु० १३ । ३१]

अर्थ—"हे सूर्य ! प्रजापते ! तू (त्रीन्) तीन (स्वर्गान्) सुखदायी (समुद्रान्) समस्त पदार्थों के उत्पादक, तीनों लोकों और तीनों कालों को (सम् असृपत्) व्याप्त होता है।"···३९

इसी मन्त्र की व्याख्या में "शतपथ ब्राह्मण" काण्ड ७ अध्याय ५, ब्राह्मण १, कण्डिका ९ में लिखा हैं—'इमे वै त्रयः समुद्राः स्वर्गा लोकाः"।

"···दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः
स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ।"
[अथर्व० २ । ६४ । ५]

अर्थ—·····(स्वर्गं) उस पुण्यफल, सुखमय मोक्ष अवस्था को (याहि) प्राप्त कर ।"·····४०

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति
विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे
तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥"
[अथर्व० ६ । १२० । ३]

इस मन्त्र का पूर्वार्ध० अथर्व० ३।२८।४ में भी आया है।

अर्थ—"(सुहार्दः) उत्तम हृदयों वाले अर्थात् प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, सेवा, परोपकार आदि की भावनाओं वाले, (सुकृतः) तथा उत्तम कर्मों के करने वाले लोग (स्वायाः) अपने २ (तन्वः) शरीर के (रोगम्) रोगों को (विहाय) छोड़कर, (यत्र स्वर्गे) जिस स्वर्गलोक में अर्थात् गृहस्थलोक में जाते हैं, (मदन्ति) तथा वहां जाकर आनन्द प्रसन्न रहते हैं, (अंगैः) तथा अङ्गों को दृष्टि से (अश्लोणाः) जो लूले-लंगड़े तथा काने-बहरे आदि नहीं हैं, (अह्रुताः) तथा जीवन में जो कुटिल नहीं हैं—ऐसे लोग जिस स्वर्गलोक में जाते हैं, (तत्र) उस स्वर्गलोक में जा कर हम (पितरौ) माता-पिता को (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (पश्येम) देखें। मन्त्र में वैदिक स्वर्गलोक का वर्णन है। मन्त्र के वर्णन द्वारा ज्ञात हो रहा है कि गृहस्थ आश्रम में वे ही प्रवेश पाने के अधिकारी हैं, जो कि उत्तम हृदयों वाले तथा उत्तम कर्मों वाले हैं, जिनके कि शरीरों में कोई रोग विद्यमान नहीं है जो शरीर के अङ्गों की दृष्टि से ठीक हैं, अर्थात् जिनके अङ्गों में कोई न्यूनता या विषमता नहीं हैं, तथा जीवन मे कुटिल गतियों वाले नहीं हैं। इस स्वर्ग लोक में माता पिता आदि बुजुर्गों तथा सन्तानों के भी दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त है। अतः निश्चय से हम कह सकते हैं कि मन्त्र में गृहस्थाश्रम को ही स्वर्ग कहा गया है।"४१

पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार—"जहां उत्तम हृदय तथा परस्पर मैत्री रखने वाले पुण्यकर्मा अपने शरीर के रोगों से आरोग्य लाभ करके आनन्द पाते हैं, उस स्वर्गलोक में हम माता पिता तथा पुत्र दोनों का दर्शन करें।"४२

इस प्रकार वेद मन्त्रों के मनन से स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि 'स्वर्ग' शब्द पौराणिक स्थल विशेष द्योतक नहीं अपितु "सुख विशेष" और गृहस्थाश्रम का नाम है।

---

३८. वही, पृष्ठ ३८३। ३९. पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार कृत "यजुर्वेद संहिता भाषाभाष्य" प्रथम खण्ड, द्वितीया वृत्ति, पृष्ठ ५५१। ४०. चयदेव शर्मा विद्यालंकार कृत "अथर्ववेद संहिता भाषाभाष्य" प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ १८८।

४१. "पं० विश्वनाथ विद्यालङ्कार कृत" वैदिक गृहस्थाश्रम "प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३०४-३०५। ४२. "स्वर्ग" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १० तुलना करो पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार कृत "अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य" द्वितीय खण्ड, द्वितीया वृत्ति, पृष्ठ १९६।

नरक

कुरानशरीफ़ में नरक के लिए जहन्नुम, दोज़ख जहीम्, सईक, सकरं, हुतमह, लजमा तथा हाविये 'शब्द प्रयुक्त हैं।

नरक (दोज़ख) का वर्णन कुरानशरीफ में बहुत स्थलों पर आया है जिन में से सूरा २३, ५६, और ८८ अधिक स्पष्ट और प्रसिद्ध है। सूरा २३ में स्वर्ग और नरकवासियों की अवस्था को तुलना की गई है जो हम ख्वाजा हसन निज़ामी के हिन्दी अनुवाद में से उद्धृत करते हैं:—

"अल्लाह के बन्दों के लिये बंधी हुई जीविका और जाने हुए भोजन होगे। अर्थात् मेवे और वे अति सत्कार पूर्वक आनन्दकारी बागों में रहेंगे। सिंहासनों पर आमने सामने बैठा करेंगे। स्वच्छ मदिरा के प्याले घुमाए जायेंगे (ऐसी मदिरा जिस का) रङ्ग श्वेत होगा और पीने वालों के लिए बहु स्वादिष्ट होगी न उसमें नशा होगा और न उससे बुद्धि हीन होकर बकेंगे। और उनके निकट नीची दृष्टि रखने हारी सुन्दर नयन वाली हूरें होंगी ऐसी गोरी २ मानो वह शतुरमुर्ग के अण्डे हैं। (घरों में छिपाए हुए) "

[कुरान का हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ६३५]

क्या खुदा की ओर से यह सत्कार उत्तम है वा थूहर का वृक्ष हमने उस थूहर के वृक्ष को उद्दण्ड लोगों की परीक्षा ठहराया है। उसके फल ऐसे कुरूप हैं मानों सर्पों के फन हैं तो उनको (दोजखियों को) उसी के फलों को खाना है और इसी से पेट भरना है। पुनः इसके ऊपर उन्हें रक्त पीब मिला हुआ गर्म पानी मिलता है।

सूरा ५६ में दोज़खियों का वर्णन इस प्रकार के शब्दों में हैं:—

"ये दोज़ख की जलन में झुलसते होंगे और खोलते पानी में झुलसते और काले धुएं की छाहों में घुटते होंगे।

हे रसूल ! तुम अपने समय के क़यामत के न मानने वालों और कुफ़शिर्क़त करने वालों से कह दो कि हे पथ भ्रष्टो ! सत्य के झुटलाने वालो ! दोज़ख की दहकती हुई अग्नि में तुम अवश्य झोंके जाओगे और वहां थूहर जैसे कड़वे वृक्ष को खाओगे और उसी से अपने पेटों को भरोगे। फिर उस पर खौलता हुआ पानी पीओगे और कई दिन के प्यासे ऊंट के समान पीओगे।"

[कुरान का हिन्दी अनुवाद ख्वाजा हसन निज़ामी कृत पष्ठ ७६९]

ऐसा ही वर्णन सूरा ८८ में किया गया है:—

'दोज़खी लोग दहकती अग्नि में प्रवेश करेंगे और खौलते सोते का पानी उन्हें पिलाया जायगा और उनको उन कांटों के अतिरिक्त जिनको ज़रीअ कहते हैं और कोई खाना न मिलेगा।"

[कुरान का हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ८५६]

"सूरा ४४ में दोज़ख का वर्णन:—

"कुछ शक नहीं कि आख़िरत में थूहर का दरख्त बड़े मुजरिमों यानी काफ़िरों का खाना होगा जैसा पिघला हुआ तांबा और वह पेट में ऐसा खौलेगा जैसे झुलसता हुआ पानी खौलता है। इसके अलावा हम फ़रिश्तों को हुक्म देंगे कि इसको पकड़ो और घसीटते हुए जहन्नम (नरक) के बीचों बीच तक ले जाओ। फिर इसको यह सज़ा दो कि इसके सर पर झुलसता हुआ पानी डालो फिर हम दोज़खी को मुसीबत बढ़ाने को उसको कहेंगे। कि ले इस अज़ाब (पीड़ा) को मजे चख।"

[नजीर अहमद साहेब का कुरान का अनुवाद ख्वाजा हसन निजामी कृत अनुवाद में उद्धृत पृष्ठ ७११]

इन वर्णनों से नरक की भौतिकता में कोई शक नहीं रह जाता इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है:—

"...और नरक वाले सिंहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खाके पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोज़ख में होंगे तो कांटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पीयेंगे इत्यादि दुःख दोज़ख में पावेंगे।..."

[सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्दश समुल्लास समीक्षा सं० १४१]

महर्षि दयानन्द जी ने, नरक के सम्बन्ध में थोड़ी सी समीक्षा की है।

महर्षि दयानन्द जी की आलोचना का प्रभावः—

मौलवी मुहम्मद साहब नरक के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

"Is the idea of hell where punishment is not meant for torture but for purification, in order to make a man fit for spiritual advancement. [भूमिका पृष्ठ LXVI]

अर्थात्—"नरक का विचार भी वैसा है जहां दण्ड दुःख देने के लिए नहीं दिया जाता किन्तु पवित्रता के लिए, जिससे मनुष्य को आत्मिक उन्नति के योग्य बनाया जा सके।"

मौलवी साहब कुकर्मियों के दण्ड को अग्नि बता कर लिखते हैं:—

"In other words the spritual torments and mental pangs that are often felt by an evildoer in this very life assume a pulpable shape in the life after death."

[भूमिका पृष्ठ LXIA]

अर्थात्—"दूसरे शब्दों में आत्मिक क्लेश तथा मानसिक दुःख जो कि एक कुकर्मी इसी जीवन में अनुभव करता है, मरणोत्तर जीवन में मानसिक रूप धारण कर लेते हैं।"

मौलवी मुहम्मद साहब पुनः लिखते हैं:—

"Heaven and heel are not places of enjoyment and torture to be met with only after death, they are realities even here."

[भूमिका पृष्ठ LV]

अर्थात्—"स्वर्ग और नरक आनन्द और कष्ट भोगने के लिए स्थान विशेष नहीं हैं जो केवल मृत्यु के पश्चात् मिलते हैं, वे तो यहां की वास्तविकताएं हैं।"

महर्षि दयानन्द जी की आलोचना से बचने के लिए मौलवी मुहम्मद ने यह कल्पना की है।

पाश्चात्य विद्वानों ने महर्षि दयानन्द जी की अपेक्षा अधिक कठोर आलोचनाएं की हैं।

पादरी टी० पी० ह्यूज़ बी. डी. एम. आर. ए. एस. लिखते हैं:—

"Can any thing more awful be imagined than the teaching of Islam with regard to Hell ? To all but a favoured few there is no hope of happiness in future life. Mohammedanism is an utterly selfich religion. The doctrines of Koran with regard to torment of hell are devilisa." 43

अर्थात्—"इस्लाम की नरक विषयक शिक्षा से अधिक भयंकर क्या किसी शिक्षा की कल्पना की जा सकती है ? कुछ थोड़े से चुने हुए लोगों को छोड़कर परलोक में किसी को सुख की आशा नहीं हो सकती। मुसलमानी मत एक स्वार्थमय मत है। नरक की यातनाओं के सम्बन्ध में कुरान के सिद्धान्त शैतानी हैं।"

ईसाइयों के विषय में मुसलमानों की मनोवृत्ति वा कुरान की शिक्षा को प्रमाण सहित दिखाते हुए पादरी ह्यूज़ लिखे हैं:—

"No matter how holy the life of a christian may be, there is according to the Moslem teaching no escape for him from the dammation of hell, for the Koran, which cannot lie, says "who so ever follows any other religion than Islam, it shall not be accepted of him and in the next life he shall be of those who perish."

अर्थात्—"एक ईसाई का जीवन कितना भी पवित्र क्यों न हो मुसलमानों के सिद्धान्तानुसार वह नरक की अग्नि से बच नहीं सकता क्योंकि

43. Notes on Mohammedanism" PP. 210 तुलना करो मासिक पत्र "सार्वदेशिक" अप्रैल १९४५ ई०, पृष्ठ १६।

कुरान में यह लिखा है "इस्लाम की अपेक्षा जो अन्य धर्म का अनुयायी है उसे ईश्वर के यहां स्वीकार नहीं किया जायगा, और दूसरे जीवन में वह उनमें से होगा जो नष्ट होने वाले हैं।"

यह उद्धरण 'कुरान सू० ३ आ० ८५ का' है और ऊपर उद्धृत अनुवाद सेल का है। यह आयत "बमेंय्यब्तगि ग़ैर इस्लामि दीनन् फ़लै य्युक्बल मिन्हु, वहुव फ़िल् आखिरति मिनल् खासिरीन्" है जिसका अर्थ ख्वाजा हसन निज़ामी के अनुवाद में इस प्रकार है कि, "जो कोई इस्लाम के अतिरिक्त किसी और धर्म का इच्छुक हो तो उसका धर्म कदापि स्वीकार न होगा और वह मरणान्त में हानि उठायेगा।"

[हसन निज़ामी कृत "हिन्दी अनुवाद" पृष्ठ ८६]

शम्सुल उलमा मौलाना नज़ीर अहमद ने इसका अनुवाद उर्दू में इस प्रकार किया है—"जो शख्स इस्लाम के सिवाय किसी और दीन की तलाश में हो तो खुदा के यहां उसका वह दीन मकबूल नहीं और वह आखिरत में ज़ियाकारों में होगा।"

[कुरान का उर्दू अनुवाद ख्वाजा हसन निजामी कृत अनुवाद में उद्धृत पृष्ठ ८६]

मौलाना मुहम्मद अली एम. ए., एल.-एल. बी. ने इस आयत का अंग्रेजी अनुवाद किया है:—

"who ever desires a religion other than Islam, it shall not be accepted from him and in the hereafter, he shall be one of the losers." 44

अर्थात्—"इस्लाम की अपेक्षा जो अन्य धर्म की इच्छा करता है, वह (खुदा के द्वारा) स्वीकार नहीं किया जायगा और यहां के बाद (मरणे पर), वह हानि उठाने वालों में से एक होगा।"

श्री थोमस कार्लाइल (Shree Thomas Carlyle) अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

:'Mohammed's paradise is sensual, his hell sensual true, in the one and other there is enough that shocks all spiritual feeling in us. But we are to recollect that the Arabs already had it so, that Mahomad, in what ever he changed of it, softened anddiminished all this. The worst sensualities, too are the work of doctors, followers of his, not his work. In the Koron there is really very little said about the joys of paradise, they are intimated rather than insisted on." 45

अर्थात्—"मुहम्मद का स्वर्ग भौतिक है। उसका नरक भौतिक है यह सत्य है। इन दोनों में बहुत सी ऐसी चीजें हैं जो हमारी समस्त आध्यात्मिक भावना को आघात पहुंचाती है किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिये कि अरब लोगों में स्वर्ग, नरक की ऐसी कल्पना विद्यमान थी और मुहम्मद ने उसमें से कुछ कोमल और कम में परिवर्तन कर दिया। जो अधिक से अधिक खराब भौतिकता स्वर्ग-नरक की कल्पना में पायी जाती है वह मुहम्मद की अपनी नहीं वरन् उनके अनुयायियों की है। कुरान में स्वर्ग के आनन्द के विषय में वास्तव में बहुत थोड़ा कहा गया है, उनका केवल संकेत किया गया है न कि उन पर जोर दिया गया है।

अतएव महर्षि दयानन्द जी ने जो बहिश्त व दोज़ख की आलोचना की है वह समुचित है और वे आलोचनाएं पाश्चात्य विद्वानों की आलोचनाओं से कहीं अधिक कोमल, शिष्ट और संयत भाषा में है। मुसलमानों में बहुत ही अन्ध विश्वास है और महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों को तथा उनकी आलोचनाओं को पढ़ कर बहुत से सुधारक, शिक्षित मुसलमानों

[शेष पृष्ठ २१ पर]

44. Translation of the Holy Quaran Mohammed ali M. A. L. L. B. PP. 65.
45. "The Heroes and Hero-worship." By T. Carlyle D. C. Health Co publishers Boston, PP, 79-80.

[गताक से आगे]

कन्या-दान
और
उसके घर का खान पान

❀ श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती

कन्या-दान का मुख्यार्थ

कन्या पिता के परिवार में न्यूनतम १६-१७ वर्ष तक रही। माता पिता भाई बहिन सखी सहेलियों का आशीर्वाद और प्यार प्राप्त करती रही! यह कन्या आज विवाह संस्कार के पश्चात् पति के घर चली जायगी। इस चिरकालीन विदाई के अवसर पर परिवार के सभी जन अपनी प्रेमभरी भेंट अपनी बेटी बहिन और सहेली के अर्पण करते हैं। वास्तव में मुख्य रूप से इसे ही "कन्यायै दानम्-कन्यादानम् कन्या-दान कहा जाता है। अतः कन्या-दान का मुख्यार्थ हुआ कन्या के लिये विविध पदार्थों का दान। इसे ही यौतक दाइजा, दहेज, कहते हैं। इस प्रकार वह सम्पूर्ण सम्पत्ति जो स्त्री को विवाह के समय मिलती है, कन्या-दान या कन्या-धन कहलाती है। भारतवर्ष (आर्यावर्त्त) के प्रायः सभी प्रान्तों में यह रीति है कि विवाह संस्कार के दिन कन्यापक्ष के अधिकांश नर नारी उपवास रखते हैं। और संस्कार के समय स्वशक्त्यनुसार कन्या-दान स्वरूप धन कन्या को देकर पश्चात् भोजन करते हैं। पुरोहित लोग कन्या-दान के नाम से ही यह धन कन्या को दिलवाते हैं। और वर को यह धन देते समय कन्या-दान के संकल्प पूर्वक ही देते हैं। अतः मुख्य रूप से यही कन्या-दान समझना चाहिये।

वर्तमान कन्या-दान की दूषित भावना पौराणिक काल की देन है। क्योंकि इस प्रकार के कथानक तथा संकल्प पौराणिक साहित्य और परम्परा में ही उपलब्ध होते हैं। (अन्यत्र नहीं) पारस्कर गृह्य सूत्र के हरिहर भाष्य के संकल्प में लिखा है कि पुराणोक्त कन्या-दान फल कामो भार्यात्वेन तुभ्यमहं सम्प्रददे" अर्थात् पुराण वर्णित कन्या-दान के फल प्राप्ति की कामना से भार्या रूप में यह कन्या तुम्हें देता हूँ: गृह्य सूत्रों में इस प्रकार के संकल्प का सर्वत्र अभाव इस बात का सूचक है कि वास्तव में स्वत्त्व निवृत्ति पूर्वक कन्या-दान नहीं दी जाती। अतः कन्या के लिये दिये गये भेंट स्वरूप धन का ही मुख्य पारिभाषिक नाम कन्या-दान है।

बेटी के घर का अन्न जल ग्राह्य

महाराज मनु ने अपने धर्मशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य का बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन किया है। पर वहां उन्होंने पुत्री के घर का अन्न अभक्ष्य नहीं बतलाया। इसी प्रकार इसी मनु स्मृति के ग्यारहवें अध्याय में महापातक पातक और उपपातकों का बड़ा विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। वहां भी बेटी के घर का अन्न खाने से किसी प्रकार का दोष नहीं माना है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि पुत्री के घर का अन्न आवश्यकतानुसार खाना सवथा दोष रहित और शास्त्र सम्मत है। हां अत्रि और मार्कण्डेय स्मृति में बेटी के घर का अन्न ग्रहण करने का विधान करते हुए इतना विशेष लिखा है कि—

स्वसुता अप्रजा तावन्नाश्नीयात्तद् गृहे पिता ॥ कन्या प्रसूति पर्यन्तं तद् गृहेऽसौ कदाचन। अत्रि स्मृ. भुक्तिं नैव प्रकुर्वीत कुकूदायो महामनाः। मार्क. स्मृ.

दोनों स्मृति वचनों में शब्दों का ही हेर फेर है। भाव दोनों का यही है कि पुत्री के प्रथम सन्तान होने तक उसके घर का अन्न पिता न खावे अर्थात् इसके पश्चात् खाने में कोई दोष नहीं। सन्तान होने तक समय इसलिए वर्जित किया प्रतीत होता है कि नया २ सम्बन्ध होता है, यदि उस प्रारम्भिक समय में पिता या भ्राता आदि जाएं आएं तो यह भी सम्भव है कि कन्या के सुसराल के लोग यह कहना

आरम्भ कर देवें कि इन्होंने तो यहां अपना अड्डा ही बना लिया है। हर दूसरे दिन कोई न कोई आ खड़ा होता है। दूसरे यह कि इस प्रकार पितृ परिवार का स्नेह सूत्र शिथिल न होने से कन्या का अपने पति के घर और परिवार से अटूट स्नेह न हो सकेगा। तीसरे यह कि सन्तान होने से पूर्व गर्भावस्था में पिता अथवा भाई आदि से मिलने में कन्या को कुछ संकोच होता है। जो सन्तान होने के पश्चात् दूर हो जाता है एवं सन्तान की प्रसन्नता में बदल जाता है। इत्यादि कारणों से ही उक्त स्मृति वचनों में यह व्यवस्था की गई प्रतीत होती है। ओ३म् की असीम अनुकम्पा से कन्या ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। दोनों परिवारों में प्रसन्नता का प्रवाह बह निकला। यदि ऐसे शुभ अवसर पर भी दोनों ओर के व्यक्ति परस्पर मिल कर आनन्दोत्सव न मनाएं और खाने न खाने के बखेड़े में ही पड़े रहें तो इससे बड़ी और क्या ना समझी होगी।

अब आगे कतिपय इतिहास के प्रमाणों और शास्त्र के विधान द्वारा इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया जाता है।

सज्जन वृन्द ? लंका विजय के पश्चात् अयोध्या में श्री रामचन्द्र जी महाराज का राज्याभिषेक हुआ। इस अवसर पर अन्य अनेक राजे महाराजों के साथ माता सीता जी के पिता महाराज जनक और महाराज अश्वपति के सुपुत्र श्री युधाजित जो केकैयी के बड़े भाई और राम भरत आदि के मातुल (मामा) थे वे भी आये, और बहुत समय तक अयोध्या में ठहरे। खाना पीना सब होता रहा। उन्होंने किसी प्रकार का वहम नहीं किया। अपितु चलते समय उन दोनों महाभागों को प्रभूत भेंट भी दी गई। देखो वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड।

धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। उसमें उन्होंने सब देश देशान्तरों के राजा महाराजाओं को आमन्त्रित किया। उनके निमन्त्रण पर यज्ञ में आने वालों में उनके नाना कुन्तीभोज और श्वसुर महाराज द्रुपद अपने पुत्रों सहित आये थे। जैसा कि महाभारत के निम्नलिखित श्लोकों से प्रकट होता है।

याज्ञसेनः सपुत्रश्च शाल्वश्च वसुधाधिपः ॥९
कुन्तीभोजो महातेजाः पार्थिवो गौर वाहनः ॥१२
म० भा० सभा प० अ० ३४

अर्थात् अपने पुत्रों सहित महाराज द्रुपद, महाराज शाल्व महातेजस्वी महाराज कुन्तीभोज तथा राजा गौरवाहन आदि नाना देशों के नरेश आए। उन लोगों के ठहरने के लिये धर्मराज युधिष्ठिर ने जो प्रबन्ध किया था उसके विषय में लिखा है कि—

ददुस्तेषामावस्थान् धर्मराजस्य शासनात् ॥१८
बहुभक्ष्यान्वितान् राजन् दीर्घिका वृक्ष शोभितान् ।।
तथा धर्मराजः पूजां चक्रेतेषां महात्मनाम् ॥ १९
म० भा० स० प० अ० ३४

धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से प्रबन्धकों ने उन आगन्तुक नरेशों के ठहरने के लिये उत्तमोत्तम भवन दिये जो बहुत अधिक भोजन सामग्री से सम्पन्न थे। राजन् ! उन घरों के भीतर स्नान के लिये बावलियां बनी थीं और वे भांति भांति के वृक्षों से सुशोभित थे। धर्म पुत्र युधिष्ठिर उन सभी महात्मा नरेशों का स्वागत-सत्कार करते थे।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकतानुसार यथावसर पुत्री के घर का अन्न ग्रहण करने (खाने) में लेश मात्र भी दोष नहीं है। यदि किसी प्रकार का दोष होता तो महाराज जनक युधाजित कुन्तीभोज तथा द्रुपद जैसे धर्मात्मा जन ऐसा आचरण कभी न करते।

महाराज मनु आदि अनेक धर्म शास्त्रकारों ने मधु पर्क का विधान करते हुये लिखा है कि—

राजर्त्विक स्नातक गुरून् प्रियश्वसुर मातुलान् ।
अर्हयेन्मधुपर्केण परि संवत्सरात् पुनः ।।
मनु० ३ । ११९

राजा ऋत्विक् स्नातक गुरु जन जामाता श्वसुर और मामा इनका मधुपर्क से स्वागत करे। ये लोग

एक वर्ष के पश्चात् आवें तो फिर इसी प्रकार मधुपर्क से इनका पूजन करे।

मधुपर्क में आसन और पाद प्रक्षालनार्थ जल के अतिरिक्त पीने के लिए शुद्ध जल तथा खाने के लिए मधु मिश्रित दधि एवं गो आदि द्रव्य भेंट करने के लिये होता है। श्वसुर पत्नी का पिता और मामा माता का भाई होता है। इस प्रकार मधुपर्क द्वारा इस मनु वचन ने स्पष्ट विधान कर दिया कि पुत्री के घर का अन्न खाने और पानी पीने में कोई दोष नहीं है। यदि दोष होता तो उल्लिखित मनु वचन में श्वसुर और मामा का पाठ न होता। इसी प्रकार आश्वलायन गृह्य सूत्र में लिखा है कि—

आचार्य श्वसुर पितृव्य मातुलानां च ॥ १।२४।४ ॥

अर्थात् स्नातक और राजा की ही भांति आचार्य श्वसुर चाचा तथा मामा का भी मधुपर्क से सत्कार करे। बोधायन गृह्य सूत्र विधान करता है कि—

तथैते अर्घ्या ऋत्विक् श्वसुर पितृव्यो मातुल आचर्योराजा वा स्नातकः प्रियोवरोऽतिथिरीति। १।२।६५॥

ऋत्विक् श्वसुर पितृव्य (चाचा) मामा आचार्य राजा तथा स्नातक प्रिय (मित्र) वर (जामाता) एवं अतिथि ये सब मधुपर्क से सत्कार करने योग्य हैं। मार्कण्डेय स्मृति में लिखा है कि—

श्वसुरस्याग्र पूजा हि प्रकर्त्तव्या विशेषतः।
तदभावे भ्रातरोऽस्यतत् पुत्रा वा तदीयकाः ॥
मधु० प० प्र०

मधुपर्क से श्वसुर का सत्कार विशेष रूप से सब से पहले करना चाहिए। यदि श्वसुर उपस्थित न हो तो उसके भाइयों में से जो भी हों उनका तथा उनके भी अभाव में उसके पुत्रों में से जो भी हों उनका और उनके भी अभाव में उसके परिवार में से जो भी उस समय उपस्थित हों उनका मधुपर्क से सत्कार करे अर्थात् प्रथम उन्हें बैठने के लिए उत्तम आसन देवे फिर प्रक्षालनार्थ एवं मुख शोधनार्थ जल देवे पश्चात् पानी के लिए शुद्ध जल तथा मधु मिश्रित दधि भक्षणार्थ देवे। सारांश यह कि पेय और भोज्य पदार्थों से उनका प्रभूत स्वागत करे और वे लोग इस स्वागत को स्वीकार कर प्रदत्त पेय और भोज्य पदार्थों को सहर्ष सेवन करें। इसी प्रकार लौगाक्षि स्मृति में लिखा है कि—

मधुपर्कस्य कालोऽयं विवाहः प्रथमो मतः।
अनुचानागमः पश्चाच्छ्रोत्रियस्यागमः परः ॥
श्वसुरस्यागमो राज्ञो वत्सरान् परतः खलु ॥
मधु प० प्र०

मधुपर्क का पहिला समय विवाह संस्कार हैं। दूसरा वेदोपदेशक का गृहस्थ के घर पर आना है। तीसरा क्षत्रिय का आना। इस प्रकार एक वर्ष के पश्चात् श्वसुर और राजा का घर पर आना। ये मधुपर्क से सत्कार करने के काल हैं। यहां भी अर्घ्य व्यक्तियों में श्वसुर का प्रमुख स्थान है।

यद्यपि अत्रि मार्कण्डेय और लौगाक्षि आदि ग्रन्थ प्रामाणिक नही हैं, परन्तु मनु के सर्वथा अनुकूल होने से उल्लिखित स्मृति वचनों का प्रामाण्य सुतराम् स्वीकार्य सिद्ध हो जाता है।

इतने विचार विमर्श के पश्चात् पाठकों को अवश्य ही इस बात का निश्चय हो गया होगा कि आवश्यकतानुसार बेटी के घर का अन्न जल ग्रहण करना सर्वथा निर्दोष एवं शास्त्र सम्मत है। पुत्री के घर का अन्न जल ग्रहण करने से महान् अनर्थ हो जायेगा यह अटपटा विचार सर्वथा निराधार और शास्त्र विरुद्ध होने से नितान्त अमान्य और त्याज्य है।

वर्तमान हिन्दू समाज में इसी विषय में एक और विचित्र रीति प्रचलित है कि पुत्री के घर का पदार्थ माता पिता बड़ा भाई और बड़ी बहिन के अतिरिक्त अन्य सब छोटे बहिन भाई आदि के खाने में लोग कोई दोष नहीं मानते। यदि सचमुच कन्या दान करदी गई और उसके घर का अन्न अखाद्य है तो फिर पितृपक्ष का आबाल वृद्ध कोई भी क्यों न हो यह नियम सभी पर लागू होना चाहिये था। क्या विचित्र लीला है।

महानुभाव! माता पिता पुत्र तथा पुत्री दोनों की समान रूप से ही पालना शिक्षा दीक्षा एवं देख

रेख करते हैं। दोनों पर उनका उपकार और ऋण समान है। इस लिये पुत्र और पुत्री दोनों को उनकी सेवा करने का बराबर का अधिकार तथा कर्त्तव्य है। हां सेवा करने के प्रकार में न्यूनाधिकता एवं आंशिक भेद हो सकता है। सभी शास्त्रकार पुत्र और पुत्री दोनों को समान मानते हैं।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ॥
मनु० ९।१३०

अर्थात् जैसा आप वैसा पुत्र और पुत्र के समान पुत्री होती है। चौखम्बा सस्कृत पुस्तकालय वाराणसी की छपी मनुस्मृति के अन्त में उन श्लोकों का संग्रह छपा है, जो इस समय मनुस्मृति में तो उपलब्ध नहीं होते परन्तु मनुस्मृति के नाम से अन्य ग्रन्थों में उद्धृत किए गये हैं। उनमें आरम्भ से बारहवां श्लोक इस प्रकार है कि—

अंगादङ्गात्संभवति पुत्रवत् दुहिता नृणाम् ॥

पुत्र के समान पुत्री भी मनुष्यों के अंग २ से उत्पन्न होती है। इस प्रकार शास्त्रकार पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं मानते तो खान पान सम्बन्धी इस सामान्य से व्यवहार में यह भेद क्यों ?

पुत्र की भांति पुत्री को माता पिता की सेवा सुश्रूषा एवं सत्कार करने का अवसर प्रतिदिन नहीं मिलता। उसे तो कदाचित् ही वर्ष में एकाधवार ऐसा सुअवसर प्राप्त होता है। इस पर भी यदि पुत्री को अपनो इच्छानुसार श्रद्धा पूर्वक भोजनादि से उनकी सेवा करने का अवसर न दिया जावे तो यह उसके साथ एक बहुत बड़ा अन्याय होगा। अतः शास्त्रकारों ने इस दिशा में पूरी २ सावधानी और उदारता से काम लेते हुए लिखा है कि "कन्या के पिता प्रभृतियों के आने पर उनका मधुपर्कादिभोज्य सामग्री द्वारा विशेष रूप से सत्कार किया जावे।

इस प्रकार शास्त्र का विधान और इतिहास का आचरण इन दोनों से यह स्पष्टतया सिद्ध हो गया कि पुत्री के घर का अन्न तथा जल ग्रहण करने (खाने पीने) में कोई दोष नहीं है।

॥ ओ३म् शम् ॥

[शेष पृष्ठ १७ का]

बहु विवाह, विवाह-विच्छेद (तलाक) मतान्धता, तथा पर्दा पद्धति ४६ का प्रबल खण्डन करते हुये इन विषयों में सुधार की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से बतलाया हैं।

मैसूर विश्व विद्यालय के **प्रोफेसर मुहम्मद अली शूस्त्री ने** "Out lines of Islamic Culture" नामक पुस्तक दो भागों में लिखी है जिसमें उपसंहार करते हुए उन्होंने बतलाया है कि—

"It is dlfficu! tto predict. the future of Islam as world religion, but it is certain that Islam as interpreted, taught and brought into practice by conservative and orthodox Mullahs or Maulvies, cannot endure long. Similarly the belief in Pirs and Fakirs (who though they may call themselves Sufis' exploit the masres) may have to end before long."47

अर्थात्—"विश्वधर्म के रूप में इस्लाम के भविष्य के विषय में कहना कठिन है, परन्तु यह निश्चित है कि कट्टरपंथी व संकीर्ण विचार वाले मुल्ला वा मौलवियों द्वारा प्रतिपादित, प्रचारित तथा क्रियात्मक रूप में परिणत इस्लाम देर तक नहीं ठहर सकता। इसी तरह पीर और फ़कीर (चाहे वे अपने को सूफ़ी कह कर अशिक्षित जनता को क्यों न बहकाते फिरें) को भी शीघ्र त्यागना पड़ेगा।"

मैं ऐसे अन्ध विश्वास, विज्ञान विरुद्ध यवनमत को परित्याग कर मुसलमानों को वैदिकधर्म की शरण में आने के लिये निमन्त्रण देता हूँ।

---

४६. देखो श्री खुदाबख्श एम० ए० बा० सो० एल, बार एट ला कृत "Essays Indian and Islamic" पुस्तक पृष्ठ २५६ से २५८ तक तथा "Studies in Islam." पुस्तक.

47. Out lines of Islamic Culture" VoL II PP. 766.

[जुलाई अङ्क से आगे]

आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना

उपासना साधना

यमनियम आदि का पालन करने हेतु आर्य्य-दैनिक जीवन में निम्न बातों का पालन करें। (१) क्रोध न करें, किसी को उत्पीड़ित न करें, व्यङ्ग न करें। (२) मित भाषी हों, स्वप्रशंसा न करें, पर निन्दा न करें, (३) धन छल कपट आदि से न कमावें, अनाचार प्रसार करने वाले पदार्थों का व्यवसाय न करें (४) परस्त्री को माता भगिनी पुत्री समान समझें, स्व स्त्री से ऋतुगामी रहे (५) अपव्यय न करे अर्थात् विलास सामग्री न रखे, तथा व्यर्थ का सामाजिक व्यवहार दहेज, गहना, रिश्वत आदि लेन देन न करे (६) रुचि व शक्ति अनुकूल कुछ योगासन करे, शरीर व वस्त्र स्वच्छ रखे। भोजन समय से करे मन शुद्धि के लिए यमों का पालन करे (७) सद् परिश्रम करे, फल की इच्छा न रखे (८) शीत उष्ण, क्षुधा-प्यास, व्यंग व रोग आदि कष्ट सहन करे (९) स्वाध्याय के लिए वेदाध्ययन में लिख दिया है। (१०) मुख्य ध्यान ईश्वर में रखे।

प्राणायाम के लिए भोजन सात्विक फल दूध का अधिकाधिक सेवन करे। अन्न दाल शाक व अल्प सेवन, इतना भोजन न करे जिससे पेट भारी हो जाये, सायं तारा दर्शन से पूर्व भोजन करले। तामसी भोजन का सेवन नितान्त त्याज्य है—हिंसा जन्य मांस आदि, मादक चाय आदि दुर्गन्धयुक्त प्याज आदि। अप्राकृतिक वस्तु मैदा, जमाया तेल, सफेद चीनी, बर्फ लेमन सोडा आदि का अत्यल्प प्रयोग करे प्राणायाम अभ्यासी जिह्वा को पूर्ण वश में रखे।

यमनियम पालनार्थ, प्राणायाम अभ्यास हेतु उपर्युक्त बातों का पालन करे। अहिंसा का पालन करने से आगे सहायता मिलेगी अहिंसा के पूर्ण पालन का प्रताप था कि प्राचीन ऋषि आश्रमों में सह-हरिण गाय एक साथ रहते थे। जिस व्यक्ति में हिंसा भाव है वह परोपकार यज्ञ कभी नहीं कर सकता। अनेक आर्य सदस्य मांसाहारी हैं भला अहिंसा का क्या पालन करेंगे ऐसे व्यक्तियों का सन्ध्या में मन कैसे लगे। जो व्यक्ति दुष्ट मन के होते हैं वे अपने पाप को छिपाने हेतु पर निन्दा व स्वप्रशंसा किया करते हैं। तथा स्वप्रशंसा करने से गप्प हांकने का स्वभाव पक्का होता जाता है। भ्रष्टाचार से हमारा देश अत्यन्त दुःखित है। वस्तुतः अस्तेय के पालन करने से ही अर्थ सिद्धि होती है। परन्तु जो व्यक्ति काम लोलुप होते हैं उन्हें असीमित भाषा में अर्थ चाहिये सो उनका तो धर्म टका होता है अन्य कुछ नहीं। तथा काम लोलुप व्यक्ति इन्द्रिय निग्रही नहीं हो सकता साथ हो वह विलास सामग्री भी एकत्र करेगा। आचार की दृष्टि से यम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ये सामाजिक सर्व हितकारी हैं। मानव समाज में व्यभिचार अत्यन्त घृणित महारोग हैं यदि ये मानव समाज से समाप्त हो जायें तो आधी विश्वशान्ति तो हो गई।

सन्ध्या करने वाला शरीर वस्त्र आदि से स्वच्छ रहे। शरीर को नीरोग रखने के लिए व्यायाम योगासन अवश्य किया करे। ऋषि में सन्तोष तप न होता तो क्या वे इतना कार्य्य अल्प में कर सकते थे। इधर हम आलस्य प्रमाद युक्त विलासी जीव। आलस्य के कारण मनुष्य अपनी बुराई छोड़ने में असमर्थ रहता है, आलसी प्रमादी तपशील नहीं हो सकता। अलस्य का परिणाम ही असन्तोष है तथा हमें तो निरन्तर ऐसा कर्म करने की आज्ञा दी गई है जो हमें लिप्त न करे। स्वाध्याय न्यूनता से आरम्भ से आर्य्य संस्थायें ब्राह्मणत्व की उपेक्षा करती रही हैं। जिसका परिणाम आज आर्य समाज मरणासन्न हो रहा है। कुछ समय में इसकी भी दशा ब्राह्मसमाज जैसी हो जायगी। हमारे नेता तो ऐसे निश्चिन्त हैं जैसे सञ्जीवनी बूटी पिलादी हो।

सन्ध्या योग सम्बन्ध

सन्ध्या का सम्बन्ध अस्टाङ्ग योग से है। योग में आसन स्थिरता के लिए प्राणायाम प्राण वश के लिये, प्रत्याहार-शक्ति एकत्रित करना, धारणा एकत्र शक्ति को केन्द्रित करना, ध्यान केन्द्रित शक्ति को ईश्वर में लगाना, समाधि-स्वयं व ओम् विस्मरण केवल अद्वैत ईश्वर की स्मृति रहना। सन्ध्या करने का क्रम जल प्रक्षेप, प्राणायाम, शिखाबन्धन, आचमन, इन्द्रिय स्पर्श, मार्जन प्राणायाम, अघर्मषण, आचमन, गायत्री, मनसा परिक्रमा, उपस्थान, गायत्री ओम् जप, समर्पण, नमस्कार। इसमें मार्जन यमनियम पालन आसन से, प्राणायाम-प्राणवश, अघर्मषण प्रत्याहार से मनसा परिक्रमा धारणा से, उपस्थान-ध्यान स, ओम् गायत्री जप समाधि से सम्बन्ध रखता है। सूक्ष्म शरीर में इन्द्रियों के दस विषय पञ्चप्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि हैं प्राणायाम मन से, अघर्मषण बुद्धि से, मनसा परिक्रमा चित्त से, उपस्थान अहंकार से सम्बन्ध रखता है। तात्पर्य ये है कि सब प्रकार से सन्ध्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके विना आगे कुछ नहीं हो सकता व्यर्थ हल्ला करना और बात है। मत-मतान्तर आलोचना करने से कोई आर्य नहीं बन जाता।

भाषा

(१) प्रत्येक सदस्य जीवनोपयोगी पठन लेखन, वार्त्तालाप योग्य संस्कृत अवश्य सीखे (२) संस्कृत व राष्ट्र भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का प्रयोग न करें।

सम्पूर्ण मनुष्य जाति में एकता स्थापित करने के लिए भाषा ही प्रथम आवश्यक माध्यम है। अतः हम प्रयत्न करें कि संस्कृत राष्ट्र भाषा ही नहीं विश्व भाषा वने। संस्कृत से अन्य सब भाषायें निकली हैं वापस इसमें उनका विलीनीकरण कर दिया जाये। विभिन्न भाषाओं के कारण हमारे देश में कितनी फूट है। हम इन भाषाओं के विरोधी नहीं। अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद संस्कृत में कर दिया जाये। परन्तु आचारहीन व्यक्ति मोह से अत्यधिक ग्रसित होता है। अतः आर्य सदस्यों में अधिकांश इसका विरोध करेंगे। परन्तु जो आर्य है उसकी भाषा तो संस्कृत है। आर्य को संस्कृत का ज्ञान तो अवश्य होना चाहिये क्योंकि वेद संस्कृत में है। इन भाषाओं के कारण प्रान्तीय संकीर्णता भी है। प्रान्तीय प्रतिनिधि सभायें १४ के करीब हैं परन्तु इन सब से एक होने को कहा जाये तो न होगी आर्य समाज वालों में भी प्रान्तीयता घुस पड़ी है। हैदरावाद सिन्ध अब भारत में नहीं परन्तु बम्बई में सिन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा है, कैसी विडम्बना है? सार्वदेशिक ने इसे प्रमाणित कर रखा है। इन प्रान्तीय सभाओं में सङ्कीर्णता इतनी है कि सार्वदेशिक के अनेक बार प्रयत्न करने पर भी गुरुकुल विद्यार्य्य सभा को न दिये गये। तथा चन्दे का निश्चित अंश भी नहीं भेजा जाता।

जाति

(१) आर्य अपनी सन्तानों का विवाह अर्न्तजातीय करें (२) अर्न्तसाम्प्रदायिक व अर्न्तरदीय विवाहों को आर्य्यसमाज वैध माने।

जातिगत सङ्कीर्णता ने हमारे देश को सहस्र वर्ष पराधीन रखा। विश्व में युद्ध इसी सङ्कीर्णता के कारण हुए हैं। सृष्टि के आरम्भ में आर्य उत्पन्न हुये। पश्चात् भिन्न भागों में आर्यों के आलस्य के कारण हो गये। किसी भी देश का कोई व्यक्ति हो सबके पूर्वज सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले ईश्वर पुत्र आर्य ही हैं। बढ़ते हुये जातिगत वैमनस्य को समाप्त करने का उपाय यही है कि सब में विवाह वंध माने जावें। अभी आर्यों व पौराणिकों में विवाह सम्बन्ध होता है परन्तु व्यवस्था पौराणिक जाति व्यवस्था ही है। हमारा तात्पर्य है कि पौराणिक आर्यों में जो २००० जातियां हैं वे न रहें सब एक हो जायें! ये ही नहीं। पौराणिक-यवन. पौराणिक-क्रीष्टान जैन पौराणिक, आर्य-यवन

[क्रमशः]

सम्पादकीय टिप्पणियां

हमारे पाठक क्या कहते हैः—

इस बार हमने वेद प्रकाश के पाठकों को श्री स्वामी वेपानन्द जी द्वारा लिखित "वैदिक धर्म" भेंट किया था। हमारे पाठकों ने उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। कुछ पाठकों के उद्धार देखिये—

अंक अति सुन्दर और धर्म प्रेमियों के लिये लाभदायक है। महर्षि कृत ग्रंथों का सार इस पुस्तक में देकर नवीन सज्जनों के हेतु आर्य धर्म की उच्चता का उत्तम भाव उनके मनों पर बिठा दिया है। श्री हरनामदास जी, खपरा मोहल

वेद प्रकाश का विशेषांक बहुत अच्छा निकला है तदर्थ आपको बधाई। श्री तेजकृष्ण जी, देहरादून

विशेषांक के अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि यह अभूतपूर्व अंक वास्तव में विश्वकोष है। वेदों के प्रत्येक अंग को भगवान् वेद वाणी के समान ही इस अंक में विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। यह वेदों का स्रोत समस्त जनता के लिये हितकर एवं पथ प्रदर्शक बन कर परमानन्द की ओर अग्रसर करेगा, यही मेरी कामना है। आपके इस सफल प्रयास के लिये हार्दिक धन्यवाद। श्री गोविन्दराम जी कोटद्वार

इस वर्ष का विशेषांक पत्रिका के नाम के अनुरूप आवश्यक गूढ़ विषयों से युक्त निकला है। पढ़ कर हार्दिक प्रसन्ता हुई।

श्री कृष्ण कुमार शास्त्री पटना

यह ग्रन्थ ३२ वर्ष के पश्चात् छपा है थोड़ी प्रतियां शेष हैं शीघ्रता करें अन्यथा फिर पछताना पड़ेगा।

बधाईः—भारत सरकार ने १५ अगस्त के अवसर पर जिन पांच विद्वानों को पुरुस्कृत किया था आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, बालब्रह्मचारी, आर्ष पठन पाठन विधि के प्रचारक और प्रसारक महर्षि दयानन्द के परम भक्त, श्री पं० ब्रह्मदत्त जी 'जिज्ञासु' भी उनमें से एक हैं। हम "वेदप्रकाश" परिवार की ओर से आदरणीय पँडित जी को हार्दिक बधाई देते हैं।

आर्य नेताओं और विद्वानों का निधनः—लिखते हुए दुःख होता है परन्तु लिखे बिना रहा भी नहीं जाता। पिछले दिनों डा० बख्शी टेकचन्द जी भूतपूर्व जज हाईकोर्ट पञ्जाब, हैदराबाद के प्राण श्री विनायक राव जी विद्यालङ्कार भूतपूर्व मिनस्टर हैदराबाद और आचार्य नरदेव जी "वेद तीर्थ" उपकुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर—एक मास के अल्प काल में ही आर्य जगत् की तीन विभूतियां हम से पृथक् हो गई। हमें इन महानुभावों के परिवारों सम्बन्धियों और कुलवासियों से पूर्ण सहानुभूति है। प्रभु दिवंगत आत्माओं को उनके कर्मों के अनुसार सद्गति और शान्ति प्रदान करे तथा इनके शोक से संतप्त सभी व्यक्तियों को इस महान् क्षति को सहन करने का धैर्य प्रदान करे।

इन महानुभावों के निधन से जो क्षति हुई है उस का पूरा होना तो सम्भव सहीं परन्तु आर्यों को एकांत में बैठकर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये कि क्या कारण है आर्य जगत् के नेता और विद्वान् एक एक करके उठते जा रहे हैं और नई पीढ़ी के युवक आगे नहीं आ रहे हैं। "विद्यार्थी"

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २:
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्य योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
,, ,, पूर्वार्द्ध २) ५०
,, ,, उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा ,, १)
गुरु विरजानन्द ,, १)
पं० लेखराम ,, १)
स्वामी श्रद्धानन्द ,, १)
महात्मा हंसराज ,, १)
प० गुरुदत्त ,, १)
स्वामी दर्शनानन्द ,, १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड	६)
वायर लैस रेडियो गाइड	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
टयूब वैल गाईड	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेटर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१।)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥।)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बर्दालिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७६५.

आदरी सह-सम्पादक
प्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

नवम्बर १९६२
कार्तिक २०१९
वर्ष अङ्क
११ ४

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

सत्यार्थ प्रकाश का नमूना इसी अंक के १३वें पृष्ठ पर देखें।

सत्यार्थ प्रकाश

वैदिक साहित्य के महापंडित

श्री भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर

की देख रेख में

मोटे अक्षरों के सत्यार्थप्रकाश का

बढ़िया व सस्ता संस्करण

शीघ्र छप कर तैयार

हो रहा है।

इस संस्करण की विशेषताएं

(१) श्री पं० भगवद्दत्त जी की विशेष स्थानों पर अत्यावश्यक टिप्पणियां होंगी।

(२) पाठ का संशोधन अत्यन्त सावधानता से हो रहा है।

(३) प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का संकेत होगा।

(४) प्रत्येक स्तम्भ (पैराग्राफ) पर एक क्रमांक होगा।

(५) अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण सूची तथा विषय सूची होगी।

(६) मोटे अक्षर बढ़िया कागज व मजबूत जिल्द होगी।

(७) मूल्य सजिल्द १०)

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखक:—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सुललित, भावपूर्ण श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र प्रामाणिक सम्पूर्ण जीवन चरित्र।

बढ़िया कागज, मोटे अक्षर, बड़े साइज के ६०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १२) केवल

१९६३ का महर्षि दयानन्द का ६ रंगा चित्र

बीच में गायत्री मन्त्र दोनों ओर आर्य समाज के दस नियम

एक का मूल्य ॥) दर्जन ४॥)

डाक खर्च पृथक

आर्यन कैलेन्डर कार्पोरेशन

४४०८ नई सड़क दिल्ली-५

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रदायक पुस्तकें

तत्त्वज्ञान	३)
प्रभुदर्शन	२)५०
प्रभुभक्ति	१)८०
आनन्द गायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त भगवान	१)
शंकर दयानन्द	)५०
उपनिषद सन्देश	१)२५
सत्यनारायण कथा	)६२

—※—

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानन्द का रंगीन चित्र	१) २५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

———

महर्षि दयानन्द घटना चित्र	)५०

ओ३म्, स्वागतम, नमस्ते, गायत्रीमन्त्र, मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक)२५

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

प्रभु-वन्दना

[ले०—श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक]

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ऋ० ८।९८।११ ॥

प्रस्तुत मन्त्र में केवल दो वाक्य हैं। मन्त्र के प्रथम वाक्य में भक्त भगवान की स्तुति कर रहे हैं उनके शब्द अत्यन्त प्रेममय हैं। शब्दों से प्रतीत होता है कि भक्त लोग भगवान् का सानिध्य प्राप्त कर चुके हैं। भक्तों ने पूर्णतया स्वयं को प्रभु के अर्पित प्र-अर्पित कर दिया है। स्व को प्रभु की शरण में, आश्रय में उपस्थित कर दिया है, वे प्रभु आश्रित हो गये हैं नाम से नहीं आचरण से, व्यवहार से, सम्पूर्ण रूपेण, सर्वात्मना।

सौभाग्यशाली हैं वे भक्त जिन्हें जीवन में यह स्थिति प्राप्त हो जाय। जीवन में इस से बड़ा सौभाग्य का और अवसर हो भी क्या सकता है? जीवन की, मानव जीवन की अन्तिम साध यही तो है। यही लक्ष्य तो है मानव जीवन का कि वह प्रभु से सानिध्य प्राप्त करे और सानिध्य यदि जीवन में ही प्राप्त हो जाय तो फिर और शेष रहा भी क्या? आगे कोई बाधा, कोई रुकावट रह ही नहीं पाती मोक्ष के लिये। जब सानिध्य, निकटता हो गई भक्त और भगवान में, फिर मोक्ष में बाधा का प्रश्न ही क्या? बाधायें तो हैं सांसारिक वस्तुओं में लगाव की, मोह की, तथा मद की, अहं की। यों तो अनेक बाधायें हैं परन्तु उन सब में सब से भयंकर हैं यह दोनों। भयंकर इसलिये कि अन्य बाधाओं की अपेक्षा इनका दूर होना कठिन होता है अत्यन्त कठिन, दुस्साध्य और अत्यन्त दुस्साध्य। इन बाधाओं को दूर करने के लिये घोर साधना और महान् तप की आवश्यकता है। ऐसे तप की जहां साधक के सामने केवल साध्य ही रह जाय और सब कुछ समाप्त हो जाय। संसार में सिद्धों की कमी नहीं हैं। बड़े २ सिद्ध हैं, एक से एक बढ़ कर, ऐसे कि जिनके बड़े ठाट-बाट, बड़ी शान-शौकत बड़े २ नाम। नाम ही क्यों? उपनाम भी साथ में, नाम से भी कहीं अधिक सारगर्भित, बड़ी २ विशेषताओं को प्रदर्शित करने वाले, अलौकिक विशेषण। परिव्राजक हैं पर गद्दी, भारी सम्पत्ति, कोठी, बाग, बगीची सब कुछ और जमे हैं बैठे वहीं माया के सांप बने। फंसे हम भी ऐसे ही थे, बड़े बुरे, परन्तु भगवान की कृपा दृष्टि हो गई और हम निकल भागे। आनन्द हैं पर जीवन नीरस, इतना नीरस कि इस की प्राप्ति का प्रयत्न करना तो एक ओर कभी रस शब्द के अर्थ जानने का भी प्रयत्न किया नहीं प्रतीत होता। विरक्त हैं परन्तु सगे सम्बन्धियों का मोह नहीं छूटा। यदा-कदा इधर-उधर से ला लाकर अब भी परिवारस्थ जनों को दे ही देते हैं क्यों? निरन्तर देते ही रहते हैं, परिवार पोषण में लगे ही रहते हैं। विदेह हैं परन्तु अहं से परिपूर्ण, घमण्ड पराकाष्ठा से भी आगे पहुँच चुका है। कहां तक कहें भाई 'रोना हो एक दो का यहां आवा बिगड़ गया।'

तो हम ऐसे सिद्धों का चर्चा नहीं कर रहे थे ये तो ठहरे नामधारी सिद्ध, जैसे गुरुओं के नामधारी सिख! हम तो चर्चा कर रहे थे वैदिक भक्तों का। आज कल वैदिक सिद्ध भी तो बहुत हैं परन्तु उन में भी तो अधिकतर नामधारी हैं वास्तव में वैदिक होना तो लोहे के चने चबाना है, टेढ़ी खीर है, एक दम

टेढ़ी जो मुंह से आगे जाय भी तो...। प्राय तो जाती ही नहीं यदि चली ही जाय तो गले में अटक जाती है, फिर भी कुछ तो वैदिक होते ही हैं। हां तो हम ऐसे ही वैदिक भक्तों के विषय में चर्चा कर रहे थे। वैदिक भक्त की स्थिति कुछ अन्य ही प्रकार की होती है उसके पास मोह और मद को कोई स्थान नहीं रहता। जब तक उसके पास मोह और मद को स्थान हैं। तब तक वह प्रभु से दूर है अत्यन्त दूर। किंवदन्ती है कि एक बार हजरत मोहम्मद खुदा से मिलने गये तो दोनों के मध्य में सत्तर कोश की दूरी थी और साथ ही दोनों के बीच में दो पर्दे भी पड़े थे भेंट के समय। पाठक विचार करें कि यह दोनों पर्दे मोह और मद के तो नहीं थे, हमें तो ऐसा ही प्रतीत होता है। जब तक हम में मोह और मद है तब तक हम भी मोहम्मद हैं (मोह+मद) है न ठीक। और इन दोनों पर्दों के मध्य में है सत्तर कोश की दूरी, दूरी तो है ही। पहले मोह का पर्दा दूर हो तत्पश्चात् लम्बी यात्रा की जाय, दीर्घकालीन साधना तब कहीं जाकर मद दूर हो पाता है। कई अत्यन्त निर्मोही जीवन मिलते हैं परन्तु मद उनमें भी होता है जो अजीब भयंकर है, मोह और मद दोनों ही हों तब तो कहना ही क्या ?

वैदिक भक्त के पास मोह और मद का क्या काम ? मोह और मद रहते वैदिक भक्ति कहां ? वैदिक भक्त मोहम्मद नहीं वह तो मदनमोहन होता है। (मद+न+मोह+न) जिसके जीवन में न मद को कोई स्थान होता है न मोह को हम किसी किसी बात को यों ही नहीं कहते, धुएं के बादल बनाना हमें पसन्द नहीं। इतिहास साक्षी है कि भगवान् कृष्ण जिनका मदन मोहन नाम प्रसिद्ध है मद और मोह से नितान्त दूर थे। मद होता तो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में क्या ब्राह्मणों के पैर धोने का कार्य संभालते ? 'चरण क्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां ह्यभूत' (महाभारत)। कृष्ण ने मद को मिटा डाला था, उनमें अहं नाम को भी नहीं था। मोह को भी कोई मात्रा कृष्ण में होती तो खण्ड-खण्ड भारत को महाभारत बनाने के उपरान्त इस महान् साम्राज्य को जिसमें वर्तमान भारत के अतिरिक्त पाकिस्तान, ब्रह्मा, नैपाल, भूटान, तिब्बत चीन और सिक्यांग आदि देश भी सम्मिलित थे छोड़ कर न चले जाते अपितु पाण्डवों को अपनी प्रखर बुद्धि और नीति मत्ता से बिना एक भी रक्त की बूंद गिराये धत्ता बता देते और स्वयं चक्रवर्ती सम्राट् बन कर शासन करते और भोगते राजसी सुखोपभोग। किन्तु ऐसा करते तो मदन मोहन नहीं कहलाते। साहित्यकारों ने उन्हें जो मदन मोहन नाम दिया है उसका कारण उनका मद तथा मोह रहित जीवन ही है। वैदिक भक्त का ऐसा ही जीवन होता है। आचार्य संदीपन की कुटिया में बैठ कर वर्षों वेदों का अध्ययन जो किया था। यह है वैदिक भक्त का जीवनादर्श।

वैदिक भक्त को किसी से न मोह है न उसे मद ही है। वह तो केवल मात्र प्रभु को ही अपना बना चुका है तथा सांसारिक मोह के साथ-साथ अहं को भी उसने दूर फेंक दिया है अतः वह प्रभु से कह रहा है 'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।' (वसो) [वस, निवासे आच्छादने च] हे सर्वत्र व्यापक, सब को वास देने वाले और सब के आश्रय दाता, संरक्षक तथा (शतक्रतो) सैंकड़ों अर्थात् बड़ी संख्या में, असंख्यों सत्कृत्यों के सम्पादन करने वाले प्रभो ! क्रतुः का अर्थ है कर्मशील और यज्ञ, यज्ञमय, यज्ञशील तथा 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' श्रेष्ठतम कर्मों को करने वाला। प्रभु कर्मशील है वह कभी भी कर्मशीलता से पृथक् नहीं होते और कर्म भी श्रेष्ठतम, यज्ञमय करते हैं निकृष्ट कर्म नहीं। सृष्टि की उत्पत्ति आदि के द्वारा जीवों को उन्नति का अवसर प्रदान करते तथा उनके कर्मों की यथोचित व्यवस्था के द्वारा उन्हें याथातथ्य रूपेण, न्यायपूर्वक कर्म फल प्रदान करते हैं। हुए न प्रभु यज्ञशील, यज्ञमय, यज्ञ, क्रतुः। तो निरन्तर निज कर्मशीलता के द्वारा न्यायोचित रूपेण व्यवस्था करके जीवों को कर्म फल प्रदान करने के कारण तो क्रतुः हुए और साथ ही असंख्यों प्रकार के प्राणी-अप्राणी जगत् की तथा असंख्यों जीवों के

[शेष पृष्ठ ७ पर]

अथर्ववेद का केन सूक्त
[२]

❀ श्री पं० जगदीश चन्द्र जी दर्शनार्य

इससे पूर्व प्रथम मन्त्र में सात प्रश्नों का वर्णन किया गया है। और पैर की एडी से घुटने तक की रचना पर ध्यान दिया गया है। इससे आगे अन्य अंगों पर विचार किया जाता है।

(दूसरा मन्त्र)

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्
अष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जंघे निर्ऋत्य न्यदधुः क्वस्वित्
जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ।।

(८) कस्मात् नु गुल्फौ अधरौ अकृण्वन्—क्या कारण है कि पैरों के दोनों टखने नीचे रख दिये।

पैरों के ऊपर और गोडों के नीचे दोनों गिट्टे किस उद्देश्य से रखे गये हैं—यह भी एक विचारणीय विषय है। सारे शरीर का भार पैरों को उठाना पड़ता है अतः पैरों को भार उठाने में पूरी पूरी सहायता देने के लिये टांगों के निचले भाग में टखने लगाये गये। टखनों की रचना भी बुद्धिमत्ता पूर्ण है क्योंकि यदि इस ढंग से रचना न की जाती तो न तो पैरों को आगे पीछे और ऊपर नीचे ही किया जा सकता और न ही टांगों को हिलाया जुलाया जा सकता था। ऐसी अवस्था में चलना फिरना और चढ़ना उतरना तथा भागा दौड़ी के काम करना सर्वथा असम्भव हो जाता। कलाकार की चातुरी देखिये कि दांयें पैर के बांयें पार्श्व के अनुरूप ही दायें टखने की रचना की है और बायें पैर के दायें पार्श्व के अनुरूप ही बायें टखने की रचना की गई है। इस प्रकार की रचना करने से पैरों और टखनों दोनों में सौन्दर्य आ गया है। यदि इस प्रकार की बुद्धिमत्ता पूर्ण रचना न की जाती और दोनों पैरों तथा टखनों के पार्श्व एक ही दिशा में रचे जाते तो ऐसा करने पर जहां सौन्दर्य न रहता वहां चलने फिरने और उठने बैठने आदि कार्यों में भी भारी अड़चन पड़ती अतः बुद्धिमान कलाकार ने अत्यन्त सोच विचार कर टखनों की टोगों में नीचे रचना की। सोचिये और विचारिये-यह सुन्दर और भावपूर्ण रचना किसने की हैं। क्या आपने की है, क्या माता पिता ने की है, क्या अपने आप हो गई है ? नहीं २ इस कला का कलाकार परमेश्वर है।

(९) अष्ठीवन्तौ उत्तरौ कस्मात् अकृण्वन्—और दोनों घुटनों को ऊपर किस उदेश्य से लगाया गया है।

टांगों की अस्थियों के नीचे टखने बनाये गये हैं परन्तु गोड़ों की रचना इससे विलक्षण को गई है-गोड़े टांगों की अस्थियों के ऊपरले सिरों पर बनाये गये है। ऐसा क्यों किया गया है और गोड़ों को टखनों के समान ही क्यों नहीं बनाया गया है यह भी सोचने की बात है। गोड़ों को 'अस्थिवन्तौ' कहा गया है और यह इस लिये कहा गया है कि इन के ऊपर नीचे लम्बी अस्थियें हैं नीचे जंघा की अस्थियें हैं और ऊपर जानु की अस्थियें हैं। एक ओर ये नीचे से जुड़े हुए हैं दूसरी ओर ऊपर से जुड़े हैं। इन के बीच में लचकने वाली अस्थियें लगी हुई हैं और ऊपर अस्थि की टोपी लगी हुई है। यदि गोडों की रचना में अस्थियों का मुख्य भाग न होता तो शरीर धारण नहीं हो सकता था और गमनागमन में दृढ़ता नहीं आ सकती थी। गोड़ों की ऊपर वाली टोपी या चपनी को देखा जाये तो कहना पड़ेगा कि कलाकार ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से इस अस्थि को जमाया है-जब बैठते हैं तो इस के अस्तित्व का पता नहीं लगता और खड़े होते हैं या टांगो को पसारते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होने लगती है और सब ओर से जुड़ जाती हैं। गोड़ों की रचना को रच

कर विधाता ने शरीर को उपयोगिता को सम्यक्त-या स्पष्ट कर दिया है क्योंकि यदि गोड़ों की इस प्रकार से रचना न की जाती तो टांगों का मोड़ना या उठने बैठने आदि का कार्य करना सर्वथा असम्भव हो जाता तब जीवन का सारा सौन्दर्य ही नष्ट भ्रष्ट हो जाता।

(१०) जंघे निर्ऋत्य क्वस्वित् न्यदधुः—दोनों जंघाओं को पृथक २ करके किस स्थान पर लगा दिया है।

गोड़ों के उपर जंघायें हैं। उन की बनावट और सजावट पर भी ध्यान दीजिये और देखिये कि निर्माता ने कितनी बुद्धिमत्ता से इन को रचना की है। जंघा के तीन भाग हैं एक भाग वह है जो गिट्टे के साथ जुड़ा हुआ है। दूसरा बीच का भाग है जो लम्बा चला गया है यह भाग बीच में से फटा हुआ और दो आस्थियें पृथक २ प्रतीत होती हैं इन दोनों के मध्य भाग में मांस रखा गया है जिससे अस्थि सुदृढ़ हो गई है और पिंडली का सौन्दर्य बढ़ गया है यह भाग ऊपर घुटने की अस्थि से जुड़ा हुआ है। इन तीनों भागों का आकार प्रकार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। यदि गोड़े से जुड़ा हुआ भाग किसी अन्य प्रकार का होता अथवा घटने के साथ वाला भाग गिट्टे के साथ जोड़ दिया जाता तो महान् अनर्थ हो जाता। तब न तो शारीरिक संघठन ही ठीक रहता और न ही कार्य कलाप ठीक प्रकार से चल सकता। देखिये, विधाता निर्माता ने कितनी सोच विचार कर रचना की है—शारीरिक संघठन भी ठीक हो गया, कार्य कलाप भी चल निकला और सौन्दर्य भी बढ़ गया। अच्छा अब बतलाइये कि इन जंघाओं को इस स्थान पर ठीक से स्थापित करने वाला कौन अद्भुत कलाकार हैं?

(११) कः जानुनोः संधीन्यदधात्—दोनों जानुओं की संधियों को किसने दृढ़ता से स्थापित किया।

प्रत्येक जानु में कई २ संधियें है, जिनके कारण उठने बैठने आदि के व्यवहार सुचारु रूप से संचालित होते हैं। प्रत्येक संधि स्थल में तन्तु, स्नायु, पतली अस्थियें तथा चरबी की थैलियों होती हैं जिन में से प्रत्येक का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है यथा—तन्तु एक अंग को दूसरे अंग से जोड़ने का और सूचनाओं के परिवहन का काम करते हैं जिससे उस स्थान का संजीवन कार्य चलता है। स्नायु पतली अस्थियों के सहारे मोटे अस्थिभागों को संयुक्त करने का काम करते हैं और चरबी की थैलियाँ अस्थिखण्डों को संघर्ष के समय अधिक गरम होने तथा घिसने से बचाने का काम करती हैं और चरबी देकर सारे संधिस्थान को तर रखती हैं। कितनी वैज्ञानिक और अद्भुत कार्य हो रहा है—कभी आप ने सोचा?

(१२) कः तत् चिकेत—इन सब प्रश्नों को कौन समझता है तथा कौन बतला सकता है कि शरीर यन्त्र की सुन्दर रचना किसने की है। उत्तर में मन्त्र ने कहा है कि "कः-आनन्द स्वरूप परमेश्वर हो इस रचना को भली प्रकार से चिकेत-जानता है।"

परमेश्वर ही इस रचना को रचने वाला है क्योंकि शरीर के यन्त्रों की रचना किसी भी जीव की शक्ति से बाहिर है। रचना तो दूर की बात है—जीवात्मा तो यह भी नहीं जानता कि शरीर के अन्दर क्या क्या हो रहा है और कैसे हो रहा है तथा क्यों हो रहा है।

(तीसरा मन्त्र)

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं
जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्।
श्रोणी यदूरू क उतज्जजान
याभ्यां कुसिधं सुदृढं बभूव॥

(१३) संहितान्तं चतुष्टयं युज्यते—पूर्वोक्त संधियों के चारों भाग एक दूसरे से भली प्रकार जुड़े हुए हैं।

पैरों की एड़ियों से ऊपर टखने और गोड़ों की संधियें कितनी बुद्धिमत्ता के जोड़ी गई हैं कि एक भाग दूसरे भाग से ठीक २ संयुक्त हो कर कार्यकारी और अत्यन्त उपयोगी हो गया है। इन संधि स्थलों की यथातथ्य रचना से ही हमारे चलने फिरने और उठने बैठने के व्यवहार सिद्ध होते हैं। देखिये, टखनों के नीचे की ओर एड़ी और पैर का संस्थान है और ऊपर की ओर दूसरा सिरा लम्बी जंघा अस्थि के साथ जोड़ा हुआ है। उसके ऊपर घुटने की संधि है। घुटने का निचला सिरा नीचे की

लम्बी अस्थि के साथ जोड़ा हुआ है और उपर का सिरा जानु की अस्थि के साथ जोड़ा हुआ है। ये चारों जोड़ इतने आवश्यक और उपयोगी हैं कि इन के बिना शरीर यन्त्र को सम्यक्तया उठाया ही नहीं जा सकता। सोचिये, कि ये चारों–एक से एक उपयोगी जोड़ इतनी बुद्धिमत्ता से किसने जोड़े हैं।

(१४) जानुभ्यां ऊर्ध्वं यत् ऊरू–जानुओं से ऊपर जो ऊरू भाग हैं तत् उ कः जजान–उनको विचित्र प्रकार का किसने बनाया है।

जानु अस्थि जहां एक ओर गोड़े के साथ जुड़ी हैं वहां उस का ऊपर का सिरा उरू प्रदेश की लम्बी अस्थि से जुड़ा हुआ है। वह ऊरू की लम्बी अस्थि "श्रोणि" अर्थात् कूल्हे की दो अस्थियों के साथ जोड़ी गई है-दायें पार्श्व की अस्थि दायें पार्श्व की श्रोणि से और बायें पार्श्व की ऊरू अस्थि, बायें पार्श्व की श्रोणि कूल्हे की अस्थि से जोड़ी गई है। (१५) याभ्याम् कुसिधम् सुदृढ़म् बभूव—इन दोनों ऊरू अस्थियों तथा कूल्हे की श्रोणियों के विचित्र संगठन तथा संधान करने से जहां जोड़ों की व्यवस्था ठीक हो गई है वहां शरीर का निम्नभाग अत्यन्त सुदृढ़ हो गया है।

"कुसिधम्" का अर्थ है बड़ी कठिनता से संधान किया गया।

मन्त्र कहता है यह शरीर का मध्यम भाग बड़ो ही विचित्र कला का प्रदर्शन कर रहा है—इस के नीचे शरीर का आधा भाग है और इस के ऊपर शरीर का आधा भाग है। कलाकार की चतुराई इन दोनों भागों के संधि स्थान में देखने के योग्य है। कूल्हे की त्रिक अस्थियों और श्रोणियों की रचना इस ढंग से की गई है कि ऊपर का सारा शरीर निचले शरीर के साथ अच्छी प्रकार से संयुक्त हो गया है। इस संधान कार्य में कई छोटे बड़े अस्थि खण्डों से कार्य लिया गया है और उन को इस प्रकार यथा स्थान जोड़ा गया है कि शरीर का सन्तुलन भी ठीक रहा है और आगे पीछे झुकने तथा इधर उधर मुड़ने में कोई अव्यवस्था नहीं हो सकती।

'कुसिध' का दूसरा अर्थ यह भी है कि इसी संधि स्थान के अन्दर मल मूत्र के आशय भी स्थापित किये हुए है। मलमूत्र के स्थान और उन के बाहिर त्याग करने के लिये भी यही संधि स्थान ठीक सिद्ध हुआ क्योंकि बैठने उठने और मलत्याग करने में इसी स्थान की सबसे अधिक उपयोगिता सिद्ध होती है। इसी स्थान में सन्तान उत्पति के अंगों को जोड़ दिया गया है जिससे मध्यभाग का यह संधिस्थान शरीर को इन आवश्यक जीवनोपयोगी क्रियाओं में समयानुसार आगे पीछे इधर उधर और ऊपर नीचे हो सके।

इन सब बातों पर विचार करने से पता लगता है कि इस मध्य भाग के विचित्र संधिस्थान को बनाने में भगवान् कलाकार ने अपनी अद्भुत कला चातुरी का प्रदर्शन किया है। एक ही स्थान से तीन बड़े काम लिये गये हैं महान् संधान करके शारीरिक संघठन को सुदृढ़ करना, मलमूत्र का आशय बनाना तथा मलमूत्र के निस्सारण का प्रबन्ध करना और प्रजननेन्द्रियों की सम्पूर्ण व्यवस्था करना। अब आप पुनरपि सोचिये कि ऐसी बुद्धिमत्ता पूर्ण रचना किस ने रची है–है कोई माई का लाल जो कह सके कि मैंने रची है या मेरे माता पिता ने रची है या अपने आप रची गई है। नहीं २ कदापि नहीं–यह रचना परमेश्वर की रची है।

(१६) अतः ऊर्ध्वम् शिथिरम् कबन्धम्–कूल्हे के सन्धि स्थान से ऊपर शिथिल और ढीला ढाला पेट है जिसमें अस्थि का नाम भी नहीं है। क उ तत् जजान–उस पेट को किसने बनाया।

क्या विचित्र रचना है। पैर, गिट्टे, जंघा, घुटने, जानु, ऊरू कूल्हे और श्रोणियों सब के सब निम्नाँग, अस्थियों के बनाये गये हैं और उनके ऊपर उदर को रख दिया है जिसमें एक भी अस्थि नहीं है। क्या जिसने निम्नभाग को अस्थि बहुल बनाया है उसी ने इस अस्थिशून्य उदरभाग को भी बनाया है? निश्चय से उसी ने इस भाग को भी बनाया है–वह अस्थियों की रचना भी रच सकता और अस्थि शून्य रचना भी रच सकता है।

[शेष अगले पृष्ठ पर]

ईश्वर पूजा (ब्रह्मयज्ञ)

❀ लेखक—मातुराम जी आर्य

प्रत्येक सृष्टि के आदि में पवित्र अमृत वेदवाणी द्वारा मनुष्य जीवन के चार फल-धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष प्राप्ति के लिये विधान मिलता है कि:—

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥
(ऋ० ८।१।१)

अर्थ—(सखाय) मित्रो! (अन्यत्) और किसी को (माचित् शंसत) उपास्य मत कहो (मा रिषण्यत) हिंसा कभी मत करो (वृषणं इन्द्रम्) आनन्द वर्षक परमैश्वर्य युक्त की (इत्) ही (स्तोत) स्तुति करो (सुते) उत्पन्न जगत् में (सचा) साथ २ (मुहुः) बार २ (उक्था च) और स्तुति वचन (शंसत) कहो।

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् (ऋ० ८।४२।२)

अर्थ—(वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ दुःखहारी ईश्वर (बृहन्तम्) महान की (वन्दस्व) वन्दना कर (धीरम् अमृतस्य गोपाम्) चेतन भगवान् नित्य मोक्ष के रक्षक को (नमस्य) नमस्कार कर।

वेद डंके की चोट एक मात्र चेतन भगवान की उपासना का विधायक है किसी और दूसरे का नहीं। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निम् (ऋ० १।१६४।४६) में बताया कि वह सत्ता एक है उस सर्वप्रकाशक ज्ञान स्वरूप परमात्मा को अनेकों प्रकार से पुकारते हैं। गुणों के आधार पर उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, सुपर्ण, यम, गरुत्मान् कहते हैं। उसी एक नित्य सत्ता चेतन ज्योति के नाम का जाप करने से कल्याण होता है। उसका निज नाम 'ओ३म्' है।

प्रश्न—जप (जाप) का क्या अर्थ है?

उत्तर—तज्जपस्तदर्थ भावनम् (योगदर्शन) १।२८॥ 'ओ३म्' का जाप=बार २ रटन और ईश्वर का चिन्तन करना अर्थात् उसके गुण कर्म स्वभाव का रिझाया जा सकता है। उनके अनुसार आचरण कर के जीवन सुधारें।

प्रश्न—क्या इसी प्रकार के भजन से बेड़ा पार हो सकता है?

उत्तर—इसके साथ २ भगवान ने भजन की विधि सिखाई है कि हे मनुष्यो अपने कल्याण प्राप्ति के लिये यों कहो और करो:—

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः।
त्वामिदाहुः प्रमति वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥
[ऋ० ८।१९।२९]

अर्थ—ज्ञान स्वरूप प्रेरक भगवान्! तेरी सेवा भजन करूं। यज्ञ परोपकार द्वारा, अन्न, वस्त्र, जल, गुणों के उपदेश, वेदों के स्वाध्याय तथा कीर्तन द्वारा सेवा करूं। हे (वसो) सब में व्यापक भगवान् तुझे ही श्रेष्ठ ज्ञानाधार नेता कहते हैं। मुझ भक्त को अनेकों प्रकार के दान देने के लिये मुझे आनन्दित कर वा तू प्रसन्न होकर अधिकारियों के हितार्थ दान करने के लिये ऐश्वर्य, पदार्थ, सामग्री प्रदान कर। मैं अनाथों, निर्धनों, विधवाओं में जो कुछ मिले-बांट दूं। सब की सहाय करूं। निःस्वार्थ बन कर जीवन बताऊं।

[शेष पिछले पृष्ठ का]

उदर प्रदेश में अस्थि का नाम तक नहीं है। आमाशय, पक्काशय, छोटी आन्त्र बड़ी आन्त्र, यकृत्, तिल्ली क्लोम, गुर्दे, मूत्राशय; वीर्य कोश आदि सभी अंग अस्थि शून्य हैं—इन में से किसी भी अंग में अस्थि नहीं है और ये उदर प्रदेश के प्रधान अंग है।

परमेश्वर की रचना देखिये एक ओर अस्थि ही अस्थि है और दूसरी ओर एक भी अस्थि नहीं कितनी विचित्र कला है। अब आप हृदय पर हाथ रख कर बतलाइये कि इस विचित्र रचना का

दयानन्द योगी तू मुक्ति प्रदाता

[श्री मित्रसैन आर्य शास्त्री, एल० एम० सी०, अलीगढ़]

ग्रन्थों में तेरे अमृत की धारा ।
बन शिव हलाहल पी डाला सारा ।
पापों के आदी जगत की उबारा ।
तेरे गुणों को हर प्राणी गाता ।
दयानन्द योगी तू मुक्ति प्रदाता ॥

विधवा हजारों तुमने बचाईं ।
वेद पढ़ाने को शाला चलाईं ।
जगत से पुरानी कुरीति हटाई ।
कटती बचाईं लाखों गोमाता ।
दयानन्द योगी तू मुक्ति प्रदाता ॥

स्वाधीनता का अंकुर जमाया ।
पाठ राष्ट्रीयता का फिर से पढ़ाया ।
वेदों का मारग सब को दिखाया ।
भजो एक ईश्वर जग का विधाता ।
दयानन्द योगी तू मुक्ति प्रदाता ॥

अछूतों को आकर स्वामी बचाया ।
अबला को तुमने सबला बनाया ।
वेद पढ़न का इन्हें हक दिलाया ।
श्रद्धा से ऋषिवर जग सर नवाता ।
दयानन्द योगी तू मुक्ति प्रदाता ॥

शुद्धि का रस्ता तुमने ही खोला ।
सब को जगाया संसार भोला ।
तर्क तुम्हारा बम का पिटारा ।
मानव तुम्हारी जीत है मनाता ।
दयानन्द योगी त मुक्ति प्रदाता ॥

अनुयायी तेरे सबको बचायें ।
सन्देश तेरा घर २ सुनायें ।
सारे जहां को आर्य बनायें ।
घावों पै मरहम 'राज' भी लगाता ।
दयानन्द योगी तू मुक्ति प्रदाता ॥

[शेष पृष्ठ २ का]

कर्मफलों की व्यवस्था रखने और न्यायपूर्वक उन्हें फल प्रदान करने से शतक्रतुः हुए अतएव वैदिक भक्त ने पुकारा कि हे वसो तथा शतक्रतो (त्वंहि नः पिता) [पितृ पा, रक्षणे] तथा पिता, पालयिता पोषयिता रक्षयिता वा' आप निस्सन्देह हमारे पालन पोषण व रक्षण करने वाले पिता तथैव च (त्वं माता बभूविथ) 'माता निर्माता भवति हमारे निर्माता, निर्माण करने, बनाने वाले होने के कारण आप ही हमारी माता हैं अर्थात् यह सांसारिक माता-पिता तो कुछ काल के लिये ही माता-पिता है, अधिक से अधिक एक जीवन के लिये किन्तु प्रभु आप तो अनादि काल से हमारे माता-पिता हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। आप का मातृ तथा पितृ स्नेह तो सर्वदा हम पर बना रहता है। 'अधाते सुम्नं ईमहे, अतः हम आपका ही उत्तम मनन करते हैं। आपका उत्तम प्रकरण मनन करते हैं। आप जैसे समस्त जीवों पर वात्सल्य पूर्ण मातृ-तथा पितृ स्नेह रखने वाले उत्तम प्रभु का मनन करते हैं।

दे शरण अपनी प्रभु तू पिता सब ही का है ॥
उत्पन्न किया है तूने जग और प्रलय कर्त्ता भी तू ।
तू ही धारण कर रहा है तू पिता सब ही का है ॥
तू ही भय त्राता जगत् का और सुखदाता भी तू ।
गा रहा महिमा जगत् यह तू पिता सब ही का है ॥
पालना तू ही करे, पहुँचावता वृद्धि को तू ।
तू ही माता विश्व भर का, तू पिता सब ही का है ॥

'सरिता की शरारत'

'हमें संघर्ष करना है' शीर्षक लेख की आलोचना

[लेखक—श्री आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा "पथिक" बी० ए०, विद्यावाचस्पति, कानपुर]

—:❀❀:—

दिल्ली से "सरिता" नामक एक संस्कृति विरोधिनी पत्रिका प्रकाशित होती है जिसके प्रायः प्रत्येक अङ्क में वेदों, वैदिक संस्कृति पर आक्षेप रहता है। मैंने 'सरिता' में प्रकाशित गो मांस भक्षण प्रतिपादक श्री रतनलाल बंसल, ऋषियों पर मद्यपान का दोषारोपण सम्बन्धी श्री ईश्वरसिंह वैस प्रभृति का मुंह तोड़ उत्तर दिया था। 'सरिता कार्यालय से "Carvan" (कारवां) नामक एक आंग्ल भाषा में मासिक पत्र निकलता है। उसमें प्रकाशित "Vanishment of Sita" शीर्षक लेख का मुंह तोड़ दिया था। आज तक उन उत्तरों का प्रत्युत्तर न 'सरिता' में न 'Carvan' में दिया गया। यदि 'सरिता' के सम्पादक महोदय तथा उनके कतिपय लेखकों में साहस हो तो मेरे लेख का उत्तर प्रकाशित करें अन्यथा व्यर्थ का कीचड़ उछालने से क्या लाभ ? वेद और संस्कृति रूपी सूर्य पर थूक फेंकने से स्वयं अपने ही ऊपर पड़ेगा।

अभी सितम्बर १९६२ ई० अंक २०३ पृष्ठ २८ से ३३ तक की "सरिता" में श्री सखा बोरड़ का "हमें सघर्ष करना है। अन्धविश्वासों के जहरीले धुएं में हम कब तक सांस लेते रहेंगे ?" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत लेख उसी की आलोचना है। आपने अपने लेख में विना प्रमाण के धर्म जीव, आत्मा, परमात्मा सब को काल्पनिक विषैली बतलाने की धृष्टता की है।

श्री सखा बरोड़ जी लिखते हैं:—

"मानव समाज का बुद्धि को सब से ज्यादा कुंठित भी धर्म ने ही किया है।..."

समीक्षा—आपकी बुद्धि कुंठित है इसलिए आप 'धर्म' को मानव समाज की बुद्धि को कुंठित करने वाला समझ रहे हैं।

आपने 'धर्म' शब्द का वास्तविक तात्पर्य नहीं समझा है इसलिए अपनी कुंठित बुद्धि से 'धर्म' पर व्यर्थ आक्षेप कर रहे हैं। यदि वेदादि सच्छस्त्रों का आपने किसी योग्य गुरु के चरणों में बैठ कर स्वाध्याय किया होता तो इस प्रकार का प्रलाप नहीं करते। आप कोई ऋषि-महर्षि नहीं हैं कि आप जो कुछ 'सरिता में लिखेंगे उसे नेत्र बन्द करके मान ही लिया जाय। जिन ऋषि-मुनियों ने 'धर्म' को भली भांति समझा है हम उनकी बात मानेंगे। आप जो कुछ लिख रहे हैं यह आपका वैयक्तिक विचार हो सकता है जो कपोलकल्पित और अमान्य है।

धर्म का वास्तविक लक्षण—

महर्षि कणाद जी लिखते हैं—

'यतोऽभ्युदययनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।"

[वैशेषिक दर्शन १।२]

अर्थात्—"जिससे सांसारिक (ऐहिक) सब प्रकार के सुख भोग और अन्त में निःश्रेयस (मुक्ति मोक्ष, कैवल्य) भी सिद्ध हो सके वह 'धर्म' है।

महर्षि जैमिनी जी लिखते हैं:—

"चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः।"

[मीमांसा दर्शन १।२]

अर्थात्—(चोदनालक्षणः) विधान में आये (अर्थः) भाव को (धर्मः) धर्म कहते हैं।

वेदाज्ञापूर्वक जिस कर्म के करने की प्रेरणा हो, वह धर्म का लक्षण है। अर्थात्—विधि विधानपूर्वक

जिस कर्म को करने से जन्म जन्मान्तर में परमानन्द मिले, उस वेद प्रतिपाद्य विधिवत् कर्म का अनुष्ठान धर्म के लक्षण का द्योतक है।

राजर्षि मनु जी कहते हैं:—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥"
—[मनुस्मृति २ । १२]

अर्थात्—"वेद, स्मृति, वेदानुकूल आप्तोक्त मनु शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेद द्वारा परमेश्वर प्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसा कि सत्य भाषण, ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्माऽधर्म का निश्चय होता है।

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥"
[मनुस्मृति २ । १३]

अर्थ—"धर्म जानने की इच्छा करने वालों के लिए परम प्रमाण वेद हैं।"

"सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञान चक्षुषा ।
श्रुति प्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥"
[मनु० २ । ८]

अर्थ—"ज्ञान की आंख से इस सब को देखकर **वेद के प्रमाण** से विद्वान् अपने धर्म में प्रवेश करे।" आप उपर्युक्त प्रमाणों से भली भांति समझ गये होंगे कि वेद प्रतिपादित धर्म ही मानव मात्र की बुद्धि तीव्र कर सकता है।

आप मनु जी की दृष्टि में 'नास्तिक' हैं क्योंकि वेदानुमोदित धर्म को आप मानव समाज की बुद्धि को कुंठित करने वाला समझते हैं।

"योऽवमन्येत ते मूले हेतु शास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्व बिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥"
[मनु० २ । ११]

अर्थ—"जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किए शास्त्रों का कुतर्क से अपमान करता है उस वेद निन्दक नास्तिक का सज्जन पुरुष बहिष्कार कर दें।"

बोरड़जी—"विभिन्न धर्मों के सिद्धान्त इस सीमा तक परस्पर विरोधी व एक दूसरे को खण्डित करने वाले हैं कि धर्म का समूचा चिन्तन ही गलत और बेतुका सिद्ध होता है।...

समीक्षा—"यदि आप उपर्युक्त मेरे दिये गये धर्म के लक्षणों को भली भांति चिन्तन करेंगे तो आपको परस्पर विरोध ज्ञात न होगा क्योंकि वेदों में परस्पर विरोध नहीं है और वेदोक्त धर्म ही मान्य है।

महर्षि कणाद के शब्दों में देखिये—

"वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन् यथा शक्ति प्राप्नोति परमांगतिम् ॥"

अर्थात्—"वेद प्रतिपादित स्वधर्म का अनुष्ठान निरालस्य होकर सदा करे क्योंकि यथाशक्ति उसका करने वाला परमगति (मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है।"

आपने 'धर्म, मत, सम्प्रदाय (मजहब) सब को एक समझ लिया है। इनमें कुछ अन्तर है। **'धर्म'** किसी व्यक्ति विशेष का मत नहीं वरन् ईश्वरीय वाणी वेद प्रतिपादित हैं। **'मत'** किसी व्यक्ति का सिद्धान्त होता है। **'सम्प्रदाय'** जिसका प्रवर्तक कोई व्यक्ति होता है और उसके अनेकों अनुयायी होते हैं वह 'सम्प्रदाय' हैं। 'मत' और 'सम्प्रदाय' प्रायः मिलते जुलते शब्द हैं। नानक, कबीर, रामानुज, शंकर, दादू, ईसा, मुहम्मद प्रभृति के चलाये सम्प्रदाय को भी आप 'धर्म' समझते हैं तभी परस्पर विरोध ज्ञात होता है।

मत-मतान्तर, सम्प्रदाय, पन्थ, मजहब में तो परस्पर विरोध अवश्य होगा क्योंकि वे सब वेद प्रतिपादित 'धर्म' नहीं हैं। इसलिये वे अपनी २ डफली और अपना २ राग अलापते हैं तथा अपने को ही सही व श्रेष्ठ बताते हैं।

बोरड़जी—"धर्म और विज्ञान में यही एक मूल भूत अन्तर है। जहां धर्म की स्थापनाओं में कभी समानता नहीं होती वहां विज्ञान के सिद्धान्त सर्व सम्मत और हर परिस्थिति में एक ही परिणाम पर पहुँचने वाले होते हैं।"

समीक्षा—"विज्ञान और धर्म में कोई अन्तर नहीं है। आप अपनी कुंठित बुद्धि से समझने का प्रयत्न करते हैं इसलिए दोनों में आपको मूलभूत अन्तर ज्ञात होता है।

प्रो० हकसली ने कहा है—

"True science and true religion are twin sisters and the separation of either from the other is sure to prove the death of both. Science prospers in proportion as it is religions and religion flourishes in exact propartion to the scientific depth and firmness of its basis,"

अर्थात्—"सत्य विज्ञान और सत्य धर्म दो यमज बहिने हैं और उनकी पृथक्ता दोनों को निश्चय ही नष्ट कर देगी। विज्ञान जितना अधिक धर्म परायण होगा उतनी उसकी वृद्धि अधिक होगी एवं धर्म की वैज्ञानिक नींव गहरी और दृढ़ हों तो अधिक फूलता फलता है।"

'वैदिकधर्म' व विज्ञान में कोई भी अन्तर नहीं प्रतीत होता है। पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी, कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय के वैदिक साहित्य के प्राचार्य लिखते हैं—

"At a time when photography, phonography, gaslight, telegraph the telephone, Railway and ballons had not been introduced into the contry, how could our people under stand any verses referring to these, things.

Our opinion is that in Vedic times, our Country had made extraordinary, progress. In those days the sciences of geology astronomy, and Chemisty were called "Adhidaivik Vidya" and those of physiology, psychology and theology "Adhyatma Vidya"

Though the works embodying the scientific knowledge of those times are entirely lost, there are sufficient indications in Vedic works of those Sciences having been widely known in those days'!

[Trayi chatushtya, preface VII-X]

अर्थात्—"उस समय जब कि फोटोग्राफी (आलोकचित्र विद्या), फोनोग्राफी (शब्द उच्चारण यन्त्र विद्या), गैस लाइट (गैस प्रकाश), तार टेलीफोन (दूर भाषण यन्त्र), धूम्रशकट, और वायुयान का भारत में प्रचार न था, किस प्रकार भारत के वेदभाष्यकर्ता उन मन्त्रों के यथार्थ रहस्यों को समझ सकते थे, जिनमें कि इन वस्तुओं के निर्देश हों।

हमारी सम्मति है कि वैदिक काल में हमारे भारत देश ने पर्याप्त उन्नति कर ली थी। उस समय भूगर्भ विद्या, ज्योतिष और रसायन विद्या को "आधिदैविक विद्या" कहा जाता था और शरीर विद्या, मनोविज्ञान तथा ब्रह्मविद्या को "अध्यात्म विद्या'। उस समय के वैज्ञानिक ग्रन्थ यद्यपि इस समय सर्वथा लुप्त हो गये हैं तो भी वेदों में उन विज्ञानों के सम्बन्ध के पर्याप्त निर्देश मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है वैदिक काल में उन विज्ञानों का पर्याप्त प्रचार था।"

बोरड़ जी—"जीव, आत्मा और परमात्मा की बातें केवल काल्पनिक हैं और उनकी स्थापना करने वाले व्यक्ति न तो सर्वज्ञ थे न केवल ज्ञानी।..."

समीक्षा—जीवात्मा और परमात्मा को काल्पनिक कहने वाले की बातें कपोल-कल्पना हो सकती है, परन्तु ज्ञानियों ने दोनों सत्ताओं को माना है।

सभी वेदादि सच्छास्त्रों में इनकी सत्ता का वर्णन है फिर बिना प्रमाण, तर्क, युक्ति के आपकी बात को कैसे माना जाय ?

जीवात्मा—"इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति।"

[न्यायदर्शन अ० १। आ० १। सू० १०]

अर्थात्—"(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना आत्मा (जीवात्मा) के लिङ्ग (जानने के हेतु) हैं।"

परमात्मा—"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।" [योग समाधिपादे- सू० २४]

अर्थात्—"अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट, और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित हैं वह सब जीवों से विशेष 'ईश्वर' कहाता है।"

डा० पाल कैरस लिखते हैं कि—

"The religion of Science is not atheistic but theistic. God determines the laws of any possible kind of nature. God is that which determines the shape of nature and directs the Course of energy"
[The religion of science by Dr. Paul Carus]

अर्थात्—"विज्ञान का धर्म अनिश्वरवादी नहीं है, अपितु ईश्वरवादी है। परमात्मा प्रकृति के नियमों और रूप का नियामक है। परमात्मा शक्ति के प्रकार का प्रेरक है।"

वोरड़ जी—"धार्मिक स्थान, धार्मिक क्रियाएं, रीतियां, परम्परायें, त्योहार पर्व, पूजापाठ, तपस्या दानपुण्य, साधुसंन्यासी—ये सभी व्यवहारिक धार्मिक भ्रष्टाचार के उदाहरण हैं।"

समीक्षा—धार्मिक स्थान, धार्मिक क्रियाएं, रीतियां, परम्परायें, त्योहार पर्व, पूजापाठ, तपस्या, दानपुण्य, साधुसंन्यासी ये सभी व्यवहारिक धार्मिक सदाचार के उदाहरण हैं। धार्मिक भ्रष्टाचार कहना आपका प्रमत्त-प्रलाप है।

वोरड़ जी—"गोहत्या के प्रश्न पर भी पण्डे पुजारी समय २ पर उछलकूद मचाते रहते हैं, जब कि सही बात यह है कि इस युग में गोमाता का नारा एक राजनीतिक स्टंट मात्र है।".....

समीक्षा—'गाय' राष्ट्र की एक अमूल्य सम्पत्ति तथा अत्यन्त परोपकारी प्राणी है अतः उसकी हत्या करना महान् पाप है। गोमाता का नारा राजनीतिक स्टंट नहीं है वरन् धार्मिक, समाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण से अच्छा है।

'गाय' को वेदों में 'अदिति' 'अघ्न्या' कहा गया है जिसका तात्पर्य है न मारने योग्य।

ऋग्वेद में २०, यजुर्वेद में ५, सामवेद में २, और अथर्ववेद में ३१ बार 'अघ्न्या' शब्द आया है।

"यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्नेतेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च। [ऋ० १०।८७।१६]

अर्थात्—जो वध के अयोग्य गायों का वध कर उनके दूध का अपहरण करता है। हे अग्निस्वरूप राजन्! तू उसके सिर को व्रज से काट डाल।"

सितम्बर १९५२ ई० की "सरिता" में श्री-रत्नलाल बंसल का "आज का सब से बड़ा देश द्रोह गौ पूजा" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें बंसल महोदय ने वेदमन्त्रों से गो हत्या का प्रदिपादन किया था।

इसका लेख का सप्रमाण, तर्क और युक्ति युक्त उत्तर मैंने १, पं० धर्मदेव जी 'विद्यामार्तण्ड' २. श्री शिव स्वामी सरस्वती (पूर्व पं० शिवशर्मा

---

१. साप्ताहिक "आर्यमित्र" लखनऊ ४ दिसम्बर १९५२ ई० में प्रकाशित मेरा "राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति" शीर्षक लेख—(लेखक)

२. "गोरक्षा परम कर्त्तव्य और गो हत्या महापाप" पुस्तक [संवत् २०१० वि० में सर्वश्री गोविन्दराम हासानन्द आर्य साहित्य, नई सड़क, दिल्ली-६ से प्रकाशित]

जी महामहोपदेशक) ३. सनातनधर्म महामण्डल दिल्ली के प्रधान पं० गङ्गा प्रसाद जी शास्त्री, तर्क रत्न ४. प्रभृति ने दिया था।

आज तक 'सरिता' में उन उत्तरों का प्रत्युत्तर नहीं प्रकाशित हुआ। बंसल महोदय की लेखनी भी उत्तर देने में थर्रा उठी अभी भी चुनौती हैं।

बरोड़ जी—"सड़कों पर कितनी ही आवारा गायें कूड़ा मैला खातीं, मारी मारी फिरती हैं पर उन्हें कोई नहीं पूछता।"

समीक्षा—सहस्रों गायों में यदि कोई एक गाय कूड़ा मैला खाती तो उसका पालक शीघ्र उपाय करता है। इस वाक्य से आपका क्या तात्पर्य है? क्या आप चाहते हैं कि ऐसी गौयें मार दी जायं? सूअर भी तो भक्षाभक्ष्य खाता फिरता है, पर हिन्दू अंग्रेज उसके मांस को बड़े प्रेम से खाते हैं। मछली, सभी प्रकार की गन्दगी खाती हैं, मुर्गा नाक की गन्दगी, थूक आदि को खाता है और आप जैसे अधार्मिक, अनीश्वरवादी लोग मछली, मुर्गे और उनके बच्चों को भी भक्षण कर जाते हैं।

पं० जवाहरलाल जी नेहरू का प्रमाण देना भूल है। माननीय नेहरू जी की यह गहरी और भयङ्कर भूल है कि गोहत्या को बन्द नहीं करते हैं। वे राजनीति के विद्वान् भले ही हैं पर धार्मिक बातों में दखल नहीं दे सकते हैं।

बरोड़ जी—"धार्मिक भ्रष्टाचार का एक और आधुनिक रूप इस युग में सामने आया है, वह है धार्मिक आचार्यों का राजनीति में प्रवेश पाने का प्रयास.....। श्री करपात्री जैसे धर्माचार्य रामराज्य परिषद् के प्लेट फ़ार्म से दूसरी राजनीतिक पार्टियों को बुराभला कहते रहते हैं जब कि धर्म में किसी के प्रति बुरी भावना रखना, किसी की निन्दा करना पाद है।"

समीक्षा—धार्मिक आचार्यों का राजनीति में प्रवेश करना धार्मिक सदाचार है। धर्मयुक्त राजनीति ही ठीक मानी गई है। जो धर्म, और नीति को नहीं जानता है वह राज्य क्या कर सकता है? प्राचीन काल में सभी राजे, महाराजे धार्मिक विचारधारा के होते थे। क्या समर्थगुरु रामदास जी ने राजनीति में प्रवेश नहीं किया था? छत्रपति शिवाजी महाराज को धर्मयुक्त राजनीति पर लाने का श्रेय उन्हीं को था। यदि श्री स्वामी करपात्री जी महाराज राजनीति में प्रवेश करते हैं तो कांग्रेसी गद्दी नहीं छीनते हैं, वरन् जहां धार्मिक अन्याय होता है उसकी आलोचना करते हैं। यह उनका उचित कार्य है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज भी "सत्यार्थ प्रकाश" के छठे समुल्लास में धर्मयुक्त राजनीति का वर्णन करते हैं।

बरोड़ जी—"हमारे देश में आधुनिक युग में ऐसा कोई भी दार्शनिक नहीं हुआ जिसने ज्ञान के क्षेत्र में कोई मौलिक खोज की हो। वही वेदों और पुराणों की बातें, वही गीता और रामायण, वही शास्त्रों के उद्धरण, मानो उसके बाद दुनियां में कुछ हुआ ही न हो।".....

समीक्षा—वैदिक धर्म शाश्वत धर्म है। अतः उसमें सभी बातें नई ही हैं। उन ऋषि, महर्षियों की अनुपम देन को समझने, सम्भालने का ज्ञान तो होना चाहिये। आज भी भारत में कई दार्शनिक विद्वान् हैं।

हमारे वेद, शास्त्रों को समझने के लिये पाश्चात्य विद्वान् जीवन पर्यन्त लगे रहते हैं फिर भी उसकी

[शेष पृष्ठ १४ पर]

---

३. "भारत में गोभक्ति" पुस्तक [शिव शर्मा प्रकाशन मन्दिर संभल जि० मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित]

४. "भारत का सब से बड़ा गौरव गो पूजा" पुस्तक [आर्य समाज, दीवान हाल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है । इसमें प्रमाण—

[१२९] स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ [विरु० १ । १८ ॥]

यह निरुक्त में मन्त्र है । जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठाने वाला है, और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है ।

[१३०] उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ऋ० मं० १० । सू० ७१ । मं० ४ ॥

जो अविद्वान् हैं वे सुनते, हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते । किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का जानने वाला है उसके लिये विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान् के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है अविद्वानों के लिये नहीं ।

[१३१] ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ३९ ॥

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, उस ब्रह्म को जो नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है ? नहीं २, किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्ति-

महर्षि-महिमा

[रचयिता—श्री सहदेव सक्सेना "पद्म" नयापुरा, कोटा, राजस्थान]

—❀❀❀—

॥ कवित्त ॥

भारत की दुर्गति निहारि जगदीश्वर ने, दया की हम सतहितेषी पठावने ।
छायो अन्धकार घोर सारे जहान में, देकर प्रकाश वेद हमको दिखावने ।
उनने दई शिक्षा नित वेदों की सत्य २, और सब हिन्दुन को आरज बनावने ।
भाषत 'सहदेव' धीर वीर ओ प्रशंसनीय, स्वामी दयानन्द आये सब को जगावने ॥१॥

॥ कवित्त ॥

खोजत सतमारग हम सारे जहान में, स्वामी ने हम को सब वेद में दिखावने ।
तन, मन, धन, जाने वारि दीन्हो भारत पै, उनकी कृपा जिन हमको सिखावने ।
वेदन को भूलि गये मूरख अनारी लोग, भाषा कर उनकी फेरि हमें चितावने ।
भाषत 'सहदेव' अखण्ड ब्रह्मचारी वीर, स्वामी दयानन्द आये सबको जगावने ॥२॥

॥ कवित्त ॥

कांपते थे पंडित जो लूटते थे हिन्दुन को, उनको दबायो जिन हमको सतावने ।
हम को दी शिक्षा नित सन्ध्या अरु हवन की, खंडन अरु दुर्गति को लागे थे दिखावने ।
सैकड़न हिन्दू जों ईसा, मुसलमान भये, उनकी राखि चोटी अरु हिन्दू बनावने ।
कहे 'सहदेव' धीर वीर ओ प्रशंसनीय, स्वामी दयानन्द आये सब को जगावने ॥३॥

॥ कवित्त ॥

आरज आचार्य साधि के अखंड ब्रह्मचर्य्य, आये थे भारत में अमृत बरसावने ।
जीवन सत शिक्षा सिखाई सब भारत को, कीन्हें उपदेश सत शिक्षा सरसावने ।
मान गये बुद्धिमान लोग उपदेशन को, बाकी के मूढ़ लगे पत्थर बरसावने ।
भाषत 'सहदेव' ये भारत हितेषी वीर, स्वामी दयानन्द आये सबको जगावने ॥४॥

॥ कवित्त ॥

हित अरु लाभदायक बातन को सुभाय, सदा ही सुनाये उपदेश मन भावने ।
मान गये धाक हूहत पंडित जहों तहों, सुने व्याख्यान जब दिल घबरावने ।
भाजि गये काजी, दगाबाजी, बाजी, हारिकर, रोजा ओ कुरानपाक, लगे हैं भुलावने ।
भाषत 'सहदेव' अखण्ड ब्रह्मचारी वीर, स्वामी दयानन्द आये सब को जगावने ॥५॥

[शेष पृष्ठ १२ का]

तह में नहीं पहुँचते हैं । प्रो० मैक्समूलर १६ वर्ष तक वेदों का अन्वेषण करता रहा बाहरी आक्रान्ताओं (यवन, अंग्रेज) ने हमारे देश को लूटा, हमारी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, वेष-भूषा, भाषा को नष्ट किया फिर भारतीयों का बौद्धिक दिवालियापन नहीं हुआ ।

बरोड़ जी—"धार्मिक शिक्षा को स्कूलों और कालेजों में किसी भी प्रकार का स्थान नहीं मिलना चाहिये ?"

समीक्षा—इसका कोई समुचित तर्क बरोड़ जी ने उपस्थित नहीं किया । आज पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा को स्थान न देने के कारण ही आप जैसे अनीश्वरवादी, उद्धत लोग देश के कर्णधार बनकर जनता को पथ में भ्रष्ट कर रहे हैं । जब तक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी तब तक हमारी दासवृत्ति समाप्त न होगी ।

शिक्षा के विषय और दीक्षान्त संस्कार

❀ श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी.
जाफरा बाजार गोरखपुर

माता ५ वें वर्ष तक बालक को शिक्षा दे और छठे वर्ष से ८ वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और और ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करने वाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेजकर शिक्षा दिलायें।

थे आचार्य अपने आश्रमों में रहते थे। वे अपने विषय के अगाध पंडित होते थे। विद्यार्थी गुरु को खोजता हुआ वहां पहुंचता था। जो शिष्य गुरु के पास पहुंचते थे और उनके पास समिधायें होती थीं वे 'समित्पाणि' होते थे। समिधा लेने का अभिप्राय यह था कि जैसे यह लकड़ी है परन्तु आग के स्पर्श से अग्नि की भांति प्रदीप्त होना चाहता है। गुरु भिन्न २ विषयों का पंडित होता था। कभी २ विद्यार्थी को अनेक गुरुओं के पास जाकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। विद्याएं दो प्रकार की होती थीं। एक 'परा विद्या' और दूसरी अपरा विद्या। अपरा विद्या में भौतिक एवं सांसारिक उन्नति के विषय रहते थे। और परा विद्या में अध्यात्म विद्या थी। प्राचीन भारत में व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य 'मुक्ति' होता था अतः मन्त्र विद्या पढ़ने के बाद अध्यात्म विद्या पढ़ना आवश्यक होता था।

शिक्षा समाप्त कर चुकने पर आचार्य का दीक्षान्त भाषण होता था जिसमें आचार्य विद्यार्थी से अपने यहां से विदा हो कर संसार में रहते हुए कार्य करने का उपदेश देता था। यह उपदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण, उद्बोधक और भावना मय होता था। बात यह होती थी गुरुकुल में रहते हुए तो उनके गुणों एवं चरित्र के प्रति गुरु का प्रत्यक्ष ध्यान रहता था परन्तु गुरु से दूर रहने पर उसे उसका विदाई का उपदेश मार्ग प्रदर्शक होता था। आचार्य कहता था—सत्य बोलना। धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय से प्रमाद मत करना। आचार्य को जो प्रिय हो वह दक्षिणा रूप में देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना और प्रजा के सूत्र को मत तोड़ना। सत्य, धर्माचरण और भलाई के कामों में आलस्य मत करना। अपने ऐश्वर्य बढ़ाने, स्वाध्याय और प्रवचन में प्रमाद मत करना। संसार में जो 'देव' हैं तुम से बढ़े चढ़े हैं और जो 'पितर' हैं तुमसे आयु में बड़े हैं उनके प्रति अपने कर्तव्य के पालन करने में उदासीन मत रहना। माता को देवी, पिता आचार्य, अतिथि को देव समझना। हमारे अनन्दित और श्रेष्ठ कर्मों का सेवन करना, दूसरों का नहीं। जो हमारे सु-चरित हैं उन्हीं को उपास्य समझना, दूसरों को नहीं। हम से जो बड़े और श्रेष्ठ हैं उनके उपदेशों को बड़े ध्यान से सुनना। व्यर्थ के वाद विवाद में मत पड़ना। श्रद्धा से देना। अश्रद्धा से देना। अपनी बढ़ती हुई सम्पत्ति में से धन का दान करना। लोक लाज से देना, भय से देना, प्रेम से देना। दान देना कभी भूलना नहीं। तुम्हारी संपत्ति तुम्हारी नहीं। तुम्हारे पास उतना ही धन चाहिये जिससे तुम्हारा काम चल सके। अन्त में आचार्य कहता था कि जब तुम्हें अपना 'धर्माचार' और 'लोकाचार' न समझ में आए तो तुम्हारे पास अरुक्ष स्वभाव के सब पहलुओं पर विचार करने वाले ब्राह्मण जैसे बरतें वैसा व्यवहार करना। 'विवादा-

[शेष पृष्ठ १९ पर]

शङ्का समाधानः—

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास पर शङ्का

❀ समाधाता "पथिक"

मासिक पत्रिका "सरिता" दिल्ली, सितम्बर १९६२ ई०, अङ्क २०३, पृष्ठ १७२ में श्री मेहरसिंह यमतोल, दिल्ली, "सत्यार्थ प्रकाश में भूल" शीर्षक में लिखते हैं:—"सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में वेद पर लिखते हुए मनुः १।२३ का संदर्भ देकर कहा गया है कि अग्नि आदि चारों महर्षियों द्वारा वेद ब्रह्मा को प्राप्त हुए। आगे चल कर ऋषियों (मन्त्रद्रष्टयः) मन्त्रासम्प्रादुः निरुक्त १।२० का संदर्भ देकर लिखा गया है कि जिस जिस मन्त्र का दर्शन जिस जिस ऋषि को पहली बार हुआ है उसने ही उसे पहली बार प्रकाशित किया, पढ़ाया। इससे पहले उसे किसी ने प्रकाशित नहीं किया था। इसलिए आज तक हर मन्त्र के साथ उसके द्रष्टा ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिया जाता है।

मुझे शङ्का हुई कि यदि ब्रह्मा से लेकर इन ऋषियों के उत्पन्न होने तक के दीर्घ काल में जनता वेदार्थ से अनभिज्ञ रही तो काम कैसे चलता रहा? मैंने सोचा, शायद सत्यार्थ प्रकाश में किसी की भूल से ऐसा प्रकाशित हो गया है। मैंने परोपकारिणी सभा अजमेर से पूछा कि दयानन्द सरस्वती की हस्तलिखित प्रति में क्या लिखा है? उत्तर में सत्यार्थ प्रकाश में लिखी बात की पुष्टि की गई।

अतः मेरी शङ्का अब तक बनी हुई है। कोई विद्वान् इसका निवारण कर सकें तो आभारी होऊंगा।"

समाधानः—महर्षि दयानन्द जी ने "शब्द को समझने के लिए निरुक्त का प्रमाण दिया जिससे ऋषियों को कोई वेद मन्त्रों का रचियता न समझ ले जैसा कि पाश्चात्य विद्वान् और उनके चरण-चिह्नों पर चलने वाले कतिपय उच्छिष्ट भोजी भारतीय विद्वान् ऋषियों को ही वेद रचयिता समझते हैं।

'सत्यार्थप्रकाश' के इसी समुल्लास में लिखा है कि—

(प्रश्न)·····फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

(उत्तर)—परमेश्वर ने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थित हुए तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाए।"

इससे स्पष्ट होता है कि वेद मन्त्रों का अर्थ समाधिस्थित होकर ऋषियों ने जाना।

श्री मेहरसिंह जी की शङ्का है कि "यदि ब्रह्मा से लेकर इन ऋषियों के उत्पन्न होने तक के दीर्घ काल में जनता वेदार्थ से अनभिज्ञ रही तो काम कैसे चलता रहा?"

यह शङ्का भी निर्मूल है। महर्षि दयानन्द जी के अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से समाधान हो जाता है। उन्होंने "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रश्नोत्तर विषय में लिखा है:—

"ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका तभी से प्राचीन ऋषि लोग वेद मन्त्रों के अर्थों का विचार करने लगे, फिर उन में से जिस २ मन्त्र का अर्थ जिस२ ऋषि ने प्रकाशित किया उस उसका नाम उसी उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिए लिखा गया है।"·····

यहां पर "तभी से" शब्द से आपकी शंका का समाधान हो जाता है।

अतः महर्षि दयानन्द जी महाराज के "सत्यार्थ प्रकाश" में कोई भी भूल नहीं है।

आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना

❀ "रक्षक"

[अक्तूबर अंक से आगे]

जाति

आर्य्य क्रीष्टान आदि परस्पर विवाह वैध माने जायें। इससे साम्प्रदायिकता का समूल नाश हो जायगा। तथा शुद्धि करने के लिये पचड़ा नहीं करना पड़ेगा। यवन, क्रीष्ट, जैन आदि, जो आर्य्य बनाये गये उन्हें आर्य नहीं पचा सके फल यह हुआ कि वे उल्टे प्रबल शत्रु बन गये अब तो शुद्धि आन्दोलन मर गया है। जैसे पौराणिक सीधे आर्य बन जाते हैं वैसे जैन यवन क्रीष्टान भी बन जाया करेंगे यदि परस्पर विवाह सम्बन्ध वैध स्वीकार कर लिया जाये।

आर्य समाज वालों को यह अटपटा सा लगेगा पर तनिक विचार करिये जो व्यक्ति "परस्त्री मातृ सम" का क्रियात्मक पालन करने वाले हैं वे अत्यन्त उदार मन व मानवहितेषी होते हैं वे तो हमारा विरोध करेंगे नहीं। परन्तु जिनमें व्यभिचार भाव वर्तमान् है उनका मन संकुचित होता है ऐसे व्यक्ति जाति, सम्प्रदाय, देश, भाषा के मिथ्याभिमान में फ़ंसे रहते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपनी वृत्ति सतोगुणी बनावें। यदि हम आर्य सदस्यों से प्रश्न करें कि विवाह उत्तम है या व्यभिचार। तो उत्तर यही मिलेगा विवाह श्रेष्ठ है। अभी परस्पर अर्न्तजातीय अर्न्तसाम्प्रदायिक अर्न्तराष्ट्रीय व्यभिचार सर्वत्र विद्यमान है। हमें इस व्यभिचार को समाप्त कर इसके स्थान पर विवाह जैसी पवित्र प्रथा को रखना है। उद्देश्य हमारा अत्यन्त पवित्र है हां अर्न्तराष्ट्रीय क्रियात्मक एकता के लिये आर्य सदस्यों का सहयोग आवश्यक है। व्यभिचार मानव समाज में व्याप्त भयंकरतम रोग है। यदि इसे नष्ट न किया गया तो आर्य समाज नष्ट हो जायगा। व्यभिचार कई प्रकार का है। अनेक देशों में विवाह पूर्व व्यभिचार अधिक है हमारे देश में विवाह पश्चात् व्यभिचार अधिक है। इनमें भी पर पत्नी व्यभिचार व स्वपत्नी व्यभिचार नामक दो भेद हैं। यदि कोई व्यक्ति स्वपत्नी व्यभिचारी है तो भी वह आर्य नहीं हो सकता। आर्य तो वह जो "पर स्त्री मातृसम" मानता है व अपनी पत्नी से ऋतुगामी है। परन्तु ऐसे व्यक्ति आर्य समाज में अधिक नहीं। यदि आर्य सदस्य ऋतुगामी रहने वाले होते व उनकी पत्नियां भी आर्य होती तो इनकी सन्तानें भी अवश्य आर्य होती। आर्यो! स्मरण रखिये संसार में व्यभिचार वादी जब तक अधिक हैं तब तक आपकी शक्ति काम नहीं कर सकती है। हम तो समझते हैं धीरे २ व्यभिचार आर्य समाज को ही खा जायगा। यदि अति शीघ्र कोई विशेष प्रयत्न न किया गया।

आर्य जनता का प्रश्न होगा कि यदि ऐसा विवाह वैध माना जाये तो उनकी सन्तानों का धर्म उनके नाम आदि क्या होंगे। मानिये एक आर्य पुरुष व यवन कन्या विवाहित है अब इनकी सन्तानों में जो बालक होंगे उनका नाम आर्यों जैसा रखा जायगा तथा बालिकाओं का यवन नाम। यदि आर्य युवक वास्तव में आर्य है तो चरित्रबल से यवन कन्या को स्वेच्छा से आर्य बना लेगा। इसी प्रकार अन्यों में समझ लीजिये। जैसे अभी आर्यों व पौराणिकों में साम्प्रदायिक कलह नहीं। विचारों में एक दम विरोधी। याने विश्व में व आर्य व पौराणिक विचार धारा नितांत परस्पर विपरीत है परन्तु विवाह सम्बन्ध होने से आर्य पौराणिक जैन यवन क्रिष्टान आदि में परस्पर विवाह सम्बन्ध हो तो दंगे द्वेष आदि न रहेगा। एक दूसरे से भय मिट

जायगा। तथा आर्यों से पूछा जाय कि पौराणिक जैन यवन क्रिष्टान आदि हैं वे भूतकाल में क्या थे, ये सब आर्य थे इन्हें पुनः आर्य बनाना है। अतः यह मार्ग अपनाना श्रेयस्कर होगा हम विश्वशान्ति वास्तव में चाहते हैं। हम मोक्षमार्गी हैं सो हम मनुष्य ही नहीं पशु आदि सबका कल्याण चाहने वालों में हैं। पशु पक्षियों में इस प्रकार का युद्ध नहीं होता जैसे मनुष्यों में होता है।

जिनसे समान प्रसव होता है वह जाति है इसे क्रियात्मक रूप दें। वेद तो इन्कार करता नहीं। आर्य ब्राह्मणों को इससे विरोध न होना चाहिये। यदि कोई महानुभाव इस सम्बन्ध में कलम चलायेगा तो विनम्र भाव से उसका यथोचित उत्तर खुलासा देंगे। अन्त में फिर कहना है व्यभिचार को समाप्त करने के लिये यह युक्ति ठीक है आर्यजाति में मिथ्या जाति अभिमान वर्त्तमान है यही कारण है कि पौराणिक जाति व्यवस्था को हम समाप्त नहीं कर सके। आर्य जनता को ज्ञात होना चाहिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में दो दल हैं वे जातिगत आधार पर हैं। तथा ६ मास तो चुनाव करने में निकाल देते हैं अगले ६ मास विरुद्ध दल की शक्ति समाप्त करने में लगा देते हैं भला क्या प्रचार हो वैदिक धर्म का? प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं में भी इसी प्रकार का झगड़ा है।

वर्ण व्यवस्था

प्रत्येक आर्य अपनी सन्तानों को गुरुकुलों में भेजे। वहां वे अध्ययन करेंगे व उनका वर्ण निश्चित किया जायगा। (२) गुरुकुल से मिले गुण कर्मानुसार वर्णों के बालक बालिकाओं का विवाह कराया जावे। (३) अभी ऐसा किया नहीं जा सकता अतः कर संतानों विवाह पौराणिक जाति तोड़ करें।

वर्णाश्रम व्यवस्था आर्य समाज की रीढ़ की हड्डी है। परन्तु इसका स्थापन नहीं हो सका। इस व्यवस्था में ज्ञान कर्मोपासना का समन्वय कर आर्य मोक्षमार्गी बनते थे। इस व्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान "परिव्राट्" को प्राप्त था। पौराणिक वर्ण व्यवस्था जन्मगत है। पौराणिक वर्ण व्यवस्था से हमारे देश में शूद्र वर्ग अत्यन्त हेय समझा जाने लगा। तथा अन्य वर्ण स्वतः निम्न कोटि के होते चले गये धीरे २ शूद्र वर्ग पर अत्यन्त अत्याचार किया जाने लगा। शूद्रवर्ग जिसे आधुनिक भाषा में श्रमजीवी कहा जाता है ये ही कालान्तर में यवन क्रिष्टान आदि बने। आर्यावर्त में १६ करोड़ यवन व २ करोड़ क्रिष्टान है। हमने शूद्र वर्ग को अस्पृस्य बनाया। उसके कारण जो हानि हमने उठाई उसे कौन नहीं जानता है। खेद है आर्य समाज पौराणिक वर्ण व्यवस्था से उन्मुक्त न हो सका। यह संस्था बिना रीढ़ की हड्डी वाले मनुष्य के समान है। ८७ वर्षों के अल्पकाल में आर्य समाज की इतनी दयनीय दशा हो गयी तथा पौराणिकों एवं अन्य सम्प्रदायों की भान्ति यह भी एक सम्प्रदाय मात्र रह गया है। जिस समाज के सिद्धान्त वेदानुकूल हों। जिसके नियम ही इस प्रकार के हों कि अति शीघ्र विश्व शान्ति कर सके। अन्ततोगत्वा यह समाज आज अन्तिम श्वास क्यों ले रहा है। महाभारत के पश्चात् आर्यावर्त्त व विश्व की दशा को सुधारने के लिये अनेक आन्दोलन उठे परन्तु पानी के बुलबुले के समान नष्ट हो गये। यदि आरंभ से ही आर्य समाज में गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का स्थापन हो जाता तो दयानन्द के समस्त दिव्य स्वप्न साकार हो जाते। हम अपने सामने समस्त विश्व को चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य के अन्तर्गत देखते। वह राज्य जहां कोई जार नही कोई गणिका नहीं कोई स्तेन नहीं कोई नास्तिक नहीं, कोई अपकारी नहीं। आर्ष ज्योति विरजानन्द की प्रज्ञा से प्रस्फुटित हुई। दयानन्द ने अपने तप से उसे तीव्रतम कर दिया। वेद सूर्य्य का प्रकाश समस्त भूमण्डल पर प्रदीप्त होने लगा। इस ज्योति की मनुष्यमात्र तक पहुँचाने हेतु गुरुदत्त दर्शनानन्द आदि ने जीवन साधना दी लेखराम श्रद्धानन्द आदि ने रक्त दान दिया। इस ज्योति की ज्वाला मानव समाज के एक-एक शत्रु को नष्ट करने लगी। अज्ञान अन्याय अभाव से पीड़ित मानव समाज को कुछ चैन की सांस

मिली। सहस्रों वर्षों के भटके यात्रियों को वेद का राजपथ दीख गया। परन्तु महान् आश्चर्य हमारे भूले भटके राही मार्ग को पूरा पकड़ भी न पाये कि आर्ष ज्योति के वेद सूर्य पर प्रमाद के बादल छा गये। अब मानव समाज अत्यन्त सन्तप्त हो चुका है। युद्ध का देवता इस ईश्वर पुत्र को क्या द्वेष भय, काम, व्यभिचार आदि की वाड़वाग्नि में सदा के लिये धक्के देना चाहता है। देखें चोट खाये शाश्वत शान्ति के प्रहरी आर्य समाज का कौन मरहम करता है।

आर्ष ग्रन्थों में ऋषि ने मनुस्मृति के अत्यन्त गुण गाये। क्यों वैदिक सभ्यता का निष्कर्ष मनु ने दिया। मनु औषध का भी औषध है। हमारी वर्णाश्रम व्यवस्था का आधार है धर्म अर्थ काम मोक्ष। अर्थ शरीर के लिये, काम मन के लिये धर्म बुद्धि के लिये व मोक्ष जीवात्मा के लिये। आर्य का चरम लक्ष्य है मोक्ष जिस के बिना धर्म व अर्थ काम का समन्वय क्या नहीं प्राप्त किया जा सकता। वर्ण आश्रम व्यवस्था गुण कर्मानुसार अत्यन्त फलदायिनी है वहां जन्मगत हलाहल विष है। जन्मगत वर्ण व्यवस्था ने आर्यावर्त्त को, उस आर्यावर्त्त को जिसके लिये स्मृति कहती है इस देश के ब्राह्मणों से भूतल के मनुष्य आचार ग्रहण करें पूर्ण रूपेण अनार्य देश बना दिया। उस विष को पीने वाला आर्य समाज कब तक चलेगा। ब्रह्म अर्थात् ईश्वर वेद ब्राह्मण ये वैदिक व्यवस्था के मूलाधार है आर्य समाज ने तीनों का ही बहिष्कार कर रखा है, ये समाज चले कैसे? अतः आर्य जनता को हम सावधान करते हैं कि समय से पहले चेते और आर्य समाज को सच्चे अर्थों में वैदिक संगठन बनाये तब देखिये आर्य समाज की शक्ति? सम्भलिये सोचिये तो सही और क्या होंगे अभी!!!

[शेष पृष्ठ १३ का]

स्पद' विषयों में ऐसे ही व्यक्तियों का अनुकरण करना। यही हमारा आदेश, अनुशासन और अनुष्ठान है।

स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में विद्यार्थी का गुरु के प्रति जो शिष्टाचार होता था उसका भी उल्लेख किया है। वहां वे कहते हैं कि विद्यार्थी कटु वचन न बोले। बड़ों को मान्य दे। उनके सामने उच्चासन पर न बैठे उन्हें प्रतिदिन 'नमस्ते' कहे।

शिक्षा के विषय तो रुचि-अनुकूल होने चाहिए। रुचि के अनुसार व्याकरण, गणित विज्ञान, वेद आदि विषय पढ़ने चाहिए यही विधि प्राचीन काल में प्रचलित थी और स्वामी जी महाराज ने भी अपने ग्रंथों में उल्लेख किया है।

[शेष पृष्ठ २० का]

रूप से बताता हूँ। आदि काल में निश्चय से यज्ञों में पशुओं को स्पर्श के योग्य अथवा पूजार्थ केसरादि के लेपन के योग्य समझा जाता था उन्हें मारा नहीं जाता था। दक्ष प्रजापति के अनन्तर काल में नरिष्यन्त नाभाग, इक्ष्वाकु, रिष्ट, शर्याति आदि मनु के पुत्रों के यज्ञों में पशुओं की ही यथार्थ अनुमति होने से अभिमन्त्रित करके पशुओं का हनन किया गया। इसके भी पश्चात् पृषध्र ने बहुत अधिक समय तक चलने वाला यज्ञ किया। उसमें जब अन्य पशु दुर्लभ हो गये, तब उसने गौओं को मारकर यज्ञ में बलि देना प्रवृत्त कर दिया। इसे देखकर प्राणिमात्र अत्यन्त दुखित हुए। इस प्रकार चरक में पशु बलि एवं गोवध का इतिहास दिखलाते हुए यह दिखलाया गया है कि निश्चय पूर्वक आदि काल में गोवध और अन्य पशुओं का वध नहीं होता था। आज हमें आवश्यकता है गोमेध यज्ञ के सच्चे रूप को जनता के समक्ष लाने की। हमने अभी कुछ समय पूर्व बम्बई में श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी की अध्यक्षता में सुशीला साहनी (गोरे गांव) के यहां एक गोमेध यज्ञ कराया था। जिसमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया था कि वस्तुतः गोमेध यज्ञ का सत्यस्वरूप क्या है? और उसका स्वरूप कैसे विकृत हुआ। इस विषय में श्री पूज्यपाद स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की लिखी "गोमेध यज्ञ पद्धति" नामक पुस्तक सार्थक सिद्ध हो सकती है। आर्य जनों को चाहिए कि वे इस युग में भी जनता के समक्ष गोमेध यज्ञ के सत्य स्वरूप को प्रदर्शित करें। (क्रमशः)

गोमेध यज्ञ

❀ लेखक—श्री भारतेन्दु "विमल" व्याकरणाचार्य

आज के युग में गोमेध यज्ञ की प्रथा नहीं रही प्राचीन काल में शास्त्रीय विधान के अनुसार बहुधा गो मेध यज्ञ किये जाते थे। किन्तु मध्यकाल में गोमेध यज्ञ का वास्तविक स्वरूप विकृत हो गया गोमेध यज्ञ के नाम पर यज्ञों में गौओं की, एवं अन्य पशुओं की बलि भी अजमेधादि यज्ञ में दी जाने लगी। यहीं तक नहीं एतद्देशीय व पाश्चात्य विद्वानों ने नरमेध यज्ञ के नाम पर यज्ञों में मनुष्यों के वध का विधान रखा और वह भी इस प्रामाणिकता के साथ कि वेद मन्त्रों के अन्दर ऐसा वर्णन है कि यज्ञों में मनुष्यों का वध होता था और होना चाहिए। इस मत को जन्म देने वालों का मुख्य आधार वेद मन्त्रों में शुनःशेष का विस्तृत व्याख्यान है। उन व्यक्तियों ने शुनः शेष के व्याख्यान का वास्तविक अर्थ समझने का प्रयत्न न किया और इच्छानुसार प्रलाप किया। मैक्समूलर ने इतनी कृपा अवश्य की है कि—"वेदों में पशु बलि का विधान है, बड़े २ यज्ञों में गौ आदि पशुओं की भी बलि देने का विधान है परन्तु मनुष्य ,की बलि देने का विधान वेदों में नहीं है जब कि अन्य शास्त्रों के आधार पर मनुष्य की बलि भी दी जानी चाहिए।" इस अपने कथन में वे वेदों के अनुसार यज्ञों में मनुष्यों की बलि नहीं मानते है। आज के युग में गोमेधयज्ञ तो नहीं होते किन्तु पुनरपि यज्ञों में बलि देने की अनर्गलता शिक्षित समुदाय से छिपी हुई नहीं है। वैसे तो बहुत से व्यक्ति आज भी यह शंका करते हैं कि पाणिनीय अष्टाध्यायी में "दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने" यह सूत्र है जिसका स्पष्ट विश्लेषण है कि—"आगताय यस्मै गां घ्नन्ति इति गोघ्नोऽतिथिः" यहां पर गोघ्न शब्द अतिथि के लिए प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् अतिथि यज्ञ में गौवध किया जाता था और यह युक्त है? किन्तु इसका समाधान हमें अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति में मिल जाता है। वहां (काशिका ३-४-७३) पर दिया है कि "असत्यपि च गोहनने तस्य योग्यतयागोघ्न इत्यभिधीयते"। अर्थात् अतिथि की योग्यता इतनी होती है कि उसके जीवन की रक्षा के लिए गौ तक का वध किया जा सकता है। जैसे कि कहा भी है "शत धेनुर्हतोविप्रः" एक विप्र को मारने का इतना पाप है जितना १०० गौओं को मारने का। अतः पाणिनीय सूत्र का अर्थ गोवधपरक नहीं हो सकता। अथर्ववेद में भी एक मन्त्र में कहा है कि—यदि नो गां हिन्सि यद्यश्वं यदि पुरुषम्। तन्त्वासीसेन विध्यामो यथा नो सो अवीरहा।" अर्थात् यदि तू हमारे गौ अश्व-और पुरुषों को मारता है तो हम तुझे कांच की गोली से बींध देंगे जिससे तू इनका हनन न कर सके। और भी कई स्थानों पर वेद मन्त्रों में गौ का "अघ्न्या" विशेषण दिया गया है जिसका स्पष्ट अर्थ है **न मारने योग्य**। अन्यत्र गौ को माता भी कहा है। अतः यह बात सर्वथा सिद्ध है कि गौ वध का विधान वेद में नहीं। पुनः यह भी प्रश्न उठता है कि यह पशु बलि प्रथा कहां से और कैसे चली? इस इतिहास का वर्णन चरक संहिता में दिया गया है:—

"श्रूयतामाग्निवेश सर्वमेतदखिलेन व्याख्यायमानम् आदि काले खलु यज्ञेषु पशवः समालम्भनीया वर्नलभूम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। ततो दक्ष यज्ञं प्रत्वर कालं मनोः पुत्राणां नरिष्यन्ता दीनां च क्रतुषु पशूना मेवाभ्यनु ज्ञानात् पशवः प्रोक्षणमवापुः। अतश्च पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजता पशूना मला भात् गवामालम्भः प्रवर्तितः। तन्दृष्ट्वाप्रव्यथिताः भूतगणाः।

अर्थात्—भगावन् पुनर्वसु आत्रेय कहते हैं कि "अग्निवेश! सुनो! मैं इस सारे विषय को सम्पूर्ण

[शेष पृष्ठ १९ पर]

आर्य्य समाज

[रचयिता—पं० अभिविनय भारथी]

महानाथ की ज्वालाएं धरती पर दौड़ी आ रही है,
आर्य्य समाज तुम्हें बढ़ना है मानवता चिल्ला रही है,
इस धरती पर कौन बढ़ेगा, हमें बतादो—आर्य समाज

बौली धरती ध्वस्त स्वरों में भारत खोलो अपना कान,
मांग रही है मानवता फिर सुखद शान्ति का छायादान,
ध्यान धारणा कौन धरेगा हमें बतादो—आर्य समाज

बर्मा-लंका जावा बाली स्याम मलाया चीन अनाम,
सभी वृहत्तर भारत में थे अफ्रीका तिब्बत सुरनाम,
इन्हें एक अब कौन करेगा हमें बतादो—आर्य समाज

आर्यवर्त्त से भारतीय बन होकर हिन्दू हिन्दुस्तान,
फिर वे हिन्दू बने मुसल्मां अलग हुए ले पाकिस्तान,
इन्हें शुद्ध अब कौन करेगा हमें बतादो—आर्य्य समाज

घूम रहा है अन्तरिक्ष पर साम्यवाद का विकट विमान,
बाँध रहा साम्राज्यवाद भू-मण्डल को देकर अनुदान,
धरा शान्त यह कौन करेगा हमें बतादो—आर्य समाज

शक्ति-भक्ति अनुरक्ति-युक्ति से मिले विश्व को सम सम्मान,
व्यक्ति व्यक्ति का वर्ण धर्म हो प्राची का लेकर वरदान,
कर्म भावना कौन भरेगा हमें बतादो—आर्य समाज

नास्तिक द्वैताद्वैतवाद बढ़ रहा शून्य में भौतिकवाद,
त्रैतवाद फिर बढ़े जगत् में श्रुति-संस्कृति का सुखद-निनाद,
इस प्रपञ्च से कौन लड़ेगा हमें बतादो—आर्य समाज

आज धरा पर फिर होना है आर्य्य कुमारों को बलिदान,
आसण-रक्त से धो देना है मां का कुटिल कलंक महान्,
रक्त राग यह कौन सुनेगा हमें बतादो—आर्य समाज

अर्थ—काम के आदि अन्त में धर्म-मोक्ष का हो परिधान,
मृत-मानव जीवित-मानव हो मिटे सकल-जग का व्यवधान,
अडिग धर्म पर कौन रहेगा हमें बतादो—आर्य समाज

गूंज उठे फिर तीन लोक कुल भू-द्यावा द्यू-लोक महान्,
अश्वमेध से उठे धूम फिर फैले यह वैदिक विज्ञान,
संकट जग का कौन हरेगा हमें बतादो—आर्य समाज

उमड़ रहा हो बड़वानल भीषण गति से आंधी-तूफान,
कड़क रहा हो धरती-अम्बर, शैल उखड़ता हो अनजान,
हिम शिखरों पर कौन चढ़ेगा हमें बतादो—आर्य्य समाज

साहित्य समीक्षा

आप क्या करें—मूल लेखक जोसेफ़ मेजिनी अनुवादक श्याम चन्द्र कपूर। प्रकाशक सुबोध प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ संख्या १२८ मूल्य ३) रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक इटली साम्राज्य निर्माता सुप्रसिद्ध विचारक और राजनीतिज्ञ जोज़फ मेज़िनी द्वारा लिखित Duties of man का स्वतन्त्र अनुवाद है। पुस्तक में मनुष्य का ईश्वर के प्रति अपने प्रति, परिवार के प्रति, राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य है मानवता और स्वाधीनता के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है इत्यादि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अध्ययन से हमें अपने कर्तव्य का ज्ञान होगा कर्तव्य का ज्ञात होने पर हम अपने परिवार, समाज, देश और राष्ट्र की सुसेवा कर सकते हैं। प्रत्येक युवक, युवती, बाल और वृद्ध को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये।

छपाई और गैट अप सुन्दर है। पुस्तक का अनुवाद भी सुन्दर बन पड़ा है।

हंसते हंसते कैसे जिएं:—मूल लेखक स्वेट मार्डन अनुवादक श्याम चन्द्र कपूर। प्रकाशक उपर्युक्त। पृष्ठ संख्या ९२ मूल्य मूल्य २)२५

यह पुस्तक स्वेट मार्डन द्वारा लिखित Cherfulness का अनुवाद है। संसार एक संघर्ष स्थली है यहां पद पर बाधाएं और संकट आते हैं। कभी-कभी मनुष्य निराश और उदास हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक हमें आपत्तियों, संकटों और मुसीबतों में भी हंसते हुए आगे बढ़ने और कार्य करने का सन्देश देती है। इस पुस्तक के अध्ययन से दुःखों निराशाओं और चिन्ताओं से मुक्ति पाने के अनेक उपाय पाठको को उपलब्ध होंगे। चिन्ताओं को दूर कर आप जिस भी क्षेत्र में हैं उसी क्षत्र में गाते और गुणगुणाते हुए काम कीजिये। आप के मुखमण्डल में सदा एक मुस्कान हो यही पुस्तक का सार और मर्म है। पुस्तक ७ संदर्भों में विभक्त है प्रत्येक संदर्भ अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी है। पढ़िये और प्रसन्न चित्त बनिये।

दोनों पुस्तकों का कागज, मुद्रण और गेट अप सभी सुन्दर है। अनुवाद भी सुन्दर बन पड़ा है।

राजघाट की पुकार—लेखक श्री मोहनलाल सक्सेना ससद सदस्य। अनुवादक श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार। प्रकाशक सत्यदेव विद्यालंकार (मारवाड़ी प्रकाशन) ४० ए हनुमान लेन नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या ४० मूल्य ३० नये पैसे।

आज भारत में जब कोई विदेशी व्यक्ति आता है तो सब से पहले उसे राजघाट ले जाया जाता है और गांधी जी की समाधि के ऊपर फूल मालाएं चढ़वाई जाती हैं और गांधी जी के चेले तथा काँग्रेस सरकार इसी में अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेती है। परन्तु क्या इससे गांधी जी को शान्ति मिलती है? नहीं कदापि नहीं। गांधी जी की सच्ची पूजा तो यह है कि उनके उद्देश्य और आदर्शों पर आचरण किया जाये। प्रस्तुत पुस्तक में गांधी जी के लेखों से अनेक उद्धरण देकर यह बताया गया है कि गाँधी जी के चेले आज कहां जा रहे हैं और किस प्रकार गांधी जी के आदर्शों की हत्या कर रहे हैं। गाँधी जी के शिष्यों और कांग्रेसियों को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये।

ज्ञान दीप—लेखक श्री पं० हरिदेव जी 'तर्क केसरी'। वैदिक धर्म प्रकाशन मकान नं० २७६१,२२, बीडनपुरा, करौल बाग, नई दिल्ली ५। पृष्ठ सख्या २५२ मूल्य २) रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों का मन्थन कर २५० विषयों पर सुन्दर २ श्लोकों का संग्रह किया है। श्लोकों का अर्थ देने के कारण पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। श्लोकों के अतिरिक्त विषय से सम्बन्धित दोहे चौपाई और कवित्त आदि भी दिये गये हैं। स्वाध्यायशील जनों के लिये और विशेषकर लेखक तक उपदेशकों के लिये बहुत उपयोगी है।

सम्पादकीय टिप्पणियां

स्थूलाक्षरी सत्यार्थ प्रकाशः—

"सत्यार्थ प्रकाश" आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की अमर कृति है। दूसरे शब्दों में यह हमारे आचार्य का ग्रन्थ है। आचार्य के ग्रन्थ का जैसा सुन्दर सम्पादन और प्रकाशन होना चाहिए था वैसा अभी तक हुआ नहीं। प्रयास हुए परन्तु जहाँ तक पहुँचना था वहां तक अभी पहुंच नहीं पाये श्री स्व० स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने 'सत्यार्थ प्रकाश' पर टिप्पणियां लिख कर बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है परन्तु अभी तो बहुत कुछ करना शेष है। टिप्पणियों की दृष्टि से स्वामी वेदानन्द जी का सत्यार्थ प्रकाश अद्वितीय है परन्तु स्वामी जी मूल पाठ का मिलान नहीं कर पाये। अन्य संस्करणों का तो कहना ही क्या? वैदिक प्रेस ने जैसा भ्रष्ट संस्करण छापा है ऐसा कुप्रयास तो अपने आचार्य के ग्रन्थ के साथ किसी ने भी न किया होगा। अनेक स्थानों पर पाठ बदला है तो कही बढ़ा दिया है और प्रूफ रीडिंग तो बहुत ही रद्दी है। अशुद्धियों की भरमार है। एक और संस्करण अभी वैदिक साहित्य सदन देहली ने निकाला है उसके सम्पादक महोदय (जिन का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं उस पर लिखा ही नहीं है) ने अपनी नासमझी का दोष महर्षि के ऊपर लगाया है। सम्पादक का अपना ज्ञान तो है नहीं और वे महर्षि की गलती ढूंढने चले हैं इस से अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है?

इन त्रुटियों को दृष्टि में रखते हुये हमने आचार्य के ग्रन्थ को शुद्धतम रूप में मूल प्रति को मिला कर प्रकाशित करने का निश्चय किया है। कार्य आरम्भ हो गया है। सम्पादन कार्य पं० भगवद्दत्त जी कर रहे हैं। सहयोगी और भी हैं। मैं भी प्रतिदिन कुछ समय पण्डित जी के पास बैठकर संशोधन कार्य में सहायता देता हूं। दो घण्टे में हम लगभग ८ पृष्ठों का मिलान कर पाते हैं। पाठक इस से ही अनुमान लगा सकते हैं कि इस ग्रन्थ में कितना परिश्रम किया जा रहा है। प्रूफ भी बड़ी सावधानी पूर्वक तीन तीन व्यक्ति पढ़ते हैं।

मूल पाठ की दृष्टि से अब तक जितने संस्करण छपे हैं उन सब में यह ग्रन्थ अद्वितीय होगा। इस "सत्यार्थ प्रकाश' के एक पृष्ठ का नमूना पृष्ठ १३ पर दिया गया है। पाठक वहां देखे कैसा है।

एक मार्मिक अपीलः—

'वेद प्रकाश' की पञ्चवर्षीय योजना के सम्बन्ध में "वेदप्रकाश" परिवार के एक वृद्ध महानुभाव लिखते हैं—

आपकी निस्वार्थ तप, त्याग के साथ साथ अटूट लग्न की क्या कहूँ सच है "गुण न हेरानो गुण ग्राहक हेरानो है।" एक वार और अपनी इस योजना की मार्मिक अपील सर्व साधारण जनता, विशेषतः आर्य अनुरागियों के समक्ष इस प्रकार रक्खें कि जिसे सुन निर्जीव भी सजीव हो झूमने लगें। यह अपील इस वर्ष के 'वेदप्रकाश' अंक में मार्मिक चेतावनी स्वरूप इस प्रकार वीर शब्दों में प्रकाशित हो कि मस्त अनुरागी प्रेमी अपने अपने अभीष्ट वार्षिक शुल्क को अंक ८ तक भेज देवें जिससे अंक ९ में योजना की पूर्ण रूप रेखा स्पष्ट प्रकाशित हो और 'वेदप्रकाश' वर्ष १२ का प्रथम प्रकाशन विश्व का सर्वथा आलोकित कर निहाल कर दे।"

आर्य बन्धुओं! यह एक बूढ़े शेर की अपील हैं। युवक होते हुए भी इन से अधिक जोरदार श-द मेरे पास नहीं हैं। सितम्बर मास में जो पञ्च वर्षीय योजना छापी थी लोगों ने उसको पसन्द तो खूब किया है। अनेक व्यक्तियों ने मिलने पर इस योजना का कार्यान्वित करने का आग्रह किया है परन्तु अब तक सारा जबानी जमा खर्च रहा है। प्रतीत ऐसा

होता है आर्यों का उत्साह ठण्डा पड़ गया है। अथवा स्वाध्याय में आर्यों की रुचि नहीं रही है। आज यदि कहीं भवन बनने लग जाये तो एक एक व्यक्ति एक एक कमरा बनवा देगा परन्तु साहित्य के नाम पर ऐसे धनिक व्यक्ति भी कुछ नहीं करते। यदि कहीं जयन्तियां और सम्मेलन हों तो लोगे वहां आने जाने में ही सैकड़ों रुपये फूंक देते हैं परन्तु पुस्तकों के लिए ५) वार्षिक खर्च नहीं कर सकते। कैसी दयनीय स्थिति है।

मुझे दान नहीं चाहिये और न मैं लाखों की अपील करता हूं। मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि वेद प्रकाश का प्रत्येक ग्राहक यदि थोड़ा भी प्रयत्न करे तो बड़ी आसानी से दो ग्राहक बना सकता है। यदि और कोई ग्राहक नहीं बनता तो अपने मित्रों को, बन्धुओं को रिशतेदारों को बनाइये। मुझे केवल ३००० ग्राहक चाहियें फिर देखिये मैं 'वेद प्रकाश' को कहाँ से कहां पहुँचाता हूँ। ५) में आप को वेद प्रकाश साइज के ४०० पृष्ठ बढ़िया कागज पर मिलेंगे। इन पांच रुपये में भी ७५ पैसे तो पोस्टेज ही लग जायेगा। कितना सस्ता सौदा है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार के शब्दों में आर्य वह है जो न स्वयं चैन ले न दूसरों को लेने दे। यदि आप आर्य हैं तो आज ही कमर कस लीजिये एक भी ग्राहक आलस्य और प्रमाद न करे तो इसी मास में 'वेद प्रकाश' के तीन सहस्र ग्राहक पूरे हो सकते हैं।

तीन सहस्र ग्राहक पूरे होने पर प्रथम वर्ष का विशेषांक 'वेद विशेषांक' होगा इस योजना में ये पांचों अंक मेरे द्वारा ही लिखे जायेंगे अतः इतना मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि यदि आपको अंक पसन्द न आये तो आप का शुल्क वापस दे दिया जायेगा।

——❀❀——

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ श्री पं० श्यामसुन्दर जी स्नातक—[आयुर्वेदालंकार, बी. आई. एम. एस.] पुरोहित आर्य समाज करौल बाग से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जो दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कोलोनी, सोनीपत।
२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैंक लोधी रोड़ नई दिल्ली।
३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपुर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पुरोहित आर्य समाज करोलबाग नई दिल्ली:

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

ब्रह्माकुमारियों के ढोल की पोल। बढ़िया कागज सुन्दर छपाई। मूल्य ३७ नये पैसे। प्रचारार्थ मंगाने पर २५) सैंकड़ा। **गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।**

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्थ्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमो की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटर्ज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेटर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	६)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥।)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
वाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

दिसम्बर	१९६२
मार्गशीर्ष	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	५

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

सत्यार्थ प्रकाश का नमूना इसी पृष्ठ के पीछे देखें।

एक महत्त्वपूर्ण, अत्यावश्यक प्रकाशन
महापण्डित श्री भगवद्दत्त जी रिचर्स-स्कालर
की देख रेख में
सत्यार्थ प्रकाश
का शुद्धतम संस्करण
इतने मोटे अक्षरों में
विशेषताएं

१. इस संस्करण का मूल पाठ महर्षि की हस्त लिखित प्रति, द्वितीय संस्करण आदि से मिलान करके अत्यन्त सावधानता से शुद्ध किया जा रहा है।
२. श्री पं० भगवद्दत्त जी की विशेष स्थानों पर अत्यावश्यक टिप्पणियां होंगी।
३. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का संकेत होगा।
४. प्रत्येक स्तम्भ (पैराग्राफ) पर एक क्रमांक होगा।
५. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण सूची तथा विषय सूची होगी।
६. मोटे अक्षर, बढ़िया कागज व मजबूत जिल्द मूल्य सजिल्द

एक प्रति का	१०)
१० प्रति लेने पर	९) ५०
२५ प्रति लेने पर	९)

पुस्तक छपने से पूर्व ३१ दिसम्बर तक ग्राहक बनने वालों के लिए विशेष रियायत। आज ही ९) भेज कर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें। डाकखर्च पृथक्—

[५] हे मनुष्य ! तू[1], जो कुछ इस संसार में जगत् है उस सब में व्याप्त होकर [जो][2] नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है, उससे डर कर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के[3] त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग ॥ २ ॥

[६] ईश्वर सब को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर सब के पूर्व विद्यमान् सब जगत् का पति हूँ। मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों का विजय करनेवाला और दाता हूँ। मुझ ही को सब जीव जैसे पिता को[4] सन्तान पुकारते हैं वैसे पुकारें। मैं सबको सुख देनेहारे जगत् के लिये नाना प्रकार के भोजनों का विभाग पालन के लिये करता हूँ ॥ ३ ॥

[७] मैं परमैश्वर्य्यवान् सूर्य के सदृश जगत् का प्रकाशक हूँ, कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ। मैं ही जगत् रूप धन का निर्माता हूँ। सबकी उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो। हे जीवो ! ऐश्वर्यप्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझ से मांगों और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत होओ। हे मनुष्यो ! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन देता हूँ। मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझको वह[5] वेद यथावत् कहता उससे सबके ज्ञान को मैं बढ़ाता, मैं सत्पुरुष का प्रेरक यज्ञ करनेहारे को फलदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब कार्य्य का[6] बनाने और धारण करनेवाला हूँ इसलिये तुम लोग मुझको छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो ॥ ४ ॥

[८] हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

यह यजुर्वेद [१३।४] का मन्त्र है। हे मनुष्यो ! जो सृष्टि के पूर्व सब

---

१. वे, सि, वै—लुप्त। २. द्वि० सं०—लुप्त। ३. द्वि० सं०—से। वे, सि, वै—को। मूल में—के। ४. वै—लुप्त। ५. वै—यह। वृथा परिवर्तन। ६. वे, सि, वै—को। यह असावधानी से हुआ है।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

शिव सङ्कल्प सूक्त

ज्योतियों की ज्योति

[लेखक—श्री पं० सुरेशचन्द्र जी वेदालङ्कार १७५ जाफरा बाजार गोरखपुर]

यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु ॥

(यत्) जो (जाग्रत) जागृत अवस्था में (दूरं उदैति) दूर दूर भागता है और (सुप्तस्य) सुप्त अवस्था में भी (तथा+एव) उसी प्रकार ही (एति) जाता है। (तत्) वह (दूरं गमं) दूर दूर पहुँचने वाला (ज्योतिषां ज्योतिः) ज्योतियों का भी ज्योति रूप=प्रधान इन्द्रिय (एकं) एकमात्र (दैवं) दिव्य शक्ति सम्पन्न (मे मनः) मेरा मन (शिव संकल्प मस्तु) शुभ संकल्पों वाला (अस्तु) हो।

हमारे शरीर के सब कार्यों का संचालक मन है। यह मन जागते हुए, सोते हुए, सभी समयों पर हमारे कार्यों का संचालन करता है। वास्तव में आत्मा का स्थूल स्वरूप मन और मनका स्थूल स्वरूप और बाह्य स्वरूप शरीर है। यह मन शरीर पर आश्रित है। ऋग्वेद में कहा गया है:—

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्रः ।
केषीदेकते यूथये भूयसश्चित्त ॥

अर्थात्—"भगवान् इन्द्र की इच्छा करने वाले ! यदि तू समर्थ होकर मनको स्थिर करे, तो तू अकेला ही नाना प्रकार के विघ्नों और कठनाइयों को युद्ध में पराङ् मुख कर सकता है।"

किन्तु मन को स्थिर करना यह तो साधारण बात नहीं। मन अत्यन्त शक्ति शाली वस्तु है। श्री शंकराचार्य महाराज ने मन के विषय में कहा था:—

मनो नाम महा व्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु ।
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः ॥

यह मन बड़ा भयंकर व्याघ्र विषयों के वन में विचरण करता रहता है। अतः मोक्ष की कामना करने वालों को वहां नहीं जाना चाहिये। इस मन को वश में करना साधारण बात नहीं। बड़ा चंचल है यह। गुरु वशिष्ठ ने राम से कहा था:—

नेह चंचलता हीनं मनः क्वचन दृश्यते ।
चंचलत्वं मनो धर्मो वह्नेः धर्मो यथोष्णता ॥

अर्थात्—हे राम ! इस संसार में चंचलता से शून्य मन तो कहीं भी नहीं देख पड़ता है। चंचलता मनका ऐसा धर्म है जैसे अग्नि का धर्म उष्णत्व है। वशिष्ठ ने तो यहां तक कहा है कि समुद्र को पी डालने, सुमेर पर्वत को उखाड़ कर फेंक देने और दहकते हुए अंगारों को सटक लेने से भी इस चित्त का वश में करना अधिक दुष्कर कार्य है।

इस मन की तेजी का क्या पूछना ? यह संसार के तेज से तेज चलने वाले पदार्थों से भी अधिक गति वाला है और यह इस लोक, पर लोक, देश विदेश, और बहुत दूर दूर तक यात्रायें करता है। तेज से तेज पदार्थों को सूर्य तक पहुंचने में बहुत देर लगती है पर मन को वहां पहुंचने में जरा भी समय नहीं लगता। यह मन राजाओं के दरबार में, पहाड़ों की अगम्य चोटियां, समुद्र के अगाध अन्त-

स्तब, नदी की दुर्गम धाराओं, असूर्यम्पश्या राजदाराओं की गुप्त कोठियों, वेद की गहन ऋचाओं दर्शनों की सूक्ष्म पंक्तियों, दूर दूर के देशों, स्थानों और कल्पना द्वारा प्रसूत असंख्य लोक लोकान्तरों में यह मन गति करता हुआ पहुंच जाता है। और कोई भी विश्व का पदार्थ इतनी तेजी से और इतनी दूर तक नहीं जा सकता। विद्युत् की चंचलता प्रसिद्ध है परन्तु उसकी चमक देखी जा सकती है परन्तु मन की क्रिया तो इतनी तीव्र होती है कि इसका समझना अत्यन्त कठिन है। यह देखिये अभी आप एकान्त में बैठ कर संध्या कर रहे हैं, ईश्वर भक्ति की बातें चल रही हैं। गुरु जी दर्शन का पाठ पढ़ा रहें हैं। अध्यापक महानुभाव गणित की शिक्षा दे रहें हैं पर मन राम तो दूर निकल गए हैं। वे तो हलवाई की दुकान पर मीठी मीठी गुलाब जामुनों का स्वाद ले रहें हैं। वह सिनेमा की अभिनेत्रियों की रूप सुधा का पान कर रहे हैं। वे दूसरे के धन को हड़पने की योजनायें बना रहें हैं और उन्हें ईश्वर भक्ति के स्थान पर विषयासक्ति की बातें याद आ आ रही हैं। भला कहां गई वह भक्ति?

यह तो मन का जागृत समय का रूप है। वास्तव में मन के दो हिस्से हैं। एक बाहरी और एक भीतरी। बाहरी हिस्सा वह है जिसे हम जानते हैं जिससे हम परिचित हैं। यह जागृत अवस्था का मन है। इसे हम बहिर्मन भी कह सकते हैं। बहिर्मन के स्वरूप के विषय में हडसन साहब का कहना है "बाहरी संसार का ज्ञान प्राप्त करने का कार्य बहिर्मन किया करता है। भिन्न भिन्न पदार्थों के स्वरूप जानने के लिये उक्त मन सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपभोग करता है। मनुष्य की नाना प्रकार की आवश्यकताओं के कारण इस मन की वृद्धि हुई है और हो रही है। अपने चारों ओर की परिस्थिति अपने जीवन के अनुकूल बना लेने के लिए जीव अथवा मनुष्य लगातार प्रयत्न कर रहा है। इस प्रयत्न में यह मन उसका मार्गदर्शक होता है। इस मनका महत्वपूर्ण धर्म है विवेक शक्ति।"

बहिर्मन के जितने भी कार्य होंगे उनमें व्यक्ति की दृष्टि से तर्क या हेतु अवश्य होगा। हम बहिर्मन के महत्व का निम्न रूप में उल्लेख कर सकते हैं:—

(१) मनुष्य के विकास का कारण बहिर्मन है यह प्राणियों को समय और असमय का विचार करने की प्रेरणा देता है। जैसे एक टापू में जहां मनुष्य नहीं रहते थे जब सब से पूर्व मनुष्य बन्दूक लेकर पहुंचा तो पक्षी डरे नहीं। पर जब उसने पक्षियों को बन्दूक से मारा तो मनुष्य, उसकी बन्दूक और बन्दूक की मार को देखकर डरना प्रारम्भ कर दिया।

(२) यह बहिर्मन या जागृतावस्था का मन नई परिस्थिति से मुकाबला करने की शक्ति उत्पन्न करता है।

(३) यह बहुत दूर दूर तक की यात्रायें करता है। अनेक स्थानों पर जाता है।

(४) अन्तर्मन को नाना प्रकार की सूचनायें और प्रेरणायें देता है।

(५) यह अन्तर्मन को शिक्षा देकर उसमें नई प्रवृत्तियां उत्पन्न करने का कार्य किया करता है।

चेतन मन तो दूर दूर जाता है ही। सोये हुये मनुष्य का मन भी उसी प्रकार दूर २ की यात्रायें करता है। जिस समय मनुष्य सोया रहता है उस समय उसका चेतन मन सोता है परन्तु उसका अचेतन मन जागता रहता है। स्वप्न इसी मन की सृष्टि है। जागते समय चेतन मन की शक्ति चेतना के कार्य में खर्च होती रहती है पर सोते समय वह अचेतन मन में ही संचित रहती है। अतएव जितना काम अचेतन मन सोते समय करता रहता है उतना जागृतावस्था में नहीं करता। चेतना का क्रियाओं को बन्द कर देने से अचेतन मन का कार्य प्रबल हो जाता है। और उस समय भी यह मन दूर २ की यात्रायें प्रारम्भ कर देता है। कभी कभी जब मनुष्य अपनी प्रबल इच्छा को अपनी जागृतावस्था में तृप्त नहीं कर पाता तो वह उसे अपनी स्वप्नावस्था में गुप्तरूप से तृप्त करता है। प्रबल उत्तेजना होने पर ये स्वप्न सक्रिय हो जाते हैं। शेक्सपियर के

मेकबेथ नामक नाटक में लेडी मेकबेथ की कहानी अंग्रेजी जानने वाली जनता में प्रसिद्ध है। लेडी मेकबेथ अपनी सुप्तावस्था में उठकर हाथ धोती थी। वह अपने हाथों को रक्त रंजित देखती थी। वह अपनी दासियों से पानी साबुन मंगवाती और हाथ साफ करती थी। फिर तिस पर भी उसे उनमें खून लगा दिखाई देता था। इस महिला ने अपने घर पर आये अतिथि राजा उन्कन को किसी अपराध में राज्य के लोभ वश अपने पति के द्वारा मरवा दिया था। जब से उसने राजा का खून किया तब से उसे इस प्रकार के स्वप्न होते रहते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सोये हुए आदमी का मन भी बहुत दूर २ की यात्रायें करता है।

अब इस मंत्र में अगला पद है कि यह मन ज्योतियों की ज्योति है। अर्थात् यह बाहरी प्रकाश तो केवल इन्द्रियों को ही प्रकाशित करता है यदि मन न हो तो यह बाहरी प्रकाश किसी चीज को प्रकाशित नहीं कर सकता। हमारी त्वचा जो स्पर्श, दुःख सुख जलन और कटाव को अनुभव करती है यदि हमारा मन और कहीं गया होता हो तो उस समय इन सबका हमें अनुभव नहीं होता। हाकी खेलते हुए पैर में लगी चोट से बहते हुए खून का ज्ञान हमें तब होता है जब हमारी नजर घंटों बाद उस पर पड़ती है। इसी प्रकार कई बार कोई आदमी जोर जोर से आवाज देकर हमें बुला रहा होता है पर हमारी ज्ञानेन्द्रिय उसे नहीं सुन पाती क्योंकि हमारा मन किसी गंभीर चिन्तन में रत रहता है। इसी प्रकार आंखों के सामने से बड़ी बड़ी सेनायें गुजर जाती हैं पर सामने बैठे व्यक्ति को उनका कुछ पता ही नहीं चलता। हिन्दू विश्वविद्यालय के स्वर्गीय प्रोफेसर श्री गणेश प्रसाद जिस समय इङ्गलैण्ड में गणित का अध्ययन करते थे उस समय उनके जीवन में ऐसी अनेक घटनायें घटित हुई। उनके सामने एक बार राज्यभिषेक जैसे शोर का उत्सव संपन्न हो गया पर उन्हें उसका ज्ञान भी नहीं हुआ। इसका कारण यही है कि यदि हमारा किसी काम में मन न लगा तो उस विषया का इन्द्रिय के साथ सम्पर्क होने पर भी हमें ज्ञान नहीं हो सकता। बाहर का केवल रूप का प्रकाश ही नहीं किन्तु शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि प्रकाश भी हमें जिन बाह्य कारणों, साधनों या इन्द्रियों द्वारा हो रहा है उन सब इन्द्रिय रूप ज्योतियों का भी ज्योति यह मन है। यह अन्दर का कारण है। सब के सब ज्ञान के साधन इस अन्तर ज्योति में—इस मन में एक हो जाते हैं। यह मन महाशक्ति है, दिव्य ज्योतिर्मय है।

हमारा जिस कार्य में मन नहीं लगता वह सरल कार्य होते हुए भी हमें अच्छा नहीं लगता। हमें वह वस्तु अच्छी लगती है जिस पर हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है। यह ध्यान का केन्द्रीकरण यदि शिक्षा क्षेत्र में प्रयोग में लाया जाय तो हम पढ़ने में कमजोर व्यक्तियों को अधिक शिक्षित बना सकते हैं कक्षा में प्रायः देखा जाता है कि जो विद्यार्थी जोड़ घटा, गुणा, भाग में कठनाई अनुभव करते हैं वे ही अमरनाथ की क्रिकेट के खेल की प्रारम्भ से की गई अब तक की रनों का पूर्ण योग सरलता से कर लेते हैं। ध्यान को केन्द्रित करने की जो शक्ति इसमें रहती है वह अवधान कही जाती है। यही कारण है कि शिक्षा में उस समय जब बार २ चेतावनी देते रहने पर भी बालक का ध्यान अध्यापक के विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान पर नहीं जाता है पर सामने ही होने वाले भालू के नाच, सिनेमा के विज्ञापन के भोंपें, चनाजोर गर्म की मधुरध्वनि को सुनना पसन्द कर रहा होता है। अध्यापक इसी कारण उसके कान मलकर डांट डपटकर, दंड देकर उसके कर्तव्य की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करता है। इसका शिक्षा में कितना उपयोग किया जा सकता है यह शिक्षा शास्त्रियों से पूछिये।

देखिये, मन जिस कार्य में लगता है उसके प्रति हम कितना आकृष्ट होते हैं। कुत्ता बिल्ली वृक्ष पर बैठी चिड़िया को देखते हैं मनमोहन फूल को नहीं इसी मन की ज्योति का फल था कि अर्जुन को मछली की आंख ही दिखलाई दी दूसरी वस्तुयें नहीं छपी पुस्तक में हमें अपना नाम बड़ी जल्दी दिखाई

देता है। सोता हुआ व्यक्ति अपना नाम सुनकर जाग जाता है, यद्यपि उसके चारों ओर मचने वाला शोर उसकी निद्रा में जरा भी बाधक नहीं होता, मां बीमार बच्चे की हलकी आवाज से जाग जाती है, मोटर का ड्राइवर इजिन की हलकी भर्राई आवाज से आकृष्ट हो जाता है, कुशल डाक्टर रोगी के शरीर पर सूक्ष्म से सूक्ष्म चिह्नों को देख लेता है, कुशल गायक गान के हलके से आरोह और अवरोह को पहचान लेता है। कहा जाता है कि एक कृपण व्यक्ति यदि गहरी नींद में सो रहा हो तो उसे जगाने का सबसे सरल तरीका उसके हाथ में रुपया रख देना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मन हमारे कार्यों का प्रकाशक है। जिनसे इसका सम्पर्क होता वे कार्य सरल हो जाते हैं। इसी मन के द्वारा वेद की कठिन ऋचाओं का प्रकाश हुआ, इसी मन के द्वारा वाल्मीकि, वेद व्यास, कालिदास आदि ने कविता रची, इसी मनकी ज्योति ने गौतम, कपिल, कणाद आदि दार्शनिक उत्पन्न किये, इसी मन की ज्योति ने मृत्यु के भय से राम प्रसाद बिस्मिल राजगुरु भगतसिंह, सुखदेव को दूर किया, इसी ज्योति ने दयानन्द स्वामी को सत्यार्थ प्रकाश करने की प्रेरणा दी, इसी मन की ज्योति ने स्वामी श्रद्धानन्द को मुंशीराम से श्रद्धानन्द बनाया इसी की ज्योति ने नास्तिक गुरुदत्त ने आस्तिक बनाया। इसके प्रकाश का, इसकी ज्योति का कहां तक उल्लेख करें यह तो ज्योतियों का ज्योति है। इसके बिना हमारे शरीर की कोई इन्द्रिय कार्य नहीं कर कर सकती। आइए इस ज्योति को उज्ज्वल करें।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

हमारे हृदय में जो आशा भरी तरंगे उठा करती हैं, हमारी आत्मा में जिन महत्वाकांक्षाओं का जन्म होता है, हमारे मन में जिन उत्तम भावनाओं का उदय होता रहता है, क्या वे खरगोश के सींग के समान असत्य हैं, बेजड़ हैं, व्यर्थ हैं, फिजूल हैं? नहीं, नहीं, वे जीवन प्रद हैं, सत्य हैं, मजबूत जड़ वाली हैं, प्रबल हैं, प्रभावोत्पादक हैं, हमारी शक्ति की सूचक और हमारे उद्देश्य की उच्चता की मापक हैं, हमारी कार्य शक्ति के परिणाम के द्योतक हैं,। मन, वचन और काया को एक करके जिस आदर्श की सृष्टि होगी वह अवश्य ही हमारे सामने सत्य के रूप में प्रकट होगा। यही शिव संकल्प है।

हमारे शरीर में इन्द्रियों और आत्मा से भिन्न एक वस्तु मन है। शारीरिक, ऐन्द्रियक और मानसिक सुख मन की स्वच्छता स्वस्थता, सत्य संकल्प पर निर्भर हैं। यह मन ही शरीर रूपी यंत्र का मूल पुर्जा है। इसके ठीक रहने से सब अंग ठीक रहते हैं और बिगड़ने से बिगड़ते हैं। अतः प्राचीनकाल के विद्वान् और आधुनिक काल के मनोवैज्ञानिक मन को शिव संकल्पों वाला बनाने का प्रयत्न करते हैं। संकल्प का मतलब है प्रबल तथा साधिकार इच्छा का होना। और यदि हम इस संकल्प का पुनः पुनः आवर्तन करें तो मनोवैज्ञानिक भाषा में यह आवेश कहलाता है। मन की सर्व प्रथम गति संकल्प है अपितु संकल्प ही मन का सार है और उसके विकास का कारण भी। वेद में संकल्प और कामना को आन्तरिक जीवन की मूर्ति और बाह्यजीवन की मूर्ति माना गया है। अथर्ववेद १९। ५२। १ में एक मन्त्र में कहा है—

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥

इस मन्त्र का भाव यह है कि मनुष्य में काम या संकल्प सब से पूर्व उत्पन्न होता है। यह संकल्प मन का प्रथम सार है। वह संकल्प पुनः पुनः उठे हुए संकल्प के साथ एक क्षेत्र अर्थात् मन में एकत्र होकर यजमान स्वरूप आत्मा के लिए ऐश्वर्य=धन, स्वास्थ्य और शक्ति तथा बल देता है। इस मन के कार्यों को प्रकट करने का ढंग वही होता है जो बिजली के प्रकट होने का। अर्थात् धन तथा ऋण दो प्रकार की बिजलियां होती हैं। धन और धन तथा ऋण और ऋण

विद्युतें आपस में नहीं मिलतीं। ऋण और धन विद्युत के मिलने से कार्य शक्ति प्रज्वलित होती हैं। इसी प्रकार मन में भी दो तरंगें होती हैं उन्हें **बोध** और **प्रतिबोध** नाम से कहा जाता है। संकल्प शब्द का तात्पर्य है कि इसके द्वारा हम अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति करते हैं और विकल्प द्वारा अनभिष्ट निवारण। संकल्प और विकल्प एक दूसरे के पूरक हैं। यदि विकल्प नहीं होता तो संकल्प में आने वाली कठिनाइयों का हमें ज्ञान न होता। उदाहरण के लिये मैं निश्चय या संकल्प करता हूं कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा परन्तु इस संकल्प में यह बाधा हो सकती है कि चोर मेरी छाती के सामने पिस्तौल लेकर खड़ा हो जाय और मुझ से मेरा धन पूछे इस समय संकल्पानुसार तो मुझे झूठ न बोलना चाहिये पर विकल्प उठकर अनभिष्ट को निवारण करने का मार्ग बतलायेगा। इस प्रकार संकल्प का अर्थ हुआ प्रबल तथा साधिकार इच्छा। और शिव संकल्प का अर्थ हुआ शुभ प्रबल तथा साधिकार इच्छा।

संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाकर मनुष्य संसार के महान् कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकता है। वास्तव में मन ही सब व्यक्तियों को कार्य में लगाने वाला होता है। हम समझते हैं कि हम शरीर द्वारा कार्य करते हैं परन्तु सब अंगों के ठीक रहने पर भी यदि मन वहां न हुआ तो कार्य में सफलता संदिग्ध हो नहीं असम्भव हो जायेगी।

दुनियां उस मनुष्य के लिए खुद रास्ता दे देती है जो शक्तिशाली, आत्म विश्वासी और दृढ़ाग्रही हैं, जो इस बात को जानता है कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसी कोई विपत्ति नहीं जो मेरी शक्ति का रास्ता रोक सके। कायर मनुष्य इनसे डर सकता है, रास्ते में इन्हें पाकर पथभ्रष्ट हो सकता है पर मैं तो इन पर पूरी पूरी विजय पा सकता हूं। यह शिव संकल्प हमारे सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण कर सकता है।

लोग व्यसनों से भयभीत रहते हैं। कोई कहता है कि बीड़ी की आदत पड़ गई है, किसी को शराब का व्यसन है, किसी को वेश्याओं के पास जाने की लत है, और कोई अनावश्यक रूप में दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करने में आनन्द लेता है। यदि कोई उसे समझाता है तो वह उत्तर देता है क्या करें बीड़ी पीना छोड़ना तो चाहते हैं पर शास्त्री जी! यह छूटती ही नहीं। अरे, मूर्ख क्या बीड़ी इतनी शक्तिशालिनी हो गई है कि उसने तुझे पकड़ रखा है, वेश्या गमन क्या तू रोक नहीं सकता है, ब्लैक मार्केटिंग, चोर बाजारी, रिश्वत और दूसरे अनाचार क्या तुझ से अधिक शक्तिशाली हैं, क्या इन्होंने तुम्हें पकड़ा है। ये नहीं पकड़ सकते? जरा जोर से डांट तो दो। ये जब आयें तो कहो—

परो पेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परे हि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः॥ अथ० ६। ४५। १॥

अर्थात् ओ मन के पाप! तू, परे चला जा निकल, दूर हट तू तो गन्दी और निन्दित बातों को पसन्द करता है। दूर भाग, मैं तुझे नहीं चाहता हूं। तू जंगलों, वृक्षों में भाग और तेरे निकलने के बाद मैं अपने मन में स्त्री पुत्रादि और गौ आदि प्राणियों को रख लूंगा।

Let us fight in every field
Ever win and never yield

अर्थात्—'विश्वाः पृतना जयेम' सम्पूर्ण विश्व को हम विजय करें। अपने मन में विजय की महत्वाकांक्षायें रखें। किसी बुराई के सामने नत मस्तक न हों। यह दृढ़ संकल्प हमें संसार के सभी कार्यों में सफलता प्रदान करेगा। याद रखिये, विजय जीवन है और पराजय मृत्यु। संकल्प से विजय प्राप्त होती है।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्

मेरे दांयें हाथ में कर्तव्य हो और बांयें हाथ में विजय हो। मैं इन्द्रिय वृत्तियों, शक्तियों और राष्ट्रों का विजेता बनूं। मैं धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, यश, शोभा सब कुछ प्राप्त कर लूं।

संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिए, निराशा कमजोरी और हीनता की भावना को मिटाने के लिए वेद में उत्साहमयी प्रार्थनायें की गई हैं। यजुर्वेद में आया है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि बलमसि बलं मयिधेहि मन्युरसि मन्यु मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि।

हे परमात्मन् तू तेजस्वरूप है, मुझमें तेज धारण करा, हे परमात्मन् तू पराक्रम रूप है मुझमें पराक्रम धारण करा, हे परमात्मन् तू बल स्वरूप है मुझे बल दे, ओज दे, साहस दे, शक्ति दे, क्रोध दे और सहिष्णुता दे।

संकल्प शक्ति का संचार सम्मोहन या वशीकरण द्वारा दूसरों में भी किया जा सकता है। असत्यवादी को स्वाभाविक निद्रा या अर्ध निद्रा में ले जाकर उसे संकल्प शक्ति द्वारा इससे निवृत्त किया जा सकता है। उसे आदेश दीजिए—

तुम्हें झूठ बोलने की आदत है, वह बुरी है, बहुत बुरी। झूठ बोलना पाप है। महानाश का कारण है। तुम दूसरों की दृष्टि में गिर जाओगे अतः इस अशिव प्रवृत्ति को दूर करो। शिव संकल्प रूप सत्य को धारण करो। इसको दूर करना बिल्कुल भी कठिन नहीं। करके तो देखो। सफलता तुम्हें मिलेगी।

संकल्प की दृढ़ता के प्रयोगों का हमें स्वयं भी अनुभव है। हमने इस प्रयोग द्वारा मां बाप के पैसे चुराने वाले जूआ और दूसरे व्यसनों में फंसे और अध्ययन की अरुचि रखने वाले व्यक्तियों को स्वयं प्रयोगों द्वारा ठीक किया हैं। स्वप्नदोष, हानता की भावना और हिस्टीरिया के रोगी इस शिव संकल्प की भावना से नवजीवन प्राप्त कर सकते हैं अतः परमेश्वर से प्रार्थना की गई "तन्मेमनः शिव संकल्प मस्तु" वह मेरा मन शिव संकल्पों वाला हो।

आज हर्ष का है उद्रेक।
दूंगा नया जन्म भूतल को,
अन्तरिक्ष के नभ को तल को।
स्थावर जंगम सब के बल को,
बनें सृष्टियां नई अनेक।
आज हर्ष का है उद्रेक।
सेना सजी आज मंगल है,
यह उत्सव है प्रिय कल कल है,
मेरा शुभ संकल्प अचल है,
होगा नूतन अभिनय एक।
आज हर्ष का है उद्रेक।
दसों दिशायें बहनें बनकर,
चढ़ी भावना की चोटी पर,
विमल रसों से स्वर्ण कलशभर,
करती हैं मेरा अभिषेक,
आज हर्ष का है उद्रेक।

हमारा मन अपूर्व है

येन कर्माण्यपसो मनीषिणोयज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

(येन) जिस मन से (अपसः) पुरुषार्थी (धीरा) धीर और (मनीषिणः) मनस्वी या मननशील पुरुष (यज्ञे) सत्कर्म और (विदथेषु) युद्धादि में भी (कर्माणि) इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते है और (यत्) जो (अपूर्वम्) अपूर्व है और (प्रजानाम्) प्राणियों के (अन्तः) भीतर (यक्षम्) मिला हुआ है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्प मस्तु) शिव संकल्पों वाला हो।

अरे मानव! तू क्यों नैराश्य ग्रस्त पड़ा है? क्या तुझे पता नहीं कि तुझ में अपूर्व शक्ति संपन्न मन विद्यमान है। यह मन ही है जो शिथिल, बिखरी पड़ी हुई, वस्तुओं को एकत्र करता है। हे जीव! तू हारा हुआ क्यों पड़ा है? तुझ में तो संसार की अनन्त शक्ति प्रवाहित हो रही है। तेरे मस्तिष्क में ज्ञान का सूर्य चमक रहा है। तेरे मन में अपूर्व शक्ति है। तू क्या नहीं कर सकता, उठ।

इस विश्व में दो प्रकार के कार्य हैं। सब प्रकार के कार्यों को हम बौद्धिक या यज्ञादि कार्य कह सकते हैं और दूसरे प्रकार के कार्यों को हम व्यव-

हारिक या युद्धादि के कार्यों का नाम दे सकते हैं। इन दोनों प्रकार के कार्यों को करने के लिये मनुष्य में एक विशेष प्रकार की भावना चाहिए और यह भावना मन के द्वारा आ सकती है। बिना मन की शक्ति के कोई कार्य नहीं हो सकता है। मन यदि किसी कार्य को करने के लिये तत्पर हो जाय तो संसार की कोई शक्ति नहीं कि जो उसे उस कार्य को करने से रोक सके। इतिहास इस बात का साक्षी हैं।

अटक नदी चढ़ी हुई थी और भयंकर लहरें उठ रही थी। महाराज रणजीत सिंह ने फौज से कहा "अटक के पार जाओ।" फौज ने उत्साह नहीं दिखाया। महाराज रणजीतसिंह ने अपने मन की शक्ति का प्रदर्शन किया। अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक सूख गई और सब पार निकल गये।

मैंने स्वामी दयानन्द को क्यों प्यार किया? उन्हें घर बार छोड़कर वैराग्य लेने के कारण प्यार नहीं किया? उन्हें बाल ब्रह्मचारी बने रहने के कारण प्यार नहीं किया? मैंने इन्हें घने जंगलों में शेर और चीतों से भरे वन में अकेले भटकते रहने के कारण प्यार नहीं किया और न मैंने उन्हें उनके ज्ञान के कारण ही प्यार किया? मैंने उन्हें गंगा के रेत पर बैठे हुए, अपने सद्यःमृत पुत्र को गङ्गा में बहाकर और निर्धनता ग्रस्त होने के कारण कफन के कपड़े को धोकर लाती हुई और विलाप करती हुई भारतीय माता के विलाप से दुःखी मन हो आंसू बहाते दयानन्द को प्यार किया है। जिससे प्रेरित हो उस दिन से भारतीय जनता के लिये उन्होंने अपना उद्घोष घोषित किया "हे प्रभो सुख सब को, दुःख मुझ को" "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" और सचमुच इस मानसिक भावना ने विश्व की सेवा का व्रत लिया और वह कार्य किया जो इतिहास का उज्जवल पृष्ठ होगा।

दुनिया में युद्ध के सामान जमा हैं। लाखों आदमी मरने मारने को तैयार हैं। गोलियां पानी की बून्दों की तरह मूसलाधार बरस रही हैं। यह देखो वीर को जोश आया। उसने कहा 'हाल्ट' तमाम फौज निस्तब्ध होकर जहां की तहां रुक गई। आल्प्स के पर्वतों पर चढ़ना फौज ने असम्भव समझा त्यों ही वीर ने कहा "आल्प्स है ही नहीं।" फौज को निश्चय हो गया कि आल्प्स नहीं है और सब पार हो गये।

जौन द यार्क नाम की एक सोलह वर्ष की फ्रांसीसी लड़की ने जो भेड़ चराने वाली थी अपनी तलवार से इङ्गलैण्ड की आगे बढ़ती हुई सेनाओं का जिस बहादुरी से सामना किया, उसका फल हुआ फ्रांस पराजय से बच गया, उसकी स्वतन्त्रता कायम रही।

यदि आप मन की शक्ति का चमत्कार देखना चाहते हैं, यदि आप मन की अपूर्वता का बोध करना चाहते हैं, यदि आप मन के करिश्मों को समझना चाहते हैं और आप चाहते हैं देखना कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो" मन ही मनुष्यों का बन्ध और मोक्ष का कारण है तो देखिये कि पिछले दो महायुद्धों में अंग्रेज विजयी हुये। जर्मनी के भयंकर आक्रमणों से जब इङ्गलैण्ड की सेनायें त्रस्त हो जाती थीं तब भी अंग्रेज अपने समाचार पत्रों एवं पर्चों में अपनी विजय का ढिंढोरा पीटते थे। किसी कवि ने लिखा है:—

कदम जर्मन के बढ़ते हैं
फतह ब्रिटिश की होती है।

कारण यह था कि हार के समाचारों से कहीं जनता का मन टूट न जाय और परिणाम यह होता था कि हारती हुई भी ब्रिटिश सेनायें जीत जाती थीं। इतना ही नहीं जीवन संग्राम में भी मनुष्य मन के हारने पर हार जाता है। विद्यालयों में पढ़ने वाले वे बच्चे दब्बू और कमजोर हो जाते हैं जिनके मन पर यह बैठ जाता है कि पढ़ना हमें आ ही नहीं सकता। शिक्षकों के लिए यह ध्यान रखने की बात है।

क्या आपने नहीं सुनी उन मौलवी साहब की कहानी जिन्हें छुट्टी लेने की इच्छा से विद्यार्थियों ने

स्वस्थ रहते हुये भी अस्वस्थ कर दिया था।

यज्ञ या परोपकार के लिए स्वामी दयानन्द का उल्लेख ऊपर किया गया हैं। देश में फैले हुए दुःख से दुःखी मानवों को, अज्ञान ग्रस्त लोगों को देखकर उनके अन्ध विश्वासों और रूढ़ियों को दूर करने के लिए स्वामी दयानन्द के मन में भावना आई और अकेले होते हुए भी स्त्रियों, अछूतों, दीनों, दुःखियों और अज्ञानियों के उद्धार के लिए निकल पड़े और भटकों को उनका मार्ग बता कर ही दम लिया।

महात्मा गांधी ने मानसिक शक्ति के बल से अफ्रीका के पीड़ित भारतियों का उद्धार किया।

तिलक महाराज जी ने इसी मन के बल से भारतीयता का सम्मान सिखाया। राजनीति को अवकाश के क्षणों और भाषणों से निकाल कर सक्रिय स्वतन्त्रता के संग्राम की ओर मोड़ा। उन्होंने अनेक शारीरिक यातनायें सहीं तथा अनेक बार जेल गए।

वीर सावरकर ने अपनी मानसिक शक्ति को यहां तक बढ़ा लिया कि समुद्र की उत्तुङ्ग तरङ्गे भी भारतीय नागरिकों को स्वतन्त्र करने की भावना का दमन न कर सकीं। क्योंकि उन्होंने यह देख लिया था कि परतन्त्रता भारतीय नागरिकों के दुःखों का मूल कारण है। ये भूखे नंगे, अस्वस्थ भारतीय तभी दुःखों से छुटकारा पायेंगे जब वे स्वतन्त्र होंगे। अतः वीर सावरकर मन की शक्ति से जल जहाज के शौचालय से समुद्र में कूद गये। अंग्रेजों की भारी सभा में निडरता के साथ खड़े होकर उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन किया और आजन्म कारावास सहा। काले पानी में रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन सेवा का जीवन था। गुरुकुल कांगड़ी का एक विद्यार्थी टायफाइड से पीड़ित था। दूसरे विद्यार्थी बारी-बारी से रात को उसकी सेवा को आते थे। पुत्र के अस्वस्थ होने पर माता पिता की जो अवस्था होती है वही स्वामी श्रद्धानन्द की थी। भयंकर अर्ध निशीथ में वे उसे देखने को कई बार आते थे। एक बार किसी को वहां न देख कर और विद्यार्थी को वमन करते पाकर चिलमची को भरा हुआ देख कर उन्होंने उसका वमन अञ्जलि में लिया और भंगी के साथ आते हुए ड्यूटी के विद्यार्थी को बतलाया कि सच्ची सेवा जब मन में आती है तब भरी सुई चिलमची साफ करने के लिए दूसरों को नहीं बुलाया जाता। उस सेवक का मन घृणा, अपवित्रता, मान की भावना से दूर हो अपने कार्य में तत्पर हो जाता हैं। यही तो मन का यज्ञों में तत्पर होना है।

यह मन केवल मनुष्यों में नहीं। प्राणियों में, समस्त जगत् में विद्यमान है। पशु. पक्षियों के मानसिक भावों का भी अनुभव किया जा सकता है। कभी कभी मनुष्य उन्हें अपने से भिन्न मानता है। वह समझता है कि पशु पक्षी बोल नहीं सकते अतः उन्हें कष्ट नहीं होता यह बात ठीक नहीं। परिणाम यह होता है कि बड़े बड़े मानवतावादी मछली, मांस बकरे और अण्डे खाना नैतिक धर्म समझने लग जाते हैं। जब बिल्ला बिल्ली के नर बच्चों को मार डालता है तो क्या कई दिन तक घर में आकर रोने वाली विलाप करने वाली बिल्ली को आपने नहीं देखा? क्या मरी हुई सन्तान को अपने पेट से चिपकाने वाली बन्दरी का मानसिक दुःख आपको नहीं मालूम पड़ता? क्या वेद में आये 'वत्सो जात मिवाध्नया' उत्पन्न हुए बच्चे को गाय जिस प्रकार प्यार करती है वैसे एक दूसरे को प्यार करो यह वैदिक नाद क्या गाय की मानसिक शक्ति का द्योतक नहीं अतः इस मंत्र में कहा गया हैं "यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम्" अर्थात् यह अद्भुत मन केवल मनुष्यों में में ही नहीं है अपितु सभी जीवित प्राणियों में विद्यमान है। यह मन चींटी में है, शेर में है, हाथी में है, मछली में हैं। इसलिए ही तो भारतीय संस्कृति कहती है गाय बैलों के साथ प्रेम करो। घोड़े और हाथियों से प्रेम करो। सांप और छछून्दर से प्रेम करो उनको कष्ट देकर उनके शाप मत लो। तुम्हारे लिए दिन रात सेवा करने वाले पशुओं का हाहाकार तुम्हारा कल्याण नहीं करेगा। गाय बछड़े, कुत्ते और बिल्लियां कितनी प्रेमल होती हैं। वे तुम्हारी आवाज सुनते ही रंभाने लगती हैं। तुम्हारा सर्व

पाते ही नाचने लगती हैं। मालिक के वियोग पर खाना पीना छोड़कर रोने वाले पशुओं को क्या आपने नहीं देखा ? सूर ने यशोदा द्वारा कृष्ण को यही तो सन्देशा भिजवाया था कि कृष्ण ! तुम्हारे वियोग में गायें बहुत दुबली हो गई हैं इनको एक वार आकर देख लो।

ऊधो, इतनी कहियो जाय,
अतिकृश गात भई वे तुम बिन परम दुखारी गाय,
जल समूह बरसत दोउ आंखें हुँकति लीन्हें ताऊं,
जहां जहां गो दोहन कीन्हों सूंघति सोई ठाऊं।

इसी प्रकार कौशल्या ने भी राम को घोड़ों की दशा बताते हुए सन्देश दिया है और कहा है:—

राघौ एक वार फिरि आवो।
ये वर वाजि विलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधाओ,

क्या जानवरों में मन के बिना ही इन भावनाओं का उदय होता है ? नहीं मनुष्यों की भांति अन्य प्राणियों में भी यह मन है। इसीलिए तो धर्म का लक्षण करते हुए कहा गया:—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात् धर्म का सर्वस्व यही है कि अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई कार्य दूसरों के प्रति भी कभी न करो।

इस मन्त्र का सार है हे कर्मवीर ! उठो। अपने मन की शक्ति को समझो। तुम्हारे लिए संसार का कार्य क्षेत्र खुला पड़ा है। तुम जिस भी कार्य को स्वीकार करोगे वह महत्वपूर्ण हो जायगा। तुम दीनों का उद्धार करने आये हो। तुम में महान् शक्ति निहित हैं, किन्तु पवन सुत को ज्ञान नहीं कि वह इस पारावार को लांघ सकता है। भारत भूमि रजोजात सन्तान ! उठो, जागो समस्त संसार तुम्हारे जागने और इस पुण्य भूमि से ज्योति प्राप्त करने की प्रतिक्षा में है। सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष तू अपने पर भरोसा कर और अपनी तपोभेदक, यज्ञरूप मानसिक शक्ति से संसार का अज्ञान दूर करो और कल्याण विस्तृत करो। मन अत्यन्त शक्तिशाली है। इसका उपयोग करो। तुम अकेले हो यह मत सोचो।

तुम एक अनल कण हो केवल,
छप्पर तक जा सकते उड़कर,
जीवन की ज्योति जगा सकते,
अम्बर में आग लगा सकते।
ज्वाला प्रचण्ड फैला सकती है
छोटी सी चिनगारी भी।

मन के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिश्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु॥

(यत्) जो मन (प्रज्ञानं) ज्ञान (चेतः) चिन्तन (उत) और (धृति) धैर्य से युक्त है (च) और (यत्) जो (प्रजासु) प्रजाओं के (अन्तः) अन्दर (अमृतम्) अमृत (ज्योतिः) ज्योति है और (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किंचन) कुछ (कर्म) काम (न) नहीं (क्रियते) किया जाता है (तन्मे मनः शिव-सङ्कल्प मस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्पों वाला हो।

सफलता न भविष्य के गर्भ में छिपी हुई है, न वह अगम्य है। वह आपके निकट है; आपकी पकड़ के भीतर है। बस उसे आपके लेने भर की देर है। सुअवसर आने वाला नहीं है, वह आ गया है। स्वर्ण और कहीं नहीं वह आपके हृदय में, मन में छिपी हुई वस्तु है।

मन सङ्कल्पों का केन्द्र है। संकल्प ही वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य इस विश्व में अनेक प्रकार के चामत्कारिक कार्य कर सकता हैं। संसार प्रज्ञान= प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करने का साधन यह मन है। विद्यालयों में प्राप्त की जाने वाली शिक्षा मन का विषय है। आज का मनोवैज्ञानिक इसके लिए अनेक परीक्षण मन पर कर रहा है, प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग करके ज्ञान का आधार मन को माना था।

आध्यात्मिक भौतिक एवं साहित्यिक ज्ञान की प्राप्ति मन के बिना असंभव है। ज्ञान और कर्म

दोनों मन के द्वारा ही हो सकते हैं। ज्ञान की प्राप्ति के लिए जब हम अपना मन किसी विशेष दिशा में लगाते हैं तो हमारा ध्यान सांसारिक विषयों से भी हट जाता है। योग के साधन विद्यमान रहते हैं परन्तु मनुष्य उनका भोग नहीं करता उसका मन ज्ञान में रमता है।

बङ्गाल के एक भट्टाचार्य महोदय की एक घटना विख्यात है। उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने के बाद चारों वेदों के भाष्य का सङ्कल्प किया। वे भाष्य में लग गये। धन, दौलत, सन्तान और युवावस्था के भोगों से उनका मन हट गया। घर में सन्तान तो आनी दूर की बात हो गई धन के बिना माता को कष्ट होने लगा। मां ने अपने अनुसार एक उपाय सोचा और उनकी सगाई कर दी। विवाह हुआ। पत्नी आई। युवावस्था थी। वेदों के भाष्य में, ज्ञान के संग्रह में लगे इस युवक को अपनी पत्नी की ओर ध्यान तक न गया और सौभाग्य से पत्नी भी इतनी योग्य निकली कि उनके वेद भाष्य के कार्य में उसने सहयोग दिया। ६२ वर्ष की अवस्था के बाद जब वेद भाष्य पूरा हुआ तो उन्होंने सुख की सांस ली। चांदनी रात थी। स्त्री पास में सो रही थी। वेद भाष्य हो चुका था। ज्ञान प्राप्ति के समय काम की जिस वासना का उनको अनुभव तक न हुआ था, चांदनी के समान सफेद, उज्ज्वल बालों वाली पत्नी को देख कर इस वृद्धावस्था में उन्हें कामने प्रेरणा की। पर पत्नी ने उन्हें कहा, प्रियवर, भाष्य तो हो गया पर अभी वेद प्रचार बाकी है। आइए अब हम उस दिशा की ओर बढ़ें। और सचमुच, उन्होंने वेद प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। दोनों दो दिशाओं में गए और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये उन्होंने अन्त में एक दिन एक ही स्थान पर अपने प्राणों का विसर्जन किया। यह घटना इस बात की द्योतक है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिये मन का ज्ञान में लगाना—आवश्यक कार्य हो जाता है। इसीलिये मन को ज्ञान का आधार कहा गया है।

पढ़ा हुआ ज्ञान व्यर्थ है। यदि इस ज्ञान पर हमने चिन्तन न किया, इसका मनन न किया और इसे कर्म के रूप में प्रयोग में न लिया तो यह ज्ञान कर्म के बिना लंगड़ा हो जायगा। इसलिए ज्ञान का उपयोग चिन्तन है। यह चिन्तन साहित्य का निर्माण करता है यह चिन्तन विज्ञान के आविष्कार करता है, यह चिन्तन नई नई कलाओं का निर्माता है, चित्रों का स्रष्टा है, भवनों का रचयिता है, मूर्तियों का अधिष्ठाता है। यह सब मन की चिन्तन शक्ति का ही परिणाम है कि वेदव्यास हुए, वाल्मीकी ने रामायण लिखी, गौतम, कपिल, कणाद ने दर्शनों का विस्तार किया। स्वामी दयानन्द ने अपने चिन्तन द्वारा सत्यार्थ का प्रकाश किया। सुकरात ने इसी मन की चिन्तन शक्ति की बदौलत अपने को भुला कर सत्य का यूनान में उद्घाटन किया। सुकरात चिन्तन करते हुए भोजन आच्छादन और सब कुछ भूल जाता था। कहते हैं कि उनकी पत्नी बिना उसे भोजन कराये भोजन न करती थी। एक दिन की बात है चिन्तन में रत सुकरात को जब वह भोजन के लिए कहती कहती हार गई तो लाचार होकर उन पर बिगड़ने लगी। उसका भी जब उस चिन्तन को कागज पर रखते हुए सुकरात पर कोई प्रभाव न पड़ा तब उसने पानी से भरा सम्पूर्ण घड़ा उन पर उंडेल दिया। चिन्तन शील सुकरात हंसा और उसने कहा "आज मुझे नया एक चिन्तन का फल मिला है। वह यह हैं कि आज तक मैं सोचता था कि जो गर्जते हैं वे बरसते नहीं पर तुम इसका अपवाद हो। तुम गरजती भी हो और बरसती भी। यह है चिन्तन शक्ति का फल।

धैर्य भी मन का ही गुण है। मृत्यु भयावनी होती है परन्तु यह कायरों को भयभीत करती है धैर्यशाली बहादुर मृत्यु से भयभीत नहीं होते। कबीर ने कहा है "मरने से ही पाया पूरन परमानन्द।" मन में धैर्य आ जाने पर ही 'वन्देमातरम्' का जप करते करते छोटे बच्चे हंस हंसकर कोड़े खा लेते थे। 'भारत माता की जय' बोलते बोलते शहीद फांसी के तख्ते पर चढ़ जाते थे। इसी मन के कारण स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के नाम पर लेखराम, राजपाल, स्वामी श्रद्धानन्द और न

जाने कितने व्यक्तियों ने अपनी प्राणों की बलि दे दी, इसी मन के कारण 'महात्मा गांधी की जय' करते हुए स्त्रियां अपने सिर पर लाठी का वार सहन करने लगीं, इसी मन की शक्ति से 'इन्किलाब जिन्दाबाद' के नारे के साथ क्रान्तिकारी लोग गोलियों के सामने सीना तानकर खड़े हो जाते थे। धैर्य भी मन से ही हो सकता है। इसका विकास इस प्रकार होता है:—

संसार के अधिकांश मनुष्य साधारण जीवन यापन के कार्यों में संलग्न रहते हैं। भोजन उपार्जन करना, सन्तान का पालन करना, इन सब कामों के लिये धन संग्रह करना, धन संग्रह करने में बाधा डालने वालों से लड़ना तथा उसमें सहायता देने वालों से मेल करना आदि कार्य प्रत्येक व्यक्ति करता है। मनुष्य स्वभाव की यह विशेषता है कि वह सभी पदार्थों और क्रियाओं का मूल्य आंकता है और वह उस काम में अपने को लगाता है जिसे वह मूल्यवान् समझता है। यह मूल्यांकन अपने बौद्धिक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह बौद्धिक विचार ही उसकी विभिन्न क्रियाओं में एकता लाता है। जिस व्यक्ति के दार्शनिक विचार बौद्धिक दृष्टिकोण जितना ही गम्भीर और ठोस होगा वह अपने कार्यों में उतनी ही लगन और कार्य क्षमता प्रदर्शित करेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि ही कार्यों की जननी है। यह बुद्धि या विचार शक्ति कैसे उत्पन्न होती है इसको समझने के लिए हमें मन के पास पहुंचना पड़ेगा। मनोवैज्ञानिक मन में संचय, सप्रयोजनता और सम्बद्धता नाम की तीन शक्तियों का निवास मानते हैं। इनमें से संचय शक्ति के द्वारा हम अपने अनुभवों के संस्कार को संचित करते हैं और यह अवशिष्ट संस्कार हमारे वर्तमान आचरण को प्रभावित करता है। संचय शक्ति प्राणि मात्र में होती है। स्मृति उच्च वर्ग के जीवधारियों विशेषतः मनुष्यों में पाई जाती है। विचार कल्पना आदि जितनी बौद्धिक क्रियायें मानव वैशिष्ठ्य की बोधक हैं, उन सब का आधार स्मृति है। हम जो अनुपस्थित व्यक्तियों के विषय में बात चीत करते हैं, अतीत की घटनाओं की आलोचना करते हैं, भविष्य की कल्पना चित्र भूतकाल के आधार पर निर्मित करते हैं वह सब स्मृति का फल है। मनुष्य जीवन में स्मृति का बहुत बड़ा महत्व है। ज्ञान, विज्ञान, साहित्य कला का आधार स्मृति है। स्मृति मन की मूल शक्ति संचय के कारण होती है अतः बौद्धिक कार्यों का या बुद्धि का उत्पादक मन है।

बुद्धि या ज्ञान उत्पन्न होने पर मन में चैतन्य आता है। धैर्य उत्पन्न होता है। संचय शक्ति की वृद्धि से स्मृति बढ़ती है। स्मृति को बढ़ाने के लिए स्वास्थ्य प्रद वस्तुओं का भोजन करना चाहिए। स्मृति की वृद्धि के लिए समानता, वैपरीत्य, सहकारिता इन तीनों नियमों का ध्यान रखते हुए स्मृति शक्ति को बढ़ाना चाहिए। जिस बालक ने खच्चर नहीं देखा उसे रूप समझ के कारण घोड़े का स्मरण हो आता है। चंगेज खां, तैमूरलंग की याद दिलाता है। साधु पुरुष को देखकर दुष्ट की स्मृति हो आती है। अतः विचार शक्ति की तीव्रता के लिए स्मृति की आवश्यकता होती है। इसीलिए इस मन्त्र कहा में गया कि मन ज्ञान, चेतना और धैर्य का कारण है। इसीलिए इस मन्त्र में कहा गया 'यत्प्रज्ञान मुत चेतो धृतिश्च' अर्थात् मन बुद्धि का उत्पादक (उत) और (चेतः) स्मृति का साधन और (धृतिः) धैर्य स्वरूप है।

इसके बाद मन्त्र में कहा गया है 'यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रज्ञासु' जो प्रजाओं में अमृत और ज्योति है, जो नाश रहित और प्रकाश स्वरूप है। मन के कार्य जीवित अवस्था में चेतन मन के साथ तो विद्यमान रहते ही हैं। चेतन मन को पार करके अचेतन में चले जाते हैं और उनके संस्कार तो हमेशा बने रहते हैं इसलिये मन को अमृत कहा है। यह नाश रहित होता हुआ हमारे जीवन के सब कार्यों पर प्रकाश डालता है अतः इसे ज्योति स्वरूप भी कहते हैं। मनुष्य के मन में अद्भुत शक्ति है परन्तु साधारणतया हमें इस शक्ति का ज्ञान नहीं होता क्योंकि ये शक्तियां बिखरी रहती हैं यदि शक्तियां संगठित होकर कार्य करने लगे तो मनुष्य आश्चर्यजनक काय कर डाले।

कई बार यदि किसी मनुष्य को बहुत अधिक कष्ट होता है और इस कष्ट के समय वह अपने किसी प्रिय को याद करता है तो उसकी सूचना उसे मिल जाती है। वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पूज्य दामोदर सातवलेकर जी का सुपुत्र गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का विद्यार्थी था। वह अस्वस्थ हुआ। उसकी बीमारी बढ़ी। श्री सातवलेकर जी का तार आया कि मुझे लगता है मेरा पुत्र सख्त बीमार है, सूचना दीजिए। इससे पहले तार जा चुका था कि 'सीर्यसली इल, कम सून' 'सख्त बीमार तुरन्त आइए'। इसके बाद उनका तार आता है कि मुझे लग रहा है कि वह मर गया। सचमुच उनका तार मिलने से पहले ही 'एक्सपायर्ड' का तार जा चुका था। क्या यह मन की ज्योति के बिना सम्भव है ?

आक्सफोर्ड का एक विद्यार्थी केनन वारवर्टन अपने विषय में लिखता हैं कि मैं आक्सफोर्ड से एक दो दिन के लिए अपने भाई ऐक्टन वारवर्टन के पास रहने के उद्देश्य से गया। ऐक्टन वैरिस्टर था। जब मैं घर गया तो वह एक नाच में गया था। उसकी चिट्ठी मेज पर थी। मैं कुर्सी पर बैठ कर सो गया। एक बजे मैं उठा और चिल्लाया कि वह गिर गया है। मेरे सामने मकान, सीढी और उसके गिरने का पूरा २ चित्र आया था। वह गर्दन के बल गिरा था। जब वह घर आया तो उसने सारी कथा इसी रूप में सुनाई। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। यह भी ज्ञात हुआ कि गिरते समय उसने मुझे बहुत याद किया था।

मन केवल अपने तक ही अपना प्रकाश वितरित नहीं करता। वह अपना प्रकाश दूसरों पर उगलता है। फ्लेमेरियनल्युडोविक नामक एक सात वर्ष का बालक था। उसके विषय में कहा जाता कि वह केवल उन्हीं प्रश्नों को हल करता था जो उनकी माता के मन में होता था। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य में शारीरिक शक्तियो के अतिरिक्त एक शक्ति है जिसे हम मानसिक कह सकते हैं जो अपना प्रभाव या प्रकाश दूसरों पर डालती है।

यह मानसिक शक्ति न केवल अपने और अपने से सम्बन्धित व्यक्तियों पर ही अपना प्रकाश डालती है बल्कि यह एक बड़े समूह, राष्ट्र या जाति पर भी अपना प्रभाव डालती है। मानसिक शक्ति से समृद्ध मनुष्य बड़े बड़े झुण्डों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। एक बार एक मानसिक शक्ति पर नियन्त्रण करने वाले महानुभाव हिन्दू विश्व विद्यालय में कुछ चमत्कार दिखाने के लिये उपस्थित हुए। उन्होंने ७ बजे सभा भवन में पहुंचने को कहा था परन्तु वे आध घण्टा देर से पहुंचे। देर से आने के कारण लोग कुछ अन्यमनस्क थे। उन्होंने आते ही कहा कि अब ठीक सात बजे हैं और मैं अपना खेल प्रारम्भ करता हूं। लोगों ने कहा कि महाराज सात तो कभी के बज चुके हैं। उन्होंने कहा कि जरा अपनी घड़ियों को देखिये। आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कि घड़ियों में सात बजे थे। पहला खेल उन्होंने यही दिखाया।

संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन ने लिखा है "मेरे एक पुराने मित्र ने रीज नामक एक व्यक्ति को मेरे पास भेजा। कुछ व्यक्तियों को परिक्षण को बुलाया गया। नार्वे निवासी एक व्यक्ति को रीज ने कहा, "साथ के कमरे में जाओ और अपनी मां का विवाह से पहले का नाम और उसका जन्म स्थान तथा अन्य बातें लिखो।" रीज ने लिखने के बाद सब बातें ठीक २ बता दीं। इसके बाद एडीसन ने कहा मुझ पर भी कोई परीक्षण करो। एडीसन ने एक कमरे में जाकर लिखा 'क्या क्षारीय बैटरी के लिए निकल के उदोपिद की अपेक्षा कोई अधिक अच्छी चीज नहीं।"

हमने भी स्वयं कुछ परीक्षण किए हैं। गुरुकुल वैद्यनाथ धाम में एक विद्यार्थी नारायण (मुकामा घाट का) कक्षा सात में पढ़ता था। हमने उसे चन्द्र लोक में भेजा। वहां का उसने साहित्यिक वर्णन करना प्रारम्भ किया और बाद में सम्मोहनावस्था में लाकर एक दूकान चलाने के विषय में पूछा। उसने बताया कि आप लोग दुकान के लिए जिस व्यक्ति को रक्खेंगे वह आपका सामान

लेकर चलता बनेगा। सचमुच यह घटना इसी प्रकार घटी।

गोरखपुर में हमारे निवास स्थान पर एक स्त्री हिस्टीरिया की मरीज थी। आयु भी ४० वर्ष से अधिक हो चुकी थी। उसको चिकित्सा कराते हुए बहुत समय बीत गया था पर उसे कोई लाभ नहीं हुआ था। हमने अपने मानसिक प्रभाव से उसे २-३ मास में लाभ पहुंचाया और सुना है कि अब तक २ वर्ष बीत चुके उसे कोई दौरा नहीं हुआ। इसी प्रकार स्वप्नदोष, बिच्छूदंश और अर्धकयारी आदि की चिकित्सा हम मानसिक उपायों से स्वयं भी करते रहे हैं और अनेक व्यक्तियों को लाभ भी पहुंचता है। इस प्रकार यह मन भटकों को प्रकाश देता है। भूलों का मार्ग प्रदर्शक है। अतः कहा गया है "यज्जयोतिरन्तरमृतं प्रजासु।"

यह मन जो चाहे करवा सकता है। इस की शक्ति अनन्त है। इसके बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति विजयशील व्यक्तित्व की कामना करता है तो उसे मन में शिव संकल्प लाने होंगे। संकल्प हीनता मनुष्य में भय उत्पन्न करती है और मन की यह कमजोरी-भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। यह सदा मनुष्य के मन को विकृत करता रहता है और मनुष्य के मन को कार्य से दूर करता रहता है। परिणाम यह होता है कि मन कार्य में नहीं लगता और उसके बिना कार्य होता नहीं है। इस भय ने लाखों मनुष्यों को असमय में वृद्ध कर दिया, हजारों मनुष्य इसके वश में होकर अकाल काल कवलित हो गये। देखते नहीं, यह जो बूढ़ा जा रहा है जरा इससे पूछो कि इसकी आयु क्या है? इसे हम अच्छी तरह जानते हैं अभी इसके विवाह को १५ वर्ष भी नहीं हुए पर आज इसकी यह दशा है। अरे भाई, मुझे पहचानते हो। पहचानता क्यों नहीं, वही न हैं आप जिन्होंने मेरे साथ बचपन में चिड़ियों के घोंसले में जाकर बच्चे पकड़े थे, दिन भर बन्दरों से लड़ते थे—है न वही बात तो भाई आज तुम्हारी यह दशा कैसी हो गई? अरे, यह सब मानसिक चिन्ताओं का फल है कि मैं इस दशा को प्राप्त हो गया हूं। मन में उठे संकल्प जीवन की सफलता और असफलता के कारण हैं। यदि तुमने मन में किसी कार्य को करने का निश्चय कर लिया तो विश्व की कोई शक्ति तुम्हें नहीं रोक सकती। तुम अपने उद्देश्य में अवश्य सफल हो जाओगे। जाओ और अपने संकल्पों को दृढ़ करो। ध्यान रखो मन के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता है "यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते।" यही जीवन की सफलता का रहस्य है। हे भगवन् हमारा मन शिव संकल्पों वाला हो।

———

भूत भविष्यत् वर्तमान का निर्माता-मन

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥

(येन) जिस (अमृतेन) अमर मन से (भूतम्) भूत (भुवनम्) वर्तमान (भविष्यत्) भविष्य सब कुछ (परिगृहितम्) परिगृहीत है। (येन) जिस मन से (सप्त होता) सात ऋत्विज्ञों द्वारा होने वाला यज्ञ (तायते) फैलाया जाता है (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु) वह मेरा मन अच्छे संकल्पों वाला हो।

मनुष्य के मन के संकल्पों का सबसे बड़ा बाधक भय है। भय न रहने पर संकल्प को संसार की कोई कठिनाई नहीं दूर कर सकती। भारतीय साहित्य में संकल्प का सबसे उत्तम उदाहरण ध्रुव और प्रह्लाद का है। पिता द्वारा गोदी में से उतार दिये जाने का अपमान उसे सहन नहीं हुआ। उस अटल पद को प्राप्त करने के लिए वह तेजस्वी बालक घर से निकल जाता है जहां से उसे कोई उतार नहीं सकता है। पिता को लज्जा अनुभव होती है और वह बालक का पीछा करता हुआ जाता है।

लौटो बेटा दे दूंगा दो ग्राम तुझे।
बोले ध्रुव क्या दे सकते हो ईश मुझे॥

पिता सारा राज्य देने को कहते हैं, लेकिन दृढ़ व्रत ध्रुव वापस नहीं लौटता।

ऐसे ही हैं बाल भक्त प्रह्लाद। एक बार नहीं कहा तो फिर हमेशा नहीं। वह कहता था "चाहे पहाड़ से गिरा दीजिए, आग में खड़ा कर दीजिये, चाहे सूली पर चढ़ा दीजिये, चाहे फांसी पर, मैं भगवान् का स्मरण किये बिना नहीं रह सकता।"

ध्येय से, संकल्प से जरा भी च्युत होना उचित नहीं। संकल्प तो संकल्प ही है। कपड़े के ढेर में एक भी चिंगारी पड़ जाने से सब स्वाहा हो जाता है। भय और पाप मन में चुपके चुपके प्रवेश करते हैं। रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि में एक बड़ा ही सुन्दर गीत है:—

वह बोला, मुझे एक कोने में जगह दे दो। मैं कोई गड़बड़ी नहीं करूंगा। लेकिन रात्रि के समय उसने विद्रोह किया और वह मेरी छाती पर चढ़ बैठा मेरे हृदयासन पर बैठी हुई मूर्ति को ढकेल कर उसने वहां अपना राज्य जमा लिया।"

इसी गीत का भाव है कि यह संतान भय और पाप हमें धोखे में डाल कर धीरे धीरे हृदय में प्रवेश करता है। पर भय के चक्कर में पड़कर हमें अपने भविष्य को बिगाड़ना न चाहिये।

भय, कुछ नहीं। विश्लेषण कीजिये कि यह क्या है तो आपको मालूम पड़ेगा कि क्लेश, अनिष्ट और आपत्तियों की कल्पना ही भय है। हम सोचते हैं कि यह विपत्तियां हमारे ऊपर कल या निकट भविष्य में आयेंगी और उनकी आने की चिन्ता से हम सूखते रहते हैं। पर वह कभी नहीं आती।

हमारा संकल्प शक्ति से हीन निर्बल मन बहुत से घटित ज्ञान परिचित बातों को अनिष्ट कर मान कर उनसे तो भय त्रस्त होता ही है पर वह भविष्य में आने वाली बातों में सदा अनिष्ट की आशंका करके भी बेकार में भय पीड़ित बना रहता है। आगे न जाने क्या होगा। मेरे इस कर्म की सिद्धि होगी कि नहीं? 'कहीं इसका परिणाम बुरा न निकले' यह जो हम में भय रहता है वह तो बड़ा ही आत्मघातक है। यही मन में उठे हुए विकल्प हमारे कार्यों में बाधक होंगे और इस प्रकार हम अपने भविष्य को नष्ट कर डालेंगे।

वास्तव में भय कुछ नहीं। मनुष्य अपने मानस पटल पर कल्पना का एक चित्र बनाता हैं। जैसे मन में आया कि कहीं शेर न हो और वह छः फीट के अन्दर ही हमें दिखाई देने लगता है। और हम इतने भयभीत और हक्के बक्के हो जाते हैं कि कार्य शक्ति ही समाप्त हो जाती है। इसलिए जब तुम्हारे मन में भय या पाप आए तो उससे बचने का सर्वोत्तम उपाय शिव संकल्प है। शिव संकल्प मन में लाओ और कहो "आने दो देख लेंगे" और देखोगे कि वह आता ही नहीं।

यह मन भूतकाल का ज्ञाता है। मन के दो रूप हैं। एक ज्ञान मन जिसे चेतन मन कहते हैं और दूसरा अज्ञान मन अर्थात् अचेतन मन। हमारी वर्तमान काल की अतृप्त इच्छायें भूत बन हमारे अचेतन मन में चली जाती हैं। भूतकाल की ये अतृप्त इच्छायें गुप्त रूप से हमसे नाना प्रकार की विचित्र बातें एवं कार्य करवाती हैं और हमें पता भी नहीं लगता। क्या आपने किसी को देखा नहीं जो हर समय अपनी गर्दन मोड़ता रहता है, जो बिना किसी काम के पैर पटकता रहता है, जो बिना किसी मतलब के दरी के धागे उपदेश के समय निकालता रहता है, जो हाथ की अंगुलियों को बिना प्रयोजन मलता रहता है। इन सब का कारण मन में विद्यमान भूतकाल की इच्छायें हैं जिन्हें मन ही जानता है। वह क्रिया का कर्त्ता भी इन क्रियाओं को नहीं समझ पाता। श्री रामजी लाल शुक्ल ने अपने मनोविज्ञान की पुस्तक में एक सच्ची घटना का उल्लेख किया है कि एक आदमी की यह आदत थी कि वह सदा अपने अंगूठे और एक अंगुली को रगड़ता रहता था। एक दिन उसने अपनी इसी आदत के कारण एक दस रुपये का नोट रगड़ते रगड़ते समाप्त कर दिया। एक बार पांच रुपए का और एक बार सौ रुपए का। शुक्ल जी ने उसके भूतकाल का मानसिक अध्ययन करके यह पता लगाया कि इसका कारण यह ग्रन्थि है कि

एक बार उसने किसी दस्तावेज पर अंगूठे का निशान बनाया था और जिसका परिणाम उसके विपक्ष में हुआ। अतः वह आज भी इस कालिमा को दूर करने का प्रयत्न कर रहा है।

अचेतन मन जिन भूतकालीन बातों को जानता है उसके द्वारा ही वह साहित्य और काव्य का निर्माण करवाता है। यह अचेतन मन भूत की बातों का संग्रह करके अनुभव और संस्कारों के रूप में अपनी संयम शक्ति द्वारा रखता है और समय आने पर वर्तमान का निर्माण करता है। भविष्य का मार्ग बतलाता है।

यदि हम मन को वश में कर लें तो संयम की कोई शक्ति हमें मार्गभ्रष्ट नहीं कर सकती हैं। जब मन हमारे वश में होगा तो पुरुषार्थ और कर्म हमारे अपने हाथ में हो जायेंगे।

"कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य अहितः मेरे दांये हाथ में कर्म और पुरुषार्थ है और मेरे बाँये हाथ में विजय रखी हुई है। कर्म और पुरुषार्थ ही हमारा वर्तमान है और विजय भविष्यत काल। कर्म और पुरुषार्थ मन के बिना संभव नहीं। विजय इनके बिना हो नहीं सकती अतः वर्तमान और भविष्यत् का आधार भी मन है। मन में यदि शिव संकल्पों का समावेश हो गया तो आप निश्चित रहिए आप पुरुषार्थ और कर्मों की ओर बढ़ते चले जायेंगे। आपका भविष्य सुन्दर बनता चला जायगा। मनमें यदि आत्मविश्वास की भावना आ गई तो कर्म आसान हो जायेगा। बच्चा पढ़ता नहीं वह शरारत करता है। क्लास में बैठने पर उसका मन नहीं लगता है। सोचा है कभी आपने इसका कारण? इसका कारण यही है कि उसमें यह विश्वास नही रहा कि वह पाठ समझ सकता है। उसमें यह शक्ति पैदा कीजिए कि उसका मन अपने ऊपर विश्वास करे। मेरे एक मित्र मध्य प्रदेश के रहने वाले हैं उन्होंने एक पत्र मुझे अपने बच्चे के विषय में लिखा कि वह सुस्त रहता है, पढ़ता नहीं। आठ वर्ष का हो गया है अभी तक न तो अक्षर लिखना सीख पाया है और न वह पहाड़े ही सुनाता है। मैंने उन्हें लिखा कि आप बच्चे की कमजोरी का कारण न समझें यह तो हमारा और आपका दोष है। आप जरा कष्ट करके उसकी तीन चार दिन रुचि, अरुचि, उसकी दिनचर्या आदि मुझे लिख भेजिए मैं कोशिश करूंगा कि उसे रास्ते पर ले आऊं। अनेक बार परिक्षण करने के बाद मैंने पता लगाया कि इसकी रुचि खेलों की ओर है अतः वर्तमान समय में वह काम नहीं कर पाता। और परिमाणतः वर्तमान दुःखी और भविष्य अन्धकारमय है। मैंने उसे पढ़ाने और खेलने का रूप दोनों बताया और अब १५ वर्ष की आयु में वह कक्षा के अच्छे विद्यार्थियों में है। खेलों में तो वह बहुत ही अच्छा है। उसका वर्तमान मन ने बनाया और भविष्य भी बनाने वाला मन ही है। इसीलिये कहा गया 'येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम्।"

सचमुच मन ही मनुष्य में आत्म विश्वास भरता हैं। यह आत्म विश्वास किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को आकर्षक और विजयशील बनाता है। आत्म विश्वास की अग्नि जब हम में प्रज्वलित हो रही होगी उस समय संसार में हमारी विजय निश्चित है। संसार में प्रतिजन से सम्बन्ध रखने वाले वैयक्तिक और राष्ट्रीय ऐश्वर्य उन्हीं व्यक्तियों की प्राप्त होता है जिनमें चिरकाल तक उद्योग करते जाने की शक्ति होती है, जिनमें लगन तथा धैर्य होता है, जिनमें अड़े होने, उठे रहने का गुण होता है, जो कदम कभी पीछे हटाना नहीं जानते। दुनिया उस मनुष्य के लिए खुद रास्ता कर देती है जो शक्तिशाली, आत्म विश्वासी और दृढ़ाग्रही होते हैं, जो इस बात को जानता है कि संसार में ऐसी कोई विपत्ति नहीं जो मेरी शक्ति का रास्ता रोक सके। कायर मनुष्य ही इनसे डर सकता है, रास्ते में इन्हें पाकर पथभ्रष्ट हो सकता है, पर मैं तो इन पर पूरी पूरी विजय पा सकता हूं। आपने तो इतिहास पढ़ा है न? क्या आप भूल गए महात्मा बुद्ध और शंकर को जिन्होंने इसी आत्म विश्वास के बल पर संसार को नया मार्ग दिखाया था, क्या

फांसी के तख्ते पर खुशी से लटकते और सन्ध्योच्चारण करते हुए रामप्रसाद बिस्मिल की मूर्ति मुस्कराते हुए नहीं दिखाई दे रही, क्या भयंकर विष के बाद प्रसन्नता के साथ "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" यह महर्षि दयानन्द का नाद नहीं सुनाई दे रहा ? क्या गोली लगने के बाद भी भारतवर्ष में जन्म लेकर पीड़ितों और दुःखियों के दुःखों की कामना करता हुए स्वामी श्रद्धानन्द की हार्दिक भावना आपको आंभभावित नहीं कर रही ? क्या गोली लगने के बाद भी महात्मा गांधी का राम, राम का उच्चारण आपके लिये प्रेरणा का काम नहीं कर रहा ? क्या जहर का प्याला पीता हुआ सुकरात का सत्योपदेश आपके कर्णगोचर नहीं हो रहा ? क्या वह हकीकतराय मौलवी साहब की लटकती तलवार देखकर भी हिन्दू धर्म को छोड़ने को तैयार नहीं हो रहा क्या आपने नहीं सुना है ? यह सब मन की शक्ति का ही प्रभाव है।

अब आता है सात होताओं के यज्ञ का कर्ता भी मन है। तैत्तरीय उपनिषद में एक कथा आती हैं कि संसार में जब सभी शरीर बन चुके तो ऋषियों और योगियों के सूक्ष्म शरीर इस संसार में आए। ईश्वर के बनाए सभी शरीरों को उन्होंने देखा और अन्त में उन्हें मानवीय शरीर पसन्द आया और उसे उन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया। तभी से मानव शरीर ऋषि कहलाता है। सात ऋषि उसमें रहते हैं पांच ज्ञानेन्द्रियां अर्थात् आंख, नाक, कान, त्वचा और वाणी इन के अतिरिक्त बुद्धि और मन मिलकर सात ऋषि हुए।

परन्तु यह जीवन यज्ञ वास्तव में मन के द्वारा ही संचालित होता है। वैसे तो ये सातों इन्द्रियां आत्मा के साधन रूप हैं। आत्मा इनको करण बना कर अपना कार्य करता है। परन्तु मन के बिना इन में से कोई इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकती। मन अत्यन्त सूक्ष्म और इन्द्रियातीत है। हमारा शरीर एक प्रकार का बड़ा कारखाना है। पाठकों में से जिन्होंने कोई बड़ा कारखाना अथवा कोई मिल देखी होगी उन्हें ज्ञात हो जायगा कि बाहर से कारखाने में बराबर माल आता है पश्चात् उस माल की उचित रीति से छान बीन होती है और उसके बाद कारखाने के काम के लिए उपयोगी माल अलग चुन कर रखा जाता है। इस चुने हुये कच्चे माल से पक्का माल तैयार किया जाता है उसकी कई गाठें कारखाने से बाहर जाती रहती हैं। इन भिन्न भिन्न कार्यों को करने के लिए भिन्न-भिन्न मनुष्य नियुक्त होते हैं। हमारे शरीर की अवस्था भी ठीक वैसे ही है। सांसारिक वस्तुओं का अनुभव प्राप्त करने और उस अनुभव के द्वारा इच्छानुसार कार्य करने के लिये हमें इन्द्रियां प्राप्त हैं। एक ज्ञानेन्द्रियां और दूसरी कर्मेन्द्रियां। नाक, कान, आंख, जिह्वा और त्वचा को ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ, पैर, मुंह, गुदा और उपस्थेन्द्रिय को कर्मेन्द्रियां कहते हैं। हमें किसी भी बाह्य पदार्थ का ज्ञान एक अथवा एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। बाहर का माल अन्दर लाने के लिये जिस प्रकार भिन्न २ दरवाजे होते हैं, उसी तरह हमारी ज्ञानेन्द्रियां भी बाह्य वस्तुओं का ज्ञान अन्दर लेने वाले भिन्न २ द्वार हैं। जब ज्ञानेन्द्रियां अपना २ कार्य करने लगती हैं तब सृष्टि की वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता। जैसे माल को अन्दर लाने के अतिरिक्त कारखाने के दरवाजों को कोई काम नहीं होता वैसे ही बाह्य पदार्थ का संस्कार अन्दर लेने का एक मात्र कार्य ज्ञानेन्द्रिय का होता है। प्रत्येक संस्कार के होते ही उसको ज्यों की त्यों खबर मन को पहुंचा करती है। हमारे शरीर में असंख्य अन्तर्मुख ज्ञान तन्तु होते हैं। यह ज्ञान तन्तु संस्कारों का सन्देश मन तक पहुंचाते हैं। बुद्धि के द्वारा मन ग्राह्य और त्याज्य संस्कारों को अलग अलग करता है। और फिर मन ही कर्मेन्द्रियों द्वारा क्रियाओं को करवाता है। बहिर्मुख ज्ञान तन्तु मन की आज्ञाओं को विश्वासपात्र दूत की तरह कर्मेन्द्रियों तक पहुंचाते हैं और इस प्रकार यह जीवन यज्ञ चलता है।

एक उदाहरण द्वारा इस विषय को और भी स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए आप कहीं बाहर जङ्गल में गए। घर कुछ दूर है। बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, आंधी चलने लगी इस बाह्य सृष्टि की हलचल का परिणाम हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर होता है और उन संस्कारों के समाचार अन्तर्मुख ज्ञान तन्तुओं द्वारा मन के पास भेजे जाते हैं मन इन संस्कारों की तुलना पूर्व प्राप्त ज्ञान और अनुभवों के साथ करता है। उसे पता लगता है कि वर्षा होने वाली है वह बहुर्मुख ज्ञान तन्तुओं द्वारा पैरों को आदेश देता है। भाव यह है कि बाह्य पदार्थ के सँयोग का ज्ञान सर्व प्रथम मनुष्य के मन को होता है और उसके प्रभाव के अनुसार शरीर की क्रिया होगी। जैसे एक और उदाहरण लीजिये 'आपका पुत्र मर गया' और 'मेरा पुत्र मर गया' इन दोनों तारों को पढ़ते समय केवल चार शब्दों का ही नेत्रों से संयोग होता है परन्तु यह सच होने पर भी एक के पढ़ने से मनुष्य बेहोश हो जाता है और दूसरे के पढ़ने से मनुष्य केवल आह भर कर रह जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी शारीरिक क्रियायें अथवा दूसरे शब्दों में यह जीवन यज्ञ का चलाने वाला मन है। मन के द्वारा ही शरीर के एक भाग दूसरे से संबन्धित होते हैं। पैर में लगी चोट का दुःख सारे शरीर को मन के द्वारा भोगना पड़ता है। यदि मन दूसरी ओर लगा रहता है तो यह शरीर यज्ञ ठीक दशा में न चल कर उसी दिशा में चलने लगता है। इसीलिए इस मन को कहा गया है कि यह सात होताओं वाले इस शरीर यज्ञ का संचालक है, इसका नेता है, बिना इसके यह यज्ञ चल ही नहीं सकता।

अन्त में पुनः कहा गया यह शक्तिशाली मन जब हमारे यज्ञ का संचालक है तो निराशा क्यो ? हे जीव ! इस मन के रहते हुए भी तू हारा हुआ क्यों पड़ा है ? तुझ में तो संसार की अनन्त शक्ति प्रवाहित हो रही है। तेरे मस्तिष्क में ज्ञान का सूर्य चमक रहा है। तेरे हृदय में स्वयं भगवान् का वास है। तू क्या नहीं कर सकता, उठ। और शिव सङ्कल्प आरम्भ कर। विश्व का कल्याण कर।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता-
रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥

हे प्रभो ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचः साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिस में (यजूꣳषि) यजुर्वेद और अथर्ववेद भी (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि—पहिये के बीच के काष्ठ में आरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों के समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध हैं (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पमस्तु) उत्तम संकल्पों वाला हो।

वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद। वेद शब्द के लिये त्रयी विद्या शब्द का प्रयोग होता है। त्रयी विद्या को देख कर कुछ लोग कहते हैं कि वेद वास्तव में तीन हैं और अथर्व वेद की बाद में उत्पत्ति हुई। परन्तु बात यह नहीं है। त्रयी विद्या से यह अभिप्राय है कि ज्ञान कर्म और उपासना की दृष्टि से चारों वेदों में उन्हीं तीन विषयों का वर्णन किया गया है। महाभारत में लिखा है:—

त्रयी विद्यायवेक्षेत वेदे सूक्तमथाङ्गतः।
ऋक्सामवर्णा क्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा ॥

अर्थात् ऋग्यजुसाम और अथर्व में ही त्रयी विद्या है। यहां त्रयी विद्या के साथ चारों वेदों के नाम दिये गये हैं जिससे ज्ञात होता है कि त्रयी विद्या से अभिप्राय चारों वेदों से ही है। दूसरी बात यह है कि चारों वेदों में तीन ही प्रकार के मन्त्र हैं इसलिये चारों वेदों का समावेश तीन में हो जाता है। सर्वानुक्रमणी में लिखा है:—

विनियोक्तव्य रूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते।
ऋग्यजुः सामरूपेण मन्त्रोवेद चतुष्टये ॥

अर्थात् विनियोग किये जाने वाले मन्त्र चारों वेदों में तीन ही प्रकार के हैं। मीमांसा में इन तीनों प्रकार के मन्त्रों का वर्णन करते हुए लिखा है जिन मन्त्रों के अर्थ के साथ पाद व्यवस्था है

वे ऋक्, जो गाने योग्य हैं वे साम और जो इन दोनों के अतिरिक्त हैं वे सब यजु हैं। इससे ज्ञात होता है कि चारों वेदों को तीन ही विभागों में विभक्त करने के कारण मन्त्रों के तीन प्रकार और उन मन्त्रों में प्रतिपादित तीन (ज्ञान, कर्म, उपासना) विषय ही हैं। इसलिये शिवसंकल्प सूक्त के मन्त्र में लिखा है कि जिस प्रकार रथ की नाभि पहिये के बीच के काष्ठ में आर स्थित हैं उसी प्रकार शुद्ध मन में ऋग् यजुः और साम वेद स्थित हैं।

अब आप देख सकते हैं कि इस संसार में ज्ञान की प्राप्ति मन के द्वारा सम्भव है, कर्म मन के द्वारा ही हो सकते हैं और उपासना भी मन के द्वारा करने पर फलदायिका होती है।

ज्ञान की प्राप्ति मन के द्वारा होती है इस विषय पर आज सम्पूर्ण विद्वत्समाज एकमत है। बालकों को शिक्षित करने के लिये आज के मनोवैज्ञानिक यह प्रयत्न कर रहे हैं कि किस प्रकार पढ़ने के लिये उनके मन को केन्द्रित किया जा सकता है। पाठ्य विषयों की ओर उनका ध्यान लगाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि मन की मूल-भूत कुछ सामान्य शक्तियां हैं। ये सामान्य शक्तियां सप्रयोजनता, संचय और सम्बद्धता की हैं। इन्हीं शक्तियों के कारण मनुष्य या प्राणियों के आचरण यांत्रिक नहीं होते। प्राणियों में विकास की सम्भावना रहती है। अब जब हम प्राणियों के आचरण को देखते हैं तो हमें उनमें कुछ प्रवृत्तियों का पता चलता है। इन सब प्रेरक शक्तयों को मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्तियां (Instincts) कहते हैं। यह मूल प्रवृत्तियां संख्या में चौदह हैं। पलायन, युयुत्सा, निवृत्ति, पुत्रकामना, शरणागति काम प्रवृत्ति, जिज्ञासा, दैन्य, आत्मगौरव सामूहिकता, भोजनान्वेषण, संग्रहवृत्ति, रचनावृत्ति और हास। इनमें से हास को छोड़कर शेष वृत्तियां मनुष्य और पशुओं में समान रूप से पाई जाती है। हासवृत्ति केवल मनुष्यों में होती है। गधा कितना भी प्रसन्न हो वह हंसेगा नहीं। बैल को आपने कभी हंसते हुए न देखा होगा। इस प्रकार इन मूल प्रवृत्तियों को हमें शिक्षा में प्रयोग करना चाहिये और यदि ये प्रवृत्तियां न होती तो मनुष्य इतना उन्नत न हुआ होता। मन में जब किसी विषय के प्रति हमारी जिज्ञासा उत्पन्न होती है तभी तो हम ज्ञान प्राप्ति की चेष्टा करते हैं। बहुत छोटा बच्चा जब खिलौने को तोड़ कर फेंक देता है तो उसकी विनाश वृत्ति के पीछे उसके मन में छिपी जिज्ञासा वृत्ति ही काम कर रही होती है कोई प्रौढ़ व्यक्ति जब हिमालय की ऊंचाई नापना चाहता है अथवा उत्तरी ध्रुव की भौगोलिक स्थिति का प्रत्यक्ष करना चाहता है तो इसी वृत्ति की प्रेरणा से। कथा सुनकर जब बच्चा पूछता है 'फिर क्या हुआ' अथवा जीवन की क्षण भंगुरता को देखकर जब कोई दार्शनिक जन्म मृत्यु की समस्या का समाधान करने को आतुर हो उठता है तो वे दोनों ही जिज्ञासा वृत्ति के प्रभाव से। यदि मनुष्य के मन में ज्ञान की प्राप्ति के लिए जिज्ञासा वृत्ति नहीं होती तो हम यह नहीं कह सकते कि हमारी संस्कृति का क्या रूप होता परन्तु इतना तो निश्चित है ज्ञान विज्ञान की इतनी उन्नति अवश्य ही नहीं हुई होती। अर्थात् संसार में ज्ञान की उन्नति के लिये मनुष्य का विषय के प्रति मन का लगाना आवश्यक है। जब किसी विषय के प्रति हमारे मन में रुचि उत्पन्न होगी तब हम उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

कर्म भी मन के द्वारा ही किये जा सकते हैं। हिप्नोटिज्म या सम्मोहन संवशीकरण की विद्या क्या है। इसमें हम अपने मन पर अधिकार कर दूसरे के मन को वशीभूत कर लेते हैं और फिर उसके कर्मों को नियंत्रित भी कर सकते हैं। असत्यभाषी को सत्यवादी कुसंगति में रहने वाले को सुसंगति में रहने वाला बनाया जा सकता है। यह तो बड़ी सीधी सी बात है कि यदि हमारा मन कहीं और होता है और हम कर्म कुछ और कर रहे होते हैं तो हमें उस कार्य में सफलता नहीं मिलती। मनुष्य कर्म भी कैसे करता है। जब अन्तर्मुखी ज्ञान तंतुओं द्वारा पदार्थों का ज्ञान मन

तक पहुंचाता है तब मन ही बुद्धि द्वारा अपने लिये उपयुक्त एवं ग्राह्य बातों को स्वीकार कर बहिर्मुख ज्ञान तंतुओं से जो मन के विश्वास पात्र दूत की तरह उसके संदेश कर्मेन्द्रियों तक पहुंचाते हैं तब वह कार्य करता है। इस प्रकार कर्म का करवाने वाला मन है।

उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है उपासना से ब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है। जब हम उपासना द्वारा ब्रह्म के साक्षात्कार का आनन्द पाना चाहते हैं तो हमें यह करना चाहिये कि अपने मन से घृणा और ईर्ष्या को दूर करदें। यदि आपके मन में घृणा, राग, द्वेष की अग्नि जलती रही तब आपको उपासना का फल नहीं मिलेगा। उपासना तो शुद्ध मन से ही की जा सकती है। आपके मुख में राम और बगल में छुरी है तो आप उपासना नहीं कर सकते—नहीं कर सकते। यदि आपको गायत्री की उपासना करनी है तो अपने मन से घृणा को दूर भगा दो ईर्ष्या और वैर भावना को मन से निकाल दो फिर देखो कि उपासना का आनन्द और सुख मिलता है कि नहीं। वास्तव में उपासना का आधार भी मनुष्य का मन है।

इस प्रकार ज्ञान, कर्म और उपासना का आधार मन है। यदि किसी कार्य में हमारा मन नहीं लगेगा तो हमें उसका ज्ञान नहीं होगा। ज्ञान के बिना कर्म कभी सम्भव नहीं और उपासना के लिये तो ज्ञान और कर्म दोनों की आवश्यकता होती हैं। इसलिए इस मन्त्र में कहा गया है "यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः" अर्थात् ऋक् (ज्ञान) यजुः (कर्म) साम (उपासना) ये सब रथ में लगे आरा की तरह जिस मन में संयुक्त हैं।

अब इस मन्त्र के दूसरे भाग पर भी हमको विचार करना चाहिये। दूसरा भाग है "यस्मिश्चित्तꣳ सर्वं मोतम् प्रजानाम्" जिस मन में सब प्रजाओं या प्राणियों के चित्त ओत-प्रोत हैं।

आइए, इस पर भी विचार करें:—

मनुष्य के मन के तीन प्रकार है। एक चेतन मन, दूसरा अचेतन मन और तीसरा उपचेतन मन (या सीमान्त चेतना) इन में उपचेतन मन उसे कहते हैं जिसमें बहुत सी बातें विद्यमान रहती हैं और जिनकी सत्ता का हमें ज्ञान भी होता है परन्तु उस समय हमें उनका ध्यान नहीं रहता। अंग्रेजी में इसे Marginal (सीमान्त चेतना) भी कह सकते हैं। थोड़ा सा भी विचार करने से इस विषय को समझा जा सकता है। हमारी चेतना का ज्ञान स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ बातों को हम स्पष्ट रूप से जाना करते हैं और कुछ को अस्पष्ट रूप से। मैं इस समय चेतना का आधार मन है' इस विषय में कुछ लिख रहा हूं। अतः इस विषय के विषय में हमने जो कुछ सोचा, समझा या पढ़ा है वह सब चेतना में उपस्थित है। इस उपस्थित वस्तु को चेतना मन का स्वरूप कह सकते हैं, उपचेतन मन में मेरे पिता, माता, सामने स्थित मेज, तथा उस पर रखे पुराने समाचार पत्रों का ढेर, घर के भीतर बच्चे रोने का शब्द, गली में आने जाने वाले लोगों के पैरों की आहट ये सब मन के उसी चेतना में रहते हैं। इनका हमें ज्ञान तो होता है परन्तु उस समय इनका ज्ञान नहीं रहता। जब हम अपनी सीमान्त चेतना में विद्यमान कुछ विषयों को गिना रहे थे उस समय वे विषय हमारी स्पष्ट चेतना के अंग बन गये थे। गिनाने से पहले वे सीमान्त चेतना में थे और फिर गिना चुकने के बाद वे उसी अर्द्ध-प्रकाशित मनो प्रदेश में चले गये परन्तु गणना करते समय हमें उनका स्पष्ट ज्ञान था। अतः हमें याद रखना चाहिये कि हमारे चेतन तथा उपचेतन या सीमांत चेतना की कोई सीमा नहीं। जो बातें अभी स्पष्ट चेतना में हैं वह अस्पष्ट चेतना में चली जा सकती हैं और अस्पष्ट चेतना अथवा सीमान्त चेतना की अनेक बातें स्पष्ट चेतना का विषय बनती रहती हैं।

इन दोनों मनों के अतिरिक्त एक अचेतन मन भी है। इस मन का निश्चित रूप नहीं बतलाया

जा सकता पर इतना तो निश्चित है कि अचेतन मन है अवश्य। अचेतन मन को अन्तर्मन भी कहते हैं। चेतन मन को बहिर्मन। अचेतन मन के विषय में बताने से पूर्व यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य दो प्रकार की क्रियायें करता है एक सहेतुक क्रिया और दूसरी अहेतुक क्रिया। सहेतुक क्रिया में हमारे मन का व्यापार जारी रहता हैं। जैसे सूई के छेद में धागा पिरोते समय हमारा मन पूरी तरह उसमें लगा होता है। ऐसी क्रियायें सहेतु क्रियायें हैं। अहेतुक क्रियाओं में मन का होना न होना बराबर है। अहेतु क्रियाओं में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में मन नहीं होता परन्तु फिर भी अहेंतु क्रिया बुद्धिमानी से की जाती है। क्या किसी ने बात चीत करते-करते अपने हाथ के छुरे से अपना ही गला काट लिया अथवा भोजन करते करते किसी ने ग्रास मुख में रखने के बजाय नाक अथवा कान में रखा? गर्मी के दिनों में हाथ का पङ्खा अहेतुक रूप से हिलाता है। वास्तव में अहेतुक क्रियाओं का आधार भी मन है परन्तु मन से संलग्न न रहने पर भी यह क्रियायें होती रहती है!

हम इस बात को अब इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस मन के द्वारा हमारे शरीर को सहेतुक क्रियायें करने की प्रेरणा होती है वह मन शरीर रूपी साम्राज्य का प्रधान सेनानायक है। इस सेनानायक की मातहती में एक और दूसरा मन सदैव काम करता है। मुख्य सेनापति केवल सेना की जांच करता और उचित प्रबन्ध कर देता है किन्तु यदि किसी सिपाही की पोशाक फटी हो या किसी को छुट्टी लेनी हो तो ये सब छोटे बड़े काम उसके मातहत पदाधिकारी ठीक ठीक कर सकते हैं। इसी तरह हर घड़ी शरीर की जो असंख्य क्रियायें होती हैं उनकी तरफ मुख्य मन को देखने की आवश्यकता नहीं होती। वे क्रियायें अप्रधान मन सुपुर्द होती हैं। इसी कारण खुजली छूटने पर पर खुजलाना, हाथ में सूई चुभने पर हाथ का पीछे हट जाना, अन्न का पाचन होना आदि क्रियायें मन को सूचनाये बिना दिए हुए भी होती रहती हैं। इस प्रकार वास्तव में हमारी चेतना काम करती रहती है।

शरीर शास्त्र के पण्डितों का कहना है कि मनुष्य के प्रायः सभी शरीर व्यापार अहेतुक होते हैं और उनसे बहिर्मन का सम्बन्ध नहीं रहता, इच्छा शक्ति (Will) बुद्धि (Intellect) और भावना (Emotion) ये तीन बहिर्मन के गुण अन्तर्मन में होते हैं। शरीर पोषण का कार्य भी अन्तर्मन करता है। यह अन्तर्मन कभी बहिर्मन की सहायता से, कभी अपनी अध कच्ची इच्छा से और कई अवसरों पर बहिर्मन की प्रेरणा के विरुद्ध काम करता रहता है।

शरीर के प्रायः सभी व्यापारों से इस अन्तर्मन का निकट सम्बन्ध है। शरीर के प्रत्येक भाग में अन्तर्मन विद्यमान है। वह मन मस्तिष्क अथवा ज्ञान तन्तुओं के महत्व पूर्ण भाग में, शरीर के प्रत्येक छोटे बड़े भाग में, नस नस में, सब स्नायुओं में प्रत्येक सूक्ष्म पेशी में भी है। यह कहना असम्भव हैं कि शरीर के अमुक भाग में अन्तर्मन नहीं। हमारा ध्यान अपने शरीर की ओर चाहे न रहे परन्तु फिरभी वह निरामय अवस्था में रहता हैं। इस प्रकार हम ज्ञात अवस्था में अथवा अज्ञात अवस्था में जितनी भी क्रियायें करते हैं सब का आधार मन है। इस प्रकार हमने देखा कि हमारे शरीर से जितनी भी चेतन क्रियायें होती हैं या हो सकती हैं उन सब का आधार मन है। इसी लिये कहा गया कि जिसमें प्राणियों की समग्र (चित्तम्) चेतना सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है। 'यस्मिंश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानाम्'।

अन्त में पुनः दोहराया गया कि 'तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु" वह मेरा मन शिवसंकल्पों वाला हो।

—❀—

मन ही शरीर रथ का सारथी है

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभिशुभि-र्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः) उत्तम सारथी (अश्वानि) घोड़ों की तरह (नेनीयते) इधर उधर ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथी (अभीशुभिः) रस्सियों से (वाजिन इव) वेगवाले घोड़ों के समान मनुष्यों को वश में रखता है और (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थिर है (अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) जो अतिशय गमनशील है। (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पमस्तु) उत्तम सङ्कल्पों वाला हो।

मन क्या है ? यह हम अपने पिछले लेखों में बता चुके हैं। यह इन्द्रियों और आत्मा से भिन्न वस्तु है। आत्मा के अन्दर विविध ज्ञान के आकारों और समग्र इन्द्रियों के व्यापारों का यन्त्र है। आत्मा अर्थात् चेतन शक्ति सभी इन्द्रियों से सदा युक्त रहती है पर एक काल में सर्वेन्द्रिय-बोध न होना किन्तु किसी एक इन्द्रिय के विषय का ही ज्ञान होना तथा मस्तिष्क में संचित विविध ज्ञान समूह में से एक समय में किसी एक ज्ञान धारा का ही स्मृति पथ में आना आदि व्यवहार आत्मा और इन्द्रयों के मध्य में वर्तमान उपकरण का साधक है। वह उपकरण मन नाम का अन्तःकरण है, जिस इन्द्रिय के साथ वह संयुक्त होता है उसी का दर्पण बन आत्मा में साक्षात् कराता हैं।

मन में प्रख्या (सत्व ज्ञान) प्रवृत्ति (रजः गति इन्द्रिय व्यापार में प्रवृत्ति) स्थिति (तमः जाडय अबोध) परिणाम हुआ करते हैं। आत्मा इन परिणामों से सदा पृथक् है तथापि आत्मा का आन्तरिक उपकरण होने से मन अयस्कांत मणि के सदृश उसको अपनी और रंजित कर लेता है अतः आत्मा भी उक्त परिणामों का द्रष्टा बनता है।

मन की पांच भूमियां हैं। इन भूमियों के द्वारा सांसारिक और यौगिक दोनों ही अवस्थाओं में यह शरीर और आत्मा का संचालन करता है। आत्मा इसके विना कोई कार्य नहीं कर सकता। मन की पांच भूमियां क्रमशः क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध हैं। इन में क्षिप्तावस्था में मन चंचल रहता है मनुष्य को इधर उधर नचाता है। यह मन की राजसिक अवस्था है। मोह ग्रस्त ज्ञान-शून्य मन मूढ़ कहलाता है। इस अवस्था से मन में न किसी ज्ञान का उदय होता है और न किसी क्रिया में मनुष्य की रुचि होती हैं। यह तामसिक अवस्था है। विक्षिप्त मन राजसिक और तामसिक दोनों दृष्टियों से युक्त होता है। एकाग्र और निरुद्ध मन सात्विक गुणों से युक्त होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के राजसिक, तामसिक और सात्विक भावों का उदय करने वाला और उनके अनुसार आत्मा को तथा इन्द्रियों को प्रतिभासित एवम् संचालित करने वाला मन है। इस प्रकार मनुष्य की इन्द्रियां मन के वशीभूत होकर संचालित होती हैं।

यदि आप विचार करें कि वास्तव में मनुष्य क्या है तो आप को यह विश्वास हो जायगा कि विचारों का समूह ही मनुष्य है। मनुष्य आखिर क्या है ? स्वस्थ और प्रसन्न मनुष्य के मन पर प्रभाव डाल दीजिए कि तुम अस्वस्थ हो। सारथी को अस्वस्थ्य की दिशा का बोध हुआ और यदि वह उधर चल पड़ा तो आप देख लीजिए कि वह मनुष्य अस्वस्थ हो जायगा।

पादरी साहब बूढ़े हो गये। उनके दांत टूट गये। बनावटीं दांत जब रात को उन्होंने भूल से बाहर छोड़ दिये तो एक चूहा उठाकर ले गया। परन्तु प्रातः काल जागने पर उन्हें विश्वास हो गया कि यह दांत मेरे पेट में चले गये हैं। वैसे साधारण बुद्धि से पेट में जाने की बात जंचती तो नहीं परन्तु मन में यह विश्वास जमने पर पेट में पीड़ा आरम्भ हुई और अन्त में सिविल सर्जन द्वारा आपरेशन का निश्चय हुआ। आपरेशन के लिए तैयार होने पर जब फोन द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि दांत मिल गये हैं, चूहे के बिल में थे तो उनकी पीड़ा शांत हुई।

क्या इसे मानसिक प्रभाव नहीं कहा जा सकता ? क्या यह मन रूपी सारथी का करिश्मा नहीं।

आप मन का प्रभाव इन्द्रियों पर देखना चाहते हैं तो आइये आपको दिखायें। इसके लिए एक रोगी को पलंग पर आराम से सीधा लिटा दीजिए और और अभिमर्श की क्रिया करते हुए उसे आदेश दीजिए कि:—

मैं तुम्हारे उदर शूल को दूर कर रहा हूं, वह अभी दूर हो जायेगा, दूर हो रहा है, कुछ दूर हो गया है, अब तो बिल्कुल दूर हो गया है, तुम स्वस्थ हो गये हो।

रोगी पर यदि आपने अपने मन का प्रभाव डाल दिया तो वह अवश्य दर्द भूल जायगा।

मन शरीर रथ का सारथी कैसे है ? जापान में परीक्षण किया गया है कि काली चिड़ियों को सफेद चिड़ियों में रखा गया और उन्हें सफेद खाना भी दिया गया और उनका सारा वातावरण सफेद रहा तो उनके बच्चे भी सफेद पैदा हुए। यह तो मन शरीर के रूप रङ्ग को जिस ओर चाहता है ले जाता है का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त भी मन अपना संसार निर्माण करता है। आपने सोचा कि कि आप नित्य यम नियमों का पालन करेंगे परन्तु यदि मन ने आपका साथ न दिया या आपने इस मन को वश में न किया तो याद रखिये यह विचित्र सारथी हैं यह आपको पकड़ कर ऐसे मार्ग की ओर ले जायेगा जो आपके लिये हानिकर होगा। यह मन सोते जागते, उठते, बैठते, हर समय नई से नई दुनिया बनाता रहता है। तब वासना का क्षय कैसे हो सकेगा ? और यह इतना चंचल, कपि स्वभाव सारथी है कि एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं होता। और सच तो यह है कि मन की करनी का ही फल होता है कि मनुष्य जन्म मरण के बन्धन में बंधता है, जन्म मृत्यु के चक्र में घूमता है। अब प्रश्न यह है कि इस सारथी को अपनी इच्छा से जिधर चाहे जाने दिया जाय या इसके ऊपर अंकुश भी लगाया जाय। यदि अंकुश लगाया जाय तो वह कौन सा है ? न्याय दर्शन में लिखा है "यगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्" एक समय में एक ही काम कर सकना मन का चिह्न है। अब वह हमें पकड़ कर किसी न किसी ओर ले ही जावेगा तो हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि नाशवान्, संसारी वस्तुओं से मन को हटा कर अविनाशी शुद्ध बुद्ध निर्मल ब्रह्मतत्व की ओर मन को लगाना चाहिए। तभी हम जीवन में इस सारथी का सदुपयोग प्राप्त कर सकेंगे। मन तो विद्युत् से अधिक शक्तिशाली है यदि इसे बुद्धि से बांध दिया जाय तो यहहमारे सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कर देगा। अतः इस सारथी को हमें योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस मन पर आप प्रभाव डालना प्रारम्भ कीजिये और इसकी शक्ति देखिए।

मन पर पड़े माता पिता के संस्कारों के अनुसार बच्चों का निर्माण होता है। अमेरिका के प्रेजीडैण्ट गारफील्ड का घातक गीट् जब पेट में था तब उसकी माता गर्भपात की औषधियां खाकर उसे गिराना चाहती थी, वह न गिरा परन्तु माता के मन के संस्कारों का प्रभाव यह पड़ा कि वह हत्यारा बना। नैपोलियन की माता जब गर्भवती थी तब नित्य फौजों की कवायद देखने जाती थी। सैनिकों के जोशीले गीतों को सुनकर उस के हृदय में जो प्रबल लहरें उठती थीं उन्होंने नैपोलियन को नैपोलियन बना दिया। प्रिंस बिस्मार्क जिस माता के गर्भ में था वह अपने घर के द्वार पर लगे हुए नैपोलियन की सेना के तलवारों के चिह्नों को जब देखा करती थी उस समय इस के हृदय में फ्रांस से बदला लेने की इच्छा प्रबल हो उठती थी। इन संस्कारों के वेग ने फ्रांस से बदला लेने वाला बिस्मार्क पैदा कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं मन शरीर और मनुष्य का निर्माण करता है। वह जिस दिशा में चाहे मनुष्य को ले जा सकता है वह अस्वस्थ को स्वस्थ स्वस्थ को अस्वस्थ कर सकता है। तभी तो गीता में अर्जुन ने कहा:—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथी बलवत् दृढ़म् ।
यस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

हे कृष्ण, यह मन बड़ा चञ्चल है, बलवान् दृढ़ और मस्त, इसका वश में करना वैसा ही कठिन है जैसा वायु को वश में करना। सचमुच आंख, कान, नाक, वाणी और त्वचा इसके बिना कुछ नहीं कर सकते। आंख, को नचाने वाला यही है। कान इसी के द्वारा श्रवण करते हैं। यदि यह चाहे तो अश्लील गीतों को सुने और चाहे तो भगवद्भजन को। त्वचा इस के द्वारा ही स्पर्श का अनुभव करती है। भयंकर से भयंकर पीड़ाएं यदि न चाहें तो त्वचा को अनुभव ही न हो। वाणी और गन्ध का भी अनुभव यही करता है। यह मनुष्य को सात्विक, राजसिक और तामसिक जिस ओर चाहे ले जा सकता है।

यह इन्द्रियों का घोड़ा इधर उधर भटकना चाहता है। शरीर रूपी रथ में बैठा हुआ आत्मा इन घोड़ों के द्वारा पतन के मार्ग की ओर ले जाया जा रहा हैं। मन रूपी सारथी चाहे तो उन्हें वश में कर सकता है इसलिये कहाः—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्न मातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥

जैसे विद्वान् सारथी घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन को चाहिए कि वह विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों को वश में करने के लिये प्रयत्न करे। इस मन्त्र में भी मन को सारथी माना गया है। कहा हैः—

"सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने नीयते"

उत्तम सारथी के समान यह मन मनुष्यों का सञ्चालन करता है। यह मन हृदय में स्थित है। अजर है—कभी बूढ़ा नहीं होता। शरीर बूढ़ा हो जाता है परन्तु मन तो कभी बूढ़ा नहीं होता। मन में विद्यमान तृष्णा कभीबूढ़ी नहीं होती। जीवन की अन्तिम सांस तक माया और मोह जो मनकी देन हैं मन में युवावस्था की तरह जागृत रहती हैं। इस गति और शक्ति का तो कुछ ठिकाना नहीं। इतना गतिशील और शक्तिशाली है कि इसके द्वारा आप चाहें तो अपना परिवर्तन ही कर सकते हैं। जाति की जाति को भी इसके द्वारा बदला जा सकता है। "आज" में १६ जनवरी १९६२ को प्रकाशित यह समाचार मन की जविष्ठ शक्ति का ही उपयोग हैः—

गङ्गटोक, १६ जनवरी कम्युनिस्ट चीन अपनी भावी पीढ़ी को पूरी तरह माओ त्से-तुङ्गवादी कम्युनिस्ट बनाने के लिए एक बिल्कुल नया ही परीक्षण तिब्बत के शांटङ्ग इलाके में और पश्चिमी एशिया के सिकियांग इलाके में करने में जुटा हुआ है।

तिब्बत से जो खबरें मिली हैं उनसे पता चला है कि इन दोनों क्षेत्रों को आबाद करने के लिए चीनी लोगों ने तीस लाख ऐसे नर नारी वहां भेजे हैं जो एकदम कट्टर माओ त्से तुङ्गवादी है। नया उपनिवेश बसाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को साढ़े सात एकड़ खेती की जमीन, याक तथा भेड़ों का एक जोड़, हल, हंसुआ आदि जैसे खेती के औजार दिये हैं और शुरू में पेट पालने के लिए तथा काम चालू करने के लिए कर्जे तथा सहायता के रूप में सामान दिया है।

लाखों की तादाद में और नर नारी भी वहां भेजे जा रहे हैं। जितने भी व्यक्ति अब तक भेजे गये हैं उनमें से एक एक मर्द तथा औरत माओ त्से तुङ्ग को आंख मूंद कर मानने वाला है।

रिपोर्ट तो यहां तक मिली है कि इन लोगों को विवाह शादी करने के झंझट से छुट्टी दे दी गई है। हां चीनी जातिकी तादाद बढ़ाने के लिये वे अपनी वासना की पूर्ति जरूर कर सकते हैं। ऐसी दशा में वैध या अवैध सम्बन्ध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। नर नारियों के सहवास से वहां जो मानव शिशु जन्म लेते हैं उनकी देखभाल का काम शिशु रक्षागृहों में ऐसे कट्टर कम्युनिस्टों के सुपुर्द कर दिया जाता है जिनका उन बच्चों से दूर का भी कोई रिश्ता नहीं होता।

जब किसी गर्भिणी को बच्चा जनना होता है तो उसके कोई दो मास पहले उसे जबरदस्ती विशेष

प्रसूतगृह में जाकर दाखिल हो जाना पड़ता है। वहां उसे दिन रात माओवादी कम्युनिस्ट के वातावरण में रखने की विशेष व्यवस्था की जाती है उसको माओवादी ओपेरा तथा सिनेमा शो दिखाये जाते हैं। हर शोके बाद तमाम भावी माताओं को इकट्ठा करके पूछा जाता है कि चित्र देखकर उन पर कैसा प्रभाव पड़ा। अगर किसी में जरा भी अरुचि या विरोधी भावना पायी जाती है तो उसे उसके लिए डांट फटकार बतायी जाती है और माओवाद को ठीक से समझने को धमकाया जाता है।

प्रसूतिगृह के सामने प्रति सप्ताह इनसे कम्युनिज्म के नए नारों के साथ हर रोज हलकी कवावद करायी जाती है। हफ्ते में दो बार उनके कमरों के सामने से उन लोगों को माओव दी नारे लगाते गुजारा जाता है जो भावी शिशु के तथाकथित पिता हैं।

जब कोई शिशु जन्म लेता है उसे तुरत उसकी मां से अलग कर दिया जाता है। उसको दूध पिलाने तथा पालने का काम शिशु रक्षागृह के सरकारी कर्मचारी ही करते हैं। प्रसूता मा जब चलने फिरने लायक हो जाती है तब फिर वापस खेतों पर काम के लिए भेज दी जाती है। जिस बच्चे को उसने जन्म दिया उसके उसे कभी दर्शन तक नहीं कराये जाते हैं। इस तरह के जन्मे बच्चों को जन्म से ही माओ त्से तुङ्गवादी बनाने को इस योजना पर पूरी तरह आचरण किया जा रहा है।

चीनी सरकारी अधिकारियों ने बताया कि इस तरह से बसाये गये लोगों ने अब तक ६६०००० है ट्रैक्टर बिना जुती जमीन को हल चलाकर खेती के लायक बना दिया है। इसके अलावा इन नयी आबादियों में १५० राज फारम और दो दर्जन पशुपालन फारम स्थापित किए जा चुके है।

चीनी उपविवेश बसाने वाले ये लोग धीमे धीमे जिस तरह से भारत तथा रूस की ओर बढ़ तथा फैल रहे हैं उससे मास्को में गहरी चिन्ता व्यक्त की जा रही बतायी जाती है।—ए. ए० एन० एस०

यह है मन की शक्ति जो एक जाति की जाति को बदलने का भरोसा रख सकती है। अतः आइए इस शक्तिशाली, सदा युवक मन को वश में करके इसे शिव संकल्पों से भर दें। कार्लाइल ने लिखा है:—

"मनुष्य यदि, व्याधि, दरिद्रता और दुर्दैव का ही विचार करता रहे तो उसे ये प्राप्त होंगे और उसे ऐसा मालूम होने लगेगा मानो ये उसके पास पड़े हों। फिर भी वह उनसे गहरा सम्बन्ध न करना चाहेगा वह अपने उत्पन्न किये इन पुत्रों से घबराता रहेगा कि दुर्भाग्य से ये बलायें मेरे शिर पर आ पड़ी हैं" परन्तु इन चीजों की ओर कभी ध्यान न देकर यदि अपने आपको सदा पूर्ण और सर्वाङ्गयुक्त विचारों से भर लेंगे तो हमारा जीवन मधुर और सफल बनेगा।

इसलिये हे मनुष्म ! तू अपने मनसे दुविचारों, अशिव संकल्पों को दूर कर। तू यहां विषय भोगों में कहाँ फंसा पड़ा है ? तू दिव्य अपवर्ग का अधिकारी, अनासक्ति के पवित्र मार्ग द्वारा ब्रह्मानन्द के पहुंचने का अधिकारी ? तू क्या नहीं कर सकता। उठ और शिव संकल्पों को धारण कर तेरा जीवन सफल होगा।

दो सनातन सत्ताएं : लेखक—श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी। प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ने "जीव प्रकृति और अनादि हैं" इस विषय को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिन का उत्तर इस्लाम के पास भी नहीं है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) रुपया

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटज	८।)
इलैक्ट्रक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
ट्यूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर आटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेटर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	॥।)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागबानी	२॥)
आम की बागबानी	३)
तिलहन की खेती	॥।=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	६)
लाख की खेती	॥।=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	॥।=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥।)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
प्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

जनवरी	१९६३
पौष	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	६

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

वेदप्रकाश का फरवरी अङ्क बालक अङ्क होगा ।

महापण्डित श्री भगवद्दत्त जी द्वारा शोधित

सत्यार्थ प्रकाश

का शुद्धतम संस्करण इतने मोटे अक्षरों में

विशेषताएं

१. इस संस्करण का मूल पाठ महर्षि की हस्त लिखित प्रति के अनुसार रखा गया है। श्री पं० भगवद्दत्त जी के अनुसार अन्य संस्करणों में १५०० के लगभग ऐसे स्थल है जहां समय-समय पर हेर फेर होता रहा है। जिनका उल्लेख पं० जी ने टिप्पणियों में कर दिया है।

२, दूसरी क्रान्तिकारी विशेषता पैराग्राफों पर क्रमांक है जो अन्यत्र कही नहीं मिलेगा।

३. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख है।

४. अकारादि क्रम से प्रमाण सूची और विषय सूची होगी।

५. मोटे अक्षर, मोती सी छपाई, मजबूत सुनहरी जिल्द।

६. पृष्ठ संख्या लगभग ८५० वेद प्रकाश के आकार के।

७. मूल्य एक प्रति १०), १० प्रति लेने पर ९॥) प्रति, २५ प्रतियां लेने पर ९) प्रति।

कार्यालय में आ रहे पत्रों से यह अनुमान लगाया जा रहा है कि यह संस्करण छपते छपते ही समाप्त हो जावेगा। आप भी अपनी प्रति एक रुपया भेजकर सुरक्षित करा लें। शेष ९) तथा डाकखर्च की वी० पी० भेज दी जावेगी। पुस्तक के दस समुल्लास छप चुके हैं। ग्यारहवां समुल्लास छप रहा है। आशा की जाती है छपाई का कार्य जनवरी के अन्त तक समाप्त हो जावेगा।

[१४२] प्रश्न—माता-पिता आदि की सेवा करें और मूर्त्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ?

उत्तर—पाषाणादि मूर्त्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्त्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना स्वीकार[1] किया। इसको[1] मूढ़ों ने इसीलिए स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य या भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा ले[2] लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्त्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घण्टानाद टंटं पूं पूं शङ्ख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् "त्वमङ्गुष्टं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि" जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि तू घण्टा ले और अंगूठा दिखलावे उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसे ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढ़ों को चटक, मटक, चलक, झलक, मूर्त्तियों को बना ठना[3] आप ठगों[3] के तुल्य बन ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मार के मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कामों में लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह कराता।

[१४३] प्रश्न—जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्त्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्त की मूर्त्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी ?

उत्तर—नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्त्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचार शक्ति घट जाती है। विवेक के विना न वैराग्य और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है, क्योंकि

१—१ बे. सि. बै—लुप्त। २. मूल में है। द्वि० सं० से सर्वत्र लुप्त। ३. यहां सर्वत्र पाठ भ्रष्ट हुआ है।

जिन शब्दों पर १—१ लिखा है वे शब्द महर्षि की हस्तलिखित प्रति में तो हैं पर अन्यत्र किसी संस्करण में नहीं हैं। यही प्रकार की लगभग १५०० अशुद्धियां वर्तमान सत्यार्थप्रकाश में हैं।

वयं जयेम (वेद)

सम्पादकीय

❀ ओ३म् ❀

वेद प्रकाश

शत्रु दमन

प्रमृणीहि शत्रून् ॥ यजु० १३। १३ ॥

(शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणीहि) कुचल डाल।

वेद शत्रुओं के साथ प्यार करने का आदेश नहीं देता। वेद तो शत्रुओं को मौत के घाट उतारने का शत्रुओं को कुचल डालने का आदेश देता है। वेद हमें कायर और भीरु न बनाकर वीर बनने का आदेश देता है। जब शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण करें तो उनके छक्के छुड़ाने का आदेश देता है, उन्हें मसल डालने और पीस डालने का सन्देश देता है। वेद कहता है—

हे वीर! रणधीर! जो शत्रु तेरे देश पर आक्रमण करने के लिये कुदृष्टि उठायें उन राक्षसों की दोनों आंखों को फोड़ दे। उनके हृदयों को विदीर्ण कर दे। उनकी जीभ काट डाल और दांतों को तोड़ दे। जो आततायी=शत्रु तुम्हारे देश की सीमा में पैर रखे उसके पैरों को काट डाल, उसके हाथों को तोड़ दे। जो शत्र देश पर आक्रमण करे उसे पूर्णरूप से नष्ट कर दो।

आज देश के ऊपर एक संकट आया हुआ है। चीनी लुटेरों ने वैदिक शेरों की गुफा में हाथ डाल दिया है। ऐ भारत मां के नौनिहालो! उठो, खड़े हो जाओ और शत्रु को खदेड़ दो। घबराने और डरने की कोई बात नहीं है। तुम्हारी शक्ति महान् है। तुम अजय और दुर्जेय हो। वैदिक वीरो! हूणों और शकों को तुमने ही तो हराया था। गोरी और सिकन्दर को तुमने ही तो पराजित किया था और अभी कुछ दिन पूर्व ही अंग्रेजों को तुम्हीने तो भगाया था। उठो! और बेशर्म चीनियों को खदेड़ दो—

बढ़े चलो ऐ वीर जवानो,
चिन्ता की है बात क्या।
जब शेर भेड़िये भगा दिये,
तो भेड़ों की औकात क्या॥

वीर बहादुरो! जिस समय के लिये क्षत्राणियां अपने पुत्रों को जन्म दिया करती हैं वह समय आ गया है। अतः अपने हाथों में झण्डे उठा लो और राक्षसों पर धावा बोल दो। सावधान! ऐसा भीषण युद्ध करो कि एक भी शत्रु बच कर न न जाये। ऐसा युद्ध करो कि शत्रु की लाशों से खून को नदियां बह निकलें, उनकी लाशों से पृथिवी पट जाये और उन लाशों को कौवे, चील और गृद्ध नोच-नोच कर खा जायें।

किसी भी शास्त्र में और किसी भी राजनीति में न शत्रु पर दया का विधान है और न विश्वास करने का वर्णन है। शत्रु तो बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष वध के ही योग्य है। जिस प्रकार सिल-बट्टे पर चटनी पीसी जाती है ठीक इसी प्रकार शत्रुओं के शिरों को कुचल देना चाहिए। उनकी हड्डी और पसली को तोड़ देना चाहिए। उनका मान मर्दन करना चाहिए। देश के सेनानियों! रणभेरी बज चुकी है। अतः शत्रु का संहार करने के लिये दल बल के साथ निकल पड़ो।

रणभेरी बज चुकी जवानो!
मां ने तुम्हें पुकारा।
दुर्गा बन कर चलो देवियो!
लेकर तीव्र दुधारा॥

—❀❀❀—

ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी का बेतुका झूठः—कल्याण वर्ष ३६, अङ्क ११ में श्री ब्रह्म० जी का एक लेख छपा है जिसका शीर्षक है "भारत के तीन अमूल्य रत्न"। इस लेख में ब्रह्म० जी ने आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० नरदेव जी वेदतीर्थ को भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है परन्तु ब्रह्म० जी ने कई ऊटपटांग बातें भी लिख दी हैं। एक स्थान पर आप लिखते हैं —

"वे बड़े सहिष्णु थे यद्यपि उनका सम्बन्ध आर्य समाज से रहा, किन्तु वे कभी संकीर्ण विचार के नहीं हुए। मन्दिरों में वे दर्शन करने जाते, प्रणाम करते, पूजा-पाठ, जप-अनुष्ठान सभी में विश्वास रखते। वे मुझ से बार-बार कहते—हम लोग माध्व सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव हैं। हमारी मां वैष्णव ही थी। केवल पिता जी आर्य समाजी बन गये। पुराणों के सम्बन्ध में वे कहते थे—"स्वामी दयानन्द जी ने, प्रतीत होता है पुराणों को पढ़ा नहीं। यदि पढ़ते तो कभी खण्डन न करते। हमारी तो पूरी संस्कृति, पूरा ज्ञान पुराणों में ही भरा पड़ा है। प्रतीत होता है कि उन्होंने ऊपर से ही सुन सुना कर खण्डन कर दिया।" पृष्ठ १३३७

समीक्षाः—क्या झूठ बोलना और लिखना ही सनातनियों का पेशा रह गया है। ब्रह्मचारी और तपस्वी होकर झूठ! परन्तु आपका क्या दोष? आप के तो पूर्वज ही झूठ बोलते आये हैं फिर आप में तो यह गुण स्वभाव से आना ही था। श्री पं० जी पूर्णरूपेण आर्य थे, कट्टर आर्य थे। वे मूर्तिपूजा बिल्कुल नहीं करते थे, पं० जी की मृत्यु के पश्चात् उनके सम्बन्ध में ऐसी अनर्गल बाते लिखना उनके साथ विश्वासघात करना है। "स्वामी दयानन्द ने पुराणों को पढ़ा नहीं" कम से कम पण्डित जी अपने गुरु के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकते। यह तो आप के हृदय का कालुष्य ही है। आपके ही शब्दों में—

"अपने गुरुओं के प्रति उन्होंने कितनी श्रद्धा-व्यक्त की है। कितनी भाव विभोर होकर श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं, उन्हें पढ़ कर उनकी महत्ता और आदर्श गुरुभक्ति प्रकट होती है। वही पृष्ठ-१३३६।

कहिये ब्रह्म० जी आपकी कौन सी बात को ठीक मानें। आप तो उभय पाश रज्जू में बन्ध गये। गोस्वामी तुलसी दास जी के शब्दों में—

भई गति सांप छछूंदर केरी।

किसी के सम्बन्ध में मनघड़न्त वार्तालाप कल्पित कर लेना विद्वानों को शोभा नहीं देता। श्री पण्डित नरदेव जी ने पुराणों को पढ़ा अवश्य परन्तु वे प्रयत्न करके भी उनकी सार और संगति न लगा सके फिर वे ऐसे विचार कैसे व्यक्त कर सकते थे।

यदि ब्रह्मचारी जी महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़ने का कष्ट करते तो उन्हें स्वयमेव ज्ञात हो जाता कि उन्होंने पुराणों का कितना गम्भीर अध्ययन किया था। सत्यार्थ प्रकाश में पुराणों की जो आलोचना की गई है उससे महर्षि के पुराण ज्ञान का परिचय हो जाता है। महर्षि ने पुराणों का इतना अध्ययन किया था जितना उस समय में किसी ने भी नहीं किया था परन्तु उनमें सार न देखकर उन्हें त्याज्य घोषित किया।

हमारी तो पूरी संस्कृति, पूरा ज्ञान पुराणों में ही भरा पड़ा है" यह बात भी पण्डित जी की नहीं ब्रह्म० जी की अपनी घडन्त हैं। पुराणों में हमारे पतन की सामग्री भरी पड़ी है यह बात ठीक है। जितनी अश्लील और ऊटपटांग बातें पुराणों में हैं वैसी तो कालिदास जैसे शृङ्गारी कवियों के नाटकों में भी नहीं है। ब्रह्मा का अपनी पुत्री के पीछे भागना, कृष्ण का कुब्जा को मैथुन करके मार डालना, श्री बलराम जी का शराब पीना इत्यादि गपोड़े पुराणों में भरे हुए हैं क्या यही भारतीय संस्कृति है? यदि आप और आपका सनातनधर्म इसी व्यभिचार को संस्कृति और ज्ञान मानता है तो ब्रह्मचारी जी आप और आपका सनातनधर्म धन्य है।

प्रभु वन्दना

* श्री स्वामी वेद मुनि परिव्राजक

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ऋ० १ । १ । ९॥

वेदों में अग्नि शब्द का प्रयोग अत्यधिक हुआ है। ऋग्वेद का तो प्रारम्भ ही अग्नि शब्द से होता है तथा उसके प्रथम सूक्त का नाम ही अग्नि सूक्त है प्रस्तुत मन्त्र उक्त सूक्त का ही है। वेद के अन्य शब्दों की भांति अग्नि शब्द के अनेक अर्थों में से एक अर्थ ईश्वर भी है, प्रस्तुत मन्त्र में ईश्वर का वर्णन है।

'अग्रणी भवति' आगे चलने वाला होता है वा 'अग्रे अग्रे नयति' जो आगे आगे ले जाता है, आगे ले जाने वाला होता है वह अग्नि कहाता है। परमात्म देव सत्यमेव अग्रणी हैं वह सदैव आगे चलते हैं। आप जहां भी जाइये वह आप से पहले विद्यमान हैं, हैं न, 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' इदं सर्वं ईशा वास्यम्, इस सारे में ईश्वर का वास है, यह सारा ईश्वर का वास स्थान है। सारा क्या? सर्वं किम्? किं इदं सर्वम्, यह सारा क्या? सारा जगत्, विश्व, संसार 'यत्किञ्च जगत्यां जगत्' जगत्या, जगती पर, पृथिवी पर वा जगती में, सृष्टि में 'यत्किञ्च' जो कुछ भी 'जगत्' गतिशील है, गति शील हो रहा है। इस संसार में जो कुछ भी है और वह सब जिस-जिस प्रकार की भी गति-विधि में उपस्थित है उस सारे में ईश्वर बसा है। अब बताइये आप ऐसे किस स्थान पर पहुंच सकेंगे जहां ईश्वर न हो। जब प्रत्येक स्थान पर वह आप के पहुंचने से पहले ही है तो फिर हुआ न अग्रणी। आदि सृष्टि में ही उस प्रभु ने ऋत को, शाश्वत सत्य को, ऋत के भण्डार, शाश्वत सत्य के कोष वेद को मानव के हितार्थ, उसके बढ़ने, उन्नत होने के लिये आदि काल के महा मानव चार ऋषियों के हृदय में प्रगट कर दिया। इसी कारण वह आगे, उन्नति की ओर ले जाने वाला है।

'अञ्चु गति पूजनयोः, (अग, अगि, इणगत्यर्थक) धातु हैं इन से अग्नि शब्द की सिद्धि होती है। "गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं, प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः" गति के तीन अर्थ हैं सत्कार। "योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति वा सोऽयमग्निः" जो ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने के योग्य है वह परमेश्वर अग्नि है। सामान्यतया यदि विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भौतिक अग्नि स्वयं प्रकाशित होने से संसार को प्रकाशित करता है और यथा प्रकाश में, प्रकाश के द्वारा समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है तथैव परमात्मा अपने प्रकाश से प्रकाशित है अर्थात् स्वयं प्रकाश स्वरूप, ज्ञान स्वरूप है और सारे संसार का ज्ञान दाता प्रकाश प्रदान करने वाला, होने से अग्नि है।

(सः) वह, वह प्रभु, वही ज्ञान का भण्डार और ज्ञान दाता अग्नि स्वरूप प्रभु। भक्त भगवान् को पुकार रहे हैं, वह अपने एक मात्र आश्रय दाता पर विश्वास रखते हैं। भक्तों का आलम्बन, उनका सहारा और हो ही कौन सकता है सिवाय उस प्रभु के। यदि कोई अन्य सहायक होता है तो वह भी प्रभु कृपा से ही। भगवान के सहस्रों हाथ हैं, भगवान् के हाथ हमारे हाथों जैसे नहीं होते। वह तो उस परम कृपालु प्रभु की कृपा के ही हाथ होते हैं। वह स्वयं शरीर धारण कर, हाथ पैर वाला बनकर सहायता करने नहीं आता अपितु अपनी सर्व व्यापक शक्ति द्वारा अन्तः प्रेरणा करके मानवों को ही सहायक बना देता है। कई बार संसार में प्रत्यक्ष रूपेण देखा जाता है कि जो मनुष्य अत्यन्त क्रूर स्वभाव के होते हैं वह भी किसी व्यक्ति विशेष के लिये अत्यन्त कृपालु व दयालु बन जाते हैं उनके

भी पाषाण हृदय मोम बन जाते हैं, पिघल जाते हैं, कई बार तो महा शत्रुता रखते हुए कुटिल स्वभाव के व्यक्ति भी अपने प्रतिद्वन्दी के प्रति अकस्मात् दयार्द्र होते पाये जाते हैं। अत्यन्त क्रूर तथा हिंसक स्वभाव वाले पशु भेड़ियों को भी स्व-स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध मानव शिशुओं का पालन करते हुए पाया गया है। यह सब उस परम पावन प्रभु की परम कृपा ही तो है, इसी कृपा की आशा से प्रभु के इस परम कृपालु स्वभाव के विश्वास पर ही तो वैदिक भक्तों ने प्रभु को पुकारा है। उन्होंने कहा है, हे प्रभो ! आप जो अपने ज्ञान भण्डार और ज्ञान दाता होने से अग्नि स्वरूप हो, हम [इस प्रकार के प्रभु] आप से आपकी शरणागत होकर यह याचना करते हैं कि आप (वः) हमारे लिये (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता जैसे (सूपायनः भव) सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले होइये।

सत्यमेव संसार में पुत्रों के लिये पिता अपना सब कुछ अर्पित कर देता है। अर्पित ही नहीं करता अपितु पिता का सब कुछ होता ही पुत्र के लिये है। पिता का तो जीवन-मरण सभी कुछ सन्तान के लिए होता है। पिता स्वयं को आपत्ति में डाल कर भी पुत्र के लिये, पुत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, पुत्र के पालन और पोषण के लिये धन कमाता है। पिता ही जो ठहरा 'पितृ पा रक्षणे' पा धातु से पिता शब्द बनता है, पा का अर्थ है पालन और रक्षण करने वाला। पिता पालयिता पोषयिता रक्षयिता वा, पालन पोषण और रक्षण करने से पिता कहलाता है। पुत्र के पालन तथा रक्षणार्थ पिता सम्पूर्ण शक्ति से सर्वात्मना संलग्न होकर साधन संग्रह करता है। पिता की इच्छा होती है कि चाहे कितने ही कष्ट भोगने पड़ें किन्तु उसकी संतान सुखी रहे। वह स्वयं रूखी-सूखी खा कर, फटे कपड़ों में रहते हुए भी सन्तुष्ट रहता है किन्तु पुत्र को अच्छे से अच्छा भोजन तथा सुन्दर से सुन्दर और मूल्यवान् से मूल्यवान् वस्त्र पहना कर स्व-सौभाग्य को सराहता और प्रसन्नता के मारे फूला नहीं समाता है। कितनी पवित्र है वह भावना जो उस व्यक्ति में होती है जिसे पिता शब्द से पुकारा जाता है। पिता शब्द ठीक ही प्रयुक्त हुआ है। वैदिक भक्तों की कामना है कि ऐसी ही भावना प्रभु की भी हमारे प्रति हो।

भक्तों की कामना उचित ही है, उन्होंने इतने सुन्दर शब्दों में अपनी कामना व्यक्त की है कि जिससे सुन्दर शब्द दूसरे हो ही नहीं सकते। प्रभु तो स्वयं ही पिता हैं एक दो, दस बीस के वा किसी वर्ग विशेष के नहीं अपितु सारे संसार के, मानव मात्र के ही नहीं अपितु प्राणि मात्र के। केवल पिता ही हों सो बात भी नहीं वह तो पिताओं के भी पिता हैं, तब फिर उन जैसे पावन देव के लिये 'सूनवे पिता इव' पुत्र के लिये पिता जैसे, शब्दों का प्रयोग अत्युत्तम और सार्थक है। हो भी क्यों न वैदिक भक्तों के द्वारा प्रभु से प्रार्थना करते समय इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग शोभाप्रद है।

प्रभु से मांग है कि आप पिता की भांति (सूपायनः भव) सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हो गये। परमात्मा तो समस्त संसार के स्वामी है, संसार की समस्त सम्पत्ति उन्हीं की है। वह लक्ष्मीपति हैं लक्ष्मी—पति, लक्ष्मी अर्थात् सम्पत्ति के स्वामी। जब समस्त सम्पत्ति के स्वामी तो प्रभु हैं तो मांगें किस से, क्या देगा कोई ? जब किसी का अपना है ही कुछ नहीं, सब कुछ उस प्रभु का ही है, जब सब उसी के दर के भिखारी हैं तो फिर सांसारिक लोगों से, दुनियादारों से क्या मांगें ? मंगता से क्या मांगना ? भिखारी के द्वार पर अलख जगाने से क्या लाभ ? वैदिक भक्त उसी द्वार पर, उस लक्ष्मी पति के ही द्वार पर मांगते हैं क्योंकि वह जानते हैं कि वही सच्चा दाता है, देता है और न लेने की भावना से देता है। उसे चाहिये भी क्या ? उसके तो भण्डार भरपूर हैं, उसकी सम्पत्ति, उसकी दौलत का कोष उस का भण्डार तो अक्षय है अक्षय कभी नहीं घटता, उसमें कदापि कमी नहीं आती। सुख के हेतु समस्त पदार्थ, समस्त सुख साधन, सुख भोग

[शेष पृष्ठ ७ पर]

अथर्ववेद का केन सूक्त

❀ श्री पं० जगदीश चन्द्र जी दर्शनाचार्य

हमारे शरीर की रचना में अस्थियों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है, निम्नार्ध में पैर के अंगुष्ठ और एडी से लेकर कूल्हे की श्रेणी तक अनेकों छोटी अस्थियों से कार्य लिया गया है परन्तु उसके ऊपर 'शिथिल कबन्धम्' ढीला ढाला पेट प्रदेश है जिसमें कई अंग बंधे हुए हैं और उनमें अस्थि का उपयोग नहीं लिया गया है यह अंग भी अत्यन्त उपयोगी है। यहां खान पान के पकाने की पूरी २ व्यवस्था है। आमाशय और पक्वाशय में रस बनकर यकृत् में रक्त बनने को चला जाता है। जो अनुपयोगी होता है वह आन्तों में मल रूप में तथा गुर्दों में मूत्र के रूप में चला जाता है। वहां से मल बड़ी आंत के मार्ग से तथा मूत्र मूत्राशय के मूत्रनाली मार्ग से बाहिर चला जाता है। यह सारी व्यवस्था ऐसे सुचारू ढंग से चलाई जा रही है कि हम को पता भी नहीं लगता कि कब खाये पीये पदार्थों का रस, रक्त बना, कब रक्त का मांस और मज्जा अस्थि मेदस् बना और कब शुक्र और रजस् बना और कब ओजस् और मनस्तत्त्व बना। आपने तो मुख से खाकर गले के नीचे उतार दिया परन्तु उस का इतना विचित्र परिणाम किस प्रकार हो गया और कहां जाकर क्या से क्या बन गया। यह श्वेत दूध का लाल २ रक्त किसने बनाया, हरी २ शाक भाजियों और विचित्र फलों को रक्त का रूप किसने दिया, रोटी और दाल के चर्वण को मांस और अस्थि का रूप किस ने दिया ? कभी आप को इस विचित्र योजना के आयोजक का ध्यान आया ? सोचिये और बारम्बार सोचिये कि इस उदर प्रदेश की विचित्र कला का रचने और संचालन करने वाला कौन है ? हम कहते हैं आप को विवश होकर मानना पड़ेगा कि इस अद्भुत कला का कलाकार परमेश्वर है।

(चौथा मन्त्र)

कति देवाः कतमेत आसन्
य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ
कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥४॥

(१७) **ये पूरुषस्य उरो ग्रीवाः चिक्युः**—जिन विचित्र और दिव्य भागों ने छाती और गर्दन के अंगों को कार्यकारी बना कर आत्मा को शरीर में बिठा रखा है। ते देवाः कति सन्ति—जानते हो वे अद्भुत अंग कितने हैं ? ते कतमे आसन्—और उन में भी अत्यन्त उपयोगी कौन २ अंग हैं ?—यह भी विचार करो।

पेट से ऊपर छाती और ग्रीवा प्रदेश हैं। मंत्र कहता है कि इन दो प्रदेशों में इतने उपयोगी अंग लगाये हुए हैं कि उनके प्रभाव और प्रबल प्रताप के कारण ही जीवात्मा शरीर में निवास कर रहा है यदि शरीर में ये यन्त्र न लगाये जाते तो आत्मा का इस पुरि में निवास करना ही असम्भव हो जाता। आइये विचार करें कि इन भागों में ऐसी कौन सी विशेषता है।

छाती में दो मुख्य यन्त्र हैं—फुसफुस और हृदय। फुसफुस या फेफड़े दो हैं एक दाईं ओर और दूसरा बाईं ओर है। दोनों फेफड़ों का काम जिगर से आये हुए रक्त को शुद्ध करना है। शुद्ध करने के लिये प्राण वायु वा शुद्ध वायु की अत्यन्त आवश्यकता है। नासिका के द्वारा जब शुद्ध वायु ग्रीवा नाली के अन्दर से छनकर फेफड़ों में पहुंचता है तो वहां छोटे २ छिद्रों में घूमकर रक्त को शुद्ध कर देता है। शुद्ध रक्त को यकृत् आदि से खींचना और खींचकर फेफड़ों में पहुंचाना तथा फेफड़ों से शुद्ध रक्त को पुनः खींचना और शरीर के प्रत्येक अंग उपांग और अन्तिम सैल तक पहुँचाना—हृदय का

काम है। शुद्ध रक्त जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस परमोपयोगी कार्य को फेफड़े और हृदय दोनों मिलकर पूर्ण करते हैं। अतएव इन दोनों के अधीन आत्मा का निवास है–यदि इन में से एक भी यन्त्र बिगड़ जावे तो मृत्यु के होने में देरी नहीं होती। हृदयगति के बन्द होते ही मृत्यु हो जाती है और वायु नाली के बन्द हो जाने से श्वासावरोध हो कर मृत्यु हो जाती है। इसी लिये मन्त्र ने कहा है कि इन दोनों के कारण आत्मा शरीर में निवास करता है।

(१८) **कति स्तनौ व्यदधुः**—दोनों स्तनों को परमोपयोगी बनाने में कितने अंगों ने पूरा २ सहयोग दिया है।

छाती के अन्दर जहां फुसफुस और हृदय यन्त्र हैं, वहां दो स्तन भी लगाये गये हैं एक दाईं ओर दूसरा बाईं ओर। दोनों में विचित्र कला स्थापित की गई है जिस के पुण्य प्रताप से माता का खाया पिया अन्न जल, दुग्धामृत बन जाता है और शिशु के जीवन का आधार बनता है। इस भाग में छोटी-छोटी अनेकों ग्रन्थियें लगाई गई हैं जिन में भुक्त अन्न का रस पहुंचते ही दूध के रूप में परिणत हो जाता है। यदि ये अंग न होते तो शिशु का पालन पोषण और जीवन ही दुःसाध्य हो जाता। आप विचार कीजिये कि परमेश्वर ने कितने अद्भुत यन्त्रों का निर्माण करके जीवों के जीवन को सुगम बना रखा है।

(१९) **कति पृष्ठीः अचिन्वनः**—कितनी पसलियों को चिनकर रख दिया है।

छाती के परमावश्यक अंगों हृदय फुसफुस और वायु नाली आदि की सुरक्षा के लिये उरःपञ्जर का निर्माण किया गया है। उरःपञ्जर अर्थात् छाती के अस्थिकवच में २४ पर्शुकाओं का सहयोग लिया गया है। बारह पसुलियें दाईं ओर बारह पसलियें बाईं ओर लगा कर पञ्जर तैयार किया गया है। कलाकार की कला प्रत्येक पसुली की बनावट और उस के यथा स्थान रखने तथा जोड़ को देखने से प्रतीत होती है। प्रत्येक ओर की ऊपर की सात पसुलियें क्रमशः नीचे को बढ़ती हुई दीर्घ से दीर्घतर होती चली गई है अर्थात् सब से ऊपर वाली पसुली से नीचे वाली पसुली लम्बी होती गई है। परन्तु आठवीं पसली से बारहवी तक क्रमशः छोटी होती चली गई है। प्रत्येक पसुली छाती से पीठ तक गोलाकार होती हुई पृष्ठवंश की कशेरुका से जोड़ दी गई है जिससे भीतर के अङ्गों की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध हो गया है। पसुलियों को धनुष के के समान वक्राकार और लचकदार स्थिति स्थापक बना कर छाती के फैलाने और सिकोडने की व्यवस्था भी कर दी गई है जिस से फेफड़े भी सुचारु रूप से रक्त संशोधन के परमावश्यक कार्य को कर सकें और हृदय की गति में किसी प्रकार की बाधा न पड़ने पावे। कितना सुन्दर और कला पूर्ण आयोजन है। क्या आप ने कभी सोचा है कि इस उरः पञ्जर का इतनी बुद्धिमत्ता से किसने निर्माण किया है। सोचिये, यदि प्रत्येक पसुली की रचना इस ढंग से न रची जाती और जिस स्थान पर जोड़ा गया है वहां न जोड़ी होती तो अभीष्ट कार्य को कदापि नहीं कर सकती थी। न उस में लचक आती, न फेफड़ों में संकोच विकास हो सकता और न ही हृदय गति कर सकता—तब जीवन कैसे स्थिर रह सकता। अतः मानना पड़ेगा कि इस आयोजन की जड़ में किसी महान् दूरदर्शी वैज्ञानिक का हाथ काम कर रहा है, सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त और ऐसा दूरदर्शी वैज्ञानिक और कौन हो सकता है?

(२०) **कति स्कन्धान् अचिन्वन्**—कितने और छोटे बड़े भाग हैं जिन्होंने स्कन्धों को चिन कर संयुक्त कर दिया है।

उरः पञ्जर को ग्रीवा की अस्थि के साथ जोड़ने तथा भुजाओं के साथ जोड़ने के लिये कई छोटे बड़े अस्थि खण्डों से काम लिया गया है और यह उन ही छोटे २ खण्डों का प्रताप है कि ग्रीवा और बाहुओं के साथ शरीर के निम्न भाग का सम्बन्ध स्थापित हो गया है। यदि इन अस्थि खण्डों की रचना न होती तो इन आवश्यक अंगों के साथ निम्न शरीर का सम्बन्ध स्थापित न हो सकता।

तब जीवन की सभी योजनायें धरी की धरी रह जातीं और शरीर में रक्त तथा ज्ञान का प्रवाह किसी भी प्रकार से प्रवाहित न हो सकता और शरीर संरक्षण विभाग के सर्वे सर्वा बाहु द्वय अर्थात् दोनों बाहु अपना व्यापक संरक्षण कार्य भार कदापि न सम्भाल सकते। सोचिये, बाहुओं के सहयोग के बिना शरीर की दुर्दशा होती और शरीर के आकर्षण पर कलंक लग जाता। जितना भी विचार किया जावे उतना ही इस जोड़ के अंगों का महत्व स्पष्ट होता जाता है। कहिये, यह कंधों का जोड़ आप ने स्वयं लगाया है? आपके माता पिता ने लगाया है? क्या वह अपने आप लग गया है? नहीं २ कदापि नहीं। यह तो महतो महीयान् भगवान् का लगाया गया है।

(२१) क. कफोडौ अचिन्वत्—किसने कुहनियों को ठीक प्रकार से चिन कर जोड़ दिया।

बाहु के तीन भाग हैं। ऊपर की लम्बी अस्थि प्रगण्डास्थि है। उसके नीचे प्रकोष्ठास्थि दूसरी लम्बी अस्थि है उसके आगे हाथ है। कुहनी दोनों लम्बी अस्थियों के जोड़ का नाम है। दोनों बाहुओं की दो कुहनियें हैं। इन कुहनियों के संधिस्थल का महत्व तो आप भी स्वीकार करेंगे क्यों कि यदि यह जोड़ न होता तो भुजाओं को आगे पीछे तथा इधर उधर मोड़ा नहीं जा सकता था।

अब फिर यह सोचिये कि कुहनियों के इन संधिस्थलों को इतना उपयोगी और इतना लाभकारी किस कुशल कलाकार ने बनाया है।

मन्त्र कहता है इन कुहनियों को भी—कः अचिन्वत्-आनन्द घन प्रजापति परमेश्वर ने बनाया है।

—❀❀❀—

[शेष पृष्ठ ४ का]

रूप समस्त सामग्री उसके भण्डारों में भरी पड़ी है।

(नः स्वस्तये सचस्व) हमारा कल्याण के लिये मेल कराइये। बड़े पते की बात कही हैं वैदिक भक्तों ने। चाहे कितनी भी सुख सामग्री पास हो, चाहे सम्पत्ति के भण्डार भरे हों किन्तु बिना मेल के कल्याण नहीं हो सकता। सदा सर्वदा भय का साम्राज्य बना ही रहता है। अनेकता, वैर-विरोध सदैव कष्टप्रद ही होता है अतः मेल का होना परमावश्यक है। मेल संसार के सारे सुखों का हेतु संसार की समस्त भोग्य सामग्री से भी बढ़ कर है अतः भक्तों ने अन्य सुख साधनों के साथ-साथ मेल कराने की भी मांग प्रस्तुत की है। यदि मेल कराने की मांग इस प्रार्थना में सम्मिलित न होती तो प्रार्थना ही अधूरी रह जाती। यही तो है वेद का वेदत्व, यही है वैदिक भक्ति की उत्कृष्टता। वाह रे वैदिक भक्तों, प्रार्थना क्या है? अमूल्य मोतियों की लड़ी है हे ज्ञान स्वरूप प्रभो! जिस प्रकार पिता पुत्र के प्रति सुख के साधनों को जुटाता है उसी प्रकार आप भी हम को समस्त सुख के हेतु पदार्थ प्राप्त कराइये तथा हमारा परस्पर मेल कराइये अर्थात् हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सदैव मेल-मिलाप पूर्वक रहें, परस्पर कभी भी वैर विरोध न करें।

हे तेज रूप भगवान्, हम को तेजस्वी कर दो।
अग्नि कहाते तुम हो, हम में प्रकाश भर दो॥
जैसे निकट में रहकर, पालन पिता है करता।
तुम भी उसी के सदृश, रक्षण हमारा कर दो॥
नः स्वस्तये सचस्व, करवा के मेल हम में।
कल्याण कारी भगवन्, कल्याण हमारा कर दो॥
हे ईश यह विनय है, तुम से हमारी हर दम।
अपने सभी गुणों को, हम में भी नाथ भर दो॥

—❀❀❀—

गोमेध यज्ञ का वास्तविक स्वरूप

❀ श्री भारतेन्दु विमल व्याकरणाचार्य

गोमेध शब्द की व्युत्पत्ति होती है:—गावो मेध्यन्ते यत्र यस्मिन् वा" इति गोमेध यज्ञः। "मिधृ मेधृ सङ्गमे च" यह भ्वादि गण की धातु है इससे परे अष्टाध्यायी के "हलश्च" (अष्टा० ३-३-१२१) सूत्र से अधिकरण में घञ् करने पर मेध शब्द सिद्ध होता है। अतः गोमेध यज्ञ का अर्थ हुआ कि:— जिस यज्ञ में गौओं का एकत्रीकरण हो वह गोमेध नामक यज्ञ कहलायेगा। शतपथ आदि ब्राह्मणों में व अन्य श्रौत सूत्रों में अश्वमेध-पुरुष मेधादि यज्ञों का विधान है किन्तु गोमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं आता किन्तु पुनरपि मध्यकाल में गोमेध यज्ञ के नाम पर जो गौओं का वध किया जाता था उसका निराकरण ही मेरा मुख्य प्रयोजन है। यदि गोमेध यज्ञ शास्त्रों का आधार लेकर हम करना चाहें तो यही स्वरूप कल्पित किया जा सकता है— इति मे मतिः। निरुक्त (३-१९-५) में यज्ञ के पर्यायवाची शब्दों में मेध शब्द की गणना भी की गई है। निरुक्त दुर्ग भाष्य में मेध शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि:—

"ममेदं दास्यति इति यज्वभिस्तस्मात्फलं प्रार्थात इति—"मेधः" (३-१९-६)॥

तो इससे यह तात्पर्य निकला कि–"मम गावो दास्यति इति—गोमेधः" अर्थात् मुझे गोयें प्रदान करेगा जो यज्ञ, वह गोमेध यज्ञ हुआ। यज्ञ शब्द की निरुक्ति करते हुए लिखा है—"यज्ञः कस्मात् प्रख्यातं यजति कर्म इति नैरुक्ताः,और इसके आगे लिखा है कि:—याञ्चो भवतीति वा·····(निरुक्त-३-१९-६) अर्थात् याच्यतेह्यत्र=जिसमें याचना की जाये। अतः अब गोमेध शब्द का अर्थ हो जाता है कि:—गोनाम् मेधः (संगम, संगमस्थान= (गौशालादयो) याच्यन्ते यत्र स गोमेध यज्ञः, अर्थात् जिस यज्ञ में हम गौओं से परिपूर्ण गौशालादि की याचना करते हैं वह है गोमेध यज्ञ। इससे पूर्व मैंने लिखा है कि जहां गौओं का एकत्रीकरण हो वह गोमेध यज्ञ कहलायेगा और अब यह दूसरा अर्थ लिखा है। इसका कारण है कि मेध शब्द में अधिकरण में घञ् करने के कारण प्रथम अर्थ भी निष्पन्न हो जाता है। पुनः यह प्रश्न हो सकता है कि संगति कैसे लगायी जाये इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार अश्वमेधादि यज्ञों का विधान ब्राह्मण ग्रन्थों एवं श्रौत सूत्रों द्वारा नाटकीय ढंग से किया है उसी प्रकार गोमेध यज्ञ में प्रथम यज्ञशाला के चारों ओर गौओं के बाँधने का स्थान हो जो गवादिनियों (नादों) व उनकी भोजन सामग्री से परिपूर्ण हो। उसके पश्चात् कुछ स्वस्थ सुडौल एवं पयस्वती गौओं को अच्छी प्रकार स्नानादि करा कर लाया जाये और वहां पर लाकर उनको सजाया जाये एवं उत्तम भोजन सामग्री (उनके योग्य) उन्हें प्रदान की जाये, तत्पश्चात् गोघृत से ही यज्ञ प्रारम्भ हो और वह घृत भी उन्हीं गौओं से निकाला हुआ हो। पुनः यज्ञ में अधिकतर वेद की उन ऋचाओं से आहुति दी जाये जिनमें कि गौओं की व अन्य पशुओं की वृद्धि की प्रार्थना है, प्रतिदिन यज्ञ के पश्चात् ब्रह्मणों को गोदुग्ध पान कराया जावे, यथा सम्भव यजमान भी उन दिनों विशेषतया गो दुग्ध का ही आहार करें, इत्यादि कल्पनायें शास्त्रीय आधारों पर ही की जानी चाहिए। —इति॥

कहनी है एक बात हमें इस देश के पहरे दारों से।
सम्हल के रहना अपने घर में छिपे हुए गद्दारों से॥

आगे बढ़ो

❀ श्री जगदीश विद्यार्थी बी० ए०

जातीय जीवन में स्फूर्ति और चेतना उत्पन्न करनेवाले नवयुवको ! राष्ट्र के कर्णधारो ! भारत माता के आशास्तम्भो ! देशकी आशायें आप के ऊपर लगी हुई हैं, क्योंकि जब नवयुवक आगे बढ़ते हैं, तो और लोग चलते हैं, जब नवयुवक चलते हैं तो और लोग खड़े हो जाते हैं, जब नवयुवक खड़े हो जाते हैं तो और लोग बैठ जाते हैं, जब नवयुवक बैठ जाते है तो और लोग सो जाते हैं और जब नवयुवक सो जाते है तो और लोग मर जाते है। कहने का तात्पर्य यह है कि देश और जाति के उत्थान और पतन का उत्तरदायित्व आप पर है। आप तेज, ओज साहस, शक्ति और वीरता की साक्षात् प्रतिमा हैं, अतः देश की डगमगाती हुई नौका को उत्थान की ओर ले जाने के लिये आगे बढ़ो।

गति ही जीवन है और स्थिरता ही मृत्यु है। जो आगे बढ़ता है वह स्वास्थ्य, शक्ति और दीर्घ जीवन प्राप्त करता है, मान और सम्मान एवं आदर पाता हैं। विजयलक्ष्मी उस के चरण चूमती है और उस के गले में विजय माला पहनाती है। इसके विपरीत जो थक कर एक स्थान पर बैठ जाता है, वह निर्बल निर्वीय और अल्पजीवी होता है दीन और हीन हो जाता है। अतः भारत माता के नौनिहालो ! यदि जीवन में कुछ करने की उमंग है, उन्नति की इच्छा हैं तो आगे बढ़ो।

संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक घटना सतत प्रयत्न, निरन्तर उद्योग सक्रीय जीवन और निरन्तर आगे जढ़ने का पाठ पढ़ाती है।

नदी बहती है, गढ़े में गिर जाती है, यदि जल समाप्त हो जाता है, तो फिर लाती है, गढ़ा भरती और फिर आगे बढ़ती है।

सूर्य को बादल ढक लेते हैं, कभी कभी ग्रहण भी लग जाता है, परन्तु क्या सूर्य छुपा ही रहता है ? नहीं, सूर्य फिर निकलता है और संसार को प्रकाशित करता है।

चन्द्रमा घटते घटते घट जाता है, परन्तु फिर बढ़ता है और संसार को अह्लाद व शीतलता और अमृत प्रदान करता है।

वेद मनुष्य को वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ने, ऊपर उठने का आदेश, उपदेश और सन्देश देता है यथा:—

आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् ॥
(अथर्व ५. ३०. ७.)

आगे बढ़ना, ऊपर उठना प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य है।

चारों वेदों में कहीं भी ऐसी भावना का संकेत नहीं मिलता जो मनुष्य को नीचे गिराने की प्रेरणा देता हो। वेद तो मनुष्य को ऊपर उठने, आगे बढ़ने की ही प्रेरणा देता है जैसा कि:—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम् ॥ (अथर्व ८।१।६)

हे मनुष्य तेरा कर्तव्य ऊपर उठना है न कि नीचे गिरना। जब एक साधारण मनुष्य के लिये वेद ऊपर उठने का उपदेश कर रहा है तो नवयुवकों के लिये कल्पना करना कुछ कठिन नहीं है।

वेद में सूक्त के सूक्त भरे पड़े हैं, जो मनुष्य को ऊपर उठने, आगे बढ़ने और कल्याण प्राप्त करने का आदेश और सन्देश दे रहे हैं नवयुवकों के लाभार्थ हम एक सूक्त को यहां उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते।

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयासमति समं क्राम ॥ (अथर्व २।११।१)

तू दुष्ट क्रिया का नाश करने वाला है। तू हथियार का हथियार है, और वज्र का वज्र तू है अतः परम कल्याण को प्राप्त कर और अपने समान

वालों को लांघ जा।

त्वक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ (अथर्व २।११।२)

तू प्रगति शील है। तू विरोधियों के सम्मुख आगे बढ़ने वाला है तू विरोधियों पर आक्रमण करने वाला है, अतः कल्याण प्राप्त कर और अपने बराबर वालों से आगे बढ़।

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ (अथर्व २।११।३)

जो हम सब से द्वेष करता है और उस के फल स्वरूप जिस से हम सब द्वेष करते हैं उसके ऊपर आक्रमण कर। इस प्रकार कल्याण प्राप्त कर और अपने समान वालों से आगे बढ़।

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ (अथर्व २।११।४)

तू ज्ञानी है, तू तेज धारण करने वाला है तथा शरीर का रक्षक है, अतः तू परम कल्याण प्राप्त कर और बराबर वालों से आगे बढ़।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ (अथर्व २।११।५)

तू वीर्यवान् है, शुद्ध और तेजस्वी है, तू आत्म शक्ति से युक्त है और ज्योतिष्मान् है इस लिये तू परम कल्याण प्राप्त कर और बराबर वालों से आगे बढ़।

आगे बढ़ने का अर्थ है वर्तमान अवस्था से ऊंचा उठना। वेद कितने ओजस्वी शब्दों में आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है तनिक अवलोकन कीजिये :—

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः,
पड्वीशमव मुञ्चमानः।
माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः,
सूर्यस्य संदृशः॥ (अथर्व ८।१।।४)

हे मनुष्य! वर्तमान अवस्था से आगे बढ़, उन्नति कर, पीछे मत हट नीचे मत गिर। एक बार तो मौत की बेड़ियों को भी काट डाल। सूर्य और अग्नि के दर्शन कराने वाले इस लोक से अपना सम्बन्ध मत तोड़।

देश के नौजवानों! आगे बढ़ने के लिये अपने जीवन का एक निश्चित उद्देश्य और निश्चित कार्य-क्रम बना कर उद्योग प्रारम्भ कर दीजिये क्योंकि उद्योग के बिना मनोरथ कभी सफल नहीं होते। कहा भी है:—

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

कार्य मनोरथ से नहीं, उद्यम से सिद्ध होते हैं। सोते हुए सिंह के मुख में मृग अपने आप नहीं चले जाते।

यदि आप यह सोचते हैं कि भगवान् आप का कार्य कर देगा तो यह आप की भारी भूल है। आप उस सर्वेश्वर, जगत्पति, राजाओं के राजा को अपना कुली बनाना चाहते हो और

राम भरोसे बैठ के रहो खाट पै सोय।
अनहोनी होनी नहीं होनी हो सो होय॥

यह कर्महीन और भाग्य हीनों का मन्त्र है, क्योंकि शुक्राचार्य के शब्दों में "क्लीवा दैवमुपासते" नपुंसक और कायर लोग ही कार्य सिद्धि के लिये भाग के भरोसे बैठते हैं। तुलसीदास जी ने भी कहा है :—

कादर मन कर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

अतः आलस्य और अकर्मण्यता को छोड़कर पुरुषार्थ का सहारा लो क्योंकि:—

उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी,
दैवं हि देवमिति का पुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति को ऽत्र दोषः॥

पुरुषार्थी उद्योग से लक्ष्मी को प्राप्त करता है। "देवता देते हैं" ऐसा कायर लोग कहते हैं। देव को छोड़ कर पुरुषार्थ करो और उद्योग करने पर भी सफलता न मिले तो देखो कहां त्रुटि है।

प्रिय नवयुवको ! इस संसार क्षेत्र में शिखण्डियों के लिये स्थान नहीं है। The fittest can only survive in this world. यह संसार तो वीरभोग्य वसुन्धरा है। संसार वीरों का आदर सम्मान और पूजा करता है, शक्तिशाली की बात सुनता है, बलवान्व्यक्ति के प्रति सहानुभूति दिखाता है और उसी की सहायता करता है। इसी लिये तो कहा है:—

सबै सहायक सबलै के निर्बल कोई न सहाय।
पवन जलावत आग को दीपहिं देत बुझाय॥

इस जगत् में दुर्बल, शक्तिहीन, निर्वीय और भीरु व्यक्ति के लिये कोई स्थान नहीं। कोई उसकी सहायता नहीं करता। सगे सम्बन्धी और नाते रिश्तेदार भी उस की ओर मुंह फेरकर नहीं देखते, अंतः गिरते गिरते खड़े हो जाओ, मरते मरते भी कार्य करते जाओ। जब तक शरीर में एक भी श्वास है और रक्त की एक बूंद भी शेष है निरन्तर अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए आगे बढ़े चलो।

,'Struggle is life". संग्राम ही जीवन है। जो निश्चल और प्राणहीन है उस के सम्मुख कोई विघ्न बाधा, दुःख संकट और आपद विपद नहीं आती। उस के निकट जय पराजय अथवा उत्थान और पतन का कोई प्रश्न नहीं उठता। परन्तु जो तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है, संसार की समस्त विघ्न बाधाएं तथा दुःख और संकट पर्वत की भांति सिर उठाये उसके समक्ष आ खड़ी होती हैं। उस के मस्तिष्क पर वज्र कड़कड़ाते हैं, विद्युत कौंधती हैं, उपहास एवं विरोध होता है, परन्तु वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता ही जाता है। जिस प्रकार एक सैनिक के लिये संग्राम ही आनन्द है, युद्धस्थल में उपस्थित होने पर उसके अङ्ग और प्रत्यङ्ग फड़क उठते हैं शरीर में रोमाञ्च हो जाता है, रक्त खौल उठता है, उस में साहस और शक्ति का संचार हो जाता है, वह परम उल्लास से नाच उठता है उसी प्रकार उन्नति के पथ पर अग्रसर धीर वीर को भी दुःख संकट और विघ्न बाधाओं में आनन्द आता है। विपत्तियों की चोट लगने पर उसके भीतर सिंह शक्ति का संचार हो जाता है। महर्षि दयानन्द का उदाहरण आप के सामने है। जब ऋषिवर सच्चे शिव की खोज में और मृत्युञ्जय बनने के लिये घर को छोड़ कर निकल पड़े तो कितनी आपत्तियां उन पर आईं। कभी रीछ से साम्मुख्य होता है, कभी शेर से, कभी कई कई दिन तो भोजन नहीं मिलता। जिस समय वह कार्यक्षेत्र में कूदते है उस समय भी उनका विरोध ही नहीं हुआ अपितु उन्हें अपमानित करने की चेष्टा की गई। यहां तक ही नहीं उन्हें अनेक बार विष भी दिया गया, परन्तु वे अपने मार्ग से एक पग भी नहीं डिगे, तनिक भी हताश और निराश नहीं हुए अपितु आपत्तियों और संघर्षों का सामना करते हुए आगे ही बढ़ते गये।

भावी भारत के निर्माताओ ! आप भी अपनी निराशा, विषाद और दुःख दैन्य को सदा के लिये विदा कर दो। कायरता और नपुंसकता को दूर फैंक कर, एक वीर योधा की भांति ऊंचा भाल कर के खड़े हो जाओ। आप हैं संसार क्षेत्र के सेनानी। पीछे मत हटो अपितु आगे बढ़ो। ध्यान रक्खो:—

विघ्न सत सत बहु दुःख विपत्,
जीवन पथ में संग्राम सतत्,
चलना होगा पुरुषवत्, बल भरे हृदय से भाई.
आगे बढ़ो आगे चलो भाई॥

भय और संकोच किस बात का। Be not discouraged, onward, onward. निराश और हताश मत हो। आगे बढ़ो आगे बढ़ो।

देश की आशाओ ! धैर्य धारण कीजिये। प्रत्येक कार्य धैर्य से कीजिए अवश्य पूर्ण होगा और आप को सफलता प्राप्त होगी। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी वनों में भटके, पहाड़ों और नदियों को लाँघा, अथाह समुद्र पर पुल बना कर उसे पार किया। लंका में प्रविष्ट हुए, महान् बलवान मेघनाद कुम्भ करण और रावण जैसे योधाओं को युद्ध में पछाड़ा, कितनी ही बार उन्हें अपनी पराजय दृष्टि

गोचर हुई, अपने प्रिय भाई लक्ष्मण के जीवन की आशा टूटी, निराशा के घनघोर बादल घिरे, परन्तु वे धैर्य पूर्वक लड़ते रहे, उन्हों ने साहस नहीं छोड़ा अन्त में विजय प्राप्त हुई। श्रीरामचन्द्र जी राजा बने, संसार में उनका मान और सन्मान बढ़ा, उनका यश फैला। यह सब सतत् प्रयत्न और धैर्य का ही परिणाम है।

योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज को भी बालाकपन से ही आपत्तियों और संकटों ने घेरा पूतना, अघासुर और बकासुर जैसे भयंकर राक्षसों ने आक्रमण किया। काले नाग ने जकड़ लिया परन्तु श्री कृष्ण जी हारे नहीं। कंस ने उन्हें कष्ट दिये, परन्तु वह घबराये नहीं। संकट की घड़ियों में हंसते और मुस्कराते थे, नाचते और गाते थे और फिर धैर्य पूर्वक कार्य में संलग्न हो जाते थे। इसी धैर्य के कारण श्री कृष्ण योगेश्वर प्रसिद्ध हुये।

मनुष्य की तो बात ही क्या पशु पक्षी भी धैर्य से सफल मनोरथ हो जाते हैं। पक्षी एक एक तिनका चुन कर घोंसले का निर्माण करता है। अनेकों बार तिनके चोंच से छूट जाते हैं, वह फिर उठाता है, कभी तिनके हवा में उड़ जाते हैं वह फिर लाता है। घोंसला टूट जाता है वह फिर बनाता है, कभी हारता और थकता नहीं, हताश और निराश होकर नहीं बैठता, धैर्य को नहीं छोड़ता।

नवयुवको ! आप भी धैर्य धारण करोः—

कभी निराश न हो कर बैठो,
कभी न दुःख में घबराओ।
कर्तव्यों को पालन कर के
आगे ही बढ़ते जाओ॥

भारत माता के राजदुलारो ! जीवन का पथ बड़ा ही बीहड़ और कण्टकाकीर्ण हैं। पद पद पर सङ्कट, विघ्न बाधायें और आपत्तियां मुंह खोले खड़ी हैं, परन्तु नवयुवक उन की ओर देखता भी नहीं। जसे उन की ओर देखने का अवसर भी कहां है। जीवन के दिन निर्दिष्ट हैं, आयु थोड़ी है, तथा प्रतिदिन प्रमिक्षण शक्ति, साहस, तेज, ओज बल, मेधा और प्रतिभा का ह्रास हो रहा है और जरा तथा मृत्यु मुख खोले उसे निगल जाने के लिए तैयार हैं और जीवन लक्ष्य दूर है—बहुत दूर। अतः नवयुवक शोक सन्ताप में समय नष्ट नही करता। वह विघ्न बाधाओं, आपत्तियों और संकटों का सामना करते हुए अपने मार्ग पर तीव्र गति से चलना आरम्भ कर देता हैं। जो उठने का प्रयत्न करता है वही गिरता है, जो मार्ग में चलता है वही ठोकर खाता है, परन्तु जितनी बार वह गिरता है उतनी ही वार उठता है और फिर चलता है। एक बार गिरने के साथ ही आगे बढ़ने के लिए सैंकड़ों गुणा शक्ति साहस और उत्साह उसके हृदय में जागृत हो जाता है। वह थकता और रुकता नहीं, वह निरुत्साहित नहीं होता क्योंकि वह जानता है Failures are the pillars of success. असफलता ही सफलता की सीढ़िया है।

देश की विभूतियो ! कभी असफल भी हो जाओ तो निराश और हताश मत होओ। असफलता में ही सफलता का रहस्य छुपा है। जब विश्व कवि रबिन्द्र नाथ टैगोर इङ्गलैण्ड में I. C. S. की परीक्षा दे रहे थे तो घोड़े पर से गिर पड़े। वह निराश नहीं हुए अपितु उन्होंने कहा I fell to rise. मैं ऊंचा उठने के लिए नीचे गिरा हूं और सचमुच वह बहुत ऊंचे उठे। I. C. S. पास करके कदाचित् वह इतना ऊंचा न उठते। आप भी असफलताओं की चिन्ता न करते हुए आगे बढ़े चलो।

नौजवानो ! उत्साह को मन्द मत पड़ने दीजिए। हृदय में उमंग का श्रोत उमंडने दीजिए। उत्साही मनुष्य के सामने कोई बात असम्भव नहीं। एक उर्दू के कवि ने कहा है और क्या खूब कहा हैः—

वह कौनसा उक़दा है जो हल हो नहीं सकता।
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता॥

शक्ति के स्वामियों ! उठो और आगे बढ़ना प्रारम्भ कर दो। परिस्थिति और साधनों के सम्बन्ध में बहाने मत बनाओ। परिस्थिति और साधनों के बारे में शिकायत करना कायरता है।

परिस्थिति कैसी भी हों उनके अनुकूल कार्य छांट लिया जाता है। परिस्थितियां स्वयं नहीं बनतीं, मनुष्य के बनाये बनती हैं। नवयुवकों का परिस्थितियों पर पूर्ण अधिकार होता है। हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहना मूर्खता है। प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों से लाभ उठाना बुद्धिमत्ता है। प्रभु अपने हाथ में फावड़ा लेकर आपके लिए परिस्थिति बनाने नहीं आयेगा। आज जैसे वेज्ञानिक अविष्कार न होते हुए भी हजारों वर्ष पूर्व सागरों को पार किया जाता था, पर्वतों को लांघा जाता था। आप को तो प्रभु का धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि आप की परिस्थितियां तो बड़ी साफ हैं राजा राम मोहन राय के उद्योग ने महर्षि दयानन्द के तप ने, महात्मा गांधी के परिश्रम ने, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के बलिदान ने आपके मार्ग को बिल्कुल साफ कर दिया है बढ़ो...प्राची दिक्...आगे बढ़ो।

ऐ भाग्य के भरोसे पर बैठने बाले नवयुवको ! भाग्य भी कोई वस्तु नहीं है। लक्ष्मण जी ने ठीक ही कहा था :—

विक्लीवो वीर्यहीनो यः स दैवमनु वर्तते।
वीरा सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते॥

कातर और वीर्यहीन पुरुष ही दैव को मानते हैं, वीर और धीर दैव को नहीं मानते।

यदि भाग्य है भी तो मनुष्य के उत्थान और पतन के साथ बदलता रहता है। भाग्य को बदलने की मनुष्य में पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य है क्योंकि Man is the captain of his fate, master of his luck and builder of his destiny. मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं विधाता और निर्माता है, अतः भाग्य के भरोसे न बैठ कर आगे बढ़ो।

ऋषि सन्तानों ! अवसर को हाथ से न जाने दो चाहे कैसा ही छोटा क्यों न हो। गांधी जी ने लिखा है "No opportunity should be missed however trifling" कुछ लोग बड़े अवसरों की बाट देखा करते हैं, परन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। अपनी बुद्धि के सदुपयोग से छोटे अवसर ही बड़े बना लिये जाते हैं।

प्रभु के अमृत पुत्रो ! कायर और भीरू मत बनो। निडर और निर्भय बनो। आकाश यदि मस्तिष्क पर टूट पड़े, हिमालय यदि आपका मार्ग रोक कर खड़ा हो जाये, और साक्षात् मृत्यु भी यदि आपके समक्ष आकर उपस्थित हो जायें तो भी मत डरो। आप तो अमृत पुत्र हो फिर भय कैसा। ब्रह्म में विचरण करो फिर आप को कोई भी भयभीत नहीं कर सकता। स्वयं मृत्यु भी आप से भयभीत होगी। आगे बढ़ो और मृत्यु भी मार्ग रोक कर खड़ी हो तो उसे भी धकेल कर बढ़ते चलो।

समय बहुत मूल्यवान् है, इसको पहचानिये और इस का सदुपयोग कीजिये। दिन रात गप्प बाजी, ताश और चैस (chess) खेलने में समय को नष्ट मत कीजिये। शराब नोशी और जुए बाजी में समय को व्यर्थ मत कीजिये। व्यर्थ इधर उधर फिरने, नाटक, सिनेमा, थियेटर पान चर्वन और तम्बाकू सेवन में समय को मत खोइये। यह जीवन खेलने खाने और मर जाने के लिये नहीं मिला है अपितु एक महान् उद्देश्य—आत्म दर्शन के लिए, प्रभु प्राप्ति के लिये आपको मिला है। समय का सदुपयोग करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चलिये। उठो जागो और जब तक लक्ष्य पर न पहुँच जाओ निरन्तर बढ़ते रहिये।

गतिशील जीवन का समस्त ज्ञान विज्ञान एवं मर्म ऐतरेय ब्राह्मण के एक गीत में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। उस गीत में देवताओं के राजा इन्द्र ने हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को सक्रिय जीवन व्यतीत करने का बड़ा ही सुन्दर मनोहर एवं कल्याणकारी उपदेश दिया है। नवयुवकों के लाभार्थ उसमें से चार श्लोक यहां दिये जाते हैं।

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्यसर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः॥
॥ चरैवेति चरैवेति ॥

जो चलता है उसकी जांघें हृष्ट पुष्ट हो जाती हैं, उसका आत्मा उत्साही और फल प्राप्त करने वाला होता है तथा उस पुरुषार्थी के सभी पाप परिश्रम के मार्ग में सो जाते हैं। इसलिये चलते रहो, चलते रहो।

आसते भग आसीनस्योर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भगः ॥
॥ चरैवेति चरैवेति ॥

जो बैठा रहता है उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है, जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी खड़ा हो जाता है, जो सोया रहता है उसका भाग्य भी सोया रहता है और जो उठ कर चल पड़ता है उसका भाग्य भी सक्रिय हो जाता है अतः चलते रहो चलते रहो ।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठं स्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन् ॥
॥ चरैवेति चरैवेति ॥

सोते रहना कलियुग है, अंगड़ाई लेना द्वापर है, उठ बैठना त्रेता है और चल पड़ना ही सतयुग है । अतः चलते रहो चलते रहो ।

चरन्वै मधु विन्दति, चरन्स्वादुमुदम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्यश्रेमानं यो न तन्द्रयते चरन् ॥
॥ चरैवेतिचरैवेति ॥

पुरुषार्थी ही मधु प्राप्त करता है, वही स्वादिष्ट फल खाता है, सूर्य की श्रेष्ठता इसी लिए है कि वह चलते में आलस्य नहीं करता अतः चलते रहो चलते रहो ।

वीर बहादुरों ! यह है आगे बढ़ने का महत्व । आप भी आगे बढ़ो, परन्तु सावधान पहले अच्छी प्रकार सोच विचार कर पग आगे रक्खो, परन्तु एक बार पग आगे रखने के पश्चात् फिर पीछे मत हटाओ चाहे कितनी ही विपत्तियां और संकट क्यों न आयें, चाहे हिमालय से ही क्यों न टकराना पड़े क्योंकि If God had intended man to go behind He would have given eyes on the back of his head. अर्थात् यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि मनुष्य पीछे हटे तो वह उसके मस्तिष्क के पीछे आंखे लगा देता । अतः नवयुवकों पीछे मत हटो, आगे बढ़ो । श्रद्धा रूपी कवच पहन कर, प्रेम रूपी खड़ग और आत्म विश्वास रूपी ढाल ले कर संसार क्षेत्र में सत्यपथ की ओर आगे ही आगे बढ़ो । अन्त में एक कवि के शब्दों में इतना ही कहना है :—

तुम अमर बढ़े चलो.....
क्यों न काल हो खड़ा, शेष नाग हो अड़ा ।
देश की शपथ तुम्हें, वेद की कसम तुम्हें ॥
लौटना हराम है ।
झूमते हुये चलो, तुम निडर बढ़े चलो ।
आन पर चढ़े चलो, तुम अमर बढ़े चलो ॥

॥ ओ३म् शम् ॥

दयानन्द प्रशस्ति

[श्री विष्णुदत्त "वैद्य भूषण" स्थान पोस्ट गंगेरु जि० मुजफ्फरनगर]

[१]

दम्भ का नाश करने के लिये, वह जग में आया था ।
यातना सहते हुए ऋषि, वेद का सन्देश लाया था ॥
नन्हें भाव सब भागे, बना ऋषियों का राजा था ।
दया ही के खजाने को, लुटाने आ विराजा था ॥
सदा सच बोलता हरदम, सचाई के लिए सर था ।
रत्न था विश्व का धन था, वतन का सच्चा रहबर था ॥
स्वयं मैदान में उतरा, उसे भय था न कुछ डर था ।
तीर था डूबती नैया का, वह रणधीर नाहर था ॥

[२]

'द' से दया के चश्मे, ऋषि ने बहाये आकर ।
'या' से यामिनी के, बादल हटाये आकर ॥
नन्हें से वह बना था, ऊंचा महान् इतना ।
दक्षिण के सिन्धु से है, ऊंचा पहाड़ जितना ॥
समता का पाठ उसने, सच्चा पढ़ाया हमको ।
रहबर बना जहाँ का, रास्ता दिखाया सबको ॥
स्वतन्त्रता का वायु, यहां पर जो बह रहा है ।
तीरथ बने थे स्वामी, नकशा यह कह रहा है ॥

सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास—

शिष्य और आचार्य (गुरु)

* सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी.,
डी. बी. कालेज गोरखपुर

शिक्षा के लिए माता पिता के बाद गुरु का महत्व है। गुरु का स्थान अनेक दृष्टियों से माता पिता से भी अधिक माना गया है। घर से जाने के बाद विद्यार्थी को गुरुकुल में, गुरु के आश्रम में भेजा जाता था। वहां उसका 'उपनयन' संस्कार होता था। 'उपनयन' का अर्थ है उसके समीप पहुंचना, उसके अत्यन्त निकट होना। उपनयन संस्कार के विषय में लिखा है 'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गभमन्तः, तं रात्रीस्तिस्रः उदरे विभर्ति ॥ अर्थात् उपनयन संस्कार करते हुए मानो आचार्य माता बनकर ब्रह्मचारी को तीन रात तक अपने गर्भ में धारण करता है। इस गुरु रूपी माता के गर्भ के अन्दर ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य की ओर प्रवृत्त होता है। 'ब्रह्मचारी' शब्द का अर्थ है 'ब्रह्मणि चरतीति ब्रह्मचारी'। 'ब्रह्म' का अर्थ है 'महान्'। जीवन में छोटे से बड़े होते जाना, संकुचित से विशाल होते जाना, अपने क्षेत्र को बढ़ाते जाना, आगे ही आगे चलते जाना ही 'ब्रह्मचर्य' है। इसका संकुचित अर्थ है वीर्य रक्षा करना।

बालकों के समान बालिकाओं को भी शिक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। यज्ञ में यजमान के साथ उसकी पत्नी भाग लेती थी। वेद के मन्त्रों का अर्थ करने वाली वे ऋषिकायें भी होती थीं, ब्रह्मवादिनी होती थीं। वे सब गुरुओं के समीप रह कर ही ज्ञान प्राप्त करती थीं।

यह शिक्षा का कार्य करने वाले व्यक्ति आचार्य या गुरु कहलाते थे। 'आचार्य' शब्द का अर्थ है 'आचारं ग्राहयतीति' आचार्यः। जो आचार विचार बनाये वह आचार्य कहलाता था आचार्य का काम विद्यार्थी के चरित्र का निर्माण होता था। वह विद्यार्थी के अन्दर सदाचार की स्थापना करता था। विद्यार्थी को 'छात्र' कहा जाता था। 'छात्र' शब्द का अर्थ है जिसे छाया जाय, आच्छादित किया जाय, सब प्रकार के विघ्न और बाधाओं से उसे बचाया जाय। विद्यार्थी को 'अन्तेवासी' भी कहा जाता था। अन्तेवासी शब्द का अर्थ होता है जो गुरु के अन्दर बसता हो। गुरु का सम्बन्ध केवल अपनी आर्थिक समस्या का हल ही नहीं होता था परन्तु वह उसे अपने हृदय में रखता था। इस प्रकार उस समय गुरु और शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र और प्रेम मय होता था। गुरु उस विद्यार्थी को उसके जीवन के लक्ष्य की ओर ले जाता था। शिक्षा का लक्ष्य क्या है? यह एक विचारणीय विषय है। शिक्षा के उद्देश्य पर विचार करने से पूर्व मानव जीवन के उद्देश्य पर विचार करना होगा और मानव जीवन का उद्देश्य आनन्द प्राप्ति है। अतः शिक्षा का उद्देश्य स्वभावतः उस मानव जीवन के उद्देश्य प्राप्ति के योग्य मनुष्य को बनाना होगा। मानव जीवन का उद्देश्य आनन्द प्राप्ति है और वह मुक्ति और मोक्ष प्राप्त करने पर ही हो सकती है। अतः मोक्ष प्राप्त करना मानव का उद्देश्य हुआ। और इस मोक्ष का प्रदाता आचार्य और गुरु है। कबीर ने इस बात को ध्यान में रखकर गुरु को भगवान् से भी अधिक महत्व दिया है और लिखा है:—

गुरु गोविन्द दोउ खड़े का के लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो दिखाय ॥

यदि हमें एक श्रेष्ठ गुरु की प्राप्ति हो जाय

तो जीवन का इससे बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है ?

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार ॥

प्राचीन काल में गुरुओं को समाज में अत्यधिक आदर और सम्मान प्राप्त था। प्रत्येक आचार्य अपना कर्तव्य समझता था कि प्राचीन काल से आ रहे विद्या रूपी धन को देश तथा जाति के लिए सुरक्षित रखे। इसीलिये जहां शिष्य गुरु की तलाश किया करते थे वहां गुरु भी योग्य शिष्यों की तलाश में रहते थे। तैत्तरीय उपनिषद् (१-४-३) में लिखा है कि जैसे पानी नीचे को बहता है, जैसे महीना संवत्सर के पीछे भागता है वैसे मुझे ब्रह्मचारी प्राप्त हों।

विद्यार्थी की शिक्षा की ओर ध्यान देना गुरु का कार्य होता था और सबसे पहले सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श रखने के लिए उसे सादी पोशाक में रखा जाता था। विद्यार्थी के शरीर पर चर्म अजिन नीचे के भाग में सन आदि का 'वस्त्र' हाथ में दण्ड, कमर में मेखला, छाती पर यज्ञोपवीत सिर के बाल या तो मुंडवाये होते थे या रखवाये होते थे। उपनयन के बाद वेदारम्भ संस्कार होता था। उस समय विद्यार्थी को आचार्य कहता था—वेद का अध्ययन करना, ब्रह्मचर्य धारण करना, आचार्य की धर्मयुक्त आज्ञा का पालन करना, क्रोध और झूठ छोड़ देना, मैथुन मत करना, गदेलों पर मत सोना, गाना बजाना, नाचना, गन्ध लगाना सुरमा लगाना आदि ठीक नहीं। अति स्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अति जागरण, निन्दा लोभ मोह भय शोक छोड़ देना, रात्रि के पिछले पहर में उठ जाना और आवश्यक शौच, दन्त धावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना उपासना और योगाभ्यास करना, मांस मदिरादि सेवन मत करना बैलादि की सवारी न करना, लघुशंका के बिना इन्द्रिय स्पर्श न करना वीर्य रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बनना, वीर्य को शरीर में खपाना, अति अम्ल, अति तिक्त, अति कषाय, क्षार तथा रेचनद्रव्यों का सेवन न करना, विद्या के ग्रहण में लगे रहना, सुशील बनना, थोड़ा बोलना, आचार्य का आज्ञाकारी होना ये विद्यार्थी के नित्य धर्म हैं।

इन सब बातों को देखकर ऐसा लगता है कि चरित्र निर्माण और शिक्षा दोनों ही विद्यार्थी को सिखाना आचार्य का कर्तव्य होता था।

इसके बाद विद्यार्थी को विभिन्न विषयों की उत्तमता के साथ शिक्षा दी जाती थी और शिक्षा समाप्त होने के बाद विद्यार्थी का दीक्षान्त संस्कार होता था। दीक्षान्त संस्कार का महत्व और उपदेश आगे देखेंगे।

—❀❀—

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—आयुर्वेदालङ्कार, [बी. आई. एम. एस.] से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कोलोनी सोनीपत।
२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैङ्क लोधी रोड़ नई दिल्ली।
३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपूर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पंजाब प्रतिनिधि सभा ३०३ रानीबाग शकूर बस्ती दिल्ली

श्री माधवाचार्य का व्यर्थ प्रलाप

❀ श्री मित्रसैन आर्य शास्त्री, एल० एस० सी०, दिल्ली

पौराणिक महारथियों की आजीविका का सहारा अब एक मात्र झूठ ही रह गया है। ईश्वर की साकारता ईश्वर का जन्म लेना, मूर्तिपूजा और मृतक श्राद्ध आदि विषयों पर शास्त्रार्थ करने की शक्ति तो इन मिथ्या महारथियों में है नहीं व्यर्थ की झूठी बातें बना कर लिखना और बोलना यही इनका सनातन धर्म रह गया है।

सं० २०१८ वि० के चैत्रमास में रामनवमी के अवसर पर जमशेदपुर आर्य जगत् के सफल सेनानी शास्त्रार्थ केसरी श्री पं० अमरसिंह जी "आर्य पथिक" को भी व्याख्यान देने के लिये बुलाया गया था। श्री ठा० नन्दलाल जी प्रसिद्ध भजनोपदेशक उस उत्सव पर कई वर्षों से जाते थे उन्हीं की प्रेरणा से श्री पं० अमरसिंह जी को इसलिये बुलाया गया था कि उससे पिछले वर्ष श्री माध्वाचार्य अपनी बहुत डीगें मार गये थे।

यह सारे देश में प्रसिद्ध है कि शास्त्रार्थ महारथी महर्षि दयानन्द के अनुपम शिष्य श्री पं० अमरसिंह जी "आर्य पथिक" का नाम सुनते ही श्री माधवाचार्य जी को जाड़ा चढ़ आता है। श्री माधवाचार्य जी अपने पुत्रों को भी इसी मिथ्या मार्ग पर चलाना चाहते हैं अतः वे अपने एक पुत्र प्रेमाचार्य को भी साथ ले गये थे। श्री पं० जी व श्री ठा० नन्दलाल जी आर्य समाज की ओर से थे।

सारे उत्सव में माधवाचार्य ने आर्य समाज के विरुद्ध कुछ भी न कहा और कह भी कैसे सकते थे क्योंकि उनकी नाक में नकेल डालने वाले श्री पं० अमरसिंह जी बैठे थे। इसलिए आपने तीन व्याख्यानों में आर्य समाज की प्रशंसा की एक में कहा कि स्वामी दयानन्द जी परम गो भक्त थे उन्होंने गोकरुणानिधि पुस्तक लिखी और गो रक्षा के लिये लाखों हस्ताक्षर कराके अंग्रेज सरकार को भेजे। आर्य समाज सारा ही गो रक्षा में हमारे साथ है इसी समय उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुओं को चाहिए कि तमाम गोओं और बैलों को सूअर के रुधिर के इंजेक्शन करादें फिर मुसलमान उनको मारेंगे नहीं।

इस पर श्री अमरसिंह जी ने कहा कि इससे गो रक्षा नहीं होगी इतने मात्र से मुसलमान गो वध बन्द नहीं करेंगे। गो रक्षा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मुसलमानों और ईसाइयों को शुद्ध कर लिया जाय। जब गो भक्षक और गो घातक ही न रहेंगे तो रक्षा स्वतः हो जायेगी।

एक व्याख्यान में माधवाचार्य ने कहा कि—आर्य समाजी भाई 'ओम्' की भक्ति में हम से भी आगे हैं और एक में कहा कि—आर्य समाज और सनातन धर्म वक्षस्थल से जुड़ी दो भुजायें एक मोथ में लगी २ आंखें हैं और एक कैंची के दो फलके हैं जिनको वेद की एक कील ने जोड़ रखा है। ये दोनों कुछ खटकते तो रहते हैं पर एक दूसरे को काटते नहीं। इनके बीच में जो कोई जाय वह ही कटता है आदि २।

माधवाचार्य के पुत्र प्रेमाचार्य जी ने एक व्याख्यान में कहा था कि हमारा नाम हिन्दू है। इसके पीछे श्री पं० अमरसिंह जी ने अपने व्याख्यान में बीसियों प्रमाणादि देकर बताया कि हमारा नाम हिन्दू नहीं आर्य ही है।

श्री माधवाचार्य जी ने एक व्याख्यान में एक वाक्य यह कहा था कोई २ भाई कहते हैं कि हनुमान् जी के पूंछ नहीं थी पर रामायण में तो लिखी है। कुछ रामायण को मानना और कुछ को न मानना यह तो अर्द्ध कुक्कुट न्याय है अर्थात् आधी मुर्गी को काटकर खा लेना और आधी को अण्डे देने के लिए रख लेना।

इसके उत्तर में श्री पं० अमरसिंह जी ने कहा कि किसी ग्रन्थ के कुछ भाग को मानना कुछ को न मानना अर्द्ध कुक्कुट न्याय नहीं नीर क्षीर विवेक न्याय है सत्य को मानना असत्य को न मानना। सारी रामायण को मानने से तो श्री राम जी तथा ऋषियों को भी मांसाहारी मानना पड़ेगा।

रामनवमी के उत्सव में एक दिन शेष था तभी माधवाचार्य जी अपने पुत्र को साथ लेकर कलकत्ता को चले गये और कह गये कि कलकत्ता से हमको बुलाने के लिये तार आया है।

इस घटना के एक वर्ष बाद माधवाचार्य ने अपने मासिक पत्र लोकालोक में लिखा है कि ठा० अमरसिंह जी लोभ वश उस वेदी पर आ गये और आर्य समाज के विरुद्ध व्याख्यान सुनने पर भी कुछ न कहा। अब एक और गपोड़ा मारा है कि अमर सिंह जी से कलकत्ता आर्य समाज ने जबाब मांगा है कि तुम हमारी नौकरी में होते हुए वहां लालच में फंसकर क्यों गए और क्यों चुपचाप बैठे आर्य समाज के विरुद्ध सुनते रहे?

यह हिमालय पहाड़ के बराबर झूठ है

कलकत्ता आर्य समाज ही नहीं सारा आर्य जगत् श्री पं० अमरसिंह जी की निर्लोभ वृत्ति को जानता है कलकत्ता आर्य समाज से ही उनको जमशेदपुर बुलाया गया था और जो कुछ भी रुपया वहां से मिला वह कलकत्ता समाज को ही दे दिया गया अतः उनके लोभ का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विषय में माधवाचार्य जी अपना मुंह दर्पण में देखकर पराया समझ रहे हैं। श्री पण्डित जी के इस प्रभाव को आर्य समाज जमशेद पुर के सदस्यों ने भली भांति देखा कि उनके सामने माधवाचार्य की क्या गति रही। इससे प्रभावित होकर आर्य समाज जमशेदपुर ने श्री पण्डित जी को वर्ष के भीतर २ बार बुलाया। एक बार कथा के लिये और एक बार उत्सव के लिये दोनों बार उन का भारी सम्मान हुआ।

श्री माधवाचार्य जी और उनके चेलों की बुद्धि का दिवाला

श्री युत पण्डित जी ने दो सौ पृष्ठ की पुस्तक "हनुमान आदि बानर थे या मनुष्य" लिखी है। श्री पण्डित जी ने इसमें सैकड़ों प्रमाणों के देने के बाद ये प्रश्न उठाये हैं कि वानर जब देवों के पुत्र कहे जाते हैं और यह भी कहा जाता है कि वे जिस २ देव के पुत्र थे उस २ के ही आकार और रूप के थे तो क्या उन देवों के भी पूंछें थीं।

इसके उत्तर में माधवाचार्य लिखवाते हैं कि पिता के अनुरूप समाजी कन्याओं के भी एक खरी खासी दाढ़ी होनी चाहिए और लड़कों की माता की तरह स्त्री अंग होने चाहिए आप को भी अवश्य ही होगी।"

बलिहारी इस बुद्धि की। यह बुद्धि तो चीन आदि किसी शत्रु देश की प्रदर्शनी में रखने योग्य है। आपकी पौराणिक बुद्धि में पूंछ यदि पुरुष चिह्न है तो भी पिता और पुत्र दोनों के ऐसा होना चाहिये। प्रश्न वहां का वहीं रहा कि इन्द्र इत्यादि देवताओं के जब पूंछ नहीं है तो उनकी सन्तान वानरों के क्यों है? दाढ़ी तो पुरुष चिह्न है इस लिए आर्य समाजी कन्याओं के नहीं होती है। माधवाचार्य प्रेमाचार्य आदि की दाढ़ी वाली कन्यायें हों तो पता नहीं।

लड़कों के स्त्री चिह्न होने चाहिये यह माधवा चार्य को "लम्बायमानौ कुचौ" देखकर सूझा होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु-चेलों ने पौराणिक शिव की बूटी पीकर लेख लिखा है जो यह भी ज्ञान न रहा कि पूंछ पुरुष या स्त्री चिह्न नहीं अपितु जाति चिह्न है जो भैंस के भी है भैंसों के भी, बैलों के भी हैं और गाय के भी बन्दर के भी और बन्दरी के भी, मां बाप के भी और बेटा बेटी के भी। पर पौराणिक पन्थियों को यह बुद्धि कहां जिनके शिव नर भी हैं और नारी भी अर्द्धनारीश्वर। जिन के पंथ में राजा युवनाश्व स्त्री भी रहता था

और पुरुष भी उसके गर्भ से मन्धाता भी उत्पन्न हुआ था। मनु की पुत्री इला पुरुष भी रहती थी और स्त्री भी। पद्म पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण जी नारद को नारदी अर्जुन को अर्जुनी बना कर भी सनातन धर्म कर लेते थे। ऋषि लोग रामचन्द्र जी से सनातन धर्म करना चाहते थे इसलिए ऋषि गण गोपियां बन गए और राम जी श्री कृष्ण और होने लगा सनातन धर्म।

पौराणिक लोग रामलीलाओं और रासलीलाओं में तथा चित्रों में भी दाढ़ी मूंछों वाले दशरथ के पुत्र राम को तथा दाढ़ी मूंछ वाले वसुदेव के पुत्र कृष्ण को निर्लोम बालक के ही रूप में बनाते हैं। और कीर्तन में भी 'हरे रामा हरे कृष्णा' स्त्रीलिंग नामों में ही पुकारते हैं। इन पौराणिक महारथियों का एक मात्र सिद्धान्त यह है 'एकाँ लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत'।

सत्यार्थ प्रकाश में नर मांस खाने का विधान नहीं

नर मांस खाने का विधान सत्यार्थ प्रकाश में तो है नहीं, हाँ पुराण में और आपके पांचवें वेद महाभारत में तो अवश्य है। इलविल और वातापि की कथा प्रसिद्ध ही है। इसने अनेक ऋषि मुनियों को नर मांस खिलाया। गो मांस की आहुतियाँ देना ऋषि दयानन्द ने तो कहीं नहीं लिखा पर आपके दादा गुरु महीधर और उव्वट ने अनेक स्थलों पर लिखा है और पुराण तो गोहत्या से भरे पड़े ही हैं। आवश्यकता पड़ने पर इस प्रकार के बहुत से प्रमाण प्रकाशित किये जायेंगे।

गौ रक्षा आन्दोलन का मूल

गो रक्षा आन्दोलन जो पौराणिकों की ओर से किया जाता है वह गौ रक्षा के लिए नहीं होता अपितु वह इसलिए होता है कि पौराणिक ग्रंथों में लिखी हुई गो हत्याओं का कलंक धुल जाय। सो निश्चय समझिये कि कोई भी कोयला हो लाखों मन साबुन लगाके सारे समुद्रों के पानी से धोया जाये तो भी वह काला ही रहेगा।

हनुमान जी के दो पिता थे

हनुमान जी के दो पिता हम नहीं बताते अपितु बाल्मीक रामायण ही बताती है जामवन्त ने स्वयं हनुमान जी से कहा "सत्वं केसरिणः पुत्र क्षेत्रजो भीम विक्रमः" अर्थात् हे हनुमान तुम केसरी के क्षेत्रज पुत्र हो। लोक प्रसिद्ध है कि क्षेत्रज अपनी स्त्री में अन्य पुरुष के वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र वे कहते हैं। इसलिए हनुमान के केसरी और पवन दो पिता थे और ऐसे क्षेत्रज पुत्रों के वर्णन से महाभारत भरा पड़ा है।

पौराणिकों में व्यभिचार दोष

सुभाषित रत्न भाण्डागार का यह श्लोक प्रसिद्ध ही है:—

पौराणिकानां व्यभिचार दोषो
न शंकनीयः कृतिभिः कदाचित्।
पुराण कर्त्ता व्यभिचार जातस्तस्यापि
पुत्रो व्यभिचार जातः॥

अर्थात् पौराणिकों में व्यभिचार दोष है। पुराणों का कर्ता व्यास भी व्यभिचार से उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र शुकदेव भी व्यभिचार से उत्पन्न हुआ। जो पौराणिक लोग ऐसे २ महापुरुषों को भी गाली देने से न चूके वे आर्य समाजियों को गाली देने से कैसे चूकेंगे।

वेदप्रकाश के प्रकाश का प्रभाव

इस समय भारत युद्ध संकट में है इस कारण हम इस प्रकार के झगड़े में पड़ना और किसी को डालना नहीं चाहते हैं पर इन पौराणिक फक्कड़ों की खोपड़ी बिना अवसर भी खुजलाने लगती है तब "वेदप्रकाश" को यह सेवा भी करनी ही पड़ती है। अब भी हम यही चाहते हैं "वेदप्रकाश" मण्डनात्मक और निर्माण कार्य ही करे। यदि 'लोकालोक और माधवाचार्य अपनी प्रवृत्तियों को न रोक सके तो "वेदप्रकाश" को यह करना ही पड़ेगा कि झूठों को उसके घर तक पहुँचाये ही नहीं घर में घुसा दे।

—❀❀❀—

आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना

※ "रक्षक"

[नवम्बर अङ्क से आगे]

शिखा सूत्र

(१) प्रत्येक आर्य्य चोटी रखे (२) यदि अविद्या अन्याय, अभाव आदि किसी के नाश का व्रत किया है तथा वेद जानता है तो सूत्र भी धारण करे।

ब्राह्म समाज वालों के आलोचना करते हुए ऋषि लिखते हैं कि पेण्ट टाई बेल्ट आदि लगाते हो, क्या शिखा व यज्ञोपवीत भार लगता है? अधिकांश आर्य्य शिखादि नहीं रखते। शिक्षा आर्य्यत्व का चिन्ह है तथा सूत्र द्विजत्व का चिह्न है। ब्रह्मरन्ध्र के स्थान पर शिखा रखी जाती है जहां समाधि लगा योगी आनन्द प्राप्त करते हैं। मोक्ष जो हमारा चरम लक्ष्य है शिक्षा उसका बाह्यकरण है। वैदिक सभ्यता का अत्यन्त महत्व-पूर्ण चिह्न है।

यज्ञोपवीत ऋषि, देव व पितृ ऋण उतारने के के लिए है। विद्या का प्रचार वेदज्ञ ही कर सकता है, ऐसा व्यक्ति अविद्या का नाशक ही ऋषि ऋण से उऋण हो सकता है। जड़ देवों से मुक्त होने के लिए यज्ञ करना अत्यन्त आवश्यक है। आर्य्य जीवन का तीन चौथाई भाग यज्ञ करने में जाता है। तथा पितृ ऋण से उऋण होने का आदर्श सन्तान उत्पन्न करना, ऐसी सन्तान जिसके रग-रग में आर्य्यत्व भरा हो। जो अविद्या, अन्याय, अभाव के नाश करने वाले योद्धा हो। परन्तु ऐसे कितने आर्य्य सदस्य हैं जिनकी सन्ताने आर्य्य होती हैं। आर्य्य सदस्य तो हैं आंग्ल वैदिक, अर्द्धांगिनी है पौराणिक, क्या आशा करी जाय कि सन्तान आर्य्य होवेगी?

भोजन

(१) यथा सम्भव फल दूध का अधिक प्रयोग करे (२) गरिष्ट पदार्थ चना बैंगन मिष्टान आदि का सीमित प्रयोग (३) इमली केरी आदि अत्यम्ल पदार्थों का अल्प सेवन। (४) हिंसाजन्य, मादक, दुर्गन्धयुक्त तामसी पदार्थ सर्वथा त्याज्य। (५) अप्राकृतिक वस्तुयें मैदा, जमायातेल, सफेद चीनी, बर्फ, सोडा आदि का अत्यल्प सेवन।

जैसा भोजन वैसा मन बनता है। सात्विक भोजन सतोगुणी है। राजस भोजन शुक्र की अधो-गति करते हैं। तामसी शुक्र की अधोगति करता है व बुद्धि तन्तु विकृत करता है। तमोगुण बढ़ने से संशय ज्ञान बढ़ना आरम्भ हो जाता है। इसकी वृत्ति अनाचार में प्रवृत्त होती है। राजस व तामस भोजन मन को चञ्चल करने वाले हैं। हम प्राणायाम द्वारा मन को वश में करने वाले हैं अतः इनका सेवन ईश्वरोपासना के लिए उचित नहीं।

वेशभूषा

(१) खादी पहने (२) धोती अवश्य पहने (३) ऊन का प्रयोग कम करे। (४) कपड़ा इतना मोटा हो कि शरीर के अङ्ग न दीखें।

वस्त्र लज्जानिवारण के लिए व शीत उष्ण आदि से बचने के लिए पहने जाते हैं। खादी प्राकृ-तिक है, गर्मी में ठण्डी व सर्दी में गर्म रहती है। खादी पर इस्तरी करने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती तथा इसमें से मैल जल्दी निकलता है। अन्य मशीनों के सूत में ये काम नहीं तथा मशीनी करण से बेकारी बढ़ती है व राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था को हानि होती है। मशीनी करण से पूञ्जीवाद को

अत्यन्त बढ़ावा मिला है, इससे जो हानि हो रही है वह सर्व विदित है। वैदिक सभ्यता में सिले वस्त्र पहनना विशेष स्थान नहीं रखता। धोती यज्ञ आदि उपासनादिक सबमें काम आती है। धोती सामाजिक जीवन में सर्वाधिक उपयोगी वस्त्र है। अन्य सेना आदि व विशेष कार्यों में पेण्ट आदि पहना जा सकता है।

गृह

(१) सादा बना हो, धूप आती हो व खुली हवा हो। (२) खाने के बर्तन सादे हों, पकाने वाले बर्त्तन मिट्टी काली के हो। (२) वस्त्र ओढ़ने बिछाने के यथा सम्भव खादी के हों। (४) फर्नीचर आदि सादा हो। (५) विलास सामग्री न हो। जो आवश्यक है उसे रखा जाय।

अर्थ-धन का व्यय विशेष कर भोजन वस्त्र, गृह, शिक्षा, चिकित्सा आदि पर होता है। अपव्यय दुर्गुणों का मूल है क्योंकि अपव्यय के कारण ही लोग स्तेन बनते हैं। जीवनस्तर नामक एक भ्रामक नारा चल रहा है। जीवनस्तर विलास सामग्री बढ़ाने के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। सादा जीवन—उच्च विचार, वस्तुतः मोक्ष मार्गीय जीवन सर्वोत्तम जीवन है। वैदिक सभ्यता त्यागवाद पर आधारित है। विलासी व्यक्ति व वस्तुओं का यहाँ कोई स्थान नहीं। एक आर्य्य का घर आश्रम जैसा दिखाई दे।

यज्ञ

(१) पञ्चमहा यज्ञ (२) संस्कार (३) पाक्षिक, चातुर्मास्य आदि याग यथा शक्ति अवश्य किये जायें।

यज्ञ के लाभ सब को ज्ञात हैं "यह मेरा नहीं" यज्ञ का मूल है। यज्ञीय भावना जब मनुष्य में आ जाती है, तब निष्काम कर्म योगी बन जाता है तथा मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। यज्ञ में आर्य्य जितना धन लगाये उतना ही लाभकारी है। यज्ञ का अर्थ पूजा, संगति करण, दान आदि हैं। बड़ों की पूजा, बराबर वालों का सहयोग छोटों को सहायता देना। यज्ञ ब्रह्माण्ड की नाभि है। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। यज्ञ करने वाला मनुष्य भी श्रेष्ठ आर्य है। यज्ञीय भावना में चेतनदेव जड़देव व पशु पक्षी चींटी तक के लिए उपकार की भावना है। यहां अतिथियज्ञ, निषेक, नामकरण, विवाह, अन्त्येष्टि संस्कार के सम्बन्ध में विशेष ध्यान दें।

आर्य्य संन्यासियों की न्यूनता होती जा रही है। इसका कारण है, आर्य्य अतिथि यज्ञ नहीं करते। उपदेशक आदि होटलों में भोजन करते हैं। कोई भोजन कराने वाला आर्य्य नहीं। बड़े बड़े विद्वान् क्यों नहीं संन्यासी होते। संन्यासी होने पर कोई उन्हें भोजन के लिये पूछने वाला नहीं। निषेक संस्कार की उपेक्षा अत्यधिक की गई इसी कारण आर्य्यों की सन्तान आर्य्य नहीं होती। जब कोई पौराणिक जैन आर्य्य सदस्य बनता है तो उसका नाम परिवर्त्तित नहीं किया जाता। परन्तु यवन क्रिष्टान आदि का किया जाता है। पौराणिकों व जैनों का नाम भी बदलना चाहिए यदि नाम संस्कृतनिष्ठ न हो। आर्य्यों के नाम आर्य्यों जैसे ही हों। अनेक सदस्यों के नाम अजीब-अजीब मिलेंगे। (१) नाम संस्कृतनिष्ठ हो (२) गोत्र व्यवसाय लगाया जावे (३) पौराणिक जन्म गत जाति सूचक आदि न लगाया जाये। विवाहों में ब्राह्म सर्व श्रेष्ठ है परन्तु ये आर्य्यों में नहीं होता। सदस्यों में रजोगुण की प्रधानता अधिक है अतः पौराणिक आदि की भांति खूब दिखावा किया जाता है। दहेज की भयंकरता कौन नहीं जानता। दहेज मांग कर लेना तमोगुणी, बिना मांगे लेना रजोगुणी, एक नया पैसा, भी न लेना अतिरिक्त कन्या के ये सतोगुणी विवाह हुआ। न दहेज हो न गहना, आंदली, मोहेरा, बिन्दोरों आदि कोई भी अपव्यय न होना चाहिए। क्योंकि अपव्यय के कारण मनुष्य स्तेन बनता है। तथा अन्त्येष्टि क्रिया आधा मन घृत से यज्ञ कर कोई नहीं करता, पौराणिकों की भांति भोज आदि होते हैं। आर्य्य भी विवाह व मृत्यु कर देते हैं। सामाजिक व्यवहार वेदोक्त व ऋषि सम्मत हो तो सब प्रकार का समाज सुधार हो जाय। विवाह के सम्बन्ध में जो शर्त है कि वर न्यून से न्यून २५ वर्ष का तथा कन्या १६ वर्ष से न्यून न हो। इसका भी पालन नहीं किया जाता। सब ने १८-१४ रट रखा है। आश्चर्य है १८-१४ का नियम

बनाने वाले महाशय आर्य्य थे वे २४-१६ को कैसे भूल गये। सब सामाजिक व्यवहारों का पालन अत्यन्त दृढ़ता से हो। पुनः सतोगुण का प्रश्न आता है जो व्यक्ति शुभ मन युक्त है वह तो दिखावा करेगा नहीं, तथा रजोगुणी व्यक्ति लोक भय से दिखावा करेगा। आर्य्य को लोक भय न होकर ईश्वर भय होता है अतः आर्य्य पाप से भयभीत रहता है।

अपव्यय

उपहार, दहेज, गहना, मोहरा, विन्दोरा आन्दली, रिश्वत आदि व्यर्थ का लेनदेन न करे।

वैदिक काल में परिव्राट् सम्राट् की प्रधानता थी। ब्रह्मराजन्य के सहयोग से आर्य्य चक्रवर्त्ती राज्य किया करते थे। जब ब्राह्मणों में प्रमाद आया तो क्षत्रियादि विद्याहीन होने लगे। समाज में धर्मध्वजी पूजे जाने लगे। विलासी मनुष्यों की संख्या बढ़ी। विलासी, रजोगुणी वृत्ति को लोग ठाठ-बाट शोभा शृंगार को ही श्रेष्ठ जीवन समझते हैं विलास सामग्री के लिए धन अधिक चाहिए वैश्य के पास धन था ही, अब सामाजिक व्यवहार इस प्रकार होने लगा जिससे मनोजन्य प्रेम समाज से उठ गया तथा प्रेम का स्थान धन के आदान प्रदान ने ले लिया। पौराणिकों का प्रत्येक देवता बिना रिश्वत लिए प्रसन्न नहीं होता। विलास प्रसारण के साथ ही अपव्यय बढ़े। अभी भी नये नये अपव्यय बढ़ते ही जा रहे हैं। काम का अन्तिम परिणाम है भिन्नयोनि भोगेच्छा, विलासी व्यक्ति को धन, महल, शृंगारयुक्त कक्ष, पलङ्ग सेज, अन्ततोगत्वा भीने वस्त्रालङ्कारयुक्त कामिनी की विशेष चाह होती है। आर्य्य सभ्यता में काम पितृ ऋण भार उतारने के लिए है। अतः विलासी जीवन से आर्य्य बचें। ये "आनन्द" प्राप्ति में सर्वाधिक बाधक है।

आर्य्य ब्राह्मण

आर्य्य समाज ने ब्राह्मण की अधिकाधिक उपेक्षा की है परन्तु जो कुछ भी जीवन है वह ब्राह्मण के कारण ही है। गुरुदत्त, श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, नित्यानन्द, नारायण, विज्ञानाश्रम, लक्ष्मणानन्द, आत्मानन्द, लेखराम, शिवशङ्कर, रुद्रदत्त, सर्वदानन्द, वेदानन्द, तुलसीराम, राजाराम जयदेव, क्षेमकरण, आत्माराम, भीमसेन, हंसराज, गणपति, रघुनन्दन आदि पुण्यात्माओं ने वैदिक वाङ्मय की श्रीवृद्धि की तथा क्रियात्मक प्रेरक रहे। इनमें से अधिकाँश ऐसे महाशय थे जो प्रतिनिधि सभाओं आदि से बाहर थे। यदि ये सब महाशय सभाओं समाजों में सम्मानित होते तो प्रचारगति अत्यन्त तीव्र होती। आज भी हमारे बीच ब्रह्ममुनि, आनन्द भिक्षु, आनन्द, स्वामी प्रभुआश्रित, हौलस, गङ्गागिरि व्रतानन्द, रामेश्वरानन्द, सत्यानन्द, ब्रह्मदत्त, भगवत्दत्त, विश्वश्रवा, बुद्धदेव धर्मदेव, वैद्यनाथ, रामचन्द्र, गङ्गाप्रसाद द्वयी, युधिष्ठिर, ईश्वरचन्द्र, भगवानदेव, प्रियव्रत, ब्रह्मानन्द, हरिदत्त, विश्वबन्धु, अमरसिंह पथिक, बिहारीलाल, वीरसेन आदि २ महाशय वर्त्तमान हैं इनमें से कितने ऐसे हैं जो सभाओं समाजों के प्रधान आदि हैं? ब्राह्मण के प्रति उपेक्षा वृत्ति आज अब पहले से अधिक हो गयी है। यही कारण है कि आर्य्य ब्राह्मणों ने आर्य्य समाज से उपेक्षा वृत्ति धारण करली है। सब यही कहते हैं आर्य्य समाज एक सम्प्रदाय मात्र रह गया है। आर्य जनता हमें ब्राह्मणों का एजेण्ट न समझ बैठे। हमें आज्ञा दी गई है कि "ब्राह्मण वाणी का हनन मत करो" परन्तु ब्राह्मण वाणी की हम निरन्तर उपेक्षा व अपमान किये जा रहे हैं उसका फल ये है कि हम नष्ट प्रायः हो चुके हैं। वेद की बात माने कौन, वेद को अलमारी में बन्द करदो। पौराणिक वेद न समझ सके, परन्तु आर्य्यसमाज वाले उन से भी गये बीते निकले हम ऋषि दयानन्द को भी न समझ सके। आर्य्य समाज के सङ्गठन में हम एक विशेष परिवर्त्तन करना चाहते हैं। इस परिवर्त्तन में ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च होगा तथा आर्य्यसमाजों व धर्मार्य सभा के मध्य एक धार्मिक सुदृढ़ बन्धन होगा। यदि आर्य्य धार्मिक अनुशासन स्वीकार करें तो प्रचारगति अत्यन्त तीव्र हो सकेगी। विद्वानों की कमी नहीं आर्य्य जनता में उत्साह की कमी भी नहीं। फिर आर्य्य समाज क्यों नहीं पनपा? (क्रमशः)

साहित्य समीक्षा

—"विद्यार्थी"

रणभेरी बज चुकी:—लेखक श्री स्वामी वेद मुनि परिव्राजक। प्रकाशक वैदिक संस्थान शेरकोट जि० विजनौर। पृष्ठ १४, मूल्य २० नये पैसे।

चीनी लुटेरों द्वारा भारत पर आक्रमण किये जाने से भारतवासियों के समक्ष एक समस्या खड़ी हो गई है। इस विकट परिस्थिति में हमारा कर्तव्य क्या है इस ट्रैक्ट में लेखक ने इसी पर प्रकाश डाला है। पुस्तक इतनी ओजस्वी भाषा में लिखी गई है कि एक बार तो मुर्दा नसों में भी रक्त खौल उठेगा प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिये।

भ्रम निवारण:—लेखक और प्रकाशक स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामर्तण्ड। प्राप्ति स्थान—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, रामलीला मैदान नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या ३० मूल्य ३० नये पैसे।

पाखण्ड का विध्वंस करने वाली आर्य समाज में कुछ दिनों से एक पाखण्ड पनप रहा है। ब्रह्मचारी कृष्णदत्त नाम का एक व्यक्ति लेट कर व्याख्यान देता है। आरम्भ में उसके चेलों का कहना है कि वह वेद मन्त्रों का पाठ करता है परन्तु वस्तुतः वे वेद मन्त्र नहीं है। उसके भाषणों में भी बहुत सी सिद्धान्त विरुद्ध और अनर्गल बातें होती हैं फिर भी कुछ व्यक्ति इस पाखण्ड को फैलाने में सहयोग दे रहे हैं। श्री स्वामी जी ने ब्र०-कृष्णदत्त द्वारा सुषुप्ति अवस्था में वैदिक प्रवचन" नामक पुस्तक की आलोचना प्रबल युक्तियों और तर्कों के आधार पर की है। अपनी आलोचना को स्वामी जी ने चार विभागों में विभक्त किया है। पहले भाग में उन्होंने विनय नगर समाज की आलोचना की है। दूसरे भाग में लेखक ने यह दिखलाया है कि पुस्तक में दार्शनिक और वेद विषयक ज्ञान बिलकुल नहीं है। तीसरे भाग में उक्त पुस्तक की विस्तृत समालोचना है और चौथे भाग में श्री राजेन्द्र नाथ जी शास्त्री, जिन्होंने ब्रह्म० कृष्णदत्त का समर्थन किया है, की आलोचना है। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी हैं, पठनीय और मननीय है। इस अत्यन्त उपयोगी, समयोचित पुस्तक के लिये मैं स्वामी जी को हार्दिक बधाई देता हूँ।

Open Secrects:—(अंग्रेजी) लेखक तथा प्रकाशक श्री सी० आर आहूजा। मन्त्री आर्यसमाज उल्हास नगर १. पृष्ठ संख्या ६४ मूल्य १)

आर्य समाज अपने आरम्भ काल से ही पाखण्ड का खण्डन करता रहा है। स्वतन्त्र भारत में धर्म निरपेक्ष राज्य होने के कारण मत मतान्तरों की बाढ़ सी आ गई है। चार व्यक्ति मिले और एक नवीन मत को जन्म दे लेते हैं। इसी प्रकार का एक मत आनन्द पुर साहब है। प्रस्तुत पुस्तक में लेख ने आनन्द पुर साहब के ढोल की पोल प्रकट की है। लेखक की आलोचना पुस्तक के आधार पर ही नहीं है अपितु लेखक स्वयं इनके आश्रम में रहा है और वहां की लीलाओं को अपनी आंखों से देखा है। लेखक ने आनन्द साहब का नग्न चित्र प्रस्तुत कर दिया है। इस उपयोगी पुस्तक को लिखने में श्री आहूजा जी ने कष्ट उठाया है और परिश्रम किया है तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक सत्य के जिज्ञासु को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये यद्यपि पुस्तक अंग्रेजी में है परन्तु भाषा सरल है। छपाई और कागज उत्तम है।

श्री सत्य नारायण व्रत कथा:—लेखक श्री पं० गंगाधर शास्त्री व्याकरणाचार्य। प्रकाशक श्री मान बाबू रघुनन्दन चौधरी, देसरी (जि० मुजफ्फरपुर) प्राप्ति स्थान पं० गंगाधर शास्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, बाकीपुर, पटना ४, पृष्ठ संख्या ४८ मूल्य ६२ नये पैसे।

भारतवर्ष में "सत्यनारायण" कथा का बड़ा प्रचार है। पौराणिक परिवारों में यह कथा प्रायः सुनी जाती हैं। परन्तु कथा सुनने के पश्चात् एक बात खटकती है कि असली कथा कहां गई। इस तथाकथित कथा में तो लीलावती, कलावती और वणिक् की कथा वर्णित है। इन लोगों ने कथा सुनी तो यह फल मिला नहीं सुनी तो यह अनिष्ट हुआ। वह कथा कौन सी थी? वस्तुतः वह कथा प्रश्नोपनिषद् की कथा थी। भाव और भाषा कुछ कठिन होने के कारण लोग उसे भूल गये। श्री पं० गंगाधर जी शास्त्री ने प्रश्नोपनिषद् का अनुवाद सरल अनुष्टुप् छन्दों में किया है। साथ ही श्लोकों का हिन्दी अर्थ भी दे दिया है। इस प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। आशा है आर्य जनता इसे अपनायेगी।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या)५०

श्री सद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

शतकों पर

राष्ट्र के नेताओं व विद्वानों की सम्मत्तियां

राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णनः–They are valuable and I hope they will be read widely.

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगरः—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will become popular and useful.

श्री के० एम० मुंशीः—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जनसाधारण में वेदों के प्रचार के लिये हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार श्रृंखला के नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिये शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थः—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुये हैं। वस्तुत : ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

संसद सदस्य श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्रीः—वेदों के सौ सौ मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने .काशित की हैं मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है।

पं० वासुदेवशरण अग्रवालः—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०:—मन्त्र बहुत अच्छे हैं इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी।

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता है:—प्रत्येक वेद से अलग २ चुने हुए सौ सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय हैं।

दैनिक नवभारत टाइम्स लिखता है:—वेद के अगाध ज्ञान के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द ने पाकेट बुक के इस युग में वेदों से सौ सो मन्त्रों का यह नयनभिराम अल्पमोली संग्रह प्रकाशित करके पथ प्रदर्शन किया है। विषयों का चुनाव जीवन में उपयोगिता के आधार पर हुआ है। छात्रों को पुरस्कार रूप में देने तथा तथा पुस्तकालयों में संग्रह के लिए अत्यन्त उपादेय सामग्री है।

पं० अमरसिंह जी आर्य पथिकः—आपने इन शतकों को इतना सुन्दर छपाया है कि उनकी प्रशंसा न करना पाप प्रतीत होता है। यदि ये सुन्दर शतक हाथों हाथ न निकल जायें तो समझना चाहिये कि लोग अन्धे हो गये हैं।

ये सभी पुस्तकें सार्वजनिक, प्रादेशिक, जिला, तहसील विकास खण्ड, सामाजिक शिक्षा एवंचल पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत की गई है।

आज ही अपना अमूल्य आर्डर भेज कर कृतार्थ करें

गोविन्दरम हसनन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली–६

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
टयूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेटर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	३)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३॥)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥।)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७॥)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२॥)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छापने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3/62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी-बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
प्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

फरवरी	१९६३
माघ	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	७

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

यह चित्र श्री भगवती प्रसाद जी मिश्र सब इन्सपैक्टर पुलिस ने अपने हाथ से बना शिवरात्रि के पावन पर्व पर उपहार स्वरूप आपके लिए भेजा है।

सत्यार्थ प्रकाश—सत्यार्थ के १३ समुल्लास छप चुके हैं। शिवरात्रि तक पूर्ण हो जायेगा। यह सत्यार्थ प्रकाश अब तक छपे सभी संस्करणों में बढ़ चढ़ कर होगा।

अभी पिछले दिनों धर्मार्य सभा के मन्त्री आचार्य श्री पं० विश्वश्रवा जी 'व्यास' एक दिन दुकान पर पधारे थे। जब उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के छपे हुए फार्म देखे तो अत्यन्त प्रसन्न हुए, कहने लगे **"अब तक जितने संस्करण छपे हैं यह संस्करण उन सब से श्रेष्ठ है।"**

आदरणीय पण्डित जी की टिप्पणी से आप अनुमान लगा सकते हैं कि संस्करण कितना उपयोगी

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

शतकों पर

राष्ट्र के नेताओं व विद्वानों की सम्मत्तियां

राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णनः–They are valuable and I hope they will be read widely.

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगरः—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will become popular and useful.

श्री के० एम० मुंशीः—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जनसाधारण में वेदों के प्रचार के लिये हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार श्रृंखला के नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिये शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थः—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुये हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

संसद सदस्य श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्रीः—वेदों के सौ सौ मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने काशित की हैं मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है।

पं० वासुदेवशरण अग्रवालः—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०:—मन्त्र बहुत अच्छे हैं इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी।

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता है:—प्रत्येक वेद से अलग २ चुने हुए सौ सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय हैं।

दैनिक नवभारत टाइम्स लिखता है:—वेद के अगाध ज्ञान के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द ने पाकेट बुक के इस युग में वेदों से सौ सो मन्त्रों का यह नयनभिराम अल्पमोली संग्रह प्रकाशित करके पथ प्रदर्शन किया है। विषयों का चुनाव जीवन में उपयोगिता के आधार पर हुआ है। छात्रों को पुरस्कार रूप में देने तथा तथा पुस्तकालयों में संग्रह के लिए अत्यन्त उपादेय सामग्री है।

पं० अमरसिंह जी आर्य पथिकः—आपने इन शतकों को इतना सुन्दर छपाया है कि उनकी प्रशंसा न करना पाप प्रतीत होता है। यदि ये सुन्दर शतक हाथों हाथ न निकल जायें तो समझना चाहिये कि लोग अन्धे हो गये हैं।

ये सभी पुस्तकें सार्वजनिक, प्रादेशिक, जिला, तहसील विकास खण्ड, सामाजिक शिक्षा एवंचल पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत की गई है।

आज ही अपना अमूल्य आर्डर भेज कर कृतार्थ करें

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली–६

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

महापण्डित श्री भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर द्वारा संशोधित

सत्यार्थ-प्रकाश

का

सर्व शुद्ध संस्करण

[नमूने का एक पृष्ठ पिछली ओर देखें]

१. श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने महर्षि की हस्तलिखित मूल प्रति से मिलाकर इसे शोधा है। पंडित जी के अनुसार अन्य संस्करणों में लगभग १५०० अशुद्धियाँ हैं, जिनका उल्लेख टिप्पणी में कर दिया है।

२. पैराग्राफों पर क्रमसंख्या इसकी दूसरी महान् विशेषता है।

३. हर पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख है।

४. अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची तथा विषय-सूची।

५. बढ़िया सफेद कागज, मोती सी छपाई, मजबूत सुनहरी जिल्द। नमूने का पृष्ठ साथ है।

यद्यपि यह कार्य सभाओं का है परन्तु साहित्य की ओर रुचि न होने के कारण उनका ध्यान इस ओर नहीं जाता। आपके सहयोग और विश्वास पर ही यह महत्वपूर्ण कार्य किया है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अधिक से अधिक प्रतियों का आर्डर देकर सहयोग देंगे। हमने अपने सीमित साधनों से इसे तैयार कर दिया है।

इसी आकार के ८५० से अधिक पृष्ठ संख्या की इस पुस्तक का लागत मात्र मूल्य एक प्रति का १०) रुपये है।

२२ फरवरी को महर्षि दयानन्द सरस्वती की बोधरात्रि (शिवरात्रि) है तथा श्री गोविन्दराम हासानन्द जी की पुण्य तिथि भी। इसी उपलक्ष्य में २८ फरवरी तक यह ग्रन्थ खरीदने पर १०) रु० के स्थान पर ६) रु० में मिलेगा।

गोविन्दराम हासानन्द

वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि जो कोई मुझ को एकादशी का फल अर्पण करे तो फिर भी स्वर्ग को जा सकती हूँ। राजा ने नगर में खोज कराया। कोई एकादशी व्रत करने वाला न[1] मिला। किन्तु एक दिन किसी शूद्र स्त्री पुरुष में लड़ाई हुई[2] थी। क्रोध से स्त्री दिन रात भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी ही[3] थी। उसने कहा कि मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की। अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी। ऐसे राजा के सिपाहियों से कहा। तब तो वे उसको राजा के सामने ले आये। उससे राजा ने कहा कि तू इस विमान को छू। उसने छुआ। तो[4] उसी समय विमान ऊपर को उड़ गया। यह तो बिना जाने एकादशी के व्रत का फल है। जो जान के करे तो उसके फल का क्या पारावार है!!! वाह रे आँख के अन्धे लोगो! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पान की बीड़ी जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भेजना चाहते हैं। सब एकादशी वाले अपना फल देदो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला जायगा तो पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहां भेजेंगे। और हम भी एकादशी किया करेंगे। और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप आपत्काल से बचावेंगे।

[२३१] इन चौबीस एकादशियों के[5] नाम पृथक् २ रक्खे[6] हैं। किसी का "धनदा" किसी का "कामदा" किसी का "पुत्रदा" और किसी का "निर्जला"। बहुत से दरिद्र, बहुत से कामी और बहुत से निर्वंशी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये, परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ। और ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे[7] तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है, व्रत करने वालों को महा दुःख प्राप्त होता है। विशेष कर बङ्गाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ

१. बे, सि, वै—नहीं। २. वै—लुप्त। ३. बे, सि, वै—लुप्त। ४. बे, सि, वै—देखो! व्यर्थ पाठ बदला है। ५. बे, सि, वै—का। ६. बे, सि, वै—रक्खा। ७. बे, सि, वै—पीवे।

टिप्पणियों में आ रहे 'बे' से वेदानन्द जी का संस्करण, 'सि' से सिद्धान्ती जी का संस्करण तथा 'वै' से वैदिक यन्त्रालय

❀ ओ३म् ❀

॥ वयं जयेम ॥

वेद प्रकाश

कुछ करो कुछ बनो

प्रेम करो

'प्रेम' इस ढाई अक्षर के शब्द में विचित्र आकर्षण और अद्भुत जादू है। प्रेम में वह जादू है कि शत्रु भी अपना मित्र बन जाता है। प्रेम से प्रेम उत्पन्न होता है, क्रोध से क्रोध, घृणा से घृणा और द्वेष से द्वेष। यदि आप चाहते हैं कि दूसरे आप से प्रेम करें तो आप भी सब से साथ प्रेम करो।

स्मरण रक्खो—

ईशावस्यमिद ँ सर्वम्। (यजुः० ४०।१)

यह सारा संसार ईश्वर से आच्छादित है, ढका हुआ है। ईश्वर इस में ओत प्रोत है, अतः घृणा, ईर्ष्या, जलन, शत्रुता और दूसरों को अपमानित करने की भावनाओं को अपने हृदय से निकाल दो। सब की सेवा करो। सब का सम्मान और आदर करो। सब के साथ प्रेम करो और सब में ईश्वर के दर्शन करो। आप की आंखों में स्नेह, हृदय में प्यार और वाणी में मिठास हो। प्रेम भी कैसा ? निःस्वार्थ प्रेम—

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।
(अ० ३।३०।१)

एक दूसरे के साथ ऐसा प्रेम करो जैसे गौ अपने नवजात शिशु के साथ करती है। गाय के प्रेम में स्वार्थ की भावना नहीं होती। हम भी ऐसा ही प्रेम करना सीखें।

पापी से भी प्रेम करो। किसी ने कितना सुन्दर कहा है—

Hate the sin but love the sinner.

अर्थात् पापी से घृणा मत करो। हाँ, पाप से बचो।

सार्वभौम प्रेम उत्पन्न करो। प्राणिमात्र से प्रेम करो। वेद के शब्दों में आप की ऐसी भव्य भावना होनी चाहिये—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
(यजुः०३६।१८)

मैं संसार के समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं।

ईसा के शब्दों में—

Love your enemies, bless them that curse you, do good to them that hate you.

अपने शत्रुओं से भी प्यार करो। जो आप को गाली देते हैं उन्हें आशीर्वाद दो, जो आप से घृणा करते हैं उनके साथ भी श्रेष्ठता का बर्ताव करो।

प्राणिमात्र से प्रेम की भावना घर से आरम्भ होती है। पहले अपने माता पिता के साथ प्रेम का व्यवहार करो। अपने भाई बहन बन्धु-बान्धव, पड़ौसी, समाज, देश, और राष्ट्र से प्रेम करो फिर अपने प्रेम की परिधि को बढ़ाते हुए संसार के प्राणिमात्र से प्रेम करो।

अपने देश के लिये यदि अपने प्राणों की बलि भी देनी पड़े तो हंसते हंसते दे दो। भारतीय वीरों के आदर्श को सदा अपने सम्मुख रक्खो। एक भारतीय वीर का अपने देश के प्रति सच्चे प्रेम का एक मार्मिक उदाहरण पढ़िये—

मनीला (बर्मा) में आजाद हिन्द फौज और

अङ्गरेजों में भीषण युद्ध हो रहा था। आजाद हिन्द सेना के सेनापति पहाड़ों की तलहटी में बनी सुरंग में बैठे थे। ऊपर पृथिवी पर गोलाबारी हो रही थी। सहसा एक भारतीय सैनिक जिसका एक हाथ युद्ध में कट गया था दौड़ता हुआ उस सुरंग में आया। जनरल शाहनवाज ने उसे सान्त्वना देने के लिये कुछ शब्द कहे तो वह गर्व के साथ बोला, "जनरल! शोक या खेद की कोई बात नहीं है। मैंने अपना यह शरीर और जीवन भारत माता के अर्पण किया था। उसमें से उसने एक हाथ स्वीकार कर लिया है, यह तो मेरा पुरस्कार है।" देश प्रेम का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है।

जिस व्यक्ति में दूसरों के लिये प्रेम नहीं, सहानुभूति नहीं, जिसके हृदय में प्रेम की हिलोरें नहीं उठती, जो प्रेम का पुजारी नहीं वह जीवित हुआ तो क्या है वह तो मृतक के समान है। कबीर जी के शब्दों में—

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की सांस लेत बिन प्रान॥

प्रेम से न केवल इस लोक में सफलता मिलती है अपितु यह परलोक सुधारने में भी सहायक होता है। इस विषय में पोप ने क्या सुन्दर कहा है—

Love is ever a golden ladder
Whereby the heart ascends to Heaven
(Pope)

प्रेम वह स्वर्गीय सीढ़ी है जिसके द्वारा मनुष्य स्वर्ग में आरोहण करता है। जिस प्रकार दो ईंटों के मध्य में चूना अथवा गारा रखने से उनमें दृढ़ता आ जाती है इसी प्रकार दो व्यक्तियों में स्थिरता और दृढ़ता उत्पन्न करने के लिये प्रेम रूपी गारे की आवश्यकता है।

प्रेम वह अग्नि है जिस में पाप और ताप जल कर भस्म हो जाते हैं। प्रेम की अग्नि में अपने मन वचन और कर्म को पवित्र करो। प्रेम के पवित्र सागर में डुबकियां लगा कर स्नान करो। प्रेम के माधुर्य का आनन्द अनुभव करो और प्रेम की प्रतिमा बन जाओ। मिल कर एक दूसरे की रक्षा करो। लड़ाई झगड़ा आपके निकट न आये। कभी परस्पर द्वेष मत करो, एक दूसरे से प्रेम करो।

प्रेम में महान् शक्ति है। यह रोगों को दूर कर आयु को बढ़ाता है और आनन्द धन की प्राप्ति कराता है। यदि आप अपने जीवन को सुखमय और आनन्दमय बनाना चाहते हैं तो अपने जीवन में प्रेम का महासागर भरो। वृक्षों को देखो। अपने शत्रु को जो उसे कुल्हाड़ी से काटता है, उन्हें भी शीतल छाया प्रदान करते हैं। यही है वास्तविक प्रेम, मनुष्य का महान् धर्म। प्रेम करो और प्रेममय हो जाओ।

——

विनम्र बनो

वेद का आदेश है—

पर्णाल्लघीयसी भव। अथर्व (१०।१।२९)

ऐ मानव! तू पर्ण=पत्ते से भी हल्का बन अर्थात् नम्र बन।

जो नम्र बनता है उसके पास सद्गुण और सम्पत्ति स्वयं खिंची चली आती है। विष्णु पुराण (१।११।२४) में कहा है—

सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायन्ति सम्पदः॥

हे मनुष्य! तू सुशील, पुण्यात्मा, प्रेमी और समस्त प्राणियों का हितैषी बन क्योंकि जैसे नीची भूमि की ओर लुढ़कता हुआ जल अपने आप ही पात्र में आ जाता है वैसे ही सत्पात्र=विनम्र मनुष्य के पास समस्त सम्मत्तियां स्वयं आ जाती हैं।

बहुत से व्यक्ति तनिक सी विद्या पाकर अभिमान में भर जाते हैं। विद्या प्राप्त करके ऐंठो और अकड़ो मत अपितु सरल और विनम्र बनो। विद्या से अभिमान नहीं नम्रता आनी चाहिये। किसी नीतिकार ने कितना सुन्दर कहा है—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मस्ततः सुखम्॥

विद्या से विनम्रता आती है विनम्रता से पात्रता =योग्यता प्राप्त होती है। योग्यता से धन मिलता

है, धन से धर्म कार्यों का अनुष्ठान होता है और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है। यदि आप भी सुख, शान्ति और आनन्द चाहते हैं तो नम्र बनो।

युवको! जब आप के हृदय में अभिमान की भावनाएं आने लगें तो महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी और न्यूटन का ध्यान कर लिया करो।

महर्षि दयानन्द दानापुर में विराजमान थे। एक दिन एक व्यक्ति ने महाराज से कहा, "स्वामी जी! आप तो ऋषि हैं। स्वामी जी ने उत्तर दिया, "ऋषियों के अभाव में आप मुझे चाहे जो कह लें। परन्तु यदि मैं गौतम कपिल कणादादि के समय में हुआ होता तो मेरी गणना साधारण विद्वानों में भी कठिनता से होती।" वेद के अद्भुत विद्वान् की कैसी महान् विनम्रता है।

न्यूटन का नाम आप ने अवश्य सुना होगा। प्रकृति का गम्भीर अध्ययन करके उन्होंने गुरुत्वाकर्षण* (The law of gravitation) आदि सिद्धान्तों का अविष्कार किया था। न्यूटन की विद्या और बुद्धि पर सारे इंगलैंड को गर्व था परन्तु स्वयं न्यूटन को अपनी विद्या-बुद्धि पर न कोई गर्व था और न ही किसी प्रकार का अहंकार। एक दिन एक महिला न्यूटन से मिली और उनकी विद्या, बुद्धि और योग्यता की सराहना और प्रशंसा करने लगी। अपनी प्रशंसा सुन कर न्यूटन फूल कर कुप्पा नहीं हुए। वे बोले—

Alas! I am only like a child picking up pebbles on the shore of the giant ocean of truth."

अर्थात् मैं तो उस बच्चे के समान हूँ जो सत्य के विशाल समुद्र के किनारे बैठा हुआ केवल कंकरों को चुनता रहा हूँ।

एक बार महात्मा गांधी जी एक स्थान पर लैक्चर देने गये। वे अपने सादा वेश में थे। लोगों ने उन्हें सब्जी काटने और पानी लाने की आज्ञा दी। उन्होंने इन कार्यों को प्रसन्नता पूर्वक किया।

श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर एक युवक के कहने पर उसके ट्रंक को उठा कर चल दिये। इसी प्रकार यदि हम अन्य महापुरुषों के जीवनों को देखें तो हमें पता लगेगा कि महापुरुष बड़े नम्र होते हैं। उनके जीवनों से शिक्षा लेकर हम भी नम्र बनें।

देखो! समुद्र में अनेक नदियां आकर मिलती हैं परन्तु समुद्र शान्त रहता है, उसमें बाढ़ नहीं आती, आप भी गम्भीर और नम्र बनो। विद्या धन, वैभव, उच्च पदवी, मान और सम्मान पाकर फूल मत जाओ, अपनी मर्यादा से बाहर मत हो जाओ।

जो नम्र है उसे न किसी से भय होता है और न पतन की चिन्ता। जो नम्र है उसका सर्वत्र आदर होता है। एक कवि ने क्या सुन्दर कहा है—

सबतें लघुताई भली, लघुता से सब होय।
जस द्वितीया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥

जो अभिमानी होता है उसका सर्वत्र तिरस्कार होता है। किसी ने फुटबाल से पूछा, "क्या कारण है तुम जिसके चरणों में जाती हो वही तुम्हें ठोकर लगाता है।" फुटबाल ने कहा, "मेरे पेट में अभिमान की हवा भरी हुई है, इसीलिये लोग मुझे ठोकर लगाते हैं।" यदि आप चाहते हैं कि लोग आप का आदर और सम्मान करें तो विनम्र बनो।

नम्रता मानव जीवन का भूषण है। नम्रता से मनुष्य के गुण सुवासित और सुशोभित हो उठते हैं। नम्रता विद्वान् की विद्वत्ता को, धनवान् के धन को, बलवान् के बल को और कुरूप के रूप को चार चांद लगा देती है। सच्चा बड़प्पन और सभ्यता भी नम्रता में ही है।

एक बार फ्रांस के राजा हेनरी चतुर्थ अपने अधिकारियों के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग में एक भिक्षुक ने अपनी टोपी उतार कर और मस्तक झुका कर अभिवादन किया। महाराज ने भी

---

*महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इस सिद्धान्त का उल्लेख न्यूटन के जन्म से भी सहस्रों वर्ष पूर्व कर दिया था अतः भारतीयों के लिये यह कोई नई बात नहीं।

इसी प्रकार उत्तर दिया। यह देख एक अधिकारी ने पूछा, "महाराज ! क्या एक भिखारी को इस प्रकार अभिवादन करना उचित है ?" हेनरी महोदय ने कहा, "सभ्यता मिथ्या अभिमान में नहीं नम्रता में है। मुझे एक भिक्षु जितना नम्र तो होना ही चाहिये।" हम भी इस घटना से शिक्षा लें। हम किसी को छोटा न समझें। जब दूसरों से मिलें तो दोनों हाथ उठा कर नमस्ते करें।

उत्तानहस्ता नमसोप सद्य (यजु० १८।७५)

यदि संसार में उन्नति करना चाहते हो, मान और सम्मान चाहते हो तो विनम्र बनो।

——

समय का सदुपयोग करो

समय की शक्ति अद्भुत और महान् है। आँग्ल भाषा में एक कहावत है "Time is money." अर्थात् समय धन है। युवको ! आप के जीवन के एक एक क्षण में कुबेर की सम्पत्ति छिपी है अतः अपने समय का उपयोग बड़ी सावधानी से करो।

गया हुआ धन, खोया हुआ स्वास्थ्य, भूली हुई विद्या, छिना हुआ साम्राज्य फिर आ सकता है परन्तु गया हुआ समय कदापि नहीं लौट सकता। इसी तथ्य को दर्शाने के लिये एक चित्रकार ने समय का कार्टून बनाया। कार्टून में चित्रकार ने एक व्यक्ति का चित्र बनाया था। जिस का चेहरा आगे की ओर बालों से ढका था और पीछे की गंजा था उसके पैरों में पङ्ख लगे हुये थे।

लोगों ने पूछा, 'यह किस का चित्र है ?"

चित्रकार ने कहा, "समय का।"

"इसका मुंह क्यों ढका हुआ है ?" लोगों ने ने पुनः प्रश्न किया।

"क्योंकि जब यह मनुष्यों के सामने आता है तो वे उसे पहिचान नहीं सकते।"

"यह पीछे से गंजा क्यों है ?"

"समय के आते ही उसके बाल सामने से पकड़ लो, यदि चूके तो फिर करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी एक क्षण की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।"

"इसके पैरों में पङ्ख क्यों हैं ?"

"इसलिये कि यह बहुत शीघ्र चला जाता है और जब चला जाता है तो फिर उसको देवता भी नहीं पकड़ सकते।"

कुछ व्यक्ति सोचते हैं अभी जल्दी क्या है कर लेंगे। परन्तु यह भयंकर भूल है। यदि उठती हुई जवानी में कुछ न किया तो आगे क्या हो सकेगा ? अभी से, इसी क्षण से अपने समय का सदुपयोग आरम्भ कर दीजिये। देखिये तो सही एक कवि आप को कैसी सुन्दर चेतावनी दे रहा है—

खेल ही में बाल जो दिन काटता वह है बुरा।
शोक ! अपने हाथ वह है मारता उर में छुरा॥
बालपन से लाभ पहुँचाना उचित है लोक को।
क्या प्रकट करता नहीं बालेन्दु निज आलोक को॥

जीवन बड़ा ही अल्प है और कार्य महान् है। अतः आज के कार्य को कल पर मत छोड़ो वेद कहता है—

कालो अश्वो वहति। (अथर्व० १९।५३।१)

समय रूपी घोड़ा भागा जा रहा है।

अपने समय को व्यर्थ न जाने दीजिये। तनिक सी देर होने से गाड़ी छूट सकती है। जरा सी देर होने से आप परीक्षा में सम्मलित होने से रह सकते है। थोड़ी सी देर होने से साम्राज्य नष्ट हो सकते हैं। भविष्य की आशाओ ! यदि तुम मूर्खों की भांति अपने समय को व्यर्थ खोते रहोगे, अपने जीवन के अमूल्य क्षण आलस्य, प्रमाद, गपशप और तुच्छ मनोरंजन में खोते रहोगे तो स्मरण रक्खो तुम्हारी गिनती कभी भी महापुरुषों में न हो सकेगी और तुम कठिनाइयों में फंस कर दर दर की ठोकरें खाते रहोगे।

महावीर नैपोलियन के आदर्श को सदा अपने सामने रखिये। वह अपनी घड़ी का अध्ययन इसी प्रकार किया करता था जिस प्रकार युद्ध के नकशे का। सेना की तो बात ही क्या वह अपने सेना

नायकों का भी कड़ा निरीक्षण किया करता था। एक बार उसका मन्त्री दस मिनट देर से आया। नैपोलियन के कारण पूछने पर उसने घड़ी दिखाकर कहा, "मेरी घड़ी दस मिनट लेट है।" तब नैपोलियन ने कहा' "Either you change your watch or I shall change you." अर्थात् या तो आप अपनी घड़ी बदल लें नहीं तो मैं तुम्हें बदल दूंगा।

प्रिय युवको ! आप अपनी कलाई पर घड़ी बाँधते हैं परन्तु शोभा के अतिरिक्त क्या आप इस का वास्तविक उपयोग लेते हैं। टिक टिक करती हुई घड़ी आपको सन्देश दे रही है, आपको सचेत कर रही है कि उद्यम और पुरुषार्थ ही जीवन है, निरन्तर कार्य में लगे रहो, एक क्षण को भी व्यर्थ मत जाने दो। परन्तु क्या आप उसकी प्रेरणा को सुनते हैं। नहीं बिल्कुल नहीं। आपकी कलाई में घड़ी होते हुए भी आप स्कूल और कालिज में देर से पहुंचते हैं, सभा और समाजों में ठीक समय पर नहीं जा पाते। क्या आप के पढ़ने-लिखने, खाने-पीने, सोने-जागने का कोई समय निश्चित है यदि नहीं तो आपका घड़ी बांधना व्यर्थ है। घड़ी को अंग्रेजी में Watch कहते हैं। इसका प्रत्येक अक्षर एक दिव्य सन्देश दे रहा है। वे सन्देश निम्न हैं—

१. Watch your words. अपने वचनों की, दूसरों के साथ की हुई प्रतिज्ञाओं की ओर ध्यान दीजिए। आप दूसरों के साथ जो प्रतिज्ञा करते हैं उनका पालन कीजिए।

२. Watch your actions. अपने विचारों पर दृष्टि डालिए। क्या आप अपने कर्तव्यों को निभा रहे हैं ?

३. Watch your thoughts. अपने विचारों पर नियन्त्रण रखिये। अपने विचारों को शुद्ध और पवित्र बनाइये। दूसरों के प्रति कल्याण की भावना रखिये।

४. Watch you character. प्रतिदिन अपने चरित्र का अवलोकन कीजिये और अपने चरित्र को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न कीजिये।

५. Watch your heart. अपने हृदय में झांकिये। देखिये आपके हृदय में क्षुद्रता और संकीर्णता तो नहीं है। अपने हृदय को विशाल बनाइये।

यदि आपके जीवन में उपर्युक्त गुण नहीं तो आपका घड़ी बांधना व्यर्थ है। समय के मूल्य को समझिये। उसके एक एक क्षण का सदुपयोग कीजिये। अभी से लंगर लंगोटे कस लीजिए और अपने जीवन निर्माण की योजना आरम्भ कर दीजिये।

——

आगे बढ़ो

वेद मानवमात्र को प्रगतिशील बनाता है। वेद चेतावनी देते हुए कहता है—

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्यो पड्बीशमव-मुञ्चमानः। (अथर्व० ८।१।४)

ऐ पुरुष ! अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठ, नीचे मत गिर। यदि मृत्यु भी तेरे मार्ग में आये तो उसकी बेड़ियों को भी काट डाल।

आगे चल कर वेद पुनः आदेश देता है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। (अ० ८।१।६)

हे मनुष्यो ! ऊपर उठो, आगे बढ़ो, उन्नति करो, नीचे मत गिरो, पतन की ओर मत जाओ।

अपनी असफलताओं के कारण निराश और हताश मत होओ। असफलता तो सफलता की सीढ़ी है। यदि पहली बार सफलता नहीं मिलती तो पुनः उद्योग कीजिये। निरन्तर उद्योग करते रहो सफलता मिलेगी अवश्य।

अभी पिछले दिनों समाचार पत्रों में एक घटना प्रकाशित हुई थी। एक दुकानदार प्रति वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में बैठता था परन्तु फेल हो जाता था। एक बार, दो बार, तीन बार, नहीं वह लगातार १७ बार असफल हुआ परन्तु उसने अपना साहस न छोड़ा। १८ वीं बार वह परीक्षा में उतीर्ण हो गया। आप भी असफलताओं से घबराओ मत।

किसी कवि ने क्या खूब कहा है—

जब तक न पूरा कार्य हो, उत्साह से करते रहो।
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो !!

धैर्य रक्खो। साहसी बनो। यदि मार्ग पर चलते हुय विघ्न बाधा और संकट आते हैं तो धैर्य-पूर्वक उन्हें सहन कीजिये। यदि आप धैर्यरूपी गुण को अपने जीवन में ढाल लें तो फिर संकट संकट नहीं रहेंगे। Even this will pass away. यह स्थिति भी नहीं रहेगी। यह आपके जीवन का आदर्श वाक्य होना चाहिये। फिर संसार की कोई शक्ति तुम्हें रोक नहीं सकेगी। एक कवि के शब्दों में—

बाधायें कब बांध सकी हैं आगे बढ़ने वालों को।
विपदाएं कब रोक सकी हैं मर कर जीने वालों को।।

वीरता, धीरता और गम्भीरता के साथ अपने पथ पर बढ़े चलो। जब प्रभु आपकी पीठ पर हैं फिर निराशा क्यों ?

पवित्रात्माओ ! यदि आपत्तियां और विपत्तियाँ न हों तो हम अपना जीवन निर्माण कैसे कर सकते हैं। इमरसन ने एक स्थान पर लिखा है—"The calamities are our friends" अर्थात् आपत्तियां हमारी मित्र हैं। हमारे जीवन विकास के लिये ये आपत्तियां और विघ्न आवश्यक हैं।

नौजवानो ! हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने से कोई कार्य नहीं होगा, चिन्ता करने या भाग्य को कोसने से भी कुछ नहीं बनेगा। स्मरण रक्खो ! भाग्य कोई वस्तु नहीं है। आप अपने पुरुषार्थ और प्रयत्न से बुरी से बुरी दशा को बदल कर अपने अनुकूल बना सकते हो। "जैसा भाग्य में लिखा होगा वैसा हो जायेगा" इस प्रकार रोने धोने और चिल्लाने से कोई लाभ नहीं। अपने भाग्य के निर्माता और विधाता तो आप स्वयं है। यदि आप ठीक दशा में उद्योग करें तो आपके ऊपर ईश्वर की कृपाओं की वृष्टि निश्चित रूप से होगी। निराशा को छोड़ कर आगे बढ़े चलो।

५,००० वर्ष से आलस्य और प्रमाद रूपी निद्रा में सोने वाले भारत माता के नौनिहालो ! बहुत सो चुके, अब तो करवट बदलो। देखो आपके देश की क्या अवस्था हो गई। आज अत्याचार, अनाचार, और पापाचार बढ़ रहा है। माँ, बहनों का सतीत्व लूटा जा रहा है। देश का नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक पतन हो रहा है। अन्यायी और अत्याचारी तुम्हें और तुम्हारे देश को निगल जाने के लिये तैयार बैठे हैं। अब उठो ! तुम्हारी भारत माँ तुम्हारे सिरहाने बैठी तुम्हें जगा रही है—

आर्य वीरो अब जागृत होकर,
आगे बढ़ो मशाल लिये।
अत्याचारों से टक्कर लेने
बलि होने की शान लिये।।

हां, हां, वीर बहादुरो ! बढ़े चलो—

प्रेता जयता नर। (ऋ० १०।१०३।१३)

आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।

सच्चे कर्मवीर विघ्न बाधाओं से घबराते नहीं। कविवर अयोध्यासिंह जी के शब्दों में—

देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग्य के दुःख भोग पछताते नहीं।।

युवको ! तुम शक्ति के हो और शक्ति तुम्हारी है। अज्ञान, आलस्य और दुर्बलता मनुष्य के तीन महान् शत्रु हैं इन्हें आज ही जड़ से उखाड़ कर फेंक दो और आगे बढ़ो।

युवको ! पृथिवी जल रही है। मानवता का ह्रास हो रहा है। दानवता खुल कर ताण्डव नृत्य कर रही है। धर्म को समाप्त किया जा रहा है, अधर्म बढ़ रहा है। मद्य, मांस आदि का सेवन बढ़ता जा रहा है। भौतिकवाद की चकाचौंद बढ़ रही है। दीन दुःखियों को त्रास दिया जा रहा है। सत्य का गला घोंटा जा रहा है। यह सब कुछ हो रहा है और आप सो रहे हैं। उठो, खड़े हो जाओ ! मानवता का कल्याण करने के लिये अपने हाथों में वेद रूपी अमृत कलश लेकर लोगों के तापों को शान्त करते हुए निरन्तर आगे ही आगे बढ़ो।

—❀❀❀—

दयालु बनो

दया का अर्थ है—किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार क्लेश न देना। शरीर, वाणी मन अथवा किसी प्रकार से किसी को कष्ट पहुंचाने से दया समाप्त हो जाती है। किसी भी प्राणी को कष्ट मत दो। तुलसीदास जी ने कहा है –

परहित सरस धर्म नहिं भाई।
नहि पर पीड़ा सम अधमाई॥

दूसरों के साथ दयालुता के व्यवहार से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है और दूसरों को पीड़ा देने के समान कोई पाप नहीं है।

दया मनुष्य जीवन की सुगन्ध है। अपने जीवन को इस सुगन्धि से सुवासित कर लो। दीन, दुःखी, निर्बलों और दुर्बलों की पुकार सुनकर अपने कान बन्द मत करो। दूसरों को कष्ट और क्लेश में देख कर कठोर हृदय न बन जाओ। जब अनाथ और अपाहिज तुम से सहायता मांगे तो अपना मुंह मत मोड़ लो अपितु तन मन और धन जिस प्रकार से भी हो सके इनकी सेवा करो। मार्ग भूले हुए लोगों को सम्मार्ग पर चलाओ। असहाय एवं निर्धन रोगियों की सहायता करो।

डा० दुर्गाचरण नाग बड़े ही दयालु थे। मुहल्ले में कौन रोगी है, किस के पास भोजन नहीं है, कौन दुःखी है, किसे सहायता की आवश्यकता है—वे सदा इसी खोज में रहते थे और अपनी शक्ति और सामर्थ्यानुसार सेवा भी करते थे। गरीबों से फीस की तो बात ही क्या दवा के दाम भी न लेते थे। कभी-कभी तो पथ्य का खर्च भी अपने पास से दे देते थे। यदि मार्ग में कोई निराश्रय रोगी मिल जाता तो उसे अपने घर लाकर उसकी चिकित्सा करते।

एक दिन उन्होंने एक रोगी के घर जाकर देखा कि वह पृथिवी पर पड़ा है। उसे भारी कष्ट हो रहा है। नाग महाशय ने उसी समय घर से अपने सोने की चौकी मंगा कर रोगी को उस पर लिटा दिया। इस से रोगी को बहुत आराम मिला। रोगी को सुखी देख नाग महाशय का हृदय प्रफुल्लित हो गया। 'पर दुःख दुखी, सुखी पर सुख ते''—यह उनके जीवन का व्रत था।

एक और घटना पढ़िये। एक छोटे बच्चे को हैज़ा हो गया। नाग महाशय दिन भर बच्चे की चिकित्सा में लगे रहे परन्तु बच्चा बच न सका। घर वालों ने सोचा था आज दिन भर की बहुत बड़ी फीस लेकर डाक्टर साहब घर लौटेंगे। परन्तु शाम को जब वे लौटे तो खाली थे। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। घर आकर उन्होंने कहा, "बेचारे गृहस्थ के एक ही बच्चा था। किसी प्रकार बच नहीं सका। उसका घर सूना हो गया।' उस रात्रि को उन्होंने भोजन तो दूर जल भी ग्रहण नहीं किया।

युवको! आप में से न जाने कितने डाक्टर बनेंगे यदि आप डाक्टर बने तो महाशय नाग के जीवन को समक्ष रखते हुए आप भी दयालु बनें।

दूसरों को दुःख में देखकर द्रवित हो जाओ। दूसरों को दुःख में देखकर जनकी सहायता करो।

अमेरिका के राष्ट्र पति श्री अब्राहमलिंकन अपने लोकोत्तर गुणों के कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हुए हैं। एक दिन वे सभा में जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक जंगली सुअर को कीचड़ में फंसे देखा। देख कर भी वे रुके नहीं आगे चले गये। परन्तु थोड़ी दूर जाने के पश्चात् वे पुनः लौटे और उस सूअर को कीचड़ से बाहर निकाला। सभा का समय हो रहा था अतः वे उन्हीं कपड़ों से सभा में पहुंचे। लोगों ने उनके कपड़ों के खराब होने का कारण पूछा तो उन्होंने सारी घटना बता दी। सभा में उपस्थित सभी सभ्य उनकी दयालुता की प्रशंसा करने लगे तो अब्राहीम महोदय ने कहा, "मैंने किसी पर कोई उपकार नहीं किया है, उस सुअर को कीचड़ में फंसा देखकर मेरे हृदय में एक वेदना हुई थी उसे कीचड़ से निकल कर मैंने अपनी टीस को दूर किया है।

महर्षि दयानन्द कितने दयालु थे। जब उनके विष देने वाले को पकड़ कर उनके सामने लाया

गया तो उन्होंने कहा, "इसे छोड़ दो, मैं संसार को कैद कराने नहीं आया अपितु मुक्त कराने आया हूँ।"

जब ईसा को शूली पर चढ़ाया गया तो उन्होंने अपने शत्रुओं के लिये प्रार्थना की, प्रभो ! ये लोग अज्ञानवश ऐसा कर रहे हैं, इन्हें प्रकाश दो।"

प्रिय कुमारो ! महापुरुषों के जीवन आपके सामने हैं। इन्हें पढ़िये और इनसे प्रेरणा लेकर आप दयालु बनिये।

सब के साथ दयालुता का व्यवहार करो। क्रोध ईर्ष्या, द्वेष आदि समस्त बुराइयां निरन्तर दयालुता के व्यवहार से समाप्त हो जाती हैं। भगवान बुद्ध आज भी हमारे हृदयों में एक स्थान बनाये हुए हैं। कभी सोचा किस लिये ? इसलिये कि वे अत्यन्त दयालु थे। दयालुता के व्यवहार से आप में भी अधिक, शक्ति, अधिक प्रसन्नता और अधिक सन्तोष प्राप्त होगा। मरते समय भी हृदय शुद्ध और पवित्र होगा। इस प्रकार मृत्यु के समय भी आप के मुख मण्डलों पर हंसी और प्रसन्नता होगी।

इर्विग ने एक स्थान पर लिखा है—

A kind heart is a fountain of goldness, making everything in its vicinity freshen into smiles.

दयालु हृदय प्रसन्नता का फव्वारा है जो कि अपने पास की प्रत्येक वस्तु को मुस्कानों से भर कर ताजा बना देता है।

दयालु बनो क्योंकि गेटे के शब्दों में—

"दयालुता वह सोने की जंजीर है जिस के द्वारा समाज परस्पर बंधा है।"

——

सत्य बोलो

आर्य समाज के नियम बनाते हुए महर्षि दयानन्द ने चौथे नियम में लिखा—

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।"

सत्य की महिमा महान् है। महाभारत में कहा है—

सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्।

सत्य स्वर्ग का सीढ़ी है।

सत्य क्या है ? सत्य का अर्थ है यथार्थ ज्ञान। जैसा देखा, सुना या अनुभव किया हो उसे वैसा ही कहने का नाम सत्य है। ऋषि दयानन्द के शब्दों में "जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है।"

सत्यवादी बनो क्योंकि सत्यवादी की सभी प्रशंसा करते हैं सभी उसका विश्वास करते है, वह आदर और सम्मान का पात्र बन जाता है। चाहे कैसा ही संकट उपस्थित हो जाये, कितनी ही हानि हो जाये परन्तु असत्य कभी मत बोलो।

चारुदत्त ब्राह्मण के आदर्श को सामने रक्खो। लोग उसके ऊपर विश्वास करके अपनी धरोहर उसके पास रख जाया करते थे। एक बार कोई उसके पास अपने कुछ रत्न रख गया। दैवयोग से ब्राह्मण के घर चोरी हो गई और धरोहर के रत्न भी चोरी में चले गये। रत्नों के जाने का चारुदत्त को बड़ा दुःख हुआ। एक मित्र को पता लगा तो उसने पूछा, "क्या कोई साक्षी=गवाह था ?" चारुदत्त ने कहा "साक्षी तो कोई नहीं था।" मित्र बोला, "तब तो कुछ भी बात नहीं कह देना मेरे पास रक्खे ही नहीं।" उस समय चारुदत्त ने जो उत्तर दिया वह प्रत्येक व्यक्ति को आदर्श वाक्य के रूप में सदा अपने सम्मुख रक्खना चाहिए। चारुदत्त ने कहा था—

भैक्ष्यणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यास प्रतिक्रियाम्।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभृंशकारणम्॥
(मृच्छकटिकम् ३।२६)

भिक्षा के द्वारा भी धरोहर योग्य धन का उपार्जन कर मैं उसे लौटा दूंगा किन्तु चरित्र को कलंकित करने वाले झूठ का उपयोग नहीं करूंगा।

इसके विपरीत आज तो बात बात पर झूठ बोला जाता है। आज तो अवस्था यह है—

एक सैनिक छुटी लेने के लिए अपने अधिकारी के पास पहुंचा और कहा, "मेरी धर्मपत्नी बीमार है घर से सूचना आई है कि मैं छुट्टा लेकर पहुंच जाऊं।" अधिकारी बोला, "मैं तुम्हारे घर पत्र डाल कर पूछ लेता हूं तुम सात दिन पश्चात् मेरे पास आना।" जब यह सैनिक सात दिन पश्चात् पुनः अपने अधिकारी के पास पहुँचा तो उसने बताया, "मैंने तुम्हारे घर पत्र डाला था। वहाँ से उत्तर आया है कि वह बिल्कुल ठीक है, अतः तुम्हें छुट्टी नहीं मिलेगी।" यह सुन कर सैनिक बाहर आया तो उसकी हंसी फूट पड़ी। अधिकारी ने उसे बुलाकर उसकी हंसी का कारण पूछा तो उसने कहा, "मैं यह सोच कर हंसा था कि हम में से बड़ा झूठा कौन सा है? मेरा तो अभी विवाह भी नहीं हुआ फिर आपके पास चिट्ठी कहां से आ गई।"

ऐसा अनर्गल असत्य भाषण मत करो। वेद के शब्दों में आपकी यह भावना होनी चाहिए—

वाचः सत्यमशीय। (यजु० ३९।४)

मैं अपनी वाणी में सत्य को प्राप्त करूं।

सूर्य चन्द्रमा और अग्निरूप दीपक केवल बाह्य अन्धकार को दूर कर सकते हैं परन्तु सत्य वह दिव्य दीपक है जो आन्तरिक तम, अविद्या और अन्धकार को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इसीलिए विद्वानों ने सत्य को श्रेष्ठ दीपक कहा है। वेद में कहा है—

ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति।
(ऋ० ३।६।१०)

सत्य का आचरण पापों को नष्ट कर देता है।

पाठकगण! मनुष्य के लिए सत्य की रक्षा से बढ़ कर और कोई धर्म नहीं है। जो असत्य भाषण करता है उसके अग्नि होत्र, तप, स्वाध्याय आदि सारे कर्म निष्फल हो जाते हैं। बुद्धिमान् पुरुषों ने संसार सागर को तरने के लिए सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाया है। जब आप सत्यपथ से डगमगाने लगें और प्रलोभन आपको सताने लगें तो सत्यवादी हरिश्चन्द्र का स्मरण कर लिया करो उनके जीवन को अपने समक्ष रक्खो। कितने संकट सामने आये। राज्य गया, परिवार से पृथक् हुए डोम के यहाँ बिकना पड़ा, पुत्र भी चला गया परन्तु वे सत्य से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

संसार में जो भी सुख सामग्री है वह सत्य से ही प्राप्त होती है। सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही अग्नि जलती है, सत्य से ही वायु चलती है। सत्य से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः सत्य को कभी न छोड़ना चाहिए।

सत्य बोलिये परन्तु आप के सत्य में भी माधुर्य हो। महर्षि मनु के शब्दों में—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
(मनु० ४।१३८)

सत्य बोलो, प्रिय भाषा में बोलो, सत्य को कटु भाषा में मत बोलो।

यह शरीर आत्मा का मन्दिर और परमात्मा का निवास स्थल है अतः इसे गन्दा मत करो। असत्य भाषण से यह मन्दिर अपवित्र हो जाता है। आपके मुख से भूल कर भी असत्य वचन न निकले। यदि असत्य निकल जाये तो उसके लिए प्रायश्चित करो, पुनः असत्य न बोलने का व्रत लो।

सरलता को अपना रथ और सत्य को अपना शस्त्र बना कर कार्य क्षेत्र में कूद पड़ो। आप जहां भी, जिस क्षेत्र में भी जायेंगे आपका स्वागत होगा और सफलता आपके गले में विजय माला पहनायेगी। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' सत्य की ही विजय होती है असत्य की नहीं अतः सत्य बोलो।

——

सहनशील बनो

दुःख और सुख, मान तथा अपमान, हानि और लाभ एवं स्तुति और निन्दा में जो सम रहता है, दुःख और संकटों में भी जो हंसता और मुस्कराता रहता है—ऐसे व्यक्ति को सहनशील कहते हैं।

"सहनशीलता क्या है?" किसी ने मंसूर से पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया, "हाथ और पैर काट कर

शरीर को सूली पर लटका दिया जाये फिर भी जिसके मुख से उफ तक न निकले उसे सहनशीलता कहते हैं।"

आपत्तियों और संकटों को ईश्वर का वरदान और आशीर्वाद समझो। अपने कर्तव्य पथ पर हंसते और मुस्कराते हुए चलो। इसी में गौरव है। इसी में आन और शान, मान और मर्यादा है। इसी में वीरता, धीरता और सहनशीलता है। संकटों से घबराओ मत, रोओ और धोओ मत। यदि आप रोकर चले तो चलना क्या हुआ। रोने से मार्ग सरल नहीं हो जायेगा। अतः सावधान! मर्यादा पुरुषोत्तम राम की भांति, योगेश्वर कृष्ण और महर्षि दयानन्द की भांति, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरु के समान, सुभाष चन्द्र बोस और वल्लभ भाई पटेल के समान, भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद के पदचिन्हों पर चलते हुए कष्टों को सहन करने का स्वभाव बनाओ।

भगवान् राम के जीवन में कितनी आपत्तियां और विपत्तियां आईं। राज्याभिषेक के स्थान पर उन्हें वन में जाना पड़ा परन्तु फिर भी उनके चेहरे पर विषाद और शोक की रेखा तक नहीं थी। उनकी उस अवस्था का वर्णन वसिष्ठ जी के शब्दों में पढ़िये—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तय स्वल्पोऽप्याकार विभ्रमः॥

राज्याभिषेक के लिये बुलाए हुए और वन के लिये विदा किये हुए श्रीराम के मुख के आकार में मैंने कुछ भी अन्तर नहीं देखा।

महर्षि दयानन्द के ऊपर ईंट और पत्थर फैंके गये। उन्हें हलाहल विष दिया गया। उन्हें नाना प्रकार से अपमानित किया गया। उन पर लांछन लगाये गये। उन्हें विदेशियों का एजेण्ट बताया गया परन्तु वे सब कुछ सहते रहे और मानवमात्र का कल्याण ही करते रहे।

श्रीकृष्ण के ऊपर कौन से संकट नहीं आये। उन्होंने कंस के अत्याचार सहे, जरासन्ध के प्रहार सहे, शिशुपाल के दुर्वचन सहे परन्तु फिर भी वे शान्त ही रहे।

युवको! इन जीवनियों से प्रेरणा लो और सहनशील बनो। सहनशीलता की प्रशंसा करते हुए महात्मा विदुर जी कहते हैं—

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्॥
(विदुर प्रजागर ३४। ४८)

सुन्दर वस्त्रधारी सभा को जीत लेता है अर्थात् सभा में आदर और सम्मान पाना है। जिसके पास गौएं होती हैं वह पायस और मिष्टान्न को जीत लेता है। जिसके पास गाड़ी होती है वह मार्ग को जीत लेता है और जो सहनशील होता है वह सब कुछ जीत लेता है अतः सहनशील बनो।

सहनशील व्यक्ति के लिये संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। श्री भर्तृहरि जी ने कितना सुन्दर लिखा है—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्याङ्गोऽखिल लोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥
(नीति १०६)

जिस मनुष्य के हृदय में विश्वविमोहक सहनशीलता विराजमान है उसके लिये अग्नि जल के समान शीतल, समुद्र छोटी नदी सी, मेरु पर्वत पत्थर के खण्ड के समान, सिंह हरिण, सर्प पुष्पों का हार और विष अमृत के समान हो जाता है।

मूर्खों के दुर्व्यवहार और कटु वचनों को सहन करो। उनके ऊपर तरस खाओ। उनसे बदला लेने और उन्हें कष्ट देने की बात मत सोचो।

एक नौका में कुछ यात्री यात्रा कर रहे थे। एक साधु भी एक कोने में बैठे थे। कुछ दुष्टों ने साधु को छेड़ा, उन्हें तंग किया परन्तु साधु जी मौन ही रहे। इससे दुष्टों का उत्साह दुगना हो गया। उन्होंने सन्त जी को डराया, धमकाया और अन्त में पीटा भी। मल्लाहों को साधु पर

दया और दुष्टों पर क्रोध आया। उन्होंने सन्त जी से निवेदन किया, "आप आज्ञा दें तो हम इन्हें डूबा दें?" साधु ने कहा, "न ऐसा न करो। इन्होंने अज्ञानतावश ऐसा किया है।" कैसी अद्भुत सहनशीलता है?

आज डालडा खाने के कारण सहनशीलता समाप्त हो गई है। न अध्यापकों में सहनशीलता है न शिष्यों में, न दुकानदारों में सहनशीलता है और न ग्राहकों में। आज तो बात-बात पर क्रोध आता है। यात्री कण्डक्टर से लड़ पड़ता है और कण्डक्टर यात्रियों से। सभाओं समाजों और गोष्ठियों में "तू तू मैं मैं" होकर लड़ाई तक हो जाती है। सभाओं, समाजों और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहनशीलता की बड़ी आवश्यकता है। असहनशीलता और क्रोध को त्याग कर ऐसे सहनशील बनो कि वेद के शब्दों में आप यह घोषणा कर सकें।

अहमस्मि सहमानः। (अथर्व० १२।१।५४)

अरे! मैं तो अत्यन्त सहनशील हूँ।

दानी बनो

सभी मतों पन्थों और ग्रन्थों में दान देने की महिमा भरी हुई है। वेद तो यहां तक कहते हैं—

न तदको अस्ति। (ऋ० १०।११७।४)

अदाता का घर घर ही नहीं है।

अथर्ववेद ३।२४।५ में तो यहां तक कह दिया—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।

ऐ मानव! तू सैंकड़ों हाथों से कमा और हजारों हाथों से दान कर।

युवको आप भी दान देकर दानी बनो और दानी भी कैसे कविवर रहीम जैसे—

रहीम एक नवाब थे। वे प्रतिदिन दान दिया करते थे। दान देने का नियम यह था कि रुपये-पैसों की ढेरी लगा लेते थे और आँखें नीची करके उस ढेर में से मुट्ठी भर भर कर याचकों को देते जाते थे। एक दिन गङ्ग कवि भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि एक याचक दो-तीन बार ले चुका है परन्तु रहीम फिर भी उसे दे रहे हैं। यह दृश्य देख कर गङ्ग कवि ने पूछा—

सीखे कहां नवाबजू देनी ऐसी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचे चढ़े त्यों त्यों नीचे नैन॥

तब रहीम ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—

देने हारा और है जो देता दिन रेन।
लोग भ्रम हम पै करें या विधि नीचे नैन॥

दान दो और नम्रता पूर्वक दो। कुढ़ कर, जल कर, खीज कर और दुःखी होकर मत दो। गीता में क्या सुन्दर कहा है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥
(गीता० १७।२८)

हे अर्जुन! अश्रद्धा से किया हुआ यज्ञ, दान, तप और जो कुछ कर्म किया जाता है वह सब व्यर्थ है। श्रद्धा रहित कर्म का न इस लोक में फल मिलता है और न परलोक में।

इसी भाव को एक व्यक्ति ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

Give with faith, if you lack faith give nothing.

श्रद्धा पूर्वक दो। यदि श्रद्धा नहीं तो कुछ भी मत दो।

"हस्तस्य भूषणं दानम्।" हाथ का भूषण कङ्कण नहीं है अपितु दान है अतः दान दो, दानी बनो।

दान की महिमा का वर्णन करते हुए महात्मा विदुर जी कहते हैं—

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धन्वन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्॥
(विदुर प्रजागर० ३३।६०)

इन दो व्यक्तियों को गले में दृढ़ पत्थर बांधकर जल में डुबा देना चाहिए? दान न देने वाले धनिक को और तप=परिश्रम न करने वाले दरिद्र को।

यह धन सदा किसी के पास रहता नहीं। भर्तृहरि जी कहते हैं—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥
(नीति० ४२)

दान, भोग और नाश धन की तीन ही गतियाँ हैं। जो न तो धन का दान करता है और न उसे अपने उपभोग में लेता हैं उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् नष्ट हो जाता है।

प्रिय युवको! आप कहेंगे हमारे पास धन नहीं; हम कमाते नहीं। हम दान कहाँ से दें। चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। आपको जो कुछ जेब खर्च मिलता है उसमें से ही कुछ देने का स्वभाव डालिये। और सुनिये एक कवि के शब्दों में आपके पास देने के लिये कितना कुछ है—

प्रेम पड़ौसी को दो, मित्र को सत्य हृदय दो।
मान हीन को मान भीत को सदा अभय दो॥
भक्ति पूर्ण मन से दो सदा पिता को आदर।
भाई बहनों को दो ज्यादा सम्पत्ति सादर॥
शुभ आचरण स्वयं कर दो बच्चों को शिक्षा।
दीन जनों को दो उन का हक समझ सुभिक्षा॥
अपने को इज्जत दो, सेवा दो जन जन को।
प्रभु के पावन चरणों में दे दो निज मन को॥

एक अन्य कवि ने भी कितना सुन्दर कहा है—

तन से सेवा कीजिये, मन से भले विचार।
धन से इस संसार में करिये पर उपकार॥

एक बार एक धुनिया महर्षि दयानन्द के पास गया और कहा, "महाराज! मैं गरीब हूँ, दान नहीं दे सकता, मेरा उद्धार कैसे होगा?" स्वामी जी ने सान्त्वना देते हुए कहा, "जिसकी जितनी रुई लो धुन कर उतनी ही लौटा दो। इमानदारी से कार्य करो। यदि कुछ दे नहीं सकते तो मन से ही दूसरों की भलाई की भावना करो, इसी से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।"

आप भी दूसरों के लिए मङ्गल कामना तो कर सकते हैं। यदि किसी को कुछ दे नहीं सकते तो किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और घृणा की भावना तो मत रक्खो।

दान देने से स्वार्थ बुद्धि दूर होकर आत्मा का विकास होता है अतः आपकी सदा यह भावना होनी चाहिए "दतान्मा यूषम् (अ० ६।१२३।४) मैं दान देना कभी न छोड़ूं।

स्वाध्यायशील बनो

वैदिक धर्म में स्वाध्याय की महिमा पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। हमारे वेद, उपनिषद्, स्मृति दर्शनशास्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थ स्वाध्याय की महिमा से भरे पड़े हैं। वेद में कहा गया है—

पावमानीरेध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरश्वना॥
(ऋ० ९।६७।३१)

जो सब को पवित्र करने वाली, ईश्वर प्रदत्त और ऋषियों द्वारा सञ्चित ऋचाओं का अध्ययन करता है वह पवित्र आनन्द रस का पान करता है।

प्राचीन ऋषियों और महर्षियों ने भी स्वाध्याय के ऊपर बड़ा बल दिया है। इसे बहुत बड़ा तप माना है। इस स्वाध्याय के लिये लोग अपने प्राण प्रिय पुत्रों को नगर और ग्रामों से दूर जंगलों में बैठा दिया करते थे।

मानव जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया है। उनमें से तीन आश्रमों, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास में तो केवल स्वाध्याय ही होता था। गृहस्थ के लिये भी स्वाध्याय आवश्यक कर्तव्य था। तभी तो आचार्य दीक्षान्त भाषण देते हुए अपने स्नातकों से कहता था—

स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।
(तैत्तिरीयोपनिषद् १।१)

स्वाध्याय और वेदोपदेश में कभी प्रमाद न करना।

स्वाध्याय जीवन के लिये है भी परमाश्यक।

जिस प्रकार शारीरिक उन्नति के लिये भोजन आवश्यक है ठीक उसी प्रकार आत्मिक उन्नति के लिये स्वाध्याय भी आवश्यक और अनिवार्य है। स्वाध्याय से विचारों में पवित्रता आती है, ज्ञान की वृद्धि होती है। यदि किसी तालाब में पानी आना बन्द हो जाये तो उस में कीड़े पड़ने लग जाते हैं। उसके ऊपर काई छा जाती है। पानी सड़ने लगता है और उस में बदबू आने लगती है ठीक इसी प्रकार स्वाध्याय के अभाव में हमारी मानसिक वृत्तियां कलुषित एवं दूषित हो जाती हैं। हमारा ज्ञान सीमित हो जाता है और हम कूप मण्डूक बन जाते हैं। यदि प्रतिदिन एक घण्टा भी स्वाध्याय किया जाये और एक घण्टे में २० पृष्ठों का पाठ हो तो एक मास में ६०० पृष्ठों का एक ग्रन्थ पढ़ा जा सकता है और वर्ष में इस प्रकार के १२ ग्रन्थों का पाठ हो सकता है। तनिक सोचिये इस प्रकार स्वाध्याय करने से आप के ज्ञान में कितनी वृद्धि होगी।

स्वाध्याय के बल पर एक साधारण व्यक्ति महान् बन सकता है। स्वाध्याय के बल पर अनेक व्यक्ति उच्च कोटि के विद्वान् बन गये। यदि हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे।

बरमौण्ट (अमेरिका) में एक मोची था। नाम था चार्लस सी फ्रास्ट। उसने अपने कार्य के व्यस्त क्षणों में से प्रतिदिन एक घण्टा बचा कर दस वर्ष तक नियम पूर्वक गणित का अध्ययन किया। केवल एक घण्टा प्रतिदिन स्वाध्याय करने के आधार पर वह दस वर्ष में ही उच्च कोटि का गणितज्ञ बन गया।

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० क्षेमकरण दास जी ने ५५ वर्ष की अवस्था में संस्कृत पढ़ना आरम्भ करके अथर्ववेद पर भाष्य किया जो आज भी सर्वोत्तम माना जाता है।

मैं स्वयं भी किसी गुरुकुल आदि में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सका। मैं जो कुछ सीख पाया हूं उसका श्रेय स्वाध्याय और श्रवण को ही है।

कैसे ग्रन्थों का अध्ययन करें ? हमें उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये। स्वामी शिवानन्द जी ने एक स्थान पर लिखा है—

"सद् ग्रन्थ इस लोक के चिन्तामणि हैं। उनके अध्ययन से सब चिन्ताएं मिट जाती हैं। संशय-पिशाच भाग जाते हैं और मन में सद्भाव जागृत होकर परम शान्ति प्राप्त होती है।"

श्री लोकमान्य तिलक जी का कहना है—

"मैं नरक में भी अच्छी पुस्तकों का स्वागत करूंगा। क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहां ये होंगी वहां स्वर्ग बन जायेगा।"

वेद संसार साहित्य का मुकुटमणि है। संसार के पुस्तकालय में वेद सब से प्राचीन पुस्तक है। न केवल भारतीय विद्वानों ने अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी वेद की श्रेष्ठता के गीत गाये हैं। वेद अध्ययन से मनुष्य बड़े बड़े पापों से बच जाता है। यह बात यथार्थ है। इसे सिद्ध करने के लिए युक्ति और प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। संसार के समस्त पापों की जड़ है मन की अपवित्रता। स्वाध्याय के द्वारा मन धुल कर शुद्ध और पवित्र हो जाता है फिर मनुष्य पापों की ओर कैसे झुक सकता है ?

अनार्ष, गन्दे और भद्दे उपन्यास और नाटक पढ़ने का नाम स्वाध्याय नहीं है। इन से मनुष्य का कल्याण नहीं होता अपितु पतन होता है। जीवन को पवित्र करने वाले, आत्मा का कल्याण करने वाले ग्रन्थों को पढ़िये। संसार के महापुरुषों के जीवनों का अध्ययन कीजिये। उपनिषद् मनुस्मृति, रामायण और महाभारत का पाठ कीजिये। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कार विधि और व्यवहार भानु आदि ग्रन्थों को पढ़िये। जहां तक बन सके आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय कीजिये। महर्षि दयानन्द के शब्दों में "आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहु-मूल्य मोतियों का पाना।"

देश की विभूतियो ! यदि आप महान् बनना चाहते हैं। ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। नाना विद्याओं में पारंगत होना चाहते हैं तो एक बात सदा स्मरण रक्खो, "स्वाध्यायान् मा प्रमदः।" स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करना। प्रतिदिन स्वाध्याय करना अपने जीवन का अङ्ग बना लो।

सत्सङ्गी बनो

सत्सङ्ग की महिमा महान् है। वैदिक वाङ्मय सत्सङ्ग की महिमा से ओत प्रोत है। वेद कहता है—

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते

(अ० १० । ८ । १५)

पूर्ण विद्वानों, योगियों, महात्माओं के साथ रहने से मनुष्य उन्नत होता है और आचार हीन लोगों के सम्पर्क में रहने से गिर जाता है, पतित हो जाता है।

इसी भाव को संस्कृत के एक कवि ने यूं प्रकट किया है—

यदि सत्सङ्गनिरतो, भविष्यसि-भविष्यसि।
अथ दुर्जन संसर्गे, पतिष्यसि-पतिष्यसि॥

यदि सत्सङ्गी बनोगे तो आपके जीवन का निर्माण होगा, आप कुछ बन जायेंगे और यदि कुसङ्ग में पड़ गये तो पतित हो जाओगे।

सत्सङ्ग की महिमा का अनुभव करके भगवान् शङ्कराचार्य जी ने ठीक ही कहा था—

सङ्गः सत्सु विधीयताम्। (उपदेश पञ्चक-२)

अर्थात् सज्जनों का सत्सङ्ग करो।

सत्सङ्ग की प्रशंसा करते हुए महर्षि नारद जी कहते हैं—

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्यो ऽमोघश्च।

(ना० भक्तिसूत्र ३ । ९)

महापुरुषों का सङ्ग दुर्लभ तथा अपार महत्त्व वाला और सफल है।

चाणक्य महाराज कहते हैं—

सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानाम्।

(चा० नीति १२ । ७)

सत्सङ्ग से दुष्ट एवं दुर्जन पुरुषों में भी सज्जनता आ जाती है।

सत्सङ्ग का गौरव गान करते हुए श्री भर्तृहरि जी ने भी बहुत सुन्दर कहा है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्,
सत्सङ्गः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

(नीतिशतक २२)

सत्सङ्ग बुद्धि की जड़ता को हरता है, वाणी में सत्य का सञ्चार करता है, सम्मान बढ़ाता है, पाप को दूर करता है, चित्त को आनन्दित करता है और समस्त दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करता है। सदाचारी पुरुषों की सङ्गति मनुष्य का कौन सा उपकार नहीं करती ?

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी एक बहुत सुन्दर बात कही है—

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई॥

जिस प्रकार पारस पत्थर को छू कर लोहा सोना हो जाता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों के सङ्ग से मूर्ख भी सुधर जाता है। इस विषय में एक शिक्षाप्रद दृष्टान्त। एक बार श्री विष्णु जी ने महाराज बलि से प्रश्न किया, "तुम सज्जनों के साथ नरक में जाना पसन्द करोगे या दुष्ट और मूर्खों के साथ स्वर्ग में ?"

"मुझे सज्जनों के साथ नरक में जाना ही पसन्द है।" बलि का सीधा और सहज उत्तर था।

श्री विष्णु जी ने पूछा "इसका कारण ?"

बलि ने कहा, "जहां सज्जन हैं वहीं स्वर्ग है और जहां दुर्जन हैं वहीं नरक है। दुर्जन के निवास

से स्वर्ग भी नरक बन जाता है और सज्जन लोग नरक को भी स्वर्ग में परिवर्तित कर देते हैं। सज्जन लोग जहां रहेंगे, वहां सब कुछ रहेगा।"

मानव जीवन को उन्नति के शिखर पर स्थापित करने के लिए सत्सङ्ग एक प्रमुख साधन है भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि सत्सङ्ग के प्रभाव से मूर्ख कालिदास उच्च कोटि का कवि बन गया महर्षि दयानन्द का सत्सङ्ग पाकर एक शराबी कबाबी और वेश्यागामी तहसीलदार महात्मा अमीचन्द बन गया। आर्य समाज के सत्सङ्ग से मुगला डाकू लूट मार छोड़ कर सदाचारी बन गया। सत्सङ्ग से जीवन में आमूल चूल परिवर्तन के ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं।

मनुष्यों की तो बात ही क्या सङ्ग का प्रभाव तो पशु और पक्षियों पर भी होता है। कहते हैं एक राजा घोड़े पर सवार वन में जा रहे थे। जब वे डाकुओं की बस्ती के पास से निकले तो द्वार पर पिंजरे में बन्द एक तोते ने चिल्लाना आरम्भ किया, "दौड़ो! पकड़ो! मार डालो! इस का घोड़ा छीन लो।"

महाराज सावधान हो गए। उन्होंने घोड़ा दौड़ा दिया और एक रम्य आश्रम के पास पहुंचे। कुटि के सामने पिंजरे में लटके एक तोते ने कहा, आइये! पधारिये! आपका स्वागत है।"

एक मुनि कुटि से बाहर आये और महाराज का स्वागत किया। राजा ने पूछा, "मुनिवर! एक ही जाति के पक्षियों में इतना अन्तर क्यों?" यह सुन कर तोता बोला--

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि,
शृणोत्ययं यद् यवनस्य वाक्यम्।
न चास्य दोषो न च मे गुणो वा,
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति॥

मैं मुनियों के वचन सुनता हूँ और वह हिंसक भीलों की बातें सुनता है। न उसमें कोई दोष है और न मेरे में कोई गुण है। दोष और गुण तो संगति से उत्पन्न होते हैं।

बुरी सङ्गति में बैठने वाला व्यक्ति भी बुरा कहलाता है। इसी लिए तो इमरसन महोदय ने कहा है It is better to be alone than in a bad company. दुष्टों के साथ रहने की अपेक्षा अकेला रहना अधिक उत्तम है।

सत्सङ्ग परम पवित्र तीर्थ है। सत्सङ्ग से मन शुद्ध पवित्र और सात्विक बनता है यह मन को विषय विकारों से हटा कर प्रभु की ओर प्रेरित करता है। सत्सङ्ग त्रिविध तापों को दूर कर जीवनों को निर्मल बनाता है अतः सत्सङ्गी बनो।

माता पिता की सेवा करो

यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा, "पृथिवी से भारी क्या है? और आकाश से ऊंचा क्या है?" युधिष्ठिर जी बोले—

माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा।
(महा० वन० ३१३।६०)

अर्थात् माता पृथिवी से भी भारी है और पिता आकाश से भी ऊंचा है।

यह है माता पिता का गौरव और महत्त्व। वस्तुतः माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है। इतना ही नहीं मैं तो माता पिता को ईश्वर के जीवित जागृत प्रतिनिधि समझता हूँ। हमें जन्म देने वाले, हमारा लालन, पालन और पोषण करने वाले माता और पिता की हमें हर प्रकार से सेवा करनी चाहिए।

युवको! प्राचीन समय में आयु दीर्घ होती थी। आपको पता है क्यों? इसलिए कि उस समय लोग अपने माता पिता को प्रतिदिन प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया करते थे। आज का युवक तो माता पिता को नमस्ते करने में भी लज्जा का अनुभव करता है, फिर दीर्घायु कैसे हो? यदि आप

दीर्घायु चाहते हैं, संसार में अपना मान और सम्मान चाहते हैं, यदि आपको यश और बल की इच्छा है तो अपने माता पिता और वृद्धों की सेवा करो। मनु जी महाराज कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥
(मनु० २।१२१)

जो व्यक्ति माता पिता और वृद्धों को नमस्ते करते हैं तथा उनकी सेवा करते हैं उनके आयु, विद्या, यश और बल चार पदार्थ बढ़ते हैं।

पाठकगण! आपने श्रवण कुमार का नाम तो अवश्य ही सुना होगा। माता पिता की सेवा का आदर्श आप श्रवण कुमार से सीखें। अपने माता-पिता की सेवा के लिए उन्होंने भयंकर कष्टों और आपत्तियों की तनिक भी चिन्ता नहीं की। माता-पिता के आदेश पर उन्हें बहंगी में बिठा कर तीर्थ-यात्रा पर चल दिये। पैदल चलना, पशुओं का भय और मांग कर खाना—इस प्रकार की कितनी ही यातनायें उन्होंने झेली। परन्तु उन्होंने माता-पिता की सेवा से मुख नहीं मोड़ा। माता-पिता की सेवा करते हुए ही उसने अपने प्राणों का त्याग किया। आप सारे संसार के इतिहास का अध्ययन कर जाइये आपको पितृभक्ति का ऐसा आदर्श उदाहरण और कहीं नहीं मिलेगा।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भी आदर्श पितृभक्त थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है—

प्रातकाल उठिके रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

पिता के तनिक से संकेत पर श्रीराम राजपाट को छोड़ कर वनों में चले गये।

महात्मा भीष्म! उनका त्याग क्या किसी से कम है। अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए आप ने भीष्म प्रतिज्ञा की कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूंगा। तभी तो आप देवव्रत से भीष्म बने।

ये जीवनियां हमें माता पिता की सेवा करने का पाठ पढ़ा रही हैं। ये जीवनियाँ हमें उद्बोधन दे रही हैं और हमारा मार्ग प्रदर्शन कर रही हैं। हमें भी इन्हीं के आदर्शों पर चल कर माता पिता की सेवा करनी चाहिए।

माता-पिता की सेवा से सब कुछ मिल सकता है। इस विषय में एक घटना उल्लेखनीय है। एक बार एक युवक श्री रामकृष्ण परमहंस जी के पास पहुंचा और उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। उन्होंने मुस्करा कर पूछा, "क्या तुम अकेले हो? तुम्हारे घर में कोई नहीं?"

"बस एक बूढ़ी मां है महाराज!"

"फिर तुम दीक्षा लेकर संन्यासी क्यों बनना चाहते हो?"

"मैं इस संसार को त्याग कर मोक्ष चाहता हूं।"

परमहंस जी ने बड़े प्रेम से समझा कर कहा, "बेटा! अपनी बूढ़ी मां को असाहय छोड़ कर मोक्ष नहीं मिल सकता। जाओ दिल लगा कर अपनी माता की सेवा करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है इसी से तुम्हें मोक्ष मिल जायेगा।"

स्वामी विवेकानन्द जी ने भी कहा है—

If the mother is pleased and the father, God is pleased with the man. That child is really a good child who never speeks harsh words to his parents.

जिस व्यक्ति से माता पिता प्रसन्न हैं। प्रभु भी उससे प्रसन्न हैं। वही बच्चा वास्तव में अच्छा बालक है। जो अपने माता-पिता को कभी दुर्वचन नहीं कहता।

माता पिता के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करो। वेद के इस आदेश को सदा सम्मुख रक्खो—

यदा विषेव मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।
एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया॥
(यजु० १९।११)

जब मैं छोटा था, असमर्थ शिशु था उस समय

जिस स्नेहमयी माता की गोद में लेट कर और प्रसन्न होकर जिसके अमृतमय स्तन का पान करता रहा तथा पैरों के आघात से उसे पीड़ित करता रहा, उसके लालन पालन से अब मैं बड़ा हो गया हूं और वे मेरे पूजनीय जननी और जनक अब बूढ़े और अशक्त हो गये हैं। अतः मेरे द्वारा वे माता-पिता अब किसी प्रकार पीड़ित न हों अपितु सेवा द्वारा सन्तुष्ट और प्रसन्न ही रहें। इस प्रकार प्रभो! उनकी प्रसन्नता और सेवा द्वारा मैं उऋण हो रहा हूँ।

——

ईश भक्त बनो

जब हम संसार पर दृष्टि डालते हैं तो हमें संसार में एक सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, बुद्धिमान् प्राणी दिखाई देते है और सर्वत्र एक ऋत और सत्य का नियम दिखाई देता है। ढाक में तीन पत्ते, ब्रह्मी में एक ही पत्ता और करील में पत्तों का न होना, जिवासे और आक का वसन्त ऋतु में सूख जाना–यह सब अपने आप ही तो नहीं हो सकता। इन सब के पीछे एक सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ शक्ति होनी चाहिए, जो इस सारे ब्रह्माण्ड को अपने शासन में रखता है, जो सारे ब्रह्माण्ड को नियम में रख कर सुव्यवस्था से चलाता है।

हम ईश्वर को इसलिए नहीं मानते कि हमारे पूर्वज उसे मानते थे। हम तो ईश्वर को इस लिए मानते हैं कि संसार का एक एक अणु उसकी शक्ति और ज्ञान की गवाही दे रहा है। घड़ी के पूर्जों की भांति सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे और सितारों की गति किसी नियन्ता की ओर संकेत करती है। नाना प्रकार के वृक्ष उनमें लगने वाले भान्ति भान्ति के फूल, फल और पांत्तयों के विविध डिजायन किसी महान् कलाकार का परिचय देती हैं। मिट्टी और पानी से उत्पन्न चमेली एवं चम्पा, गुलाब और गेंदा, मोगरा तथा रात की रानी की मन मोहक सुगन्ध किसी गन्धी का पता बताती है। मल और मूत्र से पोषित आम, अमरूद, अनन्नास, लींची, जामुन, सन्तरे, गन्ने और अंगूर किसी कैमिस्ट की कहानी कहते हैं। नवजात बच्चों के प्रति उनकी माता में प्रेम और दया का संचार किसी की स्नेह और कृपा को घोषणा करता है। द्युलोक का एक-एक नक्षत्र, भूमि का एक एक कण, लताओं और वृक्षों की एक एक पत्ती, फूलों की एक एक पंखड़ी फलों का एक एक दाना उसकी विद्या और कारीगरी का प्रमाण देते है। इन्हीं प्रमाणों के बल पर हम उसे जानते और मानते हैं।

ईश्वर की अद्भुत रचना के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने भी कितने सुन्दर शब्दों में लिखा है—

देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन प्लीहा यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, जीवन का संयोजन, शिरोरूप मूल रचन, लोम नखादि का स्थापन, आंख की अति सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के भोगों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण सब धातु का विभागकरण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना ईश्वर के कौन कर सकता है?"

इस सारे ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ईश्वरीय शक्ति ही कार्य कर रही है। वह ईश्वर हमारे नथुनों में स्वास है, आँखों में ज्योति है तथा वाणी में माधुर्य हैं। क्या संसार का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक एक आँख कान या नाक बना सकता है? फिर क्या वह इसमें देखने, सुनने और सूंघने तथा श्वास लेने की शक्ति डाल सकता है? क्या कोई मानस शास्त्री एक मन बना कर दे सकता है? कभी नहीं। अतः हमें विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है कि इस सृष्टि रचना के पीछे कोई महान् और अद्भुत शक्ति कार्य कर रही है। बस इसी शक्ति का नाम ईश्वर है।

जिस परमात्मा ने इस संसार के सारे पदार्थ मनुष्यों के कल्याण के लिए दे रक्खे हैं हमें कृतज्ञता

के रूप में उसकी भक्ति और उपासना करनी चाहिए। ईश्वर के स्थान पर अन्य किसी की पूजा न करो एक ईश्वर के उपासक बनो। वेद का आदेश है—

एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः (अ० २।२।१)

एक ईश्वर ही पूजनीय है, केवलमात्र वही एक उपास्यदेव है।

जो मान और सम्मान ईश्वर के लिए है वह और किसी को मत दो। ईश्वर के स्थान पर किसी देवी देवता और जड़मूर्ति की पूजा मत करो।

आज के वातावरण में पढ़े लिखे विद्यार्थी ईश्वर को एक ढकोसला समझते हैं। वे "खाना पीना और मौज उड़ाना" इसको अपने जीवन का उद्देश्य समझते हैं। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति केवल परलोक, परमार्थ को ही सब कुछ समझते हैं। यह दोनों अवस्थाएं ठीक नहीं। जो व्यक्ति न इस लोक को बनाते हैं न परलोक को बनाते हैं वे तो अन्धों के सदृश हैं। जो लोग इह लोक या परलोक में से एक को बनाने का प्रयत्न करते हैं वे ध्यान मानो काणे हैं। जो दोनों लोकों का साथ साथ रखते हैं वे ही वस्तुतः सुनयन=दोनों आंखों वाले हैं। ईश भक्त बनने के लिए संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। संसार में रहते हुए संसार के कार्य करते हुए ईश्वर भक्ति करो। उसका ध्यान और उसकी उपासना करो। वेद कहता है—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।

(ऋ० १।१६४।३९)

जो उसे=ईश्वर को नहीं जानता उसे वेदों से भी क्या लाभ होगा? ईश्वर को जानो। उसकी भक्ति करो। जिसके जीवन में ईश्वर के लिए प्रेम नहीं, राग और अनुराग नहीं, ईश्वर को प्राप्त करने की अभिलाषा और कामना नहीं उसके और पशु के जीवन में अन्तर ही क्या है?

ईश्वर की भक्ति कैसे करें। आप प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक सन्ध्या करें। ईश्वर के गुणों पर विचार करें और उन्हें अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करें। दुखियों को देखकर उनकी सेवा करो। दीन, दुर्बल और निर्बलों की सेवा, गरीब, को भोजन और रोगी की चिकित्सा ईश्वर की सच्ची पूजा है।

सन्ध्या, भजन और भक्ति में यदि आरम्भ में रस न आये तो निराश और हताश होने की आवश्यकता नहीं। रामकृष्ण परमहंस के शब्दों को याद रक्खो—

"समुद्र में गोता लगाने पर यदि मोती हाथ न लगें तो यह न कहो कि समुद्र में मोती नहीं हैं। बार बार गोते लगा कर मोती ढूंढो तब सफलता मिलेगी। ईश्वर प्राप्ति के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। यदि तुम्हारा प्रथम प्रयास निष्फल हो तो अधीर न हो जाओ। निरन्तर प्रयत्न करते रहो; अन्त में ईश्वर की कृपा अवश्य होगी।"

प्रतिदिन अपने जीवन की पड़ताल करते हुए अपने कार्यों की सूची में सब से पूर्व ईश्वर भक्ति को ढूंढो। यदि आपके जीवन में ईश्वर भक्ति है तो अपने को सम्राटों से भी बढ़ कर सौभाग्यशाली समझो।

——

दुर्गुण त्यागो

प्रिय युवको! किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

आदमी को चाहिये दुनियां में रहना किस तरह।
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कमल॥

जिस प्रकार कमल अथाह जल में रहते हुए भी पानी की एक बूंद अपने ऊपर नहीं आने देता इसी प्रकार इस संसार में रहते हुए इसकी एक भी बुराई को अपने जीवन में मत आने दो। जब दुर्गुण, दुर्व्यसन, कुभावना, कुवासना, दुरित और खोटे तथा गन्दे विचार आप के मन में आने लगें और आपको सताने लगें तो वेद के शब्दों में उन्हें

ललकार कर कह दो—

परोऽपेहि मनस्पाप ! किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर
गृहेषु गोषु मे मनः ॥ (अथर्व० ६।४५।१)

ओ मेरे मन के पाप ! दूर भाग जा । क्यों मुझे गन्दी सलाह दे रहा है ? क्यों मुझे कुमार्ग की ओर ले जा रहा है । दूर हट, मैं तुझे नहीं चाहता । तू वृक्षों के पास जा । तू वन में जा कर विचर । मेरा मन तो गायों की देख भाल और गृह कार्यों में लगा हुआ है ।

बुराइयों से बचने के लिये हर समय अपने आप को कार्य में व्यस्त रक्खो क्योंकि An idle man's brain is the devils workshop. निठल्ले बैठे रहने से बुराइयाँ सूझती हैं । अतः शहद की मक्खी की भाँति हर समय कुछ न कुछ करते रहिये । साथ ही प्रभु से भी प्रार्थना कीजिये—

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः (यजु० ४०।१६)

प्रभो ! हम से कुटिलता युक्त पाप को दूर कर दीजिये ।

प्रभु से प्रार्थना के साथ साथ स्वयं भी पुरुषार्थ कीजिये । सेण्ट एण्टानियस ने इस सम्बन्ध में एक बड़ी सुन्दर बात लिखी है—

If every year you rooted out one of your faults, you would soon become a perfect man.

अर्थात् यदि आप प्रति वर्ष एक एक बुराई को भी दूर करें तो शीघ्र ही आप एक पूर्ण मनुष्य बन जाओगे ।

आरोह तमसो ज्योतिः । (अ० ८।१।८)

अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुर्गुणों से सद्गुणों की ओर चलो । और

कस्य मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ॥ (अ० १८ । ३ । १७)

आत्मा की चलनी में अपने आप को शुद्ध बना कर, मलों को हटाकर दुर्गुणों को त्याग कर नवीन दीर्घ जीवन को प्राप्त करो ।

महात्मा बुद्ध ने लिखा है—

'जिस प्रकार सुनार सोने और चाँदी की मैल को निकाल देता है उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यों को दुर्गुणों की मैल को अपने हृदय से धीरे धीरे निकालते रहना चाहिये ।"

महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों को ग्रहण और दोषों को त्याग करें ।"

दूसरों के दुर्गुण देखने में मत लगे रहो । अपने जीवनों को देखो । एक बार साबरमती आश्रम में एक आश्रमवासी से कुछ अपराध हो गया । एक दर्शक ने एक गुमनाम पत्र लिखकर उसके पापाचरण की शिकायत गांधी जी से की । प्रार्थना के पश्चात् गांधी जी प्रायः कुछ कहा करते थे । प्रार्थना पूरी होने के पश्चात् उस दिन उन्होंने उस पत्र का उल्लेख करते हुए कहा, "एक तो ऐसे मामलों में गुमनाम पत्र लिखना गलत है । फिर किसी के पाप की ओर अंगुली उठाने से पूर्व हमें यह याद रखना चाहिये कि शेष तीन अंगुलियां स्वयं अपनी ओर संकेत करती हैं ।"

हमें तो कपास के समान बनना चाहिये जो दूसरों के शरीर की नग्नता को ढकने के लिये अपने आप को पिलवाती है । सज्जनों को भी कष्ट सहकर दूसरों के दोषों को ढकने का प्रयत्न करना चाहिये ।

बुराई को तुरन्त छोड़ देना चाहिये । कुछ व्यक्ति शिकायत करते हैं कि अब तो यह स्वभाव पड़ गया । अब इस का छूटना या बदलना कठिन है । परन्तु यह बात ठीक नहीं । एक कवि ने क्या खूब कहा है—

बनी जो चीज है इस खाक से वह टूट जाती है ।
करो कोशिश कमर कस कर पड़ी लत छूट जाती है ॥

शान्त एकान्त स्थान में बैठ कर अपने जीवन का स्वाध्याय करो, अपने जीवन पर दृष्टिपात करो । अपने अवगुणों को देखो । उन्हें एक दैनन्दनी=

डायरी में लिखो। प्रत्येक व्यक्ति को एक डायरी रखनी चाहिये। आप अनेक प्रकार की दैनन्दनियां रखते हैं, दूध की डायरी, धोबी की डायरी, घरेलू हिसाब की डायरी। परन्तु इन सब से महत्वपूर्ण है आध्यात्मिक दैनन्दनी जो आप के जीवन को दिव्य बना कर आप को प्रभु की ओर बढ़ने की प्रेरणा देगी। मैं कब उठा, कब सोया। कितना स्वाध्याय किया, ब्रह्मचर्य का कितना पालन किया? कौन से दुर्गुण को छोड़ा, कौन से गुण को ग्रहण किया। अपने दुर्गुणों को दूर करने के लिये इस प्रकार की डायरी रक्खो। दैनिक डायरी लिखने से टालस्टाय महात्मा टालस्टाय बने थे।

युवको! सावधान! जीवन रूपी भवन के किसी भी द्वार ये काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी चोरों को अन्दर न घुसने दो। जो दुरित, दुर्गुण, त्रुटियाँ और बुराइयां पहले घुसी बैठी हैं उन्हें दृढ़ता, वीरता और धैर्य से बाहर निकाल फैंको।

चरित्रवान् बनो

उत्तम चरित्र एक दिव्य शक्ति और महान् सम्पत्ति है। चरित्र क्या है? चरित्र संस्कृत का शब्द है। चर् धातु से चरित्र शब्द बनता है। चर् का अर्थ है गति, आचरण अतः चरित्र का अर्थ हुआ आचरण करना। श्रेष्ठ एवं शुभ आचरण का नाम चरित्र है। चरित्र छोटा सा शब्द है परन्तु इस में संसार के सभी शुभ गुणों और कर्मों का समावेश हो जाता है। सत्यवादिता, दयालुता, कोमलता, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सदाचार, निर्भयता, शौच, सन्तोष, तप और दान आदि सभी उत्तम कर्म चरित्र की सीमा में आ जाते हैं।

महापुरुषों के आदर्श को सम्मुख रक्खो और चरित्रवान् बनो। महाराज शिवाजी के सैनिकों ने एक दुर्ग पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। उस दुर्ग से एक अत्यन्त सुन्दरी यवन बाला भी उनके हाथ लगी। सेनापति ने उसे शिवाजी के समक्ष उपस्थित कर राजरानी बनाने की विनय की। सेनापति की बात सुनकर शिवाजी ने कहा, "सेनापते! तुम्हें धिक्कार है। हमारा धर्म परनारी हरण नहीं परनारी रक्षण है।" फिर वे उस रमणी की ओर देखकर बोले, "माता! मेरे सैनिक रूप के वशीभूत होकर तुम्हें यहां ले आये हैं। इसके लिये मुझे क्षमा करना। तुम्हारे सुन्दर रूप को देख कर मेरे मन में तो यह भाव उठ रहा है कि यदि मैं तुम्हारे गर्भ से जन्म ग्रहण करता तो मैं भी अधिक सुन्दर होता। इसी भाव को श्री-मञ्जुल जी ने एक कविता के रूप में यूं प्रकट किया है—

शिवा शिविर में सेनापति
सुन्दरी यवन बाला लाया।
बोले शिवा कुकृत्य अरे यह?
पामर! धिक्! वह थर्राया॥
'जन्म तुम्ही से यदि मैं पाता
तो होता सुन्दर छविमान्'।
साश्रु नयन सब गद् गद् बोले
"जग में शिवा चरित्र महान्॥"

कैसा आदर्श चरित्र है! शिवा जी! आप धन्य हैं।

वेद का आदेश है—

स्वयं वजिरँतन्वं कल्पयस्व। (यजु० २३।१५)

ऐ मानव! शक्तिशालिन्! अपने जीवनों का निर्माण करो। अपने चरित्रों को उन्नत बनाओ।

मनुष्य मर जाता है परन्तु उसका चरित्र सुगन्धि फैलाता रहता है। जिस मनुष्य में चरित्र की सुगन्धि होती है वह आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। युवक और वृद्ध उसके निकट बैठ कर अपने चरित्रों को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। चरित्रवान् व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर अनेक व्यक्ति सुधर जाते हैं। महात्मा बुद्ध का सम्पर्क पाकर वेश्या का जीवन सुधर गया। महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आकर अनेक दिग्भ्रान्त युवकों का

कल्याण हो गया। महाराणा प्रताप के समुज्ज्वल चरित्र से प्रभावित होकर शक्तिसिंह की प्रतिहिंसा की भावना समाप्त हो गई। इतिहास के पन्नों में इस प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण मिलेंगे।

युवको! क्या आप जानते हैं भारतवर्ष का अर्थ क्या है? भारतवर्ष को India कहते हैं। यह नामकरण ग्रीस वासियों द्वारा किया गया। इसका अर्थ है इन्द्र का देश, चन्द्रमा का देश, पवित्रता का देश। पूर्ण भारतीय बनो। आप की भाषा में, वेष भूषा में, चाल ढाल में, आचार विचार में, खान पान में और रहन-सहन में पूर्ण भारतीयता हो। आप की नस नस, रक्त की एक एक बूंद में भारतीयता हो! भारतीय बनने का तात्पर्य यह है कि आप ईमानदार बनो, पवित्र बनो क्योंकि भारत का अर्थ है पवित्रता का देश। आज भारत की भारतीयता नष्ट हो रही है हम पाश्चात्यों का अन्धानुकरण कर रहे हैं। उठो, जागो और अपने चरित्र का निर्माण करो।

हमारे चरित्र के विषय में महर्षि मनु ने हिमालय की चोटी से घोषणा की थी—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥
(मनु० २।२०)

अर्थात् समस्त भूमण्डल के मानव भारत में उत्पन्न ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर अपने अपने चरित्र की शिक्षा लें।

परन्तु आज यदि मनु जी हमारे मध्य आजायें तो वे हमारे चरित्रों का अवलोकन कर चकित रह जायेगें। आज घूंस खोरी और रिश्वत का बाजार गर्म है। सत्य जीवनों में से समाप्त हो रहा है। दया नाम की कोई वस्तु हमारे पास नहीं है। दफतरों में काम की अपेक्षा गप्पें अधिक लगाई जाती हैं। मार्ग चलती देवियों को कुदृष्टि से देखा जाता है। आचार समाप्त हो रहा है। मद्य, मांस मछली और अंडों का बाजार गर्म हो रहा है। हर वस्तु में मिलावट और बेईमानी है।

भविष्य की आशाओ! अपना सुधार करो। अपने चरित्र को उज्ज्वल और महान् बनाओ। संसार के सामने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करो कि उसके आलोक में भूले भटके पथभ्रष्ट मानव अपना मार्ग ढूंढ सके, आपके जीवन से प्रेरणा लेकर वे आगे बढ़ सकें।

चरित्र की महिमा का वर्णन करते हुए स्माइल्ज ने कितना सुन्दर लिखा है—

"चरित्र हीन धनिक मनुष्य की अपेक्षा निर्धन परन्तु सदाचारी, सचरित्र व्यक्ति कहीं अधिक श्रेष्ठ और सम्मान योग्य है। सीधा सादा और निर्धन व्यक्ति उस धूर्त से अच्छा है जो बन ठन कर रहता हो और घोड़ा गाड़ी रखता हो।"

कविवर माघ का विचार है कि—

"दुर्बल चरित्र का व्यक्ति उस सरकण्डे की भांति है जो हवा के हर झोंके में झुक जाता है।

जिस मनुष्य का चरित्र उज्ज्वल नहीं उसका जीवन उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार बिना तेल का दीपक। जिस प्रकार जल के बिना कुए का, प्रकाश के बिना सूर्य का, शीतलता के बिना चन्द्रमा का, सुगन्ध के बिना पुष्प का कोई महत्व नहीं इसी प्रकार चरित्र से रहित मानव भी निकम्मा है उसका कोई मूल्य और महत्व नहीं।

चरित्र के बिना जीवन मृतक के समान है। अतः शुद्ध पवित्र और सदाचारी बनो। महापुरुषों के जीवनों को पढ़ो और उनके गुणों को जीवन में धारण करते हुए चरित्रवान् बनो।

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

[डा० देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री]

अष्टाध्यायी के सूत्रों की हिन्दी भाषा-भाषियों के लिये उपयोगी व्याख्या। आरम्भ में कई हिन्दी व्याख्यान अष्टाध्यायी को पढ़ने आदि के सम्बन्ध में निर्देश रूप हैं। आज ही मंगाकर संस्कृत के विद्वान् बने। मूल्य ८)

गोविन्दराम हासानन्द. नई सड़क, दिल्ली।

ब्रह्मचारी बनो

ब्रह्मचर्य क्या है ? ब्रह्मचर्य दो शब्दों से मिल कर बना है। ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है—ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य आदि। चर्य शब्द चर् धातु से बनता है जिसका अर्थ है चिन्तन अध्ययन उपार्जन, रक्षण आदि। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ—ईश्वर चिन्तन, वेद अध्ययन, ज्ञान-उपार्जन और वीर्यरक्षण। एक साथ ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन और वीर्यरक्षण का नाम ब्रह्मचर्य है। यहां इन सब के सम्बन्ध में न लिख कर वीर्यरक्षण के सम्बन्ध में ही कुछ कथन करना है।

वीर्य क्या है ? हम जो भोजन करते हैं पेट में जाकर उसका रस बनता है। उस रस का स्थूल भाग तो मल और मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। शेष रस का जठराग्नि में पाक होकर उस से क्रमशः रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और मज्जा से सातवीं धातु वीर्य बनती है। एक एक धातु के निर्माण में लगभग पांच दिन लगते हैं। इस प्रकार लगभग ३५ दिन में यह वीर्य तैयार होता है। लगभग एक मन भोजन से एक तोला वीर्य तैयार होता है। जो व्यक्ति हस्त मैथुन या अन्य कुचेष्टाओं के द्वारा अपने वीर्य को नष्ट करते हैं उनकी आयु कम हो जाती है। किसी अनुभवी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात् ।

वीर्य का नष्ट करना मृत्यु है और वीर्य की रक्षा करना जीवन दायक है।

वीर्य के महत्व का अनुभव करके एक वेद भक्त कामना करता है—

आयुष्यं वर्च्चस्य ँ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इद ँ हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥
(य० ३४।५०)

आयु को बढ़ाने वाला कान्ति दायक, शक्ति, पुष्टि और स्फूर्ति देने वाला, सर्व प्रकार के रोगों का नाश करने वाला, तेज और ओज प्रदान करने वाला यह वीर्य मुझ में रहे।

ब्रह्मचर्य की शक्ति महान् है। ब्रह्मचर्य की महिमा का गौरव गान करते हुए वेद तो यहाँ तक कहता है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमपाघ्नत ।
(अ० ११।५।१९)

ब्रह्मचर्यरूपी तप से विद्वान् मृत्यु को भी मार भगाते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्रह्मचारियों ने मृत्यु के पैर को भी परे धकेला है।

महाभारत के भीषण युद्ध में भीष्मपितामह अर्जुन के तीखे तीरों से घायल होकर शर शय्या पर पड़े हैं। सारा शरीर छलनी हो रहा है। शरीर पर एक इञ्च स्थान भी ऐसा नहीं था जहां तीर न लगा हो। इतना होते हुए भी उन्हें कष्ट तनिक भी नहीं था उनके मुखमण्डल पर प्रसन्नता और मुस्कराहट थी। जब कुछ ऋषियों को भीष्म जी के दक्षिणायन में शरीर त्याग करने पर आश्चर्य हुआ तो भीष्म जी बोले "परम हंसो ! मैं मरा नहीं हूँ। अभी मैं जीवित हूँ। सूर्य के उत्तरायण में आने पर ही मैं अपने प्राणों का त्याग करूंगा ऐसा मेरा दृढ़ विचार है।" शर शैय्या पर लेटे हुए वे पाण्डवों को उपदेश देते रहें। मृत्यु उनके पास आती थी परन्तु आकर लौट जाती थी। जब सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में आ गया तभी आपने प्राण त्याग किया। यह है ब्रह्मचर्य का प्रचण्ड प्रताप।

महर्षि दयानन्द को अन्तिम बार हलाहल विष दिया गया। यदि किसी साधारण व्यक्ति को ऐसा विष दिया जाता तो एक अथवा दो मिनट में उस के प्राण पखेरु उड़ जाते परन्तु महर्षि दयानन्द लगभग एक मास तक मृत्यु से लोहा लेते रहे। मृत्यु आती थी और महर्षि उसे ठोकर मार कर परे भगा देते थे। दीपावलि के दिन 'हे ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की।" इन शब्दों का उच्चारण करते हुए मृत्यु का हंस कर आलिङ्गन किया। उनकी मृत्यु के दृश्य को देख कर नास्तिक गुरुदत्त विद्यार्थी भी आस्तिक बन गया। यह सब कुछ ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था।

ब्रह्मचर्य ऐसा साधन है जिसके सिद्ध होने पर कठिन से कठिन कार्यों में भी शीघ्र सफलता प्राप्त

हो जाती है। ब्रह्मचर्य के बल से ही संसार सागर को पार किया जा सकता है। हिन्दी भाषा के किसी कवि ने कहा है—

सागर के ज्यों तरण में नौका है प्रधान ।
त्यों भवसागर तरण में ब्रह्मचर्य प्रमाण ॥

जिस प्रकार समुद्र को तैरने के लिये जलयान = नौका की आवश्यकता है इसी प्रकार संसार रूपी दुःख सागर को पार करने के लिये ब्रह्मचर्य परमावश्यक है।

ब्रह्मचर्य के साधनः—सदा प्रातःकाल उठो। नियमित शौच, स्नान, सन्ध्या, ध्यान और गायत्री जप, प्राणायाम, सिद्ध और सर्वाङ्ग आसन, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन में बहुत सहायक हैं।

स्त्रियों में मत रहो। उनके साथ बहुत अधिक बातें करना, एकान्त में रहना, हंसी मजाक करना, उनेक गुह्य अङ्गो को देखना आदि अष्ट मैथुनों से दूर रहो।

जब मार्ग में चलो तो बन्दरों की भान्ति लड़कियों को घूर घूर कर मत देखो। पृथिवी की ओर देखकर गम्भीरता पूर्वक चलो।

गन्दी कथा कहानियां, सिनेमा सम्बन्धी पत्र पत्रिकायें और उपन्यास मत पढ़ो। ये मस्तिष्क को भड़काते हैं। सिनेमा मत देखो।

सुगन्धित तैल और पावडर आदि का प्रयोग मत करो। ये भी ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक हैं।

अपने कमरे में महावीर हनुमान्, भीष्मपितामह भगवान् शङ्कराचार्य और महर्षि दयानन्द के चित्र लगाइये। उनके उपदेश और आचरण पर ध्यान देकर अपने चरित्र का सुधार कीजिये।

"वीर्य का पतन करना एक मानव की हत्या के बराबर है" आचार्य दादु दयाल के इन शब्दो को सदा स्मरण रक्खो।

ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्य नाश मृत्यु है अतः ब्रह्मचारी बनो और संसार में चमको।

"लेखक जगदीश विद्यार्थी"

साहित्य समालोचना

वैदिक सन्ध्या गायन—लेखक तथा प्रकाशक श्री स्वामी योगानन्द जी दण्डी, वैदिक मिशनरी, आर्य समाज हाथरस। पृष्ठ संख्या ५२ मूल्य ७५ नये पैसे।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, पुस्तक में वैदिक सन्ध्या के शब्दार्थ देकर उसके भाव को कविता बद्ध किया गया है। कविता किस राग और ताल में है तथा उसका गान किस प्रकार होगा एतदर्थ प्रत्येक मन्त्र के पश्चात् स्वर लिपियों का एक चार्ट दिया गया है जिस से गानकर्ता को कविताओं को गाने में सुगमता हो।

यदि पुस्तक में वेद मन्त्रों को गाने की स्वरलिपियां होती तो अधिक उत्तम होता। ऐसा हो सकता है कि गाने ही गाने में मूल मन्त्र समाप्त होकर केवल भावार्थ ही शेष रह जाये। अतः आगामी संस्करण में मूल मन्त्रों की स्वर लिपियां भी छापी जायें तो अधिक उत्तम रहेगा। विद्यार्थी

स्वर्णपथ

लेखक—ब्र० जगदीश विद्यार्थी

प्रकाशक—आर्य कुमार सभा किंग्जवे दिल्ली।
पृष्ठ संख्या ६६, मूल्य ३५ नये पैसे।

श्री ब्रह्मचारी जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी विद्यावाचस्पति द्वारा रचित "स्वर्णपथ" जीवन का बहुमूल्य पथ एवं लक्ष्य है। भौतिकवादी युग में जब सारा विश्व चरित्र की महानता से दूर होता चला जा रहा है यह स्वर्णपथ नामक पुस्तक उनके द्वार पर आत्म अनुभूति का सोना न्योछावर कर देगी। नैतिक बल व्यवहारिक दर्शन में आ सके, अध्यात्म पिपासा निरन्तर बढ़ती रहे इसे दिग्दर्शित करने में लेखक सफल रहा है। हमारा समाज सत्यपथगामी बन कर ऊंचा उठ सके और यह सरल सरस पुस्तक उन्हें सत्यं शिवं सुन्दरम् का आलोक दे सके यही मेरी कामना है। मैं ब्रह्मचारी जगदीशचन्द्र जी के इस आवश्यक लेखन कार्य को समाज के लिए और विशेष कर युवक दल के लिए परमावश्यक समझता हूँ। आशा है आर्य परिवार और भारतीय साहित्य इस रचना को अपना कर लाभान्वित होंगे। —स्वामी दिव्यानन्द एम. ए.
९-१-६३

१९६३ का महर्षि दयानन्द का ६ रंगा चित्र

बीच में गायत्री मन्त्र दोनों ओर आर्य समाज के दस नियम

एक का मूल्य)४० न० पै० दर्जन ४॥)

डाक खर्च पृथक

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानन्द का रंगीन चित्र	१) २५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

महर्षि दयानन्द घटना चित्र)५०

मोटोज साइज ११×१४

मूल्य प्रत्येक का)२५ न. पै.

ओ३म्, स्वागतम

नमस्ते, गायत्रीमन्त्र

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली-६

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

वियदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—आयुर्वेदालङ्कार, [बी. आई. एम. एस.] से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कोलोनी सोनीपत।

२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैङ्क लोधी रोड़ नई दिल्ली।

३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपुर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पंजाब प्रतिनिधि सभा ३०३ रानीबाग शकूर बस्ती दिल्ली

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)

(२० पुस्तकों का संग्रह)

बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

प० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

टैक्नीकल, इण्डस्ट्रीयल, खेती बाड़ी, स्त्री उपयोगी तथा आर्य समाजी पुस्तकें

इण्डस्ट्रीयल टैक्निकल

इलैक्ट्रिक गाइड़	१०)
इलैक्ट्रिक वायरिंग	४॥)
आयल इंजन गाइड़	६)
वायर लैस रेडियो गाइड़	६)
रेडियो सर्विसिंग	८।)
ट्रान्जेस्टर रेडियो	४॥)
इलैक्ट्रिक मोटज	८।)
इलैक्ट्रिक मीटर्ज	८।)
आरमेचर वाइंडिंग	७॥)
रैफरीजरेटर गाइड़	८।)
खराद शिक्षा	३)
भवन निर्माण कला	१२)
सर्वे इंजीनियरिंग बुक	१०)
इलैक्ट्रिक गैस वैल्डिंग	८।)
फाउण्ड्री वर्क	४॥)
इलैक्ट्रोप्लेटिंग	४॥)
वीविंग गाईड	४)
टयूब वैल गाईड़	३॥)
लोकोशैड फिटर गाइड	१२)
मोटर मकैनिक टीचर	६)
जनरल मकैनिक टीचर	१०)
आटोमोबाइल इंजि.	१०)
मोटरकार ओवरहालिंग	६)
प्लम्बिंग सेनीटेशन	६)
फर्नीचर बुक	१२)
फर्निचर केट लोग	१२)
वर्कशाप प्रैक्टिस	१०)
आइस प्लान्ट	४॥)
स्कूटर ओटो रिक्शा	४॥)
ए. सी. जेनरेटर्स	८।)
फिटिंग शाप प्रैक्टिस	७॥)

कृषि साहित्य

आधुनिक कृषि विज्ञान	८।)
जीरा धनिया अजवायन	।॥)
तरकारियों की खेती	१॥)
अच्छी खाद	२॥)
कपास की खेती	१)
फूल फुलवारी	२॥)
धान की खेती	१॥)
सन्तरे की बागवानी	२॥)
आम की बागवानी	३)
तिलहन की खेती	।॥=)
सोयाबीन, खिसारी	।)
खेत की तैयारी	२।)
फसल रक्षक औषधिया	२।)
व्याधियों की रोकथाम	१॥)
उन्नत सिंचाई	२)
भारतीय कृषि कहावतें	४)
गेहूं की खेती	६)
लाख की खेती	।॥=)
प्याज लहसुन की खेती	१।)
जौ की खेती	।॥=)
नींबू, सन्तरा, माल्टा	२।)
मूंगफली की खेती	१)
मिर्च की खेती	१।)
बीज की तैयारी	१॥)
मकई की खेती	१।)
मसालों की खेती	२)
तम्बाकू की खेती	॥)
पपीते की खेती	१॥)
आधुनिक कृषि यन्त्र	१।)
खेतीबाड़ी	१॥)
फलों की खेती	४॥)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

दर्जी मास्टर	२॥)
टैलरिंग फैशन बुक	६)
उषा कशीदाकारी	३)
उषा दसूती कढ़ाई	३)
आदर्श कशीदाकारी	४)
सरला भारतीय कशीदा	५)
मधु भारती कढ़ाई	४॥)
कामनी कशीदा	४॥)
माया कशीदा	२॥)
हारमोनियम गाइड	२।)
जल तरंग गाइड	२॥)
बैंजो गाइड	२॥)
हारमोनियम पुष्पांजली	२॥)
बांसुरी गाइड	२॥)
संगीत वाटिका	३)
स्त्री शिक्षा	२॥)
पाक भारती	६)
भारतीय वीरांगनायें	३)
हमारी मातायें	३)
मिडवाइफरी	३॥)
जीवन का आनन्द	४॥)
महिला मन्जरी	६)

स्वास्थ्य उपयोगी

ब्रह्मचर्य साधन	१)
व्यायाम शिक्षा	२॥)
लाठी शिक्षा	१)
मल्ल युद्ध	१।)
हम स्वस्थ्य कैसे रहें	६)
सदा जवान रहो	१०)

किशोर साहित्य

मेवाड़ गौरव गाथा	२॥)
महाराणा प्रताप	१॥)

आर्य समाजी साहित्य

सत्यार्थ प्रकाश	२)
संस्कार विधि	१·)
उपदेश मञ्जरी	२)
जाग ए मानव	१=)
उपनिषद प्रकाश	६)
सांख्य दर्शन	२)
न्याय दर्शन	३।·)
वैशिषिक दर्शन	३)
योग दर्शन	४॥)
वेदान्त दर्शन	४॥)
मीमांसा दर्शन	७।)
दृष्टान्त सागर	१०॥)
वैदिक मनुस्मृति	४॥)
दयानन्द जीवनी	२।)
बाल्मीकि रामायण	१२)
महाभारत भाषा	१२)
महाभारत श्री लाल	१५)
आर्य समाज के नेता	३)
हमारे स्वामी	३)
कथा पच्चीसी	१।)
हिन्दी संस्कृत शिक्षा	२)
भजन पुष्पांजलि	१।)
प्राणायाम विधि	।=)
तीन प्रमुख योग	२।)
योग आसन बड़ा	२॥)
मानसिक ब्रह्मचर्य	१२)
ऋग्वेद ७ जिल्दों में	५६)
यजुर्वेद २ जिल्दों में	१६)
सामवेद १ जिल्द में	८)
अथर्ववेद ४ जिल्दों में	३२)
मीरां के गीत	॥)
धर्मवीर हकीकत	२॥)
हमारा प्रातः स्मरण	।=)

उपरोक्त सभी पुस्तकें देहाती पुस्तक भण्डार की छपी हुई हैं वेद छपने की व्यवस्था की जा रही है। डाक व्यय ग्राहक को देना होगा। पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० द्वारा मंगाने का एक मात्र स्थान— (V. P. D. 3 62)

देहाती पुस्तक भंडार

चावड़ी बाजार देहाती बिल्डिंग, दिल्ली—६

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेद ध्वज

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

मार्च	१९६३
फाल्गुन	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	८

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

हंस पोल प्रकाश

जिसकी आप चिर प्रतीक्षा में थे अप्रैल मास में बड़ी सज धज के साथ प्रकाशित हो रहा है । जो समाजें प्रचारार्थ मंगाना चाहें वे अपने आर्डर तुरन्त भेज दें ।—व्यवस्थापक

सत्यार्थ प्रकाश का अपूर्व स्वागत

सत्यार्थ प्रकाश का अभिनव संस्करण प्रकाशित हो गया । जिस भी व्यक्ति ने देखा हृदय खिल गया । पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु श्री-पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, आचार्य विश्वश्रवा, ला० रामगोपाल जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के मन्त्री डाक्टर हरिप्रकाश जी आदि महानुभावों ने इस संस्करण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है ।

अनेक पाठकों में से एक पाठक के उद्गार पढ़िये—

"सत्यार्थ प्रकाश मिल गया । देखते ही चित्त प्रसन्न हो उठा । आपने इतनी उत्तम पुस्तक इतने सुन्दर आकार में, इतना शुद्ध और इतने सुलभ मूल्य में दिया हमारे कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं । अवश्य यह पुस्तक सब को पसन्द आयेगी । पण्डित जी के संशोधन ने इसमें सोने में सुगन्ध ला दिया ।"

—सत्यनारायण पाण्डेय एम० ए०

इस संस्करण की विशेषताए

१. श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने महर्षि की हस्त-लिखित मूल प्रति से मिलाकर इसे शोधा है। पण्डित जी के अनुसार अन्य संस्करणों में लगभग १५०० अशुद्धियां हैं, जिनका उल्लेख टिप्पणी में कर दिया है ।
२. पैराग्राफों पर क्रमसंख्या इसकी दूसरी महान् विशेषता है ।
३. हर पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख है ।
४. अकारादि क्रम से प्रमाण सूची ।
५. बढ़िया सफेद कागज, मोती सी छपाई, मजबूत सुनहरी जिल्द ।

बड़े आकार के ८५० के लगभग पृष्ठ संख्या की इस पुस्तक का एक प्रति का लागत मात्र मूल्य १२) रुपये है । नैट १०)

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली ।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)

(२० पुस्तकों का संग्रह)

बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ।।=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या) ५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

पं० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति) ३७
आर्य सिद्धान्त दीप १) २५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवर की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
पं० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

सविता देव का भर्गः स्वरूप

❀ वेद मुनि परिव्राजक

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । यजु० ३६ । ३ ॥

(भूः) भू सत्तायाम्, परमात्मा की सत्ता है। चाहे वह दृष्टिगोचर न हो किन्तु उसकी सत्ता तो सर्वत्र विद्यमान है। दृष्टिगोचर तो संसार के अनेक पदार्थ नहीं होते किन्तु उनकी सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। शब्द की आकृति किसी ने नहीं देखी किन्तु वह है और आकाश में रहता है। आकाशवाणी (रेडियो) पर तो सहस्रों मील से आने वाले शब्द सुने ही जाते हैं वह किसी तार आदि के आश्रय से एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं भेजे जाते अपितु बिना तार के ही आकाश में हो कर आ रहे होते हैं किन्तु दृष्टिगोचर नहीं होते। यह तो दूर की बात हुई, इसके विषय में सम्भवतः यह कहा जा सके कि दूरस्थ होने से अनेक पदार्थ नहीं दीखते, शब्द का न दीखना भी उसी कोटि का है। दिन-रात मानव परस्पर वार्तालाप करते हैं, किसी भी बोलने वाले के मुंह से सुनने वाले के कान तक कोई तार नहीं लगा होता परन्तु फिर भी शब्द दिखाई नहीं देता। इस का अर्थ यह नहीं कि शब्द है ही नहीं। यदि शब्द होता नहीं तो सुनाई भी नहीं देता। किसी वस्तु के न दिखाई देने से यह कल्पना कर लेना कि वह है ही नहीं, होती तो दिखाई देती नितान्त भूल है। शब्द ही क्या ? इसी प्रकार के अनेक पदार्थ इस संसार में हैं कि जिन्हें हम नहीं देख पाते।

वायु संसार में है, गति कर रहा है। वायु के बिना हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। वायु के होने से, उसके अस्तित्व से संसार का कोई भी मनुष्य नकार नहीं कर सकता, किन्तु वायु को हम देख नहीं सकते। सुगन्ध और दुर्गन्ध के अस्तित्व से भी नकार नहीं किया जा सकता किन्तु दृष्टिगोचर यह भी नहीं होती। खट्टा, मीठा आदि षट् रसों के ही किसने दर्शन किये हैं, किन्तु हैं यह भी। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, कठोरता-नर्मी आदि भी इसी प्रकार की हैं जिनकी हम अहोरात्र तथा पदे-पदे अनुभूति करते रहते हैं किन्तु चर्म चक्षुओं से इन्हें भी नहीं देख पाते। कोई इनके अस्तित्व से नकार करने का साहस भी नहीं कर सकता। जब इतने परमेश्वर पदार्थों के दृष्टिगोचर न होने पर भी उनके अस्तित्व से नकार नहीं किया जा सकता तब उस परम पिता परमात्मा के दृष्टिगोचर न होने मात्र से उसके अस्तित्व से नकार किस प्रकार किया जा सकता है ?

भूरिति वै प्राणः, भू निश्चयपूर्वक प्राण है। वह प्रभु प्राण है, प्राण स्वरूप है। न होता प्राण स्वरूप तो सृष्टि उत्पत्ति से पहले "आनीदवातं स्वधया तेदकं" (ऋग्वेद) 'आनीत्-अवातं स्वधया तत्-एकम्' (अवातम्) बिना वायु (तत्-एकं) वह अकेला (स्वधया) स्व धारणा से, स्वधारण शक्ति से (आनीत्) श्वास ले रहा था, जीवित था। बिना प्राण के जी रहा था, प्राण नाम वायु का है बिना वायु के ही जी रहा था। वायु था ही कहां तब, जब सृष्टि नहीं थी तो वायु कहाँ से आया। वायु भी तो सृजा ही गया है 'सृज् वर्त्तमानानाम्' जब सृजन नहीं हुआ था तो वायु भी नहीं था। तभी तो परमात्मा प्राण स्वरूप है। सत्य तो यह है कि इस वायु में भी शक्ति उसी प्राण स्वरूप प्रभु की कृपा से है। उस परम देव ने ही प्रकृति के परमाणुओं को एकत्र करके इस वायु का निर्माण किया है जो प्राणिमात्र के जीवन का कारण है। परमात्मा इस भौतिक वायु को बना कर प्राणी मात्र को जीवन देने से जीवनों का भी जीवन, प्राणों का भी प्राण है। इतना विवेचन यह परिणाम निकालने के लिये

पर्याप्त है कि न केवल प्रभु है ही अपितु प्राण स्वरूप है और सारे प्राणी जगत् के भी जीवन का कारण अर्थात् प्राणों का भी प्राण है।

(भुवः) भुवरित्यपानः 'यः सर्वं' दुःखमपानयतिसोऽपानः' जो सब दुःखों से रहित तथा जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इस लिये उस परमेश्वर का नाम भुवः है। वह परमात्मा समस्त जीवों के दुःखों को दूर करने वाला है किन्तु जीवों का कार्य है कि वह उस प्रभु का संग प्राप्त करें। जीव और परमात्मा के व्याप्य व्यापक संबंध के कारण संग तो अनायास ही, बिना प्रयत्न किये ही प्राप्त है, तब संग प्राप्त करने का क्या अर्थ ? जिस प्रकार बिना विधि पूर्वक प्रयत्न किये वस्त्रों के ऊपर रखा हुआ भी साबुन वस्त्रों को स्वच्छ नहीं कर सकता, यद्यपि उस में मैल को दूर कर वस्त्र को स्वच्छ करने की शक्ति है उसी प्रकार परमात्मा के जीवात्मा में व्यापक होने मात्र से जीव के दोष दूर नहीं हो सकते और दोषों का परिणाम दुःख उसे यथा तथ्य रूपेण प्राप्त होता ही रहेगा। दुःख नाश के लिये तो उसे परमात्मा की शक्ति और न्यायव्यवस्था को समझना ही होगा, तभी दुःख नाश का लाभ प्राप्त हो सकेगा।

(स्वः) स्वरिति व्यानः 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः' जो नाना प्रकारेण जगत् में व्यापक होकर सब का धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "स्वः" है तथा 'स्व' सुख नाम, स्वः नाम सुख का है। परमात्मा स्वयं सुख स्वरूप है, उसमें दुःख का नितान्त, सर्वथा अभाव है। उसे कभी दुःख नहीं सताते अतः वह सुख स्वरूप, सुख का भण्डार और सुख का हेतु है। संसार के सारे सुख तो वास्तव में सुखाभास मात्र ही हैं। उनमें सुख का आभास मात्र ही है परिणाम तो उनका दुःख ही है। 'जहां भोग, तहां रोग वाली लोकोक्ति ठीक ही है। भोग से रोग उत्पन्न होते हैं, रोगों से कष्ट होता है, अतः ज्ञात हुआ कि सांसारिक सुखों के साथ दुःख लगे ही रहते हैं। दुःखों का जहां नितान्त अभाव हो वह तो वही है सुख स्वरूप परमात्मा अतः उसी का संग प्राप्त करने का उपाय करना चाहिये, यही चरम और यही परम लक्ष्य होना चाहिये। उसी की प्राप्ति में मानव जीवन की सफलता है, इतनी बड़ी सफलता जिसका विवेचन इस अल्पज्ञ की, जीवात्मा की शक्ति के बाहर है। है भी तो भूः भुवः स्वः प्राणों का प्राण अर्थात् प्राणी मात्र के जीवन का कारण, दुःखों का नाशक तथा सुखों का भण्डार।

(तत्) उस (सवितुः) सर्वोत्पादक, सब के उत्पन्न करने वाले "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पन्न करने वाला है। है ही, इसमें सन्देह को स्थान ही कहां है ? कोई है संसार में जो यह कह सके कि इस संसार को अमुक व्यक्ति ने बनाया है। कोई भी जब नहीं था, तब भी वह था "हिरण्य गर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" ऋ० १०।१२१।१ उत्पन्न हुए प्राणिमात्र का वह एक मात्र हिरण्य गर्भ स्वामी सृष्टि की उत्पत्ति से पहले था। उसी हिरण्यगर्भ परमदेव ने "ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत" ऋत, यथार्थ, शाश्वत नियमों और सत्य स्वरूपा प्रकृति से स्व सामर्थ्य, अपने पुरुषार्थ से उत्पन्न किया।

और किस में था यह सामर्थ्य ? कौन कर सकता था इतना बड़ा पुरुषार्थ ? यह तो सब उसी महाबली परम तपस्वी और पुरुषार्थी का महान् तप और परम पुरुषार्थ है। तो हम उसी महाबली तथा परम तपस्वी सब के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) देव के, दिव्य स्वरूप के 'योदीव्यति दीव्यते वा स देवः' जो सब सुखों का, सुख के साधनों का देने वाला प्रभु है वा 'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा' दान देने वाला, दे रहा है, वह महादानी है, उसके भण्डार सदा खुले हैं। भूल यदि है तो लेने वालों की देने वाले की नहीं। 'दीपनाद्वा' वह दीप्त हो रहा है, प्रदीप्त हो रहा है, दोष उसका नहीं हमारी दृष्टि का है। उर्दू के कवि के शब्दों में वह तो पुकार पुकार कर कह रहा है। [शेष पृष्ठ ९ पर]

'श्रीमद्भगवद्गीता' पर प्रलाप

❀ वैदिकगवेषक, आचार्य शिवपूजन सिंह
"पथिक" बी. ए., विद्यावाचस्पति,
साहित्यालङ्कार, विशारद, कानपुर।

कुख्यात संस्कृति-विरोधिनी पत्रिका "सरिता" दिल्ली "दीपावली विशेषांक" नवम्बर १९६२ ई०, अङ्क २०५ पृष्ठ ६९ से ७६ तक में श्री गङ्गासहाय प्रेमी का "गीता कब लिखी गई ? क्या उसका महाभारत, व्यास अथवा कृष्ण से कोई सम्बन्ध है ?" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। यहाँ प्रेमी जी के लेख का शवच्छेदन (पोस्टमार्टम) किया जाता है।

प्रेमी—पृष्ठ ६९-७० "श्रद्धा और विश्वास की बात तो अलग रही पर यदि बुद्धि का थोड़ा सा भी प्रयोग किया जाए तो गीता और कृष्ण का सम्बन्ध एक दम काल्पनिक जान पड़ता है हास्यास्पद भी। इसके कई कारण हैं:—(अ) किसी भी समय पद्यबद्ध बातचीत का चलन इतिहास से सिद्ध नहीं होता। हो सकता है कि व्यास ने कृष्णार्जुन सम्वाद को गीता का वर्तमान रूप दिया हो।

(आ) गीता के गद्यरूप में भी कृष्ण के भाव नहीं माने जा सकते। युद्धभूमि में इतना समय कहां था कि ७०० श्लोकों का वार्तालाप चलता रहता। इस बातचीत में चार घण्टे—लगभग सवा प्रहर-से कम समय नहीं लग सकता।

(इ)·····गीता के उपदेश के लिए समय बिलकुल नहीं था।·····

(ई) गीता के उपदेश का समय इतना बेतुका बताया गया है कि उस अवस्था में सवा प्रहर का समय निकालना सर्वथा असम्भव है।·····तर्क और प्रमाण व्यास को भी गीता का रचयिता नहीं मानने देते। अधिकांश प्रमाण तो महाभारत के ही हैं।"

समीक्षा:—लेखक अपने तथ्यहीन प्रमाणों के आधार पर कुतर्करूपी कोप-कोदण्ड से 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसे पवित्र ग्रन्थ पर प्रहार करता है। गीता और कृष्ण का अटूट सम्बन्ध है काल्पनिक व हास्यास्पद नहीं वरन् लेखक की बात ही हास्यास्पद ज्ञात होती है।

कुरुक्षेत्र की युद्धस्थली में योगिराज कृष्ण ने अर्जुन को जो अलौकिक उपदेश दिया था उसी को व्यास जी ने अनुपम रूप में प्रकट किया। गीता का क्रम, पदलालित्य, सुसंगतता, काव्यस्फूर्त्ति प्रभृति पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि व्यास जी की ही प्रतिभा से गीता बनी है।

गीता के उपदेष्टा योगिराज कृष्ण जी हैं। उपदेश को प्रतिभाशाली काव्यरूप देने वाले महर्षि वेदव्यास है। गीता में अनृत, व्याघात, पुनरुक्त प्रभृति दोष नहीं हैं। महाभारत में 'गीता भाग' सर्वोत्तम है। गीता के कारण आर्यावर्त का गौरव अमर हो गया है।

रणक्षेत्र में उपदेश का समय:—प्रेमी जी वर्तमान युद्ध की ओर दृष्टि डालकर यह आक्षेप करते हैं कि युद्धक्षेत्र में समय नहीं था। आपको उस समय की दृष्टि से विचार करना चाहिये। उस समय के आर्यों की स्थिति, विनाशकाल में भी धर्मभाव, धर्मयुद्ध के नियम, प्रभृति देखे जायं तो मानना पड़ेगा कि ऐसी बातों के लिए समय का प्राप्त होना असम्भव नहीं था। युद्ध के आरम्भ में युधिष्ठिर का भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य के पास आशीर्वाद व अनुज्ञा के लिए जाना, कई अन्य बातों के पूछने आदि के लिए समय मिल गया तो युद्ध भी

एक दम प्रारम्भ नहीं हुआ था, केवल सचेत होने के लिए शङ्खध्वनि की गई थी। प्राचीन प्रथा के अनुसार शिष्टाचार हुए अर्जुन ने भी सब से पूर्व अपने वाण गुरुद्रोणाचार्य के पादों के पास फेंक कर अपने गुरु को नमस्ते किया था। युद्ध के नियम परस्पर सम्मति से दोनों पक्षों ने स्थिर कर लिए थे। सब से पहले कौरवों की ओर से वाण छूटे फिर पाण्डवों की ओर से छोड़े गये। इसलिये कृष्ण का अर्जुन को समझाने के लिये पर्याप्त समय मिल सकता था। यह सम्वाद बातचीत के रूप में था, श्लोकबद्ध नहीं था। वेदव्यास जी ने उस सम्वाद को काव्यरूप में परिणत किया। प्रश्नोत्तर रूप में सम्वाद को रखना, क्रम बाँधना, तत्त्वज्ञान भरना, धर्म, कर्म, अकर्म की महत्ता को बतलाना यह व्यास जी का ही कार्य था।

'गीता' से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह वेदव्यास की कृति है। यथा—

"इत्येहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
सम्वादमिमश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥"
(गीता अ० १८, श्लो० ७४)

(संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं)—"हे धृतराष्ट्र! कृष्ण और महात्मा अर्जुन का यह आश्चर्यजनक सम्वाद जो अत्यन्त विस्मय कारक और रोमाञ्च करने वाला है इसको मैंने सुना।"

यह सम्वाद युद्ध क्षेत्र में हुआ था तो संजय ने कैसे सुना ?

इसका उत्तर आगामी श्लोक में है:—

"व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमंगुह्यमहंपरम् ।
योग योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥"
(गीता अ० १८ श्लो० ७५)

अर्थात्—"इस परम गुह्य सम्वाद को जो चित्तवृत्ति निरोध करने वाला है स्वयं साक्षात् कथन करते हुए योगेश्वर कृष्ण से व्यास जी द्वारा मैंने सुना।"

अतः तर्क और प्रमाण दोनों ही व्यास जी को श्री मद्भगवद्गीता का रचयिता मानते हैं।

प्रेमी:—पृष्ठ ७०—(अ) श्लोक संख्या में परिवर्तन : यदि गीता की मान्यता वास्तव में वेदों से अधिक या उनके समान होती तो उसकी मौलिकता सुरक्षित रखने के लिये अर्थात् घटा बढ़ी रोकने के लिए, कई कदम उठाए जाते।.....महाभारत के अनुसार गीता का परिमाण इस प्रकार है :

"षट् शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवं
अर्जुनः सप्तपंचाशत् सप्तषष्टिस्तु संजयः
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताथाः मानमुच्यते।"

(६२० श्लोक कृष्ण ने कहे, ५७ अर्जुन ने कहे, ६७ संजय ने कहे और १ धृतराष्ट्र ने कहा)

इसके अनुसार गीता की श्लोक संख्या ७४५ बैठती है पर आज गीता में ७०० श्लोक ही पाये जाते हैं, जिनका विभाजन इस प्रकार है: कृष्ण ने ५७४, अर्जुन ने ८६, संजय ने ३९ और धृतराष्ट्र ने १ श्लोक कहा है।

स्पष्ट है कि आजकल प्रचलित गीता व्यासकृत नहीं है क्योंकि उसमें ७४५ श्लोक थे। साथ ही पात्रों के बोलने की मात्रा में भी परिवर्तन दिखाई देता है।"

समीक्षा:—वेदों के चार संहिता भाग (ऋग्, यजु, साम, अथर्व०) ईश्वरीय ज्ञान है और वैदिक संस्कृत में हैं। अतः उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है। ऋषिकृत ग्रन्थों में धूर्तों ने समय २ पर श्लोक मिला दिए हैं श्रीमद्भगवद्गीता में वास्तव में ७०० श्लोक ही हैं जो प्रामाणिक हैं। १ श्लोक धृतराष्ट्र के ४१ संजय के, ८५ अर्जुन के और ५७३ कृष्ण जी के हैं कुल ७०० श्लोक होते हैं।

आपने जो ७०० श्लोकों का वर्गीकरण किया है वह अशुद्ध है। मैंने जो वर्गीकरण किया है उसे रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०,

एल-एल० बी०※ तथा पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ† ने भी माना है।

आपने जो ७४५ श्लोक वाली गीता की चर्चा की है उसके सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक जी का कहना है कि "बम्बई में गणपत कृष्ण जी के छापेखाने में मुद्रित महाभारत की पोथी में भीष्मपर्व में वर्णित गीता के अठारह अध्यायों के बाद जो अध्याय आरम्भ होता है, उसके (अर्थात् भीष्मपर्व के तेंतालीसवें अध्याय के) आरम्भ में साढ़े पांच श्लोकों में गीता-महात्म्य का वर्णन किया गया है और उसमें कहा है—

षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत् सप्तषष्टिं तु संजयः।
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते॥"

"अर्थात्—"गीता में केशव के ६२०, अर्जुन के ५७, सञ्जय के ६७ और धृतराष्ट्र का १, इस प्रकार कुल मिला कर ७४५ श्लोक हैं।"

मद्रास इलाके में जो पाठ प्रचलित है उसके अनुसार कृष्णाचार्य द्वारा प्रकाशित महाभारत की पोथी में ये श्लोक पाये जाते हैं; परन्तु कलकत्ते में मुद्रित महाभारत में ये नहीं मिलते, और भारत टीकाकार नीलकण्ठ ने तो इनके विषय में यह लिखा है, कि इन ५१।२ श्लोकों को, "गौड़ैः न पठ्यन्ते"। अतएव प्रतीत होता है कि ये प्रक्षिप्त हैं। परन्तु यद्यपि इन्हें प्रक्षिप्त मान लें, तथापि यह नहीं बतलाया जा सकता कि गीता में ७४५ श्लोक (अर्थात् वर्तमान पोथियों में जो ७०० श्लोक हैं उनसे ४५ श्लोक अधिक) किसे और कब मिले। महाभारत बड़ा भारी ग्रन्थ है। इसलिए सम्भव है कि इसमें समय समय पर अन्य श्लोक जोड़ दिये गये हों तथा कुछ निकाल डाले गये हों। परन्तु यह बात गीता के विषय में नहीं कही का सकती। गीता-ग्रन्थ सदैव पठनीय होने के कारण वेदों के सदृश पूरी गीता को कण्ठाग्र करने वाले लोग भी बहुत थे, और अब तक भी कुछ हैं। यही कारण है, कि वर्तमान गीता के बहुत से पाठान्तर नहीं हैं। और जो कुछ भिन्न पाठ हैं वे सब टीकाकारों को मालूम हैं। इसके सिवाय यह भी कहा जा सकता है कि इसी हेतु से गीता ग्रन्थ में बराबर ७०० श्लोक रखे गये हैं। कि उसमें कोई फेरफार न कर सके। अब·····अतएव, वर्तमान सात सौ श्लोकों की गीता ही को प्रमाण मानने के सिवाय अन्य मार्ग नहीं है।"†

आपने जो यह लिखा है कि 'गीता की मान्यता वास्तव में वेदों से अधिक है', ऐसा कोई भी विद्वान् नहीं मानता है। यहां तक कि आद्य श्री शङ्कराचार्य जी महाराज अपने गीताभाष्य के उपोद्घात में लिखते हैं कि:—

"इदं गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसार-संग्रहभूतं दुर्विज्ञेयार्थम्।"

अर्थात्—"यह गीताशास्त्र सम्पूर्ण वेदार्थ का सार-संग्रह रूप है और इसका अर्थ समझने में अत्यन्त कठिन है।

अतः आद्यशङ्कराचार्य जी, श्रीरामानुजाचार्य जी

※ "महाभारत-मीमांसा" पृष्ठ ५६१ का टिप्पणी [सन् १९२० में श्री बालकृष्ण पांडुरंग ठकार, बुधवार पेठ, नं० १७३ पूना द्वारा प्रकाशित, हिन्दी संस्करण]

† "गीता-विमर्श" पृष्ठ ४२ [संवत् १९८१ वि. में वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

† "श्री मद्भागवद् गीता रहस्य" पृष्ठ ५१२-५१३ [सन् १९४८ ई० में जयन्त तिलक घर क्रमांक ५६८ नारायणपेठ, गायकवाड वाडा पूना नं० २ द्वारा प्रकाशित हिन्दी संस्करण]

तुलना करो श्री चिन्तामणि विनायक वैद्यकृत "महाभारत-मीमांसा" पृष्ठ ५६१, पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ कृत "गीता-विमर्श" पृष्ठ ४२।

लोकमान्य पं० बालगंगाधर तिलक, श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ, स्वामी हरिप्रसाद जी वैदिक मुनि, पं० आर्य मुनि जी, पं० कृष्णस्वरूप जी विद्यालङ्कार, पं० सातवलेकर जी प्रभृति विद्वानों ने श्रीमद्भगवद्गीता में ७०० श्लोकों को ही प्रामाणिक माना है।

प्रेमी—पृष्ठ ७२-"……यदि गीता और महाभारत एक ही व्यक्ति की रचनाएं होतीं तो वह उस प्रसंग को कैसे भूल जाता जहां कृष्ण द्वारा विराट् रूप दिखा कर दुर्योधन को अभिभूत किया गया था।"

समीक्षा—यह निर्विवाद है कि गीता के रचयिता वेदव्यास जी हैं जैसा कि मैंने गीता के ही अ० १८ श्लोक ७५ से सिद्ध कर दिया है।

वर्तमान 'महाभारत' के रचयिता केवल व्यास जी ही नहीं हैं, वरन् व्यास, वैशम्पायन और सौति तीन हैं।

लोकमान्य पं० बालगंगाधर जी तिलक का मत है कि:—"……वर्तमान महाभारत के आदिपर्व में लिखा है, कि उपाख्यानों के अतिरिक्त महाभारत के श्लोकों की संख्या चौबीस हजार है (आ० १-१०१) और आगे चल कर यह भी लिखा है कि पहले इसका 'जय' नाम था (आ० ६२-२०)। 'जय' शब्द से भारतीय युद्ध में पाण्डवों के जय का बोध होता है; और ऐसा अर्थ करने से यही प्रतीत होता है, कि पहले भारतीय युद्ध का वर्णन 'जय' नामक ग्रन्थ में किया गया था; आगे चल कर उसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में अनेक उपाख्यान जोड़ दिए गए और इस प्रकार 'महाभारत' एक बड़ा ग्रन्थ हो गया। जिसमें इतिहास और धर्म-अधर्म विवेचन का भी निरूपण किया गया है। आश्वालायन गृह्यसूत्रों के ऋषि तर्पण में—"सुमन्दु-जैमिनि-वैशंपायन-पैल-सूत्र भाष्य-भारत-महाभार, धर्माचार्याः "(आ० गृ० ३-४-४) भारत और महाभारत दो भिन्न २ ग्रन्थों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है, इससे भी उक्त अनुमान ही दृढ़ हो जाता है। इस प्रकार छोटे 'भारत' का बड़े भारत में समावेश हो जाने से कुछ काल के बाद छोटा 'भारत' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ शेष नहीं रहा और स्वभावतः लोगों में यह समझ हो गई, कि केवल 'महाभारत' ही एक भारत ग्रन्थ है।"…§

श्री चितामणि विनायक वैद्य एम० ए० का मत है कि—"……भारत संहिता का विस्तार २४००० श्लोक संख्या का है। इस वाक्य से यही प्रकट होता है कि वैशम्पायन द्वारा रचे गये ग्रन्थ में २४००० श्लोक थे। सौति के ग्रन्थ के विषय में यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि उसका विस्तार कितना है। सब लोग जानते है कि वैशम्पायन के 'भारत' में उपाख्यान आदि जोड़कर उसने एक लाख श्लोकों का महाभारत बना डाला। ……वर्तमान महाभारत के रचयिता व्यास, वैशम्पायन और सौति तीनों व्यक्ति काल्पनिक नहीं हैं किन्तु सत्य और ऐतिहासिक हैं।……"*

प्रेमी पृष्ठ ७४—"यदि इतिहास को ध्यान में रखकर विचार करें तो गीता का रचनाकाल आठवीं शताब्दी से पहले का नहीं ठहरता।…… बौद्ध विद्वानों ने नाम ले ले कर ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थों का खण्डन किया है पर उन में से किसी ने भी गीता का नाम नहीं लिया। इससे ज्ञात होता है कि उस समय या तो गीता थी ही नहीं और थी भी तो उसे मान्यता प्राप्त नहीं थी।……"

समीक्षा—"लोकमान्य पं० बालगंगाधर जी तिलक ने अपने "गीता रहस्य§ में "वर्तमान गीता का काल" लगभग १३ पृष्ठों में लिखा है। अन्त में उन्होंने लिखा है कि—"वर्तमान भगवद्गीता शालिवाहन शक के लगभग पांच सौ वर्ष पहले ही अस्तित्व में थी। डाक्टर भाण्डारकर, परलोक वासी तैलंग, रायबहादुर चिन्तामणि राव वैद्य और परलोक वासी दीक्षित का मत भी इससे बहुत

§ वही पृष्ठ ५२४।

* 'महाभारत-मीमांसा' पृष्ठ ८-९

§ "गीतारहस्य" पृष्ठ ५५८ से ५७० तक।

कुछ मिलता जुलता है और उसी को यहां ग्राह्य मानना चाहिए।..... †

आपका यह लिखना भी भ्रमपूर्ण है कि बौद्ध विद्वानों ने गीता का नाम नहीं लिया। तिलक जी ने अपने "गीता रहस्य" ८ से १६§ पृष्ठ में "गीता और बौद्ध ग्रन्थ" शीर्षक में तुलनात्मक विचार किया है। अतः आपका यह कथन प्रमत्त प्रलाप के सदृश हो जाता है कि उस समय गीता थी नहीं।

गीता में स्थित-प्रज्ञ (गीता २. ५५-७२), ब्रह्म-निष्ठ पुरुष के (४. १९-२३, ५. १८-२८) और भक्ति योगी पुरुष (१२. १३-१९) के जो लक्षण बतलाए हैं उनमें और निर्वाण पद के अधिकारी अर्हतों के अर्थात् पूर्णावस्था को पहुंचे हुए बौद्ध भिक्षुओं के जो लक्षण भिन्न २ बौद्ध ग्रन्थों में दिये गये हैं उनमें, विलक्षण समता देख पड़ती है (धम्म-पद श्लो० ३६०-४२३ और सुत्तनिपातों में से मुनि सुत्त तथा धम्मिकसुत्त देखो)।

प्रेमी की पृष्ठ ७२ "कृष्ण जब द्वारिका चलने लगे तो उनसे अर्जुन ने कहा·····आपने मित्रता-वश जो भी ज्ञान उस समय दिया वह मैं भूल गया। उसे दोबारा सुनना चाहता हूँ।·····

यह सुन कर कृष्ण पहले तो अर्जुन पर बहुत बिगड़े फिर असमर्थता दिखाते हुए बोले कि उसे तो मैं भी भूल गया।·····अब उसे दोहराना संभव नहीं है।·····यदि गीता और महाभारत का लेखक एक होता तो वह गीता को भूल जाने की बात कहते समय कृष्ण की उन गर्वोक्तियों को न भुला देता जो उन्होंने अपने को योगी त्रिकाल दर्शी, सर्वज्ञ, परमेश्वर आदि बताते हुए की थी।·····

समीक्षा—महाभारत युद्ध के पश्चात् सर्वत्र शान्ति छा जाने पर अर्जुन के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण जी ने कहा था कि—

"परं हि ब्रह्म कथितं, योग युक्तेन चेतसा।
न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः॥
स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः परिवेदने।
न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे संभविष्यति॥
(महाभारत, आश्वमेधपर्व, अ० १६)

"हे अर्जुन! योग युक्त चित्त से उस समय मैंने जो कुछ कहा था उसको ठीक उसी प्रकार अब कहना असम्भव है, न वैसी स्मृति ही हो सकती है।"

योगिराज श्रीकृष्ण जी का कथन अक्षरशः उचित प्रतीत होता है क्योंकि प्रत्येक समय प्रत्येक बात के लिये अनुकूल नहीं पड़ता। रणक्षेत्र में आ डटने पर अर्जुन को विषाद उत्पन्न हुआ। उस समय श्री कृष्ण जैसे योगी ही अर्जुन के विषाद को हटा सकते थे।

अतः आपका आक्षेप निर्मूल है।

प्रेमी पृष्ठ ७६—"इसी प्रकार गीता के दो एक अपाणिनीय प्रयोग भी उसे अधिक पुराना सिद्ध नहीं कर सकते। यह प्रयत्न भी जानबूझ कर किया गया होगा जिससे व्याकरण के सहारे गीता को पाणिनि से प्राचीन सिद्ध किया जा सके।"

समीक्षा—प्रेमी जी को चाहिए था कि गीता के उन दो एक अपाणिनीय प्रयोग को भी प्रदर्शित करते तो उस पर पूर्ण रूप से विचार किया जाता। वास्तव में "श्रीमद्भगवद्गीता" पाणिनी के हजार या आठ सौ पूर्व लिखी गई है।·····β

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम. ए. इस प्रसंग पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—"ऐसा न मानना चाहिए कि पाणिनि के व्याकरण की दृष्टि से भगवद्गीता में जो थोड़े से अप-प्रयोग हैं वे गलत हैं। उन्हें गलत कहना ठीक वैसा ही होगा जैसे कोई भाषा-भास्कर के आधार पर पृथ्वीराजरासो की गलतियां निकालने की चेष्टा करे। वैसे तो पाणिनि के आधार पर दशोपनिषदों में भी गलतियां

† वही, पृष्ठ ५७०।
§ वही, पृष्ठ ५७० से ५८५ तक।
β श्री चिन्तामणि वैद्य एम. ए. कृत "महाभारत-मीमांसा" पृष्ठ ५८२।

चीनी चबा रहा है

❀ श्री मित्रसैन आर्य शास्त्री' एल० एस-सी०

बोलो आर्यो तुम मौन त्याग वे कहाँ गईं निधियां अनन्त ।
अणु अणु में खोज रहे कब से तुम पा न सके पर हाय हन्त ॥

कहां कवच और कहां ढाल वह कहां गई तलवार पुरानी ।
देख घेरते मातृभूमि को ये अफीमची सेनानी ॥

अरे रो रही फूट फूट कर भारत मां सुत के प्राणों को ।
अधिकारों को छोड़ न देना लद्दाख असम के कण कण को ॥

यदि लड़ते लड़ते क्लान्त हुआ तो दे मुझ को तलवार पुरानी ।
यदि कायर बन दे रहा पीठ ला मैं देखूं वैरी का पानी ॥

दे राणा का भाला मुझ को रतनसिंह की क्रोधानल ।
दे मुझ को सौगन्ध शिवा की दे ताना का वचन अटल ॥

दे पद्मा की पद रज मुझको चढ़ा शीश पर मैं जाऊं ।
ला आज विश्व के मङ्गल हित शिव सदृश हलाहल पी जाऊं ॥

वीर वैरागी की हुंकारें और तेरी तलवारें भीनी ।
भारत का बच्चा बच्चा भी देख चबाता है चीनी ॥

रुद्र रुक्ष क्या डर तुमको जल थल अम्बर एक बनादो ।
डोल उठे धरिणी तरिणी हर हर बम बम नाद गुंजादो ॥

केश खुले हों चढ़ी पुतलियां भौंहों के युग धनुष नवादो ।
दानवदल पद तले दबाकर गंगा जी से उन्हें बहादो ॥

—❀❀—

[पृष्ठ २ का शेष]

रोशन हैं मेरे जलवे तो हर शै में लेकिन ।
है नज़्र कोर तेरी क्या है कुसूर मेरा ॥

'द्योतनाद्वा' वह द्योतन कर रहा है, जहां स्वयं प्रकाशित है वहां अन्यों को भी प्रकाश प्रदान कर रहा है। यदि कोई उसके प्रकाश से लाभ न उठाये तो दोष किसका ? सूर्य तो बराबर आकाश से अपनी पूरी शक्ति के साथ अपनी रश्मियों को फैलाकर प्रकाश बखेर रहा है किन्तु उलूक उससे लाभ नहीं उठा पाता। इस में सूर्य का क्या दोष ? तो वह परमात्मा देव है उसी देव के (वरेण्यम्) वर्तुमर्हम्, स्वीकार करने, वरण करने योग्य अत्यन्त श्रेष्ठ (भर्गः) शुद्ध स्वरूप जो है उस को (धीमहि) धरेमहि, धारण करें।

(यः) जो सविता देव है, सर्वोत्पादक, सब का उत्पन्न करने वाला दिव्य स्वरूप प्रभु है वही (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्, प्रेरणा करे। वह सब का उत्पन्न करने वाला दिव्य स्वरूप प्रभु हमारी बुद्धियों को सदैव प्रेरणा करे, सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त करे।

जो सारे प्राणी जगत् के जीवन का कारण, दुःखों का नाशक और सुख स्वरूप है हम उस सर्वोत्पादक दिव्य स्वरूप प्रभु के वरण करने योग्य शुद्ध स्वरूप को धारण करें और वह [प्रभु] हमारी बुद्धियों को सदैव सत्कर्मों में प्रेरित करता रहे।

महाभारत शान्ति पर्व के ज्ञातव्य श्लोक

❀ श्री विश्वनाथ आर्योपदेशक

आजकल मैं महाभारत शान्तिपर्व को देख रहा हूँ इसके बहुत से श्लोक आर्योपदेशकों के लिए ज्ञातव्य हैं। अतः वेदप्रकाश के पाठकों के मनोरंजनार्थ अर्थ सहित दिए जाते हैं।

शशाप च महा तेजःसर्वलोकेषु योषितः ।
न गुह्यं धारयिष्यन्ती त्येवं दुःखसमन्विताः ॥
(६-११)

राजा युधिष्ठिर को यह जान कर कि कर्ण कुन्ती माता का कानीन पुत्र और मेरा बड़ा भ्राता था जो मारा गया बड़ा शोक हुआ। माता ने यह बात क्यों छिपा रखी, इसलिए उस महा तेजस्वी ने शाप दिया कि सब लोकों की स्त्रियाँ दुःखी होकर कोई बात गुप्त न रख सकेंगी।

यह एक पौराणिक विचार स्त्री जाति की अवहेलना के लिए है। अन्यथा न तो सब स्त्रियों के लिए ऐसा कहा जा सकता है, और न ही पुरुष इस दोष से रहित कहे जा सकते हैं। इस विषय में स्त्री पुरुष में तनिक भी अन्तर नहीं किया जा सकता।

क्लीवस्य हि कुतो राज्यं दीर्घ सूत्रस्य वा पुनः ।
(८-५)

कायर और पुरुषार्थ रहित को राज्य कहां ?

अहिंसा के यथार्थ भाव को न जान कर कायरता का बौधों और जैनों का अर्थ अपनाने से ही देश विभाजन के समय सहस्रों निरपराध मानव मारे गये और शेष घर बार लुटा कर निर्वासित हुए और भारत का कुछ भूभाग रिपु दबाये बैठे हैं।

अर्जुन द्वारा धन का महत्व

दरिद्रं पातकं लोके नैव तं च्छंस्तुमर्हसि ।
विशेषं नाधिगच्छामि पतितस्या धनस्य च ।
अर्था द्धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप ।
यस्यार्थास्तिस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ।
नाधनस्यास्त्ययंलोको न परः पुरुषोत्तम ॥
(८।१४-२२)

हे पुरुषोत्तम भ्राता युधिष्ठिर ! निर्धनता संसार में एक पाप है उसकी प्रशंसा न करे। मैं एक निर्धन और पतित में कोई विशेषता नहीं समझता। धन से धर्म और संसार के इच्छित सुख एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जिसके पास धन है उसी के मित्र और बान्धवजन होते हैं। वही मानव और पण्डित समझा जाता है निर्धन का न यह लोक है न परलोक।

धन की वेदों में भी बड़ी महिमा गाई गई है। यह एक बड़ी शक्ति है, अतः यह प्राप्तव्य है। धन बुरा नहीं धन का दुरुपयोग ही बुरा है। दुरुपयोग तो विद्या जैसे उत्तम पदार्थ का भी हानिकारक होता है। वस्तुतः भगवान् के संसार में कोई पदार्थ भी निकृष्ट नहीं। उपयोग ही बुरा भला होता है। खेत में डाला मल मूत्र भी खाद के रूप में बहुमूल्य पदार्थ बन जाता है। और औषधि के रूप में विष भी अमृत का प्रभाव रखता है अतः धन की निन्दा करने वाले मूढ़ होते है।

भीमवचन

श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः ।
अनुवाकहताबुद्धि र्नैषा तत्त्वार्थ दर्शिनी ॥१०-१॥

हे राजन् ! युधिष्ठिर। वेदों के विद्वान् श्रोत्रिय परन्तु मन्द बुद्धि मूर्ख की भान्ति जो केवल वेद के शब्दार्थ पर टिक बुद्धि पूर्वक अर्थ नहीं जानता तेरी बुद्धि भी तत्व को जानने वाली नहीं।

राजा युधिष्ठिर धर्म के नाम पर जुआ खेल कर महाभारत के युद्ध का कारण बना। धर्म के नाम पर अन्य भी अनेक त्रुटियां कर विपत्ति मोल

ली। इसी प्रकार हमारे पौराणिक पण्डित "बुद्धि पूर्वा वाक कृतिर्वेदे" महर्षि कणाद के तत्त्व को न समझ, ऋषिकृत और अनृषिकृत ग्रन्थों का विवेक न करके, मनूक्त प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द प्रमाण तीनों से धर्म का निर्णय न जान, धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार कर रहे हैं। हमारे देश के नेता दो कौमों के नाम पर भारत का विभाग होने पर भी इसके नाम से भयभीत होकर देशभक्त और देश द्रोही का विवेक भूल गये। सहस्रों गुप्तचर भारत की हानि में लगे हुए हैं, परन्तु इनके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं सूझता।

दण्डमहत्व

राजदण्डभयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
यमदण्डभयादेके परलोक भयादपि ॥ १५-५॥
परस्परभयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥९॥
नाभीतो यजते राजन् नाभीतो दातुमिच्छति।
नाभीतः पुरुषः कश्चित् समये स्थातुमिच्छति ॥
॥ १३ ॥

सर्वो दण्ड जितो लोके दुर्लभोहि शुचिर्नरः ॥३४॥

कोई राजदण्ड के भय से कोई यमदण्ड, परलोक और परस्पर बदले के भय से पापी लोग पाप से बच जाते हैं। १५-५ संसार में सर्वथा यह सिद्ध है अतः सब कुछ दण्ड के सहारे स्थिर रहता है। ९। बिना भय के न कोई यज्ञ करता है न दान देता है। ऋण भी नहीं उतारता, न ही अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है। वस्तुतः संसार दण्ड से ही विजित है। अपना कर्तव्य जानकर पाप रहित पवित्र नर संसार में दुर्लभ ही है।

यदि देखा जावे तो परलोक में पाप का दण्ड देने वाले भगवान् से डर कर पाप से बचने वाले बहुत थोड़े लोग हैं। इन से अधिक वे लोग हैं जो राजदण्ड के भय से पापों के लिए उद्यत नहीं होते। अधिक लोग तो परस्पर भय अर्थात् बदले के डर से अपराधों को नहीं करते। जहां यह भय नहीं रहता अर्थात् किसी को निर्बल देखा जाता है वहां पर राज दण्ड से निरपेक्ष होकर अत्याचार होने लगता है। अतः जो लोग बदले की भावना को मिटाना चाहते हैं वे अत्याचार को हवा देते हैं।

मेरा तो यह विचार है कि पाकिस्तान बनते ही जो वहां पर लूटमार मारघात आरम्भ हो गई उसका कारण यही विचार था कि इसका कोई बदला न लिया जावेगा। यदि बदले का भय होता तो न ये अत्याचार पाकिस्तान में हिन्दुओं पर होते और न कुछ निरपराध मुसलमान भारत में कष्ट उठाते।

यदि यह सन्दर्भ वेदप्रकाश के पाठकों के लिए रुचिकर हुआ तो आगे भी लिखा जायगा।

—❀❀—

भारत चेतावनी

[रचियता—छगनलाल कश्यप]

[१]

वैभव गया सुख सो गया फैली अन्धेरी रात रे!
चिन्ता चिता तेरी अभागे देखती अब बाट रे,
जड़ दास्य की जंजीर से जकड़े खड़े जल्लाद रे।
उठ जाग! जगदाधार जल्द जवान भारत जाग रे॥

[२]

जड़वाद के भीषण भंवर में विश्व नौका जा रही।
निर्बल जगत पर प्रबल की रण गर्जनायें हो रही॥
बस पूर्ण कर अब भोग निन्द्रा हो चुका विश्राम रे।
हे शेष शाही विश्व के सम्राट भारत जाग रे॥

[३]

आशा न तज तेरे ही पथ पर आ रहा संसार रे।
आशा किसी से कर न तेरा तूही तारणहार है॥
तेरे ही हाथों में छिपा है पूर्व गौरव भाल रे।
चल जागविश्वा धार वीर विराट भारत जाग रे॥

[४]

तू अज नहीं गज केसरी किंचित पलक तो खोल रे।
आर्यत्त्व ही मानव्य है यह मन्त्र फिर से बोल रे॥
बस क्षात्र बल संजीवनी से ही जगेंगे भाग्य रे।
हे विश्व शांति निधान! आज अखण्ड भारत जाग रे॥

आर्यसमाज की उपादेयता

❀ श्री चन्द्रिका प्रसाद पाठक शास्त्री सा० रत्न
व्याकरण-साहित्य-पुराणेतिहासाचार्य'

हमारे भारतीय शास्त्र वाङ्मय जगत् में वेदों का स्थान सर्वश्रेष्ठ और आदरणीय है। एक समय था जब कि वेदों के उपदेशों को मानकर लोग तदनुसार आचरण करते और परमानन्द का लाभ लेते थे और घर घर में वेदों का प्रचार था।

काल क्रम से ऐसा समय आया कि वेदों का मात्र प्रचार ही नहीं वैदिक भाषा का भी प्रचार बहुत कम हो गया। सब लोग अन्यान्य मन गढन्त मार्गों पर चलने लगे और अनेक मतावलम्बियों का जाल सा बिछ गया। ऐसी अवस्था में जनता को सही मार्ग दिखलाने के हेतु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का प्रादुर्भाव हुआ। महर्षि प्रवर ने देश की आवश्यकता का अनुभव किया और आर्यसमाज नाम का आदर्शसमाज चलाया। इस समाज के द्वारा वैदिक विश्व का और हिन्दू जगत् का परम कल्याण सम्पन्न हुआ और हो रहा है। इसकी सफलता के लिए ईश्वर से हमारी हार्दिक अभ्यर्थना है।

इस समाज ने व्यर्थ पण्डितम्मन्य पुरुषों से सम्पन्न होने वाली आर्य जाति की अवनति की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है और हिन्दू जाति को दूसरी जाति में मिलने से रोका है।

हमारा देश आर्यवर्त कहलाता ही है इस देश में आर्य जाति का सर्वदा से बाहुल्य रहा है। सङ्कल्प में सुरक्षित आर्यवर्त शब्द का कोई रहस्य ही तो है।

वाल्मीकीय रामायण के मूल रामायण भाग में श्री रामचन्द्र जी को 'आर्यः सर्वसमश्चैव' में आर्य कहा गया है।

आर्य शब्द का अर्थ होता है श्रेष्ठ। आर्यसमाज श्रेष्ठ जनों का समाज है। यह समाज ईश्वर की सर्वव्यापकता में पूर्ण विश्वास रखता है। यह वेदों की प्रामाणिकता का प्रचारक और संरक्षक है।

साकार सर्वव्यापक हो नहीं सकता यही कारण है कि ईश्वर की सर्वव्यापकता में पूर्ण आस्था रखने वाला आर्य समाज ईश्वर को निराकार मानता है।

आर्यसमाज का वेद प्रेम सराहनीय है। यह समाज वैदिक यज्ञों के सम्पादन से बड़े बड़े पापों और अमङ्गलों के विनाश हो जाने की बात बतलाता है।❀

कोई ऐसी इच्छा नहीं जिसकी पूर्ति वैदिक कर्म-काण्ड की साधना से न हो जाय। हमारी मान्यता तो यह है कि वेद विरुद्ध साहित्य चाहे किसी का लिखा हुआ क्यों न हो वह आदरणीय नहीं है।

साधारण और निरक्षर व्यक्ति द्वारा भी वेद-प्रतिपादित बात यदि कही जाय तो वह मानने योग्य है परन्तु महापण्डित द्वारा लिखित अथवा कथित बात भी यदि वेद विरुद्ध हो तो उसे स्वीकृति नहीं देनी चाहिये।

अखिल धर्मों का मूल वेद है। वेदों का जितना अधिक प्रचार होगा विश्व में धर्म का भी उसी अनुपात से प्रचार सम्भव है।

वेद संस्कृत भाषा में हैं उनके ज्ञान के लिए सब लोगों को संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्यरूप में करना चाहिये। पाणिनि मुनि द्वारा लिखित अष्टाध्यायी सूत्र पाठ नामक ग्रन्थ संस्कृत भाषा सीखने में परम सहयोगी है।

आर्य जाति की अवनति में संस्कृत भाषा के प्रचार का अभाव भी एक कारण है।

आर्य समाज संस्कृत भाषा के उत्थान के लिये प्रयत्नशील है। आवश्यकता है कि सब लोग उसे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें और संस्कृत भाषा को राष्ट्र भाषा पद पर स्थापित हो जाने के लिये अपने कर्तव्य का परिपालन करें।

आर्यसमाज में आ गई बुराईयों के निराकरण का अभिलाषी है।

यह हिन्दू जगत् का परम हितैषी एवम् वैदिक कर्मकाण्ड का समुद्धारक है। ईसाइयों के जाल से रक्षा करने में निरन्तर निरत आर्य समाज का लोहा कौन नहीं मानता ?

❀ भाव यह है कि भविष्य में अमंगल और पाप की ओर से प्रवृत्ति हट जाती है (सम्पादक)

साधुओं से नम्र-निवेदन !

❀ श्री लक्ष्मण प्रसाद गुप्त ऐडवोकेट मथुरा

"देश को भ्रष्टाचार से बचाइये और वाममार्ग की ओर जाने से रोकिये।"

जब किसी देश में भ्रष्टाचार, दुराचार व अनाचार फैलते हैं तभी भगवान् साधुओं द्वारा उस देश की रक्षा करते हैं।

आपको मालूम होगा कि सांस्कृतिक कार्य-क्रमों के अन्तर्गत कालेज और स्कूलों में पढ़ने वाली गृहस्थियों की कुमारी लड़कियों को **परियां** बनाकर पब्लिक में नचाया जाता है—कालेजों के जवान लड़के व लड़कियां हाथ में हाथ मिला कर सामूहिक रूप से नाचते हैं और विषय-वासना भड़काने वाले अश्लील फिल्मी गाने गाते हैं, जिन से चरित्र-हीनता और विलासता फैलती है—चरित्र-हीनता और विलासिता सब पापों की जड़ है।

कुमारी (अविवाहित) लड़कियों को विद्याध्ययन के जमाने में विषय-वासना भड़काने वाले नाच और गानों से दूर रखना चाहिए। कुमारी लड़कियों का नचाना पाप है और उनको नचाने वाले व देखने वाले पापी हैं ?

कुछ ऐसी विषैली हवा चली है कि समाज-सुधारक, धर्म-प्रचारक, साहित्यकार, पत्रकार, अध्यापक, अध्यापिकायें, माता-पिता सभी इन नाचों का आनन्द लेने लगे है और जान या अनजान में वाम-मार्ग की ओर चल पड़े हैं।

रोजाना खबरें आती रहती हैं कि यहां डाके पड़े और यहां वहां कतल हुए। यह सब क्यों है ? यह इसलिए है कि धर्म को ढकोसला बताकर ईश्वर को भुला दिया है और सांस्कृतित कार्यक्रमों में कुमारी लड़कियों को परियों की तरह नचा कर धर्म की पूर्ती समझी जाती है।

पण्डित और कथावाचकों से प्रार्थना है कि वे कुमारी लड़कियों के विषय-वासना भड़काने वाले नाचों को रुकवाकर स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियों की रक्षा करें।

बड़ी शर्म की बात है कि अध्यापक और अध्यापिकायें अपना पुनीत कर्त्तव्य भूलकर अपनी और पराई लड़कियों को दुल्हा-दुलहिन बनाकर नचाते हैं—हमारा विरोध कुमारी (अविवाहिता) लड़कियों को नचाये जाने से है—विवाहिता लड़कियों के नाचों मे नहीं है—सरकार ने भी इन नाचों पर रोक लगा दी है, अब कोई अफसर किसी मैनेजर या अध्यापक या अध्यापिका से यह नहीं कह सकता है कि वे अपनी लड़कियों को नचाने के लिये भेजें।

महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

उपनिषदों का सन्देश	१)२५
प्रभुदर्शन	२)५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्दगायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
भगवान् शंकर और दयानन्द	)५०
सत्यनारायण व्रतकथा	)६३

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली

आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना

❀ "रक्षक"

[जनवरी अङ्क से आगे]

सभायें

परोपकारिणी सभा अयोग्य साबित हुई। प्रान्तीय प्रतिनिधि सभायें बन चुकी थी। तब सार्वदेशिक का संगठन किया गया। इधर अनेक संस्थान विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, आर्य्य साहित्य मण्डल, रामलाल कपूर ट्रस्ट, गोविन्दराम हासानन्द, विरजानन्द स्मारक सभा, दयानन्द स्मारक सभा, सत्य प्रकाशन आदि अनेक संस्थान अपनी शक्ति से काम कर रहे हैं। अनेक विद्वानों ने भी संस्थान खोले तुलसीराम स्वामी का स्वामी मुद्रणालय, गङ्गाप्रसाद प्रयाग वालों का कला मुद्रणालय युधिष्ठिर मीमांसक का प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान आदि आदि। प्राइवेट संस्थायें ही कुछ कार्य कर रही हैं। परन्तु परोपकारिणी सार्वदेशिक, प्रतिनिधि सभाओं का होना न होना बराबर है। इन सभाओं के पास लाखों रुपया है परन्तु इनके अधिकारियों की जेबें भरने में अधिक धन जाता है तथा पार्टीबाजी में शक्ति व्यय होती है। क्या सार्वदेशिक क्या अन्य प्रतिनिधि सभायें सबको वेद भाष्य कराने की धुन है। आर्य जनता से वेद-प्रचार के नाम लाखों रुपया लूट लिया गया उसका अधिकारियों द्वारा अधिकाधिक दुरुपयोग किया जा रहा है ये लोग पूरा हिसाब तक देना नहीं चाहते। परोपकारिणी वाले तो साफ ही कह देते हैं कि हिसाब से क्या मतलब काम हो रहा है। मजा ये है कि परोपकारिणी ऋषि का जीवन चरित्र तक तैयार नहीं करवा सकी। अङ्ग उपाङ्ग ब्राह्मण वेद व ऋषि ग्रन्थ आदि सब अशुद्ध छपते हैं। परोपकारिणी निरन्तर भूल पर भूल करती रही है। अब एक अपराध और करने जा रही है वह है केवल भाषा भाष्य का निकालना। आर्य्यों की भाषा संस्कृत है वेद भाष्य का संस्कृत भाग अधिक उपयोगी है केवल भाषा भाग छपाने से संस्कृत प्रेम में अधिक न्यूनता होगी।

सार्वदेशिक ने पांच लाख में नया भवन खरीदा। महासम्मेलन में लाखों फूंके परन्तु प्रचार कितना हुआ आर्य धर्म का। इधर आर्य्य जनता का सम्मेलन में न्यून एक करोड़ रुपया व्यय हो गया परन्तु इतना व्यय होने पर महासम्मेलन से आर्य्यों को क्या मिला। हमारी सार्वदेशिक को चुनौती है कि महासम्मेलन के बाद उसने क्या उखेड़ करली। आज प्रतिनिधि सभायें व समाजें सार्वदेशिक की आज्ञा पालन नहीं करती हैं। स्वयं सार्वदेशिक की दशा जातिगत गुट बनने से अत्यन्त खराब हो रही है। इन सभाओं के पीछे आर्य्य जनता का लाखों रुपया व्यय होता है तथा प्रचार कुछ नहीं। प्रतिवर्ष लाखों ईसाई बन रहे, कहां है हमारा प्रचार? क्या सभाओं के अधिकारी भांग के नशे में हैं? उत्तर प्रदेश सभा ने अपना अधिवेशन नैनीताल में बुलाया, सब से अधिक गर्मी इन अधिकारियों को लगती होगी। नैनीताल की ठण्डी हवा खाईये। अजीब अजीब धन्धे सूझते हैं। परोपकारिणी प्रधान अपने घर से इतने चिपटे हैं कि परोपकारिणी का रत्ती भर ध्यान नहीं। सार्वदेशिक के वर्तमान प्रधान पार्टीबाजी समाप्त करने गये पर वे वहां कुछ न कर सके। इन सभाओं में राजनीति में उलझे नेताओं की पूछ है। मजा ये है कि ब्राह्मण इन सभाओं में अत्यन्त थोड़े हैं उनकी आवाज नक्कार खाने में तूती है। आर्य्य

युवक ईश्वरीय प्रसाद प्रेम, भवानीलाल, राजेन्द्र जिज्ञासु, श्रीराम, कृष्ण, सुरेशचन्द्र, रमेशचन्द्र आदि महानुभावों को योग्य है कि इस सभाओं के पीछे बुरी तरह पड़ जावें क्योंकि जब तक इस ठर्रे को बन्द नहीं किया जायगा तब तक आर्य्य समाज बढ़ ही नहीं सकता इन धनिक अधिकारियों ने महा अन्धेर मचा रखा है।

जो व्यक्ति बेईमानी से पैसा कमाते हैं उन्हें धन का मद होता है, दुर्भाग्य से इन सभाओं में ऐसे व्यक्ति अधिक हैं। ये स्तेन ब्राह्मणों को पांव की जूती, रोटी का दास समझते हैं। दिल्ली के अनेक समाजें वार्षिकोत्सव में दस हजार रुपये की आतिशबाजी कर देती है। परन्तु एक वेदज्ञ ब्राह्मण को १५० रुपये से अधिक देना पसन्द न करेंगी। वस्तुतः ये अधिकारी अधिकांशतः बौद्ध व क्रिष्टान का मिश्रण है। पेण्ट टाई व कोट धारण करने वाले मानसिक दास भला क्या आर्य्य बनेंगे व क्योंकर ब्राह्मण का सम्मान करेंगे। आर्य्य जनता को चाहिये कि अपने हित को देखते हुए इस प्रतिनिधि सभाओं को धन देना बन्द कर दें या सभायें पूरा पूरा हिसाब दें।

हम तो परोपकारिणी सार्वदेशिक सभादि सब को यही निवेदन करते हैं कि भूल व अपराध सब से होते हैं आप अब तो सीधे रास्ते पर आजाइये। अन्यथा निकट भविष्य में ब्राह्मण की आह इस ठर्रे को भस्मीभूत कर देगी। हमारी बुरी गत संस्थाओं के कारण हुई। प्रत्येक समाज को संस्थाओं का लोभ है। तथा जैसे प्रतिनिधि वाले गड़बड़ करते हैं वैसे ये भी कम नहीं। डी० ए० वी० नामधारी विद्यालयों आदि में अध्यापकों को पूरा वेतन नहीं दिया जाता है। इन संस्थावादियों के कारण आर्य्य समाज अभी अन्धकारयुग में है तथा इन संस्थाओं का लोभ न छोड़ा गया तो हालत अधिक शोचनीय हो जायगी। धर्म निर्णय का काम हाथ नहीं बुद्धि करती है। तथा ऋषि ने कहा है कि सहस्र मूर्खों की अपेक्षा एक वेदज्ञ की बात माने। हम चुनाव के लिये एक ऐसी आवश्यक शर्त लगाये देते हैं जिससे आगे को गड़बड़ न हो। ऋषि ने धर्मार्य्य सभा व विद्यार्य्य सभा आदि बनाने को कहा है अतः ऋषि का आधार लेकर हम आर्य्य समाज को धार्मिक संगठन में आबद्ध कर देना चाहते हैं। अभी हमारा संगठन राजनीतिक है अतः आर्य्य समाज में रजोगुणी अधिक हैं परन्तु धार्मिक सङ्गठन इस प्रकार का होगा जिसमें सतोगुण की वृद्धि होगी। आर्यसमाज के प्रधान व प्रतिनिधि आदि ऐसे व्यक्ति बन सकेंगे जो स्वाध्यायी, उपासक, संस्कृत प्रेमी हों।

आर्य्य समाज

(१) दस सदस्यों की एक समाज आरम्भ होगी। (२) अन्तरङ्ग में तीन व्यक्ति प्रधान, मन्त्री, कोषकार होंगे। काम अधिक हो तो तीन पदों के 'उप' भी रखे जा सकेंगे। (३) प्रत्येक का पता इस प्रकार होगा—आर्यसमाज, भवन संख्या, गली, मौहल्ला, सड़क, नगर प्रान्त, देश। उदाहरणार्थ आर्य समाज बलिदान भवन, श्रद्धानन्द बाजार दिल्ली भारत। (४) भवन का होना विशेष आवश्यक नहीं, कोई आर्य जिसके घर २० २५ आदमी बैठ सकते हैं साप्ताहिक अधिवेशन हो सकेगा। (५) साप्ताहिक अधिवेशन डेढ घण्टे का होगा—सन्ध्या, अग्निहोत्र, भजन, आधा घण्टे की वेद कथा या सामाजिक विषय, आधा घण्टा की सत्यार्थ प्रकाश या भूमिका या षड् दर्शन या ब्राह्मण ग्रन्थादि किसी की कथा होगी। (६) यदि भवन बनाया जावे तो उसमें २००-३०० व्यक्तिकों के बैठने का स्थान होगा। (७) पुस्तकालय जिसमें ऋषि मुनि प्रणीत व आर्य्य ब्राह्मणों के ग्रन्थ होंगे, वाचन के लिये केवल वैदिक पत्रिकायें आयेंगी अन्य नहीं। (८) भण्डार घर में यज्ञ सामग्री, दरी आदि आवश्यक वस्तुयें होंगी। (९) अतिथि कक्ष होंगे। प्रत्येक सदस्य आय का शतांश चन्दा देगा। (११) स्त्रियों को भी सदस्य बनाया जायगा, स्त्री समाज अलग नहीं लगेगा—स्त्री सदस्यों से चन्दा पति की आय का शतांश लिया जायगा। (१२) आर्यसमाज की रजिस्टरी धर्मार्य्य सभा के नाम होगी। (१३) समाज कोई संस्था मुद्रणा-

लय, विद्यालय, अनाथालय विधवालय आदि कुछ न रखेगी। (१४) अपनी आय का आधा भाग धर्मार्य्य सभा को देना होगा। (१५) प्रधान उसको बनाया जायगा जो संस्कृत व्याकरण जानता हो तथा पंच महायज्ञ संस्कार विधि सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर अधिकार पूर्ण अध्ययन जिसे होगा। (१६) यदि इतनी योग्यता का व्यक्ति न मिले तो प्रधान पद न होगा। केवल मन्त्री कोषकार होंगे।

अभी अन्तरङ्ग बड़ा झमेला बना रखा है। अन्तरङ्ग कोई हौवा नहीं प्रगति करने के लिये योग्य व्यक्ति चाहिये। द्विज का विशेष महत्त्व है तथा प्रधान-ब्राह्मणत्व, मन्त्री छात्रत्व, व कोषकार वैश्य का प्रतीक है। भवन विशेष आवश्यक नहीं क्योंकि इनके बनाने में अत्याधिक धन व्यय होता है, तथा भवन पर अधिकार रखने के लिये सदस्य परस्पर झगड़ते हैं। साप्तहिक अधिवेशन इस प्रकार का हो जिसमें सैद्धान्तिक ज्ञान सदस्यों को मिले व रुचि भी हो। प्रत्येक सदस्य को शतांश चन्दा तो देना ही चाहिये, प्रचार के लिये धन यथोचित मात्रा में चाहिए। आर्य समाजें अपने पास संस्थायें रखेंगी तो पार्टीबाजी के दलदल में ही फंसी रहा करेंगी तथा प्रचार कार्य नहीं हो सकेगा, जैसा अभी सर्वत्र हो रहा है। आर्य्यों का कोई काम बिना स्त्रियों के अधूरा है अतः स्त्रियों को अवश्य सदस्य बनाना चाहिए। आर्य सज्जन को अपनी पत्नी को भी सदस्य बनवावें। प्रधान प्रायः किसी वकील डाक्टर ठेकेदार, अधिकारी आदि को बना दिया जाता है ये अधिकांश संस्कृत विद्या शून्य व आंग्ल संस्कृत के उच्छिष्ट भोजी होते हैं तथा ऐसा करने से ब्राह्मण को सम्मान नहीं मिलता। अतः प्रधान उसे बनाया जावे जो संस्कृत व सिद्धान्तवित् हो। सदस्यों में सर्वाधिक सिद्धान्त मर्मज्ञ हो। तथा सदस्य सिद्धान्तों का अध्ययन करें। बिना सिद्धान्त ज्ञान के पौराणिकता नहीं निकलेगी। आर्यसमाज में शक्ति धार्मिक अनुशासन से ही उत्पन्न हो सकेगी।

धर्मार्य्य सभा

(१) प्रत्येक राजनीतिक राष्ट्र की एक धर्म सभा होगी जैसे आर्य्यावर्त्त धर्मार्य्य सभा। (२) इनका सदस्य उन्हीं व्यक्तियों को बनाया जायगा जो अङ्ग उपाङ्ग ब्राह्मण वेद आदि का अध्ययन किये हुये हैं तथा दस नियमों का क्रियात्मक पालक हो, सभासद् किसी आर्यसमाज का सदस्य हो या वैदिक प्रशासन का अध्यापक हो। (३) प्रत्येक समाज से चन्दे का आधा भाग लेगी। (४) वार्षिक उत्सव के लिये, समाजों की अन्य आवश्यकता पर भी विद्वान् भेजेगी निशुल्क। (५) पाठशाला मुद्रणालय आर्य्य समाज भवन सब की रजिस्टरी इसके नाम होगी। ब्राह्मण जो पुस्तकें लिखेंगे उनका प्रकाशनाधिकार इसी के पास रहेगा हां ब्राह्मणों को उचित अंश मिलेगा। (६) चन्दे की रसीद छापने का अधिकार इसे ही होगा। (७) पत्रिकायें जो निकाली जायेंगी वे संस्कृत व राष्ट्र भाषा में होगी। पुस्तकें संस्कृत व राष्ट्र भाषा में निकलेंगी। (८) सदस्यों का वेतन मासिक ३००) होगा तक प्रचारार्थ मार्ग व्यय भी दिया जायगा। उपदेशक जो संस्कृत व सिद्धान्त वित् होंगे उन्हें १५०) मासिक दिया जायगा तथा मार्ग व्यय। (९) सभा सब जमा खर्च का हिसाब आर्य्य जनता को देगी।

एक राजनीतिक राष्ट्र की एक सभा रखने से चन्दे का धन एकत्र करने में असुविधा न होगी। भिन्न-भिन्न देशों में विभिन्न सिक्के होते हैं उनके अदलाबदल का बखेड़ा हो जायगा। पहले १० देशों में धर्म सभायें बन जावें तेजी से काम करने लग जावें तो उनको एक सूत्र में पिरोने की योजना आगे बनेगी, ये दूर की बात है। धर्म का निर्णय करने के लिये वेदज्ञ होना आवश्यक है। वेदार्थ के लिये अष्टाङ्ग योग व अङ्ग उपाङ्ग ब्राह्मण ग्रन्थादि का ज्ञान आवश्यक है अतः सभासद् साङ्गोपाङ्ग वेद वित् अवश्य हो। ये नहीं कि धर्म निर्णय का काम अधिकारियों सेठों वकील, व डाक्टरों को दे दिया। (क्रमशः)

शंका समाधान

शंकाकर्ता ए० एस० वरदराजन आर्य मद्रास

❀ समाधाता ब्र० जगदीश विद्यार्थी

शंका:—स्त्री जब मासिक धर्म पर रहती है। तब यहां (मद्रास) के रीति रिवाजों के अनुसार तीन दिन तक घर के बाहर रहती है। उन दिनों न वह कोई कार्य करती है, न रसोई बनाती है, न नहाती है और न ही पूजा पाठ करती है जो कट्टर-पन्थी (Orthodox) हैं वे चतुर्थ दिन भी उनके हाथ की बनाई चीज नहीं खाते। स्वयं महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि गर्भाधान प्रकरण में लिखा है—

"उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे, वह स्त्री कुछ काम न करे किन्तु एकान्त में बैठी रहे।"

तब प्रश्न होता है कि क्या ऊपरलिखित दक्षिण की रीति-रिवाज वैदिक है अथवा पौराणिक। उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी पीने में क्या दोष है ? क्या वह उन दिनों सन्ध्या कर सकती है ? हवन में बैठ सकती है ? यदि नहीं बैठ सकती तो—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैक हि॥

इत्यादि मनुस्मृति के अनध्याय निरोध श्लोक का तात्पर्य क्या है ? यदि वह सन्ध्या हवन कर सकती है तो महर्षि की उस आज्ञा का तात्पर्य क्या है ? कृपया इस विषय में वैदिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करें।

समाधान:—रजस्वला होने पर स्त्री का घर से बाहर रहना तो दक्षिण की प्रथा है शेष वर्णन सर्वथा वैदिक है। श्रेष्ठ सन्तान कैसे उत्पन्न हो उसके लिये हमारे ऋषि, महर्षि और आयुर्वेदाचार्यों ने कुछ नियमों का विधान किया था। रजस्वला स्त्री के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए महर्षि अग्निवेश चरक संहिता में लिखते हैं—

"रजो दर्शन से लेकर तीन दिन रात ब्रह्मचारिणी हो बैठे, नीचे सोवे, खाट पर न सोवे, जो पात्र पुराना या टूटा फूटा न हो ऐसे उत्तम पात्र में लेकर हाथ से खावे, चमचे आदि का प्रयोग न करे और किसी प्रकार बनाव श्रृंगार न करे। स्नान उबटन वा किसी प्रकार की शुद्धि सजावट आदि न करे।" (चरक शारीर स्थान ८।५)

सुश्रुत ने इस अवसर पर आंखों में अञ्जन, अनुलेपन, तैल लगाना, नखादि काटने का भी निषेध किया है।

रजस्वला होने पर स्त्री के शरीर से एक प्रकार का मल निकलता है। अतः उसके हाथ का खाने पीने और उसके स्पर्श का निषेध किया गया है। अब तो पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है कि "ऋतुमती स्त्री के शरीर से ऐसी विद्युत् शक्ति निकलती है, जिससे कई वृक्षों के फूल, फल, पत्ते तक नष्ट हो जाते हैं।"

रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने से आतशिक सुजाक जैसी भयंकर बीमारियां हो जाती हैं कभी-कभी नेत्र-ज्योति ही समाप्त हो जाती है। ऐसे ही अनेक कारणों से उसे इन दिनों अस्पर्श ठहराया है।

रजस्वला स्त्री सन्ध्या और स्वाध्याय कर सकती है इसमें कोई भी हानि नहीं हैं। हां रजस्वला अवस्था में यज्ञ करने का निषेध है। यज्ञ में पात्र आदि सभी दूषित हो जायेंगे ऐसी अवस्था में पति स्त्री की भी १६ आहुतियां स्वयं दे ले और स्त्री मेरे विचार में मानसिक यज्ञ करले। महर्षि ने भी सन्ध्या और स्वाध्याय का निषेध नहीं किया है। इस प्रकार मनु जी की आज्ञा भी ठीक है उसका विरोध नहीं होता।

शंकाः—सोलह संस्कार आर्यों को करने हैं। यहां की रीति रिवाज ऐसी हैं कि गर्भाधान, पुंसवन और सीमान्तोन्नयन—ये तीनों संस्कार प्रथम उत्पन्न सन्तान के ही करते हैं। अन्य के नहीं। जातकर्म से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त तेरह संस्कार हर एक सन्तान का करते हैं परन्तु गर्भाधान, पुंसवन और सीमान्तोन्नयन इन तीनों का भागी केवल प्रथम सन्तान ही हुआ करता है। अब प्रश्न है कि क्या हर एक सन्तान का गर्भाधान, पुंसवन सीमान्तोन्नयन करना अनिवार्य है? यदि है तो संस्कार विधि में क्यों स्पष्ट उल्लेख नहीं है? कृपया बतावें।

समाधानः—महर्षि दयानन्द गर्भाधान प्रकरण के आरम्भ में ही लिखते हैं—

"मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं।"

यहां महर्षि के 'मनुष्यों' शब्द पर ध्यान दें।"

भिन्न-भिन्न स्थानों की परिपाटी तो भिन्न हो सकती है। और आज तो १६ संस्कारों की बजाये तीन ही रह गये मुण्डन, विवाह और अन्त्येष्टि तो क्या महर्षि ने कहीं ऐसा लिखा है कि तीन ही संस्कार किये जायें?

जहां तक विधि का सम्बन्ध है महर्षि ने प्रत्येक बालक और बालिका के लिये १६ संस्कारों का विधान किया है। स्वामी जी यह तो कहीं भी नहीं लिखा कि प्रथम तीन संस्कार पहले ही बालक के होंगे अन्यों के नहीं होंगे। जहाँ स्वामी जी को कोई विशेष बात कहनी होती है वहां उसे स्पष्ट रूप में लिख देते हैं और सामान्य तो सब के लिये है ही।

शंकाः—विवाह यहां प्रायः दिन में हुआ करता है। इसके विपरीत कुछ पंजाबी आर्य समाजी यहां रात २, ३ बजे विवाह का मुहूर्त रखते हैं। कृपया बतावें कि विवाह कामुहूर्त कब रखना बुद्धि संगत है और वेदानुकूल भी।

समाधानः—विवाह संस्कार दो भागों में विभक्त है। पूर्व विधि और उत्तर विधि। पूर्व विधि में सूर्य दर्शन है और उत्तर विधि में ध्रुव दर्शन। विवाह ऐसे समय पर आरम्भ होना चाहिये कि दोनों विधियां ठीक रूप से सम्पन्न हो सकें। अतः संस्कार सूर्यास्त होने से २, २॥ घण्टे पूर्व आरम्भ हो जाना चाहिये। सूर्य के रहते हुए ही सूर्य दर्शन की विधि सम्पूर्ण होनी चाहिये। सूर्य दर्शन के पश्चात् पूर्व विधि लगभग समाप्त ही हो जाती है। यहां पूर्व विधि समाप्त करके पुरोहित, ऋत्विक् तथा वर वधू और बराती सब शौचादि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर सन्ध्या वन्दन करें पुनः कुछ रात्रि जाने पर जब "ध्रुव" के दर्शन हो सकें उत्तर विधि प्रारम्भ करें। यही वैदिक विधि है, यही ऋषि सम्मत है यही वेदानुकूल है शेष सब विधियां चाहे कोई भी करता हो अवैदिक, अनर्गल और पौराणिक है।

शंका—हम आर्य समाजी स्त्री को भी यज्ञोपवीत देते है। पौराणिक नहीं देते। हमारे पक्ष के समर्थन में कई प्रमाण हैं यथा—गोभिलीय गृह्यसूत्र प्र० २ सू० १६ में—

प्रावृतां यज्ञोपवीतिनां अभ्युदानयन् जपेत सोमो ऽ ददद् गंधर्वायेति (वैदिक सिद्धान्त माला से उद्धृत)

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जिबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा॥

(यम संहिता—यज्ञोपवीत मीमांसा से उद्धृत)

परन्तु सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि में इस विषय पर स्पष्ट उल्लेख नहीं। सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में महर्षि लिखते हैं—

"द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी अपनी पाठशाला में भेज दें।" और संस्कार विधि में तो जगह जगह बालक का ही यज्ञोपवीत धारण की आज्ञा दी है। बालिका को नाम लेश मात्र भी नहीं है। यदि

महर्षि बालक शब्द के साथ साथ बालिका को भी जोड़ देते तो स्पष्ट हो जाता। जब कि महर्षि ने अपने ग्रन्थ में "स्त्री को भी यज्ञोपवीत दें।" ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है तब पौराणिक विपक्षी को हम क्या उत्तर दे सकते हैं।

समाधान—स्त्रियों का यज्ञोपवीत होना चाहिए इसके लिए तो आपने स्वयं ही प्रमाण प्रस्तुत कर दिए हैं। आप स्त्रियों के लिए इसका स्पष्ट उल्लेख चाहते हैं। आपने सत्यार्थ प्रकाश का जो उद्धरण दिया है उससे स्पष्ट उल्लेख और क्या हो सकता है? महर्षि की भाषा का भाव यह है कि "लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्या का भी यथायोग्य यज्ञोपवीत संस्कार करके।" यहां यथायोग्य शब्द भी ध्यान देने योग्य है। यज्ञोपवीत संस्कार में लड़कों का मुण्डन होता है लड़कियों का नहीं अतः स्वामी जी ने यथायोग्य संस्कार करके लिखा है।

रही संस्कार विधि की बात स्वामी जी ने प्रायः बालक शब्द का प्रयोग किया है। यहां बालक शब्द आङ्ग्ल भाषा के 'Baby' के रूप में है। लड़का हो या लड़की दोनों को Baby कह दिया जाता है ठीक यही बात यहां है। इसके लिये एक प्रमाण देता हूँ। आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है—

यहां अस्मै पुलिंग नाम चास्मै दद्युः। का प्रयोग है तो क्या लड़की का नाम न रक्खें उसे बिना नाम की ही रहने दें। यदि आश्वलायनगृह्यसूत्र कार को बालिका का नाम भी रखना अभीष्ट होता तो उन्हें "नाम चास्मै अस्यै च दद्युः" ऐसा लिखना चाहिए था ऐसा तर्क उपस्थित किया जा सकता है परन्तु यहां "अस्मै" का प्रयोग बालक बालिका दोनों के लिए किया गया है।

न केवल यज्ञोपवीत संस्कार में अपितु सभी संस्कारों में महर्षि ने प्रायः बालक शब्द का ही प्रयोग किया है यथा—

उससे बालक की जीभ पर 'ओ३म्' यह अक्षर लिखे (जातकर्म सं०)

जन्मे हुए बालक का सुन्दर नाम रक्खे (नामकरण सं०)

बालक को आशीर्वाद देवें (नामकरण सं०)

जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे (अन्नप्राशनविधि)

इस प्रकार के सैकड़ों प्रमाण दिए जा सकते हैं।

पौराणिकों के ग्रन्थों में तो स्त्रियों के यज्ञोपवीत के इतने प्रमाण उपलब्ध हैं कि वे मुंह नहीं खोल सकते। यदि वे स्वामी जी के ग्रन्थों का ही प्रमाण मांगे तो उपर्युक्त सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि के प्रमाण भी अकाट्य, अछेद्य और अभेद्य हैं।

दुःखद वियोग

आर्य जगत् के प्रसिद्ध नेता, महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त और लोह लेखनी के धनी श्री महाशय कृष्ण जी लगभग ८२ वर्ष की अवस्था में २४ फरवरी को महाप्रयाण कर गये और उनकी लेखनी रुक गई।

अभी एक वियोग के आँसू भी न पूंछ पाये थे कि भारतरत्न सच्चे देश भक्त, परम ईमानदार और अनेक भाषाओं के पण्डित, स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद भी परलोक सिधार गये।

प्रभु दिवङ्गत आत्माओं को उनके कर्मों के अनुसार सद्गति और उनके शोक सन्तप्त परिवारों तथा देश वासियों को इस महान् क्षति को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करे। विद्यार्थी

साहित्य समीक्षा

दयानन्द सिद्धान्त प्रकाश

लेखक—आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ।

प्रकाशक—सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा दिल्ली ।

पृष्ठ संख्या २८२ मूल्य २. ५० नये पै० ।

महर्षि दयानन्द ने जो कार्य किया आज सभी उसका लोहा मानते हैं। औरों की तो बात ही क्या स्वयं पौराणिक महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतार रहे हैं। आज कट्टर पौराणिकों की लड़कियां न केवल शिक्षा प्राप्त कर रही हैं अपितु विभिन्न विश्वविद्यासयों में वेद का अध्ययन कर रही हैं। परन्तु कुछ संकीर्ण, टकापंथी ईर्ष्यालु पौराणिक महर्षि के विमल जीवन चरित्र पर और उनके द्वारा प्रतिपादित वैदिक मन्तव्यों और सिद्धान्तों पर आक्षेप करते रहते हैं।

कुछ समय पूर्व 'यक्ता' जी ने 'दयानन्द रहस्य' लिख कर महर्षि के पावन चरित्र पर अनेक मिथ्या, अनर्गल और असत्य आरोप लगाकर अपने कलुषित हृदय के उद्गार प्रकट किये हैं और साथ ही अपनी विद्या व बुद्धि का दिवाला भी दर्शा दिया है। यद्यपि आक्षेप पुराने हैं परन्तु फिर भी जनता को भ्रम न हो इसी लिये सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों ने आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री से उक्त पुस्तक तैयार कराई है।

पुस्तक में अत्यन्त शिष्ट भाषा में विपक्षी द्वारा उठाये गये सभी प्रश्नों का युक्ति, तर्क एवं प्रमाण पूर्वक उत्तर दिया गया है। पुस्तक से निश्चित रूप से पौराणिकों का भ्रम भञ्जन होगा और उन्हें महर्षि के अगाध पाण्डित्य, महावैयाकरण, अद्वितीय वेदद्रष्टा, दर्शनतत्वदर्शी होने का बोध होगा। पाठकों की शंकाओं का समाधान होगा।

कागज और छपाई आदि उत्तम है। इस अपूर्व पुस्तक के लेखन और प्रकाशन के लिए मैं लेखक और प्रकाशक दोनों को हार्दिक बधाई देता हूँ।

आर्य समाज दर्शन

लेखक—श्री रामचन्द्र जावेद एम० ए० ।

प्रकाशक—यूनिवर्सिटी पब्लिशर्ज, रेलवे रोड जालन्धर शहर ।

पृष्ठ संख्या १५८ मूल्य २-०० रुपये ।

आर्य समाज कोई संस्था है, आन्दोलन है, सम्प्रदाय है अथवा मिशन है ? आर्य समाज क्या है ? इस का उद्देश्य क्या है ? इसके नियम क्या हैं इसकी मान्यताएं क्या हैं ? इन और ऐसी ही अन्य बातों की सही जानकारी के लिए प्रस्तुत पुस्तक का सृजन किया गया है। पुस्तक छः भागों में विभक्त है प्रथम भाग में महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व देश की परिस्थिति, महर्षि का पदार्पण और आर्य-समाज की स्थापना का उल्लेख है। दूसरे भाग में आर्य समाज के प्रमुख मन्तव्यों और सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे भाग में महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति, चौथे भाग में स्वतन्त्रता संग्राम में समाज का योगदान और छठे भाग में उपसंहार है। इस प्रकार पुस्तक में आर्य-समाज के सभी पहलुओं को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। जन साधारण के लिए पुस्तक उपयोगी है।

'विद्यार्थी'

मालवीय श्रद्धा सुमनावली

मूल्य ३)

सम्पादक—श्री फतेहचन्द्र शर्मा आराधक ।

प्रकाशक—मालवीय श्रद्धांजलि समारोह समिति १५ F. दिलशाद कालोनी शाहदरा दिल्ली ।

प्राप्तिस्थान—गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली ।

एक अभिनन्दनीय प्रकाशन

महामना मालवीय शताब्दी समारोह वर्ष में पूज्य मालवीय जी से सम्बन्धित जो कृतियां प्रकाश में आयी, उनमें यह संकलन अपना विशिष्ट स्थान रखता है । इसके सम्पादक श्री फतेहचन्द्र शर्मा

'आराधक' स्वयं एक अनुभवी और अध्ययन शील पत्रकार हैं। उन्होंने यथासम्भव ऐसी कृतियों को संस्मरण एवं लेखों के रूप में क्रमबद्ध किया है, जिससे महामना की गौरवशाली जीवन गाथा पर अधिक से अधिक प्रकाश पड़ता है। विशेषकर श्री-सत्यदेव विद्यालंकार, श्री ब्रजमोहन व्यास,, श्री-रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री श्री लीलाधर शर्मा पांडेय की कृतियां अच्छी बन पड़ी हैं।

संकलन में संस्कृत लेखों एवं काव्य श्रद्धांजलियों को भी स्थान दिया गया है। ये पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने के साथ उसके सांस्कृतिक गौरव की भी याद दिलाते हैं। पुस्तक में प्रकाशित चित्र भी उपयुक्त और सुन्दर हैं। यदि उनका मुद्रण और अच्छा हुआ होता तो वे अधिक स्पष्ट और उपयोगी सिद्ध होते।

श्री आराधक इस कृति के प्रकाशन हेतु साधुवाद के पात्र हैं।

—पं० पद्मकान्त मालवीय

(स्वर्गीय महामना मदनमोहन मालवीय के पौत्र)

स्वर्ण सिद्धान्त

विद्यार्थी जी की एक नई पुस्तक

आर्य समाज के नियमों की सार गर्भित व्याख्या आर्य समाज स्थापना दिवस पर प्रत्येक आर्य समाज को सैकड़ों की संख्या में मंगाकर बांटनी चाहिये। पृष्ठ ३२ मूल्य २५ नये पैसे

शिवो नामासि स्वधितिस्ते

[विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"]

पूज रहे थे पार्थिव को,
शिव रूप समझ कर अज्ञानी।
नाम दिया उस अश्म-पिंड को,
बम्भोला, औघड़दानी॥
उस तिमिरावृत रजनी में,
सब तन्द्रा के आराधक थे,
परम्परागत रुढि मूढ़ता,
ज्ञानार्ज्जन में बाधक थे॥
सच्चे शिव के मन्दिर के,
सब द्वार बन्द थे कर डाले।
बुद्धि तर्क सद्ज्ञान आदि पर,
जड़ता ने ताले डाले॥
उस समय देव तूने निर्भय हो,
भ्रमोच्छेद कर दिखलाया।
खोले कपाट शिवमन्दिर के,
यह वेदमन्त्र तूने गाया॥
"नमः शम्भवायच मयो भवायच,
नमः शंकरायच, मयस्करायच।
नमः शिवायच शिवतरायच,
शिवो नामासि पिता नमस्ते॥
जय हो तेरी जादूगरी,
सन्मार्ग निदर्शक भ्रमवारण।
जय धर्मोद्धारक दयानन्द,
अज्ञान निवारण भय वारण॥

सम्पादकीय टिप्पणियां

उपदेशक शिविर:—जिन संस्थाओं के पास कोई आधार नहीं है आज के युग में वे भी हजारों नहीं लाखों रुपये व्यय करके अपने प्रचारक तैयार करने पर लगे हैं। आर्य जगत् के पास ईश्वर की वाणी वेद जैसा साहित्य विद्यमान होते हुए भी उसके प्रचार और प्रसार की ओर इतना ध्यान नहीं है जितना होना चाहिये था। आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् और नेता एक एक करके उठते जा रहे हैं और उनके स्थान पर युवकों का अभाव है।

आर्य विद्वानों ने अपना जीवन लगाकर ग्रन्थों का गम्भीर आलोडन किया है परन्तु स्वाध्याय में रुचि न होने से वह प्रकाश में नहीं आता, विद्वानों के साथ ही चला जाता है। आर्य जगत् के विद्वानों के अध्ययन और अनुभव से लाभ उठाने के लिये मेरा विचार १७ मई से ३१ १९६३ तक देहली में एक उपदेशक शिविर लगाने का है। १५ दिन के शिविर में पूज्य पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी द्वारा रामायण और महाभारत पर १५।१५ व्याख्यान तथा पंडित हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार द्वारा वेद और सत्यार्थ प्रकाश पर १५।१५ व्याख्या करा ने का विचार है। इस प्रकार १५ दिन में ६० व्याख्यान प्रत्येक बन्धु को मिलेंगे। साथ ही अन्य विद्वानों द्वारा भी वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान कराने का प्रबन्ध किया जायेगा। प्रातः सायं सन्ध्या और यज्ञ का अभ्यास कराया जायेगा। परस्पर वाद-विवाद और भाषण आदि भी होंगे। आञ्चल भाषा में भी कुछ भाषण रखने का प्रबन्ध किया जायेगा।

शिविर का शुल्क ३०) होगा और कम से कम १५ व्यक्तियों के प्रार्थना पत्र आने पर इस शिविर का आयोजन हो सकेगा। भोजन आदि का समुचित प्रबन्ध होगा। प्रयत्न यह होगा कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार का कष्ट अनुभव न होने दिया जाये।

स्वस्थ, सदाचारी और लग्नशील व्यक्ति ही शिविर में प्रविष्ट हो सकेंगे। जिन्हें यह योजना पसन्द हो वे तुरन्त अपना नाम भेजें जिससे आयोजन की तैयार शुरू हो सके।

मूर्खतापूर्ण चुनौती किस की—अपने पत्र में कुख्यात पौराणिक माधव आचार्य ने "मूर्खता पूर्ण चुनौति" एक लेख लिखा है। यह लेख श्री ओम प्रकाश जी द्वारा १५ जुलाई १९६२ के आर्य मित्र में लिखे लेख के उत्तर में लिखा गया है।

जैसा मा+धव जी का स्वभाव है गाली बकना तो उनका पेशा है इस लेख में भी उन्होंने अनेक कुवाक्य कहे हैं। उन गालियों को तो हम स्वीकार न करके उनकी वस्तु उन्हें ही समर्पित करते हैं।

आप लिखते हैं—"उसके साधारण ज्ञान का दिवाला तो केवल एतावता पिट रहा है कि वह कल्याण में छपे ब्रह्मलीन शब्द के संक्षेप भूत ब्र० का अर्थ ब्रह्मचारी लगा रहा है·····अपनी इसी प्रखर मति के बल पर वह परलोक वासी जगद्गुरु महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिये महाप्रस्थान करना चाहता है।" लोकालोक अक्तूबर १९६२ पृष्ठ २५।

माधवाचार्य के शब्दों में ही यदि मैं यूं कह दूं कि जिस मूर्ख और पाखण्डी समाज के एक उद्धत शास्त्रार्थ महारथी को इतना भी पता न हो कि आर्य जगत् में गंगा प्रसाद दो हैं। एक जज हैं और दूसरे उपाध्याय। इस साधारण सी बात का भी जिसे ज्ञान न हो और वह यह लिख दे "बाप दादा कभी उपाध्याय रहे होंगे गुण कर्म स्वभाव सिद्ध वर्ण व्यवस्था मानने वाले एक मुन्सिफ

(जज) को वैसा बनने का अधिकार नहीं।" उस की बुद्धि का दिवाला पिटा या नहीं। चले थे श्री ओम्प्रकाश जी की बुद्धि का दिवाला निकालने, निकाल बैठे अपनी बुद्धि का दिवाला। इसी कूप मण्डूक ज्ञान के आधार पर शास्त्रार्थ करने का दम भरते हो। सैकड़ों बार परास्त होकर फिर शास्त्रार्थ की डींग हांकते हो इस से अधिक उद्धतपन और क्या हो सकता है?

हम तो झूंठे को घर तक जाकर पकड़ते हैं। वे परलोक में हैं तो वहां श्री ओम्प्रकाश जी के जाने की क्या आवश्यकता है। वहां तो स्व० श्री मंसाराम जी वैदिक तोप ही उन से सुलझ लेंगे।

आगे आप लिखते हैं—"यह मूर्खता पूर्ण चुनौति हमें सहर्ष स्वीकार है जब जहां जैसे चाहो अपनी खुजली मिटा लो।"

"पूज्य जगद्गुरु महाराज ने अपने वक्तव्य की पुष्टि में दर्जनों प्रमाण दिये हैं इन में से जिस प्रमाण को आप अधिक निर्बल समझते हों उसी पर शास्त्रार्थ कर लीजिये।"

वही पृष्ठ २५-२६

सभी प्रमाणों को यहां न लेकर केवल एक प्रमाण पर विचार करता हूँ—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

(यह प्रजापति गर्भ में विचरण करता है और अजन्मा होते हुए भी अनेक रूपों में जन्म लेता है अर्थात् प्रकट होता है) आर्य समाज के संस्थापक तथा वेदों की संहिता मात्र को श्रुति रूप में प्रमाण मानने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपने शुक्ल यजुर्वेद संहिता के भाष्य में ठीक हमारे जैसा ही अर्थ किया है।"

कल्याण अक्टूबर १९६१ पृष्ठ १२१५

आप के तथाकथित जगद्गुरु की यह बात सर्वथा झूठी है कि महर्षि दयानन्द ने भी इस मन्त्र का यही अर्थ किया है। मैं माधवाचार्य, श्री दीना नाथ जी और संसार के सभी सनातन धर्मी विद्वानों को घोषणा पूर्वक चैलेंज देता हूं कि जिस माई के लाल में तनिक भी दम खम हो वे अपने जगद्गुरु की इस मिथ्या झूठ को सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करें। मेरा दावा है कि यदि आप के ब्रह्मलीन श्री भारतीकृष्ण तीर्थ जी स्वयं भी शरीर धारण कर के आ जायें तो इस हिमालय जैसे झूंठ को सत्य सिद्ध नहीं कर सकते।

पाठकों ने तथाकथित जगद्गुरु का अर्थ देख लिया। अब मैं मन्त्र सहित महर्षि दयानन्द का अर्थ प्रस्तुत करता हूँ—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ (य० ३१।१९)

महर्षि दयानन्द कृत अर्थ—

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विशेष कर प्रकट होता (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील विद्वान् जन (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं।

भावार्थः—जो यह सर्वव्यापक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं उस जगत् के आधार रूप सर्व व्यापक परमात्मा को जानके मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों अर्थों में आकाश और पाताल का अन्तर है। अपने अशुद्ध अभिप्राय को जबर्दस्ती दूसरे के मथ्थे मंढना विद्वानों का काम नहीं है। और ऐसा व्यक्ति जगद्गुरु कहलाने के भी योग्य नहीं है। [शेष पृष्ठ २४ पर]

महर्षि दयानन्द

(स्व० श्री अरविन्द घोष के शब्दों में)

❀ सत्यभूषण "वेदालंकार" एम० ए०

है एक मूर्ति अतिशक्ति भयी,
आध्यात्मिक, क्रियारूपता की,
यद्यपि दोनों में महाभेद,
फिर भी दीखती है समता सी ।।
आत्मा में हैं परमात्म देव,
औ चर्मचक्षु में दिव्य-तेज ।
हाथों में अमित शक्ति उसके,
दुर्बलता किंचित नहीं शेष ।।
जीवन धारा से इष्ट रूप,
की प्रतिमा जो गढ़ सकती है ।
कल्पना क्रिया में परिणत कर,
जो मूर्त रूप दे सकती है ।।
वह कल्पित, अद्भुत एक मूर्ति,
मैं देव-दयानन्द की लखता ।
इस निखिल-विश्व में क्या कोई,
कर सकता है उसकी समता ।।
अरविन्द घोष यूं बोल उठे,
सारे रहस्य को खोल उठे ।
ऋषि के पुनीत जीवन को लख,
शब्दों के बन्धन तोड़ उठे ।।

—❀❀—

[शेष पृष्ठ २३ का]

अन्त में एक बार पुनः मैं सभी पौराणिक विद्वानों को चैलेंज देता हूँ कि यदि कुछ दम खम है तो अपने जगद्गुरु को असत्य भाषण के दोष से बचाओ ।

आर्य समाज प्रतापगढ़ (अवध):—महर्षि दयानन्द की बोधरात्रि के अवसर पर आर्य समाज प्रतापगढ़ के अधिकारियों ने अपनी समाज के वार्षिकोत्सव का आयोजन किया । स्वामी ब्रह्ममुनि जी पण्डित शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी और इन पंक्तियों का लेखक तथा कई भजनोपदेशक उपस्थित थे । मानव जीवन, गृहस्थ और समाज निर्माण पर ओजस्वी और सारगर्भित व्याख्यान हुए जिन्हें जनता ने बड़ी रुचि और चाव से सुना । जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा ।

प्रतापगढ़ समाज की भूमि स्वयं महाराज अवध ने प्रदान की थी । श्री जगत् नारायण जी एम. ए. एडवोकेट, श्री जगन्नाथ जी और श्री लखनलाल जी को यदि समाज की त्रिमूर्ति कह दिया जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । तीनों ही महानुभावों में समाज के लिये महान् प्रेम, परम श्रद्धा और सच्ची लग्न है ।

उनका यह प्रेम श्रद्धा और लग्न उत्तरोत्तर बढ़ती रहे जिस से वे और अधिक समाज सेवा कर सकें ऐसी मंगलमय प्रभु से मंगलमय कामना है ।

(विद्यार्थी)

—❀❀—

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

शतकों पर

राष्ट्र के नेताओं व विद्वानों की सम्मत्तियां

राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णनः–They are valuable and I hope they will be read widely.

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगरः—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will become popular and useful.

श्री के० एम० मुंशीः—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जनसाधारण में वेदों के प्रचार के लिये हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार शृंखला के नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिये शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थः—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुये हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

संसद सदस्य श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्रीः—वेदों के सौ सौ मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने .काशित की हैं मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है।

पं० वासुदेवशरण अग्रवालः—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०ः—मन्त्र बहुत अच्छे हैं इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी।

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता हैः—प्रत्येक वेद से अलग २ चुने हुए सौ सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय हैं।

दैनिक नवभारत टाइम्स लिखता हैः—वेद के अगाध ज्ञान के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द ने पाकेट बुक के इस युग में वेदों से सौ सौ मन्त्रों का यह नयनभिराम अल्पमोली संग्रह प्रकाशित करके पथ प्रदर्शन किया है। विषयों का चुनाव जीवन में उपयोगिता के आधार पर हुआ है। छात्रों को पुरस्कार रूप में देने तथा तथा पुस्तकालयों में संग्रह के लिए अत्यन्त उपादेय सामग्री है।

पं० अमरसिंह जी आर्य पथिकः—आपने इन शतकों को इतना सुन्दर छपाया है कि उनकी प्रशंसा न करना पाप प्रतीत होता है। यदि ये सुन्दर शतक हाथों हाथ न निकल जायें तो समझना चाहिये कि लोग अन्धे हो गये हैं।

ये सभी पुस्तकें सार्वजनिक, प्रादेशिक, जिला, तहसील विकास खण्ड, सामाजिक शिक्षा एवंचल पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत की गई है।

आज ही अपना अमूल्य आर्डर भेज कर कृतार्थ करें

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली–६

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

[डा० देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री एम० ए०]

अष्टाध्यायी के सूत्रों की हिन्दी भाषा भाषियों के लिये उपयोगी व्याख्या। आरम्भ में कई हिन्दी व्याख्यान अष्टाध्यायी को पढ़ने आदि के सम्बन्ध में निर्देश रूप में है। आज ही मंगाकर संस्कृत के विद्वान् बने मूल्य ८)

—***—

यजुर्वेद संहिता

मूल यजुर्वेद का सर्वोत्तम सस्ता संस्करण

- ऋषि देवता छन्द आदि का निर्देश
- स्वर सहित मूल पाठ
- अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका
- पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका
- पृष्ठ संख्या २७५ मूल्य २॥) सजिल्द

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानद का रंगीन चित्र	१) २५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

महर्षि दयानन्द घटना चित्र)५०

मोटोज साइज ११×१४

मूल्य प्रत्येक का)२५ न. पै.

ओ३म्, स्वागतम

नमस्ते, गायत्रीमन्त्र

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली-६

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

वियदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—आयुर्वेदालङ्कार, [बी. आई. एम. एस.] से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कोलोनी सोनीपत।

२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैङ्क लोधी रोड़ नई दिल्ली।

३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपूर।

पता—**श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पंजाब प्रतिनिधि सभा ३०३ रानीबाग शकूर बस्ती दिल्ली**

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक
स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक
विजयकुमार
टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक
ब्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०
टेलीफोन नं० २२१३२८

चैत्र	१९६३
अप्रैल	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	९

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

हंस पोल प्रकाश

कुछ पुस्तकें जिनके मिल जाने की पूर्ण आशा थी कुछ कारणवश न मिल सकी अतः हम इस मास में अङ्क न दे सके। अब यह अङ्क मई में आपको मिलेगा।—व्यवस्थापक

सत्यार्थ प्रकाश का अपूर्व स्वागत

सत्यार्थ प्रकाश का अभिनव संस्करण प्रकाशित हो गया। जिस भी व्यक्ति ने देखा हृदय खिल गया। पूज्यपाद महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज, श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री संसद सदस्य, गुरुकुल कांगड़ी के उपकुलपति कर्नल सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार आदि महानुभावों ने इस संस्करण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

अनेक पाठकों में से एक पाठक के उद्गार पढ़िये—

सत्यार्थप्रकाश की प्रति मिली। पुस्तक बहुत सुन्दर छपी है। वृद्ध आर्य समाजियों, जिन में ऋषि के प्रति सच्ची श्रद्धा है के लिये मोटे अक्षरों में छपा हुआ ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा। यह श्रेष्ठ संस्करण हाथों हाथ निकल जाय यही हार्दिक अभिलाषा है।

—नित्यानन्द वेदालंकार एम० ए०

इस संस्करण की विशेषताएं

१. श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने महर्षि की हस्त-लिखित मूल प्रति से मिलाकर इसे शोधा है। पण्डित जी के अनुसार अन्य संस्करणों में लगभग १५०० अशुद्धियां हैं, जिनका उल्लेख टिप्पणी में कर दिया है।
२. पैराग्राफों पर क्रमसंख्या इसकी दूसरी महान् विशेषता है।
३. हर पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख है।
४. अकारादि क्रम से प्रमाण सूची।
५. बढ़िया सफेद कागज, मोती सी छपाई, मजबूत सुनहरी जिल्द।

बड़े आकार के ८५० के लगभग पृष्ठ संख्या की इस पुस्तक का एक प्रति का लागत मात्र मूल्य १२) रुपये है। नैट १०)

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथववेद

शतकों पर

राष्ट्र के नेताओं व विद्वानों की सम्मत्तियां

राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णनः–They are valuable and I hope they will be read widely.

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगरः—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will become popular and useful.

श्री के० एम० मुंशीः—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जनसाधारण में वेदों के प्रचार के लिये हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार श्रृंखला के नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिये शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थः—अत्यन्त ;सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुये हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

संसद सदस्य श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्रीः—वेदों के सौ सौ मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने काशित की हैं मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है।

पं० वासुदेवशरण अग्रवालः—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०ः—मन्त्र बहुत अच्छे हैं इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी।

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता हैः—प्रत्येक वेद से अलग २ चुने हुए सौ सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय हैं।

दैनिक नवभारत टाइम्स लिखता हैः—वेद के अगाध ज्ञान के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द ने पाकेट बुक के इस युग में वेदों से सौ सौ मन्त्रों का यह नयनभिराम अल्पमोली संग्रह प्रकाशित करके पथ प्रदर्शन किया है। विषयों का चुनाव जीवन में उपयोगिता के आधार पर हुआ है। छात्रों को पुरस्कार रूप में देने तथा तथा पुस्तकालयों में संग्रह के लिए अत्यन्त उपादेय सामग्री है।

पं० अमरसिंह जी आर्य पथिकः—आपने इन शतकों को इतना सुन्दर छपाया है कि उनकी प्रशंसा न करना पाप प्रतीत होता है। यदि ये सुन्दर शतक हाथों हाथ न निकल जायें तो समझना चाहिये कि लोग अन्धे हो गये हैं।

ये सभी पुस्तकें सार्वजनिक, प्रादेशिक, जिला, तहसील विकास खण्ड, सामाजिक शिक्षा एवंचल पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत की गई है।

आज ही अपना अमूल्य आर्डर भेज कर कृतार्थ करें

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली–६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

सम्पादकीय टिप्पणियां

सत्यार्थप्रकाश का अभिनव संस्करण:—जिसने भी सत्यार्थप्रकाश देखा मुग्ध हो गया सभी विद्वानों और पाठकों ने मुक्त कण्ठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है। श्री पं० युधिष्ठिर जी का लेख तो अन्दर पाठक पढ़ेंगे ही कुछ अन्य महानुभावों के उद्गार देखिये—

"सत्यार्थप्रकाश की अत्युत्तम छपाई देखकर मैं अत्यधिक हर्ष के मारे उछल पड़ा। सचमुच यह आपकी आर्य जगत् को एक अभूतपूर्व देन है।.....इस अभूतपूर्व सेवा के लिये आर्य जगत् आप का ऋणी रहेगा।"

मास्टर प्रभुदयाल प्रजापति (महाराष्ट्र)

"मैंने आप का बड़े अक्षरों वाला सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ा है जो शिवरात्रि के उत्सव पर खरीदा था पढ़ा है। बहुत श्रेष्ठ वस्तु है। आप को और पण्डित भगवद्दत्त जी को बधाई देता हूँ।

(श्री बलराज सहगल प्राध्यापक
रामजस कालिज दिल्ली)

"आप द्वारा प्रकाशित स्थूलाक्षर अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश हस्तगत हुआ। आनन्दोल्लास से मन मयूर नृत्य करने लगा। वास्तव में आपने इस महद् ग्रन्थ का ऐसा सर्वोत्तम प्रकाशन करके आर्य जगत् की एक अत्यन्त खटकने वाली न्यूनता को सदा के लिये समाप्त कर दिया है। एतदर्थ आप सब को मेरी ओर से अनेकश हार्दिक धन्यवाद।"

(मा० नित्यानन्द बी० ए० कोहराना)

सत्यार्थप्रकाश का नवीन संस्करण मिला, धन्यवाद। यह संस्करण बहुत उत्तम है। इस से अच्छा एक भी संस्करण अन्यत्र नहीं मिलता है। ...मुझे इस पुस्तक की छपाई, आकार, जिल्द तथा उत्तम कागज पर छपाई बहुत ही अच्छी लगी। आप को कोटि कोटि धन्यवाद।

(माधवसिंह, दिवली)

सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में परोपकारिणी सभा ने एक विज्ञापन प्रसारित किया है। हम किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहते परन्तु परोप-कारिणी के इस भ्रामक प्रचार का उत्तर देना आवश्यक जान ये पंक्तियां लिखनी पड़ रही है।

विज्ञापन में कहा गया है कि सत्यार्थप्रकाश की मूल प्रति अजमेर में सुरक्षित है और पण्डित भगवद्दत्त जी इधर कई वर्षों से नहीं आये।

इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि हमने इस प्रकार की कोई घोषणा नहीं की कि पं० भगवद्दत्त जी अजमेर में बैठकर संशोधन कर रहे हैं। पं० जी ने दिल्ली में बैठकर ही मूल प्रति के अनुसार इस सत्यार्थ प्रकाश को संशोधित किया है।

परोपकारिणी सभा ने पं० भगवद्दत्त जी को पत्र लिख कर पूछा था कि मूल प्रति पंडित जी के पास कहाँ से आई। पं० जी ने इसका समाधा-नात्मक उत्तर उन्हें दे दिया था कि स० प्र० में उनकी भूमिका पढ़ लें। पर उस भूमिका को पढ़े

बिना ही सभा ने विरोधी प्रचार आरम्भ कर दिया। जिन पाठकों ने सत्यार्थप्रकाश मंगाया है वे पं० जी की भूमिका पृष्ठ ७ देखें।

विवाद में पड़ने की हमारी इच्छा नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे पास प्रमाण नहीं है या शक्ति नहीं है। हम बड़ी नम्रता से यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि यदि परोपकारिणी ने अपने भ्रामक प्रचार को विराम न दिया तो पं० भगवद्दत्त जी को लिखा गया पत्र उस पर पंडित जी का उत्तर तथा पं० जी की भूमिका यहाँ उद्धृत करनी पड़ेगी। तथा इसके अतिरिक्त हमें इन्हीं पंक्तियों में यह भी लिखना पड़ेगा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ने महर्षि के स्वप्नों की क्या दुर्दशा की है? तथा महर्षि के ग्रन्थों से क्या २ खिलवाड़ किया है?

किन्हीं मा० क० शा० महोदय ने अजमेर की एक पत्रिका में एक और गलत बात लिखी है "सत्यार्थ के सस्ते संस्करण का कच्चा चिट्ठा।" जिस लेख के लेखक को यह भी पता नहीं कि श्री गोविन्दराम जी और गौ भक्त श्री हासानन्द जी दो भिन्न व्यक्ति थे वह सत्यार्थ प्रकाश का कच्चा चिट्ठा लिखने चले हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य और विडम्बना क्या हो सकती है। श्री मान् जी! हासानन्द जी ने कोई सत्यार्थप्रकाश आज तक नहीं छपवाया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हासानन्द जी से सत्यार्थ प्रकाश छपाने की कोई चर्चा नहीं की। करते भी कैसे हासानन्द जी तो वैष्णव सम्प्रदायी थे। हां इस अनर्गल लेख से आपके अज्ञान और पक्षपात का पता लोगों को अवश्य मिल जायेगा। लोग स्वयं समझ लेंगे कि तथ्य और वास्तविकता क्या है?

वैदिक सिद्धान्त मार्तण्डः—इस समय आर्य जगत् में खण्डन कम हो गया है परन्तु पौराणिक आर्य समाज पर चोट करने में नहीं चूकते। वेद प्रकाश के पाठकों को विदित है कि कुछ समय पूर्व हम ने "नीर क्षीर विवेक" २८४ पृष्ठ की पुस्तक १) प्रति के हिसाब से दी थी। श्री दीना नाथ जी शास्त्री ने इस पुस्तक का उत्तर लिखा है। पिछली बार विद्ववर श्री आचार्य शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा ने माधवाचार्य का मान मर्दन किया था। उन्होंने तो चुप्पी साध ली। आज तक पुस्तक का उत्तर नहीं लिख सके। अब श्री दीना नाथ जी शास्त्री मैदान में आये हैं। वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड में श्री कुशवाहा जी ने शास्त्री जी का मुख-मर्दन करते हुए पौराणिक पन्थ का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया है। पुस्तक बहुत ही सुन्दर और खोजपूर्ण है। यद्यपि इसके प्रकाशन का कार्य सभाओं को अपने हाथ में लेना चाहिये परन्तु सभायें तो उदासीन हैं। अतः नीर क्षीर की भांति यह पुस्तक भी मुझे ही प्रकाशित करनी है। सभा द्वारा प्रकाशित होने पर २५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २॥) होता है। मैंने आजीवन वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार का व्रत लिया है। साथ ही पुस्तकों से मैं कमाता भी कुछ नहीं हूँ। लागत मात्र पर ही पुस्तक आप को देनी है। यह पुस्तक २५० पृष्ठ की होगी। इसका मूल्य १) होगा। परन्तु एक रुपये में उन्हीं सज्जनों को मिलेगी जो १) धनादेश द्वारा भेज कर ग्राहक बन जायेंगे। पुस्तक छपने पर इस का मूल्य दो रुपये होगा। दानी महानुभावों और समाजों को इस पवित्र कार्य में सहयोग देना चाहिये। जो व्यक्ति अथवा समाजें १०) वा इस से अधिक की राशि भेजेंगे उनके नाम पुस्तक में प्रकाशित किये जायेंगे। कृपया अपनी राशि निम्न पते पर भेजें—

ब्र० जगदीश विद्यार्थी
८ ई कमला नगर दिल्ली–६

माधवाचार्य का मिथ्या प्रलापः—कासगंज के डा० श्रीराम जी ने "संसार के पौराणिक विद्वानों ने ३१ प्रश्न" नामक एक पुस्तक लिखी थी। माधवाचार्य जी उसके प्रश्न संख्या ९ का उत्तर देते हुए लिखते हैं—

"केदार कल्प नाम का कोई पुराण शायद तुम्हारे दादा के चौपट चौबारे में सुरक्षित होगा,

अष्टादश पुराण उपपुराण और ओपपुराणों में तो इस नाम का कोई पुराण परिगणित नहीं है।"

यदि आपका ज्ञान इतना कूप मण्डूक है तो आप प्रश्नों का उत्तर देने क्यों चले ? क्या बिना उत्तर दिये नाक कटती थी। जिसे अपने घर का भी पता न हो वह उत्तर देने चला है। कहीं किसी के पास बैठ कर अध्ययन किया होता तो आप को पुराण की संख्या का पता लगता है। इस में सन्देह नहीं कि केदारकल्प पुराण तुम्हारे दादा के चौबारे में रक्खा है विश्वास न हो तो अपने दादा डा० श्रीराम के घर जा कर देख लें। यदि वहाँ न जाना चाहें उनके आगे जाने से डर लगता हो तो चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस द्वारा प्रकाशित उनका सूचीपत्र "भारतीय संस्कृति और साहित्य सन् १९६० पृष्ठ ९५ पर उपपुराणों के अन्तर्गत आपको केदार कल्पः" के दर्शन हो जायेंगे।

आगे आप लिखते हैं "वीर्य पीने का प्रश्न हम से न करके स्वामी दयानन्द से पूछना चाहिए क्योंकि उन्होंने समाजियों के नित्य पाठ की पुस्तक आर्याभिविनय में वीर्य्यमसि वीर्य्य मयि धेहि (यजु० १९।१९) मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'हे ईश्वर तू वीर्य है मुझे वीर्य दे।' इन शब्दों को अब स्वामी जी से पृष्ठव्य है कि बताइये महाराज उस वीर्य का क्या करें ? खायें पीयें या मालिश करें कि वा दाल तरकारी में तड़का लगायें ?"

हमने तो माधव जी को केदारकल्प पुराण के दर्शन करा दिए परन्तु क्या माधव जी 'हे ईश्वर तू वीर्य है मुझे वीर्य दे।' इन शब्दों को आर्याभिविनय में दिखलाने की कृपा करेंगे। आप सात जन्म में भी नहीं दिखला सकेंगे। आपको झूठ बोलते कुछ लज्जा हया और शर्म आती है या नहीं। क्यों झूठ बोलकर सनातनधर्म को बदनाम करते हो। सुनो कान खोल कर सुनो और चश्मा लगा कर पढ़ो महर्षि लिखते हैं—

"हे अनन्तवीर्य परमात्मन् ! आप वीर्य स्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें।"

महर्षि के कोश में तो वीर्य का अर्थ बल पराक्रम आदि है। जब स्वामी जी ने आप द्वारा लिखित अर्थ किया ही नहीं तो उनसे पूछने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। हां आप के घर में इस वीर्य की मालिश भी होती होगी और दाल साग में तड़का भी लगता होगा इसीलिए लिखा होगा।

बद न बोले जेरे गर्दू गर कोई मेरी सुने।
यह है गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने॥

———

दयानन्द सरस्वती अनुसन्धान-आश्रम का उद्घाटन

प्रथम वैशाख, संवत्- २०२०, प्रातः ८ बजे यह उद्घाटन उत्सव होगा। इसके प्रधान श्री डाक्टर रघुवीर होंगे। पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, श्री डा० बहादुर चन्द छाबड़ा, सह डायरेक्टर जैनरल पुरातत्त्व विभाग, तथा श्री प्रो० पं० चारुदेव शास्त्री एम० ए० तथा डा० धर्मदेव महता एम० ए० आदि भी उत्सव को सुशोभित करेंगे। यज्ञ प्रातः ७—८ तक होगा।

आश्रम का स्थान १/२८ पञ्जाबी बाग, रोहतक रोड़, पञ्जाब बिजली घर के डाकघर के ठीक सामने ४ मील छः फर्लाङ्ग पर है।

दिल्ली आर्य समाजों से विशेष प्रार्थना है कि इस काम को सर्व प्रकार से सफल बनाएं और उत्साही आर्य पुरुषों की उपस्थिति से हमारे उत्साह को बढ़ाएं।

आर्य-समाज में अनुसन्धान के कई केन्द्र बनने का वातावरण बन रहा है। पर पाश्चात्य विचारों से टक्कर लेने का जो मेरा महान्-संकल्प था, और जिस की ओर ऋषि ने बहुधा संकेत किया है, उसकी निर्मल रूप-रेखा का प्रत्यक्ष दर्शन यहाँ आ कर कीजिए।

आर्य महानुभावों से प्रार्थना है कि यहाँ के सरस्वती-भण्डार को आवश्यक ग्रन्थों से भर दें। इस पर कई लाख रुपये व्यय होंगे। दीमक और चूहों

से रक्षा के लिए लोहे की शीशे-वाली अलमारियाँ भी आवश्यक हैं दीवान हाल आर्य समाज और श्री जगन्नाथ शर्मा "भास्कर" जी ने एक-एक अलमारी २५०) रु० लागत की प्रदान की है।

आर्य समाजें और आर्य-भाई मुझ से पूछ कर उन शास्त्रों और ग्रन्थों की भेंट करें, जो यहाँ नहीं हैं। उन पर अपने कर-कमलों से भेंट की तिथि भी लिखें। उनकी ये सजीव स्मृतियाँ यहाँ सदा बनी रहेंगी।

भविष्य में काम करने वालों के लिए छात्रवृत्तियों और विद्वानों के निर्वाह के लिए धन की अपेक्षा है।

अनुसन्धान का काम अधिक चल सकता है, यदि यहाँ से प्रकाशित ग्रन्थों को समाजें और आर्य पुरुष मंगवाएं।

१/२८ पंजाबी बाग विनीत
रोहतक रोड़ दिल्ली भगवद्दत्त

आगामी वृहद् विशेषाङ्क

'वेद प्रकाश' के तेरहवें वर्ष का विशेषाङ्क पूर्व की भाँति वेदाङ्क होगा। इस अङ्क में जीवनोपयोगी लगभग ४० विषयों का समावेश होगा। भिन्न विषयों पर २५० से ३०० तक वेद मन्त्रों का संग्रह होगा। कुछ विषय हैं—वैदिक साम्यवाद, विश्व-कल्याण, आगे बढ़ो, निर्भयता, मृत्यु विजय, पवित्रता, वैदिक गृहस्थ, एकेश्ववाद, प्रभु प्रेम, आत्म विश्वास, संकल्प शक्ति, विश्वप्रेम, चरित्र निर्माण आदि। अंक पुस्तक साइज में लगभग १६० पृष्ठ का होगा। अंक को पढ़ते-पढ़ते आप रोमाञ्चित हो उठेंगे। जीवन में नव ज्योति, चेतना और स्फूर्ति का संचार होगा। स्मरण रखिये—इस अंक का मूल्य २) होगा परन्तु वेद प्रकाश के ग्राहकों को निश्शुल्क मिलेगा। यदि आप अभी तक ग्राहक नहीं हैं तो तुरन्त ग्राहक बने अपने इष्ट मित्रों और सम्बन्धियों को बनाएं। हम चाहते हैं यह अंक अगस्त सन् ६३ में श्रावणी के दिन आपके हाथों में हो। और श्रावणी के परमपावन पर्व से आप वेदों का स्वाध्याय करते हुए अपने जीवनों में क्रान्ति लाएं। —विद्यार्थी

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—आयुर्वेद.लङ्कार, [बी. आई. एम. एस.] से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कोलोनी सोनीपत।

२—श्री श्याम लाल जी कपूर पञ्जाब नैशनल बैङ्क लोधी रोड़ नई दिल्ली।

३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपुर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पंजाब प्रतिनिधि सभा ३०३ रानीबाग शकूरबस्ती दिल्ली

पीछे हटो

❀ ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

यह शीर्षक देख कर आप चौंकेंगे अवश्य, परन्तु चौंकिये मत, क्योंकि यदि आप आगे बढ़ना चाहते हैं तो आपको पीछे हटना ही पड़ेगा। एक खिलाड़ी जब लम्बी कूद अथवा ऊँची छलाँग लगाता है तो वह पहले पीछे हटता है, परन्तु उसका यह पीछे हटना आगे बढ़ने के लिए होता है। यह संसार एक क्रीड़ास्थल है और हम सब हैं इसके खिलाड़ी। हम सभी यह चाहते हैं कि हम आगे बढ़ें, उन्नति करें और संसार में कुछ करके दिखायें, कुछ बन के दिखायें, इसके लिए हमें पीछे हटना ही होगा। आप सोच रहे होंगे कि हम किससे पीछे हटें, लीजिए निम्न वेद मन्त्र आपको सच्चा मार्ग दिखा रहा है कि आप किससे पीछे हटें:—

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्। (ऋ० १०।५।६)

विद्वानों ने सात मर्यादाएं बनाई हैं, उनमें से एक का भी सेवन करने वाला पापी होता है। मर्यादा का अर्थ हैं—'मर्य-अदा' मनुष्य को खाने वाली निम्न मर्यादाओं (मनुष्यों को खाने वाले दोषों) से पीछे हटें:—

चोरी करना

मन वचन और कर्म से लोभ वश दूसरों के पदार्थों को विना उसकी आज्ञा के उठाने या लेने का नाम चोरी है। यह अत्यन्त दूषित कर्म है। एक बार प्रवृत्ति बन जाने पर मनुष्य डाकू बन जाता है। उस बच्चे की कहानी जो एक दिन विद्यालय से दवात चुरा लाया और अपनी माता से प्रेरणा पा कर कापी और किताब चुराने लगा, अन्त में डाकू बना और महाराज के महल में डाका डालने से भी नहीं चूका, आप सबको ज्ञात ही होगी। मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाकर नष्ट भ्रष्ट कर डालने वाले इस बुरे कर्म से पीछे हटो। किसी का पदार्थ उठाने की तो बात ही क्या मन में भी मत सोचिये, क्योंकि मन में किसी के पदार्थ को लेने की इच्छा करना भी मानसिक चोरी है। यह ठीक है कि जब आप हृदय में सोचते हैं तो सामाजिक दृष्टिकोण से आप चोर नहीं हैं, न अपराधी हैं और न आपके ऊपर मुकदमा चलाया जा सकता है, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आप अपराधी हैं और आपको उसका दण्ड भी मिलेगा। चोरी से पीछे हटने के लिए आपको चोरी का विज्ञान जानना होगा कि चोरी क्या है? बहुत सी चोरियां हम अज्ञानतावश कर डालते हैं। एक व्यक्ति चने के खेत से निकल रहा है उसने चने उखाड़े और खाने आरम्भ कर दिये, यह चोरी है, क्योंकि उसने खेत के स्वामी से नहीं पूछा। हमारे शास्त्रों के दृष्टिकोण से भाई को भाई के खेत से भी पूछ कर ही फल आदि खाने चाहियें। इस विषय में सांख्य और लिखित का इतिहास विश्व प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त भी और अनेक प्रकार की चोरियाँ होती हैं उदाहरणतः एक दुकानदार अच्छे माल का नमूना दिखाकर घटिया माल देता है तो यह चोरी है। एक अध्यापक विद्यालय में पूरे परिश्रम से नहीं पढ़ता अपितु ट्यूशनों में अधिक समय देता हैं तो यह चोरी है। एक वस्त्र-व्यापारी पूरे दाम लेकर कम नापता है तो यह भी चोरी है। एक लेखक दूसरों द्वारा लिखित ग्रन्थों के उद्धरण देकर यदि उन्हें अपना बताता है तो यह चोरी है। इस प्रकार की और भी अनेक चोरियां हैं। कल्याण के अभिलाषियों! इस चोरी से पीछे हटो।

व्यभिचार

यह भी एक भीषण पाप है। वैदिक आदर्शानुसार अपनी स्त्री को छोड़कर औरों में माता की

भावना रखनी चाहिए। संस्कृत के एक कवि ने कहा भी है:—

मातृवत् परदारेषु

व्यभिचार भयंकर पाप है। इससे पीछे हटो। इससे अनेक बीमारियाँ लग जाती हैं मनु जी कहते हैं कि :—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
(मनु० ४।१५७)

व्यभिचारी मनुष्य संसार में निन्दित होता है और दुःख उठाता है, वह निरन्तर रोगी रहता तथा अल्पायु वाला होता है। इसके विपरीत सदाचारी पुरुष संसार में आदर व मान पाता है। रोग उसके पास नहीं आते और वह दीर्घायु प्राप्त करता है अतः सदाचारी बनो, दुराचार से पीछे हटो।

दुराचार से पीछे हटने के लिए मनु महाराज एक आदेश है:—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥
(मनु० २।२१५)

माता बहन अथवा पुत्री के साथ भी एकान्त में न बैठो क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् होती हैं ये विद्वान् को भी खींच लेती हैं। आजकल की सह-शिक्षा के वातावरण में पढ़े-लिखे नवयुवकों को यह बात अटपटी सी लगेगी। वर्तमान शिक्षा में पले हुए एक विद्यार्थी ने जब इस श्लोक को पढ़ा तो उसने पुस्तक के ऊपर लिखा Manu is fool. अर्थात् मनु मूर्ख है। एक दिन यह विद्यार्थी महोदय अपने कमरे में बैठे हुए थे। वर्षा हो रही थी। एक युवती वहां आ निकली और रात भर रहने के लिए आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलने पर नवयुवती अन्दर आ गई और अपने गीले वस्त्रों को शरीर से उतार कर निचोड़ने लगी तो उसके शरीर को देखकर विद्यार्थी का मन चलायमान हो गया। जब वह देवी सोने लगी तो यह महोदय भी अपनी चटाई उसके समीप ले गये। देवी ने कस कर एक थप्पड़ लगाया। अब उन्हें मनु की बात याद आई, इन्होंने पुस्तक निकाली और लिखा Manu is not fool, fool is he who thinks Manu fool" अर्थात् मनु मूर्ख नहीं है, अपितु मूर्ख वह है जो मनु को मूर्ख समझता है। आप भी मनु के उक्त आदेश को स्मरण रखते हुए व्यभिचार से पीछे हट सकते हैं।

जुआ खेलना

मनुष्य को खा जाने वाली यह तीसरी मर्यादा है। मनु जी महाराज ने इसे काम से उत्पन्न व्यसनों में गिना है। ऋग्वेद में जुए के ऊपर एक पूरा सूक्त देकर इसके दोष दर्शाये है। अवलोकन कीजिये:—

जाया तप्यते कितवस्य हीना (ऋ० १०।३४।१०)

ज्वारी की दुर्दशा ग्रस्त स्त्री दुःखी होती है।

जो जुआ खेलता है उसे सब बुरी दृष्टि से देखते हैं। स्त्री भी उससे विरक्त हो जाती है। और फिर ऐसे पुरुष के लिए परमात्मा का आदेश है—

नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्।
(ऋ० १०।३४।३)

मैं जुआरी को भोगसामग्री प्रदान नहीं करता।

जुए के दोषों से सावधान कर वेद माता उपदेश देती है—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व
वित्तेर मस्व बहुमन्यमानः॥
(ऋ० १०।३४।१३)

पाशों से मत खेल, खेती ही कर और बहुत धनधान्य में आनन्द प्राप्त कर। वेद माता के उपदेश को धारण करते हुए आप भी जुए से पीछे हटो क्योंकि इस जुए के कारण राजा नल नष्ट हो गया, युधिष्ठिर भी अनेक वर्षों तक जङ्गलों में मारा-मारा फिरा। खेद का विषय है, जुआ जो महान् अनर्थ की जड़ है आर्यों के घरों में घुस रहा है। दीपावली के दिन आर्य परिवारों में भी जुआ खेला

जाता है। सच्चे आर्य बनो! जुए के कलंक से दीपावली जैसे शुभ दिन को कलंकित मत करो और इस व्यसन से पीछे हटने का प्रण लो।

कठोर बोलना

कठोर बोलना भी त्याज्य कर्म है। आप जिसके साथ भी वार्तालाप करें मीठा और मधुर बोलें। वेदानुसार आपकी यह कामना और भावना होनी चाहिये:—

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधूलकम्।
(अथर्व० १।३४।२)

मेरा जिह्वा के अग्रभाग पर मिठास हो और जिह्वा की जड़ में भी माधुर्य हो। आपका तो यह संकल्प होना चाहिये:—

यद् वदामि मधुमत्तद्वदामि (अथर्व० १२।१५८)

मैं जो कुछ बोलूं मीठा ही बोलूं। बात है भी ठीक:—

प्रियवाक्यप्रदानेन तुष्यन्ति सर्व जन्तवः।
तस्मात्तदव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

मीठा बोलने से मनुष्य का तो कहना ही क्या अन्य प्राणी भी प्रसन्न होते हैं। अतः मीठा ही बोलना चाहिये क्योंकि इसमें कुछ खर्च तो होता ही नहीं।

कठोर बोलने से अपने पराये हो जाते हैं, मित्र शत्रु बन जाते हैं। कभी-कभी इस वाणी के कारण जूते भी खाने पड़ते हैं। एक बार वाणी और पगड़ी का संवाद हुआ। पगड़ी ने वाणी से कहा "मेरे ऊपर भी कुछ दया रक्खा कर।" वाणी को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने कहा, "मेरा तेरा क्या सम्बन्ध?" पगड़ी ने कहा, "सम्बन्ध यही है कि तू तो कह कर अन्दर घुस जाती है और जूते पड़ते हैं मेरे ऊपर।" यह हैं कठोर बोलने का परिणाम। आप कठोर बोलने से पीछे हटें।

आपका जीवन मधुरता की मूर्ति हो और आप घोषणापूर्वक कह सकें—

मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः॥
(अथर्व० १।३४।४)

मैं मधु से भी अधिक मधुर हूँ, मधु भरे पदार्थों से भी अधिक मधुर हूँ। ऐसी घोषणा के लिए आपको साधना करनी होगी।

प्रभु ने आपको यह वाणी एक देवी के रूप में प्रदान की है। आप इसे देवी ही बनाये रक्खें राक्षसी न होने दें। इसे देवी बनाये रखने के लिए आप जिससे भी वार्तालाप करें तो First smile, then laugh, then talk. पहले तनिक मुस्कराइये फिर हंसिये और फिर वार्तालाप आरम्भ कीजिए। तलवार का घाव भर जाता है परन्तु वाणी का घाव नहीं भरता। इस विषय में व्यास जी ने क्या ही सुन्दर कहा है—

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहते वाक्क्षतम्॥
(म० भ० उ० प० ३४।३७८)

बाणों से छिदा एवं कुल्हाड़े से कटा वन उग आता है किन्तु वाणी से ताड़ित बुरा घाव नहीं भरता। अतः दूसरों के प्रति कठोर वचन नहीं बोलने चाहियें अपितु सदा मधुर बोलते हुए कठोर भाषण से पीछे हटना चाहिए।

शराब पीना

संसार में जितने व्यसन हैं नशा सेवन उनमें सब से प्रचण्ड है। शराब पीने वाले की क्या दशा होती है, वेद में इसका बहुत सुन्दर चित्रण किया है:—

हृत्सु पीतासु युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते॥ (ऋ० ८।२।१३)

शराब पीकर शराबी आपस में खूब युद्ध करते हैं, रात भर नग्न पड़े रहते है। इसलिए मनु महाराज ने आदेश दिया है:—

वर्जयेन्मधु मांसं च (मनु० २।१७७)

शराब पीना, और मांस खाना त्याग देना चाहिये।

शराब का सेवन शरीर मन और आत्मा तीनों की अवनति करता है। शराब एक प्रकार का विष

है जो मेदे में जाकर स्वास्थ्य को बिगाड़ता है। इसके सेवन से बुद्धि नष्ट हो जाती है, मन अपवित्र हो जाता है, और शरीर में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। आधुनिक युग के महान् सुधारक महर्षि दयानन्द ने "गोकरुणानिधि" में लिखा है कि "जो मद्य पीता है वह विद्या आदि शुभ गुणों से रहित होकर, दोषों में फंसकर अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को छोड़, पशुवत् अहार, निन्द्रा, भय, मैथुन आदि कर्मों में प्रवृत्त होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ करता है। इसलिए नशा अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन भी न करना चाहिए।

शराब का सेवन मनुष्य को आलसी, निरुत्साही भीरु, कामी और क्रोधी बनाता है। शराब के सेवन से राजयक्ष्मा का रोग तो सहज ही प्राप्त हो जाता है। शरीर की कान्ति और तेज भी स्वाहा हो जाता है। साथ ही बुद्धि भी विदा हो जाती है। इतना ही नहीं शराबी चोर, डाकू वैश्यागामी और मांसाहारी भी अवश्य हो जाता है। एक सेठ ने अपने नौकर को शराब लाने के लिए भेजा। नौकर था स्वामी भक्त, उसने सोचा स्वामी को कुछ शिक्षा देनी चाहिये। अतः शराब की बोतल खरीद कर घर पहुँचा। मालिक ने पूछा "शराब ले आया" नौकर ने कहा, हाँ शराब तो लाया ही हूं साथ में वारांगना भी है। व्यभिचारी मनुष्य रोगी भी निश्चित रूप से होता है अतः डाक्टर भी साथ ले आया हूँ, परन्तु डाक्टर कितनी ही चिकित्सा करे ऐसा मनुष्य बचता नहीं अतः कफन भी साथ ले आया हूँ।" यह सुनकर मालिक को होश आई और उस दिन से शराब न पीने की प्रतिज्ञा की।

शराब पीने से लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। मनुष्य नष्ट हो जाता है। एक उर्दू के कवि ने बड़ा सुन्दर कहा है:—

गिलासों में जो डूबे फिर न उभरे जिन्दगानी में।
हजारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में॥

सावधान! संसार के लोगो इस भयंकर व्यसन से पीछे हटो।

पाप करके झूठ बोलना

पाप को छिपाने के लिए झूठ बोलना दुगना पापी बनता है। पाप के छिपाने से पाप दबते नहीं अपितु बढ़ते हैं। अतः असत्य भाषण से पीछे हटो तथा सदा मन वचन और कर्म से सत्य जानने, सत्य मानने और सत्य बोलने का व्रत लो। सत्य की महिमा महान् है। एक कवि ने कहा है:—

सत्येन धार्यतेपृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वातिवायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठतम्॥

सत्य से पृथ्वी ठहरी हुई है, सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य के द्वारा ही वायु बहती है, सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है। मनु जी महाराज ने भी कहा है:—

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। बात है भी ठीक "सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्" सत्य स्वर्ग की सीढी है। सत्य से मनुष्य उन्नति करता है। इस के विपरीत असत्य भाषण से मनुष्य अवनत होता है, नीचे गिरता है और बिना मूल के वृक्ष की भांति सूख जाता है। अतः असत्य भाषण से पीछे हटो।

प्रतिज्ञा भंग करना

प्रतिज्ञा भंग करने से मनुष्य का विश्वास समाप्त हो जाता है। अतः प्रतिज्ञा करके उसे तोड़ना न चाहिए। इस विषय में महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में बहुत ही सुन्दर लिखा है—

"जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए अर्थात् जैसे किसी ने किसी को कहा कि तुम मुझको या मैं तुमको अमुक समय पर मिलना या मिलूंगा अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में मैं तुमको दूंगा इसको वैसे ही पूर्ण करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई न करेगा। इसलिए सदा सत्यभाषण युक्त सबको होना चाहिये।"

आज हमारे जीवन में प्रतिज्ञा पूर्ण करने की न्यूनता आ गई हैं। हम अपनी की हुई प्रतिज्ञाओं का तनिक भी ध्यान नहीं करते। एक दरजी को जिसे कपड़े दिये जाते हैं ८ दिन का वचन देता है। जब ८ दिन के पश्चात् लेने पहुँचते हैं तो कपड़ा जैसा दिया था वैसा ही रखा मिलता है। इङ्गलैंड में ऐसा नहीं है, वहां के निवासी अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन करते हैं। हमारा भी परम कर्तव्य है कि हम प्रतिज्ञा भङ्ग करने से पीछे हटें और दृढ़ प्रतिज्ञ बनें। जो प्रतिज्ञा करें उसे ठीक रूप से निभायें।

पीछे हटने के लिए इतनी ही बातें नहीं हैं और भी बहुत सी बातें हैं। एक संस्कृत के कवि ने निम्न श्लोक में कुछ बातों को दर्शाया है।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥
(महा० उद्योग प० ३३।७८)

ऐश्वर्य या उन्नति चाहने वाले पुरुष को नींद, तन्द्रा (उंघना) डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घ-सूत्रता (जल्दी करने के कामों में देर करना) इन छः दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए, इनसे पीछे हटना चाहिये।

इन सब बातों से पीछे हटने के लिए हमें पाश्चात्य सभ्यता से पीछे हटना होगा क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता हमें पतन की ओर ले जाती है Justice Wesley Howard ने ठीक ही कहा है कि—

The development of man has produced an under world where boys are taught to be thieves and girls trained to walk the streets. The land of dope fields degenerates, hago, harlots pick-pockets, paupers and those who prowl in the grey of moning. In this region of the wretched, babies are strangled, the olds are abandoned, the sick neglected, the week maltreated, the insane tortured, the young polluted, the woman lies in the cofinement in the same room where thugs swear and gamble.

मनुष्य की उन्नति ने एक निम्न जगत् की सृष्टि की है जहाँ बालकों को चोरी करना तथा लड़कियों को रास्ते में वेश्यावृति करना सिखाया जाता है। जहाँ अकर्मण्य, नशेबाजों, वेश्याओं, पाकेटमार, भिक्षुकों और वे जो अन्धेरे में बुरी नियत से घूमते हैं और भूतों के समान प्रातः होते ही भाग जाते है ऐसे लोगों का निवास है। इन नीचों की बस्ती में बच्चों का गला घोट दिया जाता है, बूढे त्याग दिये जाते हैं, रोगियों की कोई खबर नहीं लेता। दुर्बलों के साथ अत्याचार होता है, पागलों को निर्दयता पूर्वक यंत्रणा दी जाती है। युवक, युवतियां भ्रष्ट होतो हैं और प्रसूता उसी घर में सोती है जहाँ डाकू शपथ लेते तथा जुआ खेलते हैं।

फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक ए० रिवारोल (A. Rivarol) ने लिखा है कि "सभ्यता का शिखर पशुपन है।"

अतः इस पाश्चात्य सभ्यता से पीछे हटते हुए Back to the Vedas वेदों की ओर लौटो। अपने प्राचीन ऋषि मुनियों की ओर आओ।

प्रभु हम सब के हृदय में सत्य का ऐसा अंकुर डाले कि हम दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुरितों से पीछे हटते हुए कल्याणकारक गुणों को अपने जीवन में धारण करते हुए उन्नति के पथ पर अग्रसर हों।

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

[डा० देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री]

अष्टाध्यायी के सूत्रों की हिन्दी भाषा-भाषियों के लिये उपयोगी व्याख्या। आरम्भ में कई हिन्दी व्याख्यान अष्टाध्यायी को पढ़ने आदि के सम्बन्ध में निर्देश रूपमें हैं। आज ही मंगाकर संस्कृत के विद्वान् बने। मूल्य ८)

गोविन्दराम हासानन्द. नई सड़क, दिल्ली।

भिन्द्धि विश्वा अप द्विषः । ऋक्० ॥

सब द्वेषी शत्रुओं को विनष्ट कर डालो

❀ श्री पं० विद्याभास्कर शास्त्री सिद्धान्ताचार्य्य

आज मैं भारतीय राजनीति व युद्धनीति तथा चीन की राजनीति व युद्धनीति के बारे में कुछ विचार व्यक्त करने लगा हूँ, पूर्व यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि राजनीति का अर्थ क्या है ? राजनीति का अर्थ है राजा की नीति, राज्य की नीति, अर्थात् वह नीति, वह विधान, जिसमें राष्ट्र का उत्थान हो सके। उस राजविधान या राजधर्म को राजनीति कहते हैं जिसका प्रत्येक नियम अधर्म, अर्धमात्माओं का नाश तथा धर्म और धर्मात्माओं की रक्षा करने के लिए हो। प्रत्येक समाज को मानव का रूप देते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र को सुखद बनाते हुए जो समस्त विश्व में शान्ति के साम्राज्य की स्थापना कर सके उसे ही विशुद्ध वैदिक या भारतीय राजनीति कहते हैं।

राजनीति का महत्त्व

हमारे यहां धर्मविहीन राजनीति का कोई महत्त्व नहीं। जिस राजनीति का मूलाधार धर्म नहीं वह राजनीति राजनीति नहीं। राज्य के छोटे से छोटे कर्मचारियों से लेकर राजा तक को पूर्ण धार्मिक होने का विधान हमारे शास्त्रों में भरा पड़ा है। जब सभी धार्मिक होंगे तभी राष्ट्र समुन्नत हो सकेगा। राज्य की सुव्यवस्था के लिए राजनीति को वेद के आधार पर हमारे नीति शास्त्रज्ञ पूर्वजों ने तीन भागों में विभक्त कर दिया है।

तं सभा च समितिश्च सेना च। अथर्ववेद ॥

१—सभा=अर्थात् ३ प्रकार की सभा (विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा) इस प्रकार यह तीन सभायें राजसभा के अन्तर्गत हुई।

२—समितिः=अर्थात् संग्रामादि के लिए उपयुक्त साधनों की व्यवस्था करने वाली सभा।

३—सेना अर्थात् सैन्य विभाग।

स्पष्ट हुआ कि प्रथम शिक्षा विभाग, दूसरा धर्म विभाग तीसरा राज विभाग इसके दो भेद—पहला वह जो कि संग्रामादि के लिए शास्त्रास्त्र तथा सभी आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करे। दूसरा वह जो कि सैन्य प्रशिक्षण, सेना का बल एवं संख्या बढ़ाने में तत्पर रहे।

इन तीनों सभाओं के निर्माण का उद्देश्य

विद्या और धर्म से अपने देश में ही नहीं अपितु समस्त संसार में शान्ति लाना। सम्पूर्ण विश्व के मानव में मानवता लाने की सुव्यवस्था करना।

युद्ध नीति क्या है ?

अथर्ववेद के उक्त मन्त्र में सेना शब्द है। विद्या और धर्म के विकास के लिए उत्तम विधान बनाना। जब भी कोई उस विधान का उलंघन करे तो पूरी शक्ति से उसका प्रतिकार करना ही राजा का परम कर्त्तव्य है। राष्ट्र की रक्षा तथा उन्नति के लिए धर्मयुक्त राज नियम हो। तथा धर्म युक्त राज विधान की रक्षा के लिए धर्मयुक्त युद्धनीति का यथावसर प्रयोग करना हो हमारी युद्धनीति का कार्य है अतः युद्धनीति का ही एक विशिष्ट अंग है।

वैदिक राजनीति की घोषणा

महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में लिखते हैं;—

१—धर्मात्मा होके न्यायपूर्वक राज्य का पालन करना और प्रजा का पालन करना तथा सब प्रकार की उन्नति करना राजा तथा राज-कर्मचारियों का परम कर्तव्य है।

२—राजा सदा राज कार्यों में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है। जो रात दिन राजकार्य में प्रवृत रहना और कोई भी राज काम बिगड़ने न देना।

३—हमारी राजनीति कहती है—किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट हो कर सबसे वर्ताव रक्खे। और नित्य प्रति अपनी रक्षा के साधनों को देख भाल के शत्रु के किए हुए छल को जान कर निवृत्त रहे। कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु की कमजोरियों को जानता रहे देखो मनु० अ० ७।

अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायान्नित्यं स्वसंवृतः॥
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य च॥
इत्यादि०

४—हमारी राजनीति कहती है कि जो राजा मोह अज्ञान व अविचार तथा स्वार्थ से अपने राज्य को दुर्बल करता है वह राज्य तथा अपने बन्धुओं सहित शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

५—हमारी राजनीति अपने देश व विदेश के सभी चोर डाकुओं, अत्याचारियों, क्रूर दृष्टि वालों मक्कारों, विश्वासघातकों तथा आततायियों से सदा सावधान रहने की शिक्षा देती है। और पूर्ण बल से इनसे अपनी रक्षा करने के लिये प्रचुर प्रेरणा प्रदान करती रहती है। समय पड़ने पर सर्वस्व बलिदान के लिए समर क्षेत्र में भेज देती है।

६—हमारी राजनीति कहती है कि जो राष्ट्र-कर्णधार राष्ट्ररक्षा की व्यवस्था नहीं करते और धार्मिक मर्य्यादा की अवहेलना करते हैं वे नास्तिक तथा लुटेरे हैं और वे अधोगति को प्राप्त करते हैं।
देखिये मनु० अ० ८।३०७,३०९॥

७—हमारी राजनीति घोषणा करती है कि यह मित्र, उदासीन अथवा शत्रुराष्ट्र में किसी की भी शक्ति हम अपने से अधिक न होने देंगे।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथाऽस्याभ्यधिका नः स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः॥
मनु० अ० ७। १७८॥

८—हमारी राजनीति का उद्देश्य है कि प्रतिक्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु० इत्यादि० यजु० २०।१०॥

इस मंत्र द्वारा प्रभु उत्तम राजपुरुषों की सभा बनाकर न्याय पूर्वक राज्य व्यवस्था करने का विधान बतलाते हुए कहते हैं कि तुम लोग धर्मात्मा हो के न्याय से राज्य करो मैं धर्मात्मा पुरुष के ही क्षात्रधर्म को और राष्ट्र को बढ़ाता हूँ। मैं धर्मात्मा राजा उसकी सेना तथा उसके सभी अंग प्रत्यंगों को विकसित करता हूँ उनमें स्वयं प्रतिष्ठित रहता हूँ। उनकी शक्ति तथा विशुद्ध व्यवहारों में व्यापक हूँ और उन्हें व्यापक बनाता हूँ। अर्थात् धार्मिक राजा के सभी स्थानों में मेरी शक्ति है मेरी शक्ति की उपासना करने से वीरों का राज्य सदा बढ़ता रहता है। यह है वैदिक राजनीति की सर्वहितकारी विशुद्ध घोषणा।

अब चीन की राजनीति पर एक दृष्टिपात्

सन् १९१७ की अक्टुबर क्रान्ति के समय समाजवादी सोवियत प्रजातन्त्र स्थापित हुआ। लेनिन और स्टालिन की बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में विश्व के इतिहास में पहली बार समाजवादी सोवियत प्रजातन्त्र बना। १९२७ में चीन में क्रांति की पराजय के बाद कम्युनिष्ट पार्टी के नेतृत्व में होने वाले जन विद्रोह के नेता कामरेड माओत्सेतुंग थे। जिन्होंने मार्क्सवाद के सिद्धान्त को बार-बार दुहराया है।

चीन की राजनीति का उद्देश्य

चीन भी एक कम्युनिष्ट देश है:—कम्युनिज्म का जो उद्देश्य है वही चीन का भी होना चाहिए।

(१) सम्पूर्ण संसार में कम्यूनिज्म का प्रसार तथा कम्युनिष्ट शासन स्थापित करना।

(२) समाजवादी शासन की स्थापना के लिये सभी उचित अनुचित साधनों को प्रयोग में लाना।

(३) धर्म नियन्त्रित शासन का निरन्तर विरोध करते रहना।

(४) संगठन के नाम पर श्रमजीवियों को भड़काते रहना, उन्हें उत्तेजित करते रहना।

(५) प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रों की आध्यात्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास की योजनाओं पर आक्रमण करना, उनमें बाधा डालना तथा उन्हें नष्ट करने का यत्न करना।

(६) धर्म तथा ईश्वर नाम की वस्तु को अनावश्यक समझना।

इसी प्रकार इनके अन्य कई उद्देश्य हैं जिनके साथ हमारा सैद्धान्तिक मतभेद है। अतः चीन के साथ हमारा युद्ध सैद्धान्तिक युद्ध है जो समाप्त होने में नहीं आता।

भारतीय युद्ध नीति और चीन की युद्ध नीति

यह कहना अनुचित न होगा कि प्रायः सभी राष्ट्रों की युद्धनीति में कुछ न कुछ समानता के सिद्धान्त भी पाये ही जाते हैं। परन्तु भारतीय युद्धनीति की कुछ अपनी विशेषतायें हैं जो कहीं भी नहीं मिलेगी। भारतीय युद्ध नीति की विशेषताओं का उल्लेख तो मैं आगे करूंगा ही, पहले भारत और चीन की युद्धनीति के मिलते जुलते अंश उद्धृत करूं ताकि आप यह समझ सकें कि भारत अपनी युद्ध नीति का वह अंश छोड़ चुका था जिसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये और जो किसी भी शक्तिशाली राष्ट्र की युद्धनीति का सामना करने के लिये परमाश्यक है। वर्तमान चीन ने उस युद्ध नीति के रौद्ररूप को अपनाया हुआ है तभी उसकी इतनी हिम्मत बढ़ी। अब भारतीय युद्ध नीति और चीनी युद्ध नीति के समानता का अंश भी देखिये।

भारतीय युद्ध नीति

[१] शत्रु को जीतने के लिए सिंह के समान पराक्रम करे लेकिन बलवान शत्रु से खरगोश के समान दूर भाग जावे ॥मनु०॥

[२] जब हम यह जान लें कि इस समय शत्रु से युद्ध करने से हानि होगी तब युद्ध न करें। ॥मनु०॥

[३] उचित समय तक धीरज रक्खे। वर्तमान और भविष्य में करने के कार्य बराबर करता जाय और जब अपनी प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न, उन्नति शील और श्रेष्ठ जाने तभी शत्रु पर हमला कर दे ॥मनु०॥

[४] रणनीति की दृष्टि से स्थिति को देखकर पीछे हटना अथवा चुपचाप ही रहना और राज रक्षा को तैयार करते रहना और जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तो दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई कर देना ॥ मनु०

चीनी युद्ध नीति

[१] जब जीत सकते हैं तब लड़ते हैं जब नहीं जीत सकते हैं तब भागते हैं। यही हमारे गतिशील युद्ध की लोक प्रिय व्याख्या है।

माओ० ग्र० पृ० सं० २२३

[२] लड़ना तब अनुचित होगा जबकि मुकाबले का शत्रु दल हमसे बड़ा हो।

माओ० ग्र० पृ० सं० २२३

[३] भाग खड़े होने की आवश्यकता पहले से यह मानकर स्वीकार की जाती है कि लड़ना आवश्यक है। अथवा जब पूरी तरह योजना बनाकर रणनीति की दृष्टि से कोई पीछे हटता है तो अपने स्वरूप में यह कार्य दबाव के कारण करना पड़ता है परन्तु उस कार्य की वस्तु स्थिति यह होती है कि वह शक्ति संचय करता है और वह इस बात की राह

[५] राज्य कार्य में सदा प्रवृत्त रहना और कोई भी राज्य कार्य बिगड़ने न देना। तथा विद्या सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा बनाकर बहुत प्रकार से सम्पूर्ण प्रजा और देश की उन्नति के लिए विद्या सुशिक्षा धर्म, धन तथा सेना आदि की पूरी तैयारी रखना। ॥ मनु० ॥

[६] युद्ध के समय पूरी तैयारी करके शत्रु को पकड़ना शत्रु सेना के साथ लड़ने वाले वीरों को आठों दिशाओं में रखना। जिस ओर लड़ाई होती हो उसी ओर सेना का मुंह रक्खे परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे। धावा करके शत्रु की सेना को छिन्न-भिन्न कर देवे। उन्हें भगा दे पकड़ ले। उन्हें चारों ओर से घेरे में लेले। शत्रु के सभी खाद्य पदार्थों को नष्ट भ्रष्ट कर दे। और उनके प्रकोट तथा खाई को तोड़ फोड़ दे ॥मनु०॥

देखा करता है कि वह शत्रु को परास्त कर दे। माओ० ग्र० पृ० सं० २१५

[४] रणनीति की दृष्टि से पीछे हटने का एक मात्र उद्देश्य उलट कर प्रत्याक्रमण करना है। माओ० ग्र० पृ० सं० २०३

]५] देश को बचाने के उद्देश्य से सशस्त्र प्रतिरोध के लिए राष्ट्रीय रक्षा की राजनीतिक, फौजी, आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी तैयारी अत्यन्त आवश्यक है। इनमें से किसी भी तरह की तैयारी में एक क्षण की भी ढील न डाली चाहिये। माओ० ग्र० पृ० सं० २४०

[६[जोरदार तैयारी, सही समय, अधिक सबल सेना का केन्द्रीकरण, घेरा डालना, अगल बगल से निकल कर आगे बढ़ना, अनुकूल स्थान या चलते हुए शत्रु दल पर या ऐसे स्थान में जो सुदृढ़ न बन पाया हो हमला करना। माओ० ग्र० पृ० सं० २२८

यह तो भारत और चीन की युद्ध नीति की समानता की बात रही। युद्ध के लिये इस प्रकार की बातें प्रायः सभी राष्ट्रों में होती हैं। अब जरा भारतीय युद्ध नीति की विशेषता का भी अवलोकन कीजिये।

भारतीय युद्ध नीति की विशेषता

(१) जो धार्मिक राजा हो उससे विरोध न करे किन्तु उससे सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट, प्रबल भी हो उसे जीतने का प्रयत्न करे॥ सत्यार्थ प्र० ६ठा समु० ॥

(२) हारे हुए का सत्कार करे, कभी उसे चिड़ावे नहीं, उसकी हंसी न उड़ावे। उसको उचित भोजन वस्त्र आदि देवे। "हमने तुमको पराजित किया है" ऐसा भी न कहे। किन्तु "आप हमारे भाई हैं" इत्यादि मान, प्रतिष्ठा सदा करे। घायलों की ओषधि आदि से विधिवत् सेवा करे, नपुंसक, मूर्छित, दर्शक, बैठे हुए, शरणागत, शस्त्रहीन घायल, डरे हुए, भागते हुए को कभी न मारे। जिस देश पर अधिकार करे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा बना दे, और उससे अपनी आज्ञा के अनुसार धर्मयुक्त राजनीति के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा करा लेवे। शत्रुओं की स्त्रियों के साथ अपनी कन्या या बहिन के समान व्यवहार करे॥ मनु० ॥

यह सब हमारी भारतीय युद्धनीति की विशेषतायें हैं। अब चीन की पैशाचिकयुद्ध नीति पर भी जरा दृष्टिपात कर लीजिये:—

चीन की पैशाचिक युद्ध नीति के कुछ उदाहरण

चीनियों ने तिब्बत पर कब्जा किया। तिब्बतियों के साथ कैसा व्यवहार किया और कर रहे हैं आप को विदित ही है:—

लद्दाख के बौद्ध संघ के अध्यक्ष गेगन सोनाम ने कहा है कि यदि विश्व में कोई नरक है तो वह आजकल का तिब्बत है। चीनियों ने तिब्बत में जो

[शेष पृष्ठ १५ पर]

विजय के साधन

❀ श्री नत्थनलाल आर्य, प्रधान आर्यसमाज, हरिद्वार

वर्च आधेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम्। इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति ग्रह्णामि शत शारदाय (अथ० १९।३७।२)

शरीरिक बल के लिये प्रार्थना—

यह अथर्ववेद का मन्त्र है इस में अग्नि-तेजस्वी प्रभु से प्रार्थना की गई है कि—

अर्थ—हे अग्ने-तेजस्वी देव ! (मे तन्वा) मेरे शरीर में (वर्चः) तेज (सहः) सहनशक्ति (ओजः) पराक्रम (वयः) जीवन शक्ति-पौरुष (बलम्) बल (आधेहि) धारण करो। (त्वा) मैं तुझ को (इन्द्रियाय) इन्द्रियों के बल के लिये, (कर्मणे) कर्म वा क्रिया शक्ति की प्राप्ति के लिये, (वीर्याय) वीर्य वा वीरता प्राप्त करने के लिये तथा (शत शारदाय) सौ वर्ष जीने के लिये (प्रति ग्रह्णामि) स्वीकार करता हूँ।

इस प्रकार के अनेक मन्त्र वेदों में हैं जिनमें मनुष्यों को बलवान तथा तेजस्वी बनने की प्रेरणा दी गई है। आप लोग प्रतिदिन यह मन्त्र बोलते ही हैं—"तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। इत्यादि इसमें भी प्रभु से तेज, वीर्य तथा बलादि की मांग की गई है।

वीरों की अनुकूलता का आदेश—

इतना ही नहीं वरन् वेद में वीर पुरुषों की अनुकूलता का भी आदेश दिया गया है—देखिये

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम्। ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा॥ (अथर्व० ६।९७।३)

अर्थ—हे (सखायः) मित्रो ! (इमं वीरं उग्रं इन्द्रं) इस वीर तेजस्वी राजा की, जो (ग्रामजितं) गांव को जीतने वाला, (गोजितं) गौ-भूमि वा इन्द्रियों को जीतने वाला, (वज्रबाहुं) वज्र के समान कठोर बाहु वाला वा बाहु में वज्र धारण करने वाला (अज्म जयंतं) युद्ध में विजयी (ओजसा प्रमृणन्तं) तथा बल से शत्रु को पराजय करने वाला है, (अनु हर्षध्वं) अनुकूलता से हर्ष ध्वनि करो तथा (अनु-संरभध्वं) उसके अनुकूल रह कर अपनी उन्नति का साधन करो।

इस मन्त्र में राजा के गुणों का वर्णन कितने ओजस्वी शब्दों में किया गया है साथ ही यह भी कह दिया गया है कि राजा तेजस्वी और वीर तो हो ही पर वह गो-जित अर्थात् अपनी इन्द्रियों को भी जीतने वाला हो। इन्द्रियों का दास राजा कभी अपनी प्रजा को सन्तुष्ट नहीं रख सकता, उसकी प्रजा सदा उसके प्रतिकूल ही रहेगी।

दुष्ट के शासन में न रहो

रक्षामाकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत मानो अद्य गवां स्तेनो मा ऽ वीनां वृक ईशत॥ (अथर्व० १९।४७।६)

अर्थ—(रक्ष) हे प्रभु ! हमारी रक्षा करो (किः अघशंसः नो मा ईशत) कोई पापी—दुष्ट हम पर शासन न करे। (नो दुःशंस मा ईशत) कोई दुराचारी हम पर शासन न करे। (अद्य) आज (स्तेनः) चोर (नः गवां मा ईशत) हमारी गौवों पर अधिकार न जमा लेवे। और, (वृकः अवीनाम् मा ईशत) भेड़िया भेड़ों पर अधिकारी न बन बैठे।

मन को कमजोर बनाने वालों को नष्ट करो

वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति॥ (अथर्व० २।१२।३)

अर्थ—(यः अस्माकं इयं मनः हिनस्ति) जो

मनुष्य हमारे इस मन को हानि पहुँचाता है—जो हमें बुजदिल बनाता है, (तं) उस को (कुलिशेन वृक्षं इव वृश्चामि) मैं इस प्रकार काट डालता हूँ, जिस प्रकार कुल्हाड़े से वृक्ष काटा जाता है।

विजय के साधन

अभिभूर्यज्ञो, अभिभूरग्निः, अभिभूः सोमो, अभिभिरिन्द्रः ॥ (अथर्व० ६।९७।१)

अर्थ—(यज्ञः अभिभूः) यज्ञ शत्रु का पराभव करता है। (अग्निः अभिभूः) अग्नि शत्रु का पराजय करता है। (सोमः अभिभूः) सोम शत्रु का पराजय करता है। (इन्द्रःअभिभूः) इन्द्र शत्रु का पराभव करता है।

इस मन्त्र में शत्रु को पराजित करने के लिये चार साधन बतलाये गये हैं—यज्ञ, अग्नि, सोम और इन्द्र। अतः इन चार शब्दों की कुछ व्याख्या आवश्यक है।

१—यज्ञ का अर्थ है, देवपूजा, संगति और दान यहाँ संगति—संगठन अर्थ मुख्य है, देवपूजा और दान संगति के साधन हैं।

२—अग्नि का अर्थ है तेजस्वी, ज्ञानी, प्रतापी, उग्र, हलचल वा पराक्रम करने वाला (अग्रणनी) आगे आगे चलने वाला, नेता।

३—साम का अर्थ है—शान्त स्वभाव वाला, सहन शील, विचार शील।

४—इन्द्र का अर्थ है—शूरवीर तथा ऐश्वर्य का स्वामी राजा अतः शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये चार चीजों की आवश्यकता है—

१—जाति में संगठन हो।

२—एक ज्ञानी, तेजस्वी तथा पराक्रमी नेता हो।

३—विचार शील मन्त्री तथा

४—शूरवीर तथा ऐश्वर्य शाली राजा हो।

यही चार विजय के साधन है।

नेता कैसा हो

केवल एक मन्त्र और लिख कर हम लेख समाप्त करते हैं यह ऋग्वेद का पहला ही मन्त्र है।

अग्निं ईळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्न धातमम् ॥ (ऋ०)

अर्थ—मैं (अग्निम् ईळे) नेता के गुण वर्णन करता हूं। (पुरोहितं) वह संघ का अग्रणी—सब के आगे रहने वाला है। (यज्ञस्यदेव) संघ का देव—सब से विद्वान्, बुद्धिमान् तथा गुणवान् है।

यज्ञ—संघ को प्रकाशित करने वाला है। (ऋत्विजम्) समय-समय के अनुसार काम करता है। (होतारं) व्यवहार कुशल है। (रत्नधातमम्) धनों को धारण करने वाला है।

[शेष पृष्ठ १३ का]

अत्याचार किया है वैसा विश्व के कोने में कभी और कहीं नहीं हुआ।

स्त्रियों को हल में जोता गया है। १५ दिन तक के बच्चों को मां की गोद से छीन कर—लापता कर दिया। अनेक बौद्ध भिक्षुओं (लामाओं) को फांसी दे दी गई। अनेक पुरुषों को नपुंसक और स्त्रियों को बांझ बना दिया गया। सैकड़ों देवियों का सतीत्व नष्ट किया गया। सैकड़ों पवित्र लामाओं का मुंह काला करके मुंह में घोड़े का सा लगाम लगा कर दरबार में मंगवाया गया उनके बाल नोचे गये, उन्हें मारा पीटा गया उनके ऊपर पेशाब किया गया। उनसे मैला ढुलवाया गया इत्यादि लोमहर्षक अत्याचार किये गये हैं।

नेफा और लद्दाख क्षेत्र में हमारे भारतीय वीरों के साथ पैशाचिक व्यवहार किया गया। कर्म सिंह तथा कई वीर सिपाहियों को ६, ७ फुट गहरे गड्ढे में ढकेल दिया उनके जख्मों पर मरहम पट्टी तो दूर रही लोहे की तेज किरचों से बींध कर उन्हें मार डाला गया।

युद्धविराम के ६ दिन बाद बोमदीला से वापिस आते बिग्रेडियर होशियारसिंह को दरांग जोंग के पास गोली से उड़ा दिया। इसी प्रकार चीन की पैशाचिक युद्ध नीति की लोमहर्षक घटनाओं का अन्त नहीं। इसलिये अत्याचारी चीन का हर प्रकार से सामना करना तथा उसकी पैशाचिक दानवीय शक्ति को कुचलना ही हमारा परम लक्ष्य होना चाहिये ॥

सत्यार्थ-प्रकाश का नया संस्करण

❀ श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

श्री गोविन्दराम हासानन्द पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता, देहली ने अभी अभी सत्यार्थ-प्रकाश का मोटे अक्षरों में २०×३० आठ पत्री आकार में एक नया संस्करण प्रकाशित किया है। मैंने उसे अच्छे प्रकार से अनेक स्थानों में देखा। सत्यार्थ प्रकाश के अनेकों संस्करण मेरे पास हैं। स्वयं भी आत्म सन्तोषार्थ सत्यार्थ प्रकाश पर कुछ कार्य किया है। उस सब के प्रकाश में यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मूल पाठ शुद्धि की दृष्टि से यह संस्करण अभी तक के सभी संस्करणों से उत्तम है। उत्तरोत्तर संस्करणों में जो पाठ परिवर्तित हुए वा लुप्त हो गए (छूट गए) उनका निर्देश श्री माननीय सम्पादक पं० भगवद्दत्त जी ने स्थान स्थान पर नीचे टिप्पण में कर दिया है। इस कार्य से सत्यार्थ प्रकाश के भावी सम्पादकों चाहे वे कोई भी क्यों न हों शिक्षा लेना चाहिये कि सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन में इतनी असावधानता न करें।

इसके साथ ही हम यह भी निवेदन करना चाहते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन अथवा शोधन करते हुए तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

१—सत्यार्थ प्रकाश की प्रेस कापी में तथा द्वितीय संस्करण में जहां अन्तर है वहां द्वितीय संस्करण का पाठ प्रामाणिक मानना चाहिए, क्योंकि ग्रन्थ छपते समय ग्रन्थ में प्रेस कापी की अपेक्षा कुछ न कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। (यह प्रत्येक ग्रन्थ लेखक तथा प्रकाशक जानता है, परन्तु आर्य समाज के अनेक महारथी इस वास्तविकता से मुख मोड़ते हैं) हां, द्वितीय संस्करण में जहां मुद्रण दोष से पाठ अशुद्ध छप गया हो वा छूट गया हो उसे प्रेस कापी के आधार पर शुद्ध किया जा सकता है।

२—सत्यार्थ प्रकाश के सम्पादन के लिए प्रेस कापी से पूर्व की रफ कापी से भी मिलान अत्यावश्यक है, क्योंकि प्रतिलिपि करते समय लिपिकर के दृष्टिदोषादि के कारण अगली कापी में अनेक पाठ अशुद्ध हो जाते हैं अनेक छूट जाते हैं। यद्यपि ग्रन्थकार पुनः प्रतिलिपि की हुई कापी को एक बार देख लेता है, पुनरपि दृष्टि दोष आदि के कारण अनेक भूलें जो लिपिकर से हुई हैं, रह जाती हैं।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के हस्त लेखों पर जिन्होंने कुछ भी कार्य किया है वे तथ्य से मुख नहीं मोड़ सकते। हम इसके अनेक उदाहरण उपस्थित कर सकते हैं। इस संस्करण के सम्पादक ने स्वयं भी इस प्रकार के एक पाठ की ओर अपनी भूमिका के प्रथम पृष्ठ (पृ० सं० ३) पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। इसलिए जो भी व्यक्ति वा सभा सत्यार्थ प्रकाश के सम्पादन काल में प्रथम रफ कापी की **नितान्त उपेक्षा करेगा** वह अनेक स्थानों पर ग्रन्थकार के मूल पाठ को उपस्थित करने में असमर्थ रहेगा।

३—सत्यार्थ प्रकाश के संशोधन कार्य के लिए ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों के प्रकाशन वा मुद्रण के सम्बन्ध में जो विशिष्ट सूचनायें अनेक पत्रों में दी हैं अथवा ऋषि के पत्रों के उत्तर में प्रेषित पत्रों में जो निर्देश मिलता है, वह अत्यन्त उपादेय है। उनके बिना भी कार्य अधूरा ही रहेगा। श्री माननीय सम्पादक ने इस विषय का पूरा ध्यान रखा है।

पत्रों के सम्बन्ध में—कतिपय पण्डित ब्रुव अपनी स्वार्थ सिद्धि में बाधक समझ कर ऋषि दयानन्द के पत्रों को झूठ मूठ जाली कहते वा लिखते रहते हैं। इस विषय में पाठकों को जागरूक

[शेष २१ पृष्ठ पर]

आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना

❀ "रक्षक"

[गताङ्क से आगे]

प्रत्येक समाज से आधा भाग लेने का लाभ देखिये। अभी ४० लाख आर्य सदस्य हैं। औसत आय १०० रुपया मासिक माने तो प्रत्येक सदस्य का वार्षिक चन्दा १२) हुआ तो चालीस लाख आर्यों का ४ करोड़ ८० लाख हो गया इसका आधा २ करोड़ ४० लाख होता है। वर्ष का चन्दा धर्म सभा को २४० लाख रुपया मिलेगा। २००० उपदेशकों व २००० सभासद् जो वेदज्ञ होंगे उनका वार्षिक व्यय १ करोड़ ८ लाख हुआ। १२ लाख मार्ग व्यय हुआ तो १२० लाख व्यय हुआ तथा बचे १२० लाख में गुरुकुल, मुद्रणालय, पुस्तक पत्रिका आदि का व्यय निकल जायेगा। अभी आर्य्य विद्वान् आजीविका से निश्चिन्त नहीं इस योजनानुसार २००० वेदवितों की आजीविका का प्रबन्ध कर दिया। इनका मन केवल धर्मप्रचार में रहेगा तब देखिए प्रचार का मजा। आर्य्य जनता सोचे, क्या आपकी वर्त्तमान् सभायें आपसे लाखों रुपया लेकर अपना दायित्व निभा रही हैं ?

चन्दे की रसीदें सभा के आधीन छपेंगी। इससे चन्दे के हिसाब में एक पैसे की गड़बड़ नहीं हो सकती। प्रत्येक समाज के पास जितनी रसीदें भेजी जायेंगी उसका हिसाब हो जायगा। वर्ष के अन्त में पूर्ण आय व पूर्ण व्यय का व्यौरा आर्य्य जनता को दिया जायगा। वर्ष आरम्भ स्थापना दिवस से होगा।

पत्र प्रचार

(१) "वैदिक सिद्धान्त" नामी अन्वेषण पत्रिका होगी उच्च स्तर के सैद्धान्तिक निबन्ध। भिन्न भिन्न विषयों के भिन्न सम्पादक होंगे अर्थात् एक सम्पादक मण्डल होगा। पत्रिका में निम्न शीर्षक होंगे—शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्दालङ्कार सांख्य-योग, उपनिषद-वेदान्त, गृह-श्रौत सूत्र-मीमांसा, ब्राह्मण, वेद-भाष्य ज्योतिष-शिल्प, धनुर्विद्या, गानविद्या, आयुर्विद्या।

(२) "आदर्श रक्षक" नामी पत्र साधारण जनता के लिए होगा इसमें सदाचार, बाल युवक स्त्री उत्थान, समाज सुधार सम्बन्धी साहित्य होगा तथा वैदिक सिद्धान्तों पर सरल निबन्ध होंगे जिन्हें साधारण जनता समझ सके।

इन पत्रों के नाम अन्य भी रखे जा सकते हैं। आर्य्य समाज में अन्वेषण पत्रिका का तो नितान्त अभाव ही है बिना अन्वेषण पत्रिका हम वैदिक मन्तव्यों को शिक्षक वर्ग में नहीं पहुंचा सकते। तथा जब तक शिक्षक वर्ग में हमारे सिद्धान्त नहीं पहुँचते तब तक शिक्षक वर्ग में प्रचार तीव्रता से नहीं हो सकता है। शिक्षकवर्ग में योरोपीय विचार-धारा घर कर गई है अतः पहले उनका मस्तिष्क सही धारा पर लाना पड़ेगा। महाविद्यालयों में जहाँ जो विषय हों उसका गम्भीर विद्वान् भेज प्रचार कराया जाये, जैसे एलोपैथी के कालेज में वैद्य को भेजा जाये इस प्रकार वैदिक विचारधारा से सब परिचित हो।

मुद्रणालय

(१) धर्मसभान्तर्गत मुद्रणालय केवल वैदिक ग्रन्थ ही निकालेगा। (२) वेद मन्त्र को कहीं भी दिया जाय स्वर सहित दिया जायगा (३) पुस्तकें पत्रिका आदि सब एक साइज में निकाले जावेंगे (४) पुस्तकादि सस्ती से सस्ती रखीं जावेगी।

अनेक आर्य्य प्रकाशन हैं पर वेद के स्वरों पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता ग्रन्थों में अशुद्धियाँ खूब होती हैं। वैदिक यन्त्रालय की ये दशा है कि

ऋषि ग्रन्थ तो गये एक तरफ बाहर का काम कर कमाई करो। वैदिक यन्त्रालय आरम्भ से ही गैर-जिम्मेवारी से काम करता रहा है। पञ्च महायज्ञ-विधि जैसी लघु पुस्तक में बीसियों अशुद्धियां मिल जायं। सब आर्य्य प्रकाशन पुस्तकें अशुद्धि के साथ अधिक महंगी निकालते हैं। साधारण आय वाला ले भी नहीं सकता। गीताप्रेस आदि के ग्रन्थों में कोई सैद्धान्तिक सामग्री नहीं होती पर सस्ते होने से उसके ग्राहक हैं। पत्रिकाओं का पत्र तो सादा भी दिया जा सकता है। आर्य्य पत्रिकायें २४ हैं परन्तु प्रचार उससे कुछ नहीं। एक सरिता पत्रिका उनकी विचारधारा का प्रचार कर लेती है सब वैदिक पत्रिकायें नहीं कर सकती। सरिता एक उद्देश्य सहित चलता है तथा हमारे पत्र सब एक राग अलापते हैं। सात मामा वाला भानजा भूखा ही मरता है।

सहायताप्राप्त वैदिक शाला—अनाथ-विधवालय

(१) जिन संस्थाओं में राजकीय पाठ्यक्रम चलता है वे सरकार को दे दीं जायें। यदि ऐसी स्थिति में हैं कि गुरुकुल बना दिया जाय। (२) अनाथों को गुरुकुलों में भेज दिया जाय। (३) विधवाओं को कन्यागुरुकुलों में रख आचार व सिद्धान्त शिक्षण दिया जाये।

इन संस्थाओं ने आर्य्य समाज की सर्वाधिक हानि की है। डी० ए० वी० संस्थाओं पर आर्य्य-जनता का एक करोड़ रुपया व्यय होता है। भूला भटका कोई विद्यार्थी हो जो आर्य्य हो, इन संस्थाओं के अध्यापक तक आर्य्य नहीं होते। तथा इनमें वैदिक धर्म का प्रचार तो बिल्कुल नहीं इनके कारण अनेक स्वार्थी आ गये आर्य्यसमाज में। किसी का लड़का डी० ए० वी० संस्था में है उसे फीस माफ करानी है। आर्य्य समाज के चवन्नी सदस्य बन जाओ, लड़के की फीस के दो रुपये माफ। सौदा बढ़िया रहा। इन संस्थाओं में एक परेशानी और, हस्ताक्षर करो १००) रुपयो पर लेवो ८०), देखिये आर्य्यसमाज वाले अस्तेय का कैसा आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं फिर इनको सहायता देने से गुरुकुलों की सहायता नहीं मिलती इससे गुरुकुल शासन से सहायता लेते हैं। इस प्रकार दोहरा नुकसान हो रहा है। तथा काम के नाम कुछ नहीं। इस उल्टी सहायता के कारण वैदिकधर्म प्रचार में बाधा उत्पन्न तो होती है साथ ही आर्य्यों को एक करोड़ रुपये वार्षिक की हानि होती है। अनाथालय के छात्र भी आर्य्य नहीं बनते, आचार शिक्षा के लिये कहीं स्थान ही नहीं। तथा विधवालयों के कारण तो आर्य्य समाज में अनेक रसिक रसाल भी आये। अनेक कुख्यात घटनाओं से जनता परिचित है।

गुरुकुल

(१) धर्मार्य्य सभा के अधीन होंगे। (२) अध्यापक उन्हीं को बनाया जायगा सो साङ्गोपाङ्ग वेदवित् होंगे। (३) जैसा पूर्व लिखा जा चुका उपासना, व्यायाम, भोजन, वस्त्र आदि सब आर्य्योचित होंगे। (४) ५ वर्ष के वय वालों को प्रवेश दिया जायगा। (५) दस वर्ष में व्याकरण, निरुक्त, छन्द, मनुस्मृति, इतिहास, सत्यार्थप्रकाश पूर्वार्द्ध ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का आवश्यक भाग तथा धर्म शिक्षा, दर्शन का साधारण परिचय, आयुर्विद्या का साधारण ज्ञान तथा राजकीय विद्यालयों का अष्टम कक्षा तक का पाठ्यक्रम। (६) आगे षड्दर्शन, गृह्यश्रौतसूत्र, ब्राह्मण व वेद संहिता का अध्ययन। (७) गौशाला व फूल वाटिका होगी (८) उपवेद वाले गुरुकुल आश्रम होंगे।

गुरुकुलों का मुख्य ध्येय वेद शास्त्र के धुरन्धर योगाभ्यासी, शास्त्रार्थ महारथी धाराप्रवाह संस्कृत भाषण कर्त्ता विद्वान् तैयार करना है। शिक्षित जनता में विशेष कर शिक्षक वर्ग में प्रचार करने के लिये उच्चकोटि के तार्किकों की आवश्यकता है। १५ वर्ष तक आयु का पाठ्यक्रम पूर्ण कर जो विद्यार्थी वेदवित् बनना चाहेंगे वे तो वहीं पढ़ते रहेंगे तथा जो विद्यार्थी आधुनिक विषयों का अध्ययन करना चाहें वे नगरों में आजायेंगे। कन्या गुरुकुलों में यही कन्याओं के लिये होगा। १५ वर्ष की आयु तक सन्तान पूर्ण आचरणवान्

हो सकती है । गुरुकुलों में उपासना, भोजन, व्यायाम, वस्त्र संस्कृति आदि पर अत्यन्त ध्यान दिया जायगा, ताकि छात्र पूर्णतः आर्य्य सभ्यता का प्रतीक बन सके । इन गुरुकुलों के विद्यार्थी (बालक बालिका) नगरों में आकर पढ़ेंगे तथा इनका आचार व शील देख शिक्षक वर्ग अत्यन्त प्रभावित होगा । तब वे गुरुकुलों का महत्त्व जानेंगे । गुरुकुल पूर्ण वैदिक रीति से चलाये जाने पर ही उपयोगी हो सकते हैं। योरपीय तत्त्वों ने प्रवेश किया तो काम खराब । कन्यागुरुकुलों से संस्कृत विरोधियों को मुंह तोड़ उत्तर दिया जा सकता है । संस्कृत के विपक्षी चिल्लाया करते हैं कि संस्कृत मातृ भाषा नहीं अतः वह मृत भाषा है । गुरुकुलीय कन्यायें इसका समुचित क्रियात्मक उत्तर दे सकतीं है । जब ऐसे छात्र जिनकी मातृभाषा संस्कृत है गुरुकुलों में प्रविष्ट होंगे तब **दयानन्द पठन-पाठन विधि** को पूर्णतः अपनाया जा सकेगा ।

खण्डन

(१) आर्य्य सदस्य वैदिक आचार का पालन करें (२) ब्राह्मण वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन अधिक करें ।

अब खण्डन कम हो गया क्योंकि आर्य्यसमाज में नेता अधिक ऐसे हैं जिन्हें लीडरी तथा वोट चाहिए यदि मतमतान्तरों का खण्डन किया जाये तो उन्हें वोट कौन दे ? सो खण्डन प्रायः बन्द सा हैं । तथा सदस्य आचारहीन हो गये हैं अतः जनता पर खण्डन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अन्धेरा है प्रकाश का अभाव है । मतमतान्तरस्थ अनाचार को हमें नष्ट करना है तो पहली बात है हम सदाचारी हों । अविद्या का नाश करना है तो वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन करो विपक्षियों का स्वतः खण्डन हो जायगा । हमने सिद्ध किया ईश्वर है नास्तिकवाद का खण्डन हो गया, सिद्ध किया वेद ईश्वरीय ज्ञान है उसमें इतिहास हिंसा नहीं तो योरोपीयमत का खण्डन हो गया, ईश्वरोपासना बिना सदाचार नहीं हो सकती ईश्वर की कोई प्रतीक नहीं, मूर्त्तिपूजा का खण्डन हो गया । आर्य्य जीवित माता पिताओं की श्रद्धा से सेवा करे, मृतक श्राद्ध का स्वतः खण्डन हो गया । सब आर्य्य सदस्य अस्तेय का पालन करें भ्रष्टाचार का खण्डन हो गया ।

राजनीति

(१) आर्य्य समाज स्वयं राजनीति में भाग न ले (२) कोई ऐसी सभा भी न बनाई जाय जिसमें सब आर्य हों तथा संस्था राजनीतिक हो ।

अनेक आर्य सदस्य जो जोश में होश खो दिया करते हैं. कहा करते हैं कि यदि आर्य समाज का राज्य हो जाय तो सब आर्य्य हो जायें जैसे कांग्रेस के ही आते अस्पृश्यता आदि समाप्त हो गई । ये तरीका भद्दा है इससे भविष्य में आर्यसमाज को अत्यधिक हानि होगी । यदि पौराणिक सोचेंगे कि सब को पौराणिक बनाना है सो शासन प्राप्त करलो, तो आर्य समाज वालों के मन्सूबों पर पानी फिर जाये । तथा राजादण्ड से किसी को सतोगुणी नहीं बनाया जा सकता । प्रजा सम्राट् के दण्ड भय से रजोगुणी (मन से पापी) रहती है उसे सतोगुणी बनाना परिव्राट् का काम है । जो रजोगुणी व्यक्ति हैं वे विलासी प्रकृति के होते हैं, ऐसे व्यक्तियों के हाथ में शासन आ जाये तो उनकी विलासिता खुलकर खेलती है । तथा आर्य्य सदस्यों में अधिक संख्या रजोगुणी है क्योंकि संगठन, राजनीतिक आधार पर है, अतः राजनीति में भाग लेना उचित नहीं । जो व्यक्ति ये कहते हैं कि छठे समुल्लास का क्रियात्मक पालन करो । हम उनसे कहते हैं, इसी समुल्लास पर आपका ध्यान कैसे गया ? दसवें को क्यों भूल गये, वेदानुकूल आचरण करो, सात्विक भोजन करो । नवें समुल्लास को क्यों भूल गये, बन्धन से छूट मुक्ति के लिये प्रयत्न करो । दूसरे समुल्लास को क्यों भूल गये ? निषेक संस्कार का पालन करो । फलित ज्योतिष से निकले समयों पर विवाह संस्कार मत करा ो, तीसरे समुल्लास को क्यों भूले ? सन्तानों को गुरुकुल में भेजो । चौथे को क्यों भूले ? बालक बालिकाओं का २४, १६ वर्ष आयु पश्चात् विवाह कराओ । आश्चर्य है

सन्ध्या को याद करें नहीं तथा चक्रवर्ती साम्राज्य की बात करें। ऋषि आर्य्य राज्य चाहते थे, मैं भी चाहता हूँ आप भी चाहते हैं, सोधो सी बात वोट देने वाले को आर्य्य बना दो सब ठीक। औंधे क्यों चलते हो। स्वयं सतोगुणी बनो। भारतीय लोक समिति भी बन गई जमने के पहले उसके पांव उखड़ गये, मैं कहूँगा ये संस्था कभी नहीं पनप सकती सब आर्य समाज वाले एड़ी से चोटी का दम लगाले। अतः नियमों का क्रियात्मक पालन करिये, ये काम आगे के हैं अभी की चीज नहीं।

अनुसन्धान

(१) गुरुकुलों में ऐसे पुस्तकालय हों जहां संस्कृत की प्रत्येक पुस्तक हो आर्य्य भाषा व आंग्ल भाषादि की भी हो (२) पुस्तकों को वैदिक पौराणिक, यवन क्रिष्टान, योरोपीय विभाग कर रख जाय (३) संस्कृत ग्रन्थ ढूंढने के लिये कुछ कुछ ब्राह्मणों को विश्व के समस्त पुस्तकालयों में भेजा जायगा। जो आर्ष ग्रन्थ मिले उनका प्रकाशन होगा (४) दयानन्द पठन पाठन विधि के प्राप्य ग्रन्थ व आर्ष ग्रन्थों का शुद्ध संस्करण मूलवेदों का शुद्धत्तम संस्करण (५) समस्त ग्रन्थ आर्य्य भाषानुवाद सहित निकाले जायें, जिनमें प्रक्षेप हो उस पर विचार सहित। (६) वैदिक सिद्धान्तों के खण्डन करने वालों को उचित उत्तर दिया जाय (७) सब आर्ष ग्रन्थों के सानुवाद प्रक्षेपादि विचार सहित प्रकाशित कर, सिद्धान्त खण्डन को उत्तर दिया जाय तब विद्वानों द्वारा बचे वेदों पर भाष्य करवाया जाय। (८) शिल्प धनुः गान विद्या पर मौलिक अनुसन्धान।

अनुसन्धान के नियम में हम अत्यन्त पीछे हैं योरोपीय दिन प्रतिदिन हमसे आगे निकलते जाते हैं। हमारी गाड़ी को ऐसा जंग लगा कि सरके भी नहीं। अनुसंधान के लिये ब्राह्मणों को अत्यधिक सुविधा देनी पड़ेगी तथा अत्यन्त धैर्य्य से काम लेना होगा। वेद से भौतिक विद्या का सिद्धान्त व वर्षा यज्ञ सम्बन्धी अन्वेषण पूर्ण हो जावे तो संसार हमारी ओर होगा। अभी क्या दशा है? बुद्धदेव जी ने शतपथ पर भाष्य कर रखा है, गंगा प्रसाद जी प्रयाग वाले ने मीमांसा पर कर रखा है, अमरसिंह पथिक जी ने एक उत्तम पुस्तक लिख रखी है, पर प्रकाशित कौन करावे? भगवत दत्त जी ने किस कठिनता में इतिहास पर मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं। यही युधिष्ठिर मीमांसक जी के साथ है। ब्रह्ममुनि जी अन्वेषण के लिये अनेक स्थान पर फिरते रहते हैं, ईश्वरचन्द्र जैन विद्यालय में अध्यापक हैं ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु अपना व्यय ७५ रुपये महीने में निकालते हैं। ऐसे अन्य महानुभाव अत्यन्त कष्ट में हैं। ये नाम आर्य्य समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है इन व्यक्तियों को अर्थाभाव से कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है। तथा अनेक विद्वान् इस कारण आर्य समाज से निरपेक्ष हो गये। साथ ही विद्वानों की न्यूनता भी होती जा रही है। कोई एक ऐसा विद्वान् मिल सकता जिसे अङ्ग उपाङ्ग ब्राह्मण वेद सब पर अधिकार हो?

हमारे लीडरों में एक विशेषता और है, अनुसन्धान करने का ब्राह्मणों को आदेश देते हैं। एक ब्राह्मण महाशय से कहा गया कि वेद भाष्य करो, उन्होंने कहा कि वेदभाष्य करने में वे असमर्थ हैं। पर लीडर किस की मानें, नहीं जी करो वेद भाष्य वरना! ऐसी दशा कर रखी है ब्राह्मणों की इन लीडरों ने। अनुसन्धान जैसे दुष्कर कार्य को मिट्टी का खिलौना समझ रक्खा है। अन्धा भी रस्ता बताने लगा, कमाल है। ऐसी स्थिति में अनुसन्धान नहीं हो सकता। विश्व में वह व्यक्ति सर्वाधिक मूर्ख गिना जायगा जो मुख में खाद्य वस्तु रखना बन्द करदे। प्रत्येक वस्तु मुख को ही क्यों दी जाय अन्य अङ्गों को सीधी क्यों न दे दी जाय। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मुख अपने पास कुछ नहीं रखता समस्त शरीर तक पहुँचाने का प्रथम आवश्यक माध्यम है। यही दशा समाज में ब्राह्मण को है। मुख कुछ खायगा तो नहीं शरीर का स्थिति खराब। यहाँ ब्राह्मणों की जीविका का प्रबन्ध आर्य्य समाज की दशा खराब से भी बदतर। आर्य्य जनता विचार करके कि आगे क्या करना?

शुभस्य शीघ्रम्

विदेश प्रचार के लिये कोई विशेष योजना नहीं होगी। जैसा संगठन आर्य्यवर्त्त में बनाया है वैसा अन्य देशों में भी किया जायगा। विदेशों में प्रचार के लिये विदेशी भाषा आर्य्यवर्त्त के ब्राह्मणों को सिखानी होगी सो सर्वप्रथम आंग्ल फ्रेंच, रूसी, स्पेनी चीनी इन पांच भाषा सीखने का एक गुरुकुल खोला जावे धीरे धीरे अनेक भाषायें करदी जाय। इन पांच से विश्व से तीन चौथाई भाग में प्रचार किया जा सकता है ? साथ में चाहिये ब्राह्मणों का तप व त्याग।

आर्य्य जनता एक निर्णय करले, क्या उसे वर्त्तमान दशा जो आर्य्य समाज की है उससे वह प्रसन्न है ? नहीं तो इसमें परिवर्त्तन कब होगा ? १३ वर्षों में ४५ करोड़ व्यक्तियों तक वैदिक सिद्धान्त पहुँचाना है। आपसे जो निवेदन किया है, वह कड़वा लगेगा उसमें झूठ कोई नहीं। यदि कोई बात झूठी हो तो हमारा सिर तैयार जितने चाहें जूते लगाइये जिन व्यक्तियों में उत्साह है उन्हें योग्य है कि प्रयत्न कर, आर्य्यसमाज के दिग्गज ब्राह्मणों का सम्मेलन बुलायें तथा धर्मार्य्य सभा का स्थापन करवादें। अपनी आर्य्य समाजें उससे आबद्ध करके तथा तन मन धन से दयानन्द की वसीयत पूरी करे ? तथा जो आपसे कहा है उसी पर ही निर्भर नहीं रहना हैं। ये योजना की स्थापना मात्र है योजना तो विद्वान् बनायेंगे उसके अनुसार कार्य्य होगा। ब्राह्मण निराश हों तो हों। आर्य्य जनता लीडरों से दबतो व डरी रहे तो रहे। हमने वस्तु स्थिति अत्यन्त स्पष्ट करदी है। हम अत्याचार सहन नहीं कर सकते। सार्वदेशिक आदि से पुनः निवेदन हैं कि अनार्य्यत्व त्याग अपना समस्त धर्मार्य्य सभा को सौंप दें तथा प्रचार में योग दें। आगे इन सभाओं पर और भी प्रकाश डाला जायगा क्योंकि हमें इनसे किञ्चित भी भय नहीं। हमने तो ये सोच तो लिया है कि आर्य्य-जनता को जगाया जाय तथा विद्वानों में उत्साह उत्पन्न किया जावे। संक्षेप हम आर्य्य समाज को अन्धकार से प्रचार युग में फैलाना चाहते हैं।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथ प्रविचलन्ति पदम् न धीराः॥

॥ समाप्त ॥

[शेष पृष्ठ १६ का]

रहना चाहिये जिस से ये स्वार्थी दम्भी पण्डित ब्रुव जनता में झूठा भ्रम न फैला सकें।

माननीय सम्पादक ने इस विषय में भी पाठकों को सत्य चेतावनी दी है।

माननीय सम्पादक महोदय ने जो सम्पादन कार्य किया है वह अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस कार्य से अन्य विद्वानों को भी प्रेरणा लेनी चाहिये।

अन्त में सत्यार्थ प्रकाश के इस उत्तम संस्करण के सम्पादन और प्रकाशन के लिए सम्पादक और प्रकाशक दोनों को हम बधाई देते हैं। साथ ही हम एक क्रियात्मक प्रस्ताव भी रखते हैं कि इसी दृष्टि से यदि कोई सभा वा प्रकाशक ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका व संस्कार विधि का प्रकाशन करना चाहे तो हम उसे सहयोग दे सकते हैं।

श्रीमद्-दयानन्द प्रकाश

लेखक—श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

महर्षि का प्रामाणिक सम्पूर्ण सचित्र जीवन-चरित्र

इतने मोटे अक्षरों में

महर्षि दयानन्द सरस्वती का यह जीवन चरित्र सभी दृष्टियों से अद्वितीय है। इसकी भाषा बड़ी सरल तथा ललित है। स्वामी सत्यानन्द जी ने वर्षों तक भ्रमण कर इसकी सामग्री एकत्रित की थी। इसीलिए यह अधिक प्रामाणिक तथा एतिहासिक भी है।

एक बार जो इसे पढ़ना आरम्भ करे तो समाप्त किये बिना नहीं रह सकता तथा महर्षि के प्रति श्रद्धा से सिर झुकाये बिना नहीं रह सकता।

कथा करने योग्य, उपहार, भेंट, पुरस्कार में देने योग्य, सुनहरी जिल्द मूल्य १२)

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली।

विजयी कौन ?

❀ कमल किशोर गोस्वामी एम० ए०

पात्रः—

अमिता—कलिंग की बालिका-महारानी

हिता—अमिता की दासियों में से एक

उद्दाल—कंचुकी, अमिता का मामा

अशोक—मगध-सम्राट्

अन्य पात्रः—राजमाता, सैनिकगण व कुत्ता

(स्थान—कलिंग का राजमहल जिसकी उत्तम अट्टालिकायें आकाश को चूम रही हैं। सम्राट् अशोक द्वारा कलिंग आक्रान्त हो चुका है। प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई है। नगर आग की ऊंची उठती लपटों और काले स्याह धूएं से भड़क रहा है। अमिता जो कलिंग की बालिका महारानी है इस से अनभिज्ञ हैं। वे अपने कक्ष के बाहर रमणीय उद्यान में लगे झूले पर बैठी 'धीरे-धीरे' झूल रही है। हिता भी उद्यान में उपस्थित है।)

अमिता—(धूएं और लपटों को देख कर आश्चर्य चकित होकर) यह क्या ? ये काले-काले बादल पृथ्वी से अम्बर की ओर बढ़ रहे हैं, कहीं-कहीं लाल-पीली बिजली भी चमक उठती है किन्तु यह क्या ! समझ में नहीं आता बिजली के कड़कने की आवाज़ क्यों नहीं आ रही ! (अपनी दासी को आवाज लगाकर) हिता ! ओ हिता !! यह क्या है ?

हिता—(पास आकर) महारानी, यह बादल नहीं, शत्रु द्वारा लगाई गई आग है; आग ! महारानी।

(घबरा कर कंचुकी को बुलाने दौड़ती है। कंचुकी दूर खड़ा दोनों की बात-चीत सुन रहा था। शीघ्र ही महारानी के पास पहुंचता है।)

अमिता—मामा ! मामा !! देखो यह कितना सुन्दर·····

उद्दाल—(बीच में ही, घबराया हुआ) महारानी ! महासंकट है सिर पर। आप शीघ्र ही कक्ष में चलें; रक्षा के लिए आप शीघ्र चलें।

अमिता—किन्तु·····किन्तु यह तो बहुत प्रिय दृश्य है ! अहा ! कितना प्रिय ! श्याम-श्याम धूम्र में रक्तिम ज्वालाएं ! बहुत सुन्दर ! हम तो इसे छत पर जा कर देखेंगे।

(महल की छत पर जाने वाली सीढ़ियों की ओर भागती है। महारानी को दौड़ते देख कर उद्यान में इधर-उधर कूद रहा कुत्ता भी उनके पीछे लपका; उसकी गति महारानी से तीव्र होने के कारण वह पहले ही छत पर पहुँच गया और बनेरे पर चढ़कर दूर से सशस्त्र सैनिकों से घिरे सम्राट् अशोक को राजप्रासाद की ओर बढ़ते हुए देखता है। सम्राट् अशोक विशाल हाथी पर सवार है और रण-वेश-भूषा से सुसज्जित हैं। सिर पर लोहे का टोप है और हाथ में चमचमाती चन्द्रहास पकड़े हुए है।)

कुत्ता—(भौंकता हैं) भौं-भौं, भौं-भौं···भौं··· भौं···

अमिता—(छत पर पहुँच कर, दूर निरीह प्रजा पर अत्याचार होते देख बनेरे पर से ऊंची आवाज में) यह कौन है ? कौन लोगों पर प्रहार कर रहा है ? यह कौन है जिसने आग लगाई है ?

(महारानी अमिता के पीछे-पीछे ही उद्दाल और दासी हिता छत पर आ जाते हैं; इनके पीछे राजमाता की आज्ञा से महारानी को लेने के लिए दो सशस्त्र सैनिक भी आ जाते हैं।)

कुत्ता—(सैनिकों को अपनी ओर आता देख) भौं-भौं, भौं-भौं, भौं···उनकी ओर लपकता है।

सैनिक पीछे हट जाते हैं)

अमिता—मामा ! यह कौन अत्याचार कर रहा है, प्रजा पर ? यह कौन प्रजा को मार रहा हैं, लूट रहा है, कौन है यह क्रूर ?

उद्दाल—अम्मि ! तुरन्त गुप्त मार्ग से कक्ष में चलो, महाभय है।

अमिता—(बाल-हठ से) नहीं-नहीं, हमें बताओ यह कौन निर्दयी है ? किसकी आज्ञा से नगर को जलाया गया है ? यह प्रजा को सन्ताप पहुंचाने वाला कौन है ?

उद्दाल—महारानी ! यह मगध नरेश दुष्ट अशोक है, महारानी ! यह बड़ा निर्दयी है, आप शीघ्र राजमाता के कक्ष में चलें ....।

अमिता—(सिर हिलाकर निषेध करती है, जिससे कुन्तल राशि कन्धों पर बिखर जाती है) नहीं-नहीं दुष्ट अशोक को बांधना चाहिए—उसे पकड़ना चाहिए—महासेनापति को बुलाया जाय।

उद्दाल—(रुआंसा-सा मुंह बनाकर) वह तो रणक्षेत्र में मारे गये, महारानी अम्मि ! आपकी रक्षा होनी चाहिए...अम्मि.....आप.....।

अमिता—ओह ! नहीं-नहीं, हम स्वयं उस दुष्ट को बांधकर रखेंगे। यह सब हम स्वयं करेंगे। (हिता से) हिता ! कुत्ते की सांकल हमें दी जाय। हम इसी सांकल से नीच अशोक को सशोक करेंगे। (महल के तल में अब दोनों पक्षों की सेनाएं जूझ रही हैं। ऐसे समय में और कोई उपाय न देखकर दासी हिता सांकल खोलकर महारानी को सौंपती है और बड़ी दीनता से कहती है।)

हिता—महारानी अम्मि ! दासी के अंक में नीचे कक्ष में चलें, महारानी ! बहुत भारी संकट है।

अमिता—नहीं हिता। नहीं-नहीं, हम आज अवश्य इस निर्दयी को बांधेंगे। (हिता उन्हें गोद में लेने के लिए स्पर्श करती है)

अमिता—दूर हटो ! हमारे मार्ग में मत आओ —यह हमारा आखिरी आग्रह है।

(हिता दूर हटती है; महारानी का यह आग्रह शत्रु-सैनिक के कानों में भी पड़ जाता है; वह सम्राट् अशोक के पास जाकर इस प्रकार कहता है।)

सैनिक—महामहिम सम्राट् ! कलिंग की महारानी ने अब प्रचण्ड सर्पणी का रूप धारण कर रखा है—वह सम्राट् को बांधने के लिए सांकल लिए आ रही है।

अशोक—अच्छा यह बात है ? कोई चिन्ता नहीं, आने दो।

सैनिक—(भयभीत सा) महाराज...

अशोक—विजयी अशोक ऐसी अभिमानिनी का गर्व अभी क्षण में चूर किये देता है। मार्ग दिखाया जाए, और देखो हमारे पीछे और कोई न रहे। हम अकेले ही सब निबटेंगे।

(सैनिक प्रासाद की ऊंची सीढ़ियों की ओर संकेत करता है और सम्राट् अपने विशाल काय हाथी से उतर कर रत्न मण्डित तलवार हाथ में लिये उधर बढ़ते हैं। प्रासाद की संगमरमर पत्थर की बनी विशाल सीढ़ियों से अमिता भी कुत्ते की सांकल हाथों में लिए नीचे उतर रही है। उनके पीछे-पीछे दासी हिता, सैनिक और कंचुकी उद्दाल हैं। विशाल-काय अशोक ऊपर चढ़ रहा है और बालिका महारानी अमिता निर्भीक मन से उतरती आ रही हैं।)

उद्दाल और हिता—(एक साथ) महारानी ! सुरंग मार्ग की ओर चलें...।

अमिता—नहीं-नहीं, हम दुष्ट अशोक को पकड़ कर ही विश्राम लेंगे—बहुत क्रूर और निर्दयी है वह। (अशोक और अमिता पास-पास पहुँच जाते हैं; अमिता अशोक को देखकर ठिठक जाती है और अशोक भी रुक जाता है)

अमिता—सुनो !

अशोक—(चुपचाप उसकी ओर देखता है)

अमिता—तुम कौन हो ?

अशोक—(बालिका महारानी को कौतूहल पूर्ण दृष्टि से देखता रहता है। बोलता कुछ नहीं।)

अमिता—तुम बड़े सुन्दर हो। मेरा साथ दोगे ?

अशोक—(चुप)

अमिता—हम दुष्ट अशोक को बांधने जा रहे हैं। देखते नहीं यह सांकल ? वह बड़ा निर्दयी है··· बच्चों की चीत्कार, अबलाहों की आह भी उसे कोमल नहीं बना सकीं। वह निरन्तर अत्याचार कर रहा है।

अशोक—(विस्मय से) क्या तुम ही कलिंग की महारानी हो ?

अमिता—हाँ, हम ही हैं, कलिंग की महारानी। उस क्रूर को इस सांकल से बांधेंगे—आओ तुम भी आओ मेरे साथ···आओ। (अशोक स्तम्भवत् खड़ा रहा—महारानी को देखकर वह विस्मित रह गया)

अमिता—(अशोक को स्तब्ध निर्जीव सा खड़ा देख) तुम कौन हो ?

अशोक—(चुप)

अमिता—बोलते क्यों नहीं ? क्या तुम भी उससे डरकर राजशरण में आये हो—घबराओ नहीं. हम अवश्य ही आज उस दुष्ट को पकड़ लेंगे।

अशोक—(धीमे स्वर में) मैं सम्राट् अशोक हूँ।

अमिता—(विस्मय से कुछ देर देखकर) तुम्हीं अशोक हो क्या ? तुम्हीं ने कलिंग पर आक्रमण किया है ? तुम तो बहुत सज्जन मालूम पड़ते हो। तुम प्रजा पर अत्याचार क्यों करते हो ? तुम्हें किस वस्तु की आवश्यकता है ? तुम क्या चाहते हो ?

अशोक—(अपराधी की तरह मौन खड़ा रहता है।)

अमिता—(अपने छोटे करों से उस विशाल-काय वीर को झकझोर कर) क्या तुम्हारे पास जमीन नहीं है ? क्या तुम्हारे पास खाने को नहीं है ? तुम्हें वस्त्राभूषण चाहियें क्या ? उन गरीबों के पास तुम्हारे लिये क्या रखा होगा जिन पर तुम इतने क्रूर और निर्दयी हो रहे हो। हमारे साथ आओ·····हम तुम्हें सब कुछ देंगे—फल-मिष्टान्न, रत्न, खजाने, वस्त्र-आभूषण आदि।

(अशोक अमिता के पीछे चल देता है। एक विशाल भवन में प्रवेश करके)

अमिता—बोलो तुम क्या चाहते हो ? यहाँ सब कुछ है जो मांगोगे दिया जायेगा।

अशोक—क्या सच ? तुम हमें वह सब कुछ दे दोगी जो हम मांगेंगे।

अमिता—जरूर ! बेशक !

अशोक—(भवन के एक कोने से ऊंचे स्थान पर पड़े राज-तख्त की ओर संकेत करके) तो हमें वह तख्त दे दिया जाय।

अमिता—(पहले तो कुछ सिहर सी गई, किन्तु फिर वचन पर दृढ़ रहने के लिए बोली) हाँ—तुम इसे ले जा सकते हो, हम और बनवा लेंगे अपने लिए।

(अशोक यह उत्तर सुनकर निर्वाक् रह जाता है। फिर खड्ग फर्श पर डाल कर तथा अमिता के चरणों में झुककर कहता है।

अशोक—कलिंग-महारानी ! मगधनरेश अशोक आज विजयी होकर भी पराजित हुआ; विजय आपकी हुई। आप धन्य हैं ! महारानी ! (कुछ देर रुककर) आ·····ऽ·····ऽ·····प मुझे बाँधना चाहती थी न ? लो बाँध लो मुझे !

(और इसके साथ ही अमिता के हाथों से सांकल लेकर अपने गले में डाल लेता है।)

यजुर्वेद संहिता

मूल यजुर्वेद का सर्वोत्तम सस्ता संस्करण

- ऋषि देवता छन्द आदि का निर्देश
- स्वर सहित मूल पाठ
- अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका
- पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की महत्वपूर्ण भूमिका
- पृष्ठ संख्या २७५ मूल्य २॥) सजिल्द

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्त्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

प० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

कुछ करो कुछ बनो

ब्र० जगदीश विद्यार्थी

निराशा के क्षणों में इस पुस्तक का अध्ययन कीजिये। इसके अध्ययन से आपके जीवन में स्फूर्ति, जागृति और नवजीवन का सञ्चार होगा। निराशा के क्षणों में आशा की किरण दिखाई देगी। यह पुस्तक आपके जीवनों को दिव्य गुणों से भर देगी। जीवनोपयोगी ३१ विषयों का समावेश है। भिन्न महापुरुषों की प्रेरणाप्रद गाथाएं और प्रेरक सन्देश हैं।

१२८ पृष्ठ की बढ़िया कागज पर छपी, आकर्षक आवरण से सुसज्जित पुस्तक का मूल्य केवल १-२५ नये पैसे।

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली

रजि० नं० डी० ४२६

प्रेरणाप्रद एवं स्फूर्तिदायक पुस्तक

वेदध्वज

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक

स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक

विजयकुमार

टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक

ब्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०

टेलीफोन नं० २२१३२८

मई	१९६३
वैशाख	२०१९
वर्ष	अङ्क
११	१०

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति का ।)

सत्यार्थ प्रकाश का अभिनव संस्करण

सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में प्रतिदिन हमारे पास बहुत ही उत्साह वर्धक पत्र आते रहते हैं। कुछ पाठकों के उद्गार पढ़िये—

सत्यार्थ प्रकाश की अत्युत्तम छपाई देखकर मैं अत्यधिक हर्ष के मारे उछल पड़ा। सचमुच यह आप की आर्य जनता को एक अभूतपूर्व देन है.....इस अभूतपूर्व सेवा के लिये आर्य जगत् आप का सदा ऋणी रहेगा। श्री मास्टर प्रभुदयाल जी, भवानीपेठ

इस संस्करण की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। साथ ही कामना है कि आर्य विद्वानों और कुबेरों को इसकी चिर रक्षार्थ स्वर्ण पत्रों पर प्रति कृति उतार कर अनेक जन्मों का पुण्य लाभ लेना चाहिये। यह कोई कठिन कार्य नहीं। हां वैदिक दानियों के हृदय में आर्य जाति को समुन्नति की तीव्र भावना जागत हो जाय।

श्री नरोत्तम दास जी शर्मा, मिर्जाबाद

यह पुस्तक दर्शनीय, पठनीय तथा संग्रहणीय है। पं० भगवद्दत्त जी ने इस सत्यार्थ प्रकाश में चार चांद लगा दिये हैं।

श्री अर्जुन प्रसाद आर्य, नगर

सत्यार्थ प्रकाश का संस्करण अत्युत्तम है। पहले जो बड़े बड़े संस्करण छपे वे Handy नहीं थे। यह आकर्षक भी है।

श्री मदनजति आर्य, फिरोजपुर शहर,

विद्वानों, नेताओं की सम्मतियां टाइटिल के अन्तिम पृष्ठ पर देखिये।

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली।

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रदायक पुस्तकें

तत्त्वज्ञान	३)
प्रभुदर्शन	२)५०
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्द गायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त भगवान	१)
शंकर दयानन्द	)५०
उपनिषद सन्देश	१)२५
सत्यनारायण कथा	)६२

—***—

बड़े साइज के चित्र

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानन्द का रंगीन चित्र	१)२५
महर्षि दयानन्द एकरंगा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
पं० गुरुदत्त	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

———

महर्षि दयानन्द घटना चित्र	)५०

मोटोज साइज ११×१४

मूल्य प्रत्येक का)२५ न. पै.

ओ३म्, स्वागतम

नमस्ते, गायत्रीमन्त्र

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

[लेखक—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती]

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सुललित, भावपूर्ण श्रद्धामयी भाषा में लिखा हुआ एक मात्र प्रामाणिक संपूर्ण जीवन चरित्र। बढ़िया कागज मोटे अक्षर, बड़े साइज के ६०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १२) केवल।

—***—

दो सनातन सत्ताएं

[लेखक— श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी]

प्रस्तुत पुस्तक में श्री पण्डित जी ते "जीव और प्रकृति अनादि काल से हैं" को अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है जिनका उत्तर इस्लाम और ईसाईयों के पास नहीं है मूल्य १)। आज ही खरीदिये।

विष्णुपुराण की आलोचना

मूल्य ४० नये पैसे

राधास्वामी मत दर्पण

मूल्य २५ नये पैसे

ब्रह्माकुमारी मत दर्पण

मूल्य ३७ नये पैसे प्रचारार्थ

आर्य राजनीति के कतिपय तत्व

[श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर]

मूल्य ३० नये पैसे प्रचारार्थ २२) सैंकड़ा

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

हंस पोल प्रकाश

[लेखक—ब्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०]

आज संसार में नाना प्रकार के मत, पन्थ और सम्प्रदाय फैले हुए हैं। इन मतों और पन्थों की आड़ में, योग के नाम पर इन तथाकथित धर्मों के ठेकेदार मनुष्यों के धन और बहुमूल्य जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। साधारण जनता को इन मतों और सम्प्रदायों की जानकारी नहीं होती और न ही इनके प्रवर्तकों और संस्थापकों के दूषित और घृणित जीवन का पता होता है जनता इनके पाखण्ड जाल में फंस जाती है। जनता को वस्तु स्थिति का ज्ञान कराने के लिये यहाँ "हंस जी महाराज" के मत का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

"हंस" जी कौन हैं ?

"हंस" जी हंस के रूप में वस्तुतः एक काग हैं। संसार का शायद ही कोई ऐसा दुर्गुण हो जो आप के जीवन में विद्यमान न हो। आप टूटी फूटी हिन्दी जानते हैं संस्कृत आदि विद्याओं से सर्वथा शून्य हैं। आप पूरे चार सौ बीस और अव्वल नम्बर के चोर भी हैं। आप ने दो दो शादियां की हुई हैं और जो स्त्रियां रखेल के रूप में रक्खी हुई हैं तथा जिनके साथ आप अनैतिक व्यभिचार करते हैं उनकी संख्या तो ये स्वयं ही जानते होंगे। पर नारी से व्यभिचार, माँस भक्षण और मद्य (शराब) पान में आप कोई बुराई नहीं समझते फिर गाँजा, अफीम और चरस का सेवन तो साधारण सी बात है। ढोंग और पाखण्ड फैलाने में आप खूब चतुर हैं।

ऊपर हमने जितनी बातें लिखी हैं वे न तो भावावेश में लिखी हैं और न हंस जी तथा हंस जी के चेलों का दिल दुखाने के लिये लिखी हैं। उपर्युक्त सभी बातें सत्य हैं यथार्थ हैं और हमारे पास प्रत्येक के लिये प्रमाण हैं इसलिये लिखी हैं। यहां हम प्रत्येक बात के लिये प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

"संस्कृत, मराठी अंग्रेजी आदि ग्रन्थों का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। हंसयोग प्रकाश पृष्ठ ४१३

यहाँ हंस जी ने संस्कृत आदि के ज्ञान से स्वयं अनभिज्ञता प्रकट की है। अब तनिक इनकी हिन्दी और अन्य विद्याओं के ज्ञान का भी अवलोकन कर लीजिये।

आप उपर्युक्त को उपरोक्त लिखते हैं। इसी प्रकार आप व्यष्टि को विष्टि, भागवत को भगवत्, वेश्या को वैश्या, प्रिय को प्रिये, नारी को नारि, पितर को पित्र, जय को जै, उज्ज्वल को उज्जल लिखते हैं। शुकदेव को आपने सर्वत्र सुखदेव लिखा है। पाश्चात्य विचारक काँट (Kant) को आप ने कोंट, हीगल को हेगले, शोपनहावर को शोपनेहर और आरिस्टोटल को अरिस्टाटल लिखा है।

मैंने तो उन्हें कोई बहुत कठोर शब्द नहीं लिखा है परन्तु हंस जी ने स्वयं ही अपने को मूर्ख कहा है—

उसका वर्णन करने को मुझ मूर्ख की मति का कहां ठिकाना है। (हंसयोग पृष्ठ ३८)

हंस जी द्वारा संस्थापित 'दिव्य संदेश परिषद्, शक्तिनगर से एक चार पेजी ट्रैक्ट निकला है। इसके मुखपृष्ठ पर हंस जी का फोटो छपा हुआ है और फोटों के ऊपर "चार सौ बीस" लिखा हुआ है। फिर इनके ४२० होने में क्या संदेह ?

चोरी अनेक प्रकार की होती हैं। कोई धन की चोरी करता है तो कोई वस्त्रों की। कोई अन्न की चोरी करता है तो कोई साहित्य की चोरी करता है। हंस जी साहित्य चोर हैं "हंस योग प्रकाश" पढ़ने पर पाठकों को हंस जी की चोरी की अनेक उदाहरण मिल सकते हैं यहां दो चार उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

कबीर जी का एक पद है—

कबीरा संगति साधु की, ज्यों गन्धी का बास।
गन्धी कुछ देवे नहीं तो भी बास सुबास॥

इसको बदल कर हंस जी ने यूं कर दिया है—

हंस संगति साधु की, ज्यों गन्धी का बास।
गन्धी कुछ देवे नहीं, तो भी बास सुबास॥

किसी दूसरे कवि के वचन में अपना नाम घुसेड़ कर उसे अपना लिखना कहना और मानना चोरी नहीं तो क्या है? इसी प्रकार के हेर फेर और भी अनेक स्थानों पर मिलेंगे।

हंस योग प्रकाश पृष्ठ ३९० पर हंस जी ने यजुर्वेद के दो मन्त्रों का अर्थ दिया है। जो अर्थ दिया गया है वह थोड़े से शब्द परिवर्तन के साथ आर्य समाज के संस्थापक वेदोद्धारक, महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाष्य है परन्तु लेखक ने स्वामी जी का नाम नहीं दिया है।

यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र १९ का भावार्थ महर्षि ने इस प्रकार लिखा हैं—

"जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा, निराकार, अनन्त सामर्थ्य वाला, सर्वत्र अभिव्याप्त, प्रकाश स्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है। जो पुरुष इसको छोड़ अन्य की उपासना करता है। उससे अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन पुरुष है ?"

हंस जी ने इसे अपने ग्रन्थ में यूं लिखा है—

"बड़े" से बड़ा, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, निराकार, अनन्त सामर्थवान सर्वत्र व्यापक प्रकाशरूप, अद्वितीय, कारण से स्थूल कार्यरूप जगत के रचने वाला और जो विनाश करने का सामर्थ रखता है, उस ईश्वर को छोड़कर जो अन्य की उपासना करता है, उससे अन्य भाग्यहीन पुरुष कोई भी नहीं है।"

"हंस जी ने सोचा होगा कि इतनी बारीकी से कौन पढ़ेगा। परन्तु हंस जी की पोल खुल गई।

हंस जी की इन चोरियों से भी बड़ी चोरी तो यह है कि यह 'हंस योग प्रकाश' हंस जी का लिखा है ही नहीं। हंस जी को जैसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है संस्कृत और आङ्गल भाषा का ज्ञान नहीं है परन्तु इस पुस्तक में संस्कृत के श्लोक हैं। अनेक स्थानों पर उनका अंग्रेजी में अनुवाद दिया हुआ है। पृष्ठ ३२ से आगे १६ पृष्ठ तो केवल अंग्रेजी के ही हैं। इन सब से यह सिद्ध होता है कि किसी व्यक्ति को कुछ रुपया देकर यह ग्रन्थ लिखवाया गया है। और नाम हंस जी ने अपना दिया है। कितनी महान् साहित्यक चोरी है। कितना भीषण छल और कपट है।

आपने दो शादियां की हैं और पता नहीं कितनी देवियों का सतीत्व लूटा है इसके लिए हम एक महत्त्वपूर्ण पत्र नीचे उद्धृत कर रहे हैं। मूल पत्र अंग्रेजी में है। मैं उसका हिन्दी अनुवादमात्र दे रहा हूँ।

प्रधान
आर्य समाज
चान्दनी चौक, दिल्ली

विषय—योगी के वेश में निन्दनीय

एवं घृणि अपराध, बच्चों को भगाना, लड़कियों को फुसलाना और उनसे बलात्कार करना तथा धोखा देना आदि।

श्रीमन् !

जनता के कल्याण के लिए तथा भोली-भाली और भक्तिभाव से परिपूर्ण स्त्रियों की रक्षा के लिए मैं आपकी परोपकार प्रियता की भावनाओं को जागृत करने के लिए एक संस्था और "स्वामी हंस जी महाराज" के नाम से प्रसिद्ध एक व्यक्ति के नीचतापूर्ण कार्यों का रहस्य उद्घाटन निम्न लिखित तथ्यों के आधार पर करना चाहता हूँ—

१. "दिव्य सन्देश परिषद्" नाम की एक संस्था है जो १९/३ बी शक्ति नगर, देहली में स्थित है।

२. श्री स्वामी हंस जी महाराज इस सभा के अध्यक्ष हैं। श्री आर० एस० योगी हंस जी महाराज के निजी सहायक (P. A.) हैं।

३. प्रार्थी एक सेवक के रूप में मई १९६१ से इस परिषद् में कार्य कर रहा है।

४. श्री आर० एस० योगी ने तीन स्त्रियों को 'रखेल' के रूप में रखा हुआ है। श्री हंस जी महाराज के दो स्त्रियां हैं जो १३, म्युनसिपल रोड़, देहरादून में रह रही हैं। कुछ मास पूर्व श्री आर. एस. योगी ने एक १८ वर्षीय सुन्दर नवयुवती को अपने चुंगल में फंसाया और उसके साथ अनैतिक व्यभिचार करने के लिए उसे कुछ समय तक १९/३ बी शक्ति नगर, दिल्ली में रखा फिर योगी जी ने उसे श्री स्वामी हंस जी महाराज को सौंप दिया। हंस जी महाराज ने उसके लिए ५१,००० रुपये का एक मकान खरीदा और उसे उस मकान २६/९६ शक्तिनगर में रख कर उसके साथ अनैतिक व्यभिचार किया। जब मोहल्ले वाले लोगों को उस लड़की के साथ स्वामी जी के अनैतिक सम्बन्ध का ज्ञान हुआ तो उन्होंने स्वामी जी की अच्छी प्रकार पिटाई की और स्वामी जी तथा उनके सहयोगी आर. एस. योगी को उस मकान २६/९६ से बाहर निकाल दिया।

५. तत्पश्चात् स्वामी जी और आर. एस. योगी ने उस लड़की को अपने साथ लेकर पटना से देहली तक वायुयान द्वारा सैर सपाटे किये।

६. स्वामी हंस जी और आर. एस. योगी उस लड़की को पुनः १९/३ बी शक्ति नगर में ले आये और उसके साथ व्यभिचार किया। एक दिन मैं सहसा ऊपर चढ़ा। मैंने स्वामी जी और उस लड़की को समझौते की दशा में देखा। उन्हें देखते ही मैं नीचे उतर आया। उसी दिन स्वामी जी लड़की को लेकर देहरादून भाग गये और १३ म्युनसिपल रोड़ देहरादून में रहने लगे जहाँ उसकी दो स्त्रियां पहले से ही रहती थी। वह लड़की के साथ वहां कुछ दिनों तक रहा। परन्तु वहां भी उस लड़की के साथ उसके अनैतिक सम्बन्ध को देख कर उसकी दोनों घरवालियों ने उसके साथ झगड़ा खड़ा कर दिया। वहां से वह लड़की को लेकर पुनः १९/३ बी. शक्तिनगर देहली आ गया।

एक दिन स्वामी जी ने मुझे अपने निजी कमरे में बुलाया जहां श्री बिहारी, बनारसीदास, भगतराम और आर. एस. योगी पहले ही विद्यमान थे। श्री आर. एस. योगी और स्वामी जी ने मुझे कहा कि तुम, बनारसी दास, बिहारी और भगतराम के साथ इस लड़की को किसी अज्ञात स्थान पर ले जाओ और इसे मार दो। मैंने ऐसा घृणित कार्य करने के लिए मना कर दिया तब श्री हंस जी और आर. एस. योगी, बनारसीदास, भगतराम तथा बिहारी लाल उस लड़का को एक कार में डाल कर किसी अज्ञात स्थान पर ले गये। जाने से पूर्व स्वामी जी और आर. एस. योगी ने मुझे बुलाया और मुझे धमकी दी कि यदि तुम ने यह रहस्य खोला तो तुम्हें जान से मार दिया जायेगा। लोगों की ऐसी धारणा है कि लड़की को कत्ल कर दिया गया है।

अतः आप से प्रार्थना है कि इस मामले की छान बीन किसी ईमानदार, निष्पक्ष और महान्

सामाजिक कार्यकर्ता के द्वारा होनी चाहिए। अभियुक्त बड़ा धनी और प्रभावशाली व्यक्ति है।

देहली आपका
तिथि १३. ६. ६२. (हस्ताक्षर) रामफल
आत्मज श्री तुही राम
१५४० गली नं० २८ नाई वाला
करौलबाग दिल्ली

वाममार्गियों के समान मांस, मद्य एवं मैथुन में आप दोष नहीं समझते। अपने शास्त्र-अज्ञान का परिचय देते हुए आप लिखते हैं—

मनु जी ने जो कहा है कि "न मांस भक्षणों दोषो न मद्ये न च मैथुने।" (मनु० ५।५६) अर्थात् मांस भक्षण करना अथवा मद्यपान और मैथुन करना को सृष्टि कर्म-विरुद्ध दोष नहीं है। उसका तात्पर्य भी यही है, कि ये सब बातें मनुष्य ही के लिए नहीं, किन्तु प्राणीमात्र के लिये स्वाभाविक हैं। (हंस योग पृष्ठ १२३)

समीक्षा:—इस उद्धरण में मोटे शब्द अशुद्ध हैं। जिसे हिन्दी का भी ठीक ज्ञान न हो वह शास्त्रों का अर्थ करने चला है इससे बढ़ कर आश्चर्य और क्या हो सकता है?

हंस जी महाराज! यदि शास्त्रों के रहस्य को जानना चाहते हो तो कुछ समय किसी विद्वान् के चरणों में बैठो। जिन मनु महाराज का यह आदेश है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकः॥
(मनु० ५।५१)

अर्थात् मारने की सम्मति देने वाला, अङ्गों को काटने वाला, मारने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला ये सब के सब कसाई हैं। वे मनु महाराज मांस भक्षण आदि की आज्ञा कैसे दे सकते हैं? यह श्लोक आप जैसे स्वार्थियों ने मिलाया हैं। दुर्जनतोष न्याय से इसे मनु का श्लोक मान भी लिया जाय तो हंस जी महाराज ने जो अर्थ किया है वह सर्वथा अशुद्ध है।

मनु जी का श्लोक और उसका ठीक अर्थ इस प्रकार है—

न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

प्रस्तुत श्लोक के "न माँस भक्षणे दोषो" इस पद में "एदोतः पदान्तो ऽस्य लुक" व्याकरण के इस नियमानुसार 'मांस भक्षणे' और 'दोषो' इन दो पदों के बीच में अकार का लोप हो गया है। सन्धि से पूर्व श्लोक के प्रथम चरण का रूप इस प्रकार था—'न मांस भक्षणे अदोषो" अकार का लोप होकर उपर्युक्त रूप हो गया। इस प्रकार की योजना आगे भी जाननी चाहिए। अब श्लोक का अर्थ यूं होगा—

"माँस भक्षण में अदोष नहीं है अपितु दोष ही है। इसी प्रकार मद्यसेवन और मैथुन में भी अदोष नहीं है दोष ही है। मद्य मांसादि का सेवन मनुष्यों की अज्ञानजन्य प्रवृत्ति है। यदि उससे निवृत्ति हो तो वह बहुत फल दायक होती है।

आगे आप लिखते हैं—

"जो पूर्ण आत्म ज्ञानी है, उसे मातृ वध, पितृ वध, बालक, स्त्रीहत्या अथवा स्तेय (चोरी) इत्यादि किसी भी कर्म का दोष नहीं लगता।"
(हंसयोग पृष्ठ १२७)

समीक्षा:—आपके आत्मज्ञान की पोल तो आगे खुलेगी परन्तु क्या अपने को आत्मज्ञानी समझ कर ही आप नारियों का सतीत्व नष्ट करने पर तुले हुए हैं। आत्मज्ञानी का ढोंग भर कर ही क्या आपने उस लड़की की हत्या कराई थी। ज्ञानी हो या अज्ञानी अथवा आत्मज्ञानी पाप और पुण्य का फल तो सब को भोगना ही पड़ता है। आप आत्मज्ञानी बनते हैं फिर आपके ऊपर सोनीपत में यह मुकद्दमा कैसे चल रहा है?

अब पाठक हंस जी महाराज के ढोंग और

पाखण्ड के कुछ उदाहरण पढ़ें। "हंस जी महाराज का ढोंग" शीर्षक के अन्तर्गत मस्ताना जोगी की निम्न पंक्तियां पठनीय हैं—

"आज हम·····हंस जी महाराज पर थोड़ा प्रकाश डालते हैं। हमारे विशेष प्रतिनिधि ने दो मास तक इनके विषय में अच्छी तरह छान बीन करने के पश्चात् बताया है कि यह हजरत दो दो विवाह करने और अभी तक गृहस्थी होते हुये भी भोलीभाली जनता में अपने अवतारपने का ढोंग रचाये हुये हैं। अपने आपको भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार कहते और सिर पर मुकुट हाथ में मुरली ले, बिल्कुल भगवान् कृष्ण का स्वांग बनाकर हिन्दुओं के स्वाभिमान को चुनौती देने वाले इस पाखण्डी के विरुद्ध जनता में बहुत असन्तोष पाया जाता है।

यह अवतार (?) अपने प्रचार के लिये 'हंस' नामक एक पत्रिका के प्रकाशन के साथ साथ हजारों रुपया व्यय करके कई दैनिक पत्रों में विज्ञापन बाजी भी करता है। इन विज्ञापनों में यह बहुरूपिया प्रायः अपना भगवान् श्री कृष्णजैसे स्वाँग का चित्र भी प्रकाशित कराता है।

पिछले दिनों की बात है यह ढोंगी अवतार अलीगढ़ की जनता का 'कल्याण' करने के लिए वहाँ तशरीफ ले गये। वहां इनके एजेण्टों ने पहले से ही इनके वास्तविक अवतार होने के विषय में बहुत प्रभावशाली प्रचार कर रक्खा था। अतः अपना जीवन सफल बनाने के लिए बहुत से नर-नारी इनके दर्शनार्थ एकत्रित हो गये। कुछ व्यक्तियों ने जब इनके अवतार पने की परख के लिए कुछ प्रश्न किये तो ये हजरत अण्ट शण्ट बोलने लगे, जिससे जनता पर यह प्रकट हो गया कि यह हंस के रूप में काग है। इसके पश्चात् अवतार जी पर क्या बीती और यह कैसे वहां से भागे, यह एक लम्बी कहानी है।'

(मस्ताना जोगी हिन्दी अक्तूबर १९५५)

सन् १९५४ में हंस जी ने घोषणा की कि जिस कृष्ण ने कहा है कि जब जब धर्म का नाश और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अवतार लेता हूं उसका जन्म हो गया है। इन्होंने पत्रों, पोस्टरों और एजेण्टों द्वारा इसका खूब प्रचार कराया। जब हंस जी ने देखा कि भूमि तैयार हो चुकी है तो अपने छोटे लड़के को 'बाल भगवान्' के रूप में सजा कर और उसे कृष्ण जैसे वस्त्र पहना कर चांदनीचौक दिल्ली में उसका जलूस निकासा। जलूस अभी निकल ही रहा था कि 'बाल भगवान्' को टट्टी जाने की इच्छा हुई और बाप और बेटा दोनों की पोल खुल गई। उस समय इनकी कैसी मिट्टी पलीद हुई थी और किस प्रकार इनका जलूस बीच में ही बन्द हो गया था उसे हंस जी अभी तक भूले नहीं होंगे।

और एक ताजा उदाहरण लीजिए। अभी दो वर्ष पूर्व गुरुकुल ज्वालापुर की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी। स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद भी वहां गये थे। इस अवसर का लाभ उठाते हुए हंस जी ने भी डा० राजेन्द्र प्रसाद जी को निमन्त्रण दे दिया उन्हें क्या पता था कि यह हंस के रूप में काग है उन्होंने स्वीकार कर लिया। कोई आर्य मेरी पोल न खोल दे इस लिये हंस जी ने डा० महोदय के स्वागत के लिए जो द्वार बनवाये उन में सब से प्रथम द्वार के ऊपर आपने "महर्षि दयानन्द द्वार" लिखवाया। परन्तु आपका पाखण्ड सफल नहीं हो सका। एक व्यक्ति ने आपके काले कारनामों की सूचना बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी को पहुँचा दी फलस्वरूप डा. महोदय आपके यहाँ नहीं गये। मैं समझता हूँ हंस जी को यह बात अब भी अच्छी प्रकार स्मरण होगी।

पाखण्ड का एक और नमूना प्रस्तुत है। अभी कुछ मास पूर्व हंस जी का एक शिष्य पूर्णानन्द बीस पच्चीस हजार रुपया लेकर भाग गया। गुरु गुड़ रह गये और चेला शक्कर हो गया। अच्छे आत्मज्ञानी हुए जो चेले के भाग जाने पर रो और पीट रहे हैं। इसी सम्बन्ध में हंस जी की एक मार्मिक अपील पढ़िये—

श्री गुरु महाराज जी का आज्ञापत्र

प्रेमी सज्जनो !

बड़े दुख के साथ लिखना पड़ रहा है कि तुम लोग वैसे तो कहते हो कि तन, मन, धन श्री गुरु महाराज जी का है पर गुरु तुम्हारा अभी तक मन ही है। इसी लिए तुम्हें कोई फायदा नहीं पहुंचा।

क्योंकि रोटी खिलाओ पूर्णानन्द को और पेट भरे मेरा, पानी पिलाओ पूर्णानन्द को और प्यास जावे मेरी, सेवा देवो पूर्णानन्द को और हो गई मेरी। यह कैसे हो सकता है ? चरण दबाओ दूसरों के और सेवा हो गई मेरी। जो आज तक तुमने सेवा की उसका फल यह हुआ कि वह भी मनमत और तुम भी मनमत हुए। अगर तुम लोग गुरुमुख बनना चाहते हो ! दरबार में रहना चाहते हो ! सचमुच अपना कल्याण चाहते हो ! तो जितनी जितनी सेवा हमारे लिये पूर्णानन्द को दी है अर्थात् एक पैसा भी पूर्णानन्द को दिया है वह गुरुमुख होना चाहता है तो हम को लिखें कितना दिया है उसका दुगुना हम को दोगे तब गुरुमुख बनोगे। आज तक की सेवा तुमने कुएं में डाली है क्योंकि एक पाई भी उसमें से मेरे हाथ में नहीं आई। अगर तुम सचमुच गुरुमुख बनना चाहते हो तो मेरे सिवाए किसी को एक पाई भी मेरी सेवा को न दी जावे। कार्यालय के मुतालिक किसी प्रकार का उधार हो या कोई पैसा पुस्तकों का, फोटो और हंसादेश का किसी किस्म का कार्यालय का पैसा सत्यानन्द के सिवाय किसी को न दिया जावे और रसीद ले लेवे। सेवा की इस समय बहुत जरूरत है। हमने मुराद नगर में स्थान के लिए जमीन खरीदी है। पैसे की जरूरत है हमारी आज्ञा है कि सेवा जल्दी से जल्दी भेज दें। हरिद्वार जलसे के लिये और देहली नवम्बर १९६१ में जलसा हुआ उसके लिए या मेरे लिए जो सेवा पूर्णानन्द को दी हो लिख कर भेज दें यह मेरी आज्ञा है। आज्ञा मानना सेवक का धर्म है। जो मेरी इस आज्ञा को नहीं मानेगा वह १६ आने मनमत होगा और उसको कोई लाभ जीवन में नहीं होगा।"

(हंसादेश अक्तूबर १९६२ टाइटल का अन्तिम पृष्ठ)

रुपया ऐंठने का क्या निराला ढङ्ग है ! पाठकगण ! हंस जी कैसे हैं मैं अपनी ओर से कुछ न कह कर हंस जी के ही दो उद्धरण देता हूँ। उन से पाठकों और धर्म के जिज्ञासुओं को वास्तविकता और सचाई का पता लग जायेगा। हंस जी की मान्यता है कि--

लोभी दम्भी गुरु बहू, मठधारी शठ जान।
गद्दी के रद्दी सभी, उन में सार न मान॥

(हंसयोग. पृष्ठ ४७)

हंस जी पूर्णानन्द से दुगुणा मांग रहे हैं यह लोभ वृत्ति नहीं तो क्या है ? दम्भ और पाखण्ड के उदाहरण पाठक पढ़ ही चुके हैं। मठ हंस जी महाराज के पास एक नहीं तीन तीन हैं अतः उनके अपने ही शब्दों में वे शठ हो गये। मठ है तो गद्दी तो है ही अतः आप रद्दी भी हो गये। सचमुच ऐसे व्यक्तियों में सार कहां ! सावधान ! संसार के लोगों ऐसे ढोंगी गुरुओं से सावधान।

अब आगे पढ़िये—

"आज संसार में यूं तो गुरुओं की कमी नहीं है। पुस्तकों को पढ़ कर ही कितने ही मनुष्य स्वयं को ब्रह्म अथवा महापुरुष समझने लगते हैं। आज के समय में यदि गणना की जावे तो चेलों से गुरुओं की संख्या अधिक ही मिलेगी।.....इन लोगों को परमार्थ से कोई सरोकार नहीं चेले या पूजा करने वाले नरक जावें या स्वर्ग जावें, इन्हें तो अपने-अपने हलवे माण्डे से मतलब है। यह तो दिन रात स्वार्थ के रंगों में हाथ रंगने में लगे हुये हैं। इन्हें भजन से मतलब नहीं परन्तु भगवान् के भजन की बात कहते हैं। परमात्मा से दूर का भी नाता नहीं, पर भगवान् का दर्शन कराते हैं।"

(हसयोग. पृष्ठ १८६, १८७)

यह बात हंस जी ने बिल्कुल ठीक कही है। ये सारे लक्षण हंस जी के ऊपर सोलह आने नहीं सवा सोलह आने ठीक उतरते हैं। कोई मरो या

जीवो हंस जी का पेट पूरा भरो। चोरी करो या डाका डालो हंस जी को पूर्णानन्द से दुगुना दो। मद्य, मांस और व्यभिचार करने वाले का ईश्वर से सम्बन्ध तो हो ही कैसे सकता है? यहां तो हंस जी ने अपनी सारी स्थिति स्पष्ट कर दी है फिर भी यदि लोग इनके जाल में फंसे तो उनकी गलती है हंस जी की नहीं।

यह तो संक्षेप में हंस जी महाराज का परिचय हो गया। अब हम इनके ग्रन्थ हंसयोग प्रकाश के आधार पर इनके सिद्धान्त और मान्यताओं की समीक्षा करेंगे।

झूठा गुरु माहात्म्य

यद्यपि हंस जी ने अपनी पुस्तक का नाम 'हंस योग प्रकाश' रक्खा है परन्तु पुस्तक में योग का वर्णन नहीं है हां योग की आड़ में गुरु की महिमा भरी हुई है। यहां कुछ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—

"हरि, हर और ब्रह्मा आदि सब नष्ट हो जाते हैं परन्तु सर्वदा अविनाशी, अर्थात् कभी नाश न होने वाला केवल एक सद्गुरु पद ही है।"

(हंसयोग. पृष्ठ ४०)

आगे चल कर आप स्वयं ही अपनी बात का खण्डन कर रहे हैं—

"श्री सद्गुरु देव ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। वे ही साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। भगवान् ने भी अवतार धारण करके गुरु चरणों की सेवा की है।" (हंसयोग. पृष्ठ ५२)

समीक्षा—इन ऊटपटाँग और परस्पर विरुद्ध बातों पर कौन विश्वास कर सकता है। हंस जी के ज्ञान का दिवाला तो इससे ही पिट. रहा है कि एक स्थान पर आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश को गुरु से पृथक् मान रहे हैं और दूसरे स्थान पर उन्हें एक मान रहे हैं। जब गुरु ही ब्रह्म है तो उसने अवतार धारण करके सेवा किस की की। क्या स्वयं अपनी सेवा की। यदि अपनी ही सेवा की तो अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता थी? क्या असीम और अनन्त परमात्मा अवतार धारण करके ससीम हो सकता है? कभी नहीं। जो सर्वत्र व्यापक है उसे अवतार लेने की क्या आवश्यकता? अतः भगवान् के अवतार लेने की बात ही मिथ्या है।

अब आगे पढ़िये—

गुरु मानुष कर जानते, ते नर कहिये अन्ध।
महा दुःखी संसार में, आगे जम के फन्द ॥१६॥

हंस जी ने यहां पर ही बस नहीं की उनकी तो मान्यता है—

गुरु हैं बड़े गोबिन्द ते मन में देख विचार।
हरि सुमरे सो वार है, गुरु सुमरे सो पार ॥१८॥

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पांव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सत भाव ॥२१॥

(हंसयोग. पृ. ४५)

समीक्षा—इससे बढ़ कर नास्तिकता और क्या होगी? हंस जी ईश्वर की पूजा छुड़ा कर लोगों से अपनी पूजा कराना चाहते हैं। गुरु तो कितना ही बड़ा हो जाये मनुष्य ही रहता है। जो गुरु को मनुष्य मानता है वह अन्धा नहीं है अन्धा और झूठा तो वह है जो ईश्वर के स्थान पर किसी मनुष्य को पूजने की प्रेरणा देता है। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के ध्यान और स्मरण से ही मनुष्य भवसागर से पार हो सकता है। जो लोग ईश्वर को छोड़ कर मनुष्यों और ढोंगी गुरुओं की पूजा करते हैं वे इस संसार सागर में गोते खाते रहते हैं। एक कवि ने ऐसे पाखण्डी गुरु और चेलों के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

लोभी गुरु लालची चेला दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते बैठ पत्थर की नाव॥

किसी भी सत्शास्त्र में गुरु का ध्यान करने का विधान नहीं है। यह हंस जी की अपनी कपोल-कल्पना है अतः मिथ्या और त्याज्य है।

प्रमाण—इस जगत् में इस तरह के गुरु बहुत ही कम हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु जगत् सम्पूर्ण रूप से ऐसे गुरु से खाली भी नहीं रह सकता। जिस दिन जगत् ऐसे गुरु से रहित होगा,

उसी दिन यह नरक कुण्ड में बदल कर सब तरह से नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा। (हंसयोग. पृ. ५६)

समीक्षा—किस प्रकार के गुरु इसका हंस जी ने स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं किया परन्तु हंस जी का संकेत अपनी ओर है। संसार में आर्य और दस्यु, ईमानदार, श्रेष्ठ और राक्षस, सदाचारी और दुराचारी दो प्रकार के मनुष्य रहते ही हैं। जब एक ढोंगी और पाखण्डी का जनाजा निकलता है तो दूसरा उसका स्थान ले लेता है। आज तो भारतवर्ष में ऐसे ढोंगी और पाखण्डियों की बाढ़ आई हुई है। एक कवि के शब्दों में तो—

एक ढूंढो हजार मिलते हैं।

अपने आप को ईश्वर का अवतार कहने वाले अपनी पूजा कराने वाले, देवियों का सतीत्व नष्ट करने वाले, शराब आदि अपेय पदार्थों का सेवन करने वाले, अध्यात्म विद्या से रहित ढोंगी पाखण्डी और दम्भी गुरुओं ने इस संसार को नरक धाम बनाया हुआ है। जिस दिन प्रभु कृपा से संसार ऐसे जाली गुरुओं से रहित हो जायेगा उस दिन यह संसार स्वर्ग बन जायेगा।

गुरु महिमा लिखने में हंस जी ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी है। गुरु का गौरव बता कर ही तो लोगों को लूटना है। यहां हम कुछ उद्धरण और प्रस्तुत करते हैं—

"जब तक शिष्य में गुरु के प्रति ईश्वर भाव नहीं होता, तब तक सद्शिष्य नहीं होता, और न उन्नत होने वाले, भगवत् ज्ञान की प्राप्ति होती है।" (हंसयोग. पृ. १८३)

"संसार के अनेक पदार्थों के संयोग से होने वाले सभी आनन्द मिल कर भी परमानन्द की एक बिन्दु की बराबरी नहीं कर सकते। किन्तु उस परमानन्द से भी बढ़ कर सद्गुरु की सेवा से जो आनन्द मिलता है, वह शिष्य ही जानता है।"

(हंस योग पृ. १८४)

अब गुरु महिमा की कुछ चौपाइयां और पढ़ लीजिए:—

जो नहीं गुरु को मस्तक नावें।
सो नर अजगर को तन पावें॥
निज मुख जो गुरु निन्दा करहीं।
कल्प सहस्र नरक में परहीं॥
गुरु की निन्दा सुने जो कोई।
रासभ श्वान जन्म तेहि होई॥
जो गुरु को तजि औरहि ध्यावें।
होय दरिद्री अति दुख पावे॥
(हंस योग. पृ. ७७)

यह तो हुआ गुरु की सेवा न करने, आज्ञा न मानने और निन्दा करने का फल अब गुरु की पूजा करने का फल भी सुन लीजिये—

गुरु की महिमा है अमित,
कहि न सके श्रुति शेष।
जिनकी कृपा कटाक्ष से,
रङ्कहु होत नरेश॥
अस प्रभाव है दूसर केहिमां।
जस कछु है सद्गुरु की महिमां॥
सर्व सिद्धि, प्रद अति वरदायक।
दुःख सङ्कट में परम सहायक॥
नित उठ स्मरण करे जो कोई।
सकल पाप क्षय ताके होई॥
चित्त चिन्ता सन्ताप विनाशे।
सुख सम्पत्ति ऐश्वर्य प्रकाशे॥
महाव्याधि ज्वर आदि निवारी।
देय आकाल मृत्यु भय टारी॥
(हंसयोग. पृ. ७८)

समीक्षा—ये सारे फल लोगों को अपने जाल में फंसाने के लिए बनाये गये हैं। स्वयं गुरु जी पर मुकदमा चल रहा है गुरु जी अपने को नहीं बचा सके औरों को क्या बचा सकेंगे? चेतो! हंस जी के जाल में फंसने से बचो!

अन्धविश्वास

मत मतान्तरों का कार्य बिना अन्धविश्वास के चल ही नहीं सकता। हंस जी महाराज भी अन्धविश्वास का जाल फैला कर लोगों को अपने चंगुल

में फंसाते हैं देखिये—

वेद मन्त्र सम कहना माने ।
गुरु को परमात्म सम जाने ॥
सत्यासत्य विचार न कीजे ।
गुरु को कथन मान सब लीजे ॥
(हंस योग. पृ. ७७, ७८)

और—

दुर-दुर करे तो बाहिरे, तू तू करे तो जाय ।
ज्यों गुरु राखे त्यों रहे, जो देवे सो खाय ॥
(हंसयोग. पृ. २४७)

इस प्रकार लोगों के तर्क को कुण्ठित कर फिर गुरु जी समर्पण कराते हैं ।

तेहि की शरणागति लीजै ।
तन मन धन सब अर्पण कीजै ॥
(हंसयोग. पृ. ७५)

"मान लो हम बाजार से कोई वस्तु लेने के लिये जाते हैं । उस वस्तु की कीमत एक रुपया हो और हम पैसे दो पैसे में या आने दो आने में लेना चाहें तो नहीं ले सकते । ऐसे ही तन. मन, धन देने पर ही सद्गुरु अपनाये जाते हैं । यदि अपनी कमाई का पैसा दो पैसा देकर यही समझा जावे, कि गुरु महाराज जी मेरे हो गये हैं तो इसे भूल ही कहना होगा ।" (हंसयोग. पृ. २०५-२०६)

समीक्षा—इस समर्पण की आड़ में नारियों के सतीत्व को भ्रष्ट किया जाता है । हमें हंस जी महाराज के इस प्रकार के कारनामों की अनेक सूचनायें मिली हैं । अनेक स्थानों पर हंस जी की पिटाई भी हुई है । अनेक स्थानों से आप धन भी लेकर भागे हैं ।

मूर्तिपूजा

वेद में कहीं भी मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । पुराणों में भी अनेक स्थानों पर मूर्तिपूजा का खण्डन है । संसार के महापुरुषों ने समय-समय पर मूर्तिपूजा का घोर खण्डन किया है । शंकराचार्य जी ने लिखा है—

पूर्णस्यावाहनं कुतः सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥

अर्थात् जो सर्वत्र व्यापक है, अणु अणु और कण कण में रमा हुआ है, घण्टे घड़ियाल और नगाड़े बजा कर उसका बुलावा कैसा ? जो स्वतः स्वच्छ है उसे पाद्य और अर्घ्य कैसा ? जो शुद्ध और पवित्र है उसे आचमन देकर पवित्र करना कैसा ?

कबीरदास आदि भक्तों और कवियों ने भी मूर्तिपूजा की घोर निन्दा की है । कबीर जी कहते हैं—

पत्थर पूजे हर मिले तो मैं पूजूं पहार ।
ताते तो चाकी भली पीस खाये संसार ॥

महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा के अनेक दोष दर्शा कर लिखा है—

"नहीं २ मूर्ति पूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकना चूर हो जाता है । पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है ।" (सत्यार्थप्रकाश ११वां समुल्लास)

इस मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में अब आप हंस जी महाराज के अटपटे विचारों को पढ़िये । आप लिखते हैं—

"मुख्य परमात्मा की कल्पना नहीं की जा सकती, इसलिए उसकी प्रतिमा ही बनानी पड़ती है ।" (हंसयोग. पृ. ३८)

समीक्षा—जिस की कल्पना नहीं की जा सकती उसकी प्रतिमा कैसे बनाई जा सकती है ? कोई वस्तु न काली है न गोरी न लम्बी है न चौड़ी, दिखाई भी नहीं देती, उसके रंग रूप का भी पता नहीं तो क्या उसकी तस्वीर बनाई जा सकती है ? क्या आकाश का फोटो लिया जा सकता है ? क्या वायु का चित्र लिया जा सकता है ? कदापि नहीं । फिर जो परमात्मा कल्पनातीत है उसकी प्रतिमा किस आधार पर बनाई जा सकती है ? हंस जी की यह कल्पना निस्सार और कपोल कल्पित है । ईश्वर की कोई प्रतिमा नहीं बनाई

जा सकती। वेद कहता है--

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥

(यजु० ३२। ३)

उस परमात्मा की कोई प्रतिमा-मूर्ति नहीं है जो महान् यश वाला है।

मूर्तिपूजा का समर्थन करते हुए एक अन्य स्थान पर आप लिखते हैं—

"क्योंकि मन स्वभाव से ही चंचल है। इसलिए जब तक मन के सामने आधार के लिए कोई इन्द्रिय गोचर स्थित वस्तु न हो, तब तक यह मन बारम्बार उसे भूल जाता है।"

(हंसयोग० पृष्ठ १४९)

समीक्षा—इन पंक्तियों में मूर्तिपूजा का संकेत है। इसकी समीक्षा में मैं स्वयं कुछ न कहता हुआ हंस जी के ही दो उद्धरण देता हूँ जिनसे पाठकों को हंस जी के पाखण्ड और ढोंग का पता लग जायेगा। मूर्ति पूजा की निस्सारता बताते हुए आप लिखते हैं।

'यद्यपि विकार रहित भगवान् सब के हृदय में विराजमान हैं। मगर लोग उसे देखने एवं जानने के लिये इधर उधर दौड़ लगा रहे हैं। परमात्मा अन्दर है और भक्ति बाहर कर रहे हैं। आज संसार की कैसी विपरीत गति है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि अपने हृदय में भगवान् का ध्यान किया करते थे। मगर आज उनकी सन्तान बाहर भागी जा रही है।"

(हंसयोग प्रस्तावना पृ. ८)

मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए आप लिखते हैं—

"पर भाई! थोड़ा तो विचार करना चाहिये कि जब एक गाय की तस्वीर से दूध की उम्मीद रखना भूल है तो भगवान् की मूर्ति से भगवान् के मिलने का आनन्द कैसे और कब मिलेगा? मित्र के चित्र से जब मित्र की प्राप्ति नहीं होती, तो भगवान् के चित्र से भगवान् की प्राप्ति कैसे हो जायेगी?"

(हंसयोग पृ. १८७)

हंस जी! अब यह बताइये कि इन बातों में से किसे सच्ची माने और किसे झूंठी। वस्तुतः सच्ची बात तो यही है कि मूर्तिपूजा पाखण्ड है। अ : मूर्ति पूजा का विधान आपने अपने उदर पोषण के लिये किया है।

अद्भुत बातें

हंस जी ने अपनी यौगिक बुद्धि (?) का चमत्कार दिखाते हुए अपने ग्रन्थ में बहुत सी अद्भुत, निराली, विचित्र एवं अनोखी बातें कही हैं। नमूने के रूप में कुछ लिखी जाती हैं।"

"भैंस यदि ईश्वर की उपासना करना चाहे तो वह ईश्वर को एक बड़े शरीर वाली भैंस के रूप में देखेगी। मछली यदि भगवान् की उपासना करने की इच्छा करे, तो उसको बड़े आकार वाली मछली के रूप में भगवान् की धारणा करनी होगी। इसी तरह मनुष्य को भी भगवान् का मनुष्य रूप में ही ध्यान करना होगा। यह सब कल्पना नहीं! सत्य है।" (हंसयोग पृ. ५९)

समीक्षा—यह बात सत्य कदापि नहीं है। हंस जी के विकृत मस्तिष्क की कपोल कल्पना ही है। यदि आप ने वेद आदि शास्त्रों, मनु आदि स्मृतियों योगादि दर्शनों का अध्ययन और मनन किया होता तो आप ऐसी अनर्गल बात नहीं कहते। पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि सभी भोग योनियां हैं। ईश्वर का ध्यान और दर्शन मनुष्य और केवल मात्र मनुष्य ही कर सकता है। मछलियां और भैंसे ईश्वर का ध्यान नहीं कर सकतीं। जब ईश्वर है ही निराकार तो उसके मनुष्य रूप की कल्पना करना भी मूर्खता है।

"आप लोगों ने एक नाथ स्वामी का नाम सुना होगा, वह एक अच्छे सन्त हुए हैं। उन्होंने सच्ची भक्ति का उपदेश करके अनेक जीवों का कल्याण किया। उनके यहां भगवान् ने स्वयं बारह वर्ष रह कर सेवा की थी।" (हंसयोग पृ. १९)

समीक्षा—जैसा हम पूर्व सिद्ध कर आये हैं जब ईश्वर का अवतार ही नहीं होता तो उनका किसी

के घर रहकर सेवा करना कैसे सम्भव हो सकता है। अतः यह भी हंस जी का मिथ्या प्रलाप ही है।

"भगवान् राम भिलनी के चन्द झूठे बेरों पर ही रीझ गये। भगवान् श्री कृष्ण विदुरानी के केले के छिलके और सुदामा के दो मुट्ठी सूखे तथा कच्चे चावलों को पाकर ही रीझ गये।

(हंसयोग पृ. २२६)

समीक्षा—श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों में से कोई भी ईश्वर नहीं था। हां ये दोनों अपने समय के महापुरुष थे जिन पर आर्य जाति को गर्व है। श्रीराम ने भिलनी के झूठे बेर बिल्कुल नहीं खाये। श्रीराम के सम्बन्ध में प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ रामायण है और वहां शबरी श्रीराम से कहती है—

मया तु विविधं वन्यं सञ्चितं पुरुषर्षभ।
तवार्थे पुरुष व्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम्॥

(वा० रा० अरण्य० ७४।१७)

हे पुरुषोत्तम! मैं ने आप के लिये पम्पा सरोवर के निकटवर्ती वन से वन में उत्पन्न होने वाले अनेक कन्द मूल फलों को इकट्ठा कर रक्खा है।

कहां है यहां झूठे बेरों की बात! और तो और श्री राम ने भिलनी के झूठे बेर खाये थे यह बात तो तुलसीदास जी ने भी नहीं लिखी, परन्तु आप को रंगरेलियों से अवकाश मिले तभी तो कुछ स्वाध्याय करें।

श्रीकृष्ण ने विदुरानी के केले के छिलके खाये थे यह भी गपोड़ा है। महाभारत में यह बात कहीं नहीं है। व श्री कृष्ण विदुर जी के यहां पहुँचे हैं तो विदुर जी ने

ततः क्षत्तान्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च।
उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने॥

(महा० उद्यो० ९१।३९)

अनेक प्रकार के पवित्र एवं गुणकारक अन्न पान महात्मा केशव को अर्पित किये।

श्री कृष्ण के मित्र सुदामा का नाम तो सम्पूर्ण महाभारत में कहीं है ही नहीं। अतः हंस जी की उपर्युक्त सारी बातें मिथ्या हो गई। अगर हंस जी में कुछ भी शक्ति है तो अपनी मिथ्या एवं ऊल जलूल बातों को प्रमाणों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयत्न करें।

अब एक और अद्भुत बात देखिये। ईश्वर के किस नाम का जप किया जाये हंस जी स्वयं चक्र में हैं उन्हें स्वयं पता नहीं कौन से नाम का जप करें। यदि उन्हें पता होता तो वे सीधे सादे शब्दों में एक बात लिख देते और उसकी विधि भी बना देते परन्तु उन्हें तो स्वयं पता नहीं—

"सारा संसार नाम के उन दो अक्षरों को भूला हुआ है। जो लोग राम नाम के उन दो अक्षरों का स्मरण नहीं करते उनकी आयु वृथा जा रही है।"

(हंस योग. पृ. २५७)

इसके विरुद्ध दूसरे स्थान पर आप लिखते हैं—

"मगर न तो राम कहने से पाप दूर होते हैं। क्योंकि राम राम करते समय भी विषयों की ही याद रहती है। न अन्दर बाहर उजाला होता है और न राम कहने से हृदय में शान्ति होती है।"

(हंसयोग. पृ. २५२)

आगे एक सर्वथा नई बात कह दी है—

"वेद शास्त्र और पुराण इसी 'हंस' नाम की महिमा गा रहे हैं।" (हंसयोग. पृ २६९)

स्वयं 'हंस' जी को अपने इस कथन पर भी विश्वास नहीं है अतः आगे लिखा है—

सोहं जाप जपोरे भाई।
मिट जाये मन दर्पण की काई॥
स्वांस स्वांस स्मरो गोविन्द।
मन मन्त्र की उतरे चन्द॥

(हंस योग पृ. २६९)

यहां सोहं और गोविन्द के जाप का वर्णन कर दिया। इसी प्रकार आपने ओङ्कार और अन्य नामों के स्मरण करने का विधान भी किया है।

समीक्षा—यदि हंस जी ने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया होता, अथवा किसी गुरु के चरणों में बैठ कर योगाभ्यास ही किया होता तो इस प्रकार की परस्पर विरुद्ध बातें न लिख कर आप

एक साथ ही सीधे साधे शब्दों में लिखते कि 'ओ३म्' का जाप करना चाहिये। परन्तु बिना पढ़े लिखे होने के कारण आपको आगे पीछे का कोई ध्यान नहीं, बस अपनी धुन में मस्त हांके जा रहे हैं।

शास्त्रज्ञान

हंस जी ने गुरु चरणों में बैठ कर ग्रन्थों का अध्ययन तो किया नहीं है परन्तु अपनी टाँग अड़ाना चाहते हैं। फल स्वरूप बहुत सारी ऊटपटांग बातें लिख मारी हैं। देखिये—

"तर्को ऽ प्रतिष्ठ श्रुतयो विभिन्नः" महाभारत के इस श्लोक का अनुवाद करते हुए आप हंसयोग प्रकाश पृष्ठ १२५ पर लिखते हैं- "श्रुति अर्थात् वेदाज्ञायें देखी जायें तो यह भी भिन्न भिन्न हैं।"

यदि हंस जी गुरु चरणों में बैठ कर अध्ययन करते तो ऐसी अनर्गल बात न लिखते। यदि श्रुति-वेद की आज्ञाएं भिन्न भिन्न हैं तो हंस जी को दो चार उदाहरण देने चाहिये थे। वेद में कहीं भी परस्पर विरुद्ध बातें नहीं हैं। महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन में लिखते हैं "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" वेद की रचना बुद्धिपूर्वक है। महाभारत के उक्त श्लोक में श्रुति का अर्थ वेद नहीं है। यहां श्रुति का अर्थ है भिन्न भिन्न मनुष्यों द्वारा सुना हुआ ज्ञान। अब श्लोक का अर्थ होगा, "मनुष्यों का सुना हुआ ज्ञान भी भिन्न भिन्न है।

अब शास्त्र ज्ञान के सम्बन्ध में हंस जी की एक और मजेदार गप्प सुनिये और हंस जी की बुद्धि की दाद दीजिये—

"नारद जी साक्षात् बैकुण्ठ में जा कर भगवान् विष्णु के दर्शन किया करते थे। मगर नारद जी जिस स्थान पर जा कर खड़े हुआ करते थे, उनके जाने के उपरान्त देवदूत वहां की भूमि को अपवित्र समझ कर, वहां की मिट्टी को खोद कर बाहर फैंक दिया करते थे। एक समय नारद जी किसी आवश्यक कार्यवश जब वापस लौट कर आये, तो देवदूतों को मिट्टी खोद कर फैंकते देखा और पूछा, आप ऐसा क्यों कर रहे हो? देवदूतों ने उत्तर दिया नारद जी! आप निगुरे हो, आपके खड़े होने से यहां की भूमि अपवित्र हो जाती है। तब नारद जी ने भगवान् से पूछा, प्रभो! साक्षात् आपके दर्शन करने पर भी क्या मुझे गुरु करने की जरूरत है? भगवान् ने कहा, नारद जी! वास्तव में ही गुरु के बिना मेरा दर्शन करने पर भी मनुष्य अपवित्र एवं अज्ञानी ही रहता है। तब नारद जी ने धीवंर को गुरु धारण किया। (हंसयोग पृ. २४२-२४३)

समीक्षा—यदि इस प्रकार की बिना सिर पैर की गप्पें न लिखें तो ढोंगी गुरुओं को कौन पूछे। अपनी पूजा करने के लिए ही यह झूठा गुरु माहात्म्य लिखा है। नारद जी ने धींवर को गुरु नहीं बनाया था। उनके गुरु तो सनत्कुमार जी थे। हंस जी! यह तो बताइये बैकुण्ठ में मिट्टी कहां से आई? पुस्तक लिखते हुए शायद आपको यह ध्यान नहीं आया कि कोई आपकी मूर्खता की पोल भी खोल सकता है।

अब हंस जी के ज्ञान का एक और नमूना देखिये—

"अथर्ववेद के प्राण सुक्त में लिखा है।

(अथर्व. ११-४६-२१)

एकं पादं नोत्खदेन्न सलिलद्धि उच्चारण। यदङ्ग स तमुत्विन्नैवाद्या न स्वः स्यान्न राजी वाहः स्यान्नत्युछेद कदाचन॥

हंस नाम का प्राण है। स्वांस अन्दर जाता है तो स्वास के साथ स्वतः ही 'स' की ध्वनि होती है और स्वांस के बाहर आने में 'हं' की ध्वनि होती है। हं और स मिला कर 'हंस' शब्द बनता है। उल्टा होने से यही 'हंस' शब्द सोहं बनता है।"

(हंसयोग पृ. २६७)

समीक्षा—यहां हंस जी ने कई जघन्य अपराध और पाप किए हैं। पहली बात तो मन्त्र का पता ही गलत है। अथर्ववेद के ११वें काण्ड में केवल दस ही सूक्त हैं। इस मन्त्र का ठीक पता (अथर्व० ११ ४।२१) है। दूसरा भीषण पाप जो हंस जी ने किया है वह यह कि हंस जी ने जो अर्थ किया है वह व्याकरण आदि के विरुद्ध है। वस्तुतः तो मन्त्र

लिख कर उसके नीचे अपने वेद विरुद्ध विचार लिखे हैं। इन दोनों बातों से भी बढ़ कर हंस जी ने वेद में मिलावट करने का पाप भी किया है। वेद का शब्द था "उच्चरन्" और हंस जी ने उसे बना दिया उच्चारण। इस प्रकार 'रात्री' को राजी कर दिया है और भी कई शब्दों में उलट फेर किया है। पाठकों की जानकारी के लिये शुद्ध मन्त्र और उसका ठीक अर्थ प्रस्तुत है—

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री
वाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदाचन॥ (११।४।२१)

चतुर्वेद भाष्यकार जयदेव जी विद्यालंकार ने इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है—

(हंसः) वह परम पुरुष, प्राण (सलिलात्) जिस प्रकार हंस नामक जलजीव एक पैर उठाकर भी दूसरा पैर पानी में ही स्थिर रखता है उसी प्रकार इस (सलिलात्) महान् संसार से (उत्-चरत्) ऊपर मोक्ष रूप में असङ्ग रहकर भी (एकं पादं) अपना एक पाद=चरण (न उत-खिदति) नहीं उठाता। इसी से यह संसार चलता है। (अङ्ग) हे जिज्ञासो! (यत्) यदि (सः) वह परमेश्वर (तम् उत् खिदेत्) उस चरण को भी ऊपर उठा ले तब (नैव अद्य न श्वः स्यात्) तो न आज और न कल हुआ करे अर्थात् (न रात्री न अहः स्यात्) न रात और न दिन हुआ करे (न वि उच्छेत्) और न उषाकाल हो हो। क्योंकि उसका सर्व प्रवर्तक चरण, चालक शक्ति संसार से उठ जाने से समस्त संसार जड़ हो जाय और न चले। न सूर्य चले न चन्द्र न उदित हो न अस्त।

अन्य विद्वानों के भाष्य भी प्रायः इसी प्रकार के हैं। इस मन्त्र में स्वांस के अन्दर और बाहर जाने की बात बिल्कुल नहीं है।

इनके ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर वेद की निन्दा की गई है। एक स्थान (पृष्ठ १६४) पर तो कहीं का श्लोक देकर उसे वेद मन्त्र बनाने का पाप भी किया है।

कुछ अन्य बातें

"यह समस्त संसार मायामय है, झूठा एवं स्वप्नवत् है।" (हंसयोग पृष्ठ ६३)

समीक्षा—यह संसार झूठा नहीं है, सत्य है। स्वप्न भी झूठे नहीं होते, देखी सुनी और अनुभव की हुई बातों के ही स्वप्न आते हैं। वेद में कहा है—

ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। (ऋ० १०।१७३।४)

यह विश्व, संसार ध्रुव है, सत्य है, झूठा नहीं है।

संसार को झूठा कहने वालों को श्रीकृष्ण जी ने असुर कहा है। देखिये—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्पर सम्भूतं किमन्यत्काम हैतुकम्॥
(गीता० १६।८)

अर्थात् वे असुर लोग जगत् को ईश्वर द्वारा रचा हुआ नहीं मानते अपितु इसे असत्य और धर्माधर्म की व्यवस्था से रहित मानते हैं। वे कहते हैं यह जगत् ईश्वर के बिना अपने आप स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। अतः केवल भोगों के भोगने के लिये है इसके अतिरिक्त और क्या है।

अतः गीता के अनुसार हंस जी भी असुर, राक्षस सिद्ध हो गये।

"वैसे यदि वेदों में से नाम महिमा निकाल दी जावे तो वेद मुर्दे के समान हैं।"
(हंसयोग पृ० २५२)

"वेद-शास्त्र और पुराण इसी हंस नाम की महिमा गा रहे हैं।" (हंसयोग पृ० २६९)

समीक्षा—वेद ज्ञान और विज्ञान के ग्रन्थ हैं। वेद में तो प्रभु का निज नाम ओ३म् कुछ ही मन्त्रों में आया है। यदि ऐसे दो चार मन्त्रों को निकाल भी दिया जाये तो भी वेद की तो कोई हानि नहीं होगी रन्तु 'हंसयोग प्रकाश' में से गुरु भक्ति निकाल दी जाये तो यह वस्तुतः निष्प्राण और मुर्दा हो जायेगा।

वेद में ईश्वर का निज नाम ओम् बताया गया है। उसी के स्मरण करने का विधान है। वेद का आदेश है—

ओम् क्रतो स्मर। (य० ४०।१५)

हे कर्मशील ! तू ओम् का स्मरण कर।

चारों वेदों में, दर्शनों और उपनिषदों में स्मृतियों और पुराणों में सर्वत्र ओम् के ही जप और चिन्तन का विधान है। गीता में भी ओम् के जाप की महिमा है। अतः वेद शास्त्र और पुराण 'हंस' नाम की महिमा गा रहे हैं हंस जी का ऐसा कहना सफेद झूठ है।

हंस जी की जिस पुस्तक की यहाँ आलोचना की गई है उसका नाम "हंस योग प्रकाश" है। पुस्तक का नाम 'हंसयोग प्रकाश' है परन्तु पुस्तक में योग के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। आसन किस प्रकार लगाना चाहिये, ध्यान किस का करें और किस प्रकार करें इस का जैसा सुन्दर क्रम पूर्वक और अनुभव पूर्ण विवेचन होना चाहिये था वह पुस्तक में नहीं है। स्वयं हंस जी संदेह में हैं कौन से नाम का जप करें। हां गुरुडम, गुरु भक्ति, गुरु महिमा, गुरु पूजा, गुरु के प्रति समर्पण —इस प्रकार की बातें पुस्तक में भरी हुई हैं।

हंस जी के जाल में फंस कर कुछ नहीं मिलता। पुरुषों का धन लुटता है और वे मूर्ख बनते हैं स्त्रियों का धन के साथ साथ सतीत्व भी लुटता है। ऐ संसार के लोगो यदि सच्चा सुख शान्ति चाहते हो, यदि आत्मकल्याण चाहते हो, यदि इहलौकिक और पारलौकिक सुख चाहते हो यदि आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाना चाहते हो तो वैदिकधर्म की शरण में आओ। वैदिक धर्म में प्रविष्ट होकर वेदामृत का पान कर तदानुसार आचरण करते हुए आप के जीवन दिव्य, महान्, एवं उच्च बनेंगे।

"हंस" जी जैसे पाखण्डियों के पास जाकर लाभ कुछ नहीं होगा हां मानव जीवन व्यर्थ अवश्य जायेगा। यदि 'हंस' जी का जीवन सचमुच कुछ उच्च और पवित्र होता, यदि उन्होंने कुछ योग साधना की होती तो उनके ऊपर मुकदमे न चलते आप कहेंगे क्या हंस के ऊपर मुकदमा चल रहा है, जी हां सोनीपत में हंस जी पर मुकदमा चल रहा है। लीजिये पढ़िये अपनी ज्ञानकारी में वृद्धि कीजिये और ऐसे स्वार्थी ढोंगी और पाखण्डी योगियों से बचिये।

सोनीपत ५ अप्रैल, स्थानीय न्यायाधीश श्री जी० एल शर्मा की अदालत में चाँदनी चौक दिल्ली के एक व्यक्ति श्री जनक प्रसाद शर्मा ने शक्ति नगर दिल्ली के एक महात्मा हंस जी महाराज जो अपने आप को भगवान् कृष्ण का अवतार बतलाता है के अतिरिक्त उसकी स्त्री जो माता राजेश्वरी के नाम से प्रसिद्ध है और दो अन्य व्यक्ति श्री आर० एस योगी मन्त्री राजेश्वरी देवी ट्रस्ट हरिद्वार और श्री मंसाराम के विरुद्ध धन हड़प करने और धोखा देने के अपराध में भारतीय विधान की धारा ४०६ और ४२० के अन्तर्गत दावा कर दिया है। विद्वान् न्यायाधीश ने अपराध को भयंकर बताते हुए चारों अपराधियों के नाम सम्मन जारी कर दिये हैं।

मुकदमे में कहा गया है कि श्रीजनक प्रसाद शर्मा ३० दिसम्बर को यहां मोहल्ला कलां के मकान पर आया जहां अपराधी कीर्तन करते पाये गये। वह भी कीर्तन में सम्मलित हो गया। कीर्तन समाप्त हो जाने के पश्चात् अपराधियों ने कहा कि वे हरद्वार में राजेश्वरी ट्रस्ट की ओर से विशाल स्तर पर एक नेत्र चिकित्सालय खोल रहे हैं और इसके लिये चन्दा जमा कर रहे हैं। श्रीजानक प्रसाद ने चिकित्सालय निर्माण की स्कीम का पूर्ण विवरण लेकर वचन दिया कि वह अपनी माता जी की स्मृति में एक कमरा बनवा देगा। इस चिकित्सालय में कमरे की बनवाई का खर्च ३१०० आता था। चूंकि इस समय उसके पास रुपया नहीं था इसलिये उसने अपराधियों से कहा

[शेष आगे देखिये [

भगवद्भजन जरूरी है ?

'जो मनुष्य अपने मानव-बन्धुओं की सेवा करता है, उसके हृदय में ईश्वर स्वयं अपना निवास स्थान बनाना चाहता है।'

—महात्मा गांधी

कर्म ही पूजा है ?

अंग्रेजी पढ़े लिखे आजकल के किसी नवयुवक से पूछो कि भाई, घड़ी दो घड़ी बैठ कर कभी परमेश्वर का स्मरण, ध्यान और भजन आदि करते हो या नहीं, तो वह झट से उत्तर देगा कि, हम तो कर्तव्य कर्म को ठीक से करने को ही, सब से बड़ी ईश्वरोपासना मानते हैं। अपने विचार की पुष्टि में 'Work is worship' इस प्रसिद्ध सूत्र को भी वह बड़ी गम्भीरता से प्रस्तुत करेगा। पूछने वाला इसका क्या जवाब दे ? वह बिचारा चुप हो रहेगा।

नवयुवक अपनी विजय पर मन ही मन हंसेगा, और कहेगा कि भोले भाई साहब को खूब बनाया। कहना होगा कि अंग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवकों के हाथ में, एक अचूक हथियार आ गया है। वह सब अपील और दलील को आसानी से काटने में समर्थ हो गया है। साथ ही 'Work is worship' ऐसा सूत्र है, जिसकी ओट में, भगवद्भजन के प्रति अरुचि, अश्रद्धा और आलस्य इत्यादि को आसानी से छुपाया जा सकता है। आत्म-प्रवंचना ऐसी सूक्ष्म है कि हर कोई आसानी से उसका शिकार हो सकता है।

गीता की भक्ति कर्मप्रधान है

"भगवद्गीता में जिस भक्ति की अपेक्षा रखी गई है वह भी पूजा-पाठ या आरती प्रधान नहीं, कर्मप्रधान है। अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येनसर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(गीता १८. ४६)

जिससे यह समस्त विश्व व्याप्त है उस परमात्मा की, स्व-कर्म-पालन द्वारा पूजा करके मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है।

सेवा के द्वारा ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तु इष्टकामधुक् ॥
देवान्भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्ताः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।
(गीता ३.१०-११)

परमेश्वर का आदेश है—

'पृथ्वी पर जाओ, एक दूसरे की सेवा करो और वृद्धि पाओ, जीवमात्र को देवतारूप समझो। इन देवों की सेवा करके तुम इन्हें प्रसन्न रखो, ये तुम्हें प्रसन्न रखेंगे। प्रसन्न हुए देव तुम्हें बिना माँगे मनोवांछित फल देंगे'।

गीता के अनुसार परम-श्रेय का साधन सेवा है, यह स्पष्ट है। सेवा के बिना किसी ने सिद्धि प्राप्त नहीं की है।

अपने प्रिय भक्तों की चर्चा करते हुए भी गीता ने यह नहीं कहा है कि प्रातः सायं जो रोज सन्ध्या-वन्दन करता है, अथवा खड़ताल लेकर जोर-जोर से जो नाचता है वह मेरा प्रिय भक्त है। नैवेद्य की नाप-तौल वहां नहीं है, नम्रता और निर्वैरता को ही भक्त की कसौटी कहा है। भक्त वह है जो ईर्ष्या नहीं रखता, जो दया का भण्डार है, जो निःस्वार्थ है, क्षमाशील है, जो न दूसरों को डराता है, न दूसरों से डरता है, जो कर्म में कुशल है, जो शत्रु-मित्र सब को समान समझता है इत्यादि।

भक्त कबीर ने भी कीर्तन आदि के प्रति अपनी अरुचि प्रकट की है—

'कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो करूँ सो पूजा;
जहँ-जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा;
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत्, पूजूँ और न देवा—
साधो सहज समाधि भली ॥'

इस प्रसंग में महात्मा गांधी के विचार मनन योग्य हैं—

'भक्ति शाब्दिक पूजा मात्र नहीं है, यह तो सिर का सौदा है'।

'जिसे भक्त बनना हो उसे शरीर, और मन से दुःखी, दलित और दरिद्रों की सेवा करनी चाहिए। जो दलित वर्गों को अछूत मानता है, वह शरीर द्वारा उसकी सेवा कैसे कर सकता हैं'।

'जो हिन्दू इस युग में पूरे दिल से अछूतों की सेवा करते हैं, वे सच्ची प्रार्थना करते हैं'।

'मेरे लिए मोक्ष का मार्ग यही है कि मैं अपने देश की और देश के द्वारा मानव-जाति की सेवा के लिए अविश्रान्त परिश्रम करता रहूँ। मैं सब प्राणियों के साथ एकता स्थापित करना चाहता हूँ'।

'मैं उस ईश्वर के सिवाय, जो लाखों मूक जनों के हृदयों में निवास करता है, और किसी ईश्वर को नहीं मानता। मैं उस ईश्वर की·····इन लाखों लोगो की सेवा द्वारा ही पूजा करता हूँ'।

उपर्युक्त उद्धरणों से महात्मा जी का मन्तव्य यही प्रतीत होता है कि दुःखियों और गरीबों की सेवा ही सच्ची ईश्वरोपासना है।

आचार्य विनोबा जी ने भी, लाक्षणिक ढङ्ग से यही बताने का प्रयत्न किया है कि भक्ति में, पूजा पाठ या अर्घ्य आदि की नहीं सेवा-भाव की ही प्रधानता है—

$$\text{भक्ति} = \frac{\text{सेवा}}{\text{अहङ्कार}}$$

सेवा के साथ यदि 'मैं' 'मैं' न हो तो वही भक्ति बन जाती है अथवा—

कर्म याने प्रत्यक्ष सेवा।
भक्ति याने सेवा भाव।

हमारे देश में भक्ति का रूप पर्याप्त विकृत हो चुका है। सामान्य जनता तिलक और कण्ठी धारण करने वाले को भक्त मान लेती है। भक्त को माला जपते रहना चाहिए, भूखे को भोजन देने के लिए भी उसे माला छोड़नी न चाहिए। किसी बीमार की सेवा के लिए माला छोड़ देने से भी भक्ति में विक्षेप पहुँचता है। हाँ अपनी पेट पूजा के लिए माला छोड़ने में कोई विक्षेप नहीं है।

भक्ति की कसौटी ही किसी समय सेवा न करना या निष्कर्मण्यता बन गई थी इसलिए भक्ति के क्षेत्र में एक जबरदस्त क्रान्ति की आवश्यकता थी। गीता, गांधी तथा विनोबा जी के ऊपर उद्धृत किए गए विचारों में, यह क्रान्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पूजा पाठ तथा भगवद्भजन आदि निरर्थक क्रिया कलाप हैं।

स्वधर्माचरण कठिन साधना है

कर्तव्य कर्म का पालन (स्वधर्माचरण) जीवन की सब से बड़ी साधना है, बिल्कुल सही है। सेवा ही सच्ची भक्ति है, सन्देह नहीं है। परन्तु स्वधर्माचरण या सेवा में प्रवृत्त होना कुछ आसान नहीं है। स्वाध्याय, सत्सङ्ग, शिक्षा तथा उपदेश आदि से हमारे हृदय में यह बात भली भाँति बैठ जा सकती है कि हमें पड़ोसियों के साथ भाईचारे से रहना चाहिए और दूसरों की यथाशक्ति मदद करनी चाहिए। परन्तु इस समझ या ज्ञान से हम में क्या तत्काल कुछ सद्भाव आ जाता है ? नहीं, मौका लगते ही हम गरीबों की असहाय अवस्था का लाभ उठाने से बाज नहीं आते, अपने द्वार पर आए हुए भिखारी को भी दुत्कार देते हैं। और तो और घर में आये हुए अतिथि का भी हम यथायोग्य स्वागत नहीं कर सकते हैं। सेवा और स्वधर्म के सब उपदेश एक ओर धरे धराये रह जाते हैं। हमारी जीवन-स्थिति कुछ ऐसी ही है।

इसे करुणता कहिए अथवा जीवन की कठिन समस्या कहिए।

बात यह है कि यह ठीक ठीक जानकर भी कि फलाना काम अच्छा है या बुरा है, लाभदायक है या हानिकर है, हम उस काम को करने या न करने को तैयार नहीं होते। शुद्ध ज्ञान या विवेक में कर्तव्य शक्ति को उत्तेजित करने की पर्याप्त शक्ति है ही नहीं। कर्तृत्व के प्रेरक तो मुख्य रूप से क्रोध, करुणा, प्रेम, दया आदि भाव ही हैं। इन में से कोई भाव, हमारे हृदय में पर्याप्त वेग से उमड़े तभी हम किसी क्रिया में प्रवृत्त होते हैं। भाव प्रसार, ज्ञान प्रसार के साथ साथ नहीं हो जाता। बुद्धि खरगोश की चाल से चलती है, हृदय कछुआ की चाल से। फलतः बुद्धि आगे दौड़ जाती है, हृदय पीछे रह जाता है।

विचार और व्यवहार में अन्तर

साथ ही हमारी परिस्थितियाँ, प्राचीन और नवीन संस्कार, समाज, आदतें, पशुत्व की भावनाएँ, आलस्य, आत्मविश्वास तथा निष्ठा आदि का अभाव आदि बुद्धि तथा भाव के अनुकूल व्यवहार में अनेक बाधाएँ उपस्थित करते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे विचार और व्यवहार में शुभेच्छाओं (pious wishes) और वास्तविक जीवन में पर्याप्त अन्तर बना रहता है। इसी बात को दुर्योधन ने यों स्वीकार किया है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥

महाभारत की उपर्युक्त पंक्तियों में बताई गई स्थिति केवल दुर्योधन की ही नहीं, हम सब की भी है।

व्यास मुनि ने जरा झुंझलाहट के साथ पूछा है—

धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते।

'धर्म से धन की प्राप्ति होती है, सुख की भी प्राप्ति होती है। फिर धर्म का तुम लोग पालन क्यों नहीं करते?

व्यास मुनि ने धर्म के लाभ खूब विस्तार से समझा दिए और आशा की कि अब लोग धर्म का पालन करने लगेंगे। परन्तु धर्माचरण करने वाले तो गिने चुने, दो चार ही निकले। अ ने समय के महाज्ञानी भीष्म से पूछो, दुर्योधन का उन्होंने पक्ष क्यों लिया? आचार्य द्रोण से पूछो निहत्थे अभिमन्यु को, जैसे तैसे घेर घार कर अन्याय से मार क्यों डाला? क्या यह सब धर्म था? व्यास मुनि तभी तो खीझ उठते हैं और पूछते हैं कि धर्म का सेवन क्यों नहीं करते?

कृष्णसखा अर्जुन प्रश्न करते हैं—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥
(गीता २।३६.)

न चाहने पर भी मनुष्य विवश सा होकर अधर्म का आचरण क्यों करने लगता है?

भगवान् ने सुन्दर उत्तर दिया है—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।'
(गीता ३.३७.)

इच्छा रहती है इसलिए मनुष्य पाप करता है। अन्तर में छिपे हुए स्वार्थ, स्पृहा, तृष्णा, क्रोध, कामना आदि मनुष्य को स्वधर्माचरण में प्रवृत्त होने नहीं देते। अर्जुन जैसों की जब यह स्थिति है, तब हम जैसों का तो पूछना ही क्या?

आवश्यक प्रश्न यही है कि यह स्थिति कैसे बदले? हमारे हृदय में आवश्यक अनुराग उत्पन्न कैसे हो, जिससे हम सेवा या स्वधर्माचरण में प्रवृत्त हो सकें?

अकर्म पूजा कैसे?

कर्तव्य कर्म ईश्वरोपासनारूप हैं यह कुछ देर के लिए मान भी लिया जाय तो भी पूछा जा सकता है कि हम में से कितने हैं जो ठीक-ठीक यह दावा कर सकते हैं कि वे सिर्फ कर्तव्य कर्म ही करते हैं। रोज रोज हम से भूल चूक होती ही रहती है, और हम बहुत से ऐसे कर्म कर जाते हैं, जिन्हें निश्चित

रूप से अकर्म ही कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में, यह दावा करना कि हम तो अपने कर्तव्य कर्मों द्वारा परमेश्वर की उपासना करते हैं, वस्तुतः आत्मप्रवंच नाही है। ऐसी प्रवंचना से विचारशील के अन्तर को सन्तोष कैसे हो सकता है ?

अनुरागशून्य सेवा क्या पूजा है ?

फिर प्रत्येक कर्तव्य कम को ईश्वरोपासना कहना कठिन ही है। उदाहरणार्थ एक गृहिणी अत्यन्त कर्तव्य-निष्ठ हो सकती है; परन्तु हो सकता है उसे ईश्वरोपासक न कहा जा सके। जो गृहिणी अपने पति की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखती है, उसकी आवश्यकताओं और अभिलाषाओं का अनुसरण करती है, बाल बच्चों को खूब साफ सुथरा रखती है, उन्हें नियत समय पर खिला पिला कर स्कूल भेज देती है, घर की व्यवस्था सुन्दर रखती है, मितव्ययता से सब काम-काज चलाती है, उसे कर्तव्यनिष्ठ कहना ही होगा। परन्तु हो सकता है उस गृहिणी के मन में, अपने काम के प्रति विशेष अनुराग न हो, उसका दिल भीतर भीतर से कुढ़ता ही हो, उच्च शिक्षण प्राप्त करने के लिए उसका मन छटपटाता हो; उसे लगता हो कि घर के धन्धों में उसका अमूल्य समय व्यथ ही नष्ट हो रहा है। कुलीनता अथवा उच्च संस्कारों के कारण, वह अपनी मानसिक व्यथा स्पष्ट रूप में कहती न हो; यद्यपि उसे अपना कर्तव्य भारी बोझ रूप और जीवन नीरस एवं निरानन्द प्रतीत होता हो। इस गृहिणी का धैर्य धन्य हो सकता है, परन्तु उसके अनुराग-शून्य अतएव आनन्द ही नकर्म को ईश्वरोपासना कहना विचारणीय ही है।

अहङ्कार से कर्तव्य में कुरूपता

एक सेठ, अपनी अपार सम्पत्ति में से, १० लाख रुपये किसी शिक्षा-संस्था को दान देता है। वैश्य होने के नाते दान देना सेठ का परम धर्म ही है। विद्या के प्रसारार्थ दिया गया दान, सब से उच्च कोटि का दान है। इसलिए कहा जा सकता है कि सेठ ने अपने आवश्यक कर्तव्य का सुन्दर ढङ्ग से पालन किया है। सेठ का दान अनुकरणीय भी हो सकता है; उसे पुण्य कर्म भी कहना होगा। परन्तु इस दान को ईश्वरोपासना कहने से पहले, दाता की भावनाओं की सूक्ष्म छानबीन करना जरूरी होगा। दान दस लाख रुपयों का होने से ईश्वरोपासना नहीं हो जाता। यदि लाखों रुपयों का दान ख्याति के लिये, अपने अहङ्कार के पोषण के लिए, अपने जैसे दूसरे सेठ को नीचा दिखाने के लिये, अपने अधिकार और सत्ता की मर्यादा विस्तृत करने के लिए, अथवा किसी सूक्ष्म स्वार्थ की पूर्त्ति के लिए दिया गया है, तो सेठ का दान राजस कोटि का ही है। ईश्वरोपासना रूप होने के लिए दान सात्विक ही होना चाहिए। इस प्रसङ्ग में गीता के निम्न श्लोक विचारणीय हैं—

> दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
> देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥
> यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
> दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥
> अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
> असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥
> [गीता १७. २०, २१, २२]

भक्ति की खरी कसौटी

कर्तव्य कर्म को ईश्वरोपासना रूप कहने के लिए गीता ने निम्न कड़ी शर्त प्रस्तुत की है—

> अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥
> [गीता १७.२८]

स्पष्ट है कि भगवान् कृष्ण श्रद्धा या अनुराग-शून्य दान और परोपकार जैसे पुण्य कार्य को भी सत्, शुभ या प्रशस्त कर्म कहने को तैयार नहीं। ईश्वरोपासना तो कोसों दूर की बात है।

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि कर्तव्य-निष्ठा प्रशंसनीय तो है, परन्तु पूजा रूप नहीं। स्वार्थ, आसक्त, अहङ्कार आदि से शून्य कर्तव्य कर्म ही, गीता की दृष्टि में प्रशस्त कर्म है। यह प्रशस्त कर्म ही अनुराग और श्रद्धा से भरपूर

होकर ईश्वरोपासना रूप बन जाता है। ईश्वरोपासना रूप कर्म अनुराग से खचाखच भरा होने से आनन्द का अक्षय स्रोत होता है; अन्तःकरण को वह परितृप्त और जीवन को कृतार्थ करता है।

अहङ्कार क्षीण कैसे हो ?

मुख्य समस्या अब अन्तर को स्वार्थ, अहङ्कार आदि विकारों से शून्य (अर्थात् शुद्ध) और अनुराग-पूर्ण कैसे बनाया जाय, यही हो जाती है। प्रभु-प्रार्थना तथा भजन आदि मुख्य रूप से हमारी यही सहायता करते हैं।

'Blessed are the pure in heart, for they shall see God'.

"जो हृदय से शुद्ध नहीं हैं, उन्हें ईश्वर-दर्शन कभी नहीं हो सकता। ठीक है; परन्तु शुद्धि का मार्ग कठिन और दुर्गम है। पूर्ण शुद्धता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को मन वचन और कर्म में सर्वथा विकार-रहित बनना पड़ता है। उसे प्रेम और घृणा, राग और द्वेष की विरोधी धाराओं से ऊपर उठना होता है। मैं जानता हूँ कि मुझ में अभी तक यह त्रिविध शुद्धि नहीं आई है, यद्यपि मैं उसके लिए अविश्रान्त प्रयत्न करता हूँ। सूक्ष्म विकारों पर विजयी होना मुझे शस्त्रबल द्वारा संसार की भौतिक विजय से कठिन प्रतीत होता है।"

आत्मशुद्धि का प्रबल अस्त्र

इस कठिनतम कार्य में श्रेयार्थी की सहायता करने वाली प्रभु-प्रार्थना ही है। आत्मशुद्धि का इससे अधिक प्रबल अस्त्र दुनिया ने अभी तक नहीं जाना है। महात्मा जी अपने जीवन के अनुभव से कहते हैं कि 'सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना चमत्कार कर सकती है। प्रार्थना शुद्धि की एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रक्रिया है, और जो चीज शुद्धि करती है वह अवश्य ही हमें अपना कर्तव्य अधिक अच्छी तरह करने और अपना लक्ष्य सिद्ध करने के लिए समर्थ बनाती है'।

'प्रार्थना या तो याचना रूप होती है या व्यापक अर्थ में वह ईश्वर से भीतरी लौ लगाना है। दोनों ही सूरतों में अन्तिम परिणाम एक ही होता है। जब वह याचना हो तो आत्मा की सफाई और शुद्धि के लिए, उसके चारों ओर लिपटे हुये अज्ञान और अन्धकार के आवरण को हटाने के लिए होनी चाहिए। इसलिए जो अपने भीतर दिव्य ज्योति जगाने को तड़प रहा हो उसे प्रार्थना का आसरा लेना होगा।'

'यह मैं अपने और अपने साथियों के थोड़े अनुभव से कहता हूँ कि जिसने प्रार्थना के जादू का अनुभव किया है, वह लगातार कई दिन तक आहार के बिना तो रह सकता है, परन्तु प्रार्थना के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। कारण, प्रार्थना के बिना भीतरी शान्ति नहीं मिलती'।

आदर्श की दृष्टि से यह अवश्य कहा जा सकता है कि सच्ची सेवा ईश्वरोपासना रूप ही है; इसलिए दूसरों की सच्ची सेवा करने वालों को भगवद्-भजन आदि की जरूरत नहीं है। परन्तु सच्ची सेवा है कहाँ; वह भी तो आदर्श की वस्तु ही है। हम यह कह सकने के लिए पर्याप्त उन्नत नहीं हैं कि हमारे सब कार्य समर्पण के कार्य हैं, अथवा हम सच्चे सेवक हैं। इसलिए मेरे जैसों के लिए प्रार्थना तथा भगवद्भजन आदि की शरण लिये बिना कोई चारा ही नहीं है। सेवा को निरन्तर शुद्ध और सच्ची बनाये रखने के लिए बड़े से बड़े भक्त को भी भगवद्भजन आदि की जरूरत शायद रहती ही है। इसीलिए किसी सच्चे कर्मयोगी या भक्त ने जीवन में प्रार्थना तथा भगवद् भजन को अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया हो, कहीं सुना नहीं गया है।

अन्त घड़ी तक भजन

महात्मा जी से बड़ा सच्चा कर्मयोगी इन दिनों कौन हुआ है ? महात्मा जी की मूर्ति निहार कर तथा उनकी सेवाओं को स्मरण कर हमारी आँखें जब तब आनन्दाश्रुओं से भीनी हो जाती हैं। महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने ठीक ही तो कहा है कि 'आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही विश्वास कर सकें कि महात्मा जी जैसे उच्च आध्यात्मिक व्यक्ति के चरण इस धरती पर पड़े थे'। परन्तु उन्होंने

भगवद्भजन, जीवन की अन्तिम घड़ी तक भी कहाँ छोड़ा था ? भगवद्भक्ति का अमृत पिलाने के लिए ही मन्दिर में आते हुए उस देवदूत को किसी सिरफिरे हत्यारे ने अपनी गोलियों का शिकार बनाया था। कैसी करुणता और क्रूरता है !! हत्यारे के पाप से हिम गिरि का धवल शृंग ही गिर गया, अथवा कहो कि जनता के दिल में पवित्रता और प्रेम के उद्गार उत्पन्न करने वाला भक्ति-स्रोत ही सदा के लिए सूख गया। उस सब को याद करके जितने आँसू बहाओ, कम ही है।

'ईश्वर का सुबोध स्वरूप' तथा 'भगवद्भजन जरूरी है' ? इन दोनों लेखों में तथा अन्यत्र भी स्थान स्थान पर हमने महात्मा जी के वचन छूट से उद्धृत किये हैं। हम अपने शब्द अवश्य लिख सकते थे, परन्तु वे शायद निष्प्राण होते, महात्मा जी की अनुभव भरी वाणी जादू है। वह कठोर से कठोर और शुष्क हृदय की जड़िमा को भी छिन्न भिन्न कर सकती है। सहस्रों मुखों से उसका पुनरुच्चारण हो, तो भी शायद पर्याप्त न हो।

हम जाने कहाँ बह गये। हम कह रहे थे कि आदर्श की बात चाहे कुछ भी हो, व्यवहार में किसी सच्चे कर्मयोगी ने प्रार्थना तथा भगवद्भजन से कभी किनारा किया नहीं है। श्री अरविन्द, श्रीरमण महर्षि के उदाहरण भी इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य हैं। वे दोनों महर्षि अपने अपने ढङ्ग से पूर्ण कर्मयोगी ही थे, भगवद् भजन द्वारा ही वे अपने कर्मयोग में शायद पूर्णता ला सके थे। प्रार्थना आदि का यही चमत्कार है। इसी लिए कहा है—

भजन ढाल है

'हमारा जन्म अपने मानव-बन्धुओं की सेवा के लिए हुआ है, और यह काम हम अच्छी तरह नहीं कर सकते यदि हम पूरी तरह से जागृत न रहें। मनुष्य के हृदय में अन्धकार और प्रकाश की शक्तियों में सतत संग्राम होता रहता है। अतः जिसके पास प्रार्थना की ढाल का सहारा नहीं है, वह अन्धकार की शक्तियों का शिकार हो जायगा।'

जो मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म पर्याप्त निष्ठा से करते हैं उनके लिए भी प्रार्थना की ढाल आवश्यक ही है। कारण—

'हमारे दैनिक कार्यों में व्यवस्था शान्ति और संवादिता लाने का एकमात्र उपाय प्रार्थना है। इस प्राणभूत वस्तु को संभाल लिया जाय तो और सब बातें अपने आप संभल जायंगी। किसी वर्ग का एक कोण सम कर दिया जाय तो दूसरे कोण अपने आप सम हो जाते हैं'।

'जो मनुष्य प्रार्थनापूर्ण हृदय के बिना सांसारिक कर्म करेगा, वह स्वयं भी दुःखी होगा और संसार को भी दुःखी करेगा'।

भजन से स्वभाव और संस्कारों का रूपान्तर

सेवा और भगवद्भजन में जरा भी विरोध नहीं। भजन से सेवा में किसी प्रकार का विक्षेप होता हो यह बात भी नहीं। विपरीत इसके वह सेवा में सहायक है, परमेश्वर की याद को वह ताजा बनाता है, तथा सेवा में रही सही कमी को दूर कर उसे सच्ची पूजा का रूप देता है। Blair ने ठीक कहा है —

'It is for the sake of man, not of God, that worship and prayers are required; that man may be made better, and acquire those pious and virtuous dispositions in which his highest improvement consists.'

भगवान् को भजन आदि की ज़रा भी जरूरत नहीं, उसे उसके कर्तव्य को हम क्या याद दिलायेंगे ? हम स्वयं कमजोर हैं। हम अपने पुराने नये संस्कारों, आदतों, बुराइयों, राग द्वेष की अशुद्ध भावनाओं तथा वृत्तियों आदि को बदलने में बार बार असफल होते हैं। बुद्धि, ज्ञान या विवेक आदि इन वृत्तियों और दृढ़ संस्कारों को परिवर्तित करने में, बहुत सीमित ही सिद्ध होते हैं। उसके लिए दया, करुणा, अनुराग आदि भावनाओं को पुनः पुनः प्रबल रूप से जगाना पड़ता है। भजन, प्रार्थना आदि से ये भावनाएँ ठीक ठीक उद्बुद्ध होती हैं। फलतः मनुष्य के स्व-

भाव और संस्कारों का रूपान्तर होने लगता है। वह अपने कार्यों को अधिक शुद्ध और प्रामाणिक ढंग से करने योग्य हो जाता है। इसलिए Carlyle के शब्दों में कहना होगा कि— भगवद्भजन आदि के प्रति अरुचि हो जाने से बड़ी विपत्ति किसी राष्ट्र पर शायद ही कभी आ सकती है'।

नम्रता की पुकार

अपने हृदय की छानबीन के सिवा प्रार्थना क्या है? इन घड़ियों में मनुष्य अपनी पिछली बातों पर विचार करता है, अपनी दुर्बलताओं एवं दोषों को स्वीकार करता है, अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगता है, आँसू बहाता है और अधिक अच्छा बनने के लिए बल मांगता है। अपनी कमजोरियों और विवशताओं को भली भाँति अनुभव करते हुए वह अब अधिक नम्र होता है। अपने आसपास के व्यक्तियों के प्रति वह सहानुभूति और सद्भाव धारण करने लगता है। इस प्रकार प्रार्थना नम्रता की पुकार है।

मनुष्य के ज्ञान और शक्ति का कोई अन्त नहीं। इनकी सहायता से वह दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त करता है, और परोपकार के बड़े बड़े कार्य भी करता है। उसके हृदय में सद्भाव और उत्साह कुछ कम नहीं है। इससे वह सेवा करने में समर्थ होता है। परन्तु उसके दिल का अहंकार उसकी बड़ी से बड़ी सेवा को भी धूल में मिला देता है। भक्ति तक उसे पहुँचने ही नहीं देता। इसी लिए तो कहा है कि 'जिसमें जरा भी अहंकार है वह ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता'। अहङ्कार सबसे बड़ा अन्तराय है।

जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं॥
—महात्मा कबीर

प्रार्थना आत्मनिरीक्षण के आह्वान द्वारा अहङ्कार के सिर पर बार बार जबरदस्त चोट करती है। अहङ्कार जब कुचल दिया गया तब तो—

तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ में रही न हूं।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूँ॥

फिर तो हालत यह हो जाती है—

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥
—महात्मा कबीर

सन्त सेवा करते थकते क्यों नहीं?

अहङ्कार चला गया तब तो फिर अनुराग का उद्रेक होता है। सब कहीं, महामहिमाशाली की छटा दिखाई देने लगती है। उसकी लीलाओं को निहारते हुए चित्त गद्गद होता है। समस्त विघ्न बाधाओं के बादलों को फाड़कर प्रकट होती हुई धर्म-ज्योति का प्रत्यक्ष कर श्रेयार्थी का मन नाच नाच उठता है। उसके अन्तर में आनन्द और अनुराग की ऊँची हिलोरें उठने लगती हैं। फलतः स्वार्थ और संकीर्णता की दीवारें गिर जाती हैं। आत्मीयता और बन्धुता की भावना विस्तृत होती है। श्रेयार्थी, आशा और उत्साह से भर जाता है। सन्मार्ग अब सरल हो जाता है।

'जब कोई मनुष्य इस प्रकार अपने आपको ईश्वर में खो देता है, तब वह तुरन्त अपने को सब प्राणियों की सेवा में संलग्न पाता है। वह उसके लिए आनन्द और मनोरंजन बन जाती है। वह एक नया आदमी हो जाता है, जिसे ईश्वर की सृष्टि की सेवा में खप जाने में कभी थकावट नहीं मालूम होती।'

अहङ्कार रूपी अन्तराय के हट जाने से 'जब भूतमात्र में भगवान् दिखाई देने लगेगा, तब सन्त सेवा के लिए क्यों तरसते हैं, इसका रहस्य समझ में आ जायगा।' —विनोबा जी

भजन से भगवान् जगते हैं

भजन आत्मनिरीक्षण का आह्वान ही नहीं, परमेश्वर के जगाने का अचूक साधन भी है। हम सब के भीतर परमेश्वर अवश्य है, परन्तु वह प्रायः सोया हुआ है। इसलिए दिन भर पशुत्व की उछल कूद रहती है। व्यर्थ की चिन्तायें, इसकी या उसकी बुराई, दुनियां भर की माथा-कूट, छल कपट, कलह विवाद, शोर गुल और

लूट खसोट, यही जीवन-क्रम रहता है। श्रेयार्थी इस जीवन-पद्धति को बदलने के लिए अपने भीतर के भगवान् को जगाता है। दूसरे शब्दों में परमेश्वर का गुण-कीर्तन करते हुए वह अपने भीतर सत्य में श्रद्धा, धर्म की विजय पर विश्वास, आत्मीयता, दया, प्रीति, मैत्री और परोपकार की भावनाएं उद्बुद्ध करता है। बुराई की जगह वह भलाई को हृदय सिंहासन पर बिठलाता है। प्रार्थना भजन आदि से, इस प्रकार मनुष्य का शैतान से नाता टूटता है और ईश्वर से पवित्र गठबन्धन हो जाता है। इस गठबन्धन से उसकी श्रद्धा और विश्वास की सीमा नहीं रहती। पर्वत को इधर से उधर और समुद्र को लांघ जाने की शक्ति प्राप्त होती है। नस नस में मस्ती छा जाती है। प्रसन्नता का कोई पार नहीं, भीति का नाम नहीं। भक्त के सम्पर्क में जो कोई आता है प्रफुल्लित हो और प्रसन्न चित हो उठता है। इस स्थिति में भक्त के लिए असंभव क्या है?

सम्पूर्ण विवेचन का सार यह है कि प्रार्थना या भगवद्भजन आत्मा का भोजन है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जैसे भोजन और व्यायाम आवश्यक हैं, उसी प्रकार आत्मिक स्वास्थ्य के लिए भगवद्भजन व स्तवन, कीर्तन आवश्यक हैं। इससे आत्मा में दृढ़ता तथा पाप और प्रलोभनों से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। 'अहङ्कार का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुणग्रहण में पुरुषार्थ और अनुराग का उद्रेक, आदि प्रार्थना व भजन कीर्तन के फल हैं। प्रभु-संगति में जो अवर्णनीय आनन्द की उपलब्धि होती है, वह तो अनुभव का ही विषय है। स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में स्तुति प्रार्थना आदि की उपयोगिता संक्षिप्त तथा सुनिश्चित शब्दों में अभिव्यक्त की है—

"प्रश्न—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा।

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना?

उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है।

स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानिता, उत्साह और सहाय मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार।"

शुद्ध भाव की उच्च भूमिका पर पहुँचने के लिए भगवद्भजन सीढ़ी रूप है। सेवा को पूजा में रूपान्तरित करने का यही प्रधान साधन है।

आचार्य विनोबा जी की मां के वचन से हम इस विषय का उपसंहार करना चाहते हैं—

'जहाँ देश सेवा की तो उसमें भगवान् की भक्ति आ ही जाती है। फिर भी थोड़ा भजन चाहिए।'

विनोबा जी ने सूत्र रूप में कारण कह दिया है—

"निर्दोष यज्ञ (सेवा) की यदि अशक्यता न होती, तो भक्ति की आवश्यकता न होती।"

गीता में 'ध्यान योग' आदि विषयों की चर्चा विस्तार से करना भगवान् ने इसीलिए आवश्यक ही माना है।

[शेष पृष्ठ १४ का]

कि वह हरद्वार आकर यह धन उन्हें दे देगा। परन्तु अपराधी नम्बर १ और अपराधी नम्बर २ ने कहा कि वह दान के लिये देर न करे। इस पर उन्होंने अपनी कार पर जनक प्रसाद को अपने दो साथियों के साथ जो अपराधी नम्बर ३ और ४ हैं दिल्ली रवाना किया। जहां श्रीजनक प्रसाद ने इन्हें २१०० रुपया दे दिया। इसके बाद २५ मार्च को श्री जनक प्रसाद हरद्वार गया और वहां इस ट्रस्ट के सम्बन्ध में पूछ ताछ की परन्तु वहां इस नाम का कोई ट्रस्ट नहीं था जिस पर उसे ज्ञात हुआ कि दान की आड़ में उसके साथ धोखा हुआ है। (दैनिक प्रताप ७-४-६३)

ऐ योग के जिज्ञासुओ! हंस जी के जाल से बचो। हंस जी स्वयं कोरे हैं, आपको क्या दे सकते हैं। यदि सुख और शान्ति की कामना है तो महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित वैदिक धर्म की दीक्षा लो इसी में कल्याण है।

॥ ओ३म् शम् ॥

"वेदप्रकाश" मिसक के ग्राहक बनिए

वार्षिक मूल्य केवल ३)

पिछले ग्यारह वर्षों से वेद प्रकाश बिना किसी अड़चन के निरन्तर वैदिक धर्म के प्रचारार्थ निकल रहा है। अत्यल्पकाल में ही वेदप्रकाश ने आर्य जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था।

विगत कुछ वर्षों में "वेदप्रकाश" १. दयानन्द ग्रन्थ संग्रह, २. वाल्मीकि रामायण, ३. बृहदारण्यकोपनिषद् कथामाला (स्वामी ब्रह्ममुनि कृत) ४. सृष्टि का इतिहास (पं० लेखराम कृत) ५. गुरुदत्तलेखावलि (पं० गुरुदत्त विद्यार्थी कृत) ६. महर्षि से पूर्व का भारत (पं० आत्माराम अमृतसरी कृत) ७. व्याख्यानमाला (स्वामी नित्यानन्द कृत) ८. वैदिक धर्म (स्वामी वेदानन्द) ग्रन्थों को विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर आर्य जनता की खूब वाह वाही लूटी।

बृहद् विशेषांकों के अतिरिक्त इस वर्ष अब तक निम्न विशेषांक छोटे छोटे प्रकाशित हुए जो कि पाठकों को उसी वार्षिक मूल्य में प्राप्त हुए—१. शिव संकल्प सूक्त की व्याख्या, २. बालक अंक, ३. इस्लाम के स्वर्ग-नरक पर महर्षि की आलोचना का प्रभाव, ४. हंस पोल प्रकाश आपके हाथ में है।

प्रत्येक साधारण अङ्क में सम्पादकीय टिप्पणियां होती है जिन्हें पाठक बड़े चाव से पढ़ते हैं इसके अतिरिक्त शङ्का समाधान, साहित्य समीक्षा आदि स्थाई स्तम्भ हैं।

देखिये हमारे पाठक क्या कहते हैं

श्री वीरसेन जी वेदश्रमी इन्दौर:—वेद प्रकाश के इस अङ्क का सम्पादकीय पढ़ा। कवि सम्मेलन पर टिप्पणी बहुत उत्तम है। वेद सम्मेलनों का सुझाव आर्य समाज मान ले तो आर्य समाज वैदिक संस्था हो जावे।

श्री भवानीलाल जी भारतीय एम० ए० जोधपुर:—वेदप्रकाश में आपकी टिप्पणियां पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी सभी टिप्पणियाँ उचित और अनुकूल है।

श्री प्रीतनारायण जौहरी फतेहगढ़:—मैं आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्ष टिप्पणी से बहुत प्रभावित हुआ हूँ तथा मैंने इस प्रकार विक्रय विभाग का आरम्भ करने का निश्चय किया है।

श्री राजकुमार रणञ्जतसिंह M. P.:—(भूतपूर्व प्रधान प्रतिनिधि सभा उ० प्र०) जिस सुयोग्यता एवं निर्भीकता से वेदप्रकाश चलाया जा रहा है तदर्थ आपको धन्यवाद।

श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक:—दिसम्बर के वेद प्रकाश में आर्य विद्वानों की प्रिय पुस्तकों के नाम पढ़ कर मैं चकित रह गया। आपकी टिप्पणी युक्त थी।

१२ वें वर्ष का बृहद् विशेषांक

पिछले वर्ष की भांति इस वर्ष भी हम एक बृहद् वेदांक पाठकों को भेंट करेंगे। इस अक का नाम "वैदिक उदात्त भावनाए" पुस्तक साइज में लगभग १६० पृष्ठ होंगे। विशेषांक के कुछ विषय है—विश्व कल्याण, विश्व शान्ति, भातृ प्रेम, वीर भावना, शत्रु दमन, अकेला, पितृभक्ति वैदिक गृहस्थ, निर्भयता, मेधा, श्रद्धा, संकल्प शक्ति आदि ४० विषयों का समावेश होगा। पुस्तक पढ़ते पढ़ते आप आनन्द विभोर हो उठेंगे। कहीं वीरता की भावनाओं को पढ़कर आपकी नस नस और रग रग में ऊष्मा भर जायेगी तो कहीं आप वेद की उच्च भावनाओं को पढ़कर आश्चर्य चकित रह जायेंगे। यह पुस्तक वैदिक साहित्य में एक ठोस वृद्धि सिद्ध होगी।

गोविन्दराम हासानन्त, ४४०८ नई सड़क देहली।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

शतकों पर

राष्ट्र के नेताओं व विद्वानों की सम्मत्तियां

राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णनः–They are valuable and I hope they will be read widely.

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगरः—The extracts from the four vedas are select ones, appropriate and useful to the present generation, to give them an insight into our ancient lore. I hope that the book will become popular and useful.

श्री के० एम० मुंशीः—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने जनसाधारण में वेदों के प्रचार के लिये हिन्दी शतक प्रकाशित किये हैं। इससे वैदिक प्रचार शृंखला के नवीन साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। मैं आपके प्रयास के लिये शुभ कामना चाहता हूँ।

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थः—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप से मुद्रित हुये हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते साहित्य से ही वेदों का प्रचार होगा।

संसद सदस्य श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्रीः—वेदों के सौ सौ मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने प्रकाशित की हैं मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है।

पं० वासुदेवशरण अग्रवालः—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०ः—मन्त्र बहुत अच्छे हैं इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी।

दैनिक हिन्दुस्तान लिखता हैः—प्रत्येक वेद से अलग २ चुने हुए सौ सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। और साथ ही उनका सरल हिन्दी में पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद का परिचय प्राप्त करने वालों के लिए शतक उपादेय हैं।

दैनिक नवभारत टाइम्स लिखता हैः—वेद के अगाध ज्ञान के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द ने पाकेट बुक के इस युग में वेदों से सौ सौ मन्त्रों का यह नयनाभिराम अल्पमोली संग्रह प्रकाशित करके पथ प्रदर्शन किया है। विषयों का चुनाव जीवन में उपयोगिता के आधार पर हुआ है। छात्रों को पुरस्कार रूप में देने तथा तथा पुस्तकालयों में संग्रह के लिए अत्यन्त उपादेय सामग्री है।

पं० अमरसिंह जी आर्य पथिकः—आपने इन शतकों को इतना सुन्दर छपाया है कि उनकी प्रशंसा न करना पाप प्रतीत होता है। यदि ये सुन्दर शतक हाथों हाथ न निकल जायें तो समझना चाहिये कि लोग अन्धे हो गये हैं।

चारों ही शतक बढ़िया कागज पर कलात्मक ढंग से छपाये गये हैं। प्रत्येक का मूल्य १) है। आज ही आर्डर देकर मंगावें।

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली–६

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सत्य नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या)५०

श्री मद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

प० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा सकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
वीरवल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्माहंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम, गायत्री मन्त्र
प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

॥ ओ३म् ॥

श्री पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित स्थूलाक्षरी
सत्यार्थ-प्रकाश का अपूर्व स्वागत

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी लिखते हैं

मोटे अक्षरों में जो नया सत्यार्थ प्रकाश आपने प्रकाशित किया है उस पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। ऐसा सुन्दर चित्ताकर्षक और परिमार्जित सत्यार्थप्रकाश अभी तक नहीं छपा था। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी की भूमिका से कितने ही रहस्य खुलते हैं। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने अजमेर में एक साल निवास करके सत्यार्थ प्रकाश की मूल प्रतियों से मिलान करके कितनी ही अशुद्धियों को ठीक कर दिया है। आर्य जगत् ऐसे सुन्दर सत्यार्थ प्रकाश का बड़े आदर से स्वागत करेगा।

आदरणीय श्री गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय लिखते हैं

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी का नाम ही पुस्तक के अत्युत्तम होने का प्रमाण है। सम्पादक की १२ पृष्ठ की भूमिका पढ़ने और मनन करने योग्य है। ३५ वर्ष पूर्व श्री गोविन्दराम जी ने सत्यार्थ प्रकाश का सस्ता संस्करण छाप कर परोपकारिणी सभा के सोते हुए अधिकारियों को गहरी नींद से जगाया था। मुझे यह संस्करण बहुत ही अच्छा लगा। मैं इतने बड़े ग्रन्थ का पूरा अध्ययन या मिलान तो नहीं कर सका परन्तु जितना भी देखा मुझे अच्छा लगा।

श्री पण्डित प्रकाशवीर जी शास्त्री लिखते हैं

आपने सत्यार्थ प्रकाश का स्थूल अक्षरों वाला जो संस्करण प्रकाशित किया है उसे देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह बहुत अधिक बड़ा भी नहीं है और पहले संस्करणों की भांति बहुत छोटा भी नहीं है। इसकी छपाई आदि में जो सावधानी रखी गयी है वह और भी सराहनीय है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान श्री पं० भगवद्दत्त जी की टिप्पणियां इस संस्करण की अपनी निजी विशेषताएं हैं। आप के इस प्रयास से आर्य साहित्य को बल मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार (उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी) लिखते हैं

इसमें सन्देह नहीं कि आपने सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशन करके आर्य समाज की भारी सेवा की है। ग्रन्थ का प्रकाशन श्री पं० भगवद्दत्त जी जैसे विद्वान् की देख रेख में हुआ है। इस से इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता बढ़ गई है। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी जीवन भर शोध कार्य में लग रहे है, खासकर ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के साथ उन का गहरा सम्बन्ध रहा है। इसलिए आप के इस प्रकाशन को चार चांद लग गये हैं। मैं आपको इस प्रयास के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस संस्करण की विशेषताएं

(१) श्री पं० भगवद्दत्त जी ने महर्षि की हस्तलिखित प्रति से मिलान करके संशोधन किया है।
(२) पैराग्राफों पर क्रम संख्या इसकी दूसरी विशेषता है।
(३) प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
(४) अकारादिक्रम से प्रमाण सूची।
(५) बढ़िया कागज, मोती सी छपाई, मजबूत टिकाऊ सुनहरी जिल्द मूल्य १२) विशेष रियायत करके इस समय १०) में दिया जा रहा है।

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली फोन नं० २२२७९८

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

संस्थापक

व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक

विजयकुमार

टेलीफोन नं० २२२७६५.

आदरी सह-सम्पादक

० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०

टेलीफोन नं० २२१३२८

जून	१९६३
ज्येष्ठ	२०१९
वर्ष	अङ्क
[illegible]	११

वार्षिक मूल्य ३)

एक प्रति का ।)

वयोवृद्ध दार्शनिक, सुप्रसिद्ध लेखक आदरणीय श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० का

सत्यार्थ प्रकाश

के

लिए आशीर्वाद

"श्री पं० भगवद्दत्त का नाम ही पुस्तक के अत्युत्तम होने का प्रमाण है। सम्पादक को १२ पृष्ठ की विस्तृत भूमिका पढ़ने और मनन करने योग्य है। श्री विजयकुमार ने इसका प्रकाशन करके अपने पूज्य पिता गोविन्दराम जी तथा पितामह हासानन्द जी की पुण्य कीर्ति को आगे बढ़ाकर उनके 'सन्तान' (संतनोति) होने को अक्षरशः सार्थक किया है। ३५ वर्ष पूर्व श्री गोविन्दराम जी ने सत्यार्थप्रकाश का सस्ता संस्करण छाप कर परोपकारिणी सभा के सोते हुए अधिकारियों को गहरी नींद से जगाया था। श्री विजयकुमार ने मोटे अक्षरों का यह नया संस्करण छापकर जनता का बड़ा उपकार किया हैं। मुझे यह संस्करण बहुत ही अच्छा लगा। इसमें कई विशेषताएँ हैं। मैंने पैराग्राफिंग का काम सबसे पहले आरम्भ किया था। मेरे और इस संस्करण के अङ्कों में भेद है। यदि सब मिल कर पैराग्राफों की संख्या निश्चित कर दें तो प्रमाण देने में सुगमता हो। मैं इतने बड़े (८५० पृष्ठ के) ग्रन्थ का पूरा अध्ययन या मिलान तो नहीं कर सका परन्तु जितना भी देखा मुझे अच्छा लगा। मैं श्री विजयकुमार और श्री ब्र. जगदीश जी को बधाई देता हूँ। दोनों युवक हैं। मुझे उनसे साहित्य क्षेत्र में बहुत आशाएँ हैं।"

जगदीशसहायेन जगतां-हितवाञ्छया ।
विजयो विजयो भूत्वा सन्तनोतु पितुस्ततिम् ॥

॥ ओ३म् ॥

श्री पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित स्थूलाक्षरी

सत्यार्थ-प्रकाश का अपूर्व स्वागत

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी लिखते हैं

मोटे अक्षरों में जो नया सत्यार्थ प्रकाश आपने प्रकाशित किया है उस पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। ऐसा सुन्दर चित्ताकर्षक और परिमार्जित सत्यार्थप्रकाश अभी तक नहीं छपा था। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी की भूमिका से कितने ही रहस्य खुलते हैं। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने अजमेर में एक मास निवास करके सत्यार्थ प्रकाश की मूल प्रतियों से मिलान करके कितनी ही अशुद्धियों को ठीक कर दिया है। आर्य जगत् ऐसे सुन्दर सत्यार्थ प्रकाश का बड़े आदर से स्वागत करेगा।

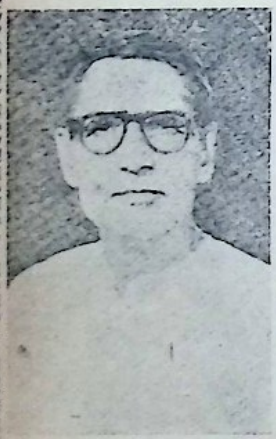

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालङ्कार

(उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी) लिखते हैं

इसमें सन्देह नहीं कि आपने सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशन करके आर्य समाज की भारी सेवा की है। ग्रन्थ का प्रकाशन श्री पं० भगवद्दत्त जी जैसे विद्वान् की देख रेख में हुआ है। इस से इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता बढ़ गई है। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी जीवन भर शोध कार्य में लग रहे हैं, खासकर ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के साथ उन का गहरा सम्बन्ध रहा है। इस लिए आप के इस प्रकाशन को चार चांद लग गये हैं। मैं आपको इस प्रयास के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस संस्करण की विशेषताएं

(१) श्री पं० भगवद्दत्त जी ने महर्षि की हस्तलिखित प्रति से मिलान करके संशोधन किया है।
(२) पैराग्राफों पर क्रम संख्या इसकी दूसरी विशेषता है।
(३) प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
(४) अकारादिक्रम से प्रमाण सूची।
(५) बढ़िया कागज, मोती सी छपाई, मजबूत टिकाऊ सुनहरी जिल्द मूल्य १२) विशेष रियायत करके इस समय १०) में दिया जा रहा है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली फोन नं० २२२७६५

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

प्रभु-स्तवन

[लेखक—स्वा० वेदमुनि जी परिव्राजक]

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० १।१।१॥

(अग्निमीळे) अग्निम् ईडे, अग्निम्=अग्नि को, ईडे=स्तुतता हूँ। अग्नि की स्तुति करता हूँ। अग्निः कस्मात्, कस्मात् कारणात् अग्निः, किस कारण से अग्नि कहलाता है। अग्रणीर्भवति, अग्रणीः भवति, अग्रणी होता है। अग्रणी होने से, अग्रणी होने के कारण से, आगे रहने वाला, आगे चलने वाला होने से, मार्गदर्शक होने से अग्नि कहलाता है। जो आगे रहे, आगे-आगे चले, अन्यों को मार्ग-दर्शन करे, अन्यों को मार्ग दिखाये उसे अग्नि कहते हैं।

वेद कहता है, अथवा वेद के शब्दों में वैदिक साधक कहता है (अग्निम्—ईडे) अग्नि की स्तुति करता हूँ। सचमुच वही स्तुत्य है, स्तुति करने, प्रशंसा करने योग्य होता है जो अग्रणी होता है, आगे-आगे रहता तथा मार्गदर्शन करता है, जो अग्रणी न हो, आगे-आगे न रहे, जिसमें आगे चलने की योग्यता न हो, जो अनुकरणीय न हो अपितु केवल अनुकरण करना ही जानता हो। जो मार्ग-दर्शक न हो, अन्यों का मार्गदर्शन न कर सके, वह स्तुत्य, प्रशंसनीय नहीं हो सकता, उस की प्रशंसा नहीं की जाती। समस्त संसार उन्हीं के गुणगान करता है, जो पिछड़ें नहीं, अन्यों का आश्रय न चाहें अपितु आगे बढ़ें तथा संसार का मार्गदर्शन करें।

परम पिता परमात्मा एक ऐसी ही शक्ति है जो सदा अग्रणी ही रहता है कभी पीछे नहीं। वह कभी किसी का अनुकरण नहीं करता बल्कि सदैव अनुकरणीय ही रहता है। आप जहाँ जाइये वह आपसे पहले वहाँ उपस्थित है। उसे किसी से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं अपितु वह सारे संसार को सिखाने वाला है। आदि सृष्टि में ही उसने सारे संसार को ज्ञान दिया। जब मानव प्रथम बार उत्पन्न हुआ उस समय उसे अन्य कोई ज्ञान देने वाला था भी नहीं उस परम पिता परमात्मा के अतिरिक्त। वही तो है सारे संसार का एक मात्र गुरु "सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" जो काल अर्थात् मृत्यु से भी नहीं छेदा जाता, अथवा जो काल अर्थात् समय से भी नहीं छेदा, काटा (बांटा) जाता, समय भी जिसका बटवारा नहीं कर पाता वही तो है पूर्वकालिक अर्थात् आदि सृष्टि के मानवों का भी गुरु। अतः वही स्तुत्य है, उसी की स्तुति करनी चाहिये। वेद का यह वाक्य कितना सार्थक है। प्रत्येक को उसी प्रभु की स्तुति करनी चाहिये।

(यज्ञस्य) वह यज्ञ का 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' समस्त श्रेष्ठतम कर्मों का, उत्तम कर्मों का (पुरो-हितम्) पुरोहित है, उत्तम कर्मों का कराने वाला है। उस परम पिता परमात्मा से सदैव सत्कर्मों को ही प्रेरणा मिलती है दुष्कर्मों की नहीं। जब मानव किसी दुष्कर्म को करने के लिए उद्यत होता

है तब वह परमात्मा उसे हतोत्साहित करता है। मन के अन्दर से ही उसे भयभीत करता है, मन में भय, शंका तथा लज्जा का संचार करता है। जब मानव शुभ कर्म करने के लिए समुद्यत होता है तब उसके मन में प्रसन्नता तथा उत्साह का संचार होता है। यह प्रसन्नता तथा उत्साह का संचार परमात्मा की प्रेरणा से होता है। सत्य तो यह है कि यह प्रसन्नता तथा उत्साह ही प्रभु की प्रेरणा है। वह प्रभु मार्गदर्शन कर रहा होता है, वह कह रहा होता है कि इस कार्य को कर डालो। यह देरी करने का कार्य नहीं है, शुभस्य शीघ्रम्, शुभ कार्य में देरी न करो, इसे शीघ्र कर डालो। इस प्रकार की प्रेरणा देने वाला होने से वह 'यज्ञस्य पुरोहितं' यज्ञ का पुरोहित है, शुभ कर्मों का कराने वाला है।

पुरोहित का एक अर्थ है परहित साधक। जिससे पर हित सिद्ध न हो वह पुरोहित ही क्या? किसी से शुभ कर्म कराना उसका हित ही तो करना है। दुष्कर्म कराना तो अहित करना है अतः दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त करने वाला कभी पुरोहित नहीं हो सकता। शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाले की ही पुरोहित संज्ञा होती है।

(देवं) वह भगवान् देव है। "यो दीव्यति क्रीडति स देवः" जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीड़ा करे वह देव है। (महर्षि दयानन्द) भगवान् अपने स्वरूप में आप ही क्रीड़ा करते हैं। उन्हें कभी दुःख नहीं व्यापता, वह हैं ही आनन्दमय, अतः आनन्द से क्रीड़ा करते हैं एतदर्थ उनका नाम देव है।

(ऋत्विजम्) वह ऋत्विज है, उसमें ऋषित्व है। वह मन्त्रद्रष्टा है, वह समस्त विचारों का जानने वाला है, संसार का कोई भी मंत्र, कोई भी विचार, कोई भी रहस्य उससे छिपा नहीं है। वह साक्षात्कृतधर्मा है, उसने धर्म का साक्षात् किया हुआ है। वह धर्म अधर्म के विषय में अंधकार में नहीं है, वह जानता है धर्म क्या है और अधर्म क्या? जाने भी क्यों न? सर्वज्ञ जो ठहरा। सर्वज्ञ से कोई रहस्य छिपा रह ही नहीं सकता। वह तो (सर्व) सभी कुछ (ज्ञ) जानने वाला है। रहस्य तो जीव से ही छिपे रह सकते हैं कारण कि यह ठहरा अल्पज्ञ (अल्प) थोड़े (ज्ञ) ज्ञान वाला। यह सत्य है कि जीव भी मनुष्य शरीर में आकर ऋषित्व को प्राप्त कर लेता है। किन्तु उस का ऋषित्व सीमित ही होता है क्योंकि इसकी शक्ति ही सीमित है, अल्प है। असीम शक्ति वाला तो वह प्रभु ही है अतः वही सर्वांगपूर्ण रूपेण ऋषि है।

(होतारं) आहुति दाता, आहुति देने वाला है। उसकी आहुतियाँ निरन्तर लग रही हैं। इस संसार यज्ञ का संचालक परिचालक है वह। उसी की कृपा की आहुतियों से यह संसार यज्ञ चल रहा है। यज्ञ में आहुतियाँ न लगें तो यज्ञ समाप्त हो जाय। यज्ञ निरन्तर चलता रहे इस के लिए आवश्यक है कि निरन्तर आहुतियाँ लगती रहें। निरन्तर आहुतियाँ नहीं लगेंगी तो यज्ञ निरन्तर चल नहीं सकता। संसार यज्ञ निरन्तर चल रहा है तो केवल इस लिए कि वह प्रभु इस यज्ञ में निरन्तर आहुतियाँ डाल रहा है।

आहुतियों का क्रम लगा हुआ है अत्यन्त सुन्दर क्रम। दिन के पश्चात् रात्रि आती है तो रात्रि के पश्चात् दिन। वर्षा होती है तो भूमि शस्य श्यामला हो जाती है। भूमि शुष्क हो जाती है तो पुनः वर्षा होती है। वनस्पतियाँ फल-फूल रही हैं। पतझड़ होता है, वनस्पतियों के पत्ते झड़ जाते हैं, नव पल्लव आने लगते हैं तथा वह निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं। एक सीमा पर पहुँच कर पुनः पतझड़ को प्राप्त होते हैं तथा पुनः नवपल्लव निकल आते हैं।

असंख्यों प्राणी इस संसार में प्रतिक्षण जन्मते और मरते रहते हैं। इधर मृत्यु होती है तो उधर जन्म होता है। "बाप मरा घर बेटा हुआ, इस का घाटा उस में गया" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो रही है। जब तक यह क्रम इस संसार का चल रहा है तभी तक यह यज्ञ चल रहा है जिस दिन यह

[शेष पृष्ठ ५ पर]

गुरु बिन गति नहीं

❀ श्री पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक

आजकल हिन्दु जाति में गुरुडम का बहुत प्रचार हो रहा है। गुरुओं का सम्मान ठाटबाट बड़ी २ कोठियां ऐश्वर्य देख कर गुरु बनने के लिए किस के मुंह में पानी नहीं भर आता। एतदर्थ किसी बड़े परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं वेद-शास्त्र अथवा भौतिक विज्ञान की प्राप्ति के लिए सिर खपाने की अपेक्षा नहीं। वाक्चातुर्य होना चाहिए और गुरु महिमा के कुछ कबीर आदि सन्तों के दोहे याद होने चाहिए। एतदर्थ कुछ अक्षर ज्ञान हो तो अच्छा है। यदि अपने गुरुओं की कुछ अवहेलना भी हो जावे तो कोई बात नहीं।

गुरुडम का अड्डा पहले आगरा में राधास्वामी नाम से स्थापित हुआ। गुरु के मरने पर विशेष अधिकारी को कुछ नियमों के अनुसार गद्दी पर नियत कर दिया जाता। कुछ समय तक यह बात चलती रही। परन्तु जो शिष्य निराश हो जाते वे हाथ मलते रह जाते। वे महन्तों की योग्यता से अपने को न्यून न समझते थे। अतः उन्होंने अपने अलग सत्सङ्ग चला दिये। फिर तो शाखों के आगे शाखें निकलने लगीं और इस समय राधास्वामी मत के अनेक सम्प्रदाय बन कर अनेक गद्दियाँ बन गई हैं और महन्त धनी मानी बन रहे हैं।

राधास्वामियों के ऐश्वर्य को देखकर अन्य लोगों ने भी इसी प्रकार का गुरुडम चला दिया। अब तो आर्य समाज में भी ऐसे लोग उत्पन्न हो रहे हैं। स्वामी सत्यानन्द जी का सम्प्रदाय तो चल ही पड़ा है।

स्वार्थ के वशीभूत इन गुरुओं को यह विचार नहीं आता कि इस प्रकार हम हिन्दु जाति में भेद-भाव उत्पन्न कर के जाति धर्म और देश को कितनी हानि पहुँचा रहे हैं। इसका परिणाम यह होगा कि विरोधी संघठित जातियाँ प्रबल होकर किसी दिन भारत का शासन अपने हाथ में लेकर हिन्दुजाति को समूल नष्ट कर देंगी। इसके साथ तुम्हारे नाम के साथ ही सम्प्रदाय भी इस प्रकार नष्ट हो जावेंगे जैसे मिस्र, यूनान और बाबल के पुराने धर्म।

शासन भी किसी जाति के सुधार संघठन और उत्थान का कारण बना करता है। भारत का विभाजन हिन्दू मुस्लिम नाम पर होने पर भी हिन्दुओं को अपनी विभिन्न भावनाओं के कारण इस शासन से कुछ लाभ नहीं हुआ। शासनाधिकारी यद्यपि आधिक्येन हिन्दू हैं परन्तु वे वर्तमान स्थिति में सन्तुष्ट हैं, भविष्य की उन्हें कोई चिन्ता नहीं।

महर्षि दयानन्द संसार के सब मतों विशेषतया हिन्दु जाति में सुधार चाहते थे। आर्यसमाज का भी यही उद्देश्य है। अतः 'वेदप्रकाश' द्वारा इस गुरुडम के भयानक परिणाम की ओर हिन्दु नेताओं का ध्यान दिलाया जाता है।

इस गुरुडम के फैलने का मूल कारण है यह अज्ञान है कि "गुरु बिना गति नहीं"।

यह वचन न वेद का है न किसी शास्त्र का। केवल सम्प्रदायी गुरुओं का है, जिन्होंने गुरु को परमात्मा से भी बढ़ कर बतलाया। और इसका यह अर्थ किया जाता है कि कोई कितना भी धर्मात्मा और ईश्वर का उपासक हो यदि उसने गुरु धारण नहीं किया तो उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। इसके प्रतिकूल जिसने गुरु धारण कर लिया है, वह कैसा भी हो मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

यह बात पश्चिमी मतों की सी है, जो अपने पैगम्बरों के लिए यही कुछ कहते हैं। वस्तुतः भारत

में हिन्दू जाति में उनके सम्पर्क से ही यह गुरुडम फैला है।

वैदिक धर्म गुरु के यथार्थ महत्त्व से नकार नहीं करता। परन्तु किसी वस्तु को मिथ्या महत्त्व देना भी अनुचित समझता है। गुरुडम में इसी बात का विरोध किया जाता है। यहाँ सच्चे और झूठे गुरु तत्त्व का संक्षेप से उल्लेख किया जाता है।

(१) सत्यं गृणाति शिष्येभ्यः सत्यमाचरति सदा।
हितोपदेशकश्चैव सुविद्याध्यापको गुरुः॥
[मनु०]

जो सत्य कहे, सत्य पर चले, हित का उपदेश और सुविद्या को पढ़ाये वह गुरु कहाता है। परन्तु गुरुडम में कुछ मिनटों के लिए गुरु के पास बैठे, गुरु का महत्त्व सुना, भेंट चढ़ाई और गुरु शिष्य का सम्बन्ध हो गया।

(२) वैदिक धर्म में बालक में जब धर्म को समझने और विद्योन्नति की योग्यता हो जाती है, तो गुरु यज्ञोपवीत देकर शौच, सदाचार, सन्ध्या, हवन की शिक्षा देकर गायत्री मन्त्र का उपदेश करता है।

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च॥
[मनु०]

केवल एक ही गायत्री मन्त्र का सब को उपदेश होने से जाति में एकता बनी रहती थी। परन्तु अब गुरु अपना २ भिन्न २ गुरुमन्त्र देकर जाति में फूट डाल रहे हैं और अपने प्राचीन धर्मग्रन्थ वेदशास्त्र और रामकृष्ण आदि पूर्वजों के महत्त्व का नाश कर रहे हैं।

(३) गुरु विद्या का अध्यापक होता है। विद्यायें अनेक हैं उन में ब्रह्म विद्या भी है। और न केवल भिन्न २ विद्याओं की शिक्षा के लिए प्रत्युत एक विद्या को सीखने के लिए भी अनेक गुरुओं की आवश्यकता होती है। श्री राम के तीन गुरु थे वशिष्ठ, विश्वामित्र और अगस्त्य तो प्रसिद्ध हैं। रघुवंश में रघु के भी अनेक गुरु कहे हैं।

विनिन्युरेवं गुरवो गुरुप्रियम्।

उपनिषदों में ब्रह्मविद्या के लिए भी अनेक गुरुओं का वर्णन है। दत्तात्रेय जी के २४ गुरु प्रसिद्ध हैं।

परन्तु गुरुडम में केवल एक गुरु से दीक्षा ली जाती है। अतः शिष्य विवेकहीन ही रह जाते हैं। वस्तुतः जैसे एक दुकानदार चाहता है कि ग्राहक मुझ से वस्तु क्रय करे, दूसरी दुकान पर न जावे, ऐसे ही गुरुडम दुकानदारी ही है, जिज्ञासा की भावना नहीं।

(४) मानव गुरु हो वा कोई अन्य—पतन की सम्भवना बनी रहती है। अतः वैदिक गुरु विद्यार्थियों को कहते हैं—

यान्यस्माकं सुचरितानि तान्युपास्यानि नेतराणि।

हमारे सुचरित का अनुकरण करो, अन्यथा नहीं। यदि किसी गुरु में दुश्चरित देखा जाता तो दण्डनीय होता।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यं विजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्यं भवति ताडनम्॥
[मनु०]

परन्तु गुरुडम में गुरुनिन्दा के पाप के भय से गुरु के दुश्चरितों पर आवरण डाला जाता है। अतः आचार भ्रष्ट होने पर भी उनकी दुकान चलती रहती है और मानव समाज को इससे बड़ी हानि पहुँचती है।

(५) वेद शास्त्र में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि गुरु धारण के बिना मुक्ति नहीं होती। मोक्ष के साधनों से ही मुक्ति प्राप्त होती है। यथा 'ज्ञानेन मुक्तिः' (सां०) विवेक एव कारणम् वै०' मुक्ति की प्राप्ति ज्ञान और विवेक ही से सम्भव है।

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् (सां०)

बहुत शास्त्र और गुरु की उपासना में भंवरे की भाँति सारवस्तु का ग्रहण करना चाहिए।

एकः प्रसूयते विप्रा एक एव प्रलीयते॥
असहायाः पिता माता तथा भ्राता सुता गुरुः॥
[ब्रह्म०]

जीव एक ही उत्पन्न होता है एक ही मरता है। परलोक में माता पिता पुत्र भाई और गुरु कोई भी सहायक नहीं होता। परन्तु गुरुडम में गुरु ही मोक्षदाता समझा जाता है, यम नियमादि साधनों को नहीं।

(६) वैदिक धर्म में आत्मा और परमात्मा का सत्य ज्ञान आत्मा में व्यापक निराकार ब्रह्म को बतला, अष्टाङ्ग योग द्वारा आत्मा में ही साक्षात्कार से मोक्ष का उपदेश है। परन्तु गुरुडम में कानों के भीतर रक्त संचार से होने वाले शब्द अथवा और कोई ढोंग रच कर उसे ही सहज में ईश्वर साक्षात्कार अथवा ब्रह्मधाम कह कर शिष्यों को ठगा जाता है।

गुरुडम के अज्ञान से मनुष्य यथार्थ साधनों को न जान कर और न करके केवल गुरुधारण से ही मोक्ष मान कर वास्तविक मोक्ष से ऐसे ही वंचित रह जाते हैं जैसे कि सुवर्ण की पहिचान न रखने वाले स्त्री पुरुष ठगों के रोल्ड गोल्ड के आभूषण को सुवर्ण समझ कर अपना धन उनके अर्पण कर देते हैं। ऐसे लोगों को मोक्ष तो क्या नरक ही भोगना पड़ता है। तुलसीदास जी ने भी कहा है—

गुरु शिष्य अन्ध बधिर कर लेखा।
एक न सुने एक न देखा॥
हरें शिष्य धन शोक न हरहीं।
ते गुरु घोर नरक में पड़हीं॥

इसी कारण मैंने भी कहा—

गुरु बन गति नहीं॥

अर्थात् ऐसे गुरु बनने वाले और उनके चेले यथार्थ साधनरहित होने से कभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

[शेष पृष्ठ २ का]

क्रम अवरुद्ध हुआ उसी दिन यह यज्ञ समाप्त हो जायगा। यह क्रम संचालित उसी प्रभु के द्वारा हो रहा है, वही इस यज्ञ में निरन्तर आहुतियाँ डाल रहा है। इसीलिए वेद उसे होता कहता है।

(रत्नधातमम्) रत्नों का धारण करने वाला है। संसार में जितने भी रत्न (बहुमूल्य पदार्थ) हैं वह सब उसी प्रभु ने धारण किये हुए हैं। अब भी धारण कर रहा है, सृष्टि से पहले भी धारण कर रहा था। समस्त बहुमूल्य पदार्थ उसी के उदरस्थ तो थे, उसी के गर्भ में तो थे। वह हिरण्यगर्भ ही इन हिरण्यमय पदार्थों को धारण किये हुए था। भौतिक पदार्थ ही नहीं समस्त पदार्थ विद्या भी, सारा ज्ञानविज्ञान भी उसी प्रभु के पास था। उसी प्रभु से तो संसार को यह ज्ञानविज्ञान मिला है। अतः वह प्रभु समस्त ज्ञान-विज्ञान आदि तथा मूल्यवान् हिरण्यमय पदार्थरूपी रत्नों को धारण करने वाला 'रत्नधातमम्' है।

आत्मकल्याण चाहने वाले समस्त जनों को चाहिये कि वह उस प्रकाशस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप प्रभु की स्तुति करें, वही दिव्यस्वरूप इस संसार यज्ञ का पुरोहित है, वह ऋषित्व धारण किये हुए है, ऋषि है। होता आहुति प्रदाता और रत्नों का धारण करने वाला है।

"प्रभु के मतवाले को"

श्री रचयिता—सहदेव सक्सैना "पद्म"

हो नाथ कृपा जिस पर तेरी,
दे दे बल बेबल वाले को।
भरते झोली क्या देर लगे,
दे दे ज़र बेज़र वाले को।
राजा को रंक करे पल में,
धनहीन करे धन वाले को।
संसार में खटका कहीं नहीं,
हे नाथ! तेरे मतवाले को॥

विषय-लोलुपता

❀ श्री नत्थन लाल आर्य, हरिद्वार

महात्मा शेख सादी ने एक सुन्दर शेर कहा है—

खुर्दन बराय ज़ीस्तन व ज़िक्र कर्दनस्त ।
तो मौतकिद कि ज़ीस्तन अज़ बहरे खुर्दनस्त ।।

अर्थात् खाना जीने के लिये तथा प्रभु गुणगान करने के लिये है किन्तु तू ऐसा मानता है कि जीना खाने के लिये ही है।

सचमुच हम में से अधिक नहीं तो ९० प्रतिशत तो ऐसा समझे बैठे हैं कि यह जीवन हमें खाने पीने तथा मौज उड़ाने के लिए ही मिला है।

बाबर न ऐश कोश कि आलम दोबारा नेस्त ।

बाबर ने कहा है कि आनन्द कर मौज लूट फिर इस दुनिया में थोड़े ही आना है। हमारे यहाँ भी चारवाक का मत है—

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।

अर्थात् जब तक जियो सुख से जियो ऋण लेकर भी घी पियो। मरने पर यह शरीर तो भस्म हो जायगा फिर आना कैसा !

शेख-सादी के ऊपर वाले शेर में खुर्दन का मतलब केवल खाना नहीं है वरन इन्द्रियों का विषय है—विषय लोलुपता है। क्या हमें यह सुन्दर मनुष्य-जन्म विषय-भोगों के लिए मिला है ? विषय-भोग तो पशुओं को भी प्राप्त है तब हम में और पशुओं में क्या अन्तर है ?

विषय-भोग तो जीवित रहने के लिए साधन मात्र हैं। खाना, पीना, देखना, सुनना जीवित रहने के लिए सभी आवश्यक हैं पर ये जीवन का उद्देश्य नहीं हैं।

जीवन का उद्देश्य क्या है ? भगवद् भक्ति—ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना तथा उपासना, हर समय प्रभु के गुणों का गान।

विषयों से कभी तृप्ति नहीं होती

विषय भोगों से विषय कामना और अधिक २ बढ़ती जाती है। उनकी प्राप्ति के लिए मनुष्य अर्थ उपार्जन करता है और रात दिन खप २ कर मरता है। धनोपार्जन में वह धर्माधर्म का भी विचार नहीं करता जैसा कि गीता में लिखा है—

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।१२।।
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्मदिदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।१३।।
(गी० अ० १६)

अर्थ—सैकड़ों आशापाशों में बंधे हुए, काम-क्रोधपरायण मनुष्य विषय भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादि संचय करने की चेष्टा करते हैं ।। १२ ।।

मैंने आज यह पा लिया, कल उस मनोरथ को सिद्ध करूंगा; यह धन मेरे पास है और फिर वह भी मेरा हो जायेगा ।। १३ ।।

धर्मपूर्वक अर्थ प्राप्त किया जाय तो बुराई नहीं, किन्तु कामलोलुप मनुष्य तो अन्याय से अर्थ इकट्ठा करता है, चोरी से, डाके से, बेईमानी से।

पश्चिम का दृष्टिकोण है भोगों को बढ़ाओ। हमारा दृष्टिकोण इस के विरुद्ध आवश्यकताओं को घटाना है। सुख आवश्यकताओं के घटाने में है, बढ़ाने में नहीं। आजकल बड़े २ युद्धों का कारण यह विषय-लोलुपता ही है।

वेद भोग भोगने से मना नहीं करता किन्तु वेद कहता है भोगों में फँसो मत "तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधाः कस्यस्विद्धनम् ।" भोगों को त्याग भाव से भोगो, बहुत अधिक भोगने का लालच मत करो, धन किस का है ?

मक्खी बैठी शहद में, लिये पंख लिपटाय ।
हाथ मले और सिर धुने लालच बुरी बलाय ॥

मनुष्यों से पशु अच्छे हैं क्योंकि वे विषयों में फँसते नहीं। भोजन चाहे कितना ही स्वादिष्ट हो पर कुत्ता भूख से अधिक एक लुकमा भी नहीं खायेगा। पशुओं का भोजन कुदरती और सादा होता है, घास पात आदि। किन्तु, मनुष्य स्वाद के लिए क्या २ आडम्बर रचता है, इसीलिए अनेक रोगों में ग्रसित हो जाता है। मनुष्य अखाद्य पदार्थ (मांसादि) को भी खा जाता है और अपेय (शराबादि) को भी पी जाता है, पशु ऐसा नहीं करते।

खुरदन बराये ज़ीस्तन

परमात्मा ने इन्द्रियाँ तथा उन के भोग जीवित रहने के लिए बनाये हैं, बिना भोगों के हम जीवित नहीं रह सकते। कुछ लोग समझते हैं कि इन्द्रियां हमें पाप में फंसाती हैं इसलिए इन्हें नष्ट कर देना ही श्रेष्ठ है। कहानी है कि 'एक महात्मा भिक्षा मांगने किसी गृहस्थी के द्वार पर गये। एक नौजवान देवी भिक्षा देने को आई तो उसकी सुन्दरता को देखकर महात्मा के मन में विकार पैदा हुआ। उसने देवी से कहा देवी मुझे एक सूवा चाहिये। देवी ने सूवा ला दिया तो महात्मा ने उस से अपनी दोनों आंखें फोड़ लीं क्योंकि वे उसे पाप की तरफ ले जाना चाहती थीं।

सोचना यह है कि कसूर इन्द्रियों का है वा मन का, क्या मन को भी तुम इसी तरह नष्ट कर सकते हो? दूसरे क्या समस्त इन्द्रियों को नष्ट करके तुम जीवित भी रह सकते हो?

तब क्या किया जाय?

इस का इलाज उपनिषद् बताती है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँ स्तेषु गोचरान् ।
आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥
(कठ०)

अर्थ—आत्मा को रथी (रथ का स्वामी) जानो और शरीर को रथ। बुद्धि को रथवान (रथ चलाने वाला) और मन को लगाम जानो। इन्द्रियां इस शरीर रूपी रथ को चलाने वाले घोड़े और विषय उनके मार्ग हैं। बुद्धिमान् लोग इन्द्रियों और मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं। अस्थिर मन वाले अज्ञानी पुरुष के वश में इन्द्रियां नहीं रहतीं जिस तरह दुष्ट घोड़े सारथी के वश में नहीं रहते।

भाव यह निकला कि मन रूपी बागडोरों को बुद्धि रूपी सारथी खूब खींचकर रक्खे तो इन्द्रियां रूपी घोड़े वश में रह सकते हैं, अन्यथा नहीं। पर यदि उन घोड़ों को तुम मार के डाल दोगे तो फिर रथ को कौन चलायेगा। अत. मन को वश में करने की आवश्यकता है, इन्द्रियों को नष्ट करने की नहीं।

नादिरशाह ने जब देहली जीत ली तो मुहम्मद शाह रंगीले एक दिन उन्हें हाथी पर बिठा कर देहली की सैर कराने को चले। नादिरशाह ने हाथीवान को कहा "लगामश मरा बिदह" उसकी लगाम मेरे को दे। हाथीवान ने उत्तर दिया "जहाँ पनाह फील लगाम नदारद" हजूर हाथी को लगाम नहीं होती। नादिर ने तत्काल हाथी को बिठाया और नीचे उतर गया। ठीक है जिस की लगाम अपने काबू में नहीं उसका क्या भरोसा है कहां ले जाये।

ज़ीस्तन बराय ज़क्रि करदनस्त

अर्थात् जीना ईश्वर भक्ति के लिए है। भगवान् की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने के लिए है।

स्तुति ईश्वर के गुणों का गान करना है, प्रार्थना उन गुणों को प्राप्त करके अपने जीवन में घटाने का प्रयत्न है और उपासना तो बस उस आनन्द-स्वरूप को प्राप्त करके आनन्दसागर में गोते लगाना है। यही जीवन का उद्देश्य है।

स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना के कुछ मन्त्र अर्थ सहित नीचे दिये जाते हैं—

अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मा गुहायां निहितो ऽस्य जन्तोः। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥

अर्थ—वह छोटे से छोटा (अत्यन्त सूक्ष्म) और महान् से भी महान् परमात्मा इस प्राणी के हृदय में विराजमान है। उस कर्म रहित ईश्वर को शोक-रहित मनुष्य भगवान् की कृपा से ही देखता है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

अर्थ—वह विना पाँवों के चलता और विना हाथ ही ग्रहण करता है। आँखों के विना ही देखता और कानों के विना ही सुनता है। उसके मन नहीं है पर वह विना मन के मनन करता है उसे महा पुरुष कहते हैं।

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः, क्षीणैः क्लेशैर्जन्म मृत्युप्रहाणिः। तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे, विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥

अर्थ—उस देव को जानकर सारे बन्धन टूट जाते हैं। सब क्लेश क्षीण होकर जन्म और मृत्यु से भी प्राणी छूट जाता है। उसका ध्यान करने से शरीर छूटने पर तीसरी अवस्था (१) जन्म (२) मरण (३) मुक्ति को जीव प्राप्त होकर सर्व ऐश्वर्य वाला और आप्त काम हो जाता है।

वेद भी कहता है

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ (यजु०)

अर्थ—मैं उस महान् पुरुष को जानता हूँ जो प्रकाश स्वरूप और अज्ञानादि अन्धकार से परे है। उसी को प्राप्त होकर जीव जन्म मृत्यु से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। मुक्ति प्राप्ति का और कोई भी साधन विद्यमान नहीं है।

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

[डा० देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री]

अष्टाध्यायी के सूत्रों की हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए उपयोगी व्याख्या। आरम्भ में कई हिन्दी व्याख्यान अष्टाध्यायी को पढ़ने आदि के सम्बन्ध में निर्देश रूप में हैं। आज ही मंगा कर संस्कृत के विद्वान् बनें। मूल्य ८)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ श्री पं० श्यामसुन्दर जी स्नातक—आयुर्वेदालङ्कार, [बी. आई. एम. एस.] से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कालोनी. सोनीपत।

२—श्री श्याम लाल जी कपूर, पञ्जाब नेशनल बैङ्क, लोधी रोड, नई दिल्ली।

३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपूर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पंजाब प्रतिनिधि सभा ३०३ रानीबाग शकूरबस्ती दिल्ली

आर्यसमाज का व्यापक रूप

❀ श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, नई दिल्ली

"आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्य के अनुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा; क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जनें मिल कर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्य-समाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।" ये हैं वे शब्द, जो आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज में स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान की कमी बताते हुए लिखे हैं। इनसे उस भावना का भी पता चलता है' जिससे प्रेरित होकर उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। उनके लिए "आर्य" शब्द जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय का सूचक नहीं था। उसमें किसी भी प्रकार की संकीर्णता या असहिष्णुता नहीं थी। उनकी भावना के अनुसार "आर्य" शब्द आर्यावर्त्त के निवासियों का सूचक है, जिसमें विभिन्न जातियों, धर्मों तथा सम्प्रदायों के लोगों का समावेश हो जाता है। वे "आर्य" शब्द को गुण-वाचक मानते थे।

अपने देश को वे आर्यावर्त्त इसलिए कहते थे कि "यह आर्यावर्त्त देश देवों अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है।" "प्रथम इस देश का क्या नाम था और इसमें कौन बसते थे ?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है कि "इसके पूर्व इस देश का नाम कुछ भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सीधे इसी देश में आकर बसे थे।" उन्होंने इस विचार का बड़ी तीव्रता से प्रतिवाद किया है कि यहाँ के मूल निवासियों को पराजित करके आर्यों ने इस पर अधिकार किया। यहाँ के मूल निवासियों को असुर और आक्रमणकारी आर्यों को देवता बता कर देवासुर संग्राम की जो कल्पना की गई है उसको उन्होंने सर्वथा झूठ कहा है। वे लिखते हैं कि किसी भी संस्कृतग्रंथ वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहाँ के जंगलियों को लड़ कर, जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है।" आर्य शब्द का अर्थ उन्होंने इन शब्दों में किया है कि 'आर्य नाम धार्मिक, विद्वान् आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है"। अपने इस अर्थ के समर्थन में वेद का प्रमाण देते हुए उन्होंने बड़े आग्रह के साथ यह लिखा है कि "जब वेद ऐसा कहता है तब विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते।"

पश्चिम के आक्रान्ताओं ने एशिया तथा अफ्रीका के देशों पर आधिपत्य करके जब उनमें अपने उपनिवेश बसाये तब उन्होंने अपने फौलादी पंजे को मजबूत करने के लिए जिन साधनों से काम लिया उनमें मुख्य यह था कि उनके स्वाभिमान को जड़ मूल से नष्ट कर दिया जाय। अपने अतीत गौरव की अनुभूति पर ही यह स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान निर्भर होता है। इसीलिए उन्होंने अतीत की अनुभूति को मिटाने के लिए उनके धर्म, संस्कृति, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, इतिहास तथा सामाजिक व्यवस्था आदि को बुरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया। भारत में इस विचार को मूर्त्त रूप देने वाले थे लार्ड मेकाले तथा उनके समकालीन अंग्रेज

राजनीतिज्ञ और उनके इशारों पर नाचने वाले ईसाई पादरी। किसी पाश्चात्य विद्वान् ने यह बिल्कुल ठीक कहा है कि जिस जाति पर अपनी हुकूमत स्थायी बनानी हो, सबसे पहले उसका इतिहास नष्ट-भ्रष्ट किया जाना चाहिए, जिससे वह अपने गौरवशाली अतीत को भूल जाय। हमारे देश में ऐसा ही किया गया। इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ किया स्वामी दयानन्द और स्वामी-विवेकानन्द सरीखे उन सन्त महापुरुषों ने, जिन्होंने अपने देश के गर्वीले और गौरवशाली अतीत की देशवासियों को याद दिलाई। उन्होंने उनकी दीनता व हीनता की समस्त भावनाओं को दूर करते हुए उनमें स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान का संचार किया। स्वामी दयानन्द ने स्वदेश में यह काम जिस उग्रता से किया, उससे भी कहीं अधिक उग्र रूप में स्वामी विवेकानन्द ने अमरीका तथा यूरोप के विभिन्न देशों में जाकर किया। स्वामी विवेकानन्द ने ईसाई पादरियों के मायाजाल को छिन्न-भिन्न करते हुए अपने देश की प्राचीनता, महानता, उत्कृष्टता श्रेष्ठता के सम्बन्ध में पश्चिम को चुनौती दी और स्वामी दयानन्द ने स्वदेश में वैसा ही किया। स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान से प्रेरित होकर ही स्वामी दयानन्द ने ये भाव प्रकट किये कि "आर्यावर्त्त के बाहर चारों ओर जो रहते हैं उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है" और जब वे आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे तब यहाँ के राजा महाराजा उन देशों में आर्यों के सहायक होते थे। दक्षिण में भी राम रावण युद्ध आर्यों और राक्षसों में ही हुआ था। "जो आर्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहाते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। नैर्ऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त्त देश से भिन्न में रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस था।" "इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पाण्डव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य था।" अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी; किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है।

स्वामी दयानन्द ने ये विचार लगभग सन्-१८८२ ईसवी (विक्रमी सं० १९३९) में तब प्रकट किए थे जब उदयपुर में बैठकर अपना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थ-प्रकाश" लिखा था। ये विचार उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रीय तथा स्वदेश भक्ति के द्योतक हैं। यह भी असंदिग्ध रूप में स्पष्ट है कि "आर्य" शब्द उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रीयता और स्वदेश-भक्ति का प्रतीक है। वे इसका प्रयोग अपने देश के निवासियों के लिए समान रूप से करते थे। अपने से भिन्न लोगों को वे दस्यु, म्लेच्छ, असुर तथा राक्षस मानते थे। आज के मानववादी को उनके ये विचार अटपटे से मालूम हो सकते हैं; परन्तु उनमें स्वामी जी का स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान असंदिग्ध रूप में प्रकट हो जाता है। उन्होंने आर्य शब्द का प्रयोग यत्र तत्र इसी भावना से किया है।

आर्य, आर्यावर्त्त, आर्य धर्म, आर्यभाषा तथा आर्य-समाज आदि में प्रयुक्त आर्य शब्द उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना तथा देशभक्ति का ही द्योतक है। आर्यावर्त्त का अर्थ उन्होंने श्रेष्ठ व देव लोगों द्वारा बसाया हुआ देश किया है। इसी प्रकार आर्य धर्म का अर्थ हुआ सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र धर्म और आर्य-भाषा का अर्थ हुआ आर्यावर्त्त के निवासियों की राष्ट्र भाषा। इसी प्रकार आर्यसमाज का अर्थ हुआ आर्यावर्त्त-निवासियों का राष्ट्रीय संगठन। इसमें सन्देह नहीं कि जिन भावनाओं से प्रेरित हो कर आर्यसमाज की स्थापना के बाद "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" के नाम से देश की प्रमुख राष्ट्रीय संस्था कायम की गई उन्हीं से प्रेरित होकर स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। "आर्य" शब्द का अर्थ है "इण्डियन नेशन" और "समाज" का अर्थ है "कांग्रेस"। दोनों नाम एक ही अर्थ और

भाव के सूचक हैं। आर्यसमाज के सम्बन्ध में स्वामी जी के जो शब्द इस लेख के प्रारम्भ में उद्धृत किए गए हैं उनसे भी हमारे इस विचार का समर्थन होता है।

आर्यसमाज के प्रारम्भिक रूप से भी हमारे इस विचार की ही पुष्टि होती है। तब आर्यसमाज के अधिवेशनों में ईसाई और मुसलमान भी बहुत बड़ी संख्या में बिना किसी संकोच अथवा भेदभाव के उपस्थित हुआ करते थे। स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों में भी वे बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। अनेक अवसरों पर वे उनका सभापतित्व भी किया करते थे। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब वे लाहौर में बच्छोवाली आर्यसमाज में प्रविष्ट होने गए तब उनके साप्ताहिक अधिवेशन में मरासी मुसलमान धार्मिक भजन गाया करते थे। इसी प्रकार पुराने आर्यसमाजी स्वर्गीय डा० सुखदेव जी ने भी यह लिखा है कि जब विद्यार्थी जीवन में उन पर आर्यसमाज के संस्कार पड़े तब उनके यहाँ आर्यसमाज में लाहौर से मुसलमान मौलवी भी व्याख्यान देने आया करते थे। वयोवृद्ध पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। यह दुःख का विषय है कि आर्यसमाज का व्यापक राष्ट्रीय रूप कुछ क्षीण पड़ गया और उस की धार्मिकता संकीर्ण साम्प्रदायिकता में परिणत हो गई। आज आर्यसमाज के व्यापक राष्ट्रीय रूप को यदि समझा और स्वीकार किया जा सके तो वह राष्ट्र निर्माण के महत्त्वपूर्ण कार्य में अत्यन्त गौरवशाली भूमिका अदा कर सकती है। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने यह स्वीकार किया है कि स्वतन्त्र भारत के प्रजातन्त्रीय संविधान में अनेक धार्मिक तथा सामाजिक मन्तव्यों का समावेश स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर किया गया है। इस अनुकूलता से लाभ उठाकर आर्यसमाज को राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य पर अपनी छाप लगाने में चूकना नहीं चाहिए। इसी प्रकार अपने तथा राष्ट्र के वर्तमान को गौरवशाली बनाते हुए भविष्य को गर्वीला एवं उज्ज्वल बनाया जा सकता है।

ऋषिवर की स्मृति में

ले०—सत्यभूषण वेदालंकार, एम० ए०

थे देव, न तुम मानव थे॥
शंकर ने हालाहल पी,
देवों का त्राण किया था।
पर एक बार ही विष से,
जग का कल्याण किया था॥
तुमने तो अल्प-समय में,
विष चौदह बार पिया था।
थे चौदह रत्न निकाले,
सत्यार्थ प्रकाश दिया था॥
हैं अमर देव पर तुमने,
मानव को देव बनाया।
उसका पंकिल स्तर से फिर,
उत्थान सहज करवाया॥
थी बद्ध रुढ़ियां टूटीं,
औ भस्मसात् दानव थे,
थे देव, न तुम मानव थे।
तुम निर्भय वक्षःस्थल पर,
निर्मम प्रहार लेते थे।
पाषाण, शूल शोणित से,
अमरत्व-लाभ देते थे॥
कितने ही क्रूर-कुचाली,
टिक सके न तेरे आगे।
ले तर्क विकट प्रत्यंचा,
श्रुति-धनु पर रहे चढ़ाते।
कुछ ऐसी दिव्य छटा थी,
तेरे इस मुख मण्डल पर,
कितने पापी पतितों ने,
देखा अपने को उठकर।
तुम नई क्रान्ति की ज्वाला,
के अद्भुत उन्नायक थे,
थे देव, न तुम मानव थे॥
अति घोर तिमिर छाया था,
पापों ने घेरा डाला।
थे मेघ घिरे संकट के,
पड़ गया आश पर पाला॥
सच्चे शिव को तज पत्थर,
के शिव से नाता जोड़ा।
उन मुंदी हुई पलकों को,
तुमने ही था झकझोरा।
आवरण असत् में आवृत,
कर सत्य तत्त्व अन्वेषण।
युग युग की गतानुगति में,
फिर कर सहसा उद्वेतन॥
थे देव, न तुम मानव थे॥

दीर्घायुष्य-प्राप्ति

* श्री अमरनाथ जी शास्त्री

जब हम दीर्घायुष्य शब्द का उच्चारण करते हैं तो अनायास चार धारणायें बन जाती हैं—१. अकाल मृत्यु का अभाव, २—जीवन पर्यन्त स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट रहना, ३—पूर्णायु भोगना। ४—यथाशक्ति पूर्णायु से अधिक भी आयुष्य लाभ करना। ये धारणायें प्रत्येक प्राणी में जिसमें सोचने की शक्ति है अनादि काल से जागृत होती रही हैं। महर्षियों, सन्तों और महात्माओं ने इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अनेक साधन और अनुभूत योग सर्वसाधारण के ज्ञान के लिए उत्तम ग्रन्थों में गुम्फित किये हैं। ये चारों धारणायें दीर्घायुष्य शब्द का यथार्थ अर्थ हैं। क्रम से नीचे प्रत्येक धारणा का विवेचन करेंगे।

१. अकाल मृत्यु का अभाव—

प्राणिमात्र ने शायद मृत्यु की सूरत कभी नहीं देखी, परन्तु यह कल्पित किन्तु यथार्थ, भय की कटार प्रतिक्षण प्रत्येक की गर्दन पर सवार रहती है। 'मृत्यु' इस शब्द के श्रवण मात्र से प्राणी को जो कष्ट होता है, उसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता। १चक्रवर्ती सम्राट् से लेकर सूक्ष्म कीट तक इसके भय से आतंकित हैं। मृत्युकाल में जो कष्ट और यातनायें जीव को होती हैं, उन्हीं का ध्यान करके शायद वैदिक ऋषि ने भगवान् मृत्युञ्जय शिव से वेद की ऋचाओं में अभय की प्रार्थना करते हुए गद्गद कण्ठ से 'मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्' (ऋ. ७।५६।१२) इन शब्दों का उच्चारण किया। हे भगवन्, जैसे पका हुआ फल आपसे-आप अनायास बेल से पृथक् हो जाता है, वैसे मैं भी अनायास मृत्यु की यातनाओं से छूट जाऊं, किन्तु आपके चरण-कमलों की करुणा दृष्टि से नहीं। यद्यपि गीता दर्शन के अनुसार 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'—जो जन्म लेता है उसका मरना निश्चित है। जो बीज बोया जाता है, उ का काटा जाना निश्चित है। इसलिए मृत्यु कोई अनहोनी बात नहीं, परन्तु यथार्थ भय वा आतंक जीव को अकाल मृत्यु से है। एक खिलती हुई कुसुम की कली को मसला हुआ देखकर किसको क्रोध या अफसोस नहीं होता। इसी असमय की मृत्यु का आतंक कष्ट-प्रद है। मृत्यु अकाल में ही कब क्यों हो जाती है, इस प्रश्न का उत्तर भी हमारे दार्शनिक पूर्वजों ने ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। योगदर्शन के प्रणेता महान् दार्शनिक पतंजलि ने इस प्रश्न का समाधान 'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः' सूत्र में दिया है। इसी सूत्र को बड़ी सरल बोल-चाल की भाषा में गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रस्तुत किया है—'जो जस करे, सो तस फल चाखा'। पतंजलि के मत में जन्म या छोटी-बड़ी आयु तथा न्यूनाधिक सुख दुःख के भोगों की विषमता जीवमात्र के अपने जन्मान्तर में किये हुए भले बुरे कर्मों का फल है। क्योंकि 'सति मूले'—कोई आधार होने पर ही उसका भला-बुरा परिणाम इन विषमताओं का जन्मदाता है। इसलिए 'आयु, भाग्य, धन-सम्पत्ति, विद्या लाभ तथा मृत्यु यह पांच चीजें गर्भ से ही जीव के साथ आती हैं' ।२

इस कथन में एक सार्वभौम तथ्य बताया गया है। अकाल मृत्यु के मूल में जीवमात्र की अक्षम्य दुर्बलतायें छिपी हुई हैं। क्या कारण है एक नन्हा-

---

१ मर्तव्यमिति यद् दुःखं पुरुषस्योपजायते। न शक्यतेऽनुमानेन परेण परिवर्णितुम् ॥ (हितोपदेश)

२ आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पंचैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ (हितोपदेश)

सा सुकुमार बालक कोई दो दिन का, कोई मास का, कोई दो चार या छः मास का या वर्ष दो वर्ष का अकाल मृत्यु का ग्रास हो जाता है। उसने तो कोई पाप नहीं किया, फिर इतना दारुण दण्ड उसे क्यों? इसका उत्तर स्पष्ट है। एक चिकनी और परिष्कृत मिट्टी का बर्तन अधिक स्थायी होगा, अपेक्षा रेतीली मिट्टी से बने हुए बर्तन के।

शास्त्र-मर्यादा के अनुसार पच्चीस वर्ष तक पुरुष तथा १६-१८ वर्ष तक नारी ब्रह्मचर्य-पालन से अपने पुष्ट वीर्य-रज से यदि किसी जीव को जन्म देते हैं, उस जीव की अकाल-मृत्यु का भय बहुत थोड़ा है। 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' (अथर्ववेद ११।७।१९)—ब्रह्मचर्य की शक्ति से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया। ऐसे ब्रह्मचारी माता पिता की सन्तान देवतुल्य होगी, और उन्हें अकाल मृत्यु का आतंक नहीं सता सकता। यदि शास्त्र की मर्यादा की रक्षा-पंक्ति का उल्लंघन होता है तो उनकी वैसी ही दुर्दशा सम्भव है, जैसी माता सीता की लक्ष्मण रेखा के उल्लंघन से हुई। इसीलिए मनुस्मृति के पाँचवें अध्याय के चौथे श्लोक में 'मृत्यु क्यों होती है?' इस प्रश्न के उत्तर में भृगु जी महाराज ने 'आचारस्य च वर्जनात्'—सदाचार के त्याग को प्रमुख स्थान दिया है। जब तक यह परम्परा कायम रही, अकाल मृत्यु का आतंक नहीं सा था, परन्तु आज रक्षा पंक्ति के अभाव में प्राणि-मात्र मृत्यु से संत्रस्त हैं। इसलिए अपने बच्चों को अकाल मृत्यु के संकट से बचाने के लिए माता-पिता का संयमी जीवन होना अत्यन्त आवश्यक है। अपने मनमानी आचरण से किसी बालक को जन्म देकर उसकी दीर्घायु के लिए पीर-पैगम्बर के चरण-धूलि को चाटना, मन्दिरों तथा धर्म स्थानों में घण्टों भगवान् से गद्गद प्रार्थना करना, किसी विशेष मान्यता के तालाब या स्रोत में बालक को स्नान कराना आदि बातें न केवल आत्म-वंचना है, बल्कि भगवान् को भी ठगना है। 'बोए बीज बबूल के आम कहां ते खाये'—कीकर के कांटेदार पेड़ों से रसीले आम कैसे मिल सकते हैं। यह ब्रह्मचर्य जीवन जहां अकालमृत्यु की अनमोल राम बाण औषध है, वहां जीवन भर हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न जीवन का भी मुख्य आधार है। क्योंकि बलवान् धातु से घड़ी हुई कोई भी चीज अधिक टिकने वाली होती है। धातु के तीन अर्थ प्रसिद्ध हैं—१. वीर्य-रज, २. सोना-चाँदी आदि खनिज द्रव्य, ३. व्याकरण की क्रियाओं का मूल आधार धातु। तीनों ही अर्थ विषय, भेद होने पर भी अपने मूल-आधार अर्थ में सम हैं। वीर्य-रज रूपी धातु की परिपक्वता के साथ घड़ा हुआ मानव ओजस्वी और चिरंजीवी होगा। सोने-चांदी और पीतल की धातु से घड़े हुए बर्तन दादा खरीदता है और पोते बर्तते हैं, और एक विद् ज्ञाने (जानना) धातु ने सार्वभौम वैदिक राशि के मूल वेद शब्द को और बृह् धातु ने ब्रह्म शब्द को सृष्टि के आदिकाल से नित्य पदार्थ प्रसिद्ध किया है। भाव यह कि धातु किसी भी अर्थ में चिरायुष्य का प्रथम उपादान है। धातु की रक्षा जीवन-रक्षा यह नारा तथा आचरण ही अकालमृत्यु का संहारक है।

२. हृष्ट-पुष्ट जीवन—

अकालमृत्यु का अभाव ही दूसरे शब्दों में जीवन की परिभाषा है। माता-पिता के संयमयुक्त जीवन से उनकी सन्तान को अकालमृत्यु का आतंक नहीं सताता, केवल इतना ही लाभ नहीं, अपितु उनके संयमित-जीवन से जहां माता-पिता स्वयमेव हृष्ट-पुष्ट एवं जीवन में सुखी रहते हैं, उनके फौलादी वीर्य-रज से उत्पन्न हुई सन्तान भी हृष्ट-पुष्ट तथा फौलाद की तरह गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख आदि द्वन्द्वों के प्रभाव को तुच्छ समझने वाली होगी। ऐसी मजबूत वस्तु को अकाल मृत्यु का भय नहीं। वह भीष्म के समान मृत्युंजय अथवा इच्छामृत्यु होंगे। इन्हीं शुभ भावनाओं से गद्गद होकर वैदिक ऋषि

बोल उठे३—'हे भगवन्, हम जीते-जी अपने कानों से कल्याणमय शब्द ही सुनें, दिव्य-पदार्थ ही अपनी आँखों से देखें सिर्फ आँख-कान की अक्षुण्णता ही नहीं, अपने हृष्ट-पुष्ट सम्पूर्ण अङ्गों के साथ आपका भजन करते हुए वरदान के रूप में दी हुई अपनी सौ वर्ष से अधिक आयु भोगें।' इतना ही पर्याप्त नहीं है। 'बुढ़ापा भी हमें जल्द न आवे, सौ साल के नजदीक पहुँच कर, जब कि हमारे पुत्र पिता बन चुके हों, और हमारा कार्यक्षेत्र तथा उत्तरदायित्व वहन करने में समर्थ हो चुके हों, हमें बुढ़ापा आवे, इसके पूर्व जीवन-प्रवाह के मध्य में ही हमारी आयु नष्ट न हो।' वैदिक ऋषि इतने से ही सन्तुष्ट नहीं, भगवान् को दृष्टान्त देकर स्मरण कराते हैं, 'प्रभो,४ यह मेरी आयुष्य-प्रार्थना अनहोनी नहीं है। जो त्र्यायुष तीन आयुयें (बचपन, जवानी, बुढ़ापे की पूर्णता) आपने जमदग्नि ऋषि को तथा कश्यप ऋषि को प्रदान कीं, और जो आयु की पूर्णता देवताओं के लिए आपने सुरक्षित की हुई है, वही मुझे प्रदान कीजिए, (इससे कम में सन्तोष न होगा)। इन उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत सैंकड़ों मन्त्र वेद की ऋचाओं के रूप में हमारे पूर्वजों ने हमें प्रदान किए हैं, हम इस योग्य बनें कि पूर्वजों के इस खजाने से लाभ उठा सकें।

३. पूर्ण आयु—

आयु का प्रमाण मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी वनस्पति पर्यन्त सबका भिन्न-भिन्न है। पूरी आयु भोगने का प्रयत्न तथा भावना प्राणिमात्र में निहित है। हम मानव परस्पर में एक दूसरे की भाषा समझने की क्षमता रखते हैं, इसलिए हम मनुष्य की आयु का परिमाण ही अधिकार-पूर्वक बता सकते हैं, बाकी पशु-पक्षियों का नहीं। तथापि वनस्पति विज्ञान और जीव-विज्ञान के प्राचीन आचार्यों ने यथाशक्ति प्राणिमात्र की आयु का प्रमाण निश्चित करने का प्रयत्न किया है।

५मनुष्य की आयु (पुरुषायुष) एक सौ वर्ष (वेद में पद पद पर 'शतं जीवेम'—सौ साल जीवें की प्रार्थना से प्रसिद्ध है)। वट पीपल आदि वनस्पतियों की एक हजार वर्ष। हाथी और सिंह की आयु भी एक सौ वर्ष। घोड़ों की आयु ३२ वर्ष, व्याघ्र जाति की आयु ६४ वर्ष तथा सांप और कौओं की आयु एक हजार वर्ष। गीदड़ों की सोलह वर्ष, कुत्तों की १२ साल, गौ, भैंस और सूअर की २४ साल, बकरियों की १२ वर्ष, मछलियों की दस हजार वर्ष, कुक्कड़ों (मुर्गों) की ९ साल, हिरणों की २० साल, पक्षियों की दस साल तथा ऊँट और गधे की २४ वर्ष।

मनुष्य की पूर्ण सौ वर्ष की आयु का माध्यम प्रत्यक्ष श्वास-निश्वास की गणना पर निर्भर है। श्वास की रक्षा के साथ आयुष्यवृद्धि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी दिव्य दृष्टि

---

३. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ १।
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ २॥ (ऋग्वेद १, ८९, ८९)

४. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥
(यजुर्वेद ३-६२)

५. शतायुः पुरुषश्चैव वृक्षाणां तु सहस्रकम्। द्वात्रिंशत् तुरगाणां च शतं कुञ्जरसिंहयोः॥
व्याघ्राणां च चतुष्षष्टिः सहस्रं फणिकाकयोः। जम्बुकानां षोडशाब्दं शुनां द्वादशवत्सरम्॥
चतुर्विंशतिरुक्तं गोमहिष्योः सूकरस्य च। अजानां द्वादशं प्रोक्तं मत्स्यानामयुतं तथा॥
कुक्कुटा नव वर्षाणि, खराणां द्वादशद्वयम्॥ चतुर्विंशतिरुष्ट्राणां रासभानां तथैव च।
(योगरत्नाकर)

से इस श्वास-गणना का मिनिट-मिनिट के हिसाब से अनुपात लगाया है। उन्हीं के शब्दों में प्रति मिनट १५ श्वास के हिसाब से प्रत्येक घण्टे में हर एक स्वस्थ मनुष्य १५×६०=९०० (नौ सौ) श्वास लेता है। ९००×२४=२१६०० (इक्कीस हजार छः सौ) श्वास २४ घण्टों (दिन रात) में मनुष्य खर्च करता है। प्रति दिन के इन २१६०० श्वासों के हिसाब से प्रत्येक प्राणी को अपनी पूर्णायु भोगने की स्वतन्त्रता है।

शतपथब्राह्मण के १२वें प्रपाठक में इस भाव का बोधक यह संवाद मिलता है।

प्रश्न—'श्रमादन्यत्र परिवर्तमानस्तिष्ठन्नासीनो यदि वा स्वपन्नपि। अहोरात्राभ्यां पुरुष समेन कतिकृत्वः प्राणिति चाप चानिनीति ॥

उत्तर—शतं शतानि पुरुषः समेनाऽष्टौ शता यन्मितं तद् वदन्ति। अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन, तावत्कृत्वः प्राणिति चाप चानिर्तीति ॥

श्रम (थकावट) का कोई काम किये बिना अनायास भ्रमण करते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए या सोये हुए मनुष्य दिन-रात में मिलाकर कितनी बार प्राण श्वास (अन्दर से बाहर की ओर) तथा अपान=निश्वास (बाहर से अन्दर की ओर) लेता है? इस प्रश्न पर ऋषि ने उत्तर दिया कि १००×१०८=दस हजार आठ सौ दिन में और इतनी ही संख्या रात में मिलाकर जो सर्वयोग बनता है उतनी संख्या में (२१६००) मनुष्य दिन रात में प्राण और अपान लेता है। ऋषि के वचन में 'श्रमाद् अन्यत्र' (=थकावट के बगैर) यह शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं। यथार्थ में आयु के अपने सौ वर्ष के प्रमाण को पूर्णरूप से भोगने की यह कुञ्जी है। क्योंकि २१६०० श्वास एक स्वस्थ सामान्य जीवन के निर्वाह के लिए दिन-रात में मनुष्य को दिये गये हैं। यदि मनुष्य प्रमाद से अथवा अधिक साहसिक कार्यों से अथवा अनुचित विषय-भोग से अपनी नित्य-चर्या में थकावट, चिंता या दुर्बलता का अनुभव करता है, तो दूसरे शब्दों में श्वास की गति अधिक तेज रहने से प्रति मिनट १५ श्वास का नियम तोड़कर वह प्रति मिनट २० श्वास या उससे अधिक भी व्यय करता है। जो पुत्र दो रुपये प्रतिदिन के खर्च के हिसाब से पिता से ६० रुपये मासिक जेब खर्च प्राप्त करके अपनी मूर्खता से तीन रुपये प्रतिदिन खर्च कर डालता है। बीस दिन में उसका मासिक खर्च खत्म हो जाना जरूरी है। उसी प्रकार २१६०० श्वास दिन-रात अर्थात् १५ श्वास प्रतिमिनट के हिसाब से परमपिता से पूर्ण सौ वर्ष की आयु का प्रसाद पाकर भी यदि कोई अपनी मूर्खता से अपने विषय-विलासी जीवन की अधिकता से प्रतिदिन के बीस-बाईस तीस तक श्वास खर्च कर डालता है तो कुदरती तौर पर उस मनुष्य की आयु १०० से घट कर सत्तर और पचास तक रह जायेगी। यदि कोई योग्य पुत्र उसी ६० रुपये जेब खर्च में से प्रतिदिन दो रुपये के हिसाब से खर्च न कर एक ही रुपया खर्च करता है तो एक महीने की जगह उसके दो मास सुख से व्यतीत होंगे। यह तो अपने करने की विद्या है, चाहे ब्रह्मचर्य जीवन से हम १०० के दो सौ वर्ष आयु बना लें, चाहे मूर्खता से १०० के ५० वर्ष बना लें। इसी रहस्य को समझाने के लिये ऋषियों ने सादे जीवन और ऊंचे विचारों पर बल दिया। आज के डाक्टरी विज्ञान ने भी प्रत्येक मनुष्य की श्वास-गति एक मिनट में १७ से २० श्वास तक सिद्ध की है। हमारी दृष्टि में संपन्न और प्रफुल्लित यूरोप वा अमेरिका के जीवन में, इंजील के अनुसार, भले ही एक मिनट में १७-१८ श्वास का अनुपात हो, परन्तु भारत या ऐसे अन्य निर्धन (पुष्टाहार-रहित) देशों में प्रत्येक नागरिक की श्वासगति का अनुपात १९-२० से कम नहीं हो सकता, अतएव हमारे किसी भारतीय तत्त्ववेत्ता की यह धारणा कि 'कलौ षष्टिः परं वयः, (कलियुग में अधिक से अधिक प्रति व्यक्ति ६० वर्ष आयु की औसत है) मिथ्या नहीं हो सकती। इन्होंने तो ६० वर्ष आयु का प्रमाण माना, ६विष्णु

६ पलितोद्भवश्च भविता तथा द्वादशवार्षिकः। नातिजीवति वै कश्चित् कलौ वर्षाणि विंशतिः ॥
(विष्णु पुराण ६, १, ४२)

पुराण (अंश ६ अध्याय १ श्लोक ४२) में तो आयु के प्रमाण का कलियुग में अधिक से अधिक २० वर्ष का अनुपात माना है और वृद्धावस्था का अनुपात १२वें वर्ष में। हो सकता है विष्णु-पुराण की भविष्यवाणी अतिशयोक्तिपूर्ण जंचती हो, किन्तु विषयप्रधान युग में क्षीण और दुर्बल लोगों की आयु की औसत पश्चिमी देशों के विलासी, परन्तु स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट, जीवन की तुलना में कम ही कूती जा सकती है। आयु प्रमाण का यह सामान्य अनुपात है। अपवाद भी हो सकता है। हमारे ही देश में श्री विश्वेश्वरैय्या ने इस युग में भी ऋषिसंमत पूर्ण शतायु का भोग किया है। महर्षि कर्वे तो अब भी, १०५ वर्ष की आयु में भी जीवित हैं। अन्य कई भाग्यवान् नर-नारी अपने देश में तथा विदेश में 'जीवेम शरदः शतम्' के प्रत्यक्ष निदर्शन विद्यमान हैं। इससे सिद्ध है कि आज से पांच हजार वर्ष पूर्व के महाभारत-काल या उपनिषत्काल में जहां मनुष्य की आयु का प्रमाण सौ वर्ष सामान्य था, आज वह सौ वर्ष का अनुपात अपवाद रह गया है, सामान्य नियम नहीं।

४. दीर्घायु के उपाय—

पूर्ण सौ वर्ष आयु की रक्षा के साथ 'भूयश्च शरदः शतात्' (–सौ साल से अधिक भी) (ऋ० ७, ८६, १६) जीवन की कामना करने वाले महापुरुषों के ज्ञान तथा आचरण के लिए दो प्रकार या दो पद्धतियां अपने अनुभव से आचार्यों ने प्रस्तुत की हैं। यथार्थ में यह दोनों मार्ग मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में निर्दिष्ट अकालमृत्यु के परिहार के लिए भृगु जी के वचन की समन्वयात्मक मीमांसा हैं। पहला मार्ग योगदर्शन का है, जिसमें योग (प्राणायाम-श्वास रोक कर—यदि एक मिनट में १५ श्वास का सामान्य नियम है तो श्वास रोक कर प्रति मिनट १० श्वास का व्यय करने) के साधन से अधिक आयु बढ़ाने का नुस्खा बताया गया है। यह सदाचारी ही कर सकता है, इसलिए 'आचारस्य च वर्जनात्, इस दोष का परिहार हो जाता है। इसी आधार पर हमारे पूर्वजों ने सन्ध्या का नियम प्रचलित किया, जिसमें प्राणायाम एक मुख्य आचरण है। इस सन्ध्या के नित्य प्रति आचरण से प्राणायाम में यदि मनुष्य श्वास बचा लेता है तो सौ साल की पूर्ण आयु में दो तीन मास वृद्धि कर सकता है। यह एक आयु बढ़ाने का ढङ्ग है, जिसके द्वारा ऋषियों ने अपनी आयु को बढ़ाया। इसी तथ्य को मनुस्मृति (५-९४) में 'ऋषियो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः,—ऋषि दीर्घसन्ध्या (दीर्घकालिक प्राणायामों) से दीर्घायु प्राप्त करें—इस वचन से प्रस्तुत किया है। दूसरा मार्ग अन्नदोष से सर्वथा मुक्त स्वस्थ एवं रोगरहित शरीर को बनाये रखने का है। यह मार्ग आयुर्वेद शास्त्र के विद्वानों का है। यह 'अन्नदोषाच्च' इस दोष का परिहार है। महर्षि चरक ने आयुर्वेद शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ चरक संहिता का 'दीर्घं जीवतीयं व्याख्यास्यामः' (दीर्घायु होने के साधनों की व्याख्या करेंगे) इसी प्रथम सूत्र से प्रारम्भ किया है। इनकी धारणा के अनुसार एक स्वस्थ तथा नीरोग प्राणी की श्वासगति अधिक उपयुक्त चलती रह सकती है। शरीर में रस रक्त आदि सात धातुओं की परिपक्वता (जिसमें वीर्य की परिपक्वता का मुख्य स्थान है) आन्तरिक श्वास-निश्वास की प्रगति में बाधक न हो कर प्राणायाम आदि में प्रबल सहायक हो सकती है। इसीलिए आयुर्वेद का 'शुक्रायत्तं बलं पुंसां, मलायत्तं च जीवितम्' (मनुष्यों की शक्ति वीर्य की परिपक्वता पर निर्भर है, और जीवन तो मल की यथावत् स्थिति के अधीन है) यह वचन बहुत सीमा तक 'दीर्घजीवतीयं व्याख्यास्यामः' सूत्र की व्याख्या है।

कौन मनुष्य नीरोग एवं स्वस्थ रह कर दीर्घायु प्राप्त कर सकता है, इस विषय पर आयु-

---

७. अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥
(मनु० ५, ४)

वैदिक विद्वानों में एक किंवदन्ती प्रचलित है। एक बार भगवान् धन्वन्तरि जंगल में जड़ी बूटियां खोज रहे थे। एक पक्षी की सामान्य ध्वनि कोरुक् कोरुक् कोरुक् उन्हें सुनाई पड़ी। उन्होंने उस पक्षी की सामान्य ध्वनि का यह अर्थ लगाया कि यह पक्षी मुझ से जानना चाहता है कि 'कोऽरुक्' कौन रोगी नहीं होता' उस पक्षी की ध्वन्नि के प्रथम चरण को प्रश्न बनाकर उन्होंने तीन चरणों में उत्तर दिया।

प्रश्न

कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक्।

उत्तर

हितभुक् मितभुग् अशाकभुक्[८]।
अव्यवायी वामपार्श्वशायी खग
सोऽरुक् सोऽरुक् सोऽरुक् सोऽरुक्॥

हे पक्षी, जो हितभुक् (प्रकृति के अनुकूल भोजन करने वाला) जो मितभुक् (भूख रखकर खाने वाला) और जो अशाकभुक् (हरी शाक-सब्जी का अधिक प्रयोग नहीं करता) और जो अव्यवायी (अधिक विलासी नहीं) जो वामपार्श्वशायी (भोजन करके बायीं तरफ लेटने वाला) है, 'सोऽरुक्' वह कभी बीमार नहीं होता। यह आयुर्वेदिक विज्ञान भी दीर्घायुष्य प्राप्ति में अपना प्रमुख स्थान रखता है। मनुष्य प्रमाद से इन नुस्खों पर आचरण न कर दीर्घायुष्य प्राप्ति के साधनों से वंचित रहें तो रहें, परन्तु यह एक सचाई है, जो लेखबद्ध की गई है। लाभ उठाने वाले सज्जन इस से लाभ भी उठा सकेंगे।

[आर्य्यमित्र से]

—***—

सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास की अति महत्त्वपूर्ण व्याख्या

अष्टोत्तर शतनाम मल्लिका–व्याख्या सहित

लेखक—श्री पण्डित विद्यासागर जी शास्त्री, सं० युधिष्ठिर मीमांसक

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने सत्यार्थ प्रकाशप्रथम से समुल्लास में व्याख्यात ईश्वर के नामों की अत्यन्त प्रामाणिक गवेषणापूर्ण अति विस्तृत व्याख्या की है। यह पुस्तक लेखक के वर्षों के अनुसंधान और कठोर तप का फल है। पुस्तक सीमित संख्या में छापी जा रही है। ३१ जुलाई तक ग्राहक बनने वालों को आधे मूल्य में दी जाएगी। डाक व्यय के लिए १।) रु० साथ में अवश्य भेजें। मूल्य बिना जिल्द ५) सजिल्द ६) होगा।

भारतीय प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, २४ / ३१२ रामगंज; अजमेर।

८. शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगा। (निघण्टु)

महर्षि दयानन्द की राष्ट्ररक्षा के लिए अपील

❀ श्री मित्रसेन आर्य, एल. एस. सी., अलीगढ़

आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का पद संसार के सुधारकों में सबसे ऊंचा है। आज जो भारत में स्वातन्त्र्य सूर्य का उदय हुआ, सारे देश में राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति ने उत्तरोत्तर परिवर्तित होते हुये जो रूप ग्रहण किया उसका श्रीगणेश महर्षि दयानन्द ने ही किया था। बीज रूप में इन सब को उन्होंने विशाल भारतवासियों के हृदय प्रांगण में बिखेरा। स्वामी जी का नाम स्वतन्त्रता के आदि निर्माताओं में आदर के साथ लिया जायगा। जब भारत में कोई भी स्वराज्य का नाम नहीं जानता था उस समय स्वामी जी ने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में भारतवर्ष की परतन्त्रता का कितने दुःखमय शब्दों में चित्र खींचा तथा आठवें समुल्लास में लिखा "अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य, प्रमाद तथा परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र और निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है वह विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक आपत्तियां भोगनी पड़ती हैं। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य है वह सर्वप्रिय उत्तम होता है (अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, दया और न्याय के साथ विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।" यह थी उनकी स्वतन्त्रता के बारे में भावनाएं जब कि यहां विदेशियों का राज्य था। एक स्थान पर लिखा है कि "क्षत्रियों को युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते और जल पीते जाना और दूसरे हाथ से दुश्मन को मारते जाना। अपना विजय ही आचार तथा पराजय अनाचार है। किन्तु मूढता से इन लोगों ने चौका लगाते २ स्वतन्त्रता, आनन्द, राज्य, निष्ठा और पुरुषार्थ सब पर चौका लगा दिया। आपस की फूट से कौरव, पांडव और यादवों का नाश हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस छूटेगा वा आर्यों को सर्व सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबो मारेगा।" इस भांति भारत की दुर्दशा को देखते हुए आनन्दकन्द महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं 'सृष्टि के आरम्भ से महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में हुये थे। अब इनकी सन्तान का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहे हैं।" इस प्रकार के अनेक लेख मिलते हैं।

महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों में राजनीति के उच्चतम सिद्धान्त का और महर्षि की राष्ट्रीयता का परिचय प्राप्त होता है। राष्ट्रीयता और देशभक्ति से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी ऐसी बात नहीं जिस पर महर्षि ने प्रकाश न डाला हो। इतना ही नहीं महर्षि ने बलपूर्वक अनुरोध किया "जो उन्नति चाहो तो आर्य समाज के साथ उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ भी हाथ न लगेगा। क्योंकि हमें और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना और अब भी पालन होता है और आगे भी होगा उसकी उन्नति के लिए तन, मन, धन से सब मिलकर प्रतिज्ञा करें।" इसलिए ऋषि के सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करने के समान आर्यावर्त की उन्नति का साधन दूसरा नहीं हो सकता। यह उनकी देश के नाम अपील है कि आर्यसमाज देश का हितचिन्तक है। यह दूसरी बात है कि आर्यसमाज ने सामूहिक रूप से राजनीति का डंका

[शेष पृष्ठ २२ पर]

फल-त्याग की चार सीढ़ियाँ

❀ प्रो० नित्यानन्द पटेल एम० ए०

मनुस्मृति में कहा है—'यद् यद् हि कुरुते कर्म, तत् तत् कामस्य चेष्टितम्' मनुष्य विभिन्न कर्मों में, किसी हेतु अथवा परिणाम सिद्ध करने के लिए ही प्रवृत्त होता है। मैं यदि अपने बगीचे के पौधों को पानी देता हूँ, तो इसी इच्छा से कि वे यथासमय पुष्पों से भर जाँय और स्थान को सुशोभित करें। इसी प्रकार यदि मैं अपने फलों के वृक्षों में खाद डालता हूँ, तो इसी आशा से कि उनके फल खूब रसीले हों। फल व फूल की इच्छाके बिना वृक्षों को सींचने, खाद डालने, झाड़झंकाड़ उखाड़ने, बाड़ लगाने आदि क्रियाओं में कोई भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। जंगल के बबूल के वृक्षों को कौन सींचने जाता है? यदि कोई सींचने लगे तो उसे पागल ही समझा जायगा।

व्यायामके उद्देश्य से हाथपैर हिलाना तो ठीक है। परन्तु यदि कोई बात करते करते यों ही हाथ पैर हिलाने लगे तो उसे क्या समझा जायगा? तात्पर्य यह कि निरुद्देश्य क्रिया पागलपन ही है।

फलत्याग का अर्थ निरुद्देश्य क्रिया बिल्कुल नहीं है। इतना ही नहीं, फल व परिणाम का पूर्णरूप से विचार करना तथा उस फलको प्राप्त करने के लिए सोचसमझपूर्वक संपूर्ण योजना बनाना भी आवश्यक है। इसके बिना कर्म अस्तव्यस्त और अव्यवस्थित ही रहता है। उसमें वाञ्छित कुशलता, समग्रता और सुगमता आती ही नहीं। महात्मा गांधी जी ने ठीक ही लिखा है :—

फलत्यागका यह अर्थ नहीं है कि परिणाम के सम्बन्ध में लापरवाही रहे। परिणाम और साधन का विचार और उसका ज्ञान अत्यावश्यक है। इतना होने के बाद जो मनुष्य परिणाम की इच्छा किए बिना, साधन में तन्मय रहता है वह फल-त्यागी है। [अनासक्ति योग]

दो बातें अब बिल्कुल स्पष्ट हैं। प्रथम तो यह कि कर्म किसी फल अथवा लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए ही होता है। दूसरी यह कि कर्म में कुशलता और उत्कृष्टता लाने के लिए कर्त्ता को फल का तथा उस फलको सिद्ध करने वाले साधनों के बलाबल का बराबर विचार करना चाहिए। ऐसी अवस्था में फल त्याग का अर्थ क्या? 'मा कर्मफलहेतुर्भूः' 'अमुक फल मिले यह हेतु रखकर कर्म करनेवाला न हो' गीताके इस मुख्य उपदेश का तात्पर्य ही क्या?

एक कर्म के अनेक फल होते हैं। उदाहरणार्थ पुस्तक लेखन के कर्म से लेखक को जीवन-निर्वाहार्थ आवश्यक धन मिल सकता है, उसका नाम हो सकता है, उसे पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त हो सकती है, लेखक का अपना बुद्धि-विकास हो सकता है तथा ज्ञान के अंग विशेष के विस्तार से समाज का कल्याण भी हो सकता है। इन सब फलों के मोटे-रूपसे चार विभाग हो सकते हैं—(क) जीवन-निर्वाह (ख) भोगवृद्धि (ग) आत्मोन्नति तथा (घ) समाज कल्याण। इन चतुर्विध फलोंके अनुसार इच्छाएँ भी मुख्यत्वेन चार प्रकार की हैं—जीवननिर्वाह की इच्छा, भोगवृद्धिकी इच्छा, आत्मोन्नति की इच्छा तथा समाजकल्याण की इच्छा। इन इच्छाओंसे प्रेरित हो हम विविध कर्मों में सामान्यरूप से प्रवृत्त होते हैं।

चार प्रकार के इन फलों में से भोगवृद्धि नामक फल श्रेयार्थी के लिए किसी प्रकार भी इष्ट नहीं है। इसलिए भोगवृद्धि की सब इच्छाओं या विलास-लालसाओं का दमन करनेके लिए सभी धर्मशास्त्र एक स्वर से उपदेश करते हैं। भोगविलास की लालसा का कोई अन्त नहीं। इसे यदि पनपने दिया जाय, तो सत्कर्म के विकास का अवकाश ही नहीं रहता। अथवा यों कहना चाहिए कि भोगेच्छा

बड़े से बड़े सत्कर्म को भी श्रीहीन बना देती है। उदाहरणार्थ दान एक श्रेष्ठतम कर्म है। परन्तु वही दान, यदि भोगवृद्धि के लिए अर्थात् नाम की इच्छा से, प्रतिस्पर्धी को नीचा दिखानेके लिए, अहंकार के पोषण अथवा व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के लिए किया जाय, तो उसका मूल्य कितना रह जाता है ? समाज के लिए वह यत्किंचित् उपयोगी अवश्य होता है, परन्तु दाता की दृष्टि से वह एक सौदा या व्यापार-मात्र ही रह जाता है।

इस प्रकार भोग-लालसा सब सत्कर्मों के सौन्दर्य को, उसी प्रकार विकृत कर देती है जिस प्रकार पंखुड़ियों में छिपा कोई कृमि-कीट पुष्प के सौन्दर्य को। इसलिए भोग-लालसा का त्याग श्रेयार्थी के लिए परम आवश्यक है। कहना यों चाहिये कि **भोग-लालसा का त्याग फल-त्याग की प्रथम मंजिल है।**

अब रहे तीन फल—जीवननिर्वाह, आत्मोन्नति और समाज-कल्याण। इन फलों को तथा इन्हें प्राप्त करने की इच्छाओं को निन्दनीय नहीं कहा जा सकता।

जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक साधन-सामग्री जुटाना प्रत्येक गृहस्थी का कर्तव्य है। गरीबी को 'बर्नार्ड शां' ने गुनाह ही गिना है। हमारे शास्त्रों को भी यह संमत ही है। इस लिए यदि हम जीवन-निर्वाहार्थ कृषि, वाणिज्य-व्यवसाय, पशुपालन आदि विविध उद्योग-धन्धों या नौकरी आदि में प्रवृत्त होते हैं, तो यह कोई पाप नहीं, शरम की बात नहीं, परंतु आवश्यक कर्तव्य का पालन ही है।

स्वाध्याय, मौन, पूजापाठ, जपतप, व्यायाम आदि आत्मोन्नति के कार्य हैं। आत्मोन्नति प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। इसके बिना व्यक्ति समाजकल्याण के लिए भी समर्थ नहीं होता। इसलिए आत्मोन्नति की इच्छा शुभ ही है।

समाज-कल्याण तो परम प्राप्तव्य फल है। संसार की सुखवृद्धि तथा पृथ्वीको स्वर्ग बनाने के लिए समाजकल्याण के कार्यों में सफल योग देना ही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है। दान, अध्यापन, मंदिर-निर्माण, धर्मशाला बनवाना, कुएं खुदवाना, आदि समाज-कल्याण के कार्य, समाज-कल्याण की भावना से ही किये जायँ तो सोने में सुगन्ध ही समझनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि समाज-कल्याण के फल की इच्छा परम शुभ है। गीता ने इस इच्छा को ही **यज्ञार्थ भावना** कहा है। **यज्ञार्थ भावना,** सेवा या लोकोपकार की भावना ही **कर्म को अभिमंत्रित और मोक्षफलदायी बना देती है।**

समाज-कल्याण के कार्यों के समान जीवन-निर्वाह तथा आत्मोन्नति के कार्य भी यज्ञार्थ भावना से अभिमंत्रित तथा दिव्य बनाए जा सकते हैं। जरा दृष्टि का विस्तार अपेक्षित है।

एक शिक्षक, अपना अध्यापन का कार्य, जीवन निर्वाहार्थ—वेतन की प्राप्ति के लिए—कर सकता है। वेतन की प्राप्ति के लिए, अपने कार्य को पूर्ण मनोयोग और उत्साह से करना कुछ बुरा नहीं। परन्तु भावना की संकुचितता से इसमें आवश्यक दिव्यता नहीं है। यदि शिक्षक अपनी कल्पना के पंख फैला सके और पूर्ण सचाई से यह विश्वास कर सके कि वह राष्ट्र के बच्चों के मानसिक विकास और चरित्र-निर्माण के महत्त्वपूर्ण समाजोपयोगी कार्य में संलग्न है, तो उसका कार्य कुछ और ही रूप धारण करने लगता है। जीवन-निर्वाह की संकुचित भावना जितनी पृष्ठभूमि में पड़ती जाती है और समाज-कल्याण या यज्ञार्थ भावना जितनी ही विस्पष्ट व प्रबल होती जाती है, उतना ही शिक्षक का कार्य अभिमंत्रित और दिव्य बनता जाता है। वह अब वेतनभोगी शिक्षक नहीं, परन्तु अपनी दृष्टि को शुद्ध और विशाल बनाकर समाज का सच्चा सेवक बन जाता है। वेतन को सिर्फ वह साध्य न समझे, परन्तु उसे विद्यादान के कार्य-में समर्थ होने का साधन-मात्र समझे। भावना के इस भेद से शिक्षक का कार्य अब यज्ञरूप हो जाता है।

इसी प्रकार स्वाध्याय आदि आत्मोन्नति के कार्यों को करते हुए भी, व्यक्ति यदि यह समझ

सके कि वह समाज-सेवा के लिए आवश्यक पूर्व तैयारी में संलग्न है, तो उसके वह सब कार्य अभिमंत्रित और दिव्य हो जाते हैं।

इस प्रकार जीवन-निर्वाह और आत्मोन्नति के कार्यों को भी, यज्ञार्थं भावना के संस्पर्श से अभिमंत्रित करना अर्थात् उन्हें यज्ञ, पूजा व समाज-सेवा का रूप दे देना, गीता प्रतिपादित फल-त्याग की दूसरी मंजिल है।

समाज-कल्याण की भावना को अपनाते हुए भी व्यक्ति फल की प्रबल इच्छा कर सकता है। उसे अपने कार्य में सफलता मिले, उसके कार्य का अमुक फल अमुक परिमाण में आना ही चाहिए। इस प्रकार इच्छा, आशा व आग्रह वह रख सकता है।

'जिसका पेड़ उसी का फल' इस न्याय से कर्म करने वाला फल का अधिकारी है। इस न्याय से अपने कर्म के फल की इच्छा करना, उसे लेने का आग्रह रखना ठीक भी हो सकता है। परन्तु गीता फल के सब अधिकार, आशा व आग्रह का त्याग करने की सलाह देती है। फल की आशा, उपेक्षा व अधिकार आदि का स्वेच्छा से त्याग फल-त्याग की तीसरी और अन्तिम मंजिल है।

फल दूरस्थ है, कर्म हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इस लिए दृष्टि सम्मुख उपस्थित कर्म ही पर जमानी उचित है। दूरस्थ फल का विचार तो ठीक परन्तु उस पर ही निगाह रखे रखना, ठोकर खाने की स्वयं तैयारी करना है। जिसे धरती पर चलना है, वह अपनी निगाह धरती पर न रखकर, आसमान की ओर ताकता रहे, तो वह अपने हाथ पैर अवश्य तुड़वा कर ही रहेगा।

हम भारतवासियों ने मध्ययुग में इस लोक पर और इस लोक के कर्तव्य पर दृष्टि न रखी। स्वर्ग की ओर हम ताकते रहे और परलोक की चिन्ता में डूबे रहे। परिणामतः हमने ठोकर खाई। हमारा यह लोक भी बिगड़ा और परलोक भी हाथ आया नहीं। दूरस्थ फल के ध्यान और सम्मुख उपस्थित कर्म की उपेक्षा के कारणः हम हजार वर्ष से भी अधिक गुलाम रहे। सब कुछ गंवा बैठे। धन गया, ज्ञान गया, स्वास्थ्य गया, सर्वस्व गया। अज्ञान गरीबी और रोग के हम शिकार हुए।

हमारी शक्ति सीमित है। उसे वर्तमान पर, सम्मुख उपस्थित कर्म पर केन्द्रित करना ही बुद्धिमानी है। भविष्य की व्यर्थ चिन्ता करते रहने से शक्ति क्षीण होती है और हम कायर बनते हैं। फल की आशा और अपेक्षा से कर्म की उपेक्षा होना स्वाभाविक है। इससे फल का समीप आना तो दूर, उलटे वह दूर भागता है। इस प्रकार फल की आशा व अपेक्षा से कुछ लाभ तो है नहीं, नुकसान अवश्य है। इसलिए फल की सब चिन्ता छोड़ अपने कर्तव्य में तन्मय होना ही श्रेयस्कर है।

फल दूरस्थ ही नहीं अनिश्चित भी है। उसका मिलना न मिलना यदि भगवान् पर नहीं तो कम से कम अनेक बाह्य परिस्थितियों पर अवलंबित है। ऐसे अनिश्चित फल की आशा व अपेक्षा मूर्खता ही नहीं, निराशा और दुःख का मूल भी है।

एक विद्यार्थी रात दिन खूब पढ़ता है। इस पढ़ने से उसे ज्ञान प्राप्त होता है, विषय-विशेष में प्रवीणता आती है, उसकी योग्यता बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है, नवीन बात जानने का आनन्द प्राप्त होता है। स्वाध्याय के ये सब सुन्दर फल तो विद्यार्थी को स्वाध्याय की तत्परता के अनुसार आप से आप मिलते जाते हैं। परन्तु यदि वह विद्यार्थी बी० ए० आदिकी परीक्षा में, प्रथम विभाग में भी प्रथम आनेका फल प्राप्त करनेकी आशा भी साथ में करने लगे, तो संभव है पढ़ाई का उसका बहुत सा आनन्द ही उड़ जाये। इसके सिवाय प्रथम विभाग में प्रथम आने का फल, उसके अपने परिश्रम पर ही आश्रित नहीं है। धरती लम्बी-चौड़ी है। दूसरा कोई विद्यार्थी उससे अधिक मेधावी और अधिक परिश्रमी हो सकता है। परीक्षाके समय कितनी ही विपत्तियां भी आ सकती हैं। परीक्षा में प्रश्न, हो सकता है, अपनी आशा के अनुसार न आवें। परीक्षक के दृष्टिकोण में अन्तर होने से, सवालोंके जवाब सही होने पर भी, हो सकता

है, उसे बराबर न जचें। इन सब अनेक कारणों से, अमुक फल की आशा और आग्रह से, बहुत सम्भव यही है कि विद्यार्थी हताश हो और स्वाध्याय के प्रति उसका उत्साह हमेशाके लिए शिथिल व भग्न हो जाय। इस प्रकार अमुक फल की अपेक्षा निराशा का ही कारण है।

उपर्युक्त कारणों ही से गीता ने फल-त्याग की—मुझे अपने अमुक कर्म का अमुक फल अमुक-परिमाण में अवश्य मिलना चाहिए इस प्रकार की इच्छा व आशा के परित्यागकी—समुचित सलाह दी है।

फल की आशा जो छोड़ चुके हैं वे योगी ही जीवन में आनन्द उठाते हैं और निर्भय विचरते हैं। इस प्रसंग में, भर्तृहरि ने आशारूपी भयंकर नदी का जो चित्र अङ्कित किया है वह दर्शनीय है।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला।
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी॥
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी।
तस्याः पारगताः विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥

इस सुदुस्तर, अति गहन और आवर्तविषम नदी में पड़कर कौन सुरक्षित रह सकता है?

महाकवि कालिदास ने इसी स्वर में 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में कहा है—'मनोरथानाम तटप्रपाताः' आशाएँ नदी के किनारों के जलप्रवाह में पड़ने के समान भंगुर हैं।

इसके अतिरिक्त कौनसा फल किसे कब और किस परिमाण में मिलना, विश्व की दृष्टि से कल्याणकर है, यह निश्चित रूपसे वही जानता है, जिसकी यह सृष्टि है, हमारी दृष्टि संकुचित है। हो सकता है जिस फलको पानेका हम अतिशय आग्रह रखें, वह स्वयं हमारे लिए हितकर न हो, अथवा सृष्टि-तंत्रकी दृष्टि से श्रेयस्कर न हो। ऐसी अवस्थामें फल की सब इच्छाओं को भगवान् के हाथ में छोड़कर ही व्यक्ति निश्चित और निर्भय हो सकता है।

फल-त्याग की तीसरी मंजिल पर पहुँचने में, उपरोक्त विचार श्रेयार्थी को शायद सहायरूप हो सकते हैं। असल में अपने हाथ में लिए कर्तव्य के महत्त्व और सौंदर्य को समझना चाहिए। समाजोपयोगी प्रत्येक कर्म महत्त्वपूर्ण और अनन्त सौंदर्य का समुद्र है। इस महत्त्व और सौंदर्य को हम जितना प्रत्यक्ष कर सकें, अपने कर्तव्य के प्रति उतनी ही अधिक प्रीति हम में उत्पन्न हो सकती है। उदाहरणार्थ पहली, दूसरी श्रेणी के बच्चों को पढ़ाना कितना मामूली सा काम है। फिर उसमें कितनी सिरदर्दी है। बच्चे शान्त होकर एक जगह बैठते ही नहीं, उनका मन भी जहां तहाँ दौड़ता फिरता है। परन्तु इसी मामूली से प्रतीत होने वाले कर्मको यदि हम सही दृष्टि से देखें—राष्ट्रको सुदृढ़ बनानेके लिए देश के बालकोंको सुशिक्षा द्वारा प्रारम्भ में ही चरित्र-सम्पन्न बनाना कितना आवश्यक है, यह भली-भांति समझें—तो यही कर्म शिक्षक के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और आनन्दपूर्ण बन सकता है। यदि अपने हाथ में लिए कर्मों को हम इसी प्रकार सही दृष्टि से देख सकें, तो अपने कर्तव्य के प्रति हमारी प्रीति दृढ़ होगी, तन्मयता बढ़ेगी। कर्तव्यके प्रति इस प्रीति और तन्मयता से, फलकी ओर से दृष्टि हटने लगेगी, आसक्ति शिथिल होगी। यही फल-त्याग है। मानव जीवन इसी महान् साधना से सुखी तथा सफल हो सकता है।

[शेष १८ पृष्ठ का]

नहीं बजाया, परन्तु इसमें दो मत नहीं हो सकते कि व्यक्तिगत रूप में कोई भी समाजी ऐसा नहीं होगा जिसने स्वतन्त्रता संग्राम में किसी न किसी प्रकार की सहायता न पहुँचाई हो। बल्कि उसमें ८० प्रतिशत शहीद हुए तथा जेल जाने वाले वीर आर्यसमाजी थे।

आर्यसमाज के प्रारम्भिक आन्दोलन को देखते हुए "इन्डिया अनरेस्ट" के यशस्वी लेखक श्री वकेटाइनशिरोल ने आर्यसमाज की राजनैतिक परिस्थिति को देखते हुए लिखा है "जहां २ आर्यसमाज का जोर है वहाँ पर राजद्रोह प्रबल है।" वीर सावरकर के शब्दों में "आर्यसमाज कांग्रेस की जननी है।"

अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि आज जब देश पर संकट के काले बादल छाए हुए हैं तब किसी न किसी रूप में उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करें।

व्यायाम : योग पद्धति से

❀ प्रोफेसर बलदेव प्रसाद आर्य, सागर ।

आदर्श शिक्षण के द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास होना चाहिये। तभी वे सफल नागरिक बनकर स्वतंत्रता के अरुणोदय में राष्ट्र का अभ्युदय करने में समर्थ हो सकेंगे। आधुनिक शिक्षण प्रणाली में विद्यार्थियों को ज्ञान विज्ञान की समुचित शिक्षा प्रदान की जाती है और उनके शरीर को शक्तिमान और सुडौल बनाने के लिए प्रायः योरोपीय विधि से ड्रिल या खेल आदि की व्यवस्था की जाती है। इनके अतिरिक्त प्रायः शिक्षण संस्थाओं में अन्य विधियों से व्यक्तित्व का विकास करने की कोई योजना नहीं रखी गई है। परिणामस्वरूप स्नातकों के व्यक्तित्व का विकास अधूरा ही रह जाता है। स्पष्ट ही उनके चरित्र का निर्माण नहीं हो पाता है। जब तक स्नातक के चरित्र का निर्माण नहीं होता, वह राष्ट्र की अभ्युदयात्मक योजनाओं के लिए समर्थ सहयोगी नहीं बन सकता।

भारत में प्राचीनकाल से ही विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण का ध्यान रखा जाता रहा है। इसके लिए योग के प्रथम दो अंग यम और नियम अपेक्षित रहे हैं। यम के द्वारा विद्यार्थी में अहिंसा सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (अन्य पुरुष की वस्तु न ग्रहण करना) की प्रतिष्ठा हो जाती थी और नियम के द्वारा शौच (चित्त और शरीर की शुद्धि) संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रणिधान का अभ्यास हो जाता था। कल्पना करें, यम और नियम की साधना कर लेने वाले स्नातक का व्यक्तित्व कितना ऊँचा है। क्या आप नहीं चाहते कि स्वयं आप अथवा देश के सभी नर-नारी यम और नियम से समन्वित होवें ? यम और नियम योग की आधार शिला हैं। योग में यम नियम के पश्चात् आसन का स्थान है। आसन के द्वारा शरीर की वह अवस्था उत्पन्न की जाती है जो चित्त की एकाग्रता के लिए सर्वोत्तम है। इन आसनों से शरीर के अंग प्रत्यंग में स्फूर्ति आ जाती है और साथ ही शरीर के प्रत्येक अवयव के असाध्य और दुःसाध्य रोग दूर हो जाते हैं। कुछ आसनों के लाभ इस प्रकार हैं—

स्वस्तिकासन : रक्त शुद्धि।

पश्चिमोत्तानासन : पेट के रोगों का दूर होना तथा शरीर का मोटापन कम होना।

पद्मासन : हृदय और फेफड़े की दुर्बलता दूर होना।

उत्थित द्विपादासन : नेत्र ज्योति को बढ़ाना।

प्राणायाम श्वास की विविध प्रक्रियायें हैं। शरीर के प्रत्येक भाग में प्राण (वायु) की गति होती है; जिससे शरीर के सभी कार्य सुचारु रूप से सम्पादित होते हैं। इन्हीं प्राणों की विशेष प्रक्रियाओं को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के द्वारा शरीर में अनुपम और अद्भुत शक्ति का प्रादुर्भाव होता है और इनके बल पर अलौकिक कार्य किये जा सकते हैं। यथा हाथी को बांधने योग्य मोटी लोहे की सांकल तोड़ना। यह तो प्रदर्शन की दिशा में हुआ। प्राणायाम से क्षय, दमा आदि फेफड़े के रोग दूर होते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है, शरीर की समस्त नाड़ियां शुद्ध होती हैं और बुद्धि प्रांजल हो जाती है।

योग के उपर्युक्त अंगों का अभ्यास सर्व साधारण के लिए है। इतना अभ्यास कर लेने पर प्रत्यक्ष ही नागरिक का व्यक्तित्व उदात्त होकर रहेगा। इसके आगे प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि योग के अधिक सूक्ष्म अंग हैं, जिन का अभ्यास व्यक्तित्व के सर्वोच्च विकास के लिए किया जाना चाहिए।

शंका समाधान

❀ शंकाकर्ता श्री ए० एस० वरदराजन

❀ समाधान सम्पादक की लेखनी द्वारा

शंका—सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में महर्षि लिखते हैं—

"प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे, पश्चात् धायी पिलाया करे।"

इसके जो कारण स्वामी जी ने दिये हैं ठीक ही हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या धायी निर्बल न होगी ? और भारतीय माताएं यह धारणा बना चुकी हैं कि माता का दूध सर्वोत्कृष्ट है और कोई कोई तीन वर्ष तक पिलाती हैं। आप अपना समाधान लिखें।

समाधानः—धायी निर्बल नहीं होगी। स्वामी जी ने उपर्युक्त पंक्ति के आगे ही लिखा है "परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता पिता करायें।" चरक और सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थों में भी ऐसा ही विधान है। धायी इस कार्य में अभ्यस्त हो जाती है अतः निर्बल नहीं होती। एक धायी ६६।८, ८ बच्चों को पाल लेती हैं ऐसा भी देखा गया है।

जो माताएं यह धारणा बना चुकी हैं कि माता का दूध सर्वोत्कृष्ट है वे अपना दूध पिला सकती हैं। महर्षि का यह आग्रह कदापि नहीं है कि धायी ही पिलावे। महर्षि ने इसी प्रकरण में लिखा है "और जहां धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि माता अपना दूध भी पिला सकती है।

शंकाः—भूरे नेत्र वाली, बहुत रोम वाली और अधिक बलवाली कन्या से क्यों विवाह न करना चाहिये ? फिर उनका निर्वाह कैसे होगा ? इस में क्या रहस्य है कि महर्षि इन कन्याओं से विवाह न करने को लिखते हैं। कृपया बतावें।

समाधानः—भूरे नेत्र वाले पुरुष और स्त्रियां प्रायः विश्वास योग्य नहीं होते। मित्र के साथ भी विश्वासघात कर बैठते हैं। बहुत रोम वाली स्त्री आलिंगन में प्रिय नहीं लगती तथा अधिक बल वाली कन्या के साथ विवाह करने से पुरुष स्त्री से सदा दबा रहेगा साथ ही अधिकांश कन्याएं ही उत्पन्न होंगी। इन्हीं कारणों से इनके साथ विवाह का निषेध किया है। जब उत्तम कन्या मिल सकती है तो इनके साथ विवाह क्यों करें। वैसे इस प्रकार की कन्याएं भी अविवाहित नहीं रहेंगी। गुण कर्म स्वाभावानुसार भूरे नेत्र वाली कन्या का विवाह भूरे नेत्र वाले पुरुष के साथ, बहुत रोम वाली का विवाह बहुत रोम वाले पुरुष के साथ और अधिक बल वाली कन्या का विवाह अधिक बल वाले पुरुष के साथ हो जायेगा।

इस प्रकार की कन्याओं के साथ विवाह का अन्य स्मृतियों में भी निषेध किया है—

न हीनाङ्गीं नाधिकाङ्गीं तथैव च वयोधिकाम्।
नोपेयाद् गुर्विणीं नारीं दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥
(विष्णु स्मृति अध्याय ६९)

अर्थात् दीर्घायु चाहने वाले मनुष्य को अधिक अंग वाली, कम अङ्ग वाली, अधिक अवस्था वाली और गर्भिणी स्त्री से विवाह न करना चाहिये।

अमृत-कण

जीवन दो चरम बिन्दुओं पर टिका है
—दो विपरीत चरम बिन्दु, एक सुख का एक दुःख का। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र

जीवन की लता में सौभाग्य के फूल के साथ-साथ दुर्भाग्य के कांटे भी होते हैं।
विद्याभूषण श्रीरश्मि

जवानी में सहन शीलता कम होती है।
(संकलित)

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थ प्रकाश २)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥)
संस्कारविधि १।)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४॥)
(२० पुस्तकों का संग्रह)
बाल शिक्षक ।=)
गृहस्थाश्रम ॥=)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

प्रभुदर्शन २) ५०
तत्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १) ५०
मानव जीवन गाथा १)
भक्त और भगवान १)
उपनिषदों का सन्देश १) २५
आनन्द गायत्री कथा) ७०
एक ही रास्ता) ८०
शंकर दयानन्द) ५०
सन्त नारायण कथा) ६२
महामन्त्र १)

पं० आर्य मुनि कृत

उपनिषदार्य्य भाष्य ६)

पं० प्रेम चन्द्र शास्त्री

सचित्र वाल्मीकिय रामायण १२)

स्वामी सत्यानन्द

(आर्य समाज के नियमों की व्याख्या)५०

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण प्रामाणिक तथा भक्ति भाव से पूर्ण जीवन चरित्र। मोटे अक्षरों में, मजबूत जिल्द, बढ़िया कागज। पृष्ठ संख्या ६०० मूल्य १२) यह पुस्तक दैनिक पाठ तथा सत्संग में कथा सुनाने के लिए अद्वितीय है।

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २) ५०

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त लेखावलि २)

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत २)

प० सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

बहनों की बातें १) २५
मित्रों की बातें १) २५

श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी द्वारा संकलित

ऋग्वेद शतकम् १)
यजुर्वेद शतकम् १)
सामवेद शतकम् १)
अथर्ववेद शतकम् १)

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण १) २५
वैदिक सन्ध्या रहस्य) ३७
वैदिक यज्ञ रहस्य) ३७
आर्य समाज क्या है) ७५

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

दो सनातन सत्ताएं १)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
आर्ष योग प्रदीपिका ३) ५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विवाह और विवाहित जीवन २) ५०

पं० लेखराम कृत

सृष्टि का इतिहास २)

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
" " पूर्वार्द्ध २) ५०
" " उत्तरार्द्ध २) ५०

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार

सन्ध्या विनय १)
प्रार्थना प्रदीप) ५०

स्वामी श्रद्धानन्द कृत

हिन्दू संगठन क्यों व कैसे १)

स्वामी वेदानन्द कृत

वेद परिचय) ३७

पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

गो रक्षा परम कर्तव्य
गो हत्या महापाप) ५०

विभिन्न लेखक

सत्यार्थ प्र. शंका समाधान) २५
दयानन्द और वेद) २५
पंचयज्ञ प्रकाशिका) ६५
(हवन मन्त्रादिअर्थसहित)
नास्तिकवाद) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथामहाकाव्य ४)
स्त्रियों का स्वास्थ रोग ३)
वैदिक आर्य पर्व पद्धति)३७
आर्य सिद्धान्त दीप १)२५
गीत श्रद्धांजली १)
सत्य हरिश्चन्द्र १)
बीरबल की हाजिर जवाबी १)
ओंकार व्याख्या) १२
नमस्ते की व्याख्या) १२

बालोपयोगी

महर्षि दयानन्द) ७५
आत्म कथा) ४०
गुरुधाम एकांकी) ५०
स्वामी श्रद्धानन्द) ३७
महात्मा हंसराज) ३७
गुरु विरजानन्द) ५०
स्वामी वेदानन्द) २५
भगवान् कृष्ण) ३०
आदर्श सुधारक दयानन्द) ६२

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० १।)
महर्षि दयानन्द सादा " १)
गुरु विरजानन्द " १)
पं० लेखराम " १)
स्वामी श्रद्धानन्द " १)
महात्मा हंसराज " १)
प० गुरु दत्त " १)
स्वामी दर्शनानन्द " १)
महर्षि जीवन घटना १५×२०
मोटोज साइज ११×१४) ५०
ओ३म, नमस्ते, स्वागतम, गायत्री मन्त्र प्रत्येक) २५

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

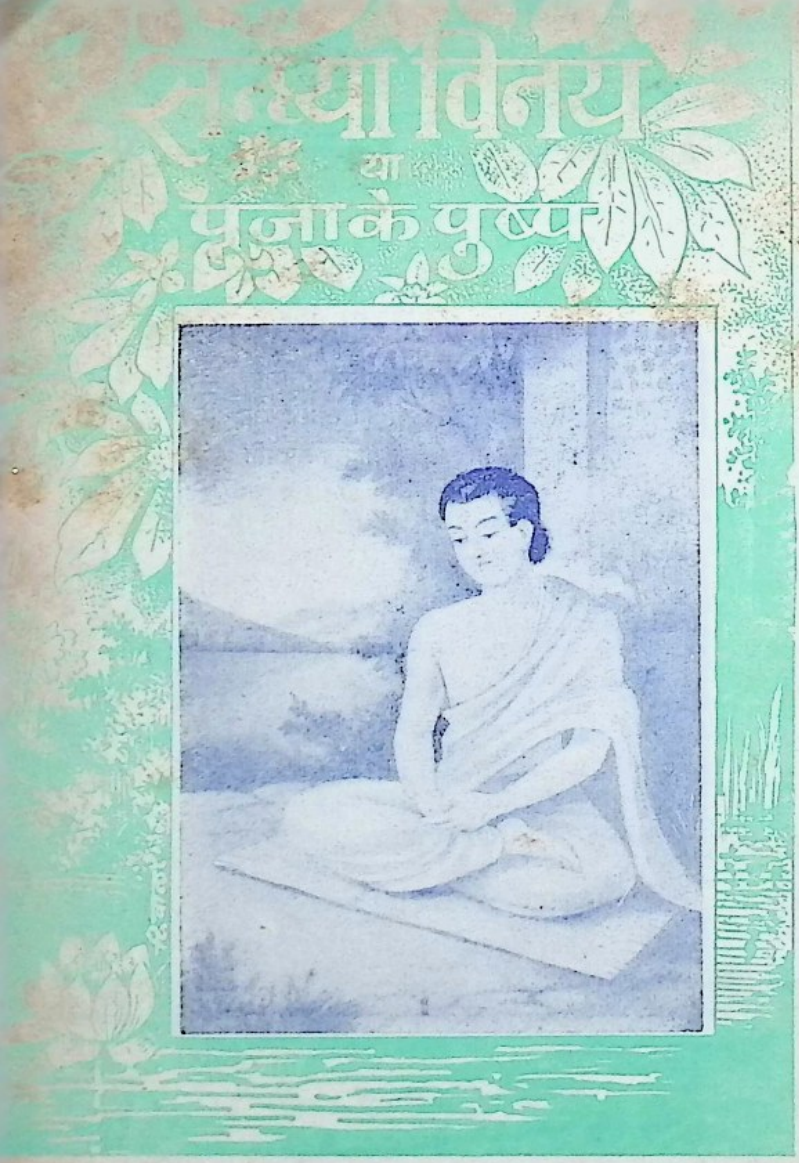

रजि. नं. डी. ४२६

जून—१९६३

लेखक

प्रो. नित्यानन्द वेदालंकार

एम० ए०

[पांचवां संसंस्करण]

सन्ध्याविनय में सन्ध्या के प्रत्येक मंत्र का शब्दार्थ देकर उसी मन्त्र के भाव की एक एक विनय (प्रार्थना) लिखी गई है। सभी विनय भावपूर्ण और भक्ति रस की भाषा में लिखी गई हैं।

साथ ही ईश्वर का सुबोध स्वरूप, भगवद् भजन जरूरी है, सन्ध्या के मन्त्रों का क्रम सौन्दर्य स्तुति प्रार्थना आदि पर महर्षि के विचार आदि लेख भी बड़े रोचक और प्रभावोत्पादक है।

सारी पुस्तक कला-पूर्ण, आकर्षक ढङ्ग से दो रंगों में छापी गई है। १९२ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल १. ५०

सम्मतियाँ

(१) आर्य मित्रः—इसमें भक्ति विभोर होकर जो प्रार्थनायें प्रस्तुत की गई हैं वे बड़ी रोचक व हृदय हारिणी है। सन्ध्या के क्रम पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है।

(२) आर्योदयः—पुस्तक सुन्दर छपी है। ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित सन्ध्या पर विनय रूप व्याख्या लिखी है। भक्ति रस के पिपासुओं को मनन करने से लाभ होगा। उपासना की ओर ले जाने में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी।

(३) श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्डः—सन्ध्या के मन्त्रों पर लिखी भावपूर्ण प्रार्थनायें निस्सन्देह उद्बोधक है, भक्ति भावना पुष्ट करती हैं, और अतिशय आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करती हैं। पुस्तक की भाषा अतिसरल सुललित और काव्यमयी है :

[illegible] से [illegible] पर [illegible] प्रेस में छपवाकर नई सड़क दिल्ली से छपवाया।

वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

सस्थापक

स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सम्पादक

विजयकुमार

टेलीफोन नं० २२२७९५.

आदरी सह-सम्पादक

ब्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०

टेलीफोन नं० २२१३२८

जुलाई	१९६३
आषाढ़	२०२०
वर्ष	अङ्क
११	१२

वार्षिक मूल्य ३)

एक प्रति का ।)

अपने मनीआर्डर कूपन पर अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। यदि आप नये वर्ष से ग्राहक बन रहे हों तो नया ग्राहक लिख दें।

सुकर्मा लाभ करता है

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥
७ । ३२ । २१ ॥

अर्थ—(मर्त्यः) मनुष्य (दुः-स्तुती) दुष्ट और मन्द स्तुतियों से (वसु+न+विन्दते) अभीष्ट धन नहीं लाभ करता (स्रेधन्तम्) हिंसक पुरुष को भी (रयिः) अभीष्ट धन (न+नशत्) प्राप्त नहीं होता (मघवन्) हे सर्वधनस्वामिन ! (पार्ये) इस जगत् में (दिवि) और द्युलोक में (मावते) मेरे समान जन को। (देष्णम्) देने योग्य उत्तम धन को (तुभ्यम्) आपसे (सुशक्तिः+इत्) सुकर्मा उद्योगी पुरुष ही पाता है। कुकर्मी आलसी जन सदा दुःख में ही रहता है।

आशय—केवल भोग विलास, तथा परपीडा के लिये जो स्तुति की जाती है, उसे दुःस्तुति-दुष्टुति कहते हैं। वेद उपदेश करता है, कि दुष्ट भावना वाले, तथा घातक लोग, जो सदा संसार का अनिष्ट करते रहते हैं, कल्याण के भाजन नहीं होते। जो धनसम्पन्न होते हुए दुष्ट कर्मों में लगे रहते हैं वे केवल पिछली कमाई खा रहे हैं, भविष्य बिगाड रहे हैं।

—※—

१२ वें वर्ष का वेद विशेषांक

पिछले वर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्रावणी के पावन पर्व पर हम अपने 'वेद प्रकाश' परिवार के सदस्यों की सेवा में भेंट करेंगे। इस वेद अंक का विषय होगा "वैदिक उदात्त भावनाएँ।" वेद में मनुष्य को उद्बोधन देने वाले सहस्रों मन्त्र हैं। उनमें से पर्याप्त मन्त्रों का संग्रह इस अंक में पाठकों को मिलेगा। अंक के कुछ विषय ये हैं—

१. विश्व कल्याण
२. विश्व प्रेम
३. वैदिक साम्यवाद
४. विश्व शान्ति
५. मातृ-पितृ-भक्ति
६. भ्रातृ-प्रेम
७. आगे बढ़ो
८. कर्म करो
९. स्वावलम्बन
१०. आत्मविश्वास
११. वीरता की तरंग
१२. एकेश्वरवाद
१३. शारीरिक स्वास्थ्य
१४. श्रद्धा
१५. मेधा
१६. विजय कामना
१७. यशस्वी जीवन
१८. दाम्पत्य प्रेम
१९. अकेला
२०. ब्रह्म और क्षात्र शक्ति
२१. संसार में कैसे रहें
२२. शत्रु दमन
२३. आदर्श राष्ट्र
२४. मनुष्य वन
२५. ब्रह्मचर्य
२६. नारी गौरव
२७. चरित्र निर्माण
२८. धनोपार्जन
२९. जागृति
३०. दरिद्रता दलन
३१. दोष निवारण
३२. संकल्प-शक्ति
३३. संगठन
३४. प्रार्थना
३५. स्वदेश प्रेम
३६. प्रभु प्रेम

ये और इस प्रकार के अन्य अनेक विषय होंगे। पुस्तक में सब मिला कर ५२ विषय होंगे और लगभग ३००-४०० वेद मन्त्र और सूक्तियां इन विषयों पर होंगी। वेद मन्त्रों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत के उत्तमोत्तम श्लोक भी होंगे कहीं कहीं वैदिक शिक्षाओं की बाइबल और कुरान आदि से तुलना करते हुए वैदिक शिक्षाओं की उत्कृष्टता दर्शायेंगे। यथाप्रसंग हिन्दी कवियों की सुन्दर सूक्तियां और उर्दू कवियों की शेर वो शायरी भी होगी। वैदिक शिक्षाओं के सम्बन्ध में यह एक ठोस ग्रन्थ होगा। वैदिक शिक्षाओं के सम्बन्ध में इतनी सामग्री पाठकों को शायद ही कहीं मिले।

इस अङ्क को पढ़ते पढ़ते पाठकों के जीवन की निराशा दूर होगी, उन के जीवन में नव शक्ति, नव चेतना, नव जागृति का संचार करेगा। निराशा के समय इस वेदांक के पाठ से आप के जीवन में आशा की एक नई किरण प्रस्फुटित होगी। अज्ञान और अन्धकार दूर होकर आपके जीवन में ज्ञान की ज्योति जगेगी। पुस्तक को पढ़ते पढ़ते आपकी रग रग, नस नस, और रक्त के एक एक बिन्दु में गर्मी, उष्णता और जोश का संचार होगा। आप के जीवनों में वीरता की उमंगें और तरंगें उठेगी। इस अंक का स्वाध्याय आप के जीवन को सुपथ की ओर प्रेरित करेगा। इस का स्वाध्याय आपके व्यक्तित्व, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में एक नूतन क्रान्ति का संचार करेगा।

अंक सीमित संख्या में छप रहा है। निराशा से बचने के लिये अपना वार्षिक मूल्य आज ही भेजिये। जिनका मूल्य ३ अगस्त तक पहुंच जायेगा उन्हें यह अंक ७ अगस्त तक मिल जायेगा। ३ अगस्त के पश्चात् शुल्क भेजने वाले व्यक्तियों को यह अंक यदि स्टाक में शेष रहा तो सितम्बर में मिल सकेगा। अतः सावधान चूकें मत, आज ही अपना शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेज दीजिये। —सम्पादक

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

साप्ताहिक सत्संग में सुनाइये

दुर्गुण-त्याग

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ (यजु० ३० । ३)

(देव) हे दिव्य गुण युक्त सब सुखों के दाता परमेश्वर ! (सवितः) हे सकल जगत् के उत्पत्ति-कर्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त ! आप कृपा करके हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा+सुव) दूर कर दीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह (नः) हमारे लिए (आ+सुव) प्राप्त कराइये ।

देव-सवितः

परमात्मा के गुण कर्म और स्वभाव अनन्त हैं अतः उसके नाम भी अनन्त हैं । इस मन्त्र में ईश्वर के दो नाम आये हैं—देव और सविता । इस मन्त्र में ये नाम विशेष अभिप्राय से रखे गये हैं । जब कोई व्यक्ति किसी के पास माँगने के लिए जाता है तो वह दो बातें सोच कर जाता है । एक तो यह कि मैं जिस व्यक्ति से जो वस्तु माँगने चला हूँ वह उसके पास है अथवा नहीं । उदाहरण के रूप में पंसारी की दुकान में जाकर कोई भी व्यक्ति जूते या चप्पल नहीं माँगता और न 'बाटा' की दुकान पर जाकर कोई व्यक्ति चूर्ण, चटनी अथवा औषधि माँगता है । माँगने वाला दूसरी बात यह सोचता है कि वस्तु तो दाता के पास है परन्तु माँगने पर वह मुझे देगा या नहीं । दृष्टान्त के रूप में कोई भिखारी किसी करोड़पति के पास जाकर यह नहीं कहता कि मुझे दस लाख रुपये दे दो । यद्यपि सेठ के पास धन है परन्तु वह देगा नहीं । अतः भिखारी इतना माँगता भी नहीं । इसी प्रकार प्रभु से प्रार्थना करने वाला भक्त भी इन दोनों बातों को ध्यान में रखता हुआ ही प्रार्थना करता है ।

निरुक्त ७।१५।१ के अनुसार 'देवो दानाद्वा' निरन्तर देने वाले को देव कहते हैं । देव शब्द यह बतलाता है कि प्रभु के पास सब कुछ है, यह बात अलग है कि वह दे या न दे ।

'सवितः' पद दूसरी बात पर प्रकाश डालता है कि प्रार्थना करने पर प्रभु देगा या नहीं । पहले तो भक्त माँगते हुए झिझकता है क्योंकि--

दुआ मैं क्या करूं तुझ से दुआ से शर्म आती है ।
कभी मैंने कहा तेरा किया हो तो कहूँ तुझ से ॥

परन्तु और कोई मार्ग न देख भक्त माँगने के लिए तैयार होता है और साथ ही वह सोचता है कि मैं परमेश्वर से इस प्रकार माँगू कि वह मना न कर सके । सोचते सोचते उसे ध्यान आता है कि प्रभु से यह कहकर माँगूँगा कि प्रभो ! मैं बड़ा तपस्वी और ज्ञानवान् हूँ परन्तु दूसरे ही क्षण विचार आता है कि परमात्मा तो सर्वान्तर्यामी है । वह तो घट घट-वासी है । वह सब को जानता है कि किस में कितना तप और किस में कितने गुण हैं । फिर सोचता है मैं यह कह कर प्रार्थना करूंगा

कि नाथ ! मैं बड़ा विद्वान् और धर्मात्मा हूँ। परन्तु फिर वही विचार आता है कि परमात्मा जानता है कि मैं कितना विद्वान् और धर्मात्मा हूँ। इस प्रकार भक्त को अपने जीवन में कोई भी गुण अथवा योग्यता दृष्टिगोचर नहीं होती। बहुत सोच विचार करने के पश्चात् उसे प्रभु से माँगने के लिए अपने में एक गुण दिखाई देता है और उसी आधार पर वह प्रभु से कहता है कि भगवन् ! मुझ में चाहे और कोई गुण हो या न हो परन्तु एक नाते से तो मैं आप से माँग ही सकता हूँ और वह यह कि तुम मेरे पिता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ—

त्वमस्माकं तव स्मसि (ऋ० ८ । ९२ । ३२)

भले हैं अथवा बुरे हैं तू हमारा है हम तेरे हैं। क्या अयोग्य होने से कोई पुत्र नहीं रहता ? पिता से माँगने में किसी को संकोच नहीं होता इसी अभिप्राय से मन्त्र में 'सवितः' पद आया है जिसका अर्थ है 'उत्पत्तिकर्ता पिता।'

विश्वानि दुरितानि परासुव

मन्त्र के इन शब्दों द्वारा भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है—देव ! मेरे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या इस प्रकार प्रार्थना करने मात्र से हमारी बुराइयाँ दूर हो जायेंगी। यदि यह कहा जाय कि प्रार्थना से दुर्गुण और दुर्व्यसन दूर हो जाते हैं तो यह बात ठीक नहीं क्योंकि अनेक व्यक्ति दिन और रात प्रार्थना करते हैं परन्तु उनके दुर्गुण दूर नहीं होते। यदि प्रार्थना से बुराइयाँ दूर नहीं होतीं तो प्रार्थना करना व्यर्थ है।

इस शंका के समाधान के लिये हमें प्रार्थना के प्रकार पर ध्यान देना होगा। महर्षि दयानन्द ने आर्योद्देश्यरत्नमाला में प्रार्थना की परिभाषा इस प्रकार की है—

"अपने पूर्ण सामर्थ्य के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर अथवा किसी सामर्थ्यवान् व्यक्ति से सहायता लेने का नाम प्रार्थना है।"

भक्त पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् प्रार्थना का पात्र बनता है। वस्तुतः मनुष्य को अपनी बुराइयों को दूर करने के लिए स्वयं प्रयत्न और पुरुषार्थ करना चाहिये। जब मनुष्य पहाड़ों को लांघ सकता है। समुद्रों को चीर सकता है तो क्या अपनी बुराइयों को दूर नहीं कर सकता। प्रभु से प्रार्थना करो परन्तु उससे पूर्व स्वयं भी पुरुषार्थ करो। जब आप के मन में कुभावनाएँ और बुरे विचार उठने लगें तो उन्हें ललकार कर कह दो—

परो ऽ पेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परे हि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः॥ (अथर्व० ६ । ४५ । १)

ऐ मेरे मन के पाप ! दूर भाग जा। क्यों मुझे बुरी बातें सिखाता है। दूर हट मैं तुझे नहीं चाहता। वृक्षों और वनों में जा। मेरा मन तो गृह और गौ के कार्यों में लगा हुआ है।

इस प्रकार अपनी पूर्ण शक्ति का सदुपयोग करके भी यदि अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिलती तब ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। बस यही प्रार्थना की वास्तविक स्थिति है और ऐसी स्थिति में की गई प्रार्थना अवश्य सफल होगी तथा भक्त पर प्रभु कृपाओं की वृष्टि होगी।

'दुरितानि' पद दुरित (बुराई) का बहुवचन है। इस मन्त्र में बुराइयों से छूटने की प्रार्थना की गई है। वे बुराइयाँ क्या हैं। महर्षि मनु ने १८ बुराइयाँ गिनाई हैं। सभी दुर्गुण और दुर्व्यसनों का इनमें समावेश हो जाता है। वे १८ दुर्गुण ये हैं—

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥
(मनु० ७ । ४७)

शिकार खेलना, जुआ खेलना, दिन में सोना, दूसरों के दोषों का वर्णन, स्त्रियों का सहवास, शराब का सेवन, नाचना, गाना, बजाना और व्यर्थ इधर उधर घूमना ये काम से उत्पन्न दस व्यसन है।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥
(मनु० ७ । ४८)

चुगली करना, बिना बिचारे कर्म करना, बिना कारण पैर रखना, ईर्ष्या, दूसरे के गुणों में दोष लगाना, बुरे कार्यों में धन लगाना, कठोर वाणी बोलना, बिना विचारे पक्षपात से किसी को दण्ड देना ये आठ क्रोध से उत्पन्न होने वाले दोष हैं।

मनुस्मृति में आगे चलकर इन व्यसनों की निन्दा इस प्रकार की गई है—

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधो ऽ धो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥
(मनु० १।५३)

मृत्यु और व्यसन में व्यसन को ही विशेष कष्ट कहा है क्योंकि व्यसनी बराबर नीचे ही नीचे गिरता है और अव्यसनी मरने पर स्वर्ग=सुख विशेष को प्राप्त होता है।

पूर्ण उन्नति के लिए सब बुराइयों को छोड़ना होगा। यदि जीवन में एक भी बुराई शेष रही तो अन्य अन्य बुराइयों के आ जाने की आशंका है। क्योंकि एक दुर्गुण दूसरे दुर्गुण को जन्म देता है—

लोभात् क्रोधो प्रभवति क्रोधाद् द्रोहः प्रवर्तते ।
द्रोहेण नरकं याति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः ॥

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है और क्रोध से द्रोह का जन्म होता है। द्रोह करने वाला शास्त्रज्ञ विद्वान् भी नरक=दुःख विशेष में गिरता है।

यदि किसी पात्र में छिद्र हो जाये तो उसका सारा पानी निकल जाता है। इसी प्रकार किसी भी इन्द्रिय में दोष होने पर पतन का भय है। मनु जी ने कहा है—

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥
(मनु० २ । ९९)

सब इन्द्रियों में यदि एक इन्द्रिय भी पथभ्रष्ट हो जाये तो उस से तत्त्वज्ञानी की बुद्धि ऐसे नष्ट हो जाती है जैसे मशक अथवा फूटे पात्र से पानी बूंद बूंद करके टपक जाता है। इसलिए वेद में प्रार्थना की गई—

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं
बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ (यजु० ३६ । २)

मेरी आँख का, मेरे हृदय का अथवा मेरे मन का जो बहुत बड़ा छिद्र है, सर्वरक्षक भगवन् मेरे उस छिद्र को पूर्ण कर दो। संसार के पालक और स्वामी हमारे लिए कल्याणकारी होओ।

प्रत्येक व्यक्ति को एकान्त में बैठकर अपने दोषों का चिन्तन करके उन्हें हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु आज तो अवस्था यह है—

दोष पराया देख कर चलत हसन्त हसन्त ।
अपना याद न आवई जाको आदि न अन्त ॥

मनुष्य अपने दोषों को भूल कर किस प्रकार दूसरों के दोषों को देखता है इस विषय में श्री 'अज्ञेय' जी की कहानी 'सेव और देव' बहुत बोध-प्रद है। एक प्रोफेसर थे जिनका नाम था गजानन्द। वे यूनिवर्सिटी के पुरातत्व विभाग में कार्य करते थे। एक बार अवकाश में वे कश्मीर घूमने गये। एक दिन प्रकृति के सौन्दर्य को देखते हुए वे काफी दूर निकल गये। मार्ग में उन्होंने सेवों का एक बाग देखा। वृक्ष सेवों से लदे हुए थे परन्तु वहाँ कोई माली नहीं था। प्रो० महोदय को पहाड़ियों की ईमानदारी पर बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। वे कुछ सोच ही रहे थे कि उन्होंने एक लड़के को एक वृक्ष से उतरते देखा। उसकी जेबों में टूटे हुए सेव थे। प्रो० महोदय को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने यह कहते हुए कि तुम्हीं लोग इन पहाड़ियों को बदनाम करते हो, उस लड़के के दो तमांचे लगाये और सेवों को उद्यान की घास पर फेंक दिया। फिर वे कश्मीर के प्राचीन मन्दिरों को देखने के लिये आगे बढ़े। गाँव वालों से पूछ कर वे एक मन्दिर में पहुँचे। प्रो० महोदय जूते उतार कर अन्दर प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि और सारी मूर्तियाँ तो लुढ़की पड़ी हैं तथा टूट फूट गई

हैं परन्तु एक मूर्ति ठीक है। प्रो० महोदय को मूर्ति बहुत ही सुन्दर लगी। उन्होंने सोचा कि इस स्थान पर तो यह मूर्ति व्यर्थ है। यह मन्दिर बन्द पड़ा रहता है। अतः इस मूर्ति को यहाँ से ले जा कर पुरातत्त्व विभाग में रखना चाहिए। प्रो० महोदय ने इधर उधर देखा, और मूर्ति को अन्दर के जेब में रख तथा ऊपर से ओवर कोट पहनकर जल्दी जल्दी चले। मार्ग में फिर वही बाग आया। उन्होंने दे ा कि उस लड़के ने पुनः सेव तोड़े हैं। उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने लड़के की गर्दन पकड़ उसे आगे को खेंच कर धक्का दिया तो लड़के का सिर मूर्ति में लगा। लड़के के तो सिर में ही चोट लगी परन्तु प्रो० महोदय की छाती पर चोट लगने के साथ ही मन पर भी चोट लगी। वे सोचने लगे कि इस लड़के ने सेव की ही चोरी की परन्तु तू तो मन्दिर से तथाकथित देव ही उठा लाया है। उन्हें अत्यन्त आत्मग्लानि हुई क्योंकि—

न थी अपनी बुराई पै जब कि नजर,
तो नजर में बुरा था हर इक बशर।
पड़ी अपनी बुराई पै जब से नजर,
तो नजर में कोई बुरा न रहा॥

प्रो० महोदय वापस लौटे और उस मूर्ति को मन्दिर में ही रख दिया।

दूसरों के दोष न देख कर अपने दोष देखो। सज्जन पुरुष अपने दोषों को देखता है परन्तु दुष्ट मनुष्य दूसरों के दुर्गुणों को देखता है। कहा है—

खलः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥

दुष्ट व्यक्ति दूसरों के तो सरसों के बराबर दोषों को भी देखता है परन्तु अपने बेल (एक फल) के बराबर बड़े दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता।

महात्मा बुद्ध ने भी बहुत सुन्दर कहा है—

सुदर्शं वज्जमन्येषां आत्मनः पुनर्दुर्दर्शम्।
परेषां हि स वज्जानि अवपुणाति यथातुषम्॥
आत्मनः पुनः छादयति कलिमिव कितवात् शठः॥
(धम्मपद १८।१८)

दूसरों का दोष देखना सरल है परन्तु अपना दोष देखना कठिन है। मनुष्य दूसरों के दोषों को भुस की भाँति उड़ाता फिरता है परन्तु अपने दोषों को ऐसे ढाँपता है जैसे एक बेईमान जुवारी अपनी हार पर अपने पाशों को छिपाता है।

दूसरों के दोष देखने के स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुराइयों, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों को दूर करते हुए प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए—

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति॥
(अथर्व० १०।१।१३)

हे प्रभो! जिस प्रकार बहती हुई वायु भूमि पर से धूल को और आकाश में बादलों को उड़ा ले जाती है उसी प्रकार ज्ञान के द्वारा धकेली जाकर मेरी सब बुराइयाँ मुझ से दूर हो जायें।

यत् भद्रं तत् नः आसुव

जो श्रेष्ठ है, भला है, कल्याणकारक है, उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वह हमें प्राप्त कराइये। प्रार्थना का यह क्रम बड़ा ही युक्तियुक्त और वैज्ञानिक है। जब तक बुराइयाँ दूर नहीं होंगी तब तक भलाई आ ही नहीं सकती।

कहते हैं एक बार कालिदास महाराज भोज को कुछ समझा रहे थे। महाराज ने सुना तो सब कुछ परन्तु उनकी समझ में नहीं आया। दूसरे दिन कालिदास ने सिर घुटवा कर संन्यासी का वेश धारण किया और महाराज के महल पर ही अलख जगाया "भिक्षां देहि"। महाराज ने अपने नौकर को भिक्षा देने के लिए भेजा। नौकर भिक्षा डालने के लिए आया तो संन्यासी जी ने भिक्षा का पात्र आगे कर दिया जिसमें मांस पड़ा हुआ था। नौकर ने कहा, "इस मांस को फेंक दो तभी मैं भिक्षा दूँगा।" संन्यासी ने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता।" उन दोनों का वाद विवाद सुनकर राजा भी वहाँ आ गया। फिर उन दोनों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

भिक्षो ! मांसनिषेवणं प्रकुरुषे ? किं तेन मद्यं विना ?
मद्यञ्चापि तव प्रियम् ? प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह ॥

वेश्याप्यर्थरुचिः कुतस्तव धनम् ? द्यूतेन चौर्येण वा ।
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो ? नष्टस्य कान्या गतिः ॥

राजा—भिक्षुक ! आप मांस भी खाते हैं ?

संन्यासी—हां, हां, परन्तु बिना शराब के उसमें क्या आनन्द ?

राजा—छिः,छिः, तो आप शराब भी पीते हैं ?

संन्यासी—क्यों नहीं ? परन्तु वेश्याओं के बिना उसमें भी आनन्द नहीं आता ।

राजा—परन्तु वेश्याएँ तो धन की भूखी होती हैं, आपके पास धन कहाँ ?

संन्यासी—अजी जुए या चोरी से मिल जाता है ।

राजा—अरे बाप रे ! तो तुम जुआ खेलते हो और चोरी भी करते हो ?

संन्यासी—बच्चे ! जिसे नष्ट ही होना हो उसके लिए और मार्ग ही क्या है ?

महाराज समझ गये कि यह कालिदास है । उन्होंने कालिदास के चरण पकड़ लिये । जो बात पहले दिन महाराज की समझ में नहीं आई थी आज समझ में आ गई । बात है भी ठीक । जिसके पात्र में मांस जैसा पदार्थ पड़ा हो उसमें कोई खीर कैसे डाल सकता है ? यदि हमारे मनरूपी पात्र में भी दुरित, दुर्गुण, दोष और बुराइयाँ भरी हुई हैं तो उसमें भलाई आ नहीं सकती । अतः बुराइयों को दूर करने के पश्चात् भलाई की याचना उचित ही है ।

जैसे मैले कपड़े पर रङ्ग नहीं चढ़ता, जैसे गीली लकड़ी को लाख प्रयत्न करने पर भी आग नहीं लगती उसी प्रकार दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और बुराइयों के दूर हुए बिना भलाई का रङ्ग चढ़ना कठिन है और आत्मानन्द की अग्नि प्रज्वलित होना असम्भव है ।

'भद्रम्' यह एक वचन है । भक्त ने सारी बुराइयों को दूर करने की प्रार्थना की परन्तु सारी अच्छाइयाँ नहीं माँगी क्योंकि सारी भलाइयाँ तो केवल प्रभु में ही हो सकती हैं । भक्त को तो यह भी पता नहीं कि हमारे लिए बुरा क्या है और अच्छा क्या है । अतः वह तो प्रभु से ही प्रार्थना करता है—

प्रभु आपकी मैं हूँ शरण निज चरण सेवक कीजिये ।
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता जो आप चाहें दीजिये ॥

अथवा वह इन शब्दों में पुकार उठता है—

तुझ से माँगू मैं तुझ ही को कि सब कुछ मिल जाये ।
सौ सवालों से फकत इक सवाल अच्छा है ॥

'भद्र' तो एक ही है और वह है ईश्वर । अतः भक्त भगवान् से भगवान् को प्राप्त करने की प्रार्थना करता है । वेद के शब्दों में वह कहता है—

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ (ऋ० १ । ९१ । १३)

खाने योग्य उत्तम घासों में जैसे गौएँ प्रसन्न होती हैं, और मनुष्य जैसे अपने घर में प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे शान्तिदायक सोम ! परमेश्वर ! तू हमारे हृदय मन्दिरों में रम जा, प्रकाशित हो जा ।

परन्तु ईश्वर हमारे हृदय मन्दिरों में कब प्रकाशित होगा ? प्रभु उस समय प्रकाशित होगा जब हम अपने जीवनों से काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों को दूर कर अपने हृदय मन्दिरों को शुद्ध और पवित्र बनायेंगे । जब तक हमारे हृदय शुद्ध नहीं होंगे तब तक ईश्वर-दर्शन भी असम्भव है । यदि ईश्वर हमारे हृदय मन्दिर में आया भी तो हमारे हृदय मन्दिर की गन्दगी देखकर लौट जायेगा । एक कवि ने इस स्थिति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

आये वो और झांक कर ही लौट कर जाने लगे ।
दामन पकड़ मैंने कहा क्यों लौट कर जाने लगे ॥
जोहती थी बाट कब से आपके शुभागमन की ।
आओ प्रियतम ! विराजो शोभा बढ़ाओ सदन की ॥

दामन झटक कर चल दिये और यूं कहते हुए ।
बैठें कहाँ तेरे सदन में गैर हैं बैठे हुए ।।

उस ईश्वर के दर्शन के लिए अपने हृदय मन्दिर को शुद्ध करना होगा। एक बार एक सेठ जी अपने नगर के राजा के यहां गये और उन्हें अपने घर भोजन करने का निमन्त्रण दिया। राजा ने स्वीकार कर लिया। सेठ अपने घर आया और अपने भवन को ठीक कराना आरम्भ कर दिया जहाँ से ऊँचा नीचा था वहाँ से उसे बराबर करा दिया। मकड़ी के जालों को साफ करा दिया। जहाँ मकान टूट रहा था वहाँ उसकी मरम्मत कराई। फिर सारे मकान पर सफेदी कराई। तत्पश्चात् अनेक प्रकार के बेल बूटों से उसे सजाया। जब एक सेठ एक लौकिक राजा के बुलाने के लिए इतनी शुद्धि करता है तो जो राजाओं के राजा, महाराजाधिराज, ब्रह्माण्डपति को बुलाना चाहते हैं तो उन्हें भी अपने हृदय मन्दिरों को शुद्ध और पवित्र बनाना होगा। महर्षि वेदव्यास कहते हैं: —

यदा ऽसौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न कांक्षति ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।
(महा० शान्ति० २१।५)

जब मनुष्य किसी भी प्राणी के साथ मन वचन और कर्म से द्वेष नहीं करता तब ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

बाइबल में भी एक सुन्दर बात कही है—

Blessed are the pure in heart for they shall see God. (St. Matthew 5/8)

जिनके हृदय शुद्ध और पवित्र हैं वे सौभाग्यशाली हैं क्योंकि वे ही ईश्वर के दर्शन कर सकते हैं।

हृदय पवित्र तभी होगा जब हम बुराइयों को दूर करेंगे। आओ हम अपने दुर्गुणों को दूर करते हुए प्रभु से प्रार्थना करें कि देव ! हमारे दुर्गुणों को दूर कर जो भद्र एवं कल्याणकारक है वह हमें प्राप्त कराइये।

सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक व्याख्या

अष्टोत्तरशतनाममालिका—व्याख्यासहित

लेखक—श्री पण्डित विद्यासागर जी शास्त्री, सं० युधिष्ठिर मीमांसक

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में व्याख्यात ईश्वर के नामों की अत्यन्त प्रामाणिक गवेषणापूर्ण अति विस्तृत व्याख्या की है। यह पुस्तक लेखक के वर्षों के अनुसंधान और कठोर तप का फल है। पुस्तक सीमित संख्या में छापी जा रही है। ३१ अगस्त तक ग्राहक बनने वालों को आधे मूल्य में दी जाएगी। डाक व्यय के लिए १।) रु० साथ में अवश्य भेजें। मूल्य बिना जिल्द ५) सजिल्द ६) होगा।

अन्य पुस्तकों के लिए बड़ा सूचीपत्र बिनामूल्य मंगवावे।

भारतीय-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, २४।३१२ रामगंज, अजमेर।
२४९४३ गरपुरा गली नं० ४०, करोलबाग, नई दिल्ली ५.

विश्व-शान्ति

❀ रचयिता—श्री गोपालदास गुप्त एम० ए०, साहित्यरत्न

१

आज हुआ जीवन मंहगा है,
और मौत सस्ती मिलती है।
अरे, युद्ध की फुलवारी में,
आज शांति कलिका खिलती है॥

२

करते सभी शान्ति की बातें,
पर करते तैयार शस्त्र हैं।
अणु, उद्जन बम, राकेटों सम,
बने विपुल प्रक्षेपणास्त्र हैं॥

३

भू के चारों ओर घूमते,
नये चाँद बन अन्तरिक्ष में।
राकेटों की होड़ लगी है,
जाने को शशि के समक्ष में॥

४

रवि मंडल की परिक्रमा का,
अहो महा अभियान हो रहा।
नक्षत्रों में राज्य बसाने,
का उद्योग महान् हो रहा॥

५

भूतल पर तो रह न सके ये,
आज शांति से शांति दूत बन।
अब नभ मण्डल में जायेंगे,
उसी हृदय से देवदूत बन॥

६

अरे, शांति लटकी हो मानो,
आज सूर्य या शशि तारों में।
जो इनको मिल सकी न भू पर,
भू के सुन्दर श्रृंगारों में॥

७

जो है वस्तु हृदय की उसको,
मूढ़ खोजते हृदय मिटाकर।
जो है वस्तु हृदय में उसको,
मूढ़ खोजते जाकर बाहर॥

८

जीवन के प्रश्नों का उत्तर,
आज मौत ही है बस केवल।
आज शांति की बातें होतीं,
हैं केवल शस्त्रों ही के बल॥

९

अणु, उद्जन बम्बों के द्वारा,
भूपर जब संग्राम मचेगा।
केवल कुछ क्षण के ही भीतर,
नहीं एक भी प्राण बचेगा॥

१०

जब मरघट ही बनकर सारी,
यह वसुंधरा होगी सोई।
जब जीवन ही नहीं रहेगा,
होगी नहीं समस्या कोई॥

११

ध्वस्त सभी सुख साधन होंगे,
और प्रलय का नाटक होगा।
जड़ चेतन सब मिट जायेंगे,
दृश्य घोर संघातक होगा॥

१२

होगा हास विलास नहीं फिर,
जीवन के उल्लास न होंगे।
वर्षा, शीत, ग्रीष्म, शिशिरादिक,
ऋतुओं में मधुमास न होंगे॥

१३

नहीं कल्पना होगी कवि की,
कविता के उपमान न होंगे।
नहीं रहेगी सुन्दरता ही,
सुन्दरता के गान न होंगे॥

१४

नहीं ललित ललनायें होंगी,
रास-रंग सामान न होंगे।
नहीं दार्शनिक, वैज्ञानिक भी,
उनके दर्शन ज्ञान न होंगे॥

१५

नहीं शस्त्र निर्माता होंगे,
और शस्त्र भी नहीं रहेंगे।
आपस में ही लड़भिड़ करके,
विजित विजेता सभी मरेंगे॥

१६

ले डूबेंगे औरों को भी,
ये जो जड़ वैज्ञानिक भारी।
सकल सृष्टि के महानाश की,
अरे कर रहे जो तैयारी॥

१७

होगी तभी असीम शान्ति भी,
मानवता जब मिट जायेगी।
तभी मिटेगी सभी समस्या,
जब सुसभ्यता मिट जायेगी॥

१८

अरे शांति है वस्तु हृदय की,
नहीं प्राप्त बाहर होती है।
नक्षत्रों में यह न मिलेगी,
यह मानस-सर का मोती है॥

१९

ढूँढो अरे हृदय में इसको,
राकेटों की स्पर्धा छोड़ो।
भू को स्वर्ग बनाना है तो,
नक्षत्रों की ममता तोड़ो॥

२०

अन्वेषण तुम करो भले ही,
गूढ़ रहस्यों का प्रकृति के।
पर जीवन के लिए करो सब,
नहीं मूल्य पर वह विकृति के॥

निःसन्तान परिवार लाभ उठायें

यदि आप विवाह के पश्चात् अभी तक सन्तान से वञ्चित हैं तो इस रोग के विशेषज्ञ **श्री पं० श्यामसुन्दर जी** स्नातक—आयुर्वेदालङ्कार, [बी. आई. एम. एस.] से चिकित्सा करायें—इलाज का कोर्स ३ मास; व्यय १५०)। श्री स्नातक जी दिल्ली व पंजाब के अनेक रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं।

कुछ परिवार जो लाभ उठा चुके हैं

१—श्री ओम्प्रकाश जी, आनन्द कुटी, ब्रह्म कालोनी, सोनीपत।
२—श्री श्याम लाल जी कपूर, पञ्जाब नेशनल बैङ्क, लोधी रोड, नई दिल्ली।
३—श्री जी० डी० कपूर ४४०/६ पश्चिमी घमापुर जब्बलपूर।

पता—श्री पं. श्यामसुन्दर जी स्नातक 'महोपदेशक' पंजाब प्रतिनिधि सभा
३०३ रानीबाग शकूरबस्ती दिल्ली

कुमारों को संदेश

❀ शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धा ७ सत्ये प्रजापतिः ॥
—यजु० १९ । ७७ ॥

अर्थ—प्रजा के रक्षक परमात्मा ने अपने सत्य ज्ञान से सत्य और अनृत को जुदा-जुदा करके यह उपदेश दिया है कि सब मनुष्यों को अनृत अर्थात् अधर्म में अश्रद्धा करनी चाहिये और सत्य अर्थात् धर्म में ही श्रद्धा करनी चाहिये ।

भारत के भविष्य-निर्माता ! प्रिय कुमारो !

मैंने आपको केवल "कुमार" शब्द से ही संबोधित किया है इसलिए सच्चे अर्थों में कुमार बनने के लिए भी कुछ कठिन कार्य करने की आवश्यकता होगी । वैसे तो आप में कुमारावस्था को पार किए हुए व्यक्ति भी विराजमान हैं परन्तु मेरा यह लेख सबके लिये शिक्षाप्रद होगा चाहे वे किसी अवस्था के हों । "कु" अर्थात् कुत्सित कामों से जो घृणा करे वह "कुमार" कहलाने का अधिकारी है । नीच, अधम व निंदित कर्मों को "कुत्सित" कर्म कहते हैं । इनसे जब तक बचा हुआ न हो वह सत्यार्थ में कुमार नहीं है ।

इस अवस्था का नाम "कुमारावस्था" इसलिए रखा है कि इस समय में जो दुर्गुण या सद्गुण घर कर जायगा वह सारी आयु तक कायम रहेगा । दूसरे "कुमार" का अर्थ श्री स्वामी जी महाराज "उणादिकोष" में यह करते हैं कि "कामते भोगानिति कुमारः" अर्थात् जो भोगों की इच्छा करने लगता है वह "कुमार" है । जो बन-ठन के रहना चाहता है, साफ कपड़े पहनकर, बालों को अच्छी प्रकार बहाकर, सिर में तेल लगाकर और अपने को कुछ आकर्षक बनाकर आता-जाता है, यह भी इसी अवस्था की विशेषता है । अतः इस आयु की रेल से यात्रा करने के लिए दो Lines हैं—एक कुत्सित कामों से बचने की और दूसरी अपनी कामनाओं की पूर्ति की । अर्थात् अपनी कामनाओं पर ऐसी रोक रखें कि कुत्सित कामों पर झुक न जावें । अगर झुक गये तो जीवन का Derailment हो जायगा और बहुत प्रकार की हानियाँ भोगनी पड़ेंगी ।

इसको विस्तार से यूं समझिए कि—प्रायः इस आयु में आने पर अधिकतर प्रत्येक कुमार एक विशेष प्रकार के कपड़े पहनना चाहता है । ऐसे जो दूर से भले प्रतीत हों, आकर्षक लगते हो, जिनमें कहीं कोई शिकन न हो, Iron की हुई हों । कमीज का कालर खड़ा हो पड़ा न हो । बाल बढ़िया अंग्रेजी ढंग के हों । कई बार दिन में कंघा जेब में रख कर संवारता हो । बालों को बाल-बच्चों की भाँति पालता हो । आजकल के फैशन के अनुसार पतलून भी बढ़िया कपड़े की हो । वह धोती वालों को घृणा से देखते हैं । जूता कई रुपये का पड़ता हो, तो भी पहनना जरूर । उस पर Polish ऐसी हो कि चेहरा दिखाई देता हो । यह कुमारों के उपभोगों की (List) सूची है ।

अब विचार यह करना है कि क्या कुमारावस्था का यही अन्तिम उद्देश्य है या यह किसी अन्य उच्च उद्देश्य तक पहुँचने का साधन है ।

इस बात का उत्तर खोजने के लिए हमें संसार में प्रचलित विचार-धाराओं का अध्ययन करना पड़ेगा । आज सारा संसार दो प्रमुख विचारधाराओं में बंटा हुआ है—एक भौतिकवादी, जो संसार के सुखों को प्राप्त करना ही अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझते हैं, जो भी काम वे करते हैं उसमें उनका यही उद्देश्य छिपा रहता है । वे चाहते हैं कि अच्छे कपड़े हों, अच्छे मकान हों, बढ़िया कोठियाँ हों, उनमें पंखे लगे हों, उनमें कोच बिछे हों, कमरे में रेडियो बज रहा हो । घूमने के लिए

बढ़िया कार हो। खाने के लिए बढ़िया-बढ़िया खाने हों। उनके जीवन का मूलमन्त्र दुनियावी चीज को प्राप्त करना है और कुछ नहीं। चाहे वे यह चीजें कैसे ही प्राप्त करें, बेईमानी से, झूठ बोलकर, दूसरे का हक मारकर चाहे जैसे भी हो उन्हें अपनी भोगों की अग्नि को शान्त करना है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्।
ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्॥

दूसरी विचारधारा इससे बिल्कुल विरोधी व उलटी है। वह विचारधारा ईश्वरवादियों की है। उनका दृष्टिकोण पारलौकिक है। उनके लिए इस लोक से अधिक महत्त्व भविष्य के जीवन का है, मृत्यु के बाद की दुनिया में वे झाँक रहे हैं। और उस जीवन की आधार-शिला वे इसी जीवन में रख देना चाहते हैं। उनके जीवन का यही एक उद्देश्य है। उनकी यह चाह नहीं है कि वे अच्छी कोठियों में रहें। वे यह नहीं चाहते हैं कि उन्हें घूमने के लिए कारें मिलें या रेडियो के बगैर उनकी रोटी नहीं पचती। उन्हें अपने कपड़ों की परवाह नहीं है। उन्हें अपने खाने की भी परवाह नहीं है। ये सब बातें उनके लिए महत्त्वहीन हैं। वे उनके लिए नाकारा हैं, फिजूल हैं। वे भूखे और नंगे रहकर, जंगल में अपना घर बनाकर, वर्षा में भीगकर, दुनिया भर की आपदाएँ उठाकर अपने उद्देश्य व अपनी मंजिल पर पहुँचने के लिए कटिबद्ध हैं।

ये दो प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो आज संसार के सामने हैं। ये दो रास्ते हैं जो आज हमारे सामने हैं। इन्हीं में आज कशमकश चल रही है। बड़े-बड़े विचारक व दार्शनिक इसी बात के सोच में हैं कि कौन विचारधारा सही है। इन दोनों में कौन रास्ता ठीक है जिसे चुना जाय या जिसको चुनने के लिए लोगों को कहा जाए।

आज की दुनिया भौतिकवादी होती चली जा रही। वे सांसारिक चीजों को ही सुख का साधन समझते हैं। ईश्वर का नाम लेना बेवकूफी कहा जाता है। दकियानूसीपन उसे लोग कहते हैं। ऐसे लोग जो ईश्वर में विश्वास करते हैं साम्प्रदायिक, संकुचित दृष्टि वाले कहे जाते हैं।

हमारा छात्रवर्ग या कुमारावस्था के बच्चे भी इस प्रभाव से अछूते नहीं हैं। बल्कि उनमें यह भावना कूट-कूट कर भरी हुई सी प्रतीत होती है। उनके बारे में यह विश्वास हवा में उड़ता हुआ विश्वास नहीं है बल्कि उसके सबल प्रमाण हैं। आज के कुमार जो शिक्षा पाने की अवस्था में हैं उनके काम इस बात के सबल प्रमाण हैं। अधिकतर छात्र जो स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उच्छृङ्खल हैं, असभ्य हैं, स्वार्थी हैं, अनुशासन-हीन हैं, असत्यवादी, उद्दण्ड और अभद्र हैं। वे प्रत्येक आज्ञा की अवज्ञा करते हैं और इसी में अपना बड़प्पन समझते हैं।

जब कभी बस आती है जरा नजारा देखिये कि क्या होता है। बनी बनाई लाइन समाप्त हो जाती है। जो लोग लाइन में उनसे पहिले घंटों पहिले के खड़े रहते हैं खड़े के खड़े रह जाते हैं और उनसे पीछे आने वाले ये छात्र बसों में धक्का-मुक्की करके चढ़ जाते हैं। इस प्रयास में वे यह भूल जाते हैं कि उनके मुकाबले में शक्तिहीन, वृद्ध व बच्चे और स्त्रियाँ हैं। वहाँ उनके शील व सभ्यता का दिवाला निकला पाता है।

बसों में चढ़ जाने पर भी वे शान्ति से नहीं बैठते, अनर्गल बातें करते हैं, नियमानुसार पास की जाँच पड़ताल कराने में भी वे आनाकानी करते हैं। बसों में जहाँ चढ़ना-उतरना नहीं चाहिए वहाँ वे चढ़ते उतरते हैं और मना करने पर भी नहीं मानते।

स्कूल व विश्वविद्यालयों में वे जाकर पढ़ाई में मन नहीं लगाते। पढ़ाई के अतिरिक्त वे सभी काम करते हैं चाहे वे उनके करने के हों या न हों। वे इतने दुस्साहसिक कार्य करते हैं कि वे स्कूलों से भाग जाते हैं और माँ-बापों को धोखा देने के लिए अपने घरों पर ठीक छुट्टी के समय पहुँच जाते हैं।

परीक्षाओं में वे नकल करने से नहीं चूकते और इसी प्रकार परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना वे अपना हक समझते हैं। ऐसे कामों से रोके जाने

पर वे अध्यापकों व प्रबन्धकों को धमकाते हैं, उनकी बेइज्जती करते हैं और उनके ऊपर घातक हमले भी कर बैठते हैं।

जब कभी रेलों में यात्रा करते हैं तो बिना टिकिट यात्रा करते हैं वा निर्धारित श्रेणी से ऊँची श्रेणियों में बैठते हैं और रेल के सामान को हानि भी पहुँचाने से नहीं चूकते। पकड़े जाने पर प्रबल विरोध करते हैं, छोड़ने का दुराग्रह करते हैं और जबरदस्त प्रदर्शन आदि करने से भी नहीं हिचकिचाते। इन सभी बातों की पुष्टि में समाचारपत्रों में छपने वाली रोज की खबरें हैं जिनसे सभी परिचित हैं। ये कोई छिपी हुई या झूठी बातें नहीं हैं।

उनके खानपान बिगड़ते जा रहे हैं। उनके आचरण बिगड़ रहे हैं। आधुनिकता के नाम पर शराब व सिगरेट आदि का प्रयोग, जुआ व ताश खेलना आजकल के विद्यार्थियों की रुचियाँ हैं, ये उनकी हॉबीज़ हैं।

इस प्रकार के छात्रों के आचरण से आज सभी परेशान हैं। लोग इस प्रकार के छात्रों व शिक्षा की भर्त्सना करते हैं। मुन्शी प्रेमचन्द ने आज की जैसी परिस्थिति को निम्नलिखित शब्दों में धिक्कारा है—

"जो शिक्षा हमें निर्बलों को सताने के लिए तैयार करे, जो हमें धरती और धन का गुलाम बनाए, जो हमें भोग-विलास में डुबोए जो हमें दूसरों का रक्त पीकर मोटा होने का इच्छुक बनाए वह शिक्षा नहीं भ्रष्टता है।"

आज छात्रों के आचरण से स्वयं उनके माता-पिता परेशान हैं व शर्मिन्दा हैं।

यह एक छोटा सा नक्शा है जो मैंने आधुनिक छात्र का—एक भौतिकवादी कुमार का—खींचा है। यदि उसके कामों का मैं विस्तार से वर्णन करूं तो यह एक अलग ही विषय हो जायगा। जिसके वर्णन के लिए पर्याप्त समय चाहिए।

विद्वान्, आधुनिक विचारक, शिक्षा-शास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा आज के राज्याधिकारी आज की इस विषम परिस्थिति से, छात्रों के इन आचरणों से बड़े परेशान हैं, चिन्तित हैं। क्योंकि आज के छात्र कल के भारत-निर्माता हैं, युग-निर्माता हैं। किन्तु वे इस समस्या का कोई हल नहीं निकाल सके हैं। हालाँकि उन्होंने बहुत सी योजनाएँ बनाकर आजमाई है, बहुतों को आजमा रहे हैं, और बहुत सी आजमानी शेष हैं। लेकिन वे सब बेकार सिद्ध हुई हैं या बेकार साबित हो जायेंगी। क्योंकि वे मर्ज के कारण को पहिचानने में असमर्थ रहे हैं। वे प्रत्येक पत्ते पर पानी छिड़क कर पेड़ हरा करना चाहते हैं जो नितान्त असम्भव है, वे आज तक इस समस्या के मूल को नहीं खोज पाये हैं। वास्तव में भौतिक-वादियों के पास इस समस्या का कोई हल निकल ही नहीं सकता। चाहे वह कितनी ही नई योजनाएं बनालें वे बेकार ही रहेंगी।

अब मैं थोड़ी-सी चर्चा 'आर्य' शब्द के बारे में करूँगा। 'आर्य' शब्द का प्रयोग बहुलता से वैदिक ग्रन्थों में किया गया है। उसका अर्थ है श्रेष्ठ, सदाचारी, पूर्ण मनुष्य, सम्पूर्ण सद्गुणों से पूर्ण। अब आप गहराई से सोचें कि 'कुमार' शब्द से पहले आर्य का लिखा जाना कुमारों से कितनी तपस्या चाहता है। वेद में स्थान-स्थान पर मनुष्य को मानव बनने का उपदेश दिया गया है। वहाँ वह नुस्खे दिए हैं जो आदमी को सच्चे अर्थों में मानव कहाने का हकदार बनाते हैं। जीवन एक पूरी योजना है। कब-से-कब तक विद्याभ्यास करें। गृहस्थ कब धारण करें। जीवन के अन्तिम दिनों में क्या करना चाहिए। सारांश यह है कि जीवन का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जिसकी योजना या जिसका कार्यक्रम वेद में न हो।

किन्तु प्रश्न यह है कि आज के राज्याधिकारी जो धर्मनिरपेक्ष राज्य की रट लगाते नहीं थकते वह धर्म या वेद का नाम कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं? किन्तु यह निश्चित है कि आज की स्वतन्त्रता जो अराजकता में बदलती जा रही है और जिसका कोई उन्मूलक दृष्टिगोचर नहीं होता, इस स्थिति

को धर्मप्रिय लोग कर्त्तव्य को निभाने वाले लोग ही बदल सकते हैं।

माननीय राष्ट्रपति महोदय (स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद) ने समाज के लिए धर्म की आवश्यकता बताते हुए लिखा है कि धर्म की शक्ति ही जीवन की शक्ति है और धर्म की दृष्टि जीवन की दृष्टि है।

धर्महीन समाज की भयावह स्थिति की कल्पना करते हुए एक पश्चिमी विद्वान् फ्रेंकलिन ने लिखा है कि धर्म होने पर जब मनुष्य इतने नीच हैं तो धर्म न होने पर वे क्या होंगे।

इन उद्धरणों को यहाँ प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य केवल यही है कि जो लोग धर्म के नाम से चौंकते हैं या चिढ़ते हैं वे समझ लें कि धर्म के बगैर हमारा गुजारा नहीं है। इन सभी कारणों से आप से यह कहा जाता है कि आप आर्य कुमार बनें जिससे देश का भविष्य जो आप लोगों पर आधारित है कुछ सुधर सके। वैदिक सभ्यता में पला हुआ बालक एक अच्छा नागरिक, सभ्य युवक व सफल राष्ट्रनिर्माता बन सकेगा।

अन्त में, समाप्त करने से पूर्व मैं आर्य पदाधिकारियों से यह अपील करूंगा कि वे अपने नौजवानों, किशोरों व कुमारों को भूल न जायें, उनके प्रति उदासीनता या उपेक्षावृत्ति न अपनायें। यदि वे इन्हें भुला बैठे तो वे ऐसी ही महान् भूल करेंगे जैसी कि आज कांग्रेस सरकार ने अपने छात्रों की अवहेलना करके की है। आर्यसमाज का भविष्य आर्य कुमारों पर आधारित है। इसीलिए समाजों की उन्नति के लिए यह परमावश्यक है कि कुमारों की ओर अधिक ध्यान दिया जाय।

तभी "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" की योजना पूरी होगी। ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।

वेद में विज्ञान

श्री रामगोपाल भाषा विशेषज्ञ, वेद भाष्यकार,
३, फ्रेंच स्क्वेयर नई दिल्ली

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोद्ध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमः ऽ उक्तिं विधेम स्वाहा॥
(शु. यु सं० ७-४३)

स्पष्टार्थ—(देव) दिव्य, दान शील, प्रकाशमान, प्रदीप्त और द्युलोक स्थित आदित्य में स्थित (अग्ने) ताप शक्ति (Heet Energy), (अस्मान) उसके प्रभाव में प्रक्षिप्त होने वाले समस्त प्राणि। वनस्पति जगत को (राये) सुख, समृद्धि, और स्वास्थ्य की प्राप्ति के निमित्त (सुपथा) कल्याणमय दिशा में (नय) प्रवृत्त, प्रेरित करती है। (विश्वानि) व्याप्तिशील समस्त (वयुनानि) तेज और कान्ति के पुंज के, इस प्रभाव में प्रक्षिप्त प्राणी। वनस्पति जगत में (विद्वान्) सुस्थिर और सुदृढ़ कर देती है। प्राणियों। वनस्पतियों में, जो सूर्य की ताप शक्ति का समुचित उपयोग। सेवन करते हैं, यह ताप शक्ति अपार तेज, कान्ति और सौन्दर्य को भर देती है तथा उसको उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सुस्थिर और सुदृढ़ कर देती है। (अस्मत्) इन प्रक्षिप्त और प्रयोगशील प्राणियों और वनस्पतियों से (जुहुराणम्) कुटिल विषम (एनः) रोग, दोष को (युयोधि) नष्ट कर देती है। (स्वाहा) प्रशंसनीय और कल्याणकारी आदित्य की (ते) आनन्द उपयोग, तृप्ति, उपभोग और सेवन शील शक्ति की (भूयिष्ठां) प्रचुर (नमः) बल, वीर्य, साहस, पराक्रम और अनेक प्रदायिनी शक्ति युक्त (उक्तिम्) उदय के (विधेम) हम सेवन करते रहें।

भावार्थ—प्रत्येक बाल, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध नर-नारी को उदित होने वाले आदित्य की रश्मियों में नग्न शरीर से रश्मि-स्नान, सूर्य-स्नान करना चाहिये। इन रश्मियों की ताप शक्ति में जो गुण भरे होते हैं वे मनु य के शरीर में विषम रोगों को नष्ट करके, उसके बल, वीर्य, साहस और पराक्रम से परिप्लावित कर देते हैं।

आदर्श शिक्षा

❀ ब्र० जगदीश विद्यार्थी बी० ए०

आज भारतवर्ष में जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित है इस से विद्यार्थियों, अध्यापकों, शिक्षाशास्त्रियों तथा देश के नेताओं में बड़ा भारी असन्तोष है। आज शिक्षा के नाम पर जो कुछ हो रहा है नेता इस से दुःखी हैं। लीजिये नीचे कुछ सम्मतियाँ दी जाती हैं :—

विद्यार्थियों की इस धाँधली को देर तक सहन नहीं किया जा सकता।

(पं० जवाहरलाल नेहरू)

भारत में जो शिक्षा-प्रणाली चल रही है यह भारतीय नहीं है। (डा० राधाकृष्णन्)

भारतीय शिक्षा एक जुआ है।

(राजगोपालाचार्य)

एक उर्दू के कवि ने भी बड़ा सुन्दर कहा है:—

तिफल में बू आये क्या मां बाप के अतवार की।
दूध तो डिब्बे का है और तालीम है सरकार की॥

अर्थात् बच्चे में माता पिता के गुण किस प्रकार आ सकते हैं क्यों कि उन्हें दूध तो डब्बे का पिलाया जाता है और राजकीय शिक्षा दी जाती है।

भारत स्वतन्त्र हो गया। अंग्रेज गये परन्तु अंग्रेजियत अभी बाकी है। स्वतन्त्रता प्राप्त हुए १५ वर्ष हो गये परन्तु शिक्षा का उद्देश्य वही है जो परतन्त्र भारत में था। लार्ड मैकाले के शब्दों में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य था :—

We must do our best to form a class, who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, words and intellect".

अर्थात् हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर ऐसा उद्योग करना चाहिये, जिस से इस देश में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो जाये जो हमारे और इन करोड़ों लोगों के मध्य मध्यस्थ का कार्य करे जिन पर हम शासन कर रहे हैं। उस वर्ग का हाड़, मांस और रक्त भले ही भारतीय हो किन्तु आचार-विचार रहन-सहन तथा हृदय और मस्तिष्क अंग्रेजी के सांचे में ढल जाय।

परतन्त्र भारत में महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ठीक ही कहा करते थे कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का आधार स्तम्भ ही लक्ष्यविहीन है। उस में नैतिक विकास की भावना आ ही नहीं सकती। महात्मा गान्धी ने भी कहा था कि इस शिक्षा-प्रणाली से देश में अनावश्यक क्लर्कों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

बी० ए० और एम० ए० उत्तीर्ण होकर छात्र भँवर में चक्कर काटने लगते हैं। नैतिक, चारित्रिक अथवा धार्मिक या जीवन को सुखी बनाने के लिये आत्मबल तथा मनोबल के साथ शरीर बल को अक्षुण्ण रखने की साधना के मूल मन्त्र आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य की तपस्या का निर्देश इस में कहीं भी नहीं हैं।

आज की इस शिक्षा को लक्ष्य करके एक कवि ने बहुत सुन्दर कहा है :—

आशा थी कि कालिज से मिलेगी शिक्षा।
परीक्षा पास का यह तो यन्त्र निकला॥

एक और कवि ने कहा है :—

घिसते घिसते पुस्तकों को हम भी घिस गये।
धैर्य शक्ति और साहस निराशा में पिस गये॥

दस, चौदह अथवा सोलह वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आजकल के वातावरण में शिक्षित और दीक्षित नवयुवक के सम्बन्ध में एक विद्वान् ने ठीक ही कहा है :—

A master of art is a young man who has mastered the art of starving at a cost of say Rs. 4000/ to his parents.

A bachelor of art is an artless bachelor who can feed neither himself nor his wife, although his parents may have spent thousands of rupees on his education.

(Saradi Hamilton)

भाव यह है कि एम० ए० उत्तीर्ण छात्र एक ऐसा युवक है जिस ने अपने माता पिता के चार हजार रुपये पर पानी फेर कर भूखे मरने की कला में प्रवीणता प्राप्त की है।

एक बी० ए० ऐसा कलारहित विद्यार्थी है जो न अपनी उदर पूर्ति कर सकता है और न अपनी धर्मपत्नी का पालन पोषण कर सकता है यद्यपि उस के माता पिता ने उस की शिक्षा पर सहस्रों रुपये व्यय किये हैं।

आज की शिक्षाप्राप्त लोगों की बेकारी और आत्महीनता का दृश्य उपस्थित करते हुए अन्य विद्वान् ने लिखा है—

Cases are known of M. A.'s selling milk, B. A.s' applying for the post of junior clerks but to no purpose and matrics applying unsuccessfully for the post of cycle peons.

अर्थात् एम० ए० दूध बेचते देखे जाते हैं, बी० ए० व्यर्थ क्लर्कों के स्थानों के लिए प्रार्थना करते हैं और मैट्रिक साइकिल चपरासी के लिए प्रार्थना करते हैं परन्तु आशा निराशा ही रहती है।

यह है आज की शिक्षा का भीषण एवं भयंकर अभिशाप। १४ वर्ष तक स्कूलों और कालिजों की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् डिगरी मिलती है B. A. (Bachelor of Art) परन्तु वास्तव में वह Artless Bachelor होता है। कला नाम की कोई वस्तु तो उसे आती ही नहीं। हाँ एक कला अवश्य आती है। लच्छेदार और घूँघरवाले बाल बना कर चौराहे पर खड़े हो जाना और उधर आती जाती नवयुवतियों को घूर घूर कर देखना। तभी तो एक उर्दू के कवि ने कहा था :—

खुदा बचाये यह कालिज की तरबियत का असर।
निगाहें डाली जाती हैं राहगीरों पर॥

प्रश्न उत्पन्न होता है कि शिक्षा में बिगाड़ कहाँ है। उत्तर सीधा सादा और सरल है। यहाँ तो आरम्भ से ही बिगाड़ है। आज बच्चे की शिक्षा डी ओ जी डाग (Dog) अर्थात् कुत्ते से प्रारम्भ होती है जब कि वह जी ओ डी गाड (God) ओम् से प्रारम्भ होनी चाहिये थी।

वेद के अनुसार शिक्षा का आरम्भ वहाँ से होता है जहाँ से शिक्षा में आने वाले का गर्भाधान होता है। माता और पिता एक पवित्र उद्देश्य को दृष्टि में रख कर सन्तान का आह्वान करते थे। माताएँ गर्भावस्था में बच्चों को लोरियाँ दिया करती थीं। पाठक कदाचित् आश्चर्य करेंगे कि क्या गर्भ में बालक सुनता है। परन्तु यह बात यथार्थ और ध्रुव सत्य है कि गर्भ के संस्कारों का बालक पर पूर्ण रूपेण प्रभाव पड़ता है।

महाभारत का संग्राम हो रहा है। अर्जुन युद्ध करते हुए दूर चला गया है और द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना कर दी है। पाण्डव-सेना में भीम आदि किसी को ज्ञान नहीं कि इस चक्रव्यूह का भेदन कैसे किया जाये। अभिमन्यु ने चक्र तोड़ने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और चल पड़े। मार्ग में उस के सारथी ने कहा :—

हे शत्रुनाशक आप ने यह भार गुरुतर है लिया।
हैं द्रोण रणपण्डित कठिन है व्यूह भेदन की क्रिया॥

यह सुन कर वीर अभिमन्यु ने कहा :—

हे सारथे! हैं द्रोण क्या देवेन्द्र भी आकर अड़े।
है खेल क्षत्रिय बालकों का व्यूह भेदन का लड़े॥

वीर अभिमन्यु ने चक्र का भेदन कर डाला परन्तु बाहर नहीं आ सका। अभिमन्यु को यह शिक्षा गर्भ में ही मिली थी। अन्दर प्रवेश करने की विधि तो उन्होंने सुन ली थी अतः सीख गये थे

परन्तु बाहर निकलने की विधि न सुन सके थे अतः मारे गये। यह है गर्भावस्था में बच्चे पर शिक्षा का प्रभाव।

प्राचीन काल में गर्भावस्था से ही शिक्षा प्रारम्भ हो जाती थी। प्राचीन देवियों की लोरियाँ भी विचित्र होती थीं। आकाश में बादल गर्ज रहा था। उस मेघ की भीषण गर्जना को सुन कर एक देवी उसे सम्बोधित करते हुए कहती है 'ओ मेघ तू अपना गर्जना बन्द कर दे'। मेघ पूछता है—'क्यों' माता उत्तर देती है 'मेरे पेट में गर्भ है। जब तू गर्जता है तो यह सिंह की दहाड़ समझ कर उछलता है और मुझे दर्द होता है।' माताएँ जब अपने बच्चों को ऐसी लोरियाँ देती थीं तभी तो यहाँ भरत जैसे तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होते थे जो सिंहशावकों (बच्चों) के समूह में पहुँच कर उन्हें ललकार कर कहते थे।

जृम्भस्व रे सिंह शावक जृम्भस्व दन्तान् ते गणयिष्यामि।

ओ शेर के बच्चे! अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँतों को गिनूँगा।

माताओं को इस बात का पूर्ण ज्ञान था—

अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे। (नि० ३।४)

पुत्र सारे अङ्गों का सार लेकर तथा हृदय की भावना और संस्कारों को लेकर उत्पन्न होता है। माता के संस्कार श्रेष्ठ हों तो गर्भस्थ बालक के जन्म जन्मान्तर के कुसंस्कार दूर हो जाते हैं। यही कारण था कि माता गर्भाधान से ही ऐसा श्रेष्ठ आचरण करती थी कि सन्तान श्रेष्ठ, बलवान् ओजस्वी, तेजस्वी और बुद्धिमान् बनती थी।

शिक्षाप्रणाली

जब बच्चा गोद में आता था तो ५ वर्ष तक माता उसको शिक्षा देती थी और ६ से ८ वर्ष तक पिता उसको शिक्षा देता था। जब बालक ८ वर्ष का हो जाता था तो उस के गले में माला डाल कर उसे विद्यालय ले जाते थे और गुरु के चरणों में डाल देते थे और कहते थे।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत्॥ (यजु० २।३३)

हे विद्यादान से रक्षा करने वाले आचार्य! विद्या प्राप्ति के लिए पुष्पमाला धारण किये इस ब्रह्मचारी को आप गर्भ के समान अच्छी प्रकार धारण कीजिए जिससे यह विद्यार्थी पूर्ण विद्वान् हो कर मनुष्य बन जाये।

यहाँ आचार्य को पितर कहा है। समाज-संस्कार, जातीय उत्थान और राष्ट्र-निर्माण करना आचार्य का दायित्व है। इसलिए उसे पितर कहा गया है। आज आचार्य को पितर के स्थान से गिरा कर नौकर बना दिया गया है। यह पहली त्रुटि है। जब तक आचार्य को उसका पूर्व गौरव प्रदान नहीं किया जायेगा तब तक हमारी शिक्षा पूर्ण लाभदायक हो ही नहीं सकती।

मन्त्र में दूसरी बात कही है कि इस बच्चे को गर्भ के समान धारण करो। माता जानती है गर्भ के प्रेम को। कितनी सतर्कता से सावधानी से वह गर्भ का पालन, पोषण और रक्षण करती है। कुमार अथवा कुमारी को गर्भ के समान धारण करने का तात्पर्य यही है कि आचार्य बालक को सन्तान के समान श्रेष्ठ विद्यायुक्त करें। आज यदि वेद की इस शिक्षा के ऊपर आचरण होने लग जाये तो शिक्षा के क्षेत्र में फैली हुई धाँधलियाँ दूर हो सकती हैं। आज विद्यार्थी अपने अध्यापकों की हत्या कर देते हैं, प्रतिदिन हड़ताल की ताल ठोकते हैं। जब ब्रह्मचारियों को गर्भ की सन्तान समझ लिया जाये तो क्या सन्तान हड़ताल करेंगी? कदापि नहीं।

जब भारतवर्ष में यह शिक्षाप्रणाली प्रचलित थी उस समय इस देश के रहने वाले सभी व्यक्ति देवता थे। एक यात्री भारतवर्ष में आया। भारतीयों की परीक्षा लेने के लिए मुहरों से भरी थैली मार्ग में डाल दी। थैली काफी समय तक मार्ग में पड़ी रही। थैली फट गई। मुहरें चमकने लगीं परन्तु किसी भी व्यक्ति ने एक भी मोहर नहीं उठाई। यह था हमारा चरित्र। लोग ऋण देते

थे और लेते थे परन्तु लिखते नहीं थे। लोग 'मातृवत् परदारेषु' दूसरों की स्त्रियों को माता के समान समझते थे। आज उसी देश के वासियों को लज्जा तो अवश्य आती होगी। परन्तु हम सिर नीचा करके कब तक जियेंगे। अब तो हमें अपने सिर को पुनः उठाना होगा और यह होगा हमारी शिक्षा में सुधार होने से।

मन्त्र में एक बात और कही है। बच्चे को ले जाकर आचार्य के चरणों में डाल दिया। अब प्रश्न होता है इसे क्या बना दें? क्लर्क, वकील, बैरिस्टर, व्यापारी। नहीं यह कुछ भी नहीं। "यथेह पुरुषोऽसत्" इसे ऐसी शिक्षा दो जिससे यह पुरुष बन जाय। पुरुष 'पृपालन पूर्णयोः' धातु से बनता है। वह पालन करने वाला और पूर्ण बन जाय। शरीर बलवान् हो, वक्षस्थल विशाल हो मेधा बुद्धि से युक्त हो, शरीर मन और आत्मा से उन्नत हो।

संदीपन ऋषि ने योगेश्वर कृष्ण को कौन सी विद्या पढ़ाई थी। वसिष्ठ ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को कौन सी विद्या प्रदान की थी। इन्होंने बाल्यकाल में किस प्रकार अध्ययन किया, इसका वर्णन नहीं मिलता परन्तु उन्होंने चारों वेद पढ़ने वाले की परीक्षा ली थी।

राम महर्षि वसिष्ठ के गर्भ में मर्यादा पुरुषोत्तम बने थे, कृष्ण आचार्य संदीपन के गर्भ में योगेश्वर कृष्ण बने थे। दयानन्द जगद्गुरु विरजानन्द के गर्भ में महर्षि दयानन्द बने थे।

आचार्य बालक को किस प्रकार की शिक्षा प्रदान करे इस सम्बन्ध में वेद का आदेश है—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुत गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ (अ० ११।५।१)

वेद विद्या में पारङ्गत आचार्य विद्याभिलाषी ब्रह्मचारी को अपने आकर्षण और प्रभाव में रखता है। आचार्य उस ब्रह्मचारी को तीन रात्रि तक उदर के समान सुरक्षित अपने आश्रम में रखता है। ब्रह्मचारी जब तीन रात्रि तक आचार्य के आश्रम रूपी उदर में रह कर बाहर आता है तो उसे देखने के लिए देवता लोग वहाँ जाते हैं।

तीन रात्रियाँ क्या हैं? संसार में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकार के दुःख हैं। इन दुःखों को दूर करने के लिए और अपने आपको ज्ञान के आलोक से आलोकित करने के लिए वह इनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने तक गुरुकुल में रहता था। अब क्रम से इन पर प्रकाश डाला जाता है:—

कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में विज्ञान नहीं था। परन्तु यह भूल है। प्राचीन काल का विज्ञान अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। युद्ध में इस प्रकार के अस्त्र शस्त्र बन चुके थे जो आज के वैज्ञानिक अभी तक नहीं बना पाये हैं। महाभारत में विद्युत् अस्त्र का वर्णन आता है जो एक पल में कौरवों की ११ अक्षौहिणी सेना को समाप्त कर सकता था। ब्रह्मास्त्र आदि भयंकरतम आयुधों की शिक्षा अर्जुन को दी गई थी जिससे पृथ्वी तक को भस्म करने की शक्ति थी, यह सारा विज्ञान वहाँ सिखाया जाता था।

सामाजिक विज्ञान में नागरिक शास्त्र की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। शरीर क्या है? मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? मन क्या है, बुद्धि क्या है, आत्मा क्या है परमात्मा क्या है? इस सब की शिक्षा गुरुकुल में ही दी जाती थी।

जैसा पहले लिखा जा चुका है आज तो पुस्तकों को घोट घाटकर परीक्षा पास करते हैं परन्तु यह शिक्षा का उद्देश्य नहीं। शिक्षा का उद्देश्य है चरित्र निर्माण। जैसा कि एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी कहा है:—

Formation of charactor is the chief object of life. (Herbert Spenser)

परन्तु आज सब से अधिक उदासीनता इसी ओर है। चरित्र निर्माण की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। विद्या आचरण में नहीं आती और जो विद्या आचरण में न आये वह व्यर्थ है। लिखा है:—

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति
॥ सुश्रुत ४।४ ॥

जिस प्रकार गधा चन्दन के बोझ को ढोता है परन्तु वह उसके गुणादि को नहीं जानता, इसी प्रकार जो बहुत से शास्त्रों को पढ़ता है परन्तु न उनके अर्थ जानता है और न तदनुसार आचरण करता है वह गधे की भान्ति भार ही ढोता है।

इसी बात को एक उर्दू के कवि ने कहा है :—

जिस आदमी में न हो अमल और किताबों से हो लदा।
जफर हम उस आदमी को तसब्बर बैल करते हैं॥

आज बच्चों के ऊपर किताबों का भार लदा हुआ है।

आज चरित्र निर्माण के स्थान पर चरित्र का पतन हो रहा है। आज के वातावरण में शिक्षित विद्यार्थी अपने पिता से धन मंगाते हैं विद्यालय का शुल्क देने के लिए, पुस्तकें क्रय करने के लिए, परन्तु सिनेमा देखकर माता पिता के गाढे पसीने की कमाई को स्वाहा करते हैं। वे गन्दी फिल्मों को देखते हैं। पाठ्यक्रम और पुस्तकों की पढ़ाई याद नहीं, परन्तु सुरैय्या, निरूपा और दलीपकुमार की पूर्ण जानकारी है। यह आज की उद्देश्य-हीन शिक्षा का ही फल है कि आज का युवक सिनेमा रूपी बूचड़ खानों में जाकर अपने स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शील, सदाचार और समय को नष्ट कर रहे हैं।

शिक्षा का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द Education है। Education शब्द लेटिन भाषा के Educo धातु से बना है। इस धातु में दो शब्द हैं, 'E' means out और 'Duco' to draw out from within इस प्रकार Education का अर्थ भीतर से बाहर खींचना है। परन्तु आज बात उल्टी है, आज शिक्षा बाहर से भीतर ठूंसी जा रही है अन्दर जो ज्ञान है उसे जागृत नहीं किया जाता।

आज जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उन्हें पढ़ कर जाति, देश, धर्म, माता, पिता और आचार्य के प्रति श्रद्धा समाप्त हो जाती है। तभी तो एक कवि ने कहा है :—

हम ऐसी कुल किताबें काबिले जब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को खब्ती समझते हैं॥

आज यदि कुमारियों की शिक्षा को देखें तो वहाँ भी निराशा ही निराशा दृष्टिगोचर होती है। पुरुष और स्त्री का कार्यक्षेत्र भिन्न है। उनकी बनावट चाल ढाल सब अलग है, अतः कुमार और कुमारियों की शिक्षा भी उनके अनुरूप होनी चाहिये। परन्तु बात सर्वथा उल्टी है। यहाँ जो विषय कुमारों को पढ़ाये जाते हैं वे ही विषय कुमारियों को पढ़ाये जाते हैं। वेद ने कुमारियों की शिक्षा के लिए आदेश दिया है—

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शत-शारदाय। गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ (अ० १४।२।७५)

हे देवी ! उत्तम ज्ञानयुक्त होकर जागरूक रह। सौ वर्ष के दीर्घ जीवन के लिए जागती रह। गृह-स्वामिनी बन कर पति-गृह को जा। प्रभु तेरी आयु दीर्घ बनावें।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि देवियों के लिए आयुर्वेद की शिक्षा दी जाय यदि उन्हें आयुर्वेद की शिक्षा नहीं मिलेगी तो वे अपनी आयु को १०० वर्ष लम्बी नहीं कर सकतीं। शरीर में क्या क्या तत्त्व हैं, किसकी कैसी प्रकृति है, किस प्रकार का भोजन मिलना चाहिए। यह आयुर्वेद के ज्ञान से ही ज्ञात होगा।

कुमारियों को गृहपत्नी बनना है अतः उन्हें गृहस्वामिनी बनने की योग्यता उत्पन्न करनी चाहिए। नारी का कार्य-क्षेत्र घर है। यदि वह नौकरी पर चली जायेगी तो धाय बच्चों का निर्माण नहीं कर सकती।

कन्याओं की शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को लक्ष्य कर महर्षि दयानन्द जी ने यजुर्वेद भाष्य में ठीक ही लिखा है कि :—

'माता पिताओं को चाहिए कि अपनी कन्याओं

को व्याकरणादि शास्त्र पढ़ावें जिससे कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भस्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अच्छी सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें।"

प्राचीनकाल में कुमारियाँ ब्रह्मचर्य काल में शृंगार नहीं करती थीं विवाह के समय से शृङ्गार करने का अधिकार प्राप्त होता था। परन्तु आज नवयुवतियाँ नये नये शृंगार करती हैं। गृह देवी बनने की अपेक्षा लेडियाँ बन रही हैं और इसका कारण भी आज की दूषित और उद्देश्यहीन शिक्षा है। इस उद्देश्यहीनता को देखकर ही एक उर्दू कवि के हृदय से ये शब्द निकल पड़े थे :—

तालीम औरतों की होनी तो चाहिए जरूर।
मगर खातून खाना हों वे सभा की परी न हों॥

रूस, इङ्गलैण्ड, अमेरिका आदि देशों के शिक्षा उद्देश्य विषयक विचार दूसरे हैं और भारतीयों का एक सर्वथा नया दृष्टिकोण है। भारत के प्राचीन ऋषियों, मुनियों, योगियों, यतियों और शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार :—

सा विद्या या विमुक्तये।

विद्या वही है जो मोक्ष के द्वार तक पहुँचाए।

आज की शिक्षा प्रणाली क्लर्क उत्पन्न करने वाली शिक्षा असन्तोष जनक ही नहीं किन्तु व्यर्थ भी है। आज की शिक्षा में विनय, शालीनता और धार्मिकता का सर्वथा अभाव है। केवल मात्र साक्षरता शिक्षा का उद्देश्य नहीं है यदि साक्षरता के अतिरिक्त विद्या का और उद्देश्य नहीं तो आप जीवन के स्वामी बनने के स्थान पर राक्षस बन जायेंगे किसी ने ठीक ही कहा है :—

साक्षरा विपरीतत्वे—भवन्ति राक्षसा ध्रुवम्॥

यदि हम आध्यात्मिकता की अवहेलना करेंगे तो हम राक्षस बन जायेंगे।

आज की हमारी शिक्षा अंग्रेजी ढङ्ग पर चल रही है, जिस के फलस्वरूप भ्रष्टाचार, अनैतिकता और चरित्रहीनता बढ़ रही है। हमारी शिक्षा का एक बहुत बड़ा दोष है—धार्मिक शिक्षा का अभाव। आज सैकूलर स्टेट की बातें बना कर स्कूलों से धार्मिक शिक्षा को समाप्त किया जा रहा है। सैकूलर स्टेट की दुहाई देने वालों को राजगोपालाचार्य के निम्नलिखित शब्दों पर ध्यान देना चहिए :—

"धर्म की शिक्षा उसे जीवन के प्रारम्भ काल से मिलनी चाहिए। इस दृष्टि से स्कूलों और कालिजों में धार्मिक शिक्षा पर जितने प्रतिबन्ध हैं उन्हें तुरन्त हटा देना चाहिए। भारतीय संविधान की धारा २८ इस बात की धमकी देती है कि जिन स्कूलों में धार्मिक शिक्षा दी जायेगी उन्हें सरकारी सहायता नहीं मिलेगी। यह धमकी अनुचित है और इसलिए अगर संविधान में संशोधन करना पड़े तो उसमें संकोच न होना चाहिए।

इङ्गलैण्ड के स्कूलों में पढ़ाई आरम्भ होने से पहले प्रतिदिन कैथोलिक धर्म की प्रार्थनाएँ होना आवश्यक है। यह नहीं कि उस देश में प्रोटेस्टैण्ट अथवा दूसरे मतावलम्बी नहीं रहते पर उन कैथोलिक प्रार्थनाओं में सम्मिलित सब को होना पड़ता है। जब इङ्गलैण्ड जैसे आधुनिक देश में यह सब चल सकता है, तब भारत में यह असम्भव क्यों माना जाये।"

जैसा कि राजा जी के शब्दों से स्पष्ट है शिक्षा को इस के वास्तविक उद्देश्यों की ओर ले जाने के लिए इस में आमूल चूल परिवर्तन की महती आवश्यकता है। इस शिक्षा में उचित संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करके हम शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य मनुष्य की सर्वाङ्गीण—शारीरिक, आत्मिक, मानसिक, बौद्धिक उन्नति की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

॥ इति ॥

—❀❀—

साहित्य समीक्षा

वेदप्रवचन, लेखक श्री पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० पृष्ठ संख्या ४९६ मूल्य ५)

प्रश्नोपनिषद्, लेखक डा० दीवानचन्द जी एम० ए० पृष्ठ संख्या १०२ मूल्य १)

वैदिक प्रैयर्स, (अंग्रेजी) संग्रहकर्ता श्री कर्मनारायण कपूर पृष्ठ संख्या ८०, मूल्य १)

सभी ग्रन्थों के प्रकाशक—दयानन्द ब्रह्ममहाविद्यालय, हिसार।

वेदप्रवचन, जैसा कि नाम से ही प्रकट है वेद-मन्त्रों की व्याख्या है। वर्ष में ५२ सप्ताह होते हैं लेखक महोदय ने प्रति सप्ताह के लिए एक मन्त्र के हिसाब से ५२ मन्त्रों की व्याख्या की है। अन्त में एक अतिरिक्त मन्त्र देकर कुल संख्या ५३ कर दी गई है।

जिन समाजों में वर्षों उपदेशक नहीं पहुंचते उन समाजों के साप्ताहिक सत्संगों में इन मन्त्रों का व्याख्यान सुनाया जा सकता है। सुबोध व्यक्ति इन मन्त्रों के आधार पर एक एक घण्टे का व्याख्यान दे सकता है। पुस्तक के प्रणयन में सभी प्रकार के व्यक्तियों के स्तर का ध्यान रक्खा गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में "व्याख्या प्रायः सरल है परन्तु कहीं कहीं जटिल युक्तियाँ भी मिलेंगी और व्याकरण सम्बन्धी कठिन व्युत्पत्तियाँ भी।"

वेद प्रेमी पाठकों को पुस्तक रोचक और ज्ञानवर्धक लगेगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हैं।

प्रश्नोपनिषद् भी यथानाम प्रश्नोपनिषद् की व्याख्या है। प्रश्नोपनिषद् में छः प्रश्न हैं। डा० महोदय ने प्रश्नों के अनुसार पुस्तक को छः अध्यायों में विभक्त किया है। यथा—(१) रचना और उसके मूल तत्त्व (२) जगत् की रूप रेखा ( ) प्राण के विविध रूप (४) चेतन और चेतना (५) धर्म का तत्त्व तथा (६) पुरुष और उसकी १६ कलाएँ। विद्वान् लेखक ने प्रश्नोपनिषद् के गूढ़तम रहस्यों के उद्घाटन का सफल प्रयास किया है। पुस्तक में यत्र तत्र पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का भी उल्लेख किया गया है। भाषा सरस और सरल है। कागज और छपाई आदि उत्तम है।

Vedic Prayers यह पुस्तक आङ्गल भाषा में है। पुस्तक को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पुस्तक का नामकरण ठीक नहीं है। परन्तु जैसे-जैसे इस पुस्तक को पढ़ते हुए हम अन्त में पहुँचते हैं यह भ्रान्ति स्वयमेव दूर हो जाती है।

पुस्तक ५ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय तो भूमिका मात्र है। दूसरे अध्याय में ईश्वर के सम्बन्ध में, तीसरे अध्याय में जीवात्मा और चौथे अध्याय में जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में वैदिक और पाश्चात्य विद्वानों के विचार दिए गए हैं। पुस्तक में आत्मा, परमात्मा और प्रार्थना के सम्बन्ध में वेद के अतिरिक्त सैकड़ों ऋषियों, मुनियों, विचारकों, चिन्तकों, सुधारकों, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के उद्धरण दिये गये हैं। ईश्वर और आत्मा के सम्बन्ध में इतने उद्धरण पाठकों को शायद ही कहीं मिलें। यह पुस्तक तो प्रत्येक परिवार और पुस्तकालय में होनी ही चाहिए। हम इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार चाहते हैं। स्वयं पढ़ें और अन्यों को पढ़ाएं।

इन तीनों उपयोगी ग्रन्थों के लेखन और प्रकाशन के लिए मैं लेखकों और प्रकाशक को बधाई देता हूँ। (विद्यार्थी)

अमृत बिन्दु

जब यौवन का सारा सौन्दर्य पिघल जाता है और शरीर में एक ढीलापन-सा आ जाता है, जब कनपटियों के आसपास बाल सफेद होने लगते हैं, जब ठोड़ी का मांस अपनी जगह छोड़ने लगता है तो समझ लीजिए कि बुढ़ापा आपका पीछा कर रहा है। (महेन्द्रनाथ)

—※※—

सम्पादकीय टिप्पणियां

वेदप्रकाश १२वें वर्ष में

परम पिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा और महती कृपा से तथा 'वेद प्रकाश' परिवार के सदस्यों के सहयोग एवं सौहार्द से वेदप्रकाश' इस अंक के साथ अपने जीवन के ११ वर्ष पूर्ण कर रहा है। इन वर्षों में 'वेद प्रकाश' ने पाठकों की जो सेवा की है मैं समझता हूँ पाठक उससे भली प्रकार परिचित हैं। अपने इस अल्पकाल में 'वेद-प्रकाश' ने पाठकों को 'दयानन्द ग्रन्थ संग्रह,' 'वाल्मीकि रामायण', 'बृहदारण्यक कथा माला' 'महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत', 'गुरुदत्त लेखा-वली', 'वैदिक व्याख्यान माला', 'वैदिक धर्म' (वेदांक) आदि दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण अंक दिये हैं। इन बृहद् अंकों के अतिरिक्त 'प्रार्थना अंक', 'शिव संकल्प अंक', 'दिव्य दयानन्द अंक', 'विष्णु-पुराण आलोचना अंक', 'कुछ करो' कुछ बनो (बालक अंक), 'राधा स्वामी अंक', 'ब्रह्मकुमारी अंक', 'हंस पोल प्रकाश अंक' आदि लघु परन्तु अति महत्त्वपूर्ण और उपयोगी अंक दिए हैं, जिनकी पाठकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। सभी अंक वदिक धर्म के प्रचार और प्रसार में सहायक हुए हैं।

हम ने अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न किया है कि वेद प्रकाश में जो भी लेख दिया जाये वह उपयोगी हो। ११ वें वर्ष में 'आर्य समाज रक्षा प्रचार योजना' के नाम से एक लेख माला छपती रही। पण्डित भगवद्दत्त जी जैसे मूर्धन्य विद्वानों ने उसकी सराहना की है। इसी लेख माला के सम्बन्ध में बनूड़ से श्री विजय शास्त्री जी लिखते हैं—

'आपने अपने पत्र 'वेद प्रकाश' में 'आर्यसमाज रक्षा योजना' शीर्षक से जो पिछले अंकों में लिखा, वह आपके आर्यसमाज के प्रति हित, तदर्थ स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता, एवं योग्यता का परिचय दे रहा है। साथ ही जो योजना आपने दी है उससे आपकी कार्यकुशलता का पूर्णतया पता चलता है। मैं आपकी कार्यप्रणाली को आर्यसमाज की रक्षा के लिए परमोपयोगी समझता हूँ।"

इन पंक्तियों में पाठकों को आत्मश्लाघा की गन्ध दिखाई देगी। वस्तुतः यह प्रशंसा मेरी नहीं है। शास्त्री जी की भांति पता नहीं कितने ही व्यक्तियों ने इस लेखमाला को मेरे द्वारा लिखत समझा है। वस्तुतः यह लेखमाला मेरे एक मित्र की लिखी हुई थी। उनका नाम जानबूझ कर गुप्त रक्खा गया है। अस्तु—

अगस्त १९६३ में 'वेद प्रकाश' अपने जीवन के १२वें वर्ष का बृहद् विशेषांक गत वर्ष की भाँति **वेदांक (वैदिक उदात्त भावनाएं)** होगा। मैं समझता हूं वैदिक साहित्य में यह एक नूतन वृद्धि होगी। अङ्क में वेद की अति महान्, गहन गम्भीर और उच्च भावनाओं का समावेश होगा। इसका रूप विवरण आपको अन्यत्र देखने को मिलेगा।

इस महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्क के अतिरिक्त अपनी परम्परा के अनुसार हम कुछ लघु अङ्क भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करेंगे जिनकी रूप रेखा इस प्रकार होगी—

सुख-प्राप्ति अङ्क:—इसके लेखक हैं श्री पण्डित यशपाल जी शास्त्री। संसार में प्रत्येक व्यक्ति सुख और शांति चाहता है। वह सुख और शांति कैसे प्राप्त हो सकती है यही इस अङ्क का विषय है। यह विशेषाङ्क अक्तूबर में पाठकों को मिलेगा।

बहाई मत अङ्क:—ईसाइयों की भांति मध्य-प्रदेश में बहाई मत वाले धर्म परिवर्तन में लगे हैं। पैसे के बल पर ये लोग दलित वर्ग को अपने चुंगल में फंसा कर उनका मत परिवर्तन करते हैं। इस अङ्क में इनके काले कारनामों का भण्डा फोड़ होगा।

पुराण आलोचना अङ्कः—हमें अत्यन्त खेद है कि गत वर्ष हम पुराण आलोचना न दे सके। यद्यपि पुस्तक की पाण्डुलिपि हमारे पास आ गई थी परन्तु समालोचक महोदय ने समालोचना बहुत लम्बी की थी। इस बार हम एक पुराण की आलोचना देंगे। यह कौन से पुराण की आलोचना होगी यह कुछ समय पश्चात् घोषित करेंगे।

विशेष लेख मालाः—आगामी वर्ष में हम दो विशेष लेख मालाएँ शुरू करेंगे। एक 'ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना' लेख माला होगी जो इसी अङ्क से आरम्भ हो गई है और प्रत्येक साधारण अङ्क में निकलती रहेगी। दूसरी लेख माला में विभिन्न विद्वानों के कुछ प्राचीन लेख होंगे जिनको पढ़ कर निश्चित रूप से पाठकों की ज्ञानवृद्धि होगी। यह लेख माला सितम्बर से प्रारम्भ होगी।

यदि आप उत्तम उत्तम लेख स्वयं पढ़ना चाहते हैं, अपने इष्ट मित्रों और परिवारजनों को पढ़ाना चाहते हैं तो आज ही अपना वार्षिक शुल्क ३) भेज दें। पत्र सीमित संख्या में ही छपता है यदि जुलाई के अन्त तक आपका शुल्क प्राप्त नहीं हुआ तो फिर पछताना पड़ेगा। आज का काम कल पर मत छोड़ो कल नहीं आज ही और आज नहीं अभी पत्र में रखे मनीआर्डर फार्म को भरके भेज दें।

"वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड" मित्रवर आचार्य शिवपूजन सिंह जी पथिक द्वारा श्री दीनानाथ शास्त्री के प्रत्युत्तर में लिखित पुस्तक प्रेस में प्रकाशनार्थ दे दी है। आशा है अगस्त तक यह पुस्तक भी पाठकों को पहुंच जायेगी। मेरी अपील पर अब तक कुछ प्राप्त हुआ है। पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए अभी २००) की और आवश्यकता है। लगभग २५० पृष्ठ की पुस्तक डाक व्यय सहित १) में है। प्रकाशित होने पर इसका मूल्य २) होगा। जो महानुभाव लेना चाहें वे इसका एक रुपया भी 'वेद प्रकाश' के साथ भेज सकते हैं।

सार्वदेशिक सभा का चुनावः—१६ जून १९६३ को सार्व देशिक सभा का चुनाव सानन्द सम्पन्न हुआ। आगामी वर्ष के लिए निम्न पदाधिकारी चुने गये—

प्रधान— स्वामी ध्रुवानन्द जी

उपप्रधान—श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री एम. पी.

,, श्री डा० डी० राम जी

,, श्री वीरेन्द्र जी एम० ए०

मन्त्री— श्री राम गोपाल जी शालवाले

उपमन्त्री—श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी

,, श्री वेणी भाई जी

कोषाध्यक्ष—श्री ओम्प्रकाश जी कपड़े वाले

पुस्तकाध्यक्ष–श्रीमती राम प्यारी जी

यदि मैं यह कहूँ कि चुनाव बहुत उत्तम हुआ है तो हो सकता है कुछ व्यक्ति मुझे भी किसी गुट का व्यक्ति समझें परन्तु यह एक तथ्य है कि अन्य वर्षों की उपेक्षा इस वर्ष का चुनाव अधिक शानदार है। यह सब कुछ होते हुए भी मैं नवनिर्वाचित अधिकारियों को अभी बधाई नहीं दूंगा। इन सभी अधिकारियों को धन्यवाद और बधाई तो मैं तब दूंगा जब ये अधिकारी इस वर्ष कुछ काम करके दिखायेंगे। वैसे तो अधिकारी स्वयं सोचेंगे कि हमें क्या करना है परन्तु दो तीन बातों की ओर मुझे भी कुछ संकेत करना है—

उपदेशक विद्यालयः—देहली में एक उपदेशक विद्यालय की महती आवश्यकता है यहाँ पौराणिकों के कई संस्कृत विद्यालय हैं, जैनियों का भी एक संस्कृत विद्यालय है परन्तु देहली में १३५ समाजों के होते हुए यहां उपदेक विद्यालय का न होना अखरता है : मैं समझता हूँ यह कार्य इसी वर्ष में और सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में आरम्भ हो जाना चाहिए।

साहित्य प्रकाशनः—आज के युग में साहित्य का क्या स्थान है इससे सभी परिचित हैं। आर्य समाज के आरम्भिक काल में खूब साहित्य लिखा गया परन्तु इस समय उसमें कुछ अवरोध आ गया है। आज पौराणिक आर्य समाज के विरुद्ध जो साहित्य

लिख रहे हैं उसका युक्तियुक्त, शिष्टतापूर्ण और मुँह तोड़ उत्तर दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर ठोस वैदिक साहित्य का निर्माण होना चाहिए। दक्षिणी भारत और विदेशों में प्रचार के लिए उत्कृष्ट कोटि का अंग्रेजी साहित्य भी सभा को प्रकाशित कराना चाहिए।

मध्य प्रदेश में बहाइयों के कुचक्र को विफल करने के लिए उन से डट कर मुकाबला करना चाहिए।

यदि ये और इस प्रकार के अन्य कार्यों को अधिकारियों ने अपने हाथ में लिया तो निश्चित ही वे जनता के श्रद्धाभाजन और धन्यवाद के पात्र बन सकेंगे।

नमस्ते और बीड़ी:—नया बांस देहली से मूलचन्द मानिक चन्द जैन ने '**नमस्ते बीड़ी**'' चला कर अपने घोर नैतिक पतन का परिचय दिया है। नमस्ते वैदिक अभिवादन है उसे बीड़ी के साथ जोड़ कर आपने अति निन्दित काम किया है। जिस आर्य ने 'नमस्ते बीड़ी' देखी होगी उसके हृदय में ठेस लगी होगी। यदि कोई व्यक्ति या कम्पनी '**जय जितेन्द्र बीड़ी**', 'तीर्थंकर तम्बाकू', 'अर्हन्त सिगरेट', 'महावीर मांस' नाम से व्यापार करे तो आपको कैसे लगे?

बीड़ी के लेबल पर दो बच्चों का फोटो देकर भी आपने अनर्थ ही किया है। क्या आप चाहते हैं कि छोटे छोटे बच्चे बीड़ी पी पीकर अपने कलेजों को छलनी कर लें। आपका यह कार्य अतिगर्हित और आर्य जनों से निन्दनीय है। कृपया इस घोर अपराध के लिए आप हार्दिक पाश्चाताप करते हुए इस नमस्ते बीड़ी को शीघ्र बन्द कीजिए और इसके लेबिल, बोर्ड आदि को बन्द करा दीजिए। स्मरण रखिये आपके इस कुकृत्य का परिणाम भयङ्कर हो सकता है।

"विद्यार्थी"

—❀❀—

दुःखद वियोग

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, अनेक भाषाओं के ज्ञाता, न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी प्रशंसित महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त डाक्टर रघुवीर जी एम० ए० मोटर दुर्घटनाग्रस्त होकर हम से सदा के लिये पृथक् हो गये। आप की मृत्यु से न केवल आर्य जगत् की अपितु देश की बहुत बड़ी हानि हुई है।

अभी डा० महोदय की मृत्यु को भुला भी न पाये थे कि २ जून १९६३ को गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक, आचार्य रामदेव जी के सुपुत्र श्री पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार भी परलोक सिधार गये। आप वर्षों प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के उपदेशक रहे, वेद प्रचार अधिष्ठाता भी रहे। कुछ समय से आप देहरादून कन्या गुरुकुल में अधिष्ठाता थे। आपके निधन से आर्य-जगत् को बड़ा आघात लगा है।

अभी इस आघात से सम्भले भी नहीं थे कि श्री पं० द्विजेन्द्र नाथ जी शास्त्री (मेरठ) भी महाप्रयाण कर गये। आप गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक थे आप की योग्यता के कारण गुरुकुल कांगड़ी ने आपको विद्यामार्तण्ड की उपाधि प्रदान की थी। पण्डित जी ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

प्रभु दिवङ्गत आत्माओं को उनके कर्मों के अनुसार सद्गति प्रदान करे और उनके शोक सन्तप्त परिवारों को इस महान् क्षति को सहने की सामर्थ्य प्रदान करे।

हमारी प्रचारित पुस्तकें

महर्षि दयानन्द कृत

ऋग्वेद भाष्य ४ व ५ वां छोड़कर ७ भाग	७०.५०
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण ४ भाग	३४.००
यजुर्वेद भाषाभाष्य २ भाग	१३.००
अष्टाध्यायीभाष्य २ भाग	१३.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	२.५०
संस्कार विधि	१.२५
सत्यार्थ प्रकाश	१२.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

ऋग्वेद भाष्य सम्पूर्ण	५६.००
यजुर्वेद भाष्य	१६.००
अथर्ववेद भाष्य	३२.००
सामवेद भाष्य	८.००
क्या वेद में इतिहास है ?	२.५०

आचार्य प्रियव्रत कृत

वरुण की नौका	६.००
वेद का राष्ट्रीय गीत	५.००
मेरा धर्म	७.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	५.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

एकादशोपनिषद	१२.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	४.५०
आर्य संस्कृति के मूलतत्व	४.००

पं० उदयवीर जी शास्त्री

सांख्य दर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	१६.००
सांख्य दर्शन	८.००

पं० युधिष्ठिर मीमांसक कृत

व्याकरण शास्त्र का इतिहास दो भाग	२०.००
क्षीर तरंगिणी	१२.००
महर्षि के ग्रन्थों का इतिहास	६.००
वैदिक छन्दोमीमांसा	४.५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

आस्तिकवाद	५.००
अद्वैतवाद	५.००
शांकरभाष्यालोचन	५.००
मीमांसा प्रदीप	६.००
वेद प्रवचन	५.००
जीवन चक्र	५.००
मनुस्मृति	५.००
अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश	१०.००
हम क्या खावे घास या मांस	१.५०
भगवत कथा	१.२५
शंकर रामानुज दयानन्द	०.३७
राममोहनराय केशवचन्द्र सेन दयानन्द	०.६२
ट्रेक्ट माला	५.००
कर्मफल सिद्धान्त	१.००
सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रह	१.००

महात्मा प्रभु आश्रित कृत

गायत्री रहस्य	१.७५
कर्मभोग चक्र	१.७५
गृहस्थसुधार	१.५०
गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	०.५०
वर घर की खोज	०.७५
सन्ध्यासोपान	०.७५
यज्ञ रहस्य दो भाग	१.४०
मनोबल	०.६२
प्रभु का स्वरूप	१.२५
कायाकल्प	१.२५
दृष्टान्त मुक्तावलि	२.००
जीवन यज्ञ	०.७५
मन्त्रयोग चार भाग	३,५०
यज्ञ पद्धतियां	१.००

पं० भगवद्दत्त कृत

भारतवर्ष का इति० दो भाग	३८.००
वेद विद्या निदर्शन	१२.५०
वैदिक वांगमय का इतिहास	१०.००
महर्षि के पत्र और विज्ञापन	७.००
आर्य राजनीति के तत्व	०.३०

पं० तुलसीराम स्वामी कृत

मनुस्मृति	५.००
न्याय दर्शन	२.००
सांख्य दर्शन	२.५०
वेदान्त दर्शन	२.००
वैशेषिक दर्शन	२.५०
योग दर्शन	१.५०

स्वामी दर्शनानन्द कृत

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह दो भाग	५.००
न्याय दर्शन	३.२५
वेदान्त	४.५०
सांख्य	२.००
वैशेषिक	३.५०
कथा पचीसी	१.००

महात्मा नारायण स्वामी कृत

कर्तव्य दर्पण	१.२५
सन्ध्या रहस्य	०.३७
यज्ञ रहस्य	०.३७
९ उपनिषदें	७.६९
विद्यार्थी जीवन रहस्य	०.६२
आर्य समाज क्या है	०.५०
मृत्यु परलोक	१.००
योग रहस्य	१.२५

कविराज पं० जयगोपाल कृत

कवितामृत सत्यार्थ प्रकाश मूल्य १०) से घटाकर ८) में दिया जा रहा है।

विभिन्न लेखकों की पुस्तकें

संस्कार चन्द्रिका दो भाग	७.००
वेदों का यथार्थ स्वरूप	६.५०
वैदिक गीता	२.५०
सन्मार्ग दर्शन	४.००
वैदिक इतिहास विमर्श	८.००
नीर क्षीर विवेक	२.००
दयानन्द सिद्धान्त प्रकाश	२.५०
आर्यपर्वपद्धति	१.२५
हनुमानादि वानर थे या मनुष्य	२.००
जीवित पितर	२.००
आप सफल कैसे हो ?	२.२५
जो चाहे सो कैसे पाये ?	२.२५
आप क्या करें ?	२.२५
हंसते २ कैसे जीवें ?	३.००

स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत

वैदिक वन्दन	५.००
बृहदविमानशास्त्र	१०.००
बृहदारण्यक कथा माला	३.००
दार्शनिक अध्यात्मतत्त्व	१.५०
बालजीवन सोपान	१.२५
आर्ष योग प्रदीपिका	३.५०
वेदों में दो वैज्ञानिक शक्तियाँ	०.७५
उपनिषदसुधार	२.२५

डा० राधाकृष्णन कृत

भगवद्गीता	१२.००
धर्म और समाज	८.००
पूर्व और पश्चिम	५.००
सत्य की ओर	५.००
धर्म तुलनात्मक	५.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

हमारे कुछ चुने हुए उपयोगी प्रकाशन

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

[लेखक—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती]

[इतने मोटे अक्षरों में]

यह महर्षि दयानन्द सरस्वती का सम्पूर्ण प्रामाणिक जीवन चरित्र है। यह इतनी सुललित काव्यमयी भाष्य में लिखा गया है कि पाठक मन्त्र मुग्ध हो पढ़ता रहता है और उसके हृदय पर महर्षि की छाप अनायास ही लग जाती है।

यह पुस्तक दैनिक पाठ, कथा रूप में सत्सङ्गों में पढ़ कर सुनाने के लिए भी अद्वितीय है। ६०० पृष्ठों की बड़ी साइज की सुनहरी जिल्द सहित केवल १२) में।

ब्रह्मचारी जगदीश विद्यार्थी कृत

प्रेरणाप्रद पुस्तकें

दिव्य दयानन्द	१)२५
कुछ करो कुछ बनो	१)२५
ऋग्वेद शतक	१)
यजुर्वेद शतक	१)
सामवेद शतक	१)
अथर्ववेद शतक	१)
ब्रह्मकुमारी मत दर्पण	)३७
राधास्वामी मत दर्पण	)२५
हंस पोल प्रकाश	)२५
अनमोल मोती	)३५
भगवान् कृष्ण	)३०
विष्णु पुराण की अलोचना	)४०

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

[डा० देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री एम० ए०]

अष्टाध्यायी के सूत्रों की हिन्दी व्याख्या। आरम्भ में कई हिन्दी व्याख्यान अष्टाध्यायी को पढ़ने आदि के सम्बन्ध में निर्देश रूप में है। आज ही मंगाकर संस्कृत के विद्वान् बने। मूल्य ८)

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदायक पुस्तकें

प्रभुदर्शन	२)५०
तत्त्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्द गायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)[illegible]
शंकराचार्य और दयानन्द	)५०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान	१)
उपनिषदों का सन्देश	१)२५
सत्यनारायण व्रत कथा	)६२

शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

दो सनातन सत्ताएं	१)
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	)३५
पूजा–क्या, क्यों और कैसे ?	)३७

उपदेशकों के लिए आवश्यक पुस्तकें

वैदिक धर्म	स्वामी वेदानन्द	२)
व्याख्यानमाला	स्वामी अच्युत्यानन्द	२)५०
वैदिक सिद्धान्त व्याख्यानमाला	नित्यानन्द	२)
,, सिद्धान्तों पर मित्रों को बातें	सिद्धगोपाल	१)२५

सन्ध्या विनय

प्रो. नित्यानन्द वेदालंकार एम० ए०

सन्ध्या विनय में सन्ध्या के प्रत्येक मन्त्र का शब्दार्थ तथा विधि देकर उसी मन्त्र के भाव की एक एक विनय (प्रार्थना) लिखी है। सभी विनय भावपूर्ण और भक्ति में लीन करने में समर्थ है। सारी पुस्तक कला पूर्ण दो रंगों में मुद्रित है। १९२ पृष्ठ की पुस्तक केवल १)५०

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, देहली-६

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

ृषि दयानन्द सरस्वती कृत
ानन्द ग्रन्थ संग्रह ४)५०
त्मकथा)४०
न्तव्यामन्तव्य प्रकाश)१०
महायज्ञ विधि)३०
ान्तिध्वान्त निवारण)१९
द विरुद्ध मत खंडन)३७
क्षापत्रीध्वान्त निवारण)३७
विनय)५०
के प्रथम सूक्तका भाष्य)२५
देश्यरत्न माला)१०
त निवारण)३१
हार भानु)२५
मोच्छेदन)२५
ा. स. के नियमोपनियम)१२
ाकरुणानिधि)६
ाशी शास्त्रार्थ)२०
त्यधर्म विचार)२५
गली शास्त्रार्थ)२५

उपर्युक्त सभी पुस्तकों में र्षि ने उन सभी शंकाओं व क्षेपों के उत्तर दिये हैं। जो २ मये की जाती थीं। इन पुस्तकों अध्ययन के अभाव में लगभग वैसे ही प्रश्न आज उठते हैं जो कि इनके पढ़ने से अवश्यमेव निर्मूल सिद्ध होंगे।

पं० आर्य मुनि कृत भाष्य

ईश)३७ केन)४० कठ १)२५ प्रश्न)७५ मुण्डक)६२ माण्डूक्य)३१ ऐतरेय)५० तैत्तिरीय १)२५

प्रो. सुरेशचन्द्र वेदालंकार कृत

प्रार्थना मंत्र—प्रार्थना मन्त्रों की सरल सार गर्भित व्याख्या १)

मन की अपार शक्ति—शिव संकल्प मस्तु सूक्त की मनोहारी व्याख्या १)२५

यजुर्वेद मूल—बड़ा साइज, बढ़िया कागज, आफसेट की बढ़िया छपाई, प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ऋषि देवता छन्द का निर्देश अन्त में अनुक्रमणिका पृष्ठ संख्या २७५ मूल्य सजिल्द २)५० दस प्रतियाँ २२) में

बर्नियर की भारत यात्रा ३)
भोज प्रबन्ध १)५०
सत्यार्थप्रकाश शंकासमाधान)२५
महर्षिदयानन्द)७५
स्वामी श्रद्धानन्द)३७

धार्मिक चित्र तथा मोटोज

महर्षि जीवनघटना १५×२०)५०
ऋषि दयानन्द कुर्सी पर रंगीन २०×३० १)२५
ऋषि दयानन्द कुर्सी पर एकरंगा २०×३० १)
स्वामी श्रद्धानन्द ,, १)
महात्मा हंसराज ,, १)
गुरु विरजानन्द ,, १)
पं० लेखराम ,, १)
पं० गुरुदत्त ,, १)
स्वामी दर्शनानन्द ,, १)
लाला लाजपतराय १५×२०)५०
स्वा. दयानन्द रंगीन ,,)५०
महर्षि की महत्ता के विषय में अरविन्द घोष का कथन दो रंगा २०×३०)५०
मोटोज साइज ११×१४ प्र.)२५
ओ३म्—नमस्ते
स्वागतम्—गायत्रीमन्त्र
मोटोज साइज ११×१४ प्र.)१९
ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र दीर्घ जीवन की प्रार्थना, धर्मचर सत्यंवद

यानन्द से पूर्व का भारत	आत्माराम	२)
पन	गणेशदत्त इन्द्र	१)
की बातें	सिद्धगोपाल	१)२५
न जीवन	गङ्गाप्रसाद उपाध्याय	२)५०
इतिहास	पं० लेखराम	२)
द ग्रन्थ संग्रह	दो भाग	५)
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल	२)५०
क गृहस्थाश्रम	विश्वनाथ विद्यालङ्कार	५)
षि गाथा महाकाव्य	विमलेश	४)
स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग	अत्रिदेव	३)
ाय सिद्धान्तदीप	मदनमोहन	१)२५
सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द	१)
वीरवल की हाजिर जवाबी		१)
हिन्दुसंगठन क्यों कैसे	स्वामी श्रद्धानन्द	१)
आर्षयोग प्रदीपिका	स्वामी ब्रह्ममुनि	३)५०
दयान द और वेद	अरविन्द घोष	)२५
वेद परिचय	स्वामी वेदानन्द	)३७
गोरक्षा परम कर्तव्य	धर्मदेव विद्यामार्तण्ड	)५०
आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या		)५०
नास्तिकवाद	देवेन्द्रनाथ शास्त्री	)५०
आदर्श सुधारक दयानन्द	देवेन्द्रनाथ	)६२
बालशिक्षक	दयानन्द सरस्वती	)३७
वैदिक धर्म शिक्षा	शिवशर्मा	)३५

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, दिल्ली

संसार का अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश

सम्पादकः—महापण्डित श्री भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर

(इतने मोटे अक्षरों में)

विशेषताएँ

१. श्री पं० भगवद्दत्त जी ने महर्षि की हस्तलिखित मूल प्रति से मिलाकर शोधा है।

२. पैराग्राफों पर क्रम-संख्या इसकी दूसरी विशेषता है।

३. हर पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख है।

०. अकारादि क्रम से प्रमाणसूची, बढ़िया, सफेद कागज, मोती सी छपाई, पृष्ठ संख्या ८२५, सुन्दर कपड़े की जिल्द, बड़ा साइज मूल्य केवल १२)। इस अपूर्व संस्करण की कुछ प्रतियाँ हम केवल १०) में दे रहे हैं। ५ प्रतियां मंगाने पर ४८) में और १० प्रतियां ९५) में भेजी जावेंगी।

आर्य विद्वानों की सम्मतियाँ

१. श्री पं० भगवद्दत्त जी का नाम ही पुस्तक के अत्युत्तम होने का प्रमाण है। सम्पादक की १२ पृष्ठ की भूमिका पढ़ने और मनन करने योग्य है। मुझे यह संस्करण बहुत ही अच्छा लगा। —श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

२. ऐसा सुन्दर चित्ताकर्षक और परिमार्जित सत्यार्थप्रकाश अभी तक नहीं छपा था। श्री पं० भगवद्दत्त जी ने अजमेर में एक मास निवास करके स. प्र. की मूल प्रतियों से मिलान करके कितनी ही अशुद्धियों को ठीक कर दिया है। आर्य जगत् ऐसे सुन्दर स. प्र. का बड़े आदर से स्वागत करेगा।

—पूज्यपाद महात्मा आनन्द स्वामी जी

३. यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मूल पाठ शुद्धि की दृष्टि से यह संस्करण अभी तक के सभी संस्करणों से उत्तम है।

—श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

४. मेरी दृष्टि में यह सर्वोत्तम संस्करण है।

—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

५. महापण्डित श्री भगवद्दत्त जी वैदिक रिस स्कालर सत्यार्थप्रकाश के मर्मज्ञ हैं और वि षज्ञ हैं उनके द्वारा किया हुआ काम भी प्रशं नीय है मैं इस संस्करण के लिए श्री पं० ज तथा आपको बधाई देता हूँ।

—शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० अमरसिंह जी आर्य

६. ग्रन्थ का प्रकाशन श्री पं० भगवद्दत्त जी विद्वान् की देख रेख में हुआ है। इससे ग्रन्थ की प्रामाणिकता बढ़ गई है। इसी आपके इस प्रकाशन में चार चांद लग गये है

—श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंका
(उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी

७. आपने सत्यार्थ प्रकाश का स्थूल अक्षरों वाला जो संस्करण प्रकाशित किया है उसे देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसकी छपाई आदि में जो सावधानी रखी गई है वह और भी सराह नीय है। —श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री

८. ग्रन्थ का सम्पादन प्रसिद्ध अन्वेषक श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने किया है। उनके प्रयत्नों से पुस्तक की श्रीवृद्धि हुई है। भूमिका में सम्पादक ने जो निर्देश दिये हैं उनसे भी ग्रन्थ को समझने में सहयोग मिलता है।...बाहर से भी ग्रन्थ इतना सुन्दर बन पड़ा है कि यदि में पैसे हों तो बिना लिये नहीं रहा जा स

—आर्योदय सा
(आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मु

९. स. प्र. का संस्करण अत्युत्तम है। पहे बड़े बड़े संस्करण छपे हैं वे Handy यह आकर्षक भी है।

—महाशय मदनजित् जी फीरोजपु

१०. पुस्तक बहुत सुन्दर छपी है। जिनमें ऋषि के प्रति सच्ची श्रद्धा है उनके लिए मोटे अक्षरों का यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा।

—श्री नित्यानन्द वेदालंकार, एम० ए०

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया